श्रीमदखण्डभूमण्डलाचार्यवर्यश्रीकृष्णवदनविरहवैश्वानरावतार-

श्रीश्रीमद्वल्लभाचार्यप्रादुर्भावितायां

श्रीमच्चतुर्थप्रस्थानश्रीमद्भागवतशास्त्रदशमस्कन्ध-

सुबोधिन्यां

द्वितीयं प्रमाणप्रकरणम्

प्रक्षिप्ताध्यायत्रयीयुतम्

श्रीटिप्पण्यादिसकलसामग्रीसमेतम्

प्रकाशक :
श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट
वैभव को-ऑपरेटिव्ह सोसायटी
पुना बेंगलोर रोड, कोल्हापूर
महाराष्ट्र

प्रथम संस्करण : वि. सं. १९८३-८५
द्वितीय संस्करण : वि. सं. २०४९
श्रीवल्लभाब्द : ५१५

मुद्रक:
फॉंटसी
३०५, महडकर चेंबर्स,
१२७/३ ए, कर्वे रोड,
पुणे ४११ ०२९

श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धान्तर्गत–तामसप्रमाणप्रकरणविषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठानि
(१) तामसप्रमाणप्रकरणम्	१ — ४०२
१. प्रथमोऽध्यायः (आदितः पञ्चमः)	१ – ५१
गोकुले भगवतो जातकर्मादिमहोत्सवः,	१ – ३६
नन्दस्य मथुरागमनं, तत्र नन्दवसुदेवसंवादश्च.	३७ – ५१
२. द्वितीयोऽध्यायः (आदितः षष्ठः)	५२ – १०५
पूतनावधः.	
३. तृतीयोऽध्यायः (आदितः सप्तमः)	१०६ – १५३
शकटभङ्गः,	१०६ – १२९
तृणावर्तवधः,	१३० – १४७
जृम्भमाणस्य भगवतो मुखे यशोदया आकाशादिदर्शनं च.	१४८ – १५३
४. चतुर्थोऽध्यायः (आदितः अष्टमः)	१५४ – २५८
गर्गागमनं, जातकरणपूर्वकं नामकरणसंस्कारः,	१५४ – १८५
भगवतः गतिलीला,	१८६ – २०५
भगवतः महाराजलीला,	२०६ – २१६
मृद्भक्षणव्याजेन यशोदायै विश्वरूपप्रकटीकरणं च.	२१७ – २४९
५. पञ्चमोऽध्यायः (आदितः नवमः)	२५९ – ३०५
श्रीकृष्णस्योलूखले बन्धनम्.	
६. षष्ठोऽध्यायः (आदितः दशमः)	३०६ – ३५२
यमलार्जुनोद्धारः.	
७. सप्तमोऽध्यायः (आदितः एकादशः)	३५३–४०२
गोपानां गोकुलं परित्यज्य वृन्दावने गमनं,	३५३ – ३८१
तत्र श्रीकृष्णद्वारा वत्सासुर-बकासुरयोः वधः.	३८२ – ४०२

(२) *परिशिष्टम्* ४०३——४६०
(कौतुकलीलानिरूपकप्रक्षिप्ताध्याय-त्रयात्मकम्)
१. प्रथमोऽध्यायः (आदितः द्वादशः) ४०३–४१७
अघासुरवधः.
२. द्वितीयोऽध्यायः (आदितः त्रयोदशः) ४१८–४३४
सबालवत्सवृन्दे ब्रह्मणा अपहृते श्रीकृष्णस्य तत्तद्रूपेण अब्दं यथापूर्वं विहरणं, ब्रह्मणो मोहभङ्गश्च.
३. तृतीयोऽध्यायः (आदितः चतुर्दशः) ४३५–४६०
ब्रह्मणा कृता भगवतः स्तुतिः, वत्स-वत्सपालानयनं च.

(३) *परिशिष्ट* ४६१...
आद्यसम्पादकोंकी प्रस्तावनाएँ

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

भूमिका तथा सम्पादकीय

जो भूमा है वही सच्चा सुख है, जो अल्प है उसमें सच्चा सुख नहीं है. भूमा ही सुख है अतः भूमा ही सच्चा जिज्ञास्य होना चाहिये... जिसे देख-सुन-जान लेनेपर दूसरा कुछ भी दिखलाई देना—सुनाई पडना—जानना संभव न रह जाये उसे भूमा समझना चाहिये. जिसे अच्छी तरह देख-सुन-जान लेनेपर भी उससे अन्य कुछ दिखलाई-सुनाई-जान पडता हो उसे अल्प समझना चाहिये. जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वह तो मर्त्य है!

वह भूमा कहाँ प्रतिष्ठित है? स्वयंकी महिमा (आत्म-महिमा) में! अथवा इस भूमासुखको प्रतिष्ठित होनेके लिये अन्य किसी भी महिमाकी अपेक्षा ही नहीं. अल्प सुख गाय-भैंस हाथी-सोना दास-भार्य खेत-महलों की महिमामें प्रतिष्ठित होता है. इन सभी उदाहरणोंमें अल्प सुख अपनेसे किसी भिन्न वस्तुमें प्रतिष्ठित होता है. ऐसी प्रतिष्ठा भूमाकी हम नहीं कहना चाहते!

जो कुछ उपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें है वह सब कुछ भूमा है. ('वह' कहकर परोक्षतया उसका यह निरूपण हुआ किन्तु 'अहं' कहकर अपरोक्षतया भी उसे निरूपित किया जा सकता है कि) ऊपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें जो कुछ है वह मैं ही हूं. (इसी तरह परोक्षापरोक्षके भेदको मिटाना हो तो 'आत्मा' कहकर भी उसे निरूपित किया जा सकता है कि) जो कुछ उपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें है वह आत्मा ही है!

जो इस तथ्यको देख पाता है मान पाता है जान पाता है वह आत्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्द बनकर स्वराड् (स्वाधीन) बन जाता है. वह सभी लोकोंमें यथेष्ट संचार कर पाता है. परन्तु इसे अन्यथा समझनेवाले अन्यराड् (पराधीन) होकर क्षयिष्णु लोकमें रहनेवाले बन जाते हैं. वे सभी जगह यथेष्ट संचार कर नहीं पाते!

(छान्दो. उप. ७ । २३ - २५).

उपनिषद्वर्णित इस भूमा तत्त्वकी सर्वात्मभावजन्य रसानुभूति या तन्मयता का ही लीलात्मक सुललित वर्णन श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धका प्रमुख वर्ण्य-विषय है.

भगवान तथा भगवद्भक्तों के भक्तिरूप दिव्य सम्बन्धोंका वर्णन नवमस्कन्धका वर्ण्य-विषय है. अतएव, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार, भगवद्भक्तोंकी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति ही दशमस्कन्धके वर्ण्य-विषयीभूत 'निरोध'का प्रमुख अर्थ है. भक्त जब अपनी भगवद्भक्तिके कारण भगवानमें निरुद्ध हो पाता है, तब ब्रह्मज्ञानीको ब्रह्मज्ञानवश जैसे ब्रह्मोपादानक-ब्रह्मकर्तृक जगतकी दिव्य ब्रह्मात्मकताका भान होने लग जाता है, वैसे ही भगवद्भक्तको भी सर्वत्र भगवदनुभावकी प्रकट रसानुभूति होने लग जाती है.

मूलतः यही वह औपनिषदिक रहस्य है जो श्रीमद्भागवतमें— "मन-वाणी-काया-आत्मासे वे गोपिकायें भगवदात्मिका होकर भगवद्गुणगान करती हुई स्वयं अपनी और घरबारकी सुधबुध खो बैठी थी" (भाग. १०।३०।४४) "वृष्णिओंके चित्त श्रीकृष्णमें इतने तल्लीन हो गये कि सोते-जागते चलते बातें करते खेलते न्हाते आदि सभी कामोंको करते हुवे अपनी सुधबुध खो बैठे थे" (भाग. १०।९०।४६) आदि वचनोंसे कहा गया है.

अतएव दशमस्कन्धका वर्ण्य-विषय सर्गविसर्गादि-नवलक्षणलक्ष्य आश्रय है या भूभारहरणरूप निरोध है —ऐसा महाप्रभुको स्वीकार्य नहीं है. क्योंकि आभास-निरोधरूप सृष्टि-प्रलय जिस आश्रयतत्त्वके कारण घटित होते हैं, वैसी श्रीकृष्णकी आश्रयरूपताका वर्णन दशमस्कन्धमें उपलब्ध नहीं होता है. बारहवें स्कन्धमें वह अवश्य दृष्टिगोचर होता है. इसके अलावा यह भी लक्ष्यमें रखने लायक बात है कि तृतीयस्कन्धसे प्रारंभ करके नवमस्कन्धपर्यन्त तो सर्गादि नवलक्षणोंमेंसे केवल सात लक्षण निरूपित हुए हैं. इस बीच अकस्मात् लक्ष्यका निरूपण करने लग जाना और बादमें अवशिष्ट मुक्ति और निरोध रूप दो लक्षणोंका निरूपण करना —यह तो बडी असमंजस निरूपणशैली बन जायेगी. किसी भी कथाके चरमोत्कर्षके वर्णनके बाद कथाका अग्रसर होना भी वैसे तो प्रायः विरसता प्रकट करनेवाला ही होता है. इसके अलावा कृष्णलीलाका वर्णन तो ग्यारहवें स्कन्धमें भी है ही. अतः उसे भी आश्रयलीलावर्णनपरक स्वीकारना पडेगा. जहां तक भूभारहरणरूप

निरोधके वर्णनका प्रश्न है तो उसे भी ग्यारहवें स्कन्धमें भी खोजा जा सकता है.

अतएव भक्तियोगवितानार्थ भगवत्प्राकटचका कुन्तीके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त (द्र. भाग.१।८।२०) महाप्रभुको मान्य है. तदनुसार "प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदासक्ति"रूप फलनिरोधका तथा उसे सम्पन्न करनेको ऐसे भक्तोंके बीच भूतलपर भगवत्प्राकटचरूप साधननिरोधका वर्णन ही दशमस्कन्धका मुख्य स्वरूप है.

इस दृष्टिकोणको अपनानेपर नवमस्कन्ध और दशमस्कन्ध की पूर्वोत्तरभावसंगति भी सुबोध हो जाती है. क्योंकि नवमस्कन्धका वर्ण्य-विषय भगवान और भक्तोंके बीच भक्तिमय सम्बन्धोंका निरूपण है. भक्तात्मा और परमात्मा के बीच भक्तिमय सम्बन्ध स्थापित हो जानेपर कैसे वह सम्बन्ध भक्तको विषयानुसन्धानरहित बनाकर भगवानमें अनन्यासक्त बना देता है —यही तो दशमस्कन्धका मुख्य वर्ण्य-विषय है. अतएव प्रपञ्चको भूलकर भगवानमें अनन्यासक्त हो जाना ही निरोधकी सच्ची व्याख्या है. स्पष्ट है कि यहां नवमस्कन्धवर्ण्य भक्ति कारण बनती है दशमस्कन्धवर्ण्य प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिका. अतः नवम-दशम स्कन्धोंकी कारण-कार्यतारूप पूर्वोत्तरभावसंगति भी सुवाच्य बन जाती है.

स्वयं श्रीभागवत निरोधका निरूपण इन शब्दोंमें करता है: "आत्मशक्तिओंके साथ भगवानका अनुशयन निरोध है" (भाग.२।१०।६). तदनुसार इस पाञ्चभौतिक जगतमें श्रीकृष्णका अपनी समग्र दिव्य शक्तिओंके साथ प्रकट होना ही निरोध है. इस दृष्टिकोणसे दशमस्कन्धकी लीलाओंका अवगाहन किया जाये तो यथापरिभाषित अर्थमें दशमस्कन्धको यथाक्रम निरोधलीलाके वर्णनार्थ प्रवृत्त मानना ही सुसंगत है.

अग्रिम एकादशस्कन्धका वर्ण्य-विषय जो मुक्तिलीला स्वीकारी गई है वह भी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिरूप निरोधसे कार्यकारणभावात्मना संगत हो जाती है. क्योंकि निरुद्ध जीव मुक्तिके सच्चे अधिकारी होते हैं.

इसी तरह मुक्तजीव ही सर्गादि-नवलक्षणलक्ष्य आश्रयरूप परमात्माके स्वरूपात्मना अवस्थित हो सकते हैं. अतः एकादश-द्वादश स्कन्धोंकी पूर्वोत्तरभावसंगति भी सिद्ध हो जाती है. जहां तक आश्रयभावापत्तिका प्रश्न है वहां भी इतनी बात ध्यान रखनी नितान्त आवश्यक है

कि सच्चिदानन्द सकलाश्रयरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान अपने आनन्दांश या चिदंश के धर्मरूपेण या धर्मिरूपेण तिरोभावद्वारा ही सर्ग-विसर्ग-स्थान-पोषण-ऊति-मन्वन्तर-ईशानुकथा-निरोध-मुक्तिरूप नवविध लीला करते हैं. अतः जड-जीवात्मक जगतका आश्रयभावापन्न हो जाना भी इसी अर्थमें समझना चाहिये कि वह लीलार्थ परिगृहीत देव-मानव-दानव-पशु-पक्षी-पृथ्वीजलतेज आदि सभी जड-चेतनरूपोंमें चिदानन्दांशका पुनः प्रादुर्भाव हो जाना है. एतावता इन लीलार्थपरिगृहीत रूपोंमें जगतकर्तृत्वादि अनन्यसाधारण गुण-धर्म-सामर्थ्यका प्रादुर्भाव विवक्षित नहीं है. क्योंकि इन लीलार्थ परिगृहीत अनन्त रूपोंका पार्थक्य चिदंश या आनन्दांश के तिरोधानवश ही निरूपणार्ह या पृथक् अर्थक्रियार्थ समर्थ बन पाता है. अतः आनन्दांशके पुनः प्रादुर्भाव होते ही न तो वह पार्थक्य स्वतंत्र अर्थक्रियाकरणकी सामर्थ्यका वाहक रह पाता है और न पृथक्तया निरूपणार्ह ही. अतः जब पृथक् होते हैं तब परमात्माके असाधारण गुणधर्मसामर्थ्य आनन्दांशतिरोधानवश तिरोहित ही हो जाते हैं और जब आनन्दांशका प्राकटच हो जाता है तो पार्थक्य लुप्त हो जाता है. अतः परमात्माके जगतकर्तृत्वादि असाधारण गुणधर्मसामर्थ्यकी असाधारणताको कोई आंच नहीं आती. अतएव द्वादशस्कन्धवर्ण्य-विषयीभूत ब्रह्मभावापत्ति या आश्रयभावापत्ति का कुल तात्पर्य महाप्रलयकालीन लीलार्थ प्रकट अनन्तानन्त नाम-रूप-कर्मोके ऐच्छिक द्वैतमें सच्चिदानन्दस्वरूपके स्वाभाविक अद्वैतकी पुनरभिव्यक्ति है. अस्तु.

इस तरह पूर्वोत्तरभावसंगतिके विचारवश भी महाप्रभुको अभिप्रेत अर्थ उपपन्नतर है कि निरोधलीला भगवानकी इस भूतलपर प्रकट हुई वे लीलायें हैं जिनके कारण भक्त प्रापञ्चिक विषयोंको भूलकर भगवानमें अनन्यासक्त हो जाते हैं.

अतएव 'निरोध'पदकी चार आकांक्षायें हैं:

	आकांक्षा	पूर्ति
१	किसका निरोध?	लीलान्तःपाती भूतलस्थित भक्तोंका.
२	कहां निरोध?	लीलाविहारार्थ भूतलपर प्रकट भगवानमें.
३	किस साधनसे निरोध?	प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिद्वारा.
४	किससे निरोध?	प्रापञ्चिक विषयोंसे.

यह वही अवस्था है जिसका वर्णन श्रीभागवतके पूर्वोदाहृत दो श्लोकोंमें किया गया.

इस पारस्परिक तन्मयतामें प्रकट अन्यानुसन्धानरहित अनन्यासक्तिको "नायं सर्पः रज्जुरियं" रूप बाधज्ञानोत्तर तत्त्वज्ञान अथवा उपासनार्थ आरोपित द्वैतका आहार्यज्ञान भी नहीं कहा जा सकता है. सर्वप्रथम तो यह भगवदितर प्रापञ्चिक विषयोंके अभान या बाधितार्थानुवृत्तिसे घटित नहीं होती. क्योंकि जिस प्रापञ्चिक विषयका भान होता है वह भगवल्लीलासे संबद्धतया ही. अतः अभान नहीं कहा जा सकता. इसे बाधितार्थानुवृत्ति भी नहीं स्वीकारी जा सकती क्योंकि भगवत्स्वरूप या भगवल्लीला से असंबद्ध प्रापञ्चिक विषयोंकी स्फूर्ति या स्मृति या अपेक्षा नहीं रह जाती.

पूर्वोदाहृत छान्दोग्योपनिषद्वचनमें भूमाकी अनुभूतिमें तदादेश अहंकारादेश और आत्मादेश की क्रमिकता जो वर्णित हुई है, वहां 'तत्'पदवाच्य परोक्षता एवं 'अहं'पदवाच्य अपरोक्षता को एकनीड करनेवाली आत्मानुभूति होती है. ईशावास्योपनिषद् इसे ही—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥ (६-७).

अनेक नाम-रूप-कर्मोंका 'एकमेवाद्वितीय'ब्रह्मत्वेन तत्त्वानुदर्शन कहता है. इसी तरह 'एकमेवाद्वितीय'ब्रह्मतत्त्वका अनेक नामरूपकर्मत्वेन लीलानुभावन है. भगवद्गीता भी इसी तथ्यका समर्थन करती है—

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
ततएव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तथा॥ (गीता १३।३०).

इस भूतपृथग्भावके ब्राह्मिक विस्तारको एकस्थत्वानुदर्शन या एकत्वानुदर्शन के रूपमें पहचान लेना अतीव गूढ आध्यात्मिक रहस्य है. अन्यथा इसे अनेकत्वके बाधज्ञानतया स्वीकार लेनेकी आध्यात्मिक धांधल हो ही जाती है. बाधज्ञानमें सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मकी अपने चिदंश या आनन्दांश को तिरोहित कर पानेकी शक्ति तथा विविध नाम-रूप-कर्मोंको आविर्भूत करनेकी शक्तिके कारण जो पार्थक्य या संकोच प्रकट हुवा है, उसका पुनर्विस्तार नहीं हो पाता किन्तु निरास हो जाता है. यह ईशावास्योपनिषद्वर्णित विजुगुप्साका निराकरण नहीं कर पाता; अपितु बाधित नाम-रूप-कर्मोंकी अनेकताके प्रति उनके बाधित होनेके कारण मिथ्या, मिथ्या होनेके कारण भ्रम-अज्ञानजन्य,

भ्रम-अज्ञानजन्य होनेके कारण दुःखरूप होनेकी जुगुप्साको और गहरा देता है. ईशावास्योपनिषद्, जबकि, सर्वभूतोंको आत्मामें और आत्माको सर्वभूतोंमें दर्शन कर पानेके प्रकारमें सभी तरहकी जुगुप्साओंके निरस्त होनेकी बात समझाता है.

बाधज्ञानमें विषयोंकी बाधितत्वेन स्मृति तथा अधिष्ठानके केवलाद्वैतकी अनुभूति होती है, "ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्" श्रुतिवर्णित तादात्म्य या शुद्धाद्वैत की नहीं. तादात्म्य एक और लंबी छलांग है जहां नाम-रूप-कर्मगत द्वैत और ब्रह्मगत अद्वैत के बीचमें रही द्वैतबुद्धिको भी लांघना पडता है. अर्थात् एकत्वात्यन्ताभाव और द्वित्वात्यन्ताभाव रूप द्वैत और अद्वैत के बीच रहा द्वैत भी विलुप्त हो जाता है. "ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि रूपाणि कर्माणि बिभर्ति. एतत् त्रय सद् एकम् अयमात्मा. अयमात्मा एकः सन् एतत् त्रयम्." (बृहद्.उप.१।६।१-३). सब कुछ आत्मामें है तथा सबमें आत्माके होनेकी सरसता इस अनुभूतिकी विशिष्टता है. अतएव "ऐतदात्म्यं सर्वम्"के सिद्धान्तको स्वीकारनेपर "तत्त्वमसि"श्रुतिवर्णित 'त्वम्'पदनिर्दिष्टका 'तत्'पदनिर्दिष्टत्वेन ब्राह्मिक विस्तार घटित हो पाता है. यह दोनोंके बीच रहे स्वाभाविक तादात्म्यवश होता होनेसे 'त्वं'पद या 'तत्'पद के वाच्यार्थोंकी भागत्यागपूर्विका लक्षणाका सहारा लेना यहां आवश्यक नहीं. क्योंकि एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अनेकानेक नाम-रूप-कर्मोंका पार्थक्य जो आनन्दांश या चिदंश के तिरोधानवश प्रकट हुआ है, वहां भी सदंशके अतिरोहित ही रहनेसे सत्तया अनन्त नाम-रूप-कर्मोंका एक उस परमसत्ताके साथ स्वाभाविक तादात्म्य अक्षुण्ण ही है. इसे ही अनुलक्षित करके 'त्वं'पदनिर्दिष्टका 'तत्'पदनिर्दिष्टतया ब्राह्मिक विस्तार सुनिरूप्य बन जाता है.

इसे ही महाप्रभु इन शब्दोंमें कहते हैं—

आनन्दांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः।
प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्॥

(नि.शास्त्रार्थ: ५४)

माँ यशोदाकी गोदमें खेलता हुआ बालकृष्ण स्वरूप अखिल ब्रह्माण्डका आधार बना ही रहता है. इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म अणुरूपतया प्रकट होनेपर भी व्यापकता छोडता नहीं. अतएव जीवात्माको जब ज्ञान या भक्ति की पराकाष्ठामें अपने ब्रह्मतादात्म्यकी स्फूर्ति होने लगती है तब उस जीवात्माके परिच्छिन्न रहनेपर भी कोटि ब्रह्माण्डोंकी

निजमें प्रतीतिको संभव बनानेवाली व्यापकता भी अनुभूत होने लग जाती है. स्वयं ब्रह्मके विरुद्धधर्माश्रय होनेसे अणुत्व-व्यापकत्वरूप धर्मोके विरोध ब्रह्ममें एकनीड बन जाते हैं. ऐसे ही स्वब्रह्मतादात्म्यकी अनुभूति होनेपर जीवमें भी विरुद्धधर्माश्रयता प्रकट हो जाती है.

यह ब्रह्मतादात्म्य ही नश्वरता जडता दुःखरूप विरुद्धधर्मासहिष्णुभिन्नता जैसे जुगुप्साजनक धर्मोकी स्फूर्तिका विलोपक होता है: "ततो न विजुप्सते."

ब्रह्मतादात्म्यके अनुदर्शनको केवल अनुभवके अर्थमें नहीं समझना चाहिये. क्योंकि 'अनु'निपात जैसे 'अनुभव'पदमें ज्ञानार्थक होता है, वैसे ही 'अनुसार-अनुचर' पदोंमें 'पश्चात्'के अर्थमें प्रयुक्त होता है. 'अनुकम्पा' - 'अनुनय' - 'अनुरोध' - 'अनुकरण' - 'अनुष्ठान' - 'अनुमोदन' - 'अनुकूल' जैसे पदोंमें क्रमशः कृपा - सान्त्वन - इच्छा - सादृश्य - आचरण - अंगीकार - आनुकूल्य अर्थोमें भी प्रयुक्त होता उपलब्ध होता है. अतः 'अनुवाद'में जैसे पूर्वकथित बातका निरसन या बाध किये बिना, उसी बातको किसी दूसरी भाषा या निरूपणशैली में कहे जानेका बोध होता है, वैसे ही पूर्वदृष्ट द्वैतके बाध किये बिना ही उस द्वैतका अद्वैतनिष्ठतया अनुदर्शन ही विवक्षित है. अतः एकत्वानुदर्शन एकमेवाद्वितीय ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें आरोपित द्वैतका बाधज्ञान या दर्शन नहीं है. यह तो सुवर्णानभिज्ञ कुण्डलदर्शीको कुण्डलकी सुवर्णात्मकताके उपदेशद्वारा पैदा होनेवाला कुण्डलकी सुवर्णात्मकताका अनुदर्शन है.

जो बात "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्त्वमसि"के अर्थघटनमें ध्यान रखनी आवश्यक है वही "अहं ब्रह्मास्मि" या "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" जैसे वचनोंका भी निगूढाभिप्राय है. इसे हम इस बृहदारण्यकवचनसे भलीभांति समझ सकते हैं—

"पहले यह पुरुषविध आत्मा ही केवल था. किन्तु चारों ओर अन्वीक्षण करनेपर अपने-आपसे अलावा अन्य किसीका वह अनुभव कर न पाया... (क्योंकि) ब्रह्म ही तो केवल पहले था. उसने अपने-आपको 'मैं ब्रह्म हूं'के रूपमें पहचाना और वह सब कुछ बन गया. अतः जो भी देव ऋषि या मनुष्य 'अहं ब्रह्मास्मि'के तथ्यको जान लेता है वह सर्वरूप हो जाता है." (बृहद्. १।४।१-१०).

इसी औपनिषदिक रहस्यको व्रजकी गोपिकाओंने भी बडी गहराईसे

अनुभव करके कहा है— ''प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुः आत्मा'' (भाग. १०।२९।३२).

व्रजमें माता यशोदाके समक्ष निजमुखमें ब्रह्माण्डभासक्रीडा हो, या वृन्दावनमें गोपिकाओंके साथ रासक्रीडा हो, या मथुराकी रंगभूमिमें दर्शकोंके भावानुरूप अनुभावोंको प्रकट करनेकी लीला हो, या द्वारकामें रनिवासक्रीडा हो; इन सभी लीलाओंका प्रमुख वर्णनाभिप्राय एक श्रीकृष्णकी अनेकरूपताके सामर्थ्यका निरूपण है. अतएव स्पष्ट शब्दोंमें श्रीभागवतकी यह घोषणा है कि गोपिकाओं उनके पतिओं और सभी देहधारिओंके भीतर बिराजमान ही परमात्मा अपने दिव्य विग्रहको श्रीकृष्णके स्वरूपमें प्रकट कर क्रीडा कर रहा है. (द्र. भाग. १०।३३।३६).

क्रीडार्थ प्रकटित 'तत्-त्वम्' 'अहं-ब्रह्म' या 'इदं सर्वं-ब्रह्म'रूप ऐच्छिक-पारमार्थिक पार्थक्यमें उस स्वाभाविक सत्तादात्म्यके ही उद्बोधनार्थ ''अस्तीत्येवोपलब्धव्यः तत्त्वभावेन चोभयोः अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति'' (कठ. उप. २।३।१३) कहा गया है. जो एकमेवाद्वितीय परमसत्ता है उसीमें सत्यसंकल्प तथा सर्वभवनसामर्थ्य के वश 'तत्'-'इदं'-'त्वम्'-'अहम्' की लीला प्रकट हुई हैं. अतएव 'तदस्ति'-'इदमस्ति'-'त्वमसि'-'अहमस्मि' जैसी अनुभूतिओंमें सत्तादात्म्यकी प्रतीति अक्षुण्ण ही रहती है. जिस आत्मैक्य या आत्मतादात्म्य की अनुभूतिके वश सारी जुगुप्सायें खतम हो जाती हैं उसकी 'उपलब्धि' कहो या 'तत्त्वभावप्रसाद' कहो उसे पानेका भगवद्गीताके द्वारा उपदिष्ट प्रकार है ''बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दन्त्यात्मनि यत् सुखं स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते'' (गीता ५।२१).

बाह्यस्पर्शोमें इस अनासक्तिपूर्वक आत्मासक्तिके ज्ञानमार्गीय वर्णनको ही दूसरे भक्तिमार्गीय शब्दोंमें ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति'' कहा जा रहा है जो दशमस्कन्धका प्रमुख वर्ण्य-विषय है. यह हम देख ही चुके हैं.

पुनः ज्ञानमार्गीय साधनाके सन्दर्भमें ''बाह्यस्पर्शानासक्तिपूर्वक आत्मासक्ति'' या भक्तिमार्गीय साधनाके सन्दर्भमें ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति'' जैसे हम कहते हैं, वैसे ही लीलाके सन्दर्भमें इसे ''प्रपञ्चाधिकरणिका स्वासक्तिप्रदायिनी भगवत्क्रीडा''के रूपमें परिभाषित किया जाता है. यहां 'स्वासक्तिदायिनी' विशेषण अतिशय महत्त्वपूर्ण है. क्योंकि भगवानकी प्रपञ्चाधिकरणिका लीलाओंमें भक्तिके बजाय

काम-क्रोध-द्वेष-भय जैसी विपरीत मनोवृत्तिओंके कारण भी भगवत्तन्मयता और तद्द्वारा मुक्तिप्रदानके प्रसंग भी अनेकानेक वर्णित हुवे ही हैं. इन्हें भगवल्लीलामें प्रकटित भगवत्सामर्थ्यके रूपमें तो सोचा-समझा जा सकता है परन्तु वह तो भक्तिके माहात्म्यातिशयके प्रतिपादनार्थ लीला है. क्योंकि ऐसी निषिद्ध मनोवृत्तिवाले अधिकारिओंको भी भगवानने मुक्तिदान तो किया ही है; तो जिन भक्तोंकी प्रपञ्चासक्ति दूर करके भगवानने निजस्वरूपमें जिन्हें आसक्तिका दान किया हो तो ऐसी भगवदासक्तिका मुक्तिसे उत्कृष्टतर होना तो स्वतःसिद्ध बात हो जाती है.

एतदर्थ नवमस्कन्धकी वर्ण्य-विषय भक्तिके अधिकारियोंके साथ जो निरोधलीला सम्पन्न की गई, निरोधलीलाका वह प्रकार प्रकरणोपात्त प्रमुख प्रकार है. जबकि अभक्तोंको उनकी भय-द्वेष आदि वृत्तिओंको ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवद्भय'' अथवा ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवद्द्वेष''की अवस्थाओंमें पहुँचानेवाली निरोधलीलाका प्रकार प्रकरणोपात्त प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप निरोधलीलाके केवल उत्कर्षसाधनार्थ है. अतः उसकी प्राकरणिक महत्ता उतनी नहीं है. लीलामाहात्म्य तथा स्वरूपमाहात्म्य का बोध जगाकर भक्तिके उत्कर्षका निरूपण अथवा पूर्वनिर्दिष्ट भक्तियोगवितान ही उन लीलावर्णनोंका प्रमुख प्रयोजन है.

लीलासन्दर्भमें प्रपञ्चविस्मृतिका वही उपयोग है जो साधनासन्दर्भमें ''माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह''तया परिभाषित भक्तिमें माहात्म्यज्ञानका उपयोग है. प्रापञ्चिक विषय ब्रह्मात्मक हैं यह माहात्म्य प्रापञ्चिक नाम-रूप-कर्मात्मक विषयोंका नहीं प्रत्युत ब्रह्मका ही है अतः नामरूपकर्मोमें आसक्ति छोडकर उन्हें विस्मृत कर नाम-रूप-कर्मधारी ब्रह्ममें आसक्त होना चाहिये. अतः ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक = माहात्म्यज्ञानपूर्वक'' तथा ''भगवदासक्ति = सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह'' के समीकरणोंको सर्वदा हृद्गत रखना चाहिये.

ब्रह्मप्राप्तिके ज्ञानभक्त्यादि उपायोंके भगवत्कृपया सफल होनेपर परमात्मप्राकट्य होता है —यह तो औत्सर्गिकी मर्यादा है. अपवादरूपेण कभी निजेच्छया या कृपया सर्वजनसाधारणगम्यतया अथवा भक्तविशेषगम्यतया, जब जीवकृतसाधननिरपेक्ष भगवत्प्राकट्य हो जाता हो, तब साधनफल-भावमें व्युत्क्रम या साधनवैयर्थ्य भी हो जाता है. तब भगवत्प्राप्तिके असाधन भी साधन बन जाते हैं. तब ज्ञानभक्तिकी तरह अज्ञानभयद्वेषकामादि

किसी भी मनोवृत्तिवाली भगवदभिमुखता भी केवल कारगर हो जाती है. यहां किन्तु अवधेय यह है कि जिन लीलाओंके द्वारा निरोधका भक्तिसन्दर्भोपात्त ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदासक्ति'' स्वरूप घटित नहीं होता ; किन्तु प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवद्भीति या प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदसूया स्वरूप सम्पन्न किया गया है. उस निरोधके अधिकारिओंके मुक्त होनेका उल्लेख उन्हें मूलतः एकादशस्कन्धीय लीलाके अधिकारी होना सिद्ध करता है. जैसे जिन्हें मुक्तिदान नहीं परन्तु मृत्युदान दिया गया वे विगत सर्गादिलीला या आगामी आश्रयलीला के अधिकारी जीव हैं. दशमस्कन्धीय निरोधलीलामें इन मुक्तियोग्य अधिकारिओंका निरूपण वर्ण्यमान लीलाके प्रमुखपात्रतया नहीं किन्तु लीलाके उत्कर्षाधायक सहकारीपात्रतया हुआ है. क्योंकि मुख्य प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदासक्तिसे सम्पन्न अधिकारिओंके लिये मुक्ति या मृत्यु इकसार ही होते हैं— ''स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः'' (भाग. ६।१७।२८). अतएव भागवती भक्तिके अधिकारिओंके लिये यह बात कही गई है— ''सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य एकत्व जैसी मुक्तिओंमेंसे किसी भी प्रकारकी मुक्ति भगवद्भक्त तो स्वीकारना नहीं चाहते, क्योंकि भक्तको तो भगवानकी भक्तिमयी सेवा ही अधिक रुचती है.'' (भाग.३।२९।१३).

निरोधलीलाके वास्तविक या प्रमुख पात्र या अधिकारिओंके बारेमें श्रीभागवतकारके ये उद्‌गार नितान्त मननीय हैं—

''न तो ब्रह्मा न भव और न स्वयं श्रीलक्ष्मी को भी मुक्तिदाता भगवानका वैसा प्रसाद = अनुग्रह मिल पाया जैसा व्रजगोपीको मिला था.'' (भाग. १०।९।२०).

''इस पृथ्वीपर केवल इन गोपिकाओंका ही देहधारण करना श्रेष्ठ है तथा फलरूप है. क्योंकि निखिलात्मा गोविन्दमें ही केवल इनका भाव रूढ हो गया है. संसारभयसे भीत मुनिगण और हम भी इस भावको पाना चाहते हैं क्योंकि भगवानकी इन दिव्य लीलाओंमें यदि किसीकी रुचि नहीं पनप पाती तो उस व्यक्तिका ब्रह्माके रूपमें जन्मग्रहण भी व्यर्थ ही होता है.'' (भाग. १०।४७।५८).

भोगमोक्षातिशायिनी भगवानकी इस निरोधलीलाके उपक्रमतया दशमस्कन्धके प्रारम्भके चार अध्याय जन्मप्रकरण हैं. पश्चात् तामसभक्त

राजसभक्त सात्त्विकभक्त तथा निर्गुणभक्तों के साथ भगवानकी निरोधलीलाके वर्णनार्थ चार प्रकरण हैं:

१. तामसप्रकरण (५-३५ अध्याय)
२. राजसप्रकरण (३६-६३ अध्याय)
३. सात्त्विकप्रकरण (६४-८४ अध्याय)
४. निर्गुणप्रकरण (८५-९० अध्याय)

एतदन्तर्गत प्रस्तुत खण्ड तामसप्रकरणान्तर्गत प्रमाणप्रकरण है. यह ५वें अध्यायसे प्रारम्भ कर ११वें अध्याय तक अर्थात् सप्ताध्यायात्मक है. साथ ही साथ १२-१३-१४ अध्याय भी प्रकाशित हो रहे हैं जो महाप्रभुके अनुसार किसी अन्य ग्रंथसे भागवतमें प्रक्षिप्त हैं. अर्थात् भगवल्लीलावर्णनपरक होनेपर भी भागवतके कथासूत्रमें पिरोई हुई लीलाका वर्णन नहीं करते हैं. उसके बाद सप्ताध्यायात्मक तामसप्रमेयप्रकरण, सप्ताध्यायात्मक तामससाधनप्रकरण और सप्ताध्यायात्मक तामसफलप्रकरण हैं.

महाप्रभुके अनुसार आदिके चार अध्याय जन्मप्रकरण हैं, क्योंकि भक्तियोगवितानार्थ (अर्थात् प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूपनिरोधजननार्थ) भूतलपर भगवत्प्राकट्य है. भगवद्भक्ति करनेवालोंके कालादिकृत भयका निवारण, दैत्यमारण, वंशस्थापन, मोक्षदान आदिकी लीलायें पुरुषोत्तम अपने चार व्यूहोंद्वारा सम्पन्न करते हैं. अतः चार व्यूहोंकी जन्मलीलाके द्योतनार्थ चार अध्याय हैं. स्वयं पुरुषोत्तम तो अपने व्यूहोंके जन्मद्वारा अजन्मा होनेसे स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं. पुरुषोत्तमप्राकट्यका प्रयोजन भक्तियोगवितान अर्थात् निरोधलीला ही है. इस निरोधलीलाके अंगतया भयनिवारण, असुरमारण, वंशस्थापन या मुक्तिदान आदिरूप जो लीलायें हैं वह व्यूहविशिष्ट पुरुषोत्तमकी लीला, अर्थात् लीलार्थ प्रकट पुरुषोत्तमके तत्तद् व्यूहद्वारा सम्पन्न लीला है.

क्योंकि जिन भक्तोंका निरोध करना है उनकी प्राथमिकी अवस्था अज्ञानजन्य भ्रमपूर्ण हठयुक्त स्वभाववाले स्नेहभावकी होती है. अतः प्रथम तामसप्रकरण है. यह तामसभाव ही प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिवशात् क्रमशः राजसभाव, सात्त्विकभाव और पर्यवसानमें निर्गुणभावरूप प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तितया सम्पन्न हो जाता है. इस लीलामें लौकिकदृष्टिसे अथवा साधनाके दृष्टिकोणसे भगवद्भक्ति करनेवाले भक्त निम्नकक्षाके होते हैं परन्तु भक्तनिरोधार्थ भगवानके भक्तसाधारणीभवनकी

पुष्टिकी परमकाष्ठापन्न मधुरताको लक्ष्यमें लानेपर वही उत्तमोत्तम कक्षा बन जाती है. इस साधारणीकरणकी प्रक्रियामें तामसभावसे राजसभाव सात्त्विकभाव और अन्तमें निर्गुणभावापन्न निरुद्ध भक्तोंका भगवानके साथ साधारणीभवन परमकाष्ठापन्न हो ज़ाता है, जिससे आगे चलकर सालोक्यादि मुक्ति और आश्रयभावापत्ति की ओर भक्त भक्ति तथा भगवान अग्रसर होते जाते हैं. यही एकादश-द्वादशस्कन्धकी लीलाओंका स्वरूप है.

जो भक्त राजसभाव या सात्त्विकभाव वाले हैं उन्हें, उनके धरातलपर उनके साथ साधारणीकरणकी प्रक्रियाके द्वारा भगवान राजसलीला या सात्त्विकलीलाओं द्वारा, निरुद्ध करते हैं. इसे स्थूलतया व्रजलीला मथुरालीला द्वारकालीला और वैकुण्ठलीला के निरूपणद्वारा समझा जा सकता है, क्रमशः तामसलीला राजसलीला सात्त्विकलीला और निर्गुणलीला के सन्दर्भमें ही.

एतदन्तर्गत प्रस्तुत तामसप्रकरणके वर्ण्यविषयका स्वरूप इस तरह है.

क्योंकि स्कन्धार्थ निरोधलीला है अतः इस पृष्ठभूमिमें तामसप्रकरण, तामसभक्तोंके बीच प्रकट पुरुषोत्तमकी अपने तामस भक्तोंकी प्रपञ्चासक्ति छुडाकर निजासक्ति प्रदान करनेवाली लीला, तामसनिरोधलीलाके वर्णनपरक है.

यह तामस व्रजभक्तोंका निरोध व्रजमें साधारणीकरणकी प्रक्रियाके द्वारा उन्हींकी तरह बालगोपाल बनकर भगवानने सम्पन्न किया है. क्योंकि प्रमाणतया अथवा प्रमेयतया अथवा साधनतया या फलतया तामस भक्तोंको अपनेमें निरुद्ध करना है, अतः प्रमाणका स्वरूप, प्रमेयका स्वरूप, साधनका स्वरूप और फलका स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिये कि तामस भक्त प्रापञ्चिक विषयोंको भूलकर भगवानमें समासक्त हो जायें!

एतदर्थ महाप्रभु समझाते हैं कि तामस भक्तोंके पास प्रारम्भसे तो भगवानको पहचान पानेके राजस या सात्त्विक प्रमाण हो नहीं सकते. न वैसे राजस या सात्त्विक रूपोंको धारण करनेवाले राजस या सात्त्विक प्रमेयमें तामस भक्त निरुद्ध ही हो पायेंगे. अतः उनके निरोधका प्रमेयीभूत भगवत्स्वरूप भी साधारणीकरणकी प्रक्रियाद्वारा तामस ही होगा; अर्थात् तामसनिरोधावलम्बनरूप तामसप्रमेय. ऐसे प्रमेयको पानेके साधन भी राजस या सात्त्विक होनेके बजाय तामस ही होंगे; तथा

उन तामस साधनोंसे लभ्य फलका स्वरूप भी तामस ही होगा. अर्थात् ऐसा फल कि जिससे तामस भक्त परमानन्दित हो पायें!

इन आशयोंसे व्रजमें भगवानकी बाललीला तथा कुमारलीला का वर्णन प्रमाणप्रकरणमें, पौगण्डलीलाका वर्णन प्रमेयप्रकरण तथा साधनप्रकरणमें हुआ है; और किशोरलीलाका वर्णन फलप्रकरणके रूपमें किया गया है (जन्मसे लेकर अपने चरणोंसे चल पानेसे पहले बाल्यावस्था, पश्चात् कौमार्यावस्था पंचवर्षपर्यन्त रहती है. तत्पश्चात् दशवर्षपर्यन्त पौगंडावस्था रहती है. तत्पश्चात् षोडशवर्षपर्यन्त किशोरावस्था मानी जाती है).

तदनुसार तामसप्रकरणान्तर्गत प्रथम प्रमाणप्रकरणमें अपने बीचमें प्रकट हुए बालभावापन्न पुरुषोत्तमको पहचानकर प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवानकी बाललीलाओंमें तल्लीन हो जाना प्रमाणनिरोध है. स्पष्ट ही है इस तरहके निरोधकी दोहरी मांग है: एक मांग तो यह कि भगवानका अन्य गोपबालकोंकी तरह ही गोपबालक होना. दूसरी यह कि अन्य गोपबालकों जैसे ही गोपबालक होनेपर भी किसी तरह उनका असाधारण होना. अतः सम्पूर्ण प्रमाणप्रकरणकी लीलाओंमें यह विरुद्धधर्माश्रयता ही वर्णित हुई है कि श्रीकृष्ण कैसे साधारण गोपबालक जैसे होनेपर भी असाधारण हैं और सर्वथा असाधारण होनेपर भी कैसे साधारण गोपबालकों जैसी चेष्टायें करते हैं.

इसमें इतरविस्मारणार्थ असाधारणता तथा स्वासक्तिजननार्थ साधारणताकी अपेक्षा है. तभी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप निरोध बालभावापन्न श्रीकृष्णमें सम्पन्न हो पायेगा.

अतएव प्रकट भगवानके बालरूपके बारेमें भक्तिप्रयुक्त अज्ञान एवं अन्यथाज्ञान ही तामसप्रमाण बन जाते हैं. एतदर्थ अपने व्यूहसामर्थ्यवशात् प्रकट बालस्वरूपके द्वारा की गई लीलायें भगवानके उस बालरूपके अनितरसाधारणमाहात्म्यशाली होनेका संकेत देती रहती हैं. साथ ही साथ अन्य गोपबालकोंके जैसी साधारणीभूत-पुरुषोत्तमकी बाललीलायें सुदृढ सर्वतोधिक स्नेहकी जनिका बन जाती हैं. फलरूपेण इतने असाधारण कार्योंको करनेवाला बालक साधारण बालक कैसे हो सकता है —जैसे तर्क उठ-उठकर भी बाललीलाके लावण्यवश पुनः पुनः स्वतः उपशमित हो जाते हैं! और इस तरह सर्वविध कुतर्कोपशामिका भगवदासक्तिद्वारा प्रसूत अज्ञान कि यह असाधारण बालक भगवान नहीं हो सकता है; और तथाप्रसूत अन्यथाज्ञान कि यह तो अपना ही कोई बालक

है —ऐसी अज्ञान तथा अन्यथाज्ञान की मनःस्थितिके वश व्रजभक्त सब कुछ भूलकर उस बालरूपमें अनन्यासक्त हो जाते हैं! यहीं आकर अज्ञान-अन्यथाज्ञान तामसप्रमाण होनेकी दिव्य पदवी इस दिव्य लीलामें धारण कर लेते हैं.

पूर्वनिरूपणानुसार 'निरोध'पद एक साकांक्ष पद होनेसे इस सोपानपर भी इसकी चार आकांक्षायें क्या हैं यह जान लेना उचित होगा:

	आकांक्षा	पूर्ति
१.	किसका निरोध?	व्रजभक्तोंका कि जिनके बीच भगवान बालरूप धारण कर प्रकट हुए.
२.	किसमें निरोध?	साधारण बालक होनेपर भी असाधारण और असाधारण होनेपर भी साधारण बालचेष्टा करनेवाले भगवानके बालस्वरूपमें.
३.	किस साधनसे निरोध?	अनन्यसाधारण स्नेहजनिका बाललीलाओं-द्वारा कि जिन्हें जान पानेका साधन भक्तिप्रसूत अज्ञान-अन्यथाज्ञान ही हैं.
४.	कहांसे निरोध?	प्रापञ्चिक विषयोंसे.

इस तरह हमने देखा कि तामसप्रमाणनिरोधलीलाका गूढ रहस्य क्या है.

इसके बाद इस तामसप्रमाणप्रकरणके जो सात अध्याय हैं इन अध्यायोंमें वर्णित लीलायें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य रूप छह गुणधर्मोंसे युक्त सातवें धर्मिस्वरूप व्यूहविशिष्ट पुरुषोत्तमकी लीलायें हैं यह निरूपण होना है. तदनुसार—

तामसप्रमाणप्रकरणके प्रथम अर्थात् आदिसे पांचवे अध्यायमें भगवानने अपने ऐश्वर्य गुणके द्वारा व्रजभक्तोंको सर्वविस्मारक परमानन्दजनक नन्दमहोत्सवमें निरुद्ध किया है. पितृगृहसे गोकुलमें पहुंच जानेपर भी उत्सवका ही होना श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका द्योतक है. यहीं वसुदेवजी नन्दको अपने पुत्रकी सुरक्षामें तत्पर होनेका सुझाव जो देते हैं उससे प्रबलीभूत अन्यथाज्ञानवश श्रीकृष्णके लालन-पालनमें विघ्नबाहुल्य प्रतीत होता है.

द्वितीय अर्थात् छठे अध्यायमें तामसभावप्रसूत अविद्यारूप पूतनाके मारणकी लीला वीर्यगुणका निरूपण है. साथ ही साथ मारी गई

अविद्यारूप पूतनाकी भक्तिप्रसूत अज्ञानगंध श्रीनन्दको अनुभूत होती है, जो भगवानके बालरूपमें स्नेहभावकी वर्धिका है.

तृतीय अर्थात् सातवें अध्यायमें शकटासुर-तृणावर्तका भंग, साथ ही साथ श्रीकृष्णका पुत्रभावसे लालन करनेवाली माता यशोदाद्वारा पुत्रभारसे मोहित होना है कि जिसे तृणावर्त भी उठाकर ले जा सकता है—यह भगवानके विरुद्धधर्माश्रयरूप यशोगुणका निरूपण है.

चौथे अर्थात् आठवें अध्यायमें नामकरणलीला तथा मृत्तिकाभक्षणव्याजसे मुखारविंदमें ब्रह्मांडप्रदर्शनलीला द्वारा भगवानके श्रीगुणका वर्णन हुआ है.

पांचवें अर्थात् नौवें अध्यायमें कुमारभावापन्न भगवानने अपने स्वरूपका कुछ ज्ञान दिया है कि अनन्तर अबाह्य सर्वव्यापी परमात्मा भी स्नेहवश बंध सकता है. अतः यहां ज्ञानरूप गुणसे अपने दिव्य कुमाररूपकी कुछ पहचान भगवानने दी है.

छठे अर्थात् दसवें अध्यायमें यमलार्जुनको मुक्तिप्रदान द्वारा भक्तेतरमें अनासक्तिरूप वैराग्यगुणको प्रकट किया है— इन असाधारण कृत्योंको देखकर भी व्रजभक्तोंका स्नेह खण्डित नहीं होता और न वे ठीक तर्क करके की जाती लीलासे अन्यथा किसी रूपको ही समझ पाते हैं. अतः स्नेह बढता ही चला जाता है.

सातवें अर्थात् ग्यारहवें अध्यायमें गोपजनोंका गोकुल छोडकर वृन्दावनमें बसने जाना और वहां भगवानद्वारा वत्सासुर-बकासुरका वध —यह धर्मिरूप भगवानके वर्णनपरक है. इस तरह भगवानकी कौमार्यलीलाका वर्णन हुआ है.

इसके बाद तीन जो प्रक्षिप्ताध्याय हैं उनमें क्रमशः अघासुरवध, ब्रह्माजीद्वारा अपहृत गोपबालकवत्सोंके रूपमें भगवानद्वारा वर्षपर्यन्त विहार, ब्रह्मस्तुति और पुनः गोपबाल तथा वत्सों के आनयनकी घटनाओंद्वारा फिरसे भगवानकी कौमार्यलीलाका वर्णन हुआ है. स्पष्ट है कि कुमारलीलाके वर्णनोपरांत पुनः मानो कुछ भूली हुई लीला याद आ गई हो ऐसा निरूपण स्वयं इन तीन अध्यायोंके प्रक्षिप्त होनेका प्रमाण है.

इस तरह तामसप्रमाणप्रकरणान्तर्गत सात अध्यायोंके वर्ण्य-विषयका स्वरूप हमने समझनेका प्रयास किया.

इस खण्डके प्रकाशनके साथ हम एक नये रूपमें ग्रंथप्रकाशनके हमारे मनोरथकी पूर्तिसे पुलकित हो रहे हैं! क्योंकि जन्मप्रकरणके

सुबोधिनी टिप्पणी प्रकाश लेख योजना तथा कारिकार्थविवरण *श्रीमगनलालशास्त्रीने* एकसाथ ही प्रकाशित किये थे, जबकि अग्रिमांशमें ये सभी ग्रंथ *श्रीमगनलालशास्त्री श्रीतेलीवाला और उनके सहयोगिओंने* पृथक्-पृथक् प्रकाशित किये थे. इन्हीं विभिन्न संस्करणोंसे लेकर अब एककायतया ये पुनः प्रकाशित हो रहे हैं. इस प्रक्रियामें यदि कोई मुद्रणाशुद्धि हो गई हो तो वह हमारी क्षति है, अन्यथा पूर्वप्रकाशित तत्तद् संस्करणोंको ही जन्मप्रकरणकी शैलीमें एककाय किया गया है. सन्दिग्ध पाठके स्थानपर हमारे द्वारा प्रस्तावित पाठ (!) रूपमें हमने दिया है.

पूर्वसंस्करणोंमें भागवतके श्लोक तथा सुबोधिनीमें पाठोंमें एकरूपता नहीं थी वहां हमने सुबोधिनीके अनुसार श्लोकको यथाशक्ति सुधारनेका प्रयास किया है. एतदर्थ अन्य संप्रदायके टीकाकारोंको अभिमत पाठ क्या है उसका भी अवगाहन किया था. फिर भी दोएक छूट गये हैं जो अधोनिर्दिष्ट हैं. कृपया इन्हें सुधार लें. अन्यत्र भी ऐसा हो तो हमें उससे अवगत करें.

पृष्ठ	**श्लोक**	**अनभिमत पाठ**	**अभिमत पाठ**
१०४	६।४३	मूर्ध्न्यवघ्राय	मूर्ध्न्युपघ्राय
१०५	६।४४	शृणुयात् श्रद्धयाऽमर्त्यो	निशम्य श्रद्धया(युक्तो/)ऽमर्त्यो

अन्तमें हम उन सभी सम्पादकों और प्रकाशकों का हार्दिक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं जिन्होंने पृथक् पृथक् सुबोधिनी टिप्पणी प्रकाश लेख योजना और कारिकार्थविवरण प्रकाशित करवाये थे.

अभी तक जो भी ग्रंथ हमारे द्वारा प्रकाशित हुए (करीब १२ पुष्प) वे सभी ऑफसॅट प्रोसेस द्वारा पूर्वप्रकाशित संस्करणोंका केवल पुनःप्रकाशन था. इस खंडके मुद्रणकार्यमें *“फॉन्टॅसी टाईपसॅटर्स प्रा.लि. (पूना)” के संचालक श्रीप्रशान्त धवलीकरके* धैर्य और सहयोग के भी हम चिरकृतज्ञ हैं. इस नवारंभमें हुए अप्रतीकार्य विलंबके क्षोभसे कहीं अधिक अब हमारा हर्षोत्साह तथा सन्तोष, निश्चित ही, श्रीमहाप्रभुके हमपर कृपाशील होनेसे हमें आश्वस्त कर रहा है.

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विठ्ठलेश्वरः प्रभुः श्रीमान्।
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति॥

श्रीवल्लभाब्द ५१४ — *गोस्वामी श्याममनोहर*
पोष शुक्ला एकादशी — *असित ज. शाह*

॥श्रीकृष्णाय नमः॥
॥श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः॥
॥श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धसुबोधिन्यां द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरणे प्रथमः स्कन्धादितः पञ्चमोध्यायः

एवं चतुर्भिरध्यायैर्जन्म विष्णोर्निरूपितम् ।
हेतूद्यमोत्तराङ्गैश्च राजसादिगुणैर्युतम् ॥(१)॥

श्रीमती टिप्पणी
श्रीमद्गोस्वामिश्रीमद्विठ्ठलेश्वरदीक्षितप्रणीता
(श्रीमत्प्रभुचरणनिजश्रीहस्ताक्षरलिखनेन संवादिता)

श्रीकृष्णाय नमः
तामसप्रकरणे प्रमाणप्रकरणम्

॥ श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः । श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥
॥ अथ श्रीद्वितीयतामसप्रकरणावान्तरप्रमाणप्रकरणसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशः ॥

॥ तत्रादौ स्कन्धादितः पञ्चमोध्यायः ॥

अथ पञ्चमाध्यायं विवरिषवः पूर्वप्रकरणस्य समाप्तत्वादुत्तरस्य

श्रीवल्लभानां लेखः

पञ्चमेध्याये पूर्वप्रकरणार्थमुक्तविवक्षितयोः सङ्गतिबोधनायानुवदन्ति **एवमिति**.

श्रीलालूभट्टानां योजना

घोषाधीशपुराणपुण्यनिचयप्रोद्भूतकल्पद्रुम
त्वं मञ्जीवन जागृहीतिवचनं श्रुत्वा जनन्या मुहुः ।
त्यक्तस्वप्नदशस्य गोपरमणीदृग्वृष्टितुष्टात्मनो
निद्रालस्ययुतस्य गोकुलपतेः पातां प्रशस्ताक्षिणी ॥१॥

श्रीनिर्भयरामभट्टानां कारिकार्थः

पञ्चमेध्याये **एवं चतुर्भिरिति**. एतत्कारिकोत्तरार्धं प्रकारभेदैर्विवृण्वन्ति

प्रकाशः

प्रारप्स्यमाणत्वात्[१] पूर्वप्रकरणसङ्गतिं वक्तुं प्रथमप्रकरणार्थमनुवद**न्त्येवमि**त्यादि. **एवमि**त्यग्रिमनिरूपणकारणत्वेन, तथा च हेतुत्वमत्र सङ्गतिरित्यर्थः. ननु जन्मनिरूपणं हि तृतीयाध्याये एव तथा चान्यत्रापि जन्म निरूपितमितिकथनमयुक्तं[२] तत्राहु**र्हेतूद्यमे**त्यादि; **युतमि**त्यनेनान्वेति. **उत्तराङ्गं** कापट्यम्. तथा च **हेतूद्यमौ** जन्मनः पूर्वाङ्गं कापट्यं तूत्तराङ्गमितिप्रधानाङ्गाभ्यां जन्मैव तत्र निरूपितमिति न

लेखः

हेतुः प्रथमाध्याये, **उद्यमो** द्वितीये, **उत्तराङ्गं** रूपान्तरस्वीकरणं तृतीये, तत्र रूपान्तरज्ञानार्थं पूर्वरूपमपि **निरूपितमि**ति **च**कारः. इदं त्रयं साक्षाद्भगवता कृतमिति समासः; मायाद्वारा कृतं चतुर्थाध्याये निरूपितं तदाहुः **राजसादी**ति. **राजसो** गुणः **आदि**र्मुख्यो येषां सत्त्वरजस्तमसां तै**र्गुणैर्युतं जन्मे**त्यन्वयः. व्यामोहस्य रजःकार्यत्वाद् रजःप्रधानगुणतया कथनेन तत्कार्यं व्यामोहोध्यायार्थ उक्तः. **चतुर्भिरध्यायार्थैः** सह **विष्णो**र्व्यापकस्य **जन्म** एकदेशे प्राकट्यं प्रकरणार्थो **निरूपित**

योजना

तामसप्रकरणारम्भे कारिकासु **हेतूद्यमोत्तराङ्गै**रिति. **हेतुरुद्यम उत्तराङ्गे च हेतूद्यमोत्तराङ्गानि** तैः; उत्तराङ्गशब्देन रूपान्तरस्वीकरणकापट्ये ज्ञेये. तथा च हेतूद्यमस्वीकरणकापट्यैः सहितं **विष्णोर्जन्म निरूपितमि**ति पूर्वेणान्वयः. **राजसादिगुणैर्युतमि**ति **राजसादिगुणैर्युतं हरेः कृत्यं सप्तसप्ततिभिर्निरूप्यते** इति परेणान्वयः. एवं प्रकारत्रयस्य सप्तसप्तत्यध्यायाः. तत्र तामसराजससात्त्विकानां

कारिकार्थः

व्याख्यातारः. भक्तदुःखात्मको भगवज्जन्म**हेतुः** प्रथमाध्यायार्थः, मायाज्ञापनादिरूपो भगव**दुद्यमो** द्वितीयाध्यायः; एतद्वयं तृतीयाध्यायोक्तस्य जन्मनः पूर्वाङ्गं, चतुर्थाध्यायोक्तं मायाकार्यं कापट्यं जन्मनः **उत्तराङ्गम्**— एवं **हेतूद्यमोत्तराङ्गैः** सहितं **विष्णोर्जन्म** पूर्वप्रकरणे **निरूपितमि**त्यर्थः. **राजसादिगुणैर्युतमि**त्यस्य **सप्तसप्ततिभिः कृत्यं हरेरत्र निरूप्यते** इत्युत्तरेणान्वयः. यद्यप्यत्र तामसप्रकरणस्य प्राथम्यात् 'तामसादिगुणैरि'तिवक्तव्यं, तथापि रजःसत्त्वतमसाम् उत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणत्वात्

१. चारभ्यमाणत्वात्. २. °क्तम°.

सप्तसप्ततिभिः कृत्यं हरेरत्र निरूप्यते ।
भगवान् स्वेन धर्मैश्च सप्तधैकादशेन्द्रियैः ॥(२)॥

प्रकाशः

दोषः. यद्वा "प्रद्युम्नश्चानिरुद्ध" इत्यादिपूर्वोक्तदिशा प्रत्यध्यायं जन्म निरूपितमेवेत्याहू **राजसादी**ति. **राजस**पदेन राजसभक्ता, **आदि**ना तामसा सात्त्विकाश्च. **गुणा** ऐश्वर्यादयः. तथा चाग्रे राजसादिभिर्गुणैर्युक्तं यद्यत् स्वरूपं निरूप्यं[१] तत्तदेकैकस्मिन् भिन्नंभिन्नं जनितं निरूपितमिति चतुर्ष्वपि जन्मकथनमुपपद्यत इत्यर्थः. न चैवं[२] सति[३] पुरुषोत्तम**जन्म** कुत्रापि नोक्तमित्यायातीति वाच्यं, "जायमानेजनेतस्मिन्नि"ति "सिश्चन्त्योजनमुज्जगुरि"तिवाक्याच्च[४] तज्जन्माभावस्येष्टत्वात्. न च जन्मानुपपत्ति "रजायमानो बहुधा विजायत" इतिश्रुत्या व्यूहजन्मनैव पुरुषोत्तमजन्मनोङ्गीकारादिति न काचिदनुपपत्तिरत एव कारिकायां **विष्णोरि**त्युक्तम्. एतेन प्रकरणचतुष्टयेप्युपजीव्यत्वात् तन्निरूपणं पूर्वमुचितमिति भावः. यद्यप्युपजीव्यं पूर्वं[५] निरूप्यमेवेति न नियमस्तथापि राज्ञावतीर्णस्य वीर्याणि पृष्टानि तानि च[६] नावतारनिरूपणात् प्राङ्[७] निरूपयितुं [८]शक्यत इति अत्र तु नियम एवेत्यर्थः (१).

लेखः

इत्यर्थः (१). लीलायाः प्राकट्यहेतुकत्वाद्धेतुतासङ्गत्या लीला निरूप्यते इत्याशयेनाहुः **सप्ते**ति (२). **लौकिकेष्वि**ति **लौकिकधर्मेष्व**ष्टाविंशतितत्त्वेषु मध्ये **यत्रैव** तत्त्वे

योजना

निरोधोपयोगि भगवत्कृत्यं बाललीलादिरूपं निरूप्यते. तेषां निरोध्यभक्तानां राजसादिगुणयुक्तत्वात् तन्निरोधोपयोगि कृष्णचरित्रमपि राजसादिगुणयुक्तमित्यर्थः. यद्यपीह तामसराजससात्त्विकानां क्रमेण निरोधात् 'तामसादिगुणैर्युतमि'ति वक्तव्यं तथापि कारिकायां क्रमविवक्षामकृत्वा गुणेषु रजोगुणस्य प्राथम्याद् **राजसादिगुणैर्युतमि**त्युक्तम्. **भगवान् स्वेन धर्मैश्चे**ति स्वेन स्वरूपेण धर्मैरैश्वर्यादिभिरेवं सप्तधेत्यर्थः.

कारिकार्थः

तत्क्रमाभिप्रायेण "राजसादिगुणैरि"त्येवोक्तम्. **भगवानि**त्यादि एतेन तामसादिप्रकरणत्रयाध्यायसङ्ख्यातात्पर्यमुक्तम्. **भगवानेकादशेन्द्रियैः** प्रत्येकं **स्वेन** धर्मिणा

१, ३, ४, ६. लुप्तम्. २. नन्वेवं. ५. पूर्वनि°. ७. पूर्वं. ८. नश°.

प्रकाशः

एवं प्रकरणसङ्गत्यर्थं पूर्वप्रकरणार्थं निरूप्य प्रस्तूयमानस्य प्रकरणस्यार्थमाहुः **सप्ते**त्यादि. **अत्रे**ति सप्तसप्तत्यात्मके महाप्रकरणे. **सप्तसप्ततिभि**र्निरूपणे किं बीजमत आहु**र्भगवानि**त्यादि. गुणप्रकरणे तु धर्मैरेव लीलां कृतवानिति तत्र षडेवाध्यायाः इतिभावः (२).

ननु भवत्वेवं सप्तसप्ततिभिस्तथापि भगवान् निर्गुणः किमर्थं राजसादिभावेन लीलां कृतवानित्याकाङ्क्षायां सप्तसप्तत्यवान्तरप्रकरणानि विभक्तुमुपोद्घातेनाहु-

योजना

एकादशेन्द्रियैरिति निरोध्यभक्तानामेकादशेन्द्रियैः सहेत्यर्थः. भगवान् भक्तानां चक्षुराद्येकादशेन्द्रियैः सह यां यां लीलां करोति सा सा लीला तामसादिप्रकरणत्रये निरूप्यते. तत्राप्यैश्वर्यादिगुणैः स्वस्वरूपेण च करोतीत्येकादशेन्द्रियैः सह क्रियमाणा एकादशविधलीला प्रत्येकं सप्तधेति सप्तसप्तत्यध्यायास्तामसादिप्रकरणत्रयस्य– इदं प्रकरणत्रयाध्यायानां सङ्ख्यातात्पर्यम्. इहेदं तत्त्वं– भगवान् निरोध्यभक्तचक्षुर्विषयीभूय स्वानन्दं प्रयच्छन् क्रीडति सा चक्षुषा लीला, वेणुनादादिद्वारा व्रजसुन्दरीविरचित-गुणगानदशायां वा श्रोत्रविषयीभूय स्वानन्दं ददत् परमानन्दयुक्तो विहरति सा श्रोत्रेण लीला, एवं समयविशेषे भावविशेषेण त्वगिन्द्रियविषयो भूत्वा विलसति सा त्वगिन्द्रियेण लीला, एवं सर्वत्रेति भक्तानामेकादशेन्द्रियैर्लीला ज्ञेया. "अक्षण्वतां फलमिदमि"ति व्रजसुन्दरीवाक्या"दक्षण्वतामिन्द्रियवतामि"तिविवरणाद् "भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य चे"तिवेणुगीताध्यायसुबोधिन्यां ताः लीलाः स्फुटमभिहिताः. किञ्च भक्तानां चक्षुर्विषयीभूतैश्वर्यधर्मप्राधान्येन लीलां करोति सा चक्षुर्लीला ऐश्वर्येण, यत्र भक्तचक्षुर्विषयीभूय वीर्यप्राधान्येन कृतां लीलां प्रदर्शयति सा चक्षुर्लीला वीर्येण, यशःप्रधानलीलां कुर्वत् स्वरूपं प्रदर्शयति सा चक्षुर्लीला यशसा, श्रीप्रधानलीलां कुर्वाणमात्मानं यत्र प्रदर्शयति सा चक्षुर्लीला श्रिया, ज्ञानप्रधानलीलायुक्तं स्वरूपं यत्र प्रदर्शयति सा चक्षुर्लीला ज्ञानेन, वैराग्यप्रधानलीलायुतं स्वरूपं चक्षुर्विषयीकरोति सा चक्षुर्लीला वैराग्येण, यत्र सर्वगुणसमानभावयुक्तेन धर्मिणा स्वेन कृतां लीलां भक्तदृग्गोचरी करोति सा चक्षुर्लीला धर्मिणा–एवमेका चक्षुर्लीला सप्तविधा. एवं भक्तश्रोत्रादिभिरिन्द्रियैरपि प्रत्येकं लीला सप्तविधेति एकादशेन्द्रियैः सह सप्तसप्ततिप्रकारा लीला, तत्सूचनाय तामसादिप्रकरणस्य सप्तसप्तत्यध्याया इतिभावः (१-२).

कृत्यं चकार यस्माद्धि ततस्तावद्भिरुच्यते ।
त्रिविधानि च कर्माणि त्रिविधानां हिताय हि ॥(३)॥
तत्त्वातिक्रमणे रोधस्तामसे राजसे भवेत् ।
कालातिक्रमणे शिष्टे कालस्तत्रैकविंशतिः ॥(४)॥
"द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका
असावादित्य एकविंश" इतिश्रुतेः ।
लौकिकेषु तु धर्मेषु यत्रैव हरिवेशनम् ।

प्रकाशः

त्रिविधानीत्यादि. ननु यद्येवं तर्हि प्रत्यवान्तरप्रकरणं पञ्चविंशतिपञ्चविंशत्य-ध्याययोगे पञ्चसप्ततिर्भविष्यति[१] न तु सप्तसप्ततिरित्याकाङ्क्षायामवान्तरप्रकरणेषु न समानः कर्मविभाग इति बोधयन्तः सप्रयोजनं तद्विभागप्रकारं पादत्रयेणाहु**स्तत्त्वे**त्यादि. **शिष्ट** इति सात्त्विके. तर्हि कालातिक्रमणे किमित्येकविंशतिरित्याकाङ्क्षायां कालस्य तत्सङ्ख्याकत्वं सप्रमाणमाहुः **काल** इत्यादि. **तत्रे**ति तस्मिन् प्रकरणे. तथा च भगवन्मते तत्त्वानामष्टाविंशतिसङ्ख्याकत्वं श्रुतौ च कालस्यैकविंशतिसङ्ख्याकत्वात् तत्तदतिक्रमे तेषां तेषां निरोधः सिध्यतीति तत्तत्प्रकरणे तावन्तस्तावन्तोध्यायास्तत्तदति-क्रमजनककर्मबोधका इत्यतः सप्तसप्ततिरित्यर्थः. ननु तत्त्वकालसङ्ख्याकाभिर्लीलाभिः कथं तत्तदतिक्रम[२] इत्याकाङ्क्षायां तत्प्रकारमाहु **लौकिकेष्वि**त्यादि. तथा च यथा काष्ठस्थितो वह्निर्न तद् दहति तत उद्गतस्तु पुनस्तत्र प्रविशंस्तद् दहत्येवं लौकिकेषु तत्त्वकालादिषु यत उद्गत्य **यत्रैव हरिप्र**[३]**वेशनं तदेव** स्वपूर्वरूपात् **निवर्तते** भगवद्रूपं भवति[४] भगवत्कार्यमेव करोतीत्ययं प्रकार इत्यर्थः (३-५).

ननु भगवतो जीवस्वभावान्यथाकरणसामर्थ्ये सत्यपि भगवान् निर्गुणो भक्तानुरोधेन[५] त्रिविधानि कर्माणि कुतः कृतवानित्याकाङ्क्षायामाहुः **स्वभावस्ये**त्यादि. तदेतद्[६] टिप्पण्यां विवृण्वन्ति **स्वभावस्ये**त्यादि (६).

कारिकार्थः

षड्भि**र्धर्मैश्च कृत्यं** लीलां **चकार ततः** कारणात् **तावद्भिः** सप्तसप्ततिभिरध्यायै**रुच्यत** इत्यर्थः. तामसादित्रिविधलीलाकरणे प्रयोजनमाहुः **त्रिविधानी**त्यादि तामसादिप्रकरण-त्रयस्य प्रत्येकमध्यायसङ्ख्यातात्पर्यमाहुः **तत्त्वे**ति. अष्टाविंशति**तत्त्वा**नां वक्ष्यमाण-

१. ष्यन्ति. २. लुप्तम्. ३. 'रिवे'. ४. 'द्. ५. 'धतः. ६. तदेव.

निवर्तते तदेवात्र वह्नेर्दारुमयं यथा ॥(५)॥
स्वभावस्यान्यथाभावो न वै शक्यः कथञ्चन ।

टिप्पणी

पञ्चमाध्याये प्रकरणार्थसन्दर्भे **स्वभावस्ये**ति. भक्तस्वभावानुसरणे भगवतः परमदयालुत्वं भक्तिमार्गोत्कर्षश्च सिध्यति; तदन्यथाकरणे क्लिष्टकर्मत्वं स्यादनेकविधत्वं

लेखः

–**हरेर्वेशनं** सङ्गतिर्भवति **तदेव** तत्त्वं स्वरूपतो **निवर्तते.** एवं सर्वतत्त्वनिवृत्ताव-लौकिकदेहसिद्ध्या प्रपञ्चविस्मृतिपूर्विकासक्तिः सिद्धा भवतीत्यर्थः. सात्त्विकप्रकरणे लौकिकधर्मपदेन कालावयवा ज्ञेयाः. दृष्टान्तो **वह्नेरि**ति. दारुमयेषु मध्ये **यत्रैव** दारुपात्रे वह्निः स्थापितो भवति **तदेव दारुमयं** पात्रं स्वरूपतो **निवर्तते** अग्निरूपमेव भवति, तथा **यत्रैव** तत्त्वे भगवत्सङ्गति**स्तदेव** तत्त्वं स्वरूपतो **निवर्तते** भगवद्रूपमेवभवति. तेनालौकिकदेहसिद्ध्या सर्वात्मना रोधः सिद्धो भवतीत्यर्थः (५).

कारिकार्थः

प्रकारे**णातिक्रमे** सति **तामस**भक्तनिरोध इति बोधयितुं तत्र तावन्तोध्यायाः; एवं **राजसे**पि. **कालस्य एकविंशति**विधत्वात् **शिष्टे** अवशिष्टे सात्त्विकप्रकरणे तावन्तोध्यायाः. कालस्य एकविंशतिसङ्ख्याकत्वे प्रमाणमाहुः **द्वादशमासाः पंचर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य** इति. हेमन्तशिशिरयोरैक्यविवक्षया पञ्च ऋतव इत्यन्यत्र विस्तरः. तत्त्वातिक्रमप्रकारमाहुः **लौकिकेषु धर्मेषु** देहेन्द्रियादिरूपेषु तत्त्वेषु मध्ये **यत्रैव हरिनिवेशनं तदेव** पूर्वस्वरूपा**न्निवर्तते** भगवद्रूपं भवति. तत्र दृष्टान्तः **वह्नेर्दारुमयं यथे**ति (१-५).

ननु भगवतो जीवस्वभावान्यथाकरणसामर्थ्ये सत्यपि भगवान्निर्गुणो भक्तानुरोधेन त्रिविधानि कर्माणि कुतः कृतवानित्याकाङ्क्षायामाहु **स्वभावस्ये**ति. स्वभावान्यथाभावो जीवानां स्वकृतसाधनासाध्य एव. भगवतोप्यक्लिष्ट कर्मत्वाद् भक्तस्वभावान्यथा-

अतस्त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः ॥(६)॥
लौकिकं तामसे मुख्यं कामान्ता च कृतिः स्फुटा ।

टिप्पणी

रसालता च लीलाया न स्यादिति भावः (६).

सात्त्विकं विहायादावेव तामसप्रकरणनिरूपणेस्य तामसत्वेनोक्तौ च हेतुमाहुः **लौकिकं तामस** इति. इदमत्र आकूतम्– पुरुषोत्तमस्वरूपमेव फलं, नेतरदिति हि भक्तिमार्गे मुख्यः सिद्धान्तः ; तत्सम्बन्धादेव अन्यत्र फलत्वोक्तिः. एवं [1]सत्यत्र स्वभावान्यथाकृत्यभावेन सात्त्विकानां ज्ञानादिविहितमार्गरुच्या राजसानां च विक्षेपतो लौकिकालौकिककर्मव्यासङ्गेन स्वरूपविस्मृतिसम्भवेन सम्यङ्निरोधासिद्धिः, तामसानां तु[2] मौढ्याद् यत्राग्रहः पतति तत्र स न गच्छति कथञ्चनेति लोके दृश्यते. व्रजवासिनां च भगवत्स्वरूपविषयकः स्नेहस्तादृशो जातो येन स्वरूपातिरिक्तस्य भगवदुक्तस्यापि धर्मस्यानङ्गीकारोभूत्तथैवाग्रेतनज्ञानस्यापि. तेन सर्वात्मना निरोध एतेष्वेव फलित इत्येतद्धर्मसाम्येन पुष्टिमार्गस्य मर्यादातो विपरीता गतिरिति ज्ञापनाय च तामसत्वं प्रकरणस्योच्यते, वस्तुतस्तु निर्गुणमेव. "तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्ये"त्यारभ्य "न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिहे"ति भगवद्वाक्या"त्स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिन" इति वाक्यात्तत्साध्यमोक्षस्यापि नरकतुल्यत्वेन गणना, अतोपि भक्तिमार्गाद् ज्ञान-

लेखः

लौकिकमित्यत्र प्रकरणस्य तामसत्वे हेतुराद्यचरणेनोक्तः, **आदौ** तत्कथने हेतुराद्येन द्वितीयतृतीयाभ्यां चोक्त इति टिप्पण्यनुसारेण ज्ञेयम् (७).

कारिकार्थः

करणमयोग्यमतो यादृशलीलया यादृशभक्तनिरोधो भवति तत्र तादृशीं लीलां करोतीत्यर्थः. तदुक्तं टिप्पण्यां "भक्तस्वभावानुसरणे भगवतः परमदयालुत्वं भक्तिमार्गोत्कर्षश्च सिध्यती"ति (६).

सात्त्विकं विहायादावेव तामसप्रकरणनिरूपणेस्य तामसत्वेनोक्तौ हेतुमाहु- **लौकिकं तामस** इत्यादि. लोके बहिः प्रकटं यद् रूपं तदेव तामसभक्तानां मुख्यं, नान्तरात्मादिरूपमित्यर्थः. तथा च तामसानां कर्माद्यासक्त्यभावेन बहिः प्रकटे रूप

---

१. सति न मू. पा. २. तु लोके मौढ्यात् मू. पा.

कामोद्भूते तथाप्रीतिस्तेनादौ तन् निरूप्यते ॥(७)॥
बाललीला मध्यलीला प्रौढलीला तथैव च ।
कामलीलेति लोके वै चतस्रःसुखदाःस्मृताः ॥(८)॥
एकं भगवतः कार्यं बह्वर्थानां च साधकम् ।

टिप्पणी

मार्गस्य हीनत्वमिति भगवदेकनिष्ठविशुद्धभाववतां सर्वाधिकत्वं शास्त्रसिद्धमिति दिक्. एतदेव लौकिकत्वं[1] तामसे **मुख्यमि**तिपदेनोच्यते. व्यापकत्वेनात्मत्वेनान्तर्हृदि हरिरस्त्येवेति श्रवणेपि बहिर्लोके प्रकटं यद्रूपं तदेवोक्तरीत्या मुख्यमत्र, नान्तरात्मादिरूपमित्यर्थः. मर्यादामार्गतो वैलक्षण्यात् स्त्रियोऽत्र मुख्या इति ज्ञापयितुं तत्रापि मर्यादायां यो मुक्तिप्रतिबन्धकत्वेन सम्मतः कामः स एवात्र भगवत्प्रापक इति च ज्ञापयितुं **काम एवान्तः**फलं यस्यास्तादृशी सेत्यर्थः. अत्रासम्भावितत्वभानं न कार्यं यत एतादृश्येव **कृतिरग्रे स्फुटा** निरूपयिष्यत इत्यर्थः. किञ्च, मर्यादायां विहितभक्त्या भगवदाविर्भावः, अत्र तु कामवशादेव दैन्ये सति प्रकटे प्रभौ स्नेहः, सोपि **तथा** तच्छास्त्रानुसारी, न तु विध्यनुसारीत्यर्थः; "एका भ्रुकुटिमाबध्ये" त्यादिकथनात्. तथा चात्र निःसाधनेभ्यो ब्रह्मादीनामपि साधनैरप्यप्राप्यं भजनानन्दं तदधीनत्वमङ्गीकृत्य दत्तवानिति सर्वोत्कर्षवत्त्वेन तत्तथेत्यर्थः. यद्वा, अग्रे गजदृष्टान्तदानैर्भगवान् स्वयं कामवशाद्भक्तानां समीपमागच्छतीति ज्ञाप्यते. तथा चोक्तरीत्या **कामेनोद्भूते** प्रिये स्नेह इत्यर्थः. न ह्येवमन्यत्र सम्भवतीति युक्तमादौ तत्कथनमिति भावः (७).

[2]लौकिकसारूप्येण चतुर्विधलीलाकरणे लौकिकत्वेन भगवति ज्ञानवतां

कारिकार्थः

एवाग्रहदार्ढ्यात् तामसत्वमुच्यते वस्तुतस्तु निर्गुणत्वमेव. **कामान्ता च कृतिः स्फुटे**ति काम एव अन्तः फलं यस्याः सा कामान्ता तादृशी कृतिरित्यर्थः. किञ्च **कामोद्भूते** कामेनाविर्भूते प्रभौ **प्रीतिः** स्नेहः, सोपि **तथा** कामशास्त्रानुसारी न तु विध्यनुसारीत्यर्थः. **तेन** हेतुना **तत्** तामसप्रकरण**मादौ निरूप्यते**. प्रमाणादिप्रकरणचतुष्टयप्रतिपाद्या लीला आहु**र्बाललीले**ति. तेन बलदेवादिचरित्रमपि तदाविष्टपुरुषोत्तमचरित्रमेव ज्ञेयम् (७-८).

---

१. लौकिकं मू. पा. २. अलौकिकत्वेनेति मूल पाठः.

प्रपञ्चविस्मृतिः सर्वा तदासक्तिश्च वर्ण्यते ॥(९)॥
येनैव त्रिविधा भक्ता न स्मरन्ति जगत् क्वचित् ।
कृष्णे च सन्नतात्मानस्तत् कार्यं भगवत्कृतम् ॥(१०)॥
बाललीला सप्तविधा प्रथमं सा निरूप्यते ।

टिप्पणी

निरोधासिद्धिरित्याशंक्याहुः **एकमि**ति. यथैकेन पूतनासुपयःपानेन लोके वीर्यप्राकट्यं, तस्याश्च मुक्तिः, प्रमेयबलप्राकट्यं लोके वेदे च , पूर्वभक्षितानां बालानां कृतार्थता, अन्येषां च रक्षा, "तोकेनामीलिताक्षेणे"तिवाक्यदग्रे व्रजवासिनां माहात्म्यज्ञानपूर्वकः स्नेहस्तात्कालिकश्च विस्मयोन्येषां श्रवणदिफलं चेत्याद्यनेककार्याणि जातानि; तथा सर्वापि लीलेत्यर्थः. एवं सति प्रतिपाद्याननुगममाशंक्य तदनुगमकं रूपमाहुः **प्रपञ्चे**ति. आसक्तिरत्र मुख्या, तद्विस्मृतिरङ्गम्, तया विना सर्वथासक्त्य-सम्भावात्तथा च निरोधत्वमेव तथेत्यर्थः (८-९).

नन्वत्र बलदेवादिकार्यमप्युच्यते इति न सर्वा भगवल्लीलेत्याशंक्याहुः **येनैवे**ति. आविष्टचरित्रमिति भावः, अन्यथा निरोधः तेनापि न स्यात् . अत एव "बलपार्थभीमव्याजाह्वयेन हरिणे"ति ब्रह्मणोक्तम्. एवं सति 'प्रपञ्चविस्मृतिरि'त्य-नेनैवास्य श्लोकस्य गतार्थतेति शङ्का निरस्ता ज्ञेया, पूर्वं प्रतिपाद्यत्वेनात्र तु परिचायकत्वेन तदुक्तेः (१०).

प्रकाशः

सुबोधिन्यां तामसप्रकरणे प्रमाणप्रमेयसाधनफलभेदेन प्रकरणचतुष्टयमस्तीति ज्ञापयितुं तत्प्रकरणप्रतिपाद्यानर्थानाहु**र्बाललीले**त्यादि. अत्रैव किञ्चिदाशङ्क्य परिहरन्तीत्याशयेन टिप्पण्यामाहु[1]**र्लौकिके**त्यादि **तदुक्तेरि**त्यन्तम्[1] (८).

सुबोधिन्यां बाललीलायाः सप्तभिर्निरूपणे प्रयोजनमाहु**र्बाललीला सप्ते**त्यादि.

कारिकार्थः

कृष्णे च सन्नतात्मान इति आसक्तात्मान इत्यर्थः. तथा च प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदासक्तिरूपनिरोधजनकं भगवतश्चरित्रमित्यर्थः (१०).

बाललीलायाः सप्तभिरध्यायैर्निरूपणे प्रयोजनमाहु**र्बाललीला सप्तविधे**ति (११).

१-१. लुप्तम्.

बालभावरता ये हि तेषां रोधस्ततो भवेत् ॥(११)॥
उत्सवाविष्टचित्ता ये येप्याश्चर्याभिवेशिनः ।
अलौकिकरता ये च ये चोपद्रवणोत्सुकाः ॥(१२)॥
स्त्रीस्वभावरता ये वै ये च तत्त्वे च लौकिके ।
सर्वोद्योगपरा ये च तेषां रोधो निरूप्यते ॥(१३)॥

टिप्पणी

उत्सवाविष्टेत्यादिना क्रमेणैतत्प्रकरणस्थाध्यायप्रतिपाद्यनिरोधाधिकारिणः उक्ताः. समुच्चय एवास्य, न त्वेतन्मात्रत्वं, भगवदासक्तानां तत्सम्बन्धमात्रेण सर्वासां लीलानां हृद्यत्वाद्. आद्ये स्पष्टम्. तृतीये "नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुला"इति वाक्याद्, "अहो बतात्यद्भुतमि"ति "मानयामास विस्मित" इति च "आसीत् सुविस्मिते"ति च वाक्यैराश्चर्याभिनिवेशिनो निरुद्धाः. तुरीयेध्याये शास्त्रे पुरुषोत्तमनामत्वेन प्रसिद्धानि 'कृष्ण-वासुदेवा'दिनामन्यत्र कृतानीत्यलौकिकं, गर्गेण स्पष्टतयोक्तेति, नन्दाबोधोपि तथा. **अलौकिक**त्वेन ज्ञात्वा तेषु नामसु ये **रता**स्तेऽतः परमस्यैवैतानि नामानीति ज्ञात्वास्मिन्निरुद्धा भविष्यन्तीति च. रिङ्गणलीलाप्यलौकिकरीत्या दैत्यनाशनपूर्वकभक्तेष्टदेति तथा. लोके हीनत्वापादकं चौर्यं भगवत्युकर्षाधायकं निरोधसाधकत्वादेवमपि भक्तमनीषितकरणाच्चालौकिकत्वम्. मृत्स्नाभक्षणं तत आस्ये विश्वदर्शनं शरणागतिर्महदनुग्रहश्चेति सर्वमलौकिकमिति तादृशानामेतच्छ्रवणेन निरोधः सेत्स्यतीति तथा. पञ्चमे दधिभाण्डभेदनादिकं लोकदृष्ट्योपद्रावकमिति तथा, अग्रिमा लीला स्वभक्तोपद्राविका चेति. षष्ठे नलकूबरमणिग्रीवौ **स्त्रीस्वभावरतावि**ति तत्कथा तथा. स्त्रियश्च स्वभावश्च राजसतामसादिस्तयो रता इत्यर्थः. नात्र क्रमो विवक्षित इत्यतः परं द्वितीयाध्यायतात्पर्यमुच्यते. तत्रादौ हरिशरणगमनेनैव भयनिवृत्तिरिति तत्त्वम् अनधिकारिमुक्त्युक्त्या प्रमेयबलतत्त्वं चोच्यते. रक्षाकरणेन स्वामिनीनां च तत्त्वमलौकिकत्वतादृक्स्नेहवत्त्वादिलक्षणम्. हरौ रक्षाकरणं लोकरीत्येति **लौकिके तत्त्वे** रतास्तथा. सप्तमे वृन्दावनावासपर्यन्तं महानेवोद्यमो निरूपितो "गोपीभिः स्तोभित" इत्यादिना; अग्रे च लीलोद्यम उक्त इति तथा. अथवा यथाक्रममेव निरूपणं ज्ञेयम्. तथाहि – पूतनाया आगमनप्रकारागमन-

कारिकार्थः

प्रमाणप्रकरणस्थाध्यायसप्तकप्रतिपाद्यनिरोधाधिकारिण आहु**रुत्सवाविष्टे**त्यादिना.

टिप्पणी

भगवत्कर्मक-[१]ग्रहणपूतनाकर्मकमारणप्रकारतद्दोषानाक्रमणतन्मुक्तितत्सहजरूपतद्दाहगन्धादयः सर्वे आश्चर्यरूपा इति तादृशानां निरोधः. तृतीये स्वोत्सवार्थमपि लौकिकप्रवाहधर्मासक्त्या स्वविस्मृतौ प्रकारान्तरेणास्मरणे शकटं भङ्क्त्वा मातुर्निरोधकरणमलौकिकम्. तस्य वैपरीत्येन तथात्वमपि तथा. प्रवालमृद्वङ्घ्रिस्पर्शमात्रेण तथाकृतिरपि तथा. अकस्माद्गुरुत्वप्रकटनमारभ्य कुशलेनागमनपर्यन्तं सर्वमलौकिकम्. [२]जृम्भालीलायां तथात्वं स्पष्टम्. उक्तत्रिविधलीलायामाश्चर्यरूपत्वमप्यस्तीति तादृशानामप्यत्र निरोध इति समुच्चयार्थो**ऽपि**शब्दः. तथाप्यलौकिकत्वं मुख्यमिति पृथक्त्वम्. चतुर्थे चौर्यादिलीलया लोकप्रतीत्योपद्रावकत्वमिति तथा. नामरूपादेरलौकिकत्वेनोक्तनिरोधस्यापि समुच्चयार्थश्चः. पञ्चम आवश्यकत्वज्ञानेन दास्याद्यभावे स्वयमपि कर्मकरणं पुत्रे च शिक्षार्थं तथाकरणं स्त्रीस्वभावः. षष्ठे नारदोक्तिभिर्लोकतत्त्वम्; परमार्थतस्तत्त्वं स्तुत्येत्युभयत्र रतास्तथा. सप्तमे मन्त्रणपूर्वस्थानत्यागापूर्वतत्परिग्रहतत्रगमनाद्युद्य-

प्रकाशः

बालभावरतानां कथं सप्तविधत्वमित्याकाङ्क्षायामाहु**रुत्सवे**त्यादि. तदाशयं[३] टिप्पण्यां स्फुटीकुर्व**न्त्युत्सवाविष्टे**त्यादि. तत्तदध्यायावान्तरानुरोधेन पक्षान्तरमाहुः **समुच्चय** इत्यादि. [४]**अत्र क्रमो न विवक्षित** इति द्वितीयाध्यायार्थस्य वक्ष्यमाणत्वात् तमनुक्त्वा तृतीयाध्यायार्थमाहु[४]**स्तृतीय** इत्यादि. यद्यप्यत्राध्यायावान्तरार्थानुरोधेनात्रैव[५] समुच्चयकथनं युक्तं[६] तथाप्याचार्योक्तः क्रमस्तु बाध्येतैवेत्यरुच्या पक्षान्तरमाहु**रथवे**त्यादि **ज्ञेयमि**त्यन्तम् (९-१३).

कारिकार्थः

अत्रोत्सवाविष्टचित्तादयः सप्तविधा अधिकारिणः प्रमाणप्रकरणीयप्रथमाध्यायमारभ्य सप्तस्वध्यायेषु प्रायशः क्रमेण सर्वथावा क्रमेण प्रतिपाद्या इति व्याख्यातं बहुविस्तरेण टिप्पण्याम्. **स्त्रीस्वभावरता** इत्यस्य प्रथमव्याख्याने प्रमाणप्रकरणीयषष्ठाध्यायोक्तनलकूबरमणिग्रीवकथाभिप्रायेण **'स्त्रियश्च स्वभावश्च** राजसतामसादिस्तयोः **रता'** इत्यर्थः. द्वितीयव्याख्याने तु पञ्चमाध्यायोक्तकथानुसारेण **स्त्रीस्वभावो** यशोदास्वभाव इति स्फुटम्. (१३).

१. कोटापुस्तके कर्मकस्य कर्तृक इति कृतम्. २. जृम्भा मू. पा. ३. शयेन. ४-४. लुप्तम्. ५. वं. ६. मुक्तं.

जन्मोत्सवो हरेरत्र पञ्चमे विनिरूप्यते ।
आवश्यकं परित्यज्य कृतं तदिति चोच्यते ॥(१४)॥
अन्यथाज्ञानशङ्का च तेनैव विनिवार्यते ।

टिप्पणी

मोक्तेस्तादृशास्तथेति. अत्रोक्ताधिकारिणो यथासम्भवं लीलास्थास्तदन्ये च ज्ञेयाः. सप्तस्वप्यध्यायेषूक्तासु लीलासु सप्तविधा अपि यथासम्भवमधिकारिण इति ज्ञेयम् (१२-१३).

आवश्यकमिति तदनन्तरमेव शीघ्रं करदानार्थगमनोक्त्येति शेषः (१४).

यदि केनाप्यंशेन नन्दो वसुदेवागमनं जानाति तदाकाशवाणीवृत्तान्तज्ञत्वेन सञ्जातवृत्तान्तशङ्कया स्वपुत्रत्वे सन्दिहान एवोत्सवं[१] कृतवानिति कस्यचिच्छङ्का स्यात् सापि तदैव मथुरागमनेनापास्तेत्याहुः **अन्यथाज्ञाने**ति. उपपत्त्यन्तरमाहुः

प्रकाशः

एवं सामान्यतः प्रमाणप्रकरणीयाध्यायार्थ उक्तो विशेषतस्तु तत्तदध्याये वक्तव्य इति प्रथमाध्यायार्थमाहु**र्जन्मे**त्यादिसार्धाभ्याम्. **अत्रे**ति प्रमाणप्रकरणीय-प्रथमाध्याये. **पञ्चम** इति स्कन्धस्यादित[२] इत्यर्थः. **आवश्यकमि**त्यारभ्य **द्रव्यानयनमेव चे**त्येतस्यार्थं[३] टिप्पण्यामाहु**रावश्यकमिती**त्यादि. नन्वेतावता श्रीनन्दस्य मनसि तथाशङ्का नास्तीत्यागतं[४] परं वसुदेवः कथं जानीयात् श्रीनन्दो मत्सुतं[५] न

कारिकार्थः

तत्रैव प्रथमाध्यायार्थमाहु**र्जन्मोत्सव** इति, प्रमाणप्रकरणीयप्रथमेध्याय आदितः **पञ्चमे जन्मोत्सवो निरूप्यते.** ननु नन्दः स्वगृहे वसुदेवागमनं तत्र स्वपुत्रस्थापनं कन्यानयनं च जानाति न वा? यदि जानाति चेत् तर्हि नन्दः स्वपुत्रत्वे सन्दिहान एव उत्सवं कृतवानिति कस्यचिच्छङ्का स्यात् तत्परिहारायाहुः **आवश्यकमि**ति. **आवश्यकं** कार्यं कंसाय करदानात्मकं **परित्यज्य तद्** उत्सवलक्षणं कार्यं **कृतमिति सूच्यते** उत्सवानन्तरं शीघ्रं करदानार्थगमनोक्त्या सूच्यत इतिभावः (१४).

तेन मथुरागमनेनैव **अन्यथाज्ञानशङ्कापि निवार्यते.** यदि वसुदेवपुत्रत्वं जानीयात् तदा मथुरायां न गच्छेदित्यर्थः. उपपत्त्यन्तरमाहु**रुत्सवस्त्वि**ति.

---

१. एवोत्सवं मू. पा. २. °ने°. ३. न्तस्या°. ४. °ति चा°, ति वा°. ५. °त्कृ°.

उत्सवस्त्वन्यथा न स्याद् द्रव्यानयनमेव च ।
आसक्तिबोधनार्थाय तस्यान्ते भयवर्णनम् ॥(१५)॥

पूर्वं "यशोदाशयने सुतं निधाय तत्सुतामादाय गृहानगादि"त्युक्तं, "जातं परमबुध्यत" इति च. ततो मायायां निर्गतायां यशोदा प्रबुद्धा पुत्रं ज्ञातवती. ततः

टिप्पणी

उत्सवस्त्विति. यथाकथञ्चिद्गमनसम्भवेऽप्युत्सवस्तु स्वपुत्रत्वनिश्चयं विना न स्यादित्यर्थः. नन्दः "स्वपुत्रमादाये"त्य"त्रोदारधीरि"ति विशेषणसूचितं महार्हानेक-विधभगवदुपयोगि**द्रव्यानयनं चान्यथा न स्यादि**-त्याहुः **द्रव्ये**ति (१५).

प्रकाशः

जानातीति तत्राहु**रासक्ती**त्यादि. श्रीनन्दस्य स्वपुत्रत्वनिश्चयेन या परमासक्तिस्तस्या यद् **बोधनं** ज्ञानं तेन **योर्थो** निश्चिन्तता स्वकृत्यज्ञानरूपा वसुदेवस्य तन्निमित्तं **तस्यान्ते** संवादान्ते वा **भयवर्णनमि**त्यर्थः. अयमाशयः— यद्ययं श्रीकृष्णे स्वपुत्रत्वेनैव ज्ञानवान् भविष्यति तदायं[१] भयकथने झटिति गमिष्यत्यन्यथा तु नेति तदर्थं तथा. यद्य "प्येकावशिष्टे"तिवाक्ये श्रीनन्दैर्निःसन्दिग्धं निरूपितं तथापि स्थूणाखननन्यायेनेदमुक्तमिति ज्ञेयम् (१४-१५).

लेखः

अन्यथाज्ञानेति, नन्दोन्यथाज्ञानयुक्त एवोत्सवं कृतवानित्याकारिका श्रोतुः शङ्केत्यर्थः (१५).

नन्दस्त्वात्मज इत्यस्याभासे— ननु तृतीयाध्याये सर्वेषां सुषुप्तिर्यशोदायाः पुत्रलिंगाज्ञानं चोक्तं तथा च तद्व्यवस्थामनुक्त्वा जातकर्मादिकथनं कथमित्यत

कारिकार्थः

स्वपुत्रत्वनिश्चयं विनोत्सवो न स्यादित्यर्थः. **द्रव्यानयनं** भगवदर्थमुत्तमवस्तूनामानयनं **चान्यथा न स्यादि**त्यर्थः. यद्यपि मूले नन्दकर्तृकं द्रव्यानयनं नोक्तं तथापि "नन्दः स्वपुत्रमादाये"त्य'त्रोदारधीरि'ति विशेषणसूचितं तदितिज्ञेयम्. ननु अध्यायान्ते "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इत्यनेन नन्दस्य भयवर्णनं किमर्थमित्याकाङ्क्षाया-माहु**रासक्ती**ति. **तस्य** नन्द**स्यान्ते**ध्यायान्ते (१५).

---

१. लुप्तम्.

सर्वेषु यदासीत् तदाह **नन्दस्त्वात्मज** इति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥१॥

पितुः पुत्रः, अतो **नन्दो जातकर्म कारयामासे**तिसम्बन्धः. **तु**शब्दः पूर्वकथां व्यावर्तयति शङ्कां च व्यावर्तयति. तदाह **आत्मज उत्पन्न** इति. यस्य यथा

प्रकाशः

नन्दस्त्वात्मज इत्यत्र **पितुःपुत्रे**त्यादि. श्रीनन्दो हि पितुः. स्वपितुः पुन्नाम्नो नरकत्राणेन पुत्रो भवति तस्मात् त्राणं च पुत्रोत्पादनेनातः पुत्रोत्पादनात् तथेत्यर्थः. ननु शुकः सर्वज्ञो भगवन्तमजनं जानातीति कथम**त्रात्मज**पदं प्रयुक्तवानिति

लेखः

आहुः **तत** इति; मायाकृतं हि तत्. तथा च मायानिर्गमकथनेन प्रबोधो ज्ञानं चोक्तमेवेति भावः.

व्याख्याने– ननु ब्रह्मणि प्राकट्यस्यैवोत्पत्तित्वेन पुत्रत्वाभावादतएव नन्दे पितृत्वाभावाच्च कथं जातकर्मादिकारणमित्याशङ्क्य**आत्मजे उत्पन्ने** इतिपदद्वयेन सूचितमर्थमाहुः **पितुः पुत्र** इति. अत्र हि न नृसिंहहंसादिवत् प्रकटः किन्तु आत्मजत्वेनोत्पन्नः **पितुः पुत्रो** जातः; नन्दे पितृत्वं स्वस्मिन् पुत्रत्वं च स्वीकृत्य प्रकट इत्यर्थः. तथा च भगवतैव तथाङ्गीकृतत्वाद् **जातकर्म कारयामासे**त्यर्थः. ननु तथापि यथा वसुदेवेन जातकर्माद्यकृत्वा स्तुतिरेव कृता तथात्रापि स्तुतिरेव भवेत् न तु जातकर्मणि प्रवृत्तिः; किञ्च भगवति लौकिके इवोत्पन्नधर्मासम्भवादलौकिकोयं बालक[१] इति ज्ञाने वसुदेवागमनवृत्तान्तसम्भावनया स्वपुत्रत्वे शङ्का स्यादतोपि न जातकर्मणि प्रवृत्तिरित्याशङ्क्याहुः **तुशब्द** इति. **पूर्वकथां** वसुदेववत् स्तुतिकथां **शङ्कां** कीदृशोयं बालइति शङ्कां व्यावर्तयतीत्यर्थः. **तदाहे**ति **तत्** **तु**शब्दकृतमेव व्यावर्तनं हेतुपूर्वक**माहे**त्यर्थः. "एतद् वा दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे" इतिवाक्यात्

योजना

नन्दस्त्वात्मज इत्यस्य विवृतौ **पितुः पुत्र** इति. नेह मत्स्यकूर्मवराहनृसिंहवदाविर्भावः किन्तु नन्दपुत्रत्वेनाविर्भावः. तथा च श्रीनन्दस्य भगवत्पितृत्वाद्

---

१. बाल.

प्रतीतिस्तथैव शुकेनानूद्यते, भगवता तथैव तेषां बुद्धेः सम्पादनात्. अन्यथा तद् भगवच्चरित्रं न स्यात्. अत आत्मनः सकाशाज्जातः पुत्र एवायमिति नन्दस्य बुद्धिः,

---

प्रकाशः

शङ्कायामाहु**र्यस्ये**त्यादि. तथा चाजनत्वं भगवतो जानन्नपि तद्बुद्ध्यनुरोधेन तस्याश्च भगवच्चरित्रत्वेन शुकस्तथोक्तवानित्यर्थः. ननु भवत्वेवं तथाप्यजनत्वं

लेखः

पूर्ववृत्तान्तस्मरणार्थं वसुदेवगृहे तादृशरूपेण प्रकट इति तत्र स्तुतिः कृता, अत्र तु **आत्मजः** शिशुरूप एव प्रकटः अतः पूर्वकथाव्यावृत्तिः. **उत्पन्नः** लौकिकस्येव धर्मैर्नालादिभिः सहित एव प्रकटः, अतोऽलौकिकत्वशङ्काव्यावृत्तिरित्यर्थः. ननु तथा**प्यात्मज उत्पन्न** इतिपदद्वयं न वक्तव्यमवयवार्थासम्भवात् किन्तु 'पुत्रे प्रकटे' इत्यादि वाच्यमित्यत आहुः **यस्ये**ति. **तथैवे**ति तेनैव प्रकारेणेत्यर्थः. **अन्यथे**ति तत्प्रकारकानुवादाभावे इत्यर्थः. **अत** इति एवम्प्रकारिका नन्दबुद्धिर्जाता अतो हेतो**स्तत्** तत्प्रकारानुवादकं **आत्मजे उत्पन्ने** इतिपदद्वय**माहे**त्यन्वयः. तथा च पूर्वं पदार्थ उक्तः अनेनावान्तरपदार्थः अक्षरार्थश्चोक्त इति ज्ञेयम्. ननु तथापि

योजनाः

जातकर्मकरणं युक्तमत उक्तं **पितुः पुत्र** इत्यादि. **आत्मज उत्पन्न** इत्यस्य विवृतौ **यस्य यथा प्रतीतिस्तथैवे**-त्यादि. ननु शुकस्य सर्वज्ञत्वाद् भगवत्स्वरूपाभिज्ञत्वेन भगवतस्तु जन्मादिराहित्येनाजत्वात् तादृशे **आत्मज**त्वकथनमयुक्तमित्याशङ्क्याहुः **यस्य यथा प्रतीतिस्तथैव शुकेनानूद्यत** इति. नन्दस्य भगवत्यात्मजत्वप्रतीतेस्तद्बुद्धिमनुसृत्य चात्मजत्वकथनं, न तु शुकबुद्धिस्तादृशी; अतो न भगवति जन्मादिधर्मवत्त्वमित्यर्थः. नन्वेवं नन्दबुद्धेर्भ्रान्तत्वात् तदनुवादे को वा गुण इत्याशङ्क्याहुः **भगवता तथैवे**त्यादि. स्वस्य पुत्रभावेन रमणार्थं श्रीनन्दहृदये तथा **भगवता** आनीतमतो भगवत्कृतत्वेन भगवल्लीलात्वाद् वर्णनमिति न दोषः. नन्वेवं पुत्रत्वबुद्धेरवास्तवत्वापत्त्या तल्लीलानामप्यवास्तवत्वं स्यादित्याशङ्क्याहुः **आत्मनः सकाशाद् जातः पुत्र एवायमितिनन्दस्य बुद्धिरि**ति. न हि पुत्रत्वबुद्धिर्मायिकी, पुत्रभावेन भगवतःप्रादुर्भावात्. तथा सति पुत्रभावकृतलीलापि न मायिकी किन्त्वात्मजत्वबुद्धिर्मायिकी,आत्मशब्दस्य देहवाचकत्वेन तज्जातत्वमादाय तादृग्बुद्धेः प्रवृत्तत्वात्. देहजातत्वं तु प्रभावसम्भावितं, निषेकसम्भूतत्वाभावात्. अतस्तादृश्या

–तदाह **आत्मज उत्पन्न** इति. वासुदेवोत्रैवाविर्भूत इतिसिद्धान्तः. अन्यथा

प्रकाशः

जानन्नु**त्पन्न** इति किमित्युक्तवानित्यत आहु**र्वासुदेव** इत्यादि. तथा चात्र वासुदेवप्राकट्यात् तथोक्तवानित्यर्थः. यद्यपि निबन्धे वसुदेवहृदि वासुदेवप्रादुर्भावः प्रथमाध्यायार्थत्वेनोक्तस्तथाप्यत्र तु **बहिरि**तिविशेषः तत्र गमकमाहु**रन्यथे**त्यादि. **न वदेद्** 'उत्पन्न' इति न वदेत्. तथा चैतदुभयान्यथानुपपत्त्या प्रादुर्भावेवश्यं वक्तव्ये स कस्येतिचिन्तायां वंशसम्बन्धस्यात्रादर्शनाच्छत्रुहननधर्मरक्षयोश्चात्र कादाचित्कत्वादत्र यस्यैकं मोक्षभक्त्योर्निरूपकं चरित्रं स वासुदेव व्यूहोत्रै[1]वाविर्भूत इति सिद्धान्त

लेखः

वस्तुतोवयवार्थाभावात् नन्दबुद्धेर्भ्रान्तत्वं स्यादित्याशङ्क्यावयवार्थमपि साधयितुमाहुः **वासुदेव** इति. मथुरायां कार्यत आविर्भावेपि स्वरूपतः स्तन्योत्पादना**यात्रैवाविर्भूतः** वसुदेवाद् देवक्यां व्यूहत्रयविशिष्टो भगवानिव नन्दाद्यशोदायां जननावधि स्थित्वा प्रादुर्भूत इत्यर्थः. पुरुषोत्तमस्य तु सर्वात्मभाववद्भक्तहृदये एव निरावृतस्थितेरत्र मायावृतत्वेनैव स्थितिरतो न स्तन्योत्पादकत्वम्. जननक्षणे वासुदेवावृतः सन् प्रकटो दर्शनयोग्यतां सम्पादितवांस्तया सामान्यतो ज्ञानं "जातं परमबुध्यते"ति जातं, तदुत्तरक्षणे विशेषदर्शनं सम्पद्येत. तावन्माया जातेति सर्वेषां व्रजस्थानां व्यामोहाद् व्रजे कस्यापि न भगवद्दर्शनं, वसुदेवदेवक्योस्तु पूर्वप्रादुर्भासमये एव योग्यतासम्पत्तेर्नन्दगृहोत्पत्तिक्षणे एव तस्यापि दर्शनमिति भावः. जननात् पूर्वमपि यशोदायां वासुदेवावृतत्वेन स्थितौ देवक्या इव यशोदाया अप्यलौकिकी प्रभा स्यात् जननक्षणेपि मायावृतत्वे मथुरायामपि दर्शनं न स्यादत एवं विवेकः. वासुदेवस्योभयत्राविर्भावे प्रयोजनाभावात् नन्दगृह एवाविर्भाव इत्ये**व**कारः. अयमर्थः कण्ठतोनुक्तोपि पूर्वापरविचारेण साध्यते इति **सिद्धान्त** इत्युक्तम्. **अन्यथे**ति वासुदेवाविर्भावाभावे पुरुषोत्तमस्य मायावृतत्वेनैव

योजना

आत्मजत्वबुद्धेर्भ्रान्तत्वमेवाङ्गीकार्यम्. तदेवाचार्यवर्यैः **स्फुटीकृतमात्मनः सकाशात् जातः पुत्र एवायमिति नन्दस्य बुद्धिरि**ति भ्रमात्मिकेत्यर्थः. ननु पुत्रत्वेनाविर्भावे किं मानमिति चेत् तत्राहुः **वासुदेवोत्रैवाविर्भूत इति सिद्धान्त** इति. तत्रान्यथानुपपत्तिं प्रमाणयन्ति **अन्यथा केवलमायाजनितमि**-त्यादिना. प्रद्युम्नानिरुद्धसङ्कर्षणानां वसु-

[1] लुप्तम्.

केवलमायाजनितं स्तन्यं भगवान् न पिबेत् सिद्धवत्कारेण च शुको न वदेत्.

लेखः

स्थितेः **स्तन्यं केवलमायाजनितं** स्यात् तत् च **भगवान् न पिबेत्.** अत्रायं भावः– भगवतः स्तन्यपानं ह्यन्तः--स्थितबालकपोषार्थमिति वक्ष्यते. तथा च केवलमायाजनितस्तन्यपाने ते व्यामुग्धा एव भवेयुः न तु लीलारसं प्राप्नुयुरतो मायादोषनिवर्तकवासुदेवसम्बन्धोपि वाच्यः. केवलवासुदेवसम्बन्धेपि लीलारसं नानुभवेयुः किन्तु मुक्ता एव भवेयुः. अतः उभयसम्बन्धबोधाय **केवल**पदम्. **सिद्धवत्कारेणे**ति तृतीयाध्याये व्यूहत्रयविशिष्टस्यैव प्राकट्योक्तेः सर्वांशविशिष्टे स्वरूपे **उत्पन्ने** इतिपदं सिद्धवत् सर्वप्राकट्यबोधकं**न वदे**दित्यर्थः. तथा च पुरुषोत्तमे मायावृतत्वादवयवार्थाभावेपि वासुदेवस्य तथा स्थितत्वात् तस्याप्येतत्स्वरूपे एव स्थितत्वाद् वासुदेवमादायावयवार्थस्याप्युपपत्तेर्नन्दज्ञानं न भ्रान्तमिति भावः. "पुरुषोत्तमस्तु नन्दगृहे जात" इति रूढार्थमादायोक्तं **आत्मज**पदयौगिकार्थज्ञानं पुरुषोत्तमे बुद्धिमात्रं वासुदेवे तु सत्यमेव. **अन्तःकरणे**ति मदन्तःकरणमतथाभूते नाह्लादयुक्तं भवेदितिस्वान्तःकरणविश्वासेनापीत्यर्थः. पूर्वं भगवन्निष्ठेनोत्पन्नत्वधर्मेण स्वपुत्रत्वनिश्चय उक्तः अधुना नन्दनिष्ठेनाह्लादधर्मेण स उच्यते **इत्यपि**शब्दः.

योजना

देवगृहे प्राकट्यस्योपपादितत्वात् चतुर्थस्य वासुदेवव्यूहस्य नन्दालये प्राकट्यम्. यथा वसुदेवगृहे प्रद्युम्नव्यूहस्य पुत्रभावेन प्राकट्याद् गर्भसम्बन्धाद् भगवतो देवकीपुत्रत्वं वास्तवं एवं वासुदेवव्यूहस्य पुत्रभावेन यशोदागर्भसम्बन्धेन नन्दसदने प्राकट्यात् पुरुषोत्तमस्य यशोदापुत्रत्वं वास्तवमेव, पुरुषोत्तमस्तु वसुदेवगृहे नन्दगृहे वालौकिक-रीत्या प्रादूर्भूतो न तु गर्भसम्बन्धमङ्गीकृत्येतिज्ञेयम्. किञ्च यदि नन्दालये पृथक् प्रादुर्भावो नाङ्गीक्रियेत तदा श्रीनन्देन जातकर्मकारणार्थमाकारिता ब्राह्मणा मिथ्याभूते पुत्रभावे वैदिकमन्त्राणां कर्मणश्च विनियोगं न कुर्युः, **आहूय विप्रान् वेदज्ञानि**तिवाक्यात् तेषां वेदज्ञातृत्वेन परमधार्मिकत्वाद् भ्रान्तिकल्पितपुत्रे वेदमार्गप्रचारणासम्भवात्. अपि च "यावतीर्वै देवतास्ता सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ती"ति श्रुतेस्तेषां सर्वदेवतामयत्वेन सर्ववृत्तान्ताभिज्ञत्वाद् देवानां च सत्यप्रधानत्वेन मिथ्याभूतपुत्रभावे हरौ जातकर्मकरणं न स्यात्, तेषु ब्राह्मणेषु भ्रान्तेर्वक्तुमशक्यत्वात्. अतः परब्रह्मणि श्रीकृष्णे नन्दपुत्रत्वज्ञानं प्रमारूपमेवेति गतदोषः पन्था आर्याणाम् ॥१॥

अन्तःकरणप्रतीत्यापि पुत्रोयमितिनिश्चयार्थमाह **जाताल्हाद** इति. यद्यपि पुत्रजन्मज्ञान एवाह्लादस्तथाप्यन्यथाज्ञानमपि भवेदिति तद्व्यावृत्त्यर्थं जन्मैव निमित्तत्वेनोक्तम्. रूपान्तरेपि स्वीकृतेनुभावोवर्जनीयो भवत्येव. अतः प्राकृतोपि **नन्दो महामना** जातः, प्राकृतानामल्पमेव मनो भवत्यल्पकार्यकारि, महत् महत्कार्यकारि मनो यस्य "महान्तमुत्सवं करिष्यामी"ति. सोपि विधिपूर्वकंकर्तव्य इति ब्राह्मणाकारणं कृतवानित्या**हाहूयेति**. **विशेषेण प्रान्**तीति तेषां पूरकत्वमुक्तम्. अन्यथार्थनाशकत्वेन ते निन्दिताः स्युः. उत्सवे तेषामाकारणे हेतुमाह **वेदज्ञानि**ति. "यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ती" तिश्रुतेः सर्वदेवतासान्निध्ये हि महानुत्सवः. तत्र विहितानि कर्माण्याह **स्नात** इत्यादि. स्नानं नैमित्तिकं, सूतकसम्भावनायामाह **शुचिरि**ति; अन्यामपि शुद्धिं सम्पादितवान्. **अलङ्कृत** इति; अलङ्करणं शुभसूचकम्.

टिप्पणी

यद्यपि भ्रमप्रमासाधारणं तथाज्ञानमात्रमेवाह्लादहेतुस्तथापि महतामन्तःकरणमतथाभूतं वस्तु न गृह्णातीत्याशयेनाहुः **अन्तःकरणप्रतीत्यापी**ति. **अलङ्कृत** इत्यस्याभासे **अन्यामपि शुद्धिमि**त्यादि. अत्रायं भावः— बाह्याभ्यन्तरभेदेन शुद्धिर्द्वेधा. एतत्तारतम्येन भगवदानन्दानुभवतारतम्यमिति मर्यादा. प्रकृते चोत्सवरसानुभावकमलङ्करणमिति तथात्वमिति ॥१॥

प्रकाशः

इत्यर्थः. टिप्पण्यां **जाताह्लाद**पदाभासतात्पर्यं वक्तुमाहु**र्यद्यपी**त्यादि. सुबोधिन्यां ननु 'पुत्रस्ते जात' इत्यादिवाक्यजन्यज्ञानोत्तरमेव लोक आह्लाददर्शनादत्रापि तज्जन्मज्ञानस्यैवाह्लादहेतुत्वं वक्तव्यं न तु जन्मन इत्याकाङ्क्षायामाहु**र्यद्यपी**त्यादि. तथा चाह्लादं प्रति ज्ञानस्य हेतुत्वेपि तस्य भ्रमत्ववारणाय तथोक्तमित्यर्थः. **प्राकृत** इति ग्रामीणः; तदुपपादयन्ति **प्राकृतानामि**त्यादि. **शुचिरि**ति सूतकस्य सम्भवेपि नालच्छेदात् पूर्वं

लेखः

यद्यपीति "आत्मज उत्पन्ने" इत्यनेन जातकर्मणि हेतुरुक्तः, आह्लादे तु ज्ञानस्य हेतुत्वात् ज्ञानबोधकं 'पुत्रोत्पत्तिं ज्ञात्वे'त्यादिपदं वक्तव्यं तथापि तथोक्ते सति ज्ञाने भ्रमत्वमपि शङ्क्येत, तत् तु "महतामन्तःकरणमतथाभूतं वस्तु न गृह्णाती"ति टिप्पण्युक्तदिशा नन्दे असम्भावितमत आह्लादहेतुत्वेनापीदमेव पदद्वयमुक्तमितिभावः. तथा चात्मजत्वेनोत्पन्नस्तस्यैव चोत्पत्त्या **नन्दो जाताह्लादो** जातोतः शङ्कारहितः सन्

विशिष्टालङ्कार उत्सवः सर्वजनीनो भवति ॥१॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥२॥

सर्वकर्मस्वादौ **स्वस्ति**वाचनम्. **जातकर्मे**ति कर्मनामधेयं; क्षत्रियवैश्ययोरन्यद्वारा कारणम्, **विधिः** पुरोहितशाखानुसारेण. **आत्मजस्ये**ति पुत्रे यो विधिः; भगवान् स्वस्मिन् पुत्रत्वं प्रकटितवानिति वैदिककर्मणां सार्थकत्वं, गार्भिकबैजिकदोषाभावकीर्तनं च तथैव. नैमित्तिको वात्मसंस्कारपक्षः. भगवच्चरित्रमेवेदमितिसिद्धान्तः. **पितृदेवार्चनं** नान्दीश्राद्धं **तथा** विधानपूर्वकम्. युगलेन संस्कारनिरूपणं प्रवृत्तिमार्गनिष्ठत्वाय ॥२॥

प्रकाशः

जातके शुचित्वस्य स्मृत्या बोधनात् तथेत्यर्थः. टिप्पण्या**मन्यामपी**ति वाक्यस्य स्वरूपं तात्पर्यं चाहु**रत्रायमि**त्यादि ॥१॥

सुबोधिन्यां **वाचयित्वे**त्यत्र **सार्थकत्वमि**ति. अन्यथा तद्बोधकवेदस्य भगवत्परत्वाभावे "सर्वे वेदा[1] यत्पदमि"तिश्रुतिर्विरुध्येतातस्तथेत्यर्थः. **तथैवे**ति भगवल्लीलया पुत्रत्वमेव. नन्वेवं भगवति गार्भिकादिदोषसम्बन्धकथने पूर्वग्रन्थविरोध स्याच्छ्रवणकटुत्वं च भासेतेति तदभावार्थं पक्षान्तरमाहु**र्नैमित्तिक** इत्यादि. ननु तथा सति तु कर्मणां सार्थकता न स्यादत आहु**र्भगवदि**ति. आत्ममायया सर्वं कृतवानिति तथा, अन्यथा परमार्थरूपे भगवति[2] का वा[3] माया[4] स्यादतो **भगवच्चरित्रमेवेद- मु**क्तम्[5] ॥२॥

लेखः

जातकर्म कारयामासेत्यन्वयः. **प्राकृतोपी**ति ग्रामवासी, न तु नागर इत्यर्थः. **सम्पादितवानि**ति सर्वेभ्यो बोधितवानित्यर्थः ॥१॥

वाचयित्वेत्यत्र **पुत्रे यो विधिरि**ति आत्मजे स्वपुत्रे, न तु दत्तकविक्रीतादौ यो विधिरित्यर्थः. **गार्भिके**ति, **तथैव** भगवत एव निर्दोषत्वात् तादृशपुत्रे एव सार्थकमित्यर्थः. ननु पूर्वमेव दोषस्याभावात् तदभावसम्पादनं किमर्थमित्याशङ्क्याहुः **नैमित्तिको वै** इति. अय**मात्मसंस्कारपक्षो वै** निश्चयेन **नैमित्तिकः** पुत्रजन्मनि निमित्ते जाते वै निश्चयेन कर्तव्य एव, न तु दोषसत्ताविचारस्तत्रेतिभावः. ननु तथापि वस्तुतस्तत्प्रयोजनं न सिद्धमित्यत आहुः **भगवच्चरित्रमि**ति. **इदं**

---

१. लुप्तम्. २. भगवत्स्वरूपे. ३. लुप्तम्. ४. मर्यादा. ५. 'मेवेदमित्यर्थः, 'मेवेदं सर्वमित्यर्थः.

महामना इतिविशेषणस्य कृत्यमाह **धेनूनामिति**.

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन् सप्तरत्नौघान् शातकौम्भाम्बरावृतान् ॥३॥

नियुतं लक्षं; लक्षद्वयमपि प्रत्येकमलङ्कृतं, भगवत्सान्निध्याद् द्रव्यक्रियाणां न परिक्षयः. **विप्रेभ्य** इति समुदायेन दानम्. सङ्कल्पमात्रव्यावृत्त्यर्थमाह **प्रादादिति**. विशेषेण पूरकत्वान्नास्यापि परिक्षयः. **तिलाद्रीनिति** तिलपर्वतान्. **रत्नौघानिति** पृथक् रत्नानामोघः समूहो येष्विति वा. **शातकौम्भेन** सुवर्णे**नाम्बरैश्चावृतान्.** अन्नेषु तिला मुख्याः, "गावो हिरण्यं वासांसि तिला रत्नानि चे" तिपञ्चानां दानं सर्वाण्येव सर्वदैवत्यानि ॥३॥

बहु दत्तमितिशङ्कां वारयितुं तस्य ततोपि बह्वस्तीति वदन् शुद्ध्यर्थमपि तेनैतावद् दातव्यं भवतीति वदन् समानैरन्यैः कालादिभिः सह द्रव्यं निरूपयति **कालेनेति**.

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुद्ध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥४॥

कालादिना प्राणिनः सर्वे शुद्ध्यन्ति. नव शोधकानि, तत्र कालो मुख्यः सर्वं कालोद्भवमिति. उत्पन्नः पुत्रः शतं वर्षाणि जीवति. तत्र दश दिनानि षट्त्रिंशच्छतानामेको भागो भवति; सम्पूर्णे काले तावान् कालस्त्वशुद्धः. एवं

प्रकाशः

धेनूनामित्यत्र द्रव्यक्रियाणामिति द्रव्यस्य तज्जनितानामलङ्करणक्रियाणाम्. **अस्येति** दानस्य ॥३॥

लेखः

दोषाभावसम्पादनं भगवत्सम्बन्धिचरित्रं; भगवत्सेवैव भगवत्कृतानुमोदनरूपत्वात् यथान्ये पुष्पादिसमर्पणाद्युपचारास्तथेदमपीत्यर्थः. इदं पूतनाप्रसङ्गे टिप्पण्यां व्युत्पादयिष्यते ॥२॥

धेनूनामित्यत्र द्रव्यक्रियाणामिति सुवर्णादयस्तत्परिधापनक्रियाश्च नोपक्षीणाः; एकस्यां गवि सम्पादिता क्रिया सर्वत्र गोधने व्याप्तेत्यर्थः. अन्यथा तावतीनामलङ्करणे भूयान् कालो भवेदिति भावः. **नास्यापीति** गोधनस्यापीत्यर्थः ॥३॥

कालेनेत्यत्र तत्रेति षट्त्रिंशच्छतानां भागानां मध्ये **एको भागः** षट्त्रिंशच्छततमो भाग इत्यर्थः. **एवं द्रव्याण्यपीति** द्रव्यमपि किञ्चिदंशे अशुध्दं तावतो दानेवशिष्टं

द्रव्याण्यपि ज्ञातव्यानि. जननादौ **कालेनैव** शुद्धिर्न स्नानादिना. वंशशुद्धिजनकः कालः, **स्नानं** सम्पूर्णदेहशोधकं, **शौचमे**कदेशस्य — लौकिकव्यवहारार्थं त्रिधेयं शुद्धिः. अदृष्टाद्युत्पत्त्यर्थं त्रिधा शुद्धिमाह— **संस्कारै**र्जातकर्मादिभिर्देहो वैदिककर्मार्थं संस्कृतो भवति. एतेषां भूतसंस्कारकत्वमेव. **तपस्त्व**न्तःकरणशोधकम्, अदृष्टोत्पत्तिद्वारेति केचित्. **इज्या** यागः, तेन भगवान् सन्तुष्यति. एवमाधिभौतिकस्याध्यात्मिकस्याधिदैविकस्य संस्कारकाणि त्रीणि निरूपितानि. एवं षड्विधैरपि सर्वे शुद्ध्यन्ति. बहिःशुद्धिमाह **दानैरिति**. **दानैर्द्रव्याणि शुद्ध्यन्ति** दानव्यतिरेकेण द्रव्याणां न शुद्धिः, वित्तानुसारेण च दानं, अतो लक्षद्वयदानं गवां शुद्ध्यर्थमेव. अल्पानि प्राप्तानि **सन्तुष्ट्यैव शुद्ध्यन्ति,** अतो द्रव्यशुद्धौ द्वयमुक्तम्. आत्मा तु जीवः

प्रकाशः

कालेनेत्यत्र समानैरिति श्रीनन्दमाहात्म्यख्यापकत्वेन शोधकत्वेन च तुल्यैः. तथा च द्रव्यनिरूपणे शोधकान्तरसामानाधिकरण्यं यत् तदेवागतद्रव्यशुद्ध्यर्थदानस्य लिङ्गमित्यर्थः. कालस्य प्रथममुक्तौ हेतुमाहु**र्नवे**त्यादि. नवानां शोधकत्वे प्रकारं वदन्तः प्रथमं कालस्याहु**रुत्पन्न** इत्यादि. **तत्र** शतवर्षमध्ये **दश दिनान्य**शुद्धानि यतः **षट्त्रिंशच्छतानां** दशवर्षात्मकानां समूहः शतवर्ष**स्यैको भागों**शो भवति. तथा चैकैकस्मिंन् भाग एकैकं दिनमशुद्धमिति तथा. यद्यप्येवं तत्तद्भागारम्भे तदीय[1]तदीयप्रथमदिनस्याशुद्धत्वमायातीति न प्रथममेव दशदिनानामशुद्धत्वं वक्तुं शक्यं तथापि तस्य दिनस्याशुद्धेर्दुर्ज्ञेयत्वादृषिभिस्तथैव व्यवस्था कृतेति प्रथममेव दशदिनानामशुद्धत्वमित्यर्थः. तदेतत् स्फुटीकुर्वन्ति **सम्पूर्ण** इत्यादि. द्रव्यादिष्वप्यतिदिश**न्त्येवं द्रव्याण्यपी**ति. यथा षट्त्रिंशच्छतदिनेष्वेके दिनमशुद्धमेवं षट्त्रिंशच्छतमुद्रास्वेका मुद्रा शुद्धा. तथा च यथा कालस्तावत्परिहृतः[2] शेषकालशोधकस्तथा द्रव्यमपि तावत् परिहृतं शेषद्रव्यशोधकमित्यर्थः. **अपिशब्दाद्** भूमिस्तत्र सङ्ख्यापदैर्ज्ञातव्या. एवं चात्र श्रीनन्दैर्ये गवादयो दत्ताः शुद्ध्यर्थं तेऽनयैव व्यवस्थयेति महासमृद्धिर्व्यजते. नवानां प्रयोजनमाहु**र्वंशे**त्यादि ॥४॥

लेखः

शुद्धं भवतीत्यर्थः. **एतेषामिति** संस्कारा देहशोधका एव, न त्वन्तःकरणान्तर्यामिणो**रित्येव**कारः; तयोस्तु शोधिके तपइज्ये इति भावः. अन्तर्यामिणः शुद्धिमाहुः **इज्येति**. शुद्धिस्वरूपमाहुः **सन्तुष्यतीति**. "परमात्मा मे शुद्ध्यन्तामि"ति

---

१. लुप्तम्. २. 'तोशे'.

आत्मविद्ययैव शुद्ध्यति "सोहमस्मी"त्यादिरूपया ॥४॥

एवं प्रसङ्गान्नन्दस्य माहात्म्यमुक्त्वाग्रे वक्ष्यमाणमुत्सवमुपपत्त्या निरूप्योत्सवमनेकप्रकारमाह **सौमङ्गल्येति**दशभिः. विद्याकृतो यावानुत्सवः स प्रथमं निरूप्यते.

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥५॥

सौमङ्गल्यं सुमङ्गलता. यैर्वेदैः पौराणैर्वाक्यैर्मङ्गलं भवति तच्च निरन्तरं पठन्तीति **सौमङ्गल्य**प्रतिपादिका **गिरो** येषामित्युक्तम्. गिरां वैयर्थ्याभावो **विप्र**पदेनोक्तः. **सूताः** पौराणिकाः, **मागधा** वंशशंसकाः, **बन्दिनो** वैतालिकाः; तेपि **सौमङ्गल्यगिरो** जाताः. **गायका** अन्ये केवला नृत्यादिसहिताश्च स्त्रियश्च वाद्यवादकाश्च **नेदुः. भेर्य** उत्सवसूचिकाः, **दुन्दुभयो** मङ्गलवाद्यानि शुभकर्ममात्रे प्रवृत्तानि. **मुहुः** श्रमपर्यन्तं वादयित्वा पुनर्निवृत्ता वादयन्तीति. एतद् वाद्यमपि सङ्गीतशास्त्रप्रसिद्धम्. अतो विद्याकार्यं सर्वमुक्तम् ॥५॥

भूसंस्काराननेकविधानाह **व्रज** इति.

प्रकाशः

सौमङ्गल्येत्यस्याभास **उपपत्त्ये**ति, यत्र पूर्वोक्तरीतिकं दानबाहुल्यं तत्रोत्सवो भवत्येवेत्युपपत्तिस्तयेत्यर्थः ॥५॥

लेखः

श्रुतावपीदमेव शुद्धिस्वरूपं ज्ञेयम्. इदं च तृतीयस्कन्धे पञ्चमाध्याये "हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूत" इत्यत्र विवृतम् ॥४॥

सौमङ्गल्येत्यस्याभासे **माहात्म्यमुक्त्वे**ति, महानात्मान्तःकरणं यस्य तादृशत्वं पूर्वोक्तं महामनस्त्वमित्यर्थः. तथा च "धेनूनामि"तिश्लोकस्याभासे उक्तोर्थोऽनेनोपसंहृत इति ज्ञेयम्.

व्याख्याने, **सुमङ्गलते**ति सुष्ठु मङ्गलं येषां तत्ता मङ्गलमित्यर्थः. **तत् चे**ति मङ्गलजनकं वाक्यमित्यर्थः. तथा च मङ्गलप्रतिपादिका गिरो वाक्यानि येषामित्यर्थः. **गायका अन्ये** इति सूतादिभ्योऽन्ये, न तु तन्मध्यस्था एव केचनेत्यर्थः. तेषां द्वैविध्यमाहुः **केवला नृत्यादिसहिताश्चे**ति; **आदि**पदेन वीणायां केचन गायन्ति तेपि. **गायकाश्चे**ति चकारस्यार्थमाहुः **स्त्रियश्च वाद्यवादकाश्चे**ति. वाद्यानां मृदङ्गादीनां वादकास्तेपि जगुरित्यर्थः ॥५॥

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः।
चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥६॥

सम्यङ् मृष्टा रजोदूरीकरणेनोज्ज्वलीकृतास्ततः **सम्यक् सिक्ता** गन्धोदकै**र्द्वारा**दयो यस्मिन्. **द्वाराणि** बाह्यानि अन्तराणि च. **अजिर**मङ्गणम्. **गृहान्तरं** गृहमध्यं गृहान्तराणि च; तदुपरिभागानामपि मार्जनं भवति. एतादृशो **व्रजो** जातः. **चित्रध्वजा**दिभिरपि युक्तो जातः. एते बहिःशोभाजनकाः. गरुडादिचिह्निता **ध्वजाः**, जयपत्राङ्किताः **पताकाः**, उभये वि**चित्राः. स्रजो** मालाः पुष्पनिर्मिताः, **चैलैः पल्लवैश्च** कृता**स्तोरणा** इति; वस्त्रादिभिर्यावानलङ्कारो भवति स सर्वोपि तत्र कृत इत्यर्थः ॥६॥

गवां शोभामाह **गाव** इति.

गावो वृषाश्च वत्साश्च हरिद्रातैलरूषिताः।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥७॥

गावो बलीवर्दा धेनवश्च, **वृषाश्च** स्थूलककुदो महान्तः, **च**कारादवान्तरभावापन्ना वृद्धाश्च, **वत्सा** वत्सतर्यश्च सर्वे **हरिद्रा**युक्त**तैले**न **रूषिताः. विचित्रा** गैरिकादि**धातवः बर्हाणि** मयूरपिच्छानि **वस्त्राणि काञ्चनमालाश्च** वर्तन्ते येषाम्. हरिद्रातैलं मङ्गलार्थे, धात्वादयः शोभार्थाः ॥७॥

गोपानां शोभामाह **महार्हे**ति.

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥८॥

अमूल्यानि वस्त्राणि यानि स्थापितानि तान्यपि तस्मिन् दिवसे परिहितानीति ज्ञापयितुमाह **महार्हे**ति अमूल्यानि; **वस्त्राणि** परिधेया**न्याभरणा**न्यपि तथा. बहिः **कञ्चुकोष्णीषैर्भूषिताः** कटिबन्धनैरपि, तेषामकथनमुत्सवासक्तिख्यापनार्थम्. **गोपा** व्रजान्तरस्थिता अपि यावन्तो नन्दपरिचिताः सर्वे **सम्यगाययुः. राजन्नि**तिसम्बोधनमुत्सववर्णनायां सम्मत्यर्थम्. **नाना**विधा**न्युपायना**नि वस्त्राभरणदुग्धदध्यादीनि. रिक्तहस्तगमनाभावार्थमेतदुक्तं, नतु नन्दस्य तैः काचित् समृध्दिः ॥८॥

टिप्पणी

मूलस्थ'पाणि'पदतात्पर्यमाहुः **रिक्ते**त्यादि ॥८॥

लेखः

महार्हेत्यस्याभासे **गोपानामाहे**ति **शोभामि**तिपूर्वाभासानुवृत्तिः.

गोपीनामप्युत्सवमाह चतुर्भिः; गोप्यश्चतुर्विधाः सम्बद्धा असम्बद्धाश्चोभयविधा अपि सङ्गता असङ्गताश्च, **गोप्य** इति.

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥९॥

चकारादन्या अपि तत्र तत्र निलीनास्तथाविधा भूत्वा गता इति निरूप्यते, ब्राह्मणस्त्रियोन्याश्च. तासां नन्दप्राधान्याभावात् **यशोदाया** अपत्योत्पत्तिसम्भावनारहितायाः **सुतस्या**कस्मा**दुद्भवं** श्रुत्वा श्रवणेनैवान्तःसन्तोषस्तासां जातः. चतुर्विधपुरुषार्थस्तासां विशेषाकारेण सेत्स्यती**त्याकर्ण्यै**व **मुदिता** नतु निश्चयमप्यपेक्षन्ते.

टिप्पणी

सम्बद्धा इति कुलदेहसम्बन्धयुक्ता इत्यर्थः ॥९॥

प्रकाशः

गोपा इत्यत्र **रिक्ते**त्यादिना सुबोधिन्यां यदुक्तं तद् टिप्पण्यां विवृण्वन्ति **मूले**त्यादि ॥८॥

गोप्य इत्यत्र **सम्बद्धा** इति सुबोधिन्यां यदुक्तं तद् विवृण्वन्ति टिप्पण्यां **सम्बद्धा** इत्यादि ॥९॥

लेखः

व्याख्याने **परिधेयानी**ति अन्तरीयरूपाणि धौत्रवस्त्राणीत्यर्थः; कञ्चुकोष्णीषयोः पृथगुक्तेरिति भावः ॥८॥

गोप्यश्चेत्यस्याभासे **सङ्गता** इति भगवति सङ्गता भगवद्भोग्या इत्यर्थः. इदं सङ्घातात्पर्यमुक्तं, न तु प्रत्येकं श्लोकेषु तथाविभागः.

व्याख्याने—प्रथमश्लोके नन्दसुतत्वमुक्तमत्र यशोदासुतत्वमुक्तं तत्तात्पर्यमाहुः **तासामि**ति. **चतुर्विधे**ति "पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोर्थो हरिरेव च कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवमि"तिरूप इत्यर्थः. **आकर्ण्ये**त्यत्राङ् ईषदर्थत्वमभिप्रेत्याहु**र्न**

योजना

गोप्यश्चाकर्ण्येत्यत्र **सम्बद्धा** इत्यादि. "**सम्बद्धाः** कुलदेहसम्बन्धयुक्ता इत्यर्थ" इति श्रीमत्प्रभुचरणैर्व्याख्यातम्, **असम्बद्धाः** कुलदेहसम्बन्धरहिता ज्ञातीया इत्यर्थः. **सङ्गताः** परिचर्यादिकृतौ विनियुक्ताः **असङ्गताः** समानकक्षापन्ना अनाश्रिता इत्यर्थः ॥९॥

–तासां निवेदनीय आत्मैवेत्यात्मानमेव भूषयाञ्चक्रुः. **आत्म**पदप्रयोगश्च शरीरादीनामप्यविकृतत्वाय, सशरीराणामेव ब्रह्मानन्दानुभवात्. उत्तमानि **वस्त्राणि** परिधाय. त**थाकल्पा**न्याभरणान्यपि. **अञ्जनं** कज्जलम्. **आदि**शब्देन तिलकमाल्यादीनि ॥९॥

श्रवणादिगमनपर्यन्तमात्मालङ्कारो यावता भवति तावत् कृत्वा गता इत्याह **नवे**ति.

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥

ताः सर्वाः देवतारूपा भगवत्सम्मुखे गच्छन्त्यो विकसितवदना जाताः

प्रकाशः

नवकुङ्कुमेत्यस्याभासे **श्रवणादि गमनपर्यन्तमि**ति. **श्रवणे** कर्णे तदारभ्य गम्यत आभ्यामिति **गमने** पादौ **तत्पर्यन्तं** यावता ताटङ्कहंसकनूपुरादिनेत्यर्थः. यद्यपि शिरोभूषणमेव प्रथमं वक्तव्यं तथापि कर्णाविव पूर्वं भगवज्ज्ञापकौ जातावित्यभ्यर्हितत्वात् ताभिस्तावेव पूर्वं भूषितावित्याचार्यैरपि तथोक्तम्. यद्वा ननु गमने विलम्बं कुतः कृतवत्य इत्याशङ्क्याहु**रात्मालङ्कार** इत्यात्मन एव समर्पणीयत्वात् तदलङ्कारो यावता कालेन भवति तावद्विलम्बमावश्यकत्वात् कृत्वेत्यर्थः. विवृतौ ननु शुकस्य किं प्रयोजनं यदेवं वर्णयतीत्याकाङ्क्षायामाहु**स्ता** इत्यादि, अर्थस्तु स्पष्टः. टिप्पण्यां **गन्ध**

लेखः

तु निश्चयमिति. पूर्वेषां गृहाद्यलङ्करणमुक्तमेतासामात्मालङ्करणमुच्यते तत्तात्पर्यमाहुः **तासां निवेदनीय** इति. गृहादिकं तु त्याज्यमत **आत्मैवेत्येव**कारः. **आत्मा** स्वस्वरूपमित्यर्थः. एतद्देहादीनामविकृतत्वे विनिगमकमाहुः **सशरीराणामि**ति. ब्रह्मानन्दानुभवो हि देहेन्द्रियादीनां विकृतत्वात् तन्नाशे सति जायते, अत्र तु सशरीराणामेव वक्तव्यः, अतो ज्ञायते एतासां शरीरेन्द्रियादीन्यविकृतान्यात्मरूपाण्येवेति. गोपानामप्यलौकिकदेहसम्पादनानन्तरमेव ब्रह्मानन्दानुभवः, परं तेषामग्रे लीलया तत् सम्पादनीयमेतासां तु सिद्धमेवास्तीतिविशेषः. एतत्श्लोकवाक्यार्थ आभासेनुक्त इत्युपसंहारव्याजेनानुवदन्ति **तावत् कृत्वे**ति ॥९॥

नवेत्यत्र **देवतारूपा** इति शरीरादीनामात्मत्वस्योक्तत्वाद् देवतात्मकमविकृतं रूपं देहादिकं यासामित्यर्थः. किञ्जल्कसाहित्यकथनेन सूचितमर्थं गौणवाक्यार्थत्वेनाहुः **विकसितवदना जाता** इति. पङ्कजे किञ्जल्कदर्शनं विकासे सत्येव भवतीति भावः.

सोऽलौकिको विकास इति तं वर्णयति. चर्विततताम्बूलाः सुलक्षणवशाद् वारक्तरेखायुक्ता मुखभागास्तासाम्. नूतनं **कुङ्कुमं** काश्मीरं तस्य ये **किञ्जल्का** उत्तमा आरक्तास्त एव योजितास्तिलकादौ, पिष्टा वा रेखाकाराः कृताः, तत्सदृशा वा **किञ्जल्काः**, एतादृशानि **मुखपङ्कजानि** तैर्भू**तिर्या**साम्.

गन्धो रूपं तथा स्पर्शः कटाक्षभ्रमरोक्तयः ।
ताभिश्चतुष्टयं ज्ञेयं रसं ज्ञास्यति माधवः ॥(१६)॥

टिप्पणी

नवकुंकुमेत्यत्र मुखेषु तादृक्पङ्कजत्वोक्त्या व्यञ्जितमर्थमाहुः **गन्ध** इत्यादिना. भावज्ञापकत्वसाम्येन कटाक्षोक्त्योरैक्यविवक्षया **चतुष्टय**त्वमुक्तम्. कटाक्षयुक्तास्ता इति वा. तथा च गन्धादिवक्रोक्तिगानपर्यन्तं **ताभिर्ज्ञा**पितं **ज्ञास्यति**, यतस्त**च्चतुष्टयं ज्ञेयम्**, लोभात्मकं **रसं** तु स्वत एव **ज्ञास्यती**ति योजना. एतेन भगवतस्तु रूपादिपञ्चविधविषया ये भोग्यास्ते एता एवेति सूचितम्. तेनैतासु भगवत आसक्तिः सूचिता भवति, मिथश्चित्तव्यतिषङ्गोऽपि. **चतुष्टयज्ञेय**पदे रसस्यैव वा विशेषणे (१६).

लेखः

अलौकिक इति लोकैरवेद्यो भगवदेकवेद्य इत्यर्थः. तथा च "विकसितवदना जाता" इति स्फुटं विकासो वाच्यो भवति परन्त्वलौकिकत्वाद् **वर्णयति** ध्वनिनैव बोधयतीत्यर्थः. **तत्सदृशा वे**ति वक्ष्यमाणपक्षे मुखेषु किञ्जल्कपदार्थं बोधयितुमाहुः **आरक्तरेखायुक्ता** इति. लोभस्थितरेखा एव किञ्जल्का इति भावः. **तत्सदृशा वा किञ्जल्का** इति येष्विति शेषः. तथा च नवकुंकुमसदृशाः किञ्जल्का येष्विति बहुव्रीहिः; प्रथमपक्षे नवकुंकुमस्य किञ्जल्का येष्विति व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः. तादृशैर्मुखपङ्कजैर्भूतिर्यासामिति पुनर्बहुव्रीहिः. **गन्धो रूपमि**त्यत्र **भ्रमरोक्तयो** भ्रमरस्येवोक्तयः पङ्कजे भ्रमरोक्तयस्तत्स्थानीया मुखे वक्रोक्तय इत्यर्थः. टिप्पण्यां **तादृक्पङ्कजत्वोक्त्ये**ति सकिञ्जल्कपङ्कजत्वोक्त्येत्यर्थः. विकसिते एव किञ्जल्के दर्शनं भवतीति किञ्जल्कसाहित्यकथनेन विकसितत्वं सूच्यते. तथा च विकसितपङ्कजस्य यथा गन्धादिचतुष्टयानुभावकत्वं, न तु रसानुभावकत्वं तथात्रापि सूचितं भवतीत्याशयेनाहुः **गन्ध** इति. **रसं स्वत एव ज्ञास्यती**ति भ्रमरशब्देनाशब्दानुभावकत्वं पङ्कजस्य ज्ञेयम्. **चतुष्टय**पदस्य रसविशेषणत्वे चतुर्विधमित्यर्थः; "सुरतवर्धनं शोकनाशनमि"ति श्लोकोक्तं चातुर्विध्यं ज्ञेयम् ॥१०॥

बलिः पूजासाधनानि स्रगादीनि. यद्यपि सर्वस्वमेव नेयं तथापि **त्वरितं जग्मुः**. त्वरागमनं तासामत्यशक्यं यतः **पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः** ; अत्युच्चतया कुचयोश्चलनं गमनप्रतिबन्धकं भवति. यत्राशक्यं ताः सम्पादयन्ति तत्र शक्ये कः सन्देह इतिभावः. अत एव माल्यानां बन्धनं शिथिलं, त्वरया यथाकथञ्चिद्बन्धनात्. तेन मार्गे च्युतिरग्रिमवाक्ये कथयिष्यते ॥१०॥

एवं गच्छतीनां स्वरूपमुक्त्वा नन्दगृहे प्रविशन्तीनां स्वरूपमाह **गोप्य** इति.

प्रकाशः

इत्यादिकारिकाप्रयोजनं वर्णयन्ति **नवे**त्यादि ॥१०॥

योजना

गन्धो रूपं तथा स्पर्श इत्यादि. **नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतय** इत्यनेन गोपवधूषु गन्धरूपस्पर्शशब्दरसा भगवतो भोग्याः पञ्च विषया सर्वोत्कृष्टा विद्यन्त इति सूचितं, तदेतत् कारिकया विवृण्वन्ति **गन्धो रूपमि**त्यादिना. तत्र **नवकुंकुमपदेन** सुगन्ध उक्तः, **किञ्जल्क**पदेन सौन्दर्ययुक्तं रूपं, **मुखपङ्कजे**त्यनेन सुस्पर्शसुशब्दसुरसाः सूचिताः; पङ्कजस्य सुस्पर्शत्वात् भ्रमरगुञ्जितेन सुशब्दत्वात् मकरन्दवत्त्वेन सुरसत्त्वात् च. एवं भगवतो नासिकानयनादीनां भोग्याः पञ्च विषया एतासामेवाङ्गेषु विराजन्त इति तात्पर्यं सिद्धम्. तत्र सुगन्धसुरूपसुस्पर्शाः प्रत्यवयवेष्वेतासां भगवद्भोग्याः, सुशब्दो द्वेधा– भाषणात्मकः किङ्किणीनूपुरादिरवात्मकश्च. रसो लोभात्मकावयवे स्थित इति ज्ञेयम् ॥१०॥

कारिकार्थः

नवकुङ्कमेत्यत्र मुखेषु किञ्जल्कपङ्कजत्वोक्त्या व्यञ्जितमर्थमाहु**र्गन्ध** इति. अत्र टिप्पण्युक्ते प्रथमव्याख्याने कटाक्षाश्च भ्रमरोक्तयश्चेति द्वन्द्वः; कटाक्षभ्रमरोक्तयोर्भावज्ञापकत्वसाम्येनैक्यविवक्षया चतुष्टयत्वमुक्तम्. भ्रमरशब्देन पङ्कजस्य शब्दानुभावकत्वं ज्ञेयं; भ्रमरोक्तिस्थानीया मुखे वक्रोक्तयः. द्वितीयव्याख्याने तु कटाक्षयुक्ता वक्रोक्तय इति मध्यमपदलोपी समासः. तथा च **ज्ञेयं** गन्धादि**चतुष्टयं ताभिर्ज्ञा**पितं **ज्ञास्यति माधवः, रसं** तु स्वत एव **ज्ञास्यती**ति योजना. **चतुष्टयज्ञेय**पदयो रसविशेषणत्वपक्षे "सुरतवर्धनमि"ति श्लोकोक्तप्रकारेण चतुर्विधं **ज्ञेयं रसं** स्वत एव **ज्ञास्यती**त्यन्वयः. तथा च यथा विकसितपङ्कजस्य गन्धादिचतुष्टयानुभावकत्वमेव, रसं तु मधुपः स्वयमेव भुङ्क्ते तथात्रापीति भावः (१६).

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥११॥

दूरादागत्य यथाकथञ्चिद् यदा ता निकटे समागतास्तदा सर्वशोभानां प्राकट्याद् **विरेजुरि**ति ता वर्णयति. **गोप्य** इतिपुनर्ग्रहणमग्रपश्चाद्भावेन समागतानां सम्भूयगमनार्थम्. **नन्दालयं व्रजतीर्विरेजु**र्विशेषेण रेजुः. पूर्वं पिहिताभरणा अपि प्रकटाभरणा जाताः, तथा प्रकटवस्त्राः. **माल्यानां** पुष्पाणां **शिखातश्च्युतानां** गतिसूचिका वृष्टिरिव मार्गे जाता. **वलया**नामपि शब्दतो रूपतश्च प्राकट्यम्. **व्यालोलाः कुण्डले पयोधरौ हाराश्च** तैः **शोभा** यासां, तद्गता राजसास्तामसाः सात्त्विकाश्च लोला जाताः. अनेन तासामुत्सवासक्तिरुक्ता. **सुष्ठु मृष्टे** उज्ज्वले **मणियुक्ते कुण्डले** यासां, **निष्क**युक्तः कण्ठो यासामस्ति ता **निष्ककण्ठ्यः** ; पूर्वोक्ताश्च ता **निष्ककण्ठ्यश्च**. वि**चित्राण्यम्बरा**णि यासाम्. **पथि शिखातश्च्युतानां माल्यानां वर्षा** यासां ताः. **नन्दालयं** नन्दगृहम्. **सवलया** वलयसहिताः. **व्यालोलकुण्डलपयोधरहाराणां शोभा** याभिः ॥११॥

तत्रागतानां कृत्यमाह **ता आशिष** इति.

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्योजनमुज्जगुः ॥१२॥

ता गोप्य एवमुत्कण्ठतया समागता **आशिषः प्रयुञ्जाना** जाताः. तासां भगवदावेशात् सत्या एवाशिषो निर्गता इत्याह **चिरं पाहीति बालके**. आशिषो न परोक्षतया निरूपयन्ति किन्तु प्रत्यक्षतयेति **पाही**तिमध्यमपुरुषप्रयोगः. तासां सर्वभावेन पालनमल्पकाल एवेति ज्ञात्वा बहुकालरक्षार्थं प्रार्थना. एतदपि प्रत्येकं वचनं, तासां प्रत्येकं भगवत्स्फुरणात्. एव**माशिषः प्रयुञ्जाना** भगवद्भावेनात्यन्तं मत्ता **हरिद्राचूर्णतैलजलान्ये**कीकृत्य परस्परं **सिञ्चन्त्योजनं** भगवन्त**मुज्जगुः**. **हरिद्राचूर्ण**योर्मेलन आरक्तो भवति, **तैलेन** च सम्पृक्तं न कदापि त्यजति बहुकालमिममर्थं ज्ञापयति, जले योजितं प्रसृतं भवति. ननु कुलस्त्रीणां कथमेवम्भावस्तत्रा-**हाजनमुज्जगुरि**ति. भगवद्भावस्य ज्ञापक**मजनपदं**; स हि भगवांस्तत्र जात इति

प्रकाशः

ता आशिष इत्यत्र. नन्वाशिषि प्रयोक्तव्यायां "चिरंजीवे" त्येवं वक्तव्यं; "पाही"ति प्रार्थनासम्मिलिततत्कथनस्य किं प्रयोजनमत आहु**स्तासामि**त्यादि.

लेखः

स्वरूपमुक्त्वेति 'विकसितवदना' इत्युक्तगौणवाक्यार्थस्यानुवादोयम्. **गोप्यः सुमृष्टे**त्यत्र पूर्वश्लोके गमनं मुख्यत्वेनोक्तं, तेन द्वितीयश्लोके प्रवेशस्य मुख्यत्वे वक्तव्येपि तस्य गौणत्वमुक्त्वा शोभाया मुख्यत्वमुक्तम्. तत्तात्पर्यमाहुः **दूरादागत्ये**ति. **कुण्डलहारशोभा** इत्यस्य तेषां शोभा याभिस्तैः शोभा यासामितिविग्रहद्वयमप्यभि-प्रेतमिति ज्ञेयम् ॥११॥

प्रकाशः

मथुरागमने सर्वभावेन पालनं न भविष्यति बहुकालमिति तदभावार्थं तथेत्यर्थः. यद्वा भगवतः सदात्र स्थितिमत्त्वेपि तासां रात्रिपरिमितकाल एव सर्वभावेन रक्षणमिति तदभावाय तथेत्यर्थः. अस्मिन् व्याख्याने "स्त्रीषु रेमे ह्यहर्निशमि"तिवक्ष्यमाणरीत्याशिषां सत्यता स्यान्न तु पूर्वव्याख्यायामिति ज्ञेयम्. तर्हि 'सदे'त्येव कुतो नोक्तवत्य इति चेत्, किञ्चित्कालविच्छेदाभावस्य रसाननुभाव-कत्वादिति बुध्यस्व. एतेन मथुरागमनशङ्काप्यपास्तान्यथा सर्वज्ञत्वेन 'सदे'त्येव वदेयुः. यद्वा रात्रावपि त्यक्त्वा न गन्तव्यमिति सूचयन्ति. एवं वाचा भगवन्तं प्रार्थयित्वा तमर्थं क्रिययापि सूचयन्तीत्याशयेनाहु**र्हरिद्रे**त्यादि. अयं भावः— यथा हरिद्राचूर्णसंयोगेन जातः शोणिमा तैलयुक्ते पटे समवेतः कदापि पटं न त्यजत्येवमुभयसंयोगेन जातोनुरागोयुत[1]सिद्धत्वात् स्नेहयुक्तं कदापि न त्यक्ष्यतीति तथाकृतिः. **बहुकालमि**त्यत्रापि पूर्वोक्त एवार्थः. यथा वा जले पतितं तैलं बहुरूपं भवति तथास्माकमुपरि पतितस्तथेत्यर्थः. **भगवद्भावस्ये**ति **भगवतो** यो **भावः** स्वस्मिन् विद्यमानता ब्रह्मभाव इतियावत् तस्य **ज्ञापकमजनपदम**न्यथा जन्मोत्सवे वक्तव्येजनपदं शुको न वदेदतस्तथेत्यर्थः. तद् विशदयन्ति **स ही**त्यादि. **हि** यतो हेतोः **सो**स्मद्वरदाता **भगवान्** षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नोक्षर एव विद्यमान**स्तत्र** भूमौ न जातः किन्त्वक्षरं प्रकटीकृत्य तत्रैवाविर्भूत **इति ताभिर्ज्ञातमतस्तथे**त्यर्थः ॥१२॥

लेखः

ता आशिष इत्यत्र **भगवद्भावस्ये**ति एतासां पुरुषोत्तमे भावो, न तु वासुदेवव्यूहे. तथा च वासुदेवव्यूहमादायैवात्मजपदावयवार्थस्य समाहिततत्वादेतासां भगवान् पुत्रत्वं स्वस्मिन् नन्दे च पितृत्वं [2]स्वीकृत्य प्रकटो न तु नन्दात्मनः सकाशाद्

---

१. 'नुक्त'. २. "योगमायया स्वीकृत्य" इत्यादर्शद्वये अस्ति किन्तु कड्डरपल्लीतः प्राप्ते प्राचीनादर्शे ग्रन्थकारैः स्वतः 'योगमायये'तिपदं निष्कासितमिति प्रतिभाति.

ताभिर्ज्ञातम्, अतो भगवति प्राप्ते सर्वापेक्षाभावात् तथा सिश्चन्त्य उच्चैर्जगुः ॥१२॥

एवं विद्यावतां भूमेर्गवां गोपानां गोपीनां चालङ्कारा निरूपिताः. लौकिकवाद्यकृतमुत्सवमाह**अवाद्यन्ते**ति.

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥१३॥

स्वभावतो दशविधानि वाद्यानि **विचित्राणि** ततोप्यनन्तानि **महोत्सवे** भगवतो जन्मोत्सवे वादका वादयामासुः. महोत्सवे निमित्तमाह **कृष्णे विश्वेश्वर** इति. **कृष्ण** इति सञ्ज्ञा नामकरणानन्तरमेव भवतीति भगवति नियमाभावात्

टिप्पणी

कृष्णे विश्वेश्वर इत्यत्र **सञ्ज्ञे**त्यादि. ननु विश्वेश्वरादिपदसामानाधिकरण्यात्तद्वत् कृष्णपदमप्यानन्दहेतुत्वेनोक्तम् न तु नामत्वेनेति सञ्ज्ञेत्यादिकथनं न घटते. अस्तु वा तथापि[1] व्रजवास्युक्तिः परं न घटते. शुकस्तु जानात्येवेति युक्तं तदिति

प्रकाशः

कृष्णे विश्वेश्वर इत्यत्र टिप्पण्यां **संज्ञे**त्यादिग्रन्थस्य तात्पर्यं निश्चाययितुं शङ्कन्ते **नन्वि**त्यादि. **अस्तु वे**ति अस्तु वा कृष्णपदस्य संज्ञात्वम्. **कथमेवमि**ति **शुको**क्तित्वेन तत्र शङ्कानुदयात् **संज्ञे**त्यादिनोक्तं समाधानं किमाशयगर्भमित्यर्थः. अत्र समादधते **सत्यमि**त्यादि. **अयुक्तमि**ति शुकस्याप्ययुक्तम्. अवान्तरा- शङ्कामनूद्य समादधते **यत् त्वि**त्यादि **तथात्रापी**त्यन्तम्. तथा च कृष्णशब्दस्य सदानन्दवाचकत्वमौत्सर्गिकं न तु सङ्कुचितमिति ज्ञापनाय स ग्रन्थ इत्यर्थः. अत्राग्रिमं स्फुटम्. सुबोधिन्या**मलङ्कारा** इति सद्वाणीसंस्कारवेशगानरूपाः ॥१३॥

लेखः

जात इति भाव इत्यर्थः. तथा च **भगवद्भावे**त्यस्य पुरुषोत्तमभावेत्यर्थः; नन्दस्य त्वात्मनः सकाशाद् जात इति बुद्धिरतस्तद्भावो वासुदेवपर्यवसायीति भावः. अयमेवांशो "न माता न पिता तस्ये" त्यादिनोद्धवेन निवारणीय इति ज्ञेयम्. **स ही**ति पुरुषोत्तम इत्यर्थः; पुरुषोत्तमस्याजनत्वमेवोचितमिति **हि**शब्दः. **भगवति प्राप्ते** इति पुरुषोत्तमे इत्यर्थः. **सर्वापेक्षे**ति, पुरुषोत्तमप्राप्तौ लोकवेदापेक्षाभावस्य

---

१. अस्तु वा तथा मू. पा. २. ष.

पूर्वसञ्ज्ञानामेव गर्गेणोक्तत्वात् "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचक" इतिवाक्यात् **कृष्णः** सदानन्दः, आनन्दे चावश्यं **वादित्राणि**. किञ्च **विश्वेश्वरे** विश्वस्यैव नियन्तरि; महति समागतेन्ततो गत्वा वादित्राण्यपि वादनीयानि. बालके बालकान्तरवच्छङ्का नास्तीति सर्वथा महोत्सवः कर्तव्य इत्याह**अनन्त** इति. न विद्यतेन्तो यस्य. **अनन्तः** कालो वा, अन्यथा स मारयेदिति. तत्रापि **नन्दस्या**ल्पस्य तत्रापि **व्रजे**ल्पगृहे महति **समागते** महोत्सवः कर्तव्य एव, अन्यथा महानपकुर्यात्. किञ्च "द्रोणो वसूनामि"त्यारभ्य "ततो भक्तिर्भगवति" "कृष्णो ब्रह्मण आदेशमि"त्यन्तैर्वाक्यैः परमभक्तत्वेन नन्दस्य तदा वादित्रवादनमुचिततरम् ॥१३॥

टिप्पणी

कथमेवमिति चेत्, सत्यं, यदा यादृशी लीला भवति तत्कालीनां तादृशीमेव तां शुको वदति. यथा "चिरं पाहीति बालक" इति. तथा च तदा लोके तन्नामप्राकट्यं भगवता न कृतमिति तत्कथनमयुक्तमित्याशयेन तदुक्तम्. यत्तु नामत्वेन नोक्तमित्युक्तं तत्राप्युच्यते – पुरुषोत्तमस्वरूपं सदानन्दात्मकमिति केवलस्वरूपवाचित्वेन कृष्णपदमेव मुख्यं नाम, नत्वीश्वरादिपदवद्धर्मपुरःसरत्वमिति तत्सामानाधिकरण्येप्यस्य नामत्वेनैवोपस्थितिः. यथान्यशब्दानां धर्मपुरःसरं धर्मिवाचकत्वेपि सत्ताशब्दस्य न तथात्वम्, तथात्रापीति. **मारयेदि**ति वादकानिति शेषः. **महानपकुर्यादि**ति पूज्यपूजाव्यतिक्रमजन्यदोषप्रयोजको भवेदित्यर्थः ॥१३॥

लेखः

"न बिभेति कुतश्चन" "एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवमि"ति श्रुतिसिद्धत्वादिति भावः ॥१२॥

अवाद्यन्त इत्यत्र **दशविधानी**ति "मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः धुन्धुर्यानघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभिभिस्तदे"ति प्रथमस्कन्धोक्तानि ज्ञेयानि. एतेषां स्वत एव वादनं न सम्भवतीत्याक्षेपलभ्यं विधिमाहुः **वादका वादयामासुरि**ति. **अनन्तः कालो वे**ति "अथ सर्वगुणोपेत" इत्यत्रोक्तो लीलाकालो भगवद्रूप इति "तमद्भुतमि"ति श्लोके विवृतत्वात् तद्रूप इत्यर्थः. **अन्यथे**ति लीलाकाले प्रादुर्भूते सेवकैस्तदनुरूपसेवाऽकरणे **स** कालस्तान् सेवकान् वादकान् दण्डयेदिति टिप्पण्यनुसारेणार्थः ॥१३॥

गोपिकानां भगवत्स्मरणेनैव भगवदावेशो जातो, गोपानां तु भगवत्सन्निधाने भगवद्धर्मप्राकट्य आवेश इति भगवदाविष्टानां गोपानामुत्सवप्राकट्यमाह **गोपा** इति.

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥१४॥

दधिक्षीरघृताम्बुभिर्मिलितैः **परस्परमासिञ्चन्तो** दध्यादि मुखेषु **विलिम्पन्तो नवनीतैः** पिण्डैश्चिक्षिपुरन्योन्यस्योपरि प्रक्षिप्तवन्तः. अथवा यस्य यत्प्राप्तिः; केचिद् दध्ना केचित् क्षीरेण केचिद् घृतेनाम्बुभिश्च. आसिञ्चनं तुल्यतया, लिम्पनमाधिक्ये अतिरसाविष्टे, नवनीतैः क्षेपोतिमत्ततया. एवं सर्वेषां महानुत्सव उक्तः ॥१४॥

एवं सर्वकृत उत्सवे सर्वेभ्यो दानरूपं नन्दस्योत्सवमाह **नन्दो महामना** इति त्रिभिः.

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोलङ्कारगोधनम्।
सूतमागधबन्दिभ्यो येन्ये विद्योपजीविनः ॥१५॥

विद्यावतामन्येषां च स्त्रीणां च सर्वाभीष्टदानं, तत्र विद्यावतां प्रथमतो दानमाह **महामना** इति. विद्यातारतम्येन दानं, तत्रैक एव बहुविद्यो भवति तथा सति बहुदानं तत्र कर्तव्यं भवति तत्राल्पसत्त्वस्य लोभः स्यात् तन्निवृत्त्यर्थमाह **तेभ्यः** पूर्वोक्तेभ्यः. **वासांस्यलङ्करणानि** गावो धनं च **गोधनं** गोष्ठं वा. अनेन ब्राह्मणेभ्य

प्रकाशः

नन्द इत्यत्र **वासोलङ्कारगोधनमि**त्यस्य श्लिष्टप्रयोगं ज्ञापयन्तः [1]किञ्चिद्विशेषं बोधयितुं "गोकुलं[2] तु [3]गोधनं स्याद् गवां व्रज" इतिकोशात् पक्षान्तरमाहु**र्गोधनं गोष्ठं वे**ति. तथा च **वासोलङ्कारे**तिपदं पुनरप्यावर्तते. तस्मिन् पक्षे वासःपदस्य पूर्वत्वं

लेखः

[4]**गोपा** इत्यत्र **लिम्पनमि**ति. लिम्पतीति लिम्पः, "अनुपसर्गात् लिम्पविन्दे"-त्यादिना शप्रत्ययः, तत आचारक्विबन्ताद् भावे ल्युट् ॥१४॥

नन्दो महामना इत्यत्र श्लोकत्रयस्यार्थमाहुः **विद्यावतामि**त्यादिपदत्रयेण.

१, २. लुप्तम्. ३. गोकुलं. ४. एतद् व्याख्यानमेकस्मिन्नेवादर्शे प्राप्यते कङ्करपल्लीस्थप्राचीनादर्शेपि तत् नास्ति तस्मात् केनचिद् विदुषा पश्चाल्लिखितमिति प्रतिभाति.

एव वस्त्रालङ्कारपूर्वकमेकैकस्मा एकमेकं गोष्ठं दत्तवानिति लक्ष्यते. अन्येषामनुवादाच्चान्येभ्यो यथायोग्यं दत्तवानित्याह **सूते**ति. एतेभ्यो दानं कीर्त्यर्थम्. **ये चान्ये** गायका वैद्या ज्योतिर्विदश्च अन्येपि शाकुनिकाः स्त्रियश्च **तेभ्यः** सर्वेभ्य एव **वासोलङ्कारगोधना**नि दत्तवानिति सम्बन्धः ॥१५॥

अन्येभ्यो दानमाह **तैस्तैरि**ति.

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥

येषां येषां ये ये कामा अभिलषिता**स्तैस्तैः कामै**र्विष्णुबुद्ध्या ता**नपूजयत्**. **अदीनात्मे**ति, न **दीनो**लुब्ध **आत्मा**न्तःकरणं यस्य. ननु यद्यदेयं प्रार्थयेत् कश्चिद्दैत्यो वा तदा किं कुर्यात् तत्राह **यथोचितमि**ति. उचितमनतिक्रम्य; देये सम्प्रदाने चोचितत्वम्. एवं सर्वेषां पूजनप्रयोजनमाह **विष्णोराराधनार्थाये**ति. विष्णुप्रीत्यर्थं

प्रकाशः

त्वभ्यर्हितत्वविशेषाद् बोध्यम्. **तेभ्य** इति. तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्षित्वात् पूर्वं च विप्रसूतमागधबन्दिनामुक्तत्वात् सर्वेभ्यः समानमेव दानं समायाति न तु ब्राह्मणेभ्योधिकं, तथा सति [1]हीनसम्प्रदानकत्वेनांशतस्तस्य दानस्य तामसत्वमापद्येत; किञ्चास्मिन् श्लोके दानवाचकपदाभावादग्रिमश्लोकद्वयेपि तदभावाद् दानव्याख्यानमेवायु[2]क्तमिति तन्निवृत्त्यर्थमाहु**रनेने**त्यादि. **वासोलङ्कार**समभिव्याहारकथनेन कर्मत्वबोधकद्वितीयांनुपपत्त्या च ब्राह्मणेभ्यो दत्तवानिति लक्ष्यतेतो नांशतस्तामसत्वापत्तिरित्यर्थः. ननु तादृशदानस्य तामसत्वं वैधत्वे[3] एव न[4] तूत्सवनिमित्तकत्वेन्यथा तूत्सव एव न स्यादत**स्तेभ्य** इत्यस्य ब्राह्मणपरत्वं न युक्तमित्यत आहु**रन्येषामि**त्यादि.[5] प्रथमपक्षमनुसृत्यान्येषां दानप्रकारमाहु**रन्येभ्य** इत्यादि **सम्बन्ध** इत्यन्तम्. तथा चानुवादभेदाद् दानेपि प्रकारभेदो लक्ष्यत इत्यर्थः ॥१५॥

लेखः

अनेनेति विद्यातारतम्येन दानकथनेनेत्यर्थः. **दत्तवानिति सम्बन्ध** इति. **तेभ्य** इति तच्छब्देन "धेनूनां नियुते प्रादादि"ति श्लोकोक्ता विप्रा उच्यन्ते. तथा च तत्सहचारेण 'प्रादादि'तिपदोक्तं दानमप्यनुवर्तनीयं तेन सम्बन्ध इत्यर्थः ॥१५॥

---

१. लुप्तम्. २. 'व न यु'. ३. तामसत्ववैधत्वे. ४. ते.
५. 'मित्यादिना प्र', 'मित्यादि, ननु प्र'.

स्वपुत्रस्याभ्युदयार्थं च; तस्य ज्ञानानुरोधाद् भिन्नतया कथनम्. **च**काराद् ग्रहांदिप्रार्थनार्थम् ॥१६॥

स्त्रीभ्यो दाने रोहिण्यै दत्तं भयादप्रकटं भवेदिति भगवदावेशाद् दातुः प्रतिग्रहीतुश्च भयाभावं ज्ञापयितुं रोहिणीचरित्रं निरूपयति **रोहिणी चे**ति.

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥१७॥

भगवदागमनव्यतिरेकेणापि बलभद्रोत्पत्त्यैव सा कृतार्थेत्याह **महाभागे**ति. यद्यपि देवकीव्यतिरिक्ता अन्या अपि वसुदेवस्त्रियो भाग्यवत्यस्तथापीयं बाललीलादि द्रक्ष्यतीति **महाभागे**ति वा. **च**कारात् सर्वा एव स्त्रियः. स्त्रीष्वेव गुप्ततया प्रचारं वारयति **नन्दगोपाभिनन्दिते**ति. प्रचारार्थं निर्भयस्थित्यर्थं च. अत एव **दिव्यानि वासांसि स्रजः कण्ठाभरणानि** तै**र्भूषिता.** त्रिविधानि हि स्त्रीणामलङ्करणानि भवन्ति—

प्रकाशः

तैस्तैरित्यत्र **तस्य ज्ञानानुरोधादि**ति, **तस्य** नन्दस्य भगवति यत् स्वपुत्रत्वेन [1]**ज्ञानं तदनुरोधेन** अभ्युदयार्थमिति **भिन्नतया** शुकेनोक्तमित्यर्थः ॥१६॥

रोहिणीत्यत्र **महाभागे**त्यस्यार्थान्तरमाहु**र्यद्यपी**त्यादि. **भाग्यवत्य** इत्यग्रिम-लीलादर्शनात् तथा; रोहिणी तूभयं द्रक्ष्यतीति तथेतिभावः. **अनेने**त्यादि

लेखः

तैस्तैरित्यत्र. **विष्णुबुद्ध्ये**ति मूलार्थानुरोधाद् विष्णुः प्रीयतामिति बुद्ध्ये-त्यर्थः ॥१६॥

योजना

तेस्तैरित्यत्र **विष्णोराराधनार्थाये**त्यस्य व्याख्याने. ननु 'विष्णोराराधनार्थाये' त्युक्त्वा 'स्वपुत्रस्ये'ति भिन्नतया कथनं न युक्तं, स्वपुत्रस्यैव विष्णुत्वाद् विष्णुशब्दस्य पुरुषोत्तमवाचकत्वादित्याशङ्क्याहुः **तस्य ज्ञानानुरोधाद् भिन्नतया कथनमि**ति. **तस्य** श्रीनन्दस्येत्यर्थः, **ज्ञानानुरोधात्** पुत्रत्वज्ञानानुरोधादित्यर्थः. न हि नन्दस्य श्रीकृष्णे विष्णुबुद्धिः किन्तु पुत्रबुद्धिः अतो नन्दबुद्धिमादाय नन्दपुत्रविष्णोर्भेद उक्तः ॥१६॥

---

१. लुप्तम्.

वस्त्रमयानि सुवर्णमयानि पुष्पमयानि च, तत् त्रयं निरुक्तम्. चरणहस्तयोः स्वभावतोपि भवन्ति, कण्ठाभरणानि तु पदकहारादीनि वैशेषिकाणि, अतस्तेषां ग्रहणम्. **विशेषेणाचरत्** गृहिणीव सर्वकार्यकर्त्री जाता. अनेन रोहिणीसम्बधादयं कृष्ण इतिज्ञानकृतं भयमपि निवारितम् ॥१७॥

एवं सर्वैः प्रकारैः सर्वस्वे व्ययिते नन्दस्य सर्वसमृद्ध्यभावमाशङ्क्य भगवन्निवासात् तस्य महती समृद्धिर्जातेत्याह **तत आरभ्ये**ति.

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून् नृप ॥१८॥

यदा पूर्वोक्तदानानि दत्तवांस्ततःप्रभृति विष्णुबुद्ध्या पूजितत्वात् तस्याप्या-

---

टिप्पणी

तत आरभ्येत्यत्र, **यदा पूर्वोक्ते**त्यादि. अत्रायं भावः—रमाक्रीडात्वोक्त्यैव सर्वसमृद्धिमत्त्वस्य प्राप्तावपि पृथक् तन्निरूपणा'द्धरेर्निवासे'त्यनेनैव हेतुकथनेपि "तत आरभ्ये"तिपार्थक्येन पूर्वावधिकथनाच्च पश्वादिसमृद्धौ विष्ण्वाराधनस्यैव नैकट्यात् हेतुत्वमवगम्यते. तादर्थ्यचतुर्थ्याराधनस्यैव मुख्यफलत्वेनानुषङ्गिकत्व-मत्रेति॥१८॥

प्रकाशः

रोहिणीविचरणेन **रोहिणीसम्बन्धादयं कृष्णो** वसुदेवपुत्र **इति** कंस**ज्ञानकृतं भयं निवारितम्.** यदि हि श्रीरोहिणी न प्रचरेत् तदा रोहिण्याम्[1] एव पुत्रो जातो, मिथ्यैव "नन्दस्य जात" इति वदन्तीति कंसो जानीयात्. प्रचारे तु तादृशज्ञानाभावात् तत्**कृतं भयमनेन** श्लोकेन **निवारितमि**त्यर्थः ॥१७॥

तत आरभ्येत्यत्र टिप्पण्यां **यदा पूर्वोक्ते**त्यादिफक्किकायास्तात्पर्यमाहु**रत्रे**त्यादि. **तन्निरूपणादि**ति सर्वसमृद्धिनिरूपणात्. चतुर्थीसूचितमर्थमाहु**स्तादर्थ्ये**त्यादि. तथा चैवं [2]हेतुचतुष्टयं विष्ण्वाराधनस्यैव फलमित्यर्थः ॥१८॥

लेखः

तत आरभ्येत्यत्र टिप्पण्यां **विष्ण्वाराधनस्यैवे**ति. आराध्यतेऽनेनेति-करणव्युत्पत्त्या विष्ण्वाराधनार्थकबुद्ध्या कृतस्य दानादेरित्यर्थः. सुबोधिन्यां**तस्यापी**ति

---

१. ण्या. २. हि तच्च.

नुषङ्गिकमेव तत् फलम्. **सर्वा** धनपशुज्ञानादि**समृद्धयो** न केवलं नन्दस्य किन्तु सर्वेषामित्याह **व्रज** इति. न केवलं समृद्धिमात्रं किन्तु वैकुण्ठवत् कान्तिविशेषोपि जात इत्याह **हरेरि**ति. गोकुले गवां सम्मर्दात् स्थानं कुश्लिष्टमेव भवत्यतस्तदभावार्थमेतद् वक्तव्यम्. कान्तिश्चाधिदैविकी सर्वोत्तमा, सा लक्ष्मीनिवासादेव भवतीति तदाह **रमाक्रीडमभूदि**ति. रमाया आसमन्तात् क्रीडा यस्मिंस्तद् **रमाक्रीडं** वैकुण्ठस्थानं तदभूत्. **हरेर्निवासात्मगुणैरि**ति. स हि सर्वदुःखहर्ता भक्तानां वैकुण्ठपर्यन्तं गमनमप्यसहमान इहैव वैकुण्ठं समानीतवानित्यर्थः. आनीतेपि वैकुण्ठे यदि भगवान् न तिष्ठेत् तत्रापि त्रिभुवनसुन्दररूपेण तत्राप्यैश्वर्यादिस्वसर्वगुणप्राकट्येन तदा वैकुण्ठेपि शोभा न स्यात् तदाह पदत्रयेण **निवासात्मगुणैरि**ति. **निवासः** स्थानं गृहं स्थितिर्वा, **आत्मा** देहः परमानन्दरूपः, **गुणा** ऐश्वर्यादयः ; तैः कृत्वा रमायाः

लेखः

विष्णुबुद्धिकृतपूजनस्यापीत्यर्थः. **सर्वा** इति. धनं पशवश्च पूर्वकाण्डप्रतिपादितं फलं, ज्ञानमुत्तरकाण्डप्रतिपादितं; विष्णवाराधनबुद्ध्या कृतं कर्मैतत्समृद्धिमप्यवान्तर-फलं साधयतीति भावः. **भक्तानां वैकुण्ठपर्यन्तं गमनमि**ति. भक्तानां तावत्साधन-क्लेश**मसहमान इहैवा**धिभौतिके लोकसिद्धे व्रज एव **वैकुण्ठं** "यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास" इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यमाधिदैविकं व्रजं नित्यसिद्धं **समानीतवान्** प्रकटितवानित्यर्थः ॥१८॥

योजना

तत आरभ्येत्यत्र **हरेर्निवासात्मगुणैरि**त्यस्य व्याख्यान **आत्मा देहः परमानन्दरूप** इति. "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयत" इति श्रुतेः कृष्णः सदानन्दः परं ब्रह्मेति निर्विवादम्. तत्र स्वरूपात्मक एव देहो, न त्वात्मातिरिक्तः. स्वरूपस्यानन्दरूपत्वाद् देहस्य परमा-नन्दरूपत्वमुक्तम्. अत एव "सच्चिदानन्दविग्रहमि"त्यादिश्रुतिषु विग्रहस्य सच्चिदानन्द-रूपतोक्ता, "सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे" इति गोपालतापनीयेपि तथैवोक्तम्, "आनन्दरूपममृतं यद् विभाती" ति श्वेताश्वतरोपनिषत्स्वप्युक्तं, "नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रह" इति ब्रह्माण्डपुराणे धरणीशेषसंवादे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रे उक्तमतः श्रुतिपुराणसिद्धत्वात् सच्चिदानन्दविग्रहः श्रीकृष्ण इति ज्ञेयम् ॥१८॥

क्रीडनं, स्थितौ स्थितिः परमानन्दविग्रहेण रमणं गुणैरासमन्ताद् रमणमिति. **नृपे**तिसम्बोधनं यत्रैव राजा तिष्ठति सैव राजधानी भवतीतिज्ञापनं सम्मत्यर्थम् ॥१८॥

एवमुत्सवं निरूप्य तस्य स्थानस्य वैकुण्ठत्वं चाकृत्रिमोत्सवार्थं निरूप्योत्सवसिद्धि-पर्यन्तमत्यावश्यकमपि न कृतवानिति ज्ञापयितुं जात उत्सवेन्तरासक्तिज्ञापनार्थं भगवदर्थमुत्तमवस्तूनामानयनार्थं च मथुरां प्रति गतवानित्याह **गोपानि**ति. अथवा देवकीवसुदेवयोरपि स्नेहातिशयाद् गोकुले भगवन्नयनं कोपि जानाति न वेतिसंशये मनसि खेदो भवतीति श्रीनन्दसंवादेन तन्निराकरणपूर्वकं तयोरप्युत्सवः सम्पत्स्यत इत्युत्सवानन्तरमव्यवधानेनैव व्रजेन्द्रस्य मथुरागमनमुच्यते. एवं सत्युत्सवलक्षणो-ध्यायार्थोप्यान्तः सङ्गच्छत इति तमाह **गोपानि**ति.

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

एतेन वसुदेवकृतस्थितिनिषेधानन्तरं व्रजेन्द्रस्य पुनर्मथुरायामनागमनाद् व्रज एव कंसनैरपेक्ष्येण यथासुखं स्थित्या भगवदैश्वर्यमपि निरूपितं भविष्यति. पूर्वं रक्षायामनादरः स्थितः ; इदानीमादरेण **गोकुलरक्षार्थं गोपान**न्तरङ्गानादिश्य स्वयं **मथुरां गतः**. करो हि सर्वाभिः प्रजाभिर्दीयते. इदानीमपि तस्मिन् देशे श्रावण्यनन्तरमेव करप्रवृत्तिः. वर्षपर्यन्तं यद् देयं तदेकदा दीयते महद्भिः. **नन्द**स्तु महान् भवतीति तन्नामग्रहणम्. **कुरूद्वहे**तिसम्बोधनं राजधर्मज्ञापनार्थम्. यद्यप्यासक्तिज्ञापनार्थं पश्चात् करदानं निरूपितं तथापीश्वरे भगवति विद्यमानेन्येभ्यः करदानमनुचितमिति ततः प्रभृति तन्निवृत्त्यर्थम् ॥१९॥

वसुदेवपुत्रो भविष्यतीति शङ्कानिवृत्त्यर्थमुत्सवाधिक्यस्य ज्ञातत्वात् कंसकृतो-

---

प्रकाशः

गोपानित्यत्रायमैश्वर्याध्याय इति ज्ञापयितुमाहु**रेतेने**त्यादि. एवमग्रेपि तत्तदध्यायेषु वीर्यादिनिरूपणमर्थबलेन ज्ञातव्यम् ॥१९॥

लेखः

गोपानित्यस्याभासे **अकृत्रिमोत्सवार्थमि**ति. भगवत उत्सवलीलाया नित्यत्वाद् वैकुण्ठ एव सा तिष्ठति, अन्यत्राविर्भाविता कृत्रिमैव भवति. अतः स्थानस्य वैकुण्ठत्वं निरूपितं तेनोत्सवस्याकृत्रिमत्वं ज्ञापितं भवति. तथा चाकृत्रिमोत्सवत्वार्थ-मित्यर्थः ॥१९॥

पद्रवाभावार्थं कंसमन्त्रणस्य श्रुतत्वाद् विशेषरक्षार्थं च शीघ्रं नन्दं ततः प्रेषयितुं वसुदेवसमागमनवार्ता निरूप्यते, चतुर्णां मध्य एकस्याप्यभावे नोत्सवः सिध्येदिति. तत्र प्रथमं वसुदेवसमागमनमाह **वसुदेव** इति.

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥

मायाकृतस्य ज्ञापनं भगवत्कार्यमिति भगवच्चरित्रता. वसुदेवस्य नन्दस्य च

प्रकाशः

वसुदेव [1]इत्यत्राभासे **वसुदेवपुत्रो भविष्यतीतिशङ्कानिवृत्त्यर्थमिति नन्दस्य** या **वसुदेवपुत्रो भविष्यतीतिशङ्का तन्निवृत्ति**ज्ञापनार्थम्. नन्वेतावत्कार्यार्थं वसुदेवागमनमित्युक्तौ किं बीजमत आहुश्**चतुर्णामि**त्यादि. **नोत्सवः सिध्येदि**ति, उदर्काभावान्नन्दवसुदेवयोरन्येषां वा **न सिध्येदि**त्यर्थः. तथा चाध्यायार्थोप्यन्यथा भवेदित्याशयः. **तत्रे**ति निमित्तसप्तमी, तथा चोत्सवनिमित्तमित्यर्थः. श्लोकविवरणे ननु वसुदेवागमनसंवादादिकं न भगवत्कृतमिति न [2]दशमस्कन्धमध्यपातित्वमेतावतो ग्रन्थस्य वक्तुं शक्यमत आहु**र्मायाकृतस्य ज्ञापनमि**ति. **माया**वेश**कृतस्य** कंसमन्त्रणस्य श्रीनन्दे **ज्ञापनं** तद् भगवत्कारितत्वाद् **भगवत्कार्यमि**ति तस्यापि **भगवच्चरित्रते**ति सुखेन वसुदेवागमनादेः स्कन्धमध्यपातित्वं वक्तुं शक्यत इत्यर्थः. यद्वा स्वयं कापट्येन यत् कृतं तस्य ज्ञापनेपि श्रीनन्दज्ञानं तथेति तथा. [3]एतच्च सामान्यत उक्तं, विशिष्य त्वग्रे [4]निरूप्यम् ॥२०॥

लेखः

वसुदेव इत्यत्र **मायाकृतस्ये**ति. तथा कंसमंत्रणं मायाकार्यमिति चतुर्थाध्याये कारिकायां निरूपितत्वाद् दैत्यकृता उत्पाता मायाकृतास्तेषां "सन्त्युत्पाताश्च गोकुले" इत्यनेन ज्ञापनमित्यर्थः ॥२०॥

योजना

वसुदेव उपश्रुत्येत्यस्य व्याख्याने **मायाकृतस्य ज्ञापनमि**ति. कंसं प्रति माययोक्तं "जातः खलु तवान्तकृत् यत्र क्वचित् पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणां वृथे"ति. इह तव शत्रुरन्यत्र जातो न तु मथुरायामित्युक्त्या अन्यत्रोपद्रवः कर्तव्य इति

---

१. °त्यत्र. २. निरोध°. ३. तच्च. ४. °प्यते, °पयिष्यते.

धर्मभ्रातृत्वम्. यस्मिन् कल्पे वस्वादिदेवा ब्रह्मण एव जाताः कश्यपोपि भवति ब्रह्मण एव तदा भ्रातृत्वं सिद्धमेव. ततः पूर्वजन्मनि तथैवेति जन्मान्तरेपि धर्मभ्रातृत्वं, तदाह **भ्रातरमि**ति. आगमनात्पूर्वं चेच्छृणुयान्निवारयेदेव, करदानात् पूर्वमपि चेज्जानीयात् तदा न दापयेत्. दानपर्यन्तं च राजकीया**स्तदवमोचने** समायान्ति, तेषामज्ञानार्थं **ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञ** इति चोक्तम्. **अवमोचनमु**क्तचरणस्थानं; शकटादिकमवमुच्य यत्र स्थीयते ॥२०॥

भ्रातृत्वज्ञापनार्थं नन्दस्य सन्मानमाह **तं दृष्ट्वे**ति.

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥

सहसोत्थानमत्यादरज्ञापकम्. लोकव्यवहारादपि भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **देहःप्राणमिवागतमि**ति. मूर्छितो देहः प्राणे समागते शीघ्रमुत्तिष्ठति. तेजोविशेषं च प्राप्नोति यथायःपिण्डोग्निसम्बन्धे तथा सर्वदेवतामये वसुदेवे निकटे समागते तेजो ज्ञानं सर्वे च सद्गुणा वसुदेवनिष्ठा अत्र समागता वसुदेवाधिदैविकं रूपं च, तदाह

प्रकाशः

तं दृष्ट्वेत्यत्र **वसुदेवाधिदैविकं रूपमि**ति. निगमात्मकस्य **वसुदेवस्य** य**दाधिदैविकं**

योजना

बोधितम्. अत एव "कृपणां देवकीं वृथा मा हिंसीरि"त्युक्तम्. तथा च ये ये दैत्याः कंसेन श्रीगोकुले प्रेषणीयास्ते सर्वे मायया बोधनात् प्रेषिता इति तदागमनादे**र्मायाकृत**त्वमेव. तद् वसुदेवेन श्रीनन्दं प्रति ज्ञापितं "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इत्यनेन. तत् ज्ञापनं भगवत्कार्यं; यतः श्रीनन्दो वसुदेववचः श्रुत्वैव सावधानो भूत्वा भगवद्रक्षातत्परोऽभूदत इदं **भगवत्कार्यं**, तन्निरूपणं भगवच्चरित्रनिरूपणमेवेत्यर्थः ॥२०॥

तं दृष्ट्वेत्यत्र **देहः प्राणमिवागतमि**त्यस्य व्याख्याने. **वसुदेवाधिदैविकं रूपं चे**ति वसुदेवाधिदैविकं रूपं नन्दे समागतमित्यर्थः. एतत्समागमनस्य प्रयोजनं तु मथुरायां भगवतो गमनानन्तरं वसुदेवपुत्रत्वे ज्ञातेपि श्रीनन्दस्य भगवति स्वपुत्रभावदार्ढ्यम्, अन्यथा वसुदेवगृहे पुत्रत्वेन भगवत्स्थितिज्ञाने रुक्मिणीविवाहादिज्ञाने स्वपुत्रत्वबुद्धिनिवृत्तौ पुत्रत्वस्नेहो निवर्तेत, तथा सति कृतो निरोधोप्यकृतो भवेत्. अतः श्रीनन्दे वसुदेवाधिदैविकस्वरूपस्य समागमनं कारितं प्रभुणा. तथा सति

प्राणे समागते देह इवेति. इदं तु भगवच्चरित्रमेव, अत एवात्यन्तं **प्रीतः** आगमनेन सर्वस्वप्राप्त्या चात्यन्तं प्रीतः. **प्रियतम**स्तु व्यवहारे स्निग्धो भवति, परमार्थश्च मायां दूरीकृत्य भगवन्तं दत्तवानिति नह्येतादृशादधिकः प्रियो भवति. इदानीं च सर्वस्वं दत्तवान्. क्षेमालिङ्गनमाह **दोर्भ्यां सस्वज** इति. अन्यत् तु कृत्यमालिंगनत्यागं च न कृतवानित्यत्र हेतुमाह **प्रेमविह्वल** इति, प्रेम्णोद्गतेन विवशो जातः. एतादृशोपि पुनः स्थानस्थितोग्रिमकार्यं कृतवानितिभगवच्चरित्रम् ॥२१॥

लौकिकमाह **पूजित** इति. अन्यथा देवगुह्यमुच्यमानमस्मिन् न स्थिरीभवेत्.

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥२२॥

आदौ **पूजित**स्ततः सङ्कोचाभावेन **सुखमु**पविष्टः स्वयमप्य**नामयमा**रोग्यं **पृष्ट्वा** "वैश्यं पृच्छेदनामयमि"तिवाक्याद**दादृतो** नन्देन परमादरेण गृहीतः. देवगुह्य-

---

प्रकाशः

रूपं "यो नन्दःपरमानन्दः" इतिश्रुत्युक्तं तदिदानीं वस्ववताररूपे श्रीनन्दे समागतमित्यर्थः. **इदं त्वि**त्यन्याधिदैविकस्यान्यत्रस्थापनम् ॥२१॥ **पूजित** इत्य**त्रान्यथे**ति वसुदेवपूजनाभावे पूज्यपूजाव्यतिक्रमजन्यदोषाभावत्वे- नेत्यर्थः.

लेखः

तं दृष्ट्वेत्यत्र **अत एवे**ति स्वस्मिन् भगवच्चरित्रस्य सिद्धत्वादित्यर्थः. **अत्यन्तप्रीत** इति, **प्रियतम**पदेतिशयितप्रीतेरनुवादादत्रापि **प्रीत** इति पदेनातिशयिता प्रीतिरुक्तेति भावः. **आलिङ्गनत्यागं चे**ति वसुदेवाधिदैविकं रूपं तत्रैव स्थितमित्यालिङ्गित एव स्थित इति भावः. तथा. **चान्यत् कृत्यं** नमस्कारादीकं **तु** पुन**रालिङ्गनत्यागं च** प्रेमविह्वलत्वात् **न कृतवानि**त्यर्थः ॥२१॥

पूजित इत्यत्र **अन्यथे**ति नन्दकृतवसुदेवपूजाभावे इत्यर्थः; वसुदेवस्य

योजना

वसुदेवपुत्रत्वज्ञानेपि स्वपुत्रत्वज्ञानेपि स्वपुत्रत्वबुद्धिः स्थिरैव ॥२१॥ **पूजितः सुखमासीन** इत्यस्य विवरणे **अन्यथा देवगुह्यमि**त्यादि. यदि नन्दो वसुदेवं सत्कारादिना न पूजयेत् तदा वसुदेवेनोपदिश्यमानं भगवत्सम्बन्धिज्ञानं व्रजराजे स्थैर्यं न प्राप्नुयाद्, ज्ञानस्थैर्यस्य गुरूपूजासाध्यत्वात् वसुदेवस्य गुरुत्वाद्. अतो गुरुपूजाया आवश्यकत्वात् **पूजित** इत्युक्तम् ॥२२॥

कथनार्थं हेतुमाह **प्रसक्तधीः. स्वात्मजयोरि**ति. एकः पुत्रो नन्देनापि ज्ञायते परस्तु न ज्ञायत इति साक्षादुभयोः कुशलं प्रष्टुमशक्यमतः साधारणं प्रष्टव्यमिति तस्य प्रकृतानुपयोगित्वमाशङ्क्य हेत्वर्थमाह **प्रकर्षेण सक्ता धीर्य**स्येति. **इदं** वक्ष्यमाणम्. साधारणं रूपमाह **विशां पत** इति, देशानां राजेतिसम्बोधनं गूढवचनज्ञानार्थम् ॥२२॥

आदौ तं पुत्रवत्त्वेन प्रोत्साहयति **दिष्ट्ये**ति.

॥ वसुदेव उवाच ॥

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

हे **भ्रातः, प्रवयसो** वृद्धस्य **ते** प्रजाशायां निवृत्तायां **प्रजाशायाः** स्वयमपि **निवृत्तस्य प्रजा समपद्यते**ति **यद् दिष्ट्या** परमभाग्येन, **इदानीमप्यप्रजस्ये**ति. यद्यपि स्पष्टतया निरूपितः प्रजाभावस्तथाप्यन्वये भ्रमो भगवत्कृतो निरूपितः. **अप्रजस्ये**ति कृत्रिमप्रजापि न सम्पादितेति ज्ञापितम्. वृद्धत्वात् स्वरूपायोग्यता निरूपिता. आशाया निवृत्तत्वात् प्रयत्नो निवारितः. इच्छाया अपि निवृत्तत्वात् पुरोहितादिद्वारापि

टिप्पणी

दिष्ट्या भ्रातरित्यत्र **इदानीमि**त्यादि. वसुदेवबुद्धिमनुसृत्येदमुक्तमिति ज्ञेयम्.

प्रकाशः

तस्येत्यादि साधारणप्रश्नस्य विशेषप्रश्नानुपयोगित्वमाशङ्क्य प्रश्नमात्रे **हेत्वर्थमु**भयत्रासक्तिमुक्तवानित्यर्थः[१] ॥२२॥

दिष्ट्या भ्रातरित्य**त्रेदानीमि**त्यादि. **अन्वय** इति [२]लौकिकरीतिकप्रजान्वये. टिप्पण्यां श्रीनन्दगृहे भगवत्प्रादुर्भावस्य पूर्वमुपपादितत्वाद**त्राप्रज**पदस्यैवं व्याख्यानं कुत इत्याकाङ्क्षायामाहु**र्वसुदेव** इत्यादि. पक्षान्तरमाहु**र्वस्तुत** इत्यादि. अस्य

लेखः

देवगुह्यवक्तृत्येन गुरुस्थानीयत्वादिति भावः ॥२२॥

दिष्ट्या भ्रातरित्यत्र **प्रजाशात** इति, **इच्छाया अपी**त्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात् प्रजेच्छात इत्यर्थः. **आशाया** इति, "तमाशाब्रवीदि"त्यत्रोक्ता देवतारूपा आशा एतस्मात् **निवृत्ता** तिरोहिता, अतो वैदिकः **प्रयत्न** आशायै चरुनिर्वापरूपो

---

१. °माहेत्यर्थः, °माहेत्युक्तवान्. २. लुप्तम्.

प्रयत्नो निवारितः. **प्रजा**शब्दोपत्यमात्रवाची, अतो नानृतम्. **समपद्यते**त्यकस्मादागमनम्. मायायामपि रेतोजनितत्वाभावाय वृद्धत्वादिकीर्तनम्. तं प्रति भगवत्यपि तथात्वज्ञापनायोभयं भगवदिच्छयातो **दिष्ट्ये**त्युक्तम्. अनेन सामान्यतस्तस्य स्वरूपमप्युक्तम्, अन्यथा भ्रातृवञ्चने दोषः स्यात् ॥२३॥

टिप्पणी

वस्तुतस्तु **प्रजाशब्दोपत्यमात्रवाची**त्यग्रे वचनादिदानीमप्रजत्वोक्तिः कन्याभिप्रायेण; तस्या गतत्वात्तथात्वम्. **प्रजा यत्समपद्ये**ति[1] तु भगवदभिप्रायेण. अन्य**थेदानीमप्रजस्य प्रजा समपद्यते**ति विरुद्धं वाक्यं स्यात् ॥२३॥

प्रकाशः

वसुदेववाक्यत्वात् तद्बुद्ध्यनुसरणस्य युक्तत्वेपि यत् पक्षान्तरकथनादिकं तत् सरस्वतीसत्यत्वसमर्थनाय ज्ञेयं "वाचालं बालिशमि"त्यादिवत्. सुबोधिन्या**मुभयमि**ति रेतोजनितादिरूपः प्रजाभावः प्रजासम्पत्तिश्चेत्युभयमित्यर्थः. **अनेने**ति **दिष्ट्ये**तिपदाद् भगवदिच्छाबोधनेन ॥२३॥

लेखः

निवारितो देवतायास्तिरोहितत्वादित्यर्थः. अत्र पाठद्वयमप्यभिप्रेत्य **प्रजाशायां निवृत्तायामि**ति पाठानुसारेणेदमुक्तम्. **प्रजाशाया निवृत्तस्ये**तिपाठे **आशा**पदमिच्छावाचकमित्याशयेनाहुः **इच्छाया अपी**ति. "किं प्रजया करिष्याम" इति शास्त्रपर्यालोचनादितिभावः ॥२३॥

योजना

प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत इत्यस्य व्याख्याने **प्रजाशब्द अपत्यमात्रवाची, अतो नानृतमि**ति. मायारूपकन्यात्मकप्रजाया जातत्वात् **प्रजा यत् समपद्यते**ति वचो नानृतमित्यर्थः. **तं प्रति भगवत्यपी**ति, श्रीनन्दं प्रति पुत्रे श्रीकृष्णे रेतोजनितत्वाभावज्ञापनाय **प्रवयस**इति पदेन वृद्धत्वादिकीर्तनमित्यर्थः. **उभयं भगवदिच्छये**ति. भगवदाविर्भावो मायाजन्म चेत्युभयं भगवदिच्छयैव केवलया, न तु स्त्रीपुरुषसंयोगादिकं कारणमस्ति, उभयोर्मायाभगवतोः शुक्रजन्यत्वाभावात्. **अनेन सामान्यतस्तस्य स्वरूपमप्युक्तमि**ति, **तस्य** श्रीव्रजराजसमीपे भगवतो ह्यजत्वादिरूपं स्वरूपमप्युक्तमित्यर्थः ॥२३॥

---

१. यत्समपद्यतेति मू. पा.

आगमने जातं दर्शनं चाभिनन्दति **दिष्ट्ये**ति.

दिष्ट्या संसारचक्रेस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

अस्मिन् संसारचक्रे वर्तमानः पुनर्भवः पुनरुत्पन्नो म**योपलब्ध** इति यदेतदपि **दिष्ट्या.** संसारो हि चक्रभ्रमात्मकः ; भ्रमणे पतितोत एवाधो गच्छेत्, दूरे स्थितस्तु परिभ्रमेत्. चक्रे वर्तमानस्तु पुनर्न दृश्यत एव, चक्र एव वर्तमाने उभयोरन्यतरस्य वा मज्जनसम्भवात्. मग्नश्चेत् पुनरुत्तिष्ठति तस्य पुनर्भव एव. तथा सर्वमारकस्य कालस्य संवत्सरात्मकस्य वशं गताः पुनर्वत्सरान्ते चेत् तिष्ठति तदा पूनर्भूता एव. संवत्सरः प्रजापतिर्जातो जनकत्वात्. अन्यथा कालो भवेत्. तत्रापि पुत्रादिसौख्यं चेत् प्राप्नुयात् तदा पुनरुत्पन्नः पुत्ररूपेणालौकिकः स्यात्— एतद् भाग्यव्यतिरेकेण न भवतीति **दिष्ट्या**. अतः **संसारचक्रे** स्थितिरपि **दिष्ट्या, पुनर्भवो**पि **दिष्ट्या,** म**योपलब्धो**पि **दिष्ट्या,** मृत्युरस्मन्निकटे सदा वर्तत इति. **भवानि**ति स्नेहः. **अद्ये**त्यलभ्यलाभः. एतस्य केवलमदृष्टसाध्यत्वे हेतुमाहु**र्दुर्लभं प्रियदर्शनमि**ति. संसारे सर्वमप्रियं दुःखदत्वात्. तत्र **प्रियदर्शनं दुर्लभमेव**. प्रियस्य प्रीतिजनकस्य ॥२४॥

एवं खेदेनैव स्थातव्यमितिशङ्कां परिहरन्ननागमनदोषं च परिहरन् दर्शनस्य

लेखः

दिष्ट्येत्यस्याभासे **स्वदर्शनं चे**ति पूर्वश्लोकाभासमादाय **चकारः ; प्रोत्साहयति दर्शनं चाभिनन्दती**त्यन्वाचयः.

व्याख्याने **चक्रभ्रमात्मक** इति चक्राकारभ्रमात्मक इत्यर्थः. भ्रमस्वरूपमाहु**र्भ्रमणे** इति. **अत एवे**ति भ्रमणादेवेत्यर्थः. चक्रस्वरूपमाहुः **चक्रे** इति. **चक्र एवे**ति एतादृशेन आवर्तनेनेत्यर्थः. **अलौकिकः स्यादि**ति. पुत्ररूपेण स्वस्यैवोत्पत्ति"रात्मा वै पुत्रनामासी"ति श्रुतिगम्या, न तु लौकिकप्रमाणगम्या. तथा च लौकिकप्रमाणागम्यः स्यादित्यर्थः ॥२४॥

योजना

संवत्सरः प्रजापतिर्जात इति. "संवत्सरो वै प्रजापतिरि"ति श्रुतेः संवत्सरस्य प्रजापतित्वम्. तत्त्वं च पदार्थोत्पादकत्वं, एवं सति यदा संवत्सरे नाशो न जातस्तदा तेन संवत्सरेणैवायमुत्पादितः, अतः प्रजापतिरित्यर्थः. **अन्यथा काल** इत्यादि, यदा संवत्सरो मारयेत् तदा न संवत्सरस्य प्रजापतित्वं किन्तु कालत्वं मृत्युरूपतेत्यर्थः ;

दुर्लभत्वमुपपादयति **नैकत्रेति**.

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥

प्रिययोरेकत्र संवासो न सम्भवति, तत्रापि **सुहृदां** बन्धूनां मध्ये प्रिययोः. तत्र हेतुश्चि**त्रकर्मणामि**ति. यद्येकं कर्म भवेदेकत्रोत्पन्ना भवेयुः प्रपायामेकदा सह समागता इव. तत्राप्यनियमः, तदैव मिलितानां **चित्रं कर्म** येषां; कर्माधीनाः कर्मणैवोत्क्रान्तिगत्यागतिमन्तो भवन्ति. न केवलं कर्माधीना एव, तत्रापि कालो महान् बाधक इति दृष्टान्तेन कालस्य बाधकत्वमाह**ौघेनेति**. प्रवाहेण यथा **विशेषत उह्यमानाः** क्षणं मिलिताः पुनर्वियुक्ता भवन्ति. तत्रापि **प्लवा** नौकारूपाः. तत्रोभयोः प्रवर्तकत्वं— जलस्य कर्णधारस्य च. प्रवाहस्य सहजत्वख्यापनाय **स्रोतस** इत्युक्तम्. अनेन प्लवानां गमनागमनमध्ये सङ्गतिः क्षणमात्रमेव भवतीति निरूपितं पारे गतस्यापि दर्शनाभावश्च ॥२५॥

एवं दर्शनं नन्दं चाभिनन्दय देवगुह्यप्रकारेणाह **कच्चिदिति**.

कच्चित् पशव्यं विरुजं भूर्यम्बुतृणवीरूधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥

कच्चित् सम्भावनाप्रश्ने. **बृहद्वनं पशव्यं कच्चित्?** पशूनां हितं **पशव्यं,** यत्र पशवो रमन्ते. परम्परया पशुस्थान आधिदैविकपशुसद्भावे वा पशूनां रमणम्.

प्रकाशः

नैकत्रेत्य**त्रानागमनदोषमि**त्येतावदवधि मिलनार्थमनागमने दोषम्. **तत्रापीति** प्रपायामप्यागमनस्येत्यर्थः. **तदैवेति** धर्मसमयेपीत्यर्थः. दार्ष्टान्तिके कालस्य प्रवाहत्वं कर्मणः कर्णधारत्वं ज्ञेयम् ॥२५॥

लेखः

कच्चिदित्यस्याभासे **देवगुह्ये** इति, द्वितीयाद्विवचनान्तमिदम्.

योजना

संवत्सरस्य मृत्युरूपताया अपि प्रमाणसिद्धत्वात् ॥२४॥

कच्चित् पशव्यं विरुजमित्यस्य विवृतौ **आधिदैविकपशुसद्भावे वेति** "गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासन" इतिकृष्णोपनिषत्सु या गावो निरूपितास्तेषां सद्भावे इत्यर्थः ॥२६॥

तत्रापि **विरुजं;** क्वचिद् देशविशेषे पशूनां रोगा भवन्ति यत्रैवाकाले पशुनाशः, सर्वथा रोगाभावस्तु भगवत्सान्निध्यादिति सामान्याभावेन[1] भगवत्त्वं ज्ञापितम्. पशूनां भक्ष्यादिसम्पत्तिं च पृच्छति **भूरिण्यम्बूनि तृणादीनि वीरूधो** लताश्च यस्मिन्. जलानां बहुत्वं सरसताख्यापकं, तेन दुग्धसम्पत्तिरपि निरूपिता. तृणानां बहुत्वं पशूनामभिवृद्धिहेतुः. वीरूधामाधिक्यं घृताधिक्यजनकं सौगन्ध्यजनकं च. सम्भावनायां हेतुमाह **बृहद्वनमि**ति, अर्थतः शब्दतश्च **बृहद्वनं,** शब्दतो धर्महेतुश्चोक्तः. **तदिति** प्रसिद्धम्. **अधुना यत्रास्स** इति, सर्वदा स्थितिस्थानं तु प्रष्टव्यं न स्यात्. कदाचित् तस्य स्थितिर्गोष्ठेष्वपि भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **सुहृद्वृत** इति. बन्धुभिः कुटुम्बेनापि सहितो यत्र वर्तस इत्यर्थः ॥२६॥

एवं देशकुशलतां पृष्ट्वा बालकयोः कुशलं पृच्छति **भ्रातरिति**.

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥२७॥

अन्यत्र भार्यापुत्रयोः स्थापनमनुचितमिति **भ्रातरि**त्युक्तम्. **मम सुत** इति स्वानुभवः. **मात्रा सह भवद्व्रजे** कुशली **कच्चित्?** रक्षामात्रमेव तव कर्तव्यं,

---

प्रकाशः

परम्परयेति पारम्पर्येणेत्यर्थः. **सामान्याभावेनेति** [2]रोगप्रतियोगिकेनेत्यर्थः. **बृहद्वनमि**त्यत्र **बृहद्वनशब्दतो धर्महेतुश्चोक्त** इति, बृहद्वनरूपो देशो बृहत्त्वादक्षररूपत्वात् तथेत्यर्थः ॥२६॥

लेखः

व्याख्याने **आधिदैविकेति**, वैकुण्ठागमनवत् "यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास" इत्यादिश्रुत्युक्तनित्यलीलास्थपशूनामागमने इत्यर्थः. **सामान्याभावेनेति** रोगाणां सामान्यत एवाभावेनेत्यर्थः. **शब्दत** इति. **बृहत्** ब्रह्मरूपं **वनमि**तिव्युत्पत्तेः **शब्दतो** धर्मे तद्वनं हेतुरुक्तः, "अयं हि परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनमि"तिस्मृतेः. तथा च तत्र गोचारणरूपो धर्मः सम्यक् सेत्स्यतीति भावः ॥२६॥

भ्रातरित्यस्याभासे **देशकुशलतामि**ति. देशकुशलप्रश्नो भगवत्कुशलतात्पर्यक इत्युक्तत्वाद् देशेन कुशलं ययोस्तत्तां बालकयोः पृष्ट्वेत्यन्वयः. **कुशलमि**ति बलस्येति शेषः ॥२७॥

---

१. सामान्याभाव इतिसप्तम्यन्तोपि पाठः. २. 'गिने'.

बालकशुश्रूषा त्वन्यत एव सिद्धा, भाराधिक्यं वा. **तातं भवन्तं मन्वान** इति दीनत्वम्. पालनादिकं लौकिकं न प्रष्टव्यमेव; **भवद्भ्यां** नन्दयशोदाभ्या**मुपलालितः**. पालनप्रीणनानन्तरमुपलालनमतस्ते च निरूपिते. भगवांस्तु न प्रष्टव्य एव. प्रकारान्तरेण तु पृष्ट एव ॥२७॥

नन्विदानीं तवापि सर्वा समृद्धिरस्त्यतः कथं दैन्यं भाषस इत्याशङ्क्याह **पुंस** इति.

पुंसस्त्रिवर्गोभिहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोर्थाय कल्पते ॥२८॥

पुंसस्त्रिवर्गो धर्मार्थकामाख्यः शास्त्रेऽ**भिहितः** कर्तव्यत्वेन समीचीनत्वेन च, परं **सुहृदः** सम्बन्धी चेद्, एकाकिना तु मोक्षः किल सम्पादनीयो न धर्मादित्रयम्. **हि** युक्तश्चायमर्थः, एकाकिनस्त्रिवर्गविध्यभावात् प्रयोजनाभावाच्च. **सुहृत्पदेन** चेतनविषयमात्रत्वमुक्तं, तेन यत्र क्वापि त्रिवर्गफले सुहृदो भवन्त्येव. किञ्च न सुहृत्सम्बन्धमात्रेण त्रिवर्गस्योपयोगः किन्तु सुहृदै**वानुभावितः** पुष्टः सह संवर्धित इत्यर्थः. ततः किमत आह **न तेष्विति**. **तेषु क्लिश्यमानेषु** सुहृत्सु सत्सु **त्रिवर्गः पुरुषार्थाय न कल्पते** पुरुषार्थरूपो न भवति, तेषां तत्र मुख्यत्वात्. यथात्मनः कंसस्य पुत्रमारकत्वान्नाकारणं **देवकीपुत्रत्वं** सम्भाव्येतेति. अतो दीनत्वमुचितमेव. द्रव्यादिदानं तु भेदजनकम् ॥२८॥

एतत्पृष्टमवचनेनैवाङ्गीकृत्य वसुदेवस्य सम्भावनामाह नन्दः **अहो** इति.

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥२९॥

लोकरीत्या तस्य दुःखे निरुक्ते दुःखाभावो भवति, परमार्थज्ञाने च वसुदेवस्य सुखं भवति, वृत्तान्तकथनेन स्वस्यैतदन्वेषणं सर्वदेति[1] ज्ञापितम्. यद्यपि वसुदेवस्य बह्व्यः स्त्रियस्तासां पुत्राश्च कुशलिनोपि **देवकीपुत्राः कंसेन बहव** एव षड्

टिप्पणी

न तेष्वित्यत्र यथात्मन इत्यादि. नन्दस्यातिप्रियत्वात् तत्तोषार्थं स्वगृहे नन्दाकारणमुचितं यद्यपि, तथापि तथाकृते भगवति देवकीपुत्रत्वं कंसः सम्भाव्य नन्दानिष्टं कुर्यात्तदा सुहृन्नन्दः क्लिष्टो भवेदतो नाकारणम्. इदमप्येकं दुःखमेतदुक्त्या ज्ञाप्यते. तेन **यथात्मनो** नन्दस्य स्वगृहे **नाकारणमि**ति सम्बन्धः. शेषं हेतुत्वेनोक्तम् ॥२८॥

निःसाधनफलात्मायं प्रादुर्भूतोऽस्ति गोकुले ।
अतो वयं सुनिश्चिन्ता जाताः सर्वत एव हि ॥

प्रकाशः

चेतनाविषयमात्रत्वमिति स्त्रीपुम्प्रभृतिसर्वचेतनविषयत्वम्. तथा च **सुहृत्पदेन** न केवलं पूर्वसिद्धकुटुम्बिन एव ग्राह्याः किन्तु यथाकथञ्चित्सम्बन्धि स्त्र्यादिमात्रं ग्राह्यमितिभावः. तदेवाहु**स्तेने**त्यादिना. टिप्पण्यां **यथात्मन** इतिफक्किकायाः प्रयोजनमर्थं चाहु**र्यथे**त्यादि ॥२८॥

लेखः

पुंस इत्यत्र. ननु कामे सुहृदामुपयोगः स्पष्टः, धर्मार्थयोः क्वोपयोग इत्यत आहुः **चेतने**ति, चेतनो विषयः सर्वोपि सुहृत्पदवाच्यः. तथा च धर्मे तत्साधका ऋत्विगादयोर्थे च तत्साधकाः सेवकादयः सुहृदयाः इत्याहुः **यत्र क्वापी**ति. **न तेष्वि**त्यत्र, ननु भयात् स्वगृहेऽनाकारणेपि उपढौकनीयं तावत् द्रव्यमत्रैव देयमित्याशङ्क्याहुः **द्रव्यादिदानं त्विति** ॥२८॥

अहो इत्यत्र एतत्श्लोकतात्पर्यमाहुः **लोकरीत्ये**ति, अग्रिमश्लोकतात्पर्यमाहुः **परमार्थज्ञाने चे**ति ॥२९॥

योजना

न तेषु क्लिश्यमानेष्वित्यस्य विवृतौ **यथात्मनः कंसस्य पुत्रमारकत्वात् नाकारणमि**ति. **आत्मनः नाकारणमि**त्यन्वयः; **आत्मनो** वसुदेवस्य व्रजराजेन स्वगृहे पुत्रोत्सवसमये **नाकारणमि**त्यर्थः. तत्र हेतुः **कंसस्य पुत्रमारकत्वादि**ति. तत्रापि हेतु**र्देवकीपुत्रत्वमि**ति. नन्दपुत्रे **देवकीपुत्रत्वं सम्भाव्येता**तो वसुदेवस्य नाकारणम्. एवं सति यदा तादृङ्मित्रस्यापि नाकारणं तदा कृतोप्युत्सवस्तादृगानन्दं न जनयेदतः सुहृदां सान्निध्ये सुहृदां क्लेशाभाव एव त्रिवर्गस्य पुरुषार्थत्वं नान्यथेति वसुदेवाशयः ॥२८॥

१. सर्वदैवेतीत्यपि पाठः.

हताः. सर्वैरेव भगवद्गुणैः सह तस्य द्रोहः सिद्धः, अत एव **अहो** इत्याश्चर्यम्. एको हि मारणीयः, **एका त्ववशिष्टावरजा** सर्वान्ते जाता. एतद् भगवच्चरित्रम्, अन्यथान्यवचनानां निरूपणमत्र नोपयुज्येत. सापि चेदपत्यादिकमुत्पाद्य विवाहानन्तरं गच्छेत् तथापि देवक्याः कृते वंशस्तिष्ठेत् तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **कन्ये**ति. **सापि** सिद्धापि देवतारूपापि पुत्राभावखेदनिवर्तिकापि **दिवं गता** स्वयमेवोड्डीय सशरीरं गता. अनेन न केवलं कंसस्यैव दोषो; भाग्यमेव तादृशमिति ज्ञापितम्, अन्यथा पश्चात् सा समागच्छेत् ॥२९॥

कंसकृतं तु भयं तस्या नास्तीति तस्मादेतादृशेर्थेदृष्टमेव प्रयोजकमित्याह **नूनमि**ति.

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥३०॥

सर्वस्यापि पुरुष**स्यादृष्टे निष्ठा, अयं** तु कर्मप्रधानः; यत्किञ्चित् करोतु, पर्यवसानमदृष्टाधीनमित्यर्थः. प्रारम्भोप्यदृष्टाधीन एवेत्या**हादृष्टपरम** इति. अदृष्टमेव परमं नियामकं प्रवर्तकं यस्य; अदृष्टादेव प्रवर्तते, अदृष्टानुसारेणैव फलं च प्राप्नोतीत्युक्तम्. अत्र हेतु**र्जन** इति, यस्तु जायते स कर्मवशादेव, कर्मवादिनां तथैव सिद्धान्तः. अतः कर्माधीनं सर्वं ज्ञात्वा यस्तिष्ठति तस्य शोको न भवतीत्या**हादृष्टमि**ति.

प्रकाशः

अहो त इत्यत्रै**तद**दित्यवरजात्वज्ञानम्. नन्ववरजात्वं न लोकरीत्योक्तं किन्त्वन्यप्रजोत्पत्तिसम्भवाभावेनेत्यत आहु**रन्यथे**त्यादि. अग्रे प्रजोत्पत्तिसम्भावनायां **नूनमि**त्यादिकं न वदेदित्यर्थः ॥२९॥

नूनमित्यत्र **यथा भगवानि**ति भक्तानामिति शेषः ॥३०॥

इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशे पञ्चमाध्यायविवरणम् ॥

लेखः

नूनं हीत्यत्र **यथा भगवानि**ति भगवदीयानामिति शेषः. **ब्रह्म**पदेनोत्तर-काण्डप्रतिपाद्या ज्ञानशक्तिः **कर्म**पदेन पूर्वकाण्डप्रतिपाद्या क्रियाशक्तिः **भगवत्**पदेन भागवतप्रतिपाद्यो ज्ञानक्रियाशक्तिमानिति विभेदः. **पक्षान्तरेष्वि**ति ब्रह्मपक्षे भगवत्पक्षे कालपक्षे स्वभावपक्षे चेत्यर्थः. **प्रकारान्तरेणे**ति उपालम्भे प्रार्थनायां वा तदनुरूप-

आत्मनस्तत्त्वं यथार्थरूपं प्रवर्तकनिवर्तकं यथा ब्रह्मवादिनां ब्रह्म यथा भगवांस्तथा कर्मात्मतत्त्वमिति **यो** मन्यते **स न मुह्यति**. पक्षान्तरेषूपालम्भोपि कश्चित् स्यात्, कर्मपक्षे स्वकृतत्वान्न कोप्युपालभ्यो न प्रार्थनीयः. पक्षान्तरे तु प्रकारान्तरेण मोहः स्यात्. एवं शोकापनोदनार्थं कर्मतत्त्वमुपदिष्टम् ॥३०॥

एवं सम्भाषणेन कियत्कालं स्थित्वा ततो नन्दं प्रेषयितुं वसुदेवस्तस्य भयमुत्पादयति **कर** इति.

॥ वसुदेव उवाच ॥

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥३१॥

तत्कृतमनूद्यते कृतकार्यत्वज्ञापनाय– **वार्षिकः करो राज्ञे दत्तो वयं च** सुहृदो **दृष्टा.** अतः कौतुकार्थं **नेह बहुतिथं स्थेयम्**. तत्र हेतु**र्गोकुले** च**कारादन्यत्राप्युत्पाताः सन्ति**, तथामन्त्रणस्य श्रुतत्वात् ॥३१॥

एतावच्छ्रवणमात्रेणैव नन्दादयस्ततः शीघ्रं निर्गता इत्या**हे**तीति.

इति नन्दादयो गोपा प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

निर्गमने प्रधानगुणभावस्य विस्मृतत्वात् **नन्दादय** इति. निर्गमने सर्व एवोक्ताः. **इत्येवं शौरिणोक्ताः,** न त्वधिका काचित् सम्भावना जाता. स्वतस्तेषां गमनेपि सामर्थ्यं न जातमिति साधनानां पुरस्कारमा**हानोभिरि**ति. **अनडुद्युक्तै**र्योजित-बलीवर्दैः. **तमनुज्ञाप्य** तमपि ततः स्वगृहं प्रेषयित्वा लोके यथा स्नेहोभिव्यक्तो न भवति तथा कृत्वा **गोकुलं ययुः** मध्ये कंसाद्युपद्रवमप्राप्य सुखेन गोकुलं प्रविष्टा इत्यर्थः॥३२॥

गोकुलोत्सवमीशानं गोपगोपीगवां हितम्।

लेखः

फलादाने शोकः स्यादित्यर्थः ॥३०॥

अध्यायार्थप्रकरणार्थो कारिकया निरूपयन्तो नमस्यन्ति **गोकुलोत्सवमि**ति. आद्यविशेषणाभ्यां लक्ष्यलक्षणभेदेनोत्सव ऐश्वर्यं चाध्यायार्थो निरूपितः. उत्सवो लक्षणमैश्वर्यं लक्ष्यमिति निबन्धे निरूपित"मन्यत्रापि गतः कृष्ण" इत्यनेन. प्रकरणार्थमाहुः **गोपे**ति. **तामसानां गोपगोपीगवां ज्ञानतः कर्मतश्च हितम्.** ज्ञानं

ज्ञानतः कर्मतश्चैव तामसानां नमाम्यहम् ॥(१७)॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरण ऐश्वर्यनिरूपकप्रथमाध्यायस्य स्कन्धादितः पञ्चमाध्यायस्य विवरणम् ॥

लेखः

गुणगानकार्यं – भगवान् पुष्टिमार्गीयज्ञानवान् अतो गुणान् गापयतीत्यर्थः. एतेन उत्तरदलानुभवो निरूपितः. पूर्वदलानुभवमाहुः **कर्मत** इति, भगवत्क्रिययैव व्याप्ता यथोचितं भजनं कुर्वन्ति. तदुक्तं "गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तम्" इतिश्लोकविवरणे "भगवत्क्रियाशक्त्यैव व्याप्ता न तु स्वक्रिया काचिदि"ति. एवं दलद्वयानुभव उक्तः. इदं निरूपितं निबन्धे "ज्ञानं तु गुणगानं ही"ति कारिकाद्वयेन. तथाच एवं **हितं** दलद्वयानुभावनेन निरोधस्थैर्यसम्पादकमित्यर्थः (१७).

योजना

गोकुलोत्सवमीशानं गोपगोपीगवां हितम्। ज्ञानतः कर्मतश्चैव तामसानां नमाम्यहम् ॥ इति. गोकुलोत्सव पदेनोत्सवोध्यायार्थत्वेन निरूपितः. **ईशान**पदेन प्रमाणप्रकरणप्रथमाध्याये क्रमप्राप्तम् ऐश्वर्यं निरूप्यत इतीश्वरत्वेन भगवान् निरूपितः. **गोपगोपीगवां हितमि**ति **तामसानां गोपगोपीगवां ज्ञानतः कर्मतश्च हितम्**. इह वियोगावस्थायां यो भगवतोन्तःस्थित्यनुभवः स ज्ञानशब्देनोच्यते. तथा च स्ववियोगावस्थायामन्तः प्रकटीभूय हितकारकमित्यर्थो भवति. संयोगावस्थायां यो लीलया नानाविधविहारः स कर्मशब्देनाभिधीयते. तथा च तादृशविहारेण संयोगावस्थायां परमानन्ददानेन हितकर्तृत्वमेतेनोक्तम्. एवं वियोगसंयोगावस्थाभेदेन दलद्वयानुभवानन्दमनुभावयित्वा सर्वदा व्रजस्थितान् परमानन्दयुक्तान् यः करोति

कारिकार्थः

गोकुलोत्सवमिति **तामसानां गोपगोपीगवां ज्ञानतः कर्मतश्च हितं गोकुलोत्सवमीशानं नमामी**ति. एतेन अध्यायप्रकरणार्थौ निरूपितौ– **गोकुलोत्सवमीशानमि**तिपदद्वयेन लक्ष्यलक्षणभेदेन उत्सव ऐश्वर्यं च अध्यायार्थो निरूपितः. लक्ष्यमैश्वर्यं लक्षणमुत्सवः. प्रकरणार्थमाहु **गोपे**ति. **ज्ञानं** गुणगानकार्यम्. एतेन उत्तरदलानुभवो निरूपितः. **कर्मत** इत्यनेन सेवात्मककर्मरूपपूर्वदलानुभवो निरूपितः (१७).

योजना

तमहं नमामीति तामसप्रकरणस्यार्थो निरूपितः. वियोगावस्थायाः ज्ञानरूपतोक्तिः संयोगावस्थायाः कर्मरूपत्वोक्तिः परोक्षवादेन ज्ञेया. यतो ज्ञानमार्गे अन्तरेव भगवत्स्फूर्तिरेवं वियोगेपि तथेति ज्ञानरूपतोचिता. एवं कर्ममार्गे सर्वोपि बहिर्व्यापार एव मुख्य एवं संयोगेपीति संयोगस्य कर्मत्वकथनमुचितम्. अस्यां कारिकायां यत् सर्वदा गोकुलवासिनां हितकारकत्वमुक्तं तत् केन प्रकारेणेति- प्रकारविशेषजिज्ञासायां श्रीमत्प्रभुकृतं श्रीगोकुलाष्टकमनुसन्धेयं "श्रीमद्गोकुलसर्वस्वं श्रीमद्गोकुलमण्डनमि"त्यादि नाम्नामर्थस्तात्पर्यं च सम्यक्तया भावनीयम्. श्रीगोकुलाष्टके हि "श्रीमद्गोकुलसर्वस्वमि"त्यादिनामसु कस्मिंश्चित् नाम्नि संयोगावस्था कुत्रचिद् वियोगावस्था निरूपितेति गोकुलाष्टकमेतत्कारिकाविवरणरूपमिति तदाश्रितैराकलनीयम् (१७).

॥ इति पञ्चमोध्यायः ॥

॥ द्वितीयः स्कन्धादितः षष्ठोध्यायः ॥

चरित्रमद्भुतं शास्त्रे लोकेपि भगवत्कृतम् ।
पूतनासुपयःपानं षष्ठे रक्षा निरूप्यते ॥(१)॥
एकं कार्यं भगवतो बह्वर्थानां तु साधकम् ।
अतो दुष्टवधो रक्षा बालकानां ततः कृता ॥(२)॥

प्रकाशः

षष्ठाध्यायतात्पर्यं निरूपयन्तो यथा पूर्वाध्यायोक्तलीलायां स्वरूपप्राकट्यमात्रेण निरोधं **कृतवांस्तथा** नाग्रे किन्तु लीलयापीति वक्तुं किञ्च पूर्वाध्याये यथोत्सवकृतिर्निरोध-बोधिका तथात्र रक्षाकृतिरिति बोधयितुमत्रेदं **चरित्रं रक्षा** च प्रसङ्गसङ्गत्या **निरूप्यते.** एतस्य चरित्रस्य शास्त्रेद्भुतत्वं तु"तोकेन जीवहरणमिति"द्वितीय-स्कन्धवाक्याद् दुष्टभाववत्याः शास्त्रीयसाधनरहिताया मुक्तिदानाच्च ज्ञेयमित्यर्थः. यद्वा. "**पूतनासुपयःपानं रक्षे**"तिरूपकं; तथा [१]सत्येकमेवात्र निरूप्यम्(१).

लेखः

षष्ठाध्याये **चरित्रमिति पूतनासुपयःपानं** ततो बाल**रक्षा**च **चरित्रं षष्ठे निरूप्यत** इत्यन्वयः(१). ननु तन्मारणे तद्देहान्तर्गतबालानामपि मरणमेव सम्पद्येत स्त्रिया मृतौ तद्गर्भस्येवेति कथं बालानां रक्षेत्यत आहुः **एकमिति**(२).[२]

योजना

षष्ठेध्याये कारिकासु **रक्षा बालकानां ततः कृते**ति. दुष्टायाः पूतनाया मारणेन व्रजस्थानां रक्षा जाता, अन्यथा नन्दगृहागमनात् पूर्वं यथा पूतनया बाला मारितास्तथा पुनरपि मारयेत्(२).

कारिकार्थः

षष्ठाध्याये **चरित्रमद्भुतं शास्त्र** इति. **पूतनाया असुभिः** सहितस्य **पयसः पानं रक्षा** पूर्वभक्षितबालानां कृतार्थतान्येषां च रक्षेत्यर्थः (१). **एकमिति** एकस्य कार्यस्य बह्वर्थसाधकत्वं टिप्पण्यां पञ्चमाध्याये कारिकाव्याख्याने स्फुटीकृतम् (२).

---

१. 'एकं कर्मैवात्र. २. अत्र '**रक्षा बालकानामिति** पूतनायां स्थितानामासुरसम्बन्धाद् रक्षेत्यर्थ' इत्यधिकमेकस्मिन्नादर्शे.

वीर्यं भगवतो वर्ण्यं मायया भगवत्कृतम् ।
दुःखं तस्मात् तु मुक्तिर्हि निरोधोक्तेर्न दूषणम् ॥(३)॥

टिप्पणी

षष्ठेऽध्याये वीर्ये वर्णनीये भक्तदुःखोक्तिरनुपपन्नेत्याशङ्क्याह **मायये**ति. "मायेत्यसुरा" इति श्रुतेरसुराणां तद्रूप एवोपास्य इति तत्सम्पादितपूतनारूपं माया-रूपमिति तया करणभूतया कृत्वा भगवतैव कृतं दुःखमित्यर्थः. अत एव स्वामिनीनां श्रीत्वभानम्, अन्यथा ताभिरेव सा निवर्त्येत. अत एव तदभावाय मुक्तिदानं च. अन्यथान्यत्र पुनर्दुःखदानसम्भवेन सर्वात्मना तन्निवृत्तिर्न स्यात्. तर्हि सुतरां दुःखम-नुपपन्नमित्याशङ्क्य भगवति भक्तचित्तवृत्तिनिरोधहेतुत्वेन पुरूषार्थरूपं तद्दुःखमिति नेदं भक्तिमार्गे दूषणमित्याहुः **निरोधोक्तेरि**ति. एतेन निरोधमार्गो मर्यादाभक्तिमार्गा-द्विलक्षण इति सूचितम्. यद्वा ईश्वरे रक्षाकरणं नोचितमित्याशङ्क्यैतदुक्तम् (३).

प्रकाशः

ननु पूतनासुपयःपानस्य रक्षात्वं कुत इत्यत आहु**रेकमि**त्यादि. एतस्य वीर्याध्यायत्वं वक्तुं तत्प्रकारमाहु**र्वीर्यमि**त्यादि, तदकस्मान्न प्रकटीभवतीति तदाविर्भावे हेतुमाहु**र्मायये**त्यादि. टिप्पण्यां तत् स्फुटीकुर्वन्ति. **दुःखमि**ति वीर्याविर्भावे हेतुभूतमित्यर्थः. **अत एवे**ति मायात्वाभावादेव. **अत एवे**त्यादि स्वामिन्यनिवर्त्यत्वादेव दुःखाभावाय तस्या मुक्तिदानं चेत्यर्थः. **तर्हि सुतरामि**ति दुःखस्य सर्वथानिवर्त्यत्वे "प्रक्षालनपङ्क" न्याये**नैतदुक्तमि**ति **निरोधोक्तेरि**त्याद्युक्तम् (३).

कारिकार्थः

वीर्यमिति "मायेत्यसुरा" इति श्रुतेरसुराणां मायारूप एव भगवानुपास्य इति मायासम्पादितपूतनारूपं मायारूपमिति तया करणभूतया कृत्वा **भगवतै**व कृतं दुःखमित्यर्थः. **तस्मात्** करणाद् दुःखाभावाय पूतनायाः **मुक्ति**दानम्. ननु भक्तदुःखाभावाय पूतनामारणे पूर्वमपि भक्तदुःखमनुपपन्नमित्याशङ्क्याहु**र्निरोधोक्तेर्न दूषणमि**ति, तादृशदुःखस्य भगवति चित्तवृत्तिनिरोधहेतुत्वेन पुरुषार्थरूपत्वाद् भक्तिमार्गे न दूषणमित्यर्थः. तथा चैवमन्वयः — अत्राध्याये **भगवतो वीर्यं** पूतनामारणरूपं **वर्ण्यं,** तत्र हेतु**र्मायया भगवत्कृतं दुःखं, तस्मात् मुक्तिः** पूतनायाः, **निरोधोक्ते**र्निरोधसाधकत्वात् तद् दुःखं **न दूषणमि**ति(३). **भयमिति शब्दजमि**ति "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इति वसुदेववाक्यजन्यमित्यर्थः(४).

भयं निवर्त्य वीर्येण द्विविधं बाह्यमान्तरम् ।
आन्तरं शब्दजं बाह्यं पूतनाजनितं तथा ॥(४)॥

प्रथमं वाक्यादुत्पन्नमन्तर्भयं भगवत्स्मरणेन नाशयत इत्याह **नन्द** इति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥१॥

श्रवणमात्रेणैव भयान्निर्गता मध्ये गन्तुमप्यशक्ता वाक्यं विचारितवन्तः किमस्माकं भयं कंसकृतं भविष्यतीति ततो निर्गमनार्थमुक्तमाहोस्विद् यथाश्रुतमेव गोकुले भयमस्तीति तद्वाक्यं विचार्यान्यार्थमपि बाधितार्थं वदन्ननृतीभवतीति निश्चित्य निर्णयमाह **शौरेर्वचो मृषा न भवतीतिममर्थं विशेषेण चिन्तयन् पथि** कार्यान्तराभावान्निश्चिन्ततया तमेवार्थं विचारयन् हृदयेनापि संवादं प्राप्य भयनिवृत्त्यर्थं **हरिं शरणं जगाम.** 'सन्ती'तिवचनं न विचारितम्, अन्यथा जीवनमेव न स्यात्, किन्तु शङ्कामात्रं जातम्. तदप्युत्पातागमनस्य, कदाचिदुत्पात आगच्छेदिति, न त्वागत इति नापि निश्चयस्तदाह**उत्पातागमशङ्कित** इति, उत्पातागमार्थं शङ्कां प्राप्तः.

प्रकाशः

सुबोधिन्यां **शब्दजमि**ति शब्दः श्रीवसुदेववाक्यमाप्तवाक्यत्वात् तज्जनितमित्यर्थः (४). **नन्द** इत्यत्र **नापि निश्चय** इत्युत्पातागमस्य निश्चयः ॥१॥

योजना

आन्तरं शब्दजमिति अन्तःहृदये उद्भूतम् आन्तरं; वसुदेवोक्तिश्रवणानन्तरं श्रीनन्दस्य हृदये भयमुत्पन्नं तदान्तरं वसुदेवोक्तशब्दश्रवणजन्यवात् शब्दजमित्यर्थः(४).

उत्पातागमशङ्कित इत्यस्य व्याख्याने, **एवं सन्देहकरणं भगवच्चरित्रमि**ति. अत्र वसुदेवस्य परमाप्तत्वात् तेन च "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इत्यनेनोत्पातनिश्चयस्यैवोक्तत्वादुत्पाताः सर्वथा श्रीगोकुले भवन्तीत्येव नन्दमनसि ज्ञानमुचितं, तथाप्युत्पातो भवेत् न वेत्येवोभयकोटयवगाहि संशयात्मकं ज्ञानं व्रजराजस्यभूत् तत् तु भगवत्कृतमेवेति भावः. **अन्यथो**त्पातनिश्चये भगवद्विषयकस्नेहस्य प्राबल्याद् **जीवनमेव न स्यात्**, अतः संशय एव भगवतोत्पादितः, तदेतद् मूले उक्तम् **उत्पातागमशङ्कित** इति, **सन्देहकरणं भगवच्चरित्रमि**ति व्याख्यातं च ॥१॥

—एवंसन्देहकरणं भगवच्चरित्रम्. वस्तुतस्तु यदा वसुदेव आह तदैव पूतना गोकुले समागता ॥१॥

एवमान्तरं भयं निवर्त्य बाह्यं भगवान् निवर्तयतीति प्रथमतो भयप्राप्तिमाह **कंसेने**ति सार्धैरष्टभिः.

कंसेन प्रेषिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥

प्रथमतः सामान्यतस्तस्याः सर्वोपद्रवकर्तृत्वमाह यतो मारणीयेति. **कंसेन प्रेषिता शिशून् निघ्नन्ती चचारे**तिसम्बन्धः. ईश्वरप्रेषितायाः कार्यमावश्यकं, स्त्रिया बालेषु स्नेहो भवतीति कथं प्रेषणमिति चेत् तत्राह **घोरे**ति. जन्मादिसंस्कारेण संस्कृतान् वैदिककर्मणा सम्बद्धांस्तत्तदधिष्ठातृदेवतादिरक्षितान् कथं मारयतीत्यत आह **पूतने**ति, पूतानपि नयतीति **पूतना,** पुरुषानप्युत नयतीति वा, अतोतिबलिष्ठा, सर्वानेव मारयितुं शक्ता. ननूक्तं देवादीनां रक्षकत्वं तत्राह **बालघातिनी**ति, यथा देवानां रक्षणसामर्थ्यं तथा तस्या बालघातकत्वं, भगवता तथैव निष्पादिता, अत एव **शिशूं**स्त्रिवर्षपूर्वान् **निघ्नन्ती चचार**. यदि भक्षयेत् तदाल्पेनापि निवृत्ता भवेत्,

---

प्रकाशः

कंसेनेत्यत्र **पूतना**शब्दे"ऽन्येभ्योपि दृश्यन्त"इतिडो डित्वाट्टिलोपष्टाप्, द्वितीयपक्षे 'संघ्यगा' दिशब्दव'दुत'[१] शब्देन समासः. 'राम'शब्दव्युत्पत्तिश्रुतौ 'रा'इत्येकदेशस्य राक्षसवाचकत्ववदत्र 'पु'इत्येकदेशस्य पुरूषवाचकत्वं बोध्यम् ॥२॥

लेखः

नन्द इत्यस्याभास **इत्याहे**ति **इति** हेतोः स्मरणसूचकं शरणगमन**माहे**त्यर्थः. ([२]**उत्पातागमार्थमि**त्यत्र**ार्थ**शब्दो निवृत्तिवाचि, मशकार्थे धूममितिवत्, तथा **चोत्पात**निष्ठो **आगम** आगत्यनुकूलो व्यापारस्तं निवर्तयितुमित्यर्थः. विग्रहस्तू**त्पातागमस्य शङ्कित** इति पूर्वं व्याख्यात एव)॥१॥

कंसेनेत्यत्र **ईश्वरप्रेषितायां** इति तस्या **ईश्वरः** कंसस्तेन **प्रेषिताया** इत्यर्थः. **ननूक्तमि**ति संस्कृतनयनं पूतनापदनिरुक्त्या साधितम्, अधिष्ठातृदेवादीनां रक्षकत्वं यदुक्तं तद्रक्षाभावः कथं साधनीय इत्यर्थः ॥२॥

---

१. 'दुश'. २. चिह्नान्तर्गतमधिकमेकस्मिन्नादर्शे.

किन्तु बालकानां प्राणान् पीत्वा पीत्वा गच्छति, त्रिगुणेष्वपि स्थानेषु तस्या अप्रतिघात इति **पुरेषु** सात्विकेषु **ग्रामेषु** राजसेषु **व्रजेषु** तामसेषु च विद्यमानान् **शिशून्** मारयन्ती तदेकप्रयोजना **चचार, आदि**शब्देन खेटखर्वटवाटीष्वपि ॥२॥

नन्वेवं सति पूर्वमपि कोपि बालकस्तदापि न जीवेदत आह **न यत्रे**ति.

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।
कुर्वन्ति सात्त्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥३॥

यत्र **सात्त्वतां** भर्तुर्भगवतो देवादिपोषकस्य **श्रवणादीनि** नवविधानि षड्विधानि वा तत्रापि **रक्षोघ्नानि** वा यैर्गुणै राक्षसा एव हन्यते यथा रघुनाथचरित्राणि ताटकादिमारणरूपाणि. **स्वकर्मसु** रक्षककर्मसु स्वधर्मेषु वा. **स्व**शब्देनाधर्मशाखाः सर्वा एव निवारिताः. तत्र तु भवन्त्येव **यातुधान्यः**, तदीया वा ते. "यस्य स्मृत्या

प्रकाशः

न यत्रेत्यत्रै**वं सती**ति पूतनायाः सर्वदा तदेकप्रयोजनकत्वे सति. **षड्विधानि वे**ति "यत्कीर्तनं यच्छ्रवणमि"ति द्वितीयस्कन्धोक्तरीत्या **षड्विधानि** दास्यादीनां दुर्लभत्वादसार्वत्रिकत्वात् ततः पूर्वाणीति वा. **तत्रापी**ति श्रवणादिष्वपि. **वे**ति **वा**शब्दो वाक्यालङ्कारे. **अधर्मशाखा** इति 'विधर्मा'दिरूपाः पञ्च. **त** इत्यधर्माः. ननु

लेखः

न यत्रेत्यत्र श्रवणादिनां नवानामप्युक्तौ **रक्षोघ्नानी**ति पदं दास्यादिषु रक्षःसम्बन्धशङ्काभावावादकथनीयं स्यादित्यत आहुः **षड्विधानि**ति , दास्यादित्रये रक्षःसम्बन्धशङ्काभावादिति भावः. तथापि प्रयोजनं रक्षोघ्नपदस्य स्वरूपबोधकत्वे न सिध्यतीत्यरुच्या व्यावर्तकत्वमाहु**स्तत्रापी**ति. **तत्र त्वि**ति श्रवणादिरहितेषु रक्षककर्मसु स्वधर्मेषु वा **यातुधान्यो भवन्त्येव,** तैः कर्मभिर्न निवर्तन्त इत्यर्थः. **यैर्गुणैः राक्षसा एव हन्यन्ते** तेषां श्रवणादिनीति शेषः. अस्मिन् पक्षे श्रवणादिपदं

योजना

पूतना बालघातिनीत्यस्य व्याख्याने पूतनाशब्दनिरुक्तौ **पूतानपि नयतीति पुरुषानप्युत नयतीति वे**ति व्युत्पत्तिद्वयमपीदं न व्याकरणसाध्यमपि तु निरुक्तिसाध्यमिति ज्ञेयं, "अप्यक्षरसाम्येन निर्ब्रूयात् न संस्कारमाद्रियेते" ति निरुक्तानुशासनात्, अत एव "भाति सर्वेषु भूतेषु रतिः सर्वत्र जन्तुष्वि"-त्यादिभारतशब्दस्य निरुक्तिर्दृश्यते पुरि शेत इति पुरुष इत्यादि च ॥२॥

चेति"वाक्यात् स्वधर्मा भगवच्छ्रवणाद्यभावे पूर्णा एव न भवन्ति. रक्षांसि सर्वत्र देशादिषु तिष्ठन्ति, अत ए"वापहता असुरा" इत्यादिमन्त्राः, अत एव रक्षसां पूर्वं तत्र सम्बन्धात् तत्सम्बन्धेन **यातुधान्यः** समायान्ति. यातुधानसम्बन्धा यत्रकुत्रचिदिति सर्वत्र तत्तत्स्वामिनिराकरणसमर्थाः. युक्तश्चायमर्थः, भर्तृषु विद्यमानेषु स्त्रीणां गतिरबाधिता भवतीति. रक्षोमारकैरेव रक्षोनिवृत्तिर्यथा वायुवशाद् दीपे गच्छति तैलेन न प्रतीकारस्तथारक्षोघ्नव्यतिरिक्तैर्न प्रतिकारः. मन्त्राणां तु स्वाध्यायपोषिताना-

---

प्रकाशः

स्वधर्मेषु रक्षोनिराकरणस्य किं प्रयोजनमत आहू **रक्षांसी**त्यादि. **निराकरणसमर्था** इति रक्षोघ्नाः श्रवणादय इतिशेषः. ननु मन्त्रैरेव यातुधानीनिवृत्तिसम्भवे श्रवणादीनां किं प्रयोजनमत आहु**र्मन्त्राणामि**त्यादि. **तस्ये**ति स्वाध्यायस्य. नन्वेवं

लेखः

त्रिविधवाचकमेव सम्भवतीति ज्ञेयम्. **तदीया वे**ति **ते** श्रवणादिरहिता धर्मा**स्तदीया** रक्षःसम्बन्धिनो भवन्त्यतो राक्षस्यः समागच्छन्तीति भावः. अस्मिन् पक्षे **यातुधान्यो भवन्ति** समागच्छन्तीत्यर्थः. उभयत्रापि हेतुमाहः **यस्ये**ति. प्रथम पक्षे कर्मणः पूर्णत्वाभावात् न तन्निवृत्तिः, द्वितीयपक्षे "यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरमि"तिश्रुतौ न्यूनकर्मणः पापत्वकथनेनासुरत्वसूचनाद् राक्षसीनामागमन-मित्यर्थः. नन्वपूर्तिमात्रेणासुरत्वं कथं भवेदित्याशंक्य मूले **हि**शब्देन सूचितां युक्तिं विवृण्वन्ति **रक्षांसी**ति. **यातुधानसम्बन्धा** इति यातुधानैः सम्बन्धो यासां तादृश्य इत्यर्थः. मूले **तत्रे**तिपदस्यार्थमाहु**र्यत्र कुत्रचिदिति सर्वत्रे**ति. **तत्तत्स्वामिनिराकरण-समर्था** इति तस्य कर्मण आसुरत्वात् स्वयं प्रबलास्तत्तन्मत्रस्वामिनां देवानां निराकरणे समर्था भवन्तीत्यर्थः. **रक्षोघ्नानी**तिपदस्य तात्पर्यमाहुः **रक्षोमारकैरेवे**ति. कर्मणः पूर्णतया आसुरत्वासम्पादनेन स्वरूपसम्पादकत्वं चरित्रमात्रश्रवणा-देर्नत्वागन्तुकविघातकनिवर्तकत्वं, तादृशत्वं तु रक्षोघ्नचरित्रमात्रश्रवणादेरेवेत्यर्थः. **रक्षोघ्नव्यतिरिक्तै**स्तेषां **प्रतीकारो** निवृत्तिर्न भवतीति दृष्टान्तेन साधयन्ति **यथे**ति, तैलं दीपस्वरूपसम्पादकं न तु विघातकनिवर्तकं तथेत्यर्थः. ननु "रक्षोहनोवलगहन" इत्यादिमन्त्रा अपि रक्षोघ्ना उक्तास्तान् विहाय **श्रवणादिकमेव** रक्षोनिवर्तकं कथमुच्यते इत्याशङ्क्य तत्र स्वनिर्वाहे कुण्ठितत्वारुचिं स्फुटीकुर्वन्ति **मन्त्राणां त्वि**ति, अपहताः पाप्मानो यैस्तादृशत्वं रक्षोनिवर्तकत्वमित्यर्थः. "सुष्ठु आ-

–मेवापहतपाप्मत्वाद् "अग्निं वै जातमि"त्युपाख्यानेपहतपाप्मत्वं तस्यैव निरूपितं, मर्यादायामाधिदैविकाध्यात्मिकाधिभौतिकेषूत्तरमुत्तरं बलीयः सापेक्ष-

---

प्रकाशः

सति [1]स्वाध्यायपोषितैरेतैर्निवृत्तिरस्त्विति चेत् तत्राप्याहु**र्मर्यादायामि**त्यादि. तथा च तादृशमन्त्रापेक्षयाधिभौतिक्यास्तस्या बलिष्ठत्वान्न निवृत्तिरित्यर्थः. अत एवेल्वलादिवधोपि युज्यतेन्यथर्षिभिरेव मार्येत. मन्त्राणां निर्बलत्वे हेत्वन्तरमप्याहुः **सापेक्षे**त्यादि. यद्वा ननु वेदोक्तं रक्षोघ्नत्वं मन्त्राणां भज्येतेति व्यवस्थयोभयेषामपि तथात्वमित्याहु**र्मर्यादायामि**त्यादि **भवन्ती**त्यन्तम्. तत्र **सामर्थ्या**दित्यन्तं मर्यादामार्गीया व्यवस्था

लेखः

समन्तादध्यायोध्ययनं शोभनं नियमैर्युतं आ सर्वतः पुनस्तत्र यथा शङ्का न जायते" इत्युक्तप्रकारकमध्ययनं तेन **पोषितानामि**त्यर्थः. **तस्यैवे**ति स्वाध्यायस्यैवेत्यर्थः. तथा च मन्त्रा अपि रक्षोनिवर्तकास्तथापि स्वनिर्वाहकसापेक्षा इति भावः, तत्र हेतुद्वयमाहु**र्मर्यादायामि**ति, **आधिदैविका** गायत्र्यादिमन्त्रजपादयः **आध्यात्मिका** न्यासादयः, **आधिभौतिकाः** स्नानादयः; तथा च रक्षःसम्बन्धादाधिभौतिकदेहादि-

योजना

न यत्र श्रवणादीनीत्यस्य व्याख्याने, **मन्त्राणां तु स्वाध्यायपोषितानामि**त्यारभ्यो**त्तरमुत्तरं बलीय** इत्यन्तम्. ननु वेदमन्त्रैरेव राक्षसादीनां निवृत्तौ सिद्धायां किं भगवच्छ्रवणकीर्तनादिभिरित्याशङ्क्याहुः **मन्त्राणांत्वि**त्यादि. नियमादिपूर्वकाध्ययनपोषितानां मन्त्राणामेव फलसाधकत्वम्. तादृशनियमादीनां दुष्करत्वेन मन्त्रैः कार्यासिद्धिं ज्ञात्वा भगवच्छ्रवणकीर्तनादयो दुष्टनिवारकत्वेन निरूपिताः. यतो भगवच्छ्रवणकीर्तनादीनां नियमादिराहित्येपि फलसाधकत्वेन स्वतन्त्रत्वम्, अतोत्र त एवोक्ताः, वेदमन्त्राणां फलसाधकत्वं तदा स्याद् यदा देशकालादिसर्वसाधनसौष्ठवं भवेत्. तस्य दुर्लभत्वाद् देशादिसाधनानपेक्षाः फलं साधयितुं समर्थाः श्रवणादय एव पुरस्कृताः. वेदमन्त्राणां फलसाधकत्वे दौर्लभ्यमाहुः **मर्यादायामि**ति, वेदमार्ग इत्यर्थः. **आधिदैविकाध्यात्मिकाधिभौतिकेष्वि**ति त्रिविधेषु साधनेष्वित्यर्थः. तत्र भौतिकं देहशोधकं स्नानादिरूपम्, आध्यात्मिकं श्रद्धारूपम्, आधिदैविकं

---

१. 'पोषितैरेव तै°.

सामर्थ्याच्च तदधिष्ठातृदेवताप्रेरणेन परस्मिन् फलजननसामर्थ्यात्. भगवांस्तु सर्वगतः, भक्तिमार्गश्च स्वप्राकट्यार्थं विशेषेण हेतुः कृतः, अतः **सात्त्वतामेव भर्तुः श्रवणा-**

प्रकाशः

भगवांस्त्वित्यारभ्य भक्तिमार्गस्येति बोध्यम्. नन्वेवमुभयो रक्षोघ्नत्वेपि न मार्गभेदादेव

लेखः

शुद्ध्यभावे मन्त्रस्वरूपमेव न सिद्ध्येदिति भावः. इदं दोषद्वयं प्रकृते नास्तीत्याहु**र्भगवांस्त्वि**ति. **आगन्तुकैरि**ति स्वाध्यायेन पोषितत्वा**दागन्तुकैर्मन्त्रैः**

योजना

वैदिकमन्त्रात्मकं रक्षोघ्नादिरूपम्. एवं त्रिषु साधनेष्वाधिदैविकस्य वेदमन्त्रस्य फलदातृत्वं श्रद्धाधीनं, न हि श्रद्धां विना पठिता मन्त्राः फलदा भवन्तीत्यत आध्यात्मिकस्य श्रद्धारूपसाधनस्याधिदैविकमन्त्रात्मकसाधनापेक्षया बलीयस्त्वम्. एवमाध्यात्मिकस्य श्रद्धारूपसाधनस्य फलदत्वं स्नानादिशुद्ध्यधीनं, न हि स्नानादिरहितस्य श्रद्धामात्रेण फलं भवत्यत आधिभौतिकस्य स्नानादेराध्यात्मिकश्रद्धारूपसाधनाद् बलिष्ठत्वम्. अतः सुष्ठूक्त**माधिदैविकाध्यात्मिकाधिभौतिकेषूत्तरोत्तरं बलीय** इति. **सापेक्षसामर्थ्यात् चे**ति आधिदैविकस्य भौतिकसापेक्षसामर्थ्यादित्यर्थः. देवता हि फलं प्रयच्छन्त्यो भौतिकद्वारैव प्रयच्छन्ति, यथाधिदैविकी गङ्गा प्रवाहरूपभौतिकसम्बन्धेनैव शुद्ध्यादिरूपं फलं ददाति, अत आधिदैविकस्य भौतिकसापेक्षसमर्थत्वम्. **तदधिष्ठातृदेवते**त्यादि आधिदैविकब्राह्मणाधिदैविकसुरभ्यादि**देवताप्रेरणेन परस्मिन्** आधिभौतिकब्राह्मणे आधिभौतिक्यां गवि च फलजननसामर्थ्यं यतो जायते, तत्प्रेरणेन भौतिका एव फलं प्रयच्छन्ति. अत आधिदैविकानामपि फलदाने भौतिकापेक्षास्तीति भौतिकानां बलवत्त्वम्. तथा च सिद्धमेतत्—भौतिकापेक्षा आधिदैविकानां, भौतिका देशकालादयो ह्यशुद्ध्यादिदोषवशाद् दुर्बला इति देशादिषड्शुद्धिनिरपेक्षाः श्रवणकीर्तनादयएव सर्वदा सर्वफलसाधका इति त एव राक्षसादिनिवारणार्थमुक्ता इति भावः. तदेतदाहुः **भगवांस्तु सर्वगत** इति. **तु** शब्देन वेदो न सर्वगत इत्युक्तं, वेदस्य त्रैवर्णिकमात्रविषयत्वाद् देशादिशुद्धिसापेक्षत्वेन स्वनिर्वाहे कुण्ठितसामर्थ्यवत्त्वात् च. **भगवांस्त्वि**ति श्रवणकीर्तनस्मरणादिना सेव्यमानो भगवांस्त्वित्यर्थः. **सर्वगत** इति श्रवणादेः सर्वाधिकारकत्वेन श्रवणादिविषयीभूतस्य भगवतः सर्वगतत्वं, तेन न श्रवणादेः कुत्रापि कुण्ठितशक्तितेति भावः ॥३॥

दीनि रक्षोघ्नानि भवन्ति. आगन्तुकैरागन्तुकानामेव निवारकत्वं न तु सहजानां, एवं प्रबलदुर्बलभावे बाध्यबाधकभाव उचितः. अनेनाग्रे श्रोतुः शङ्कापि निवारिता, वर्णाश्रमधर्मवत्त्वेन स्वमात्रसम्बन्धिषु न तु भगवदर्थकेषु कर्मसु यत्र भगवन्नामश्रवणेनैव रक्षोनिवृत्तिस्तत्र साक्षाद्भगवति विद्यमाने का चिन्तेति. एतदर्थमेव **स्व**पदम् ॥३॥

एवं तस्याः सर्वोपद्रवकर्तृत्वं सूपपत्तिकमुपपाद्य गोकुलेपि तस्याः समागमनमाह **सा खेचरी**ति.

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम्।
योषित्वा माययात्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥४॥

एकदेति यस्मिन् काले देवादीनां न सम्बन्धः, आश्लेषानक्षत्रे विषघटिकायां

प्रकाशः

व्यवस्था किन्तु हन्तव्यभेदादपीत्याहु**रागन्तुकैरि**ति. **निवारकत्वमि**ति निवारणमित्यर्थो घटवत्त्वं घट इतिवत्, तथा [1]चागन्तुकीनां यातुधानीनामागन्तुकैर्मन्त्रैर्निवृत्तिर्भगवदीयैस्तु **सहजानां** रक्षसामित्यर्थः. तदेव विशदय**न्त्येवमि**त्यादि. **उचित** इति द्विविधोप्युचित इत्यर्थः. वस्तुतस्तु मन्त्राणामपि भगवच्छ्रवणाद्यभावे फलसाधकत्वाभावादसार्वत्रिकत्वाच्च भगवच्छ्रवणादीनामेव तथात्वमित्यभिप्रायोत एव मूलेपि न मन्त्रनामग्रहणम्. उक्तस्य प्रबलदुर्बलभावस्य फलान्तरमाहु**रनेने**त्यादि, यत्र भगवच्छ्रवणादिभिरेव यातुधान्यादिनिवृत्तिस्तत्र भगवति विद्यमाने सा कथं समागतेति **श्रोतुः शङ्कापि** प्रबलदुर्बलभावनिरूपणेन **निवारिता.** तथा च तस्यास्तदानीं तेभ्योपि बलीयस्त्वमतः सा समागतेत्यर्थः. **स्वकर्मस्वि**त्यत्रोक्तस्य **स्व**पदस्य तात्पर्यमाहु**र्वर्णे**त्यादि ॥३॥

सा खेचरीत्य**त्राश्लेषानक्षत्र** इत्यत्राश्लेषानक्षत्रे पूतनाया आगमनकथनेन

लेखः

करणै**रागन्तुकानामेव** रक्षसां **निवारकत्वं**, रक्षकस्य पुरुषस्येति शेषः. **एतदर्थमेवे**ति कैमुत्यसूचनार्थमेवेत्यर्थः॥३॥

श्लोकद्वयार्थमनुवदन्ति **एवमि**ति. उपपत्तिकथनं "न यत्रे"ति श्लोकस्यार्थः. **सूपपत्तिकं** सुष्ठु उपपत्तिर्यत्र तादृशमित्यर्थः.

---

१. चागन्तुकीनामगन्तुकैर्न निवृत्तिः, चागन्तुकानां.

-मृत्युयोगे भूमिष्ठे भगवति. भूमिः सर्वदेवरक्षितेति कथं तस्या आगमनमित्याशङ्क्याह **खेचरी**ति. तद्धर्मवत्त्वेन प्रतिपादितं वैकुण्ठादेरागतस्य मर्यादानाशकत्वबोधनार्थम्. **नन्दस्य गोकुलमि**ति, नन्दे विद्यमाने गोषु वाऽऽगन्तुं न शक्नुयात्, उभयोरपि तत्राभावात् समागतेति. आदौ निकटे समागत्य यत्र स्थिता माया प्रवेशं कृतवती तत्र स्थित्वा ततोग्रे गमनासामर्थ्यात् स्वस्येष्टदेवतां मायारूपं भगवन्तं ध्यातवती तदा भगवान् मायारूपस्तां स्त्रीरूपां यशोदादितुल्यां कृतवान् "मायेत्यसुरा"इतिश्रुतेः "तद्धैतान् भूत्वावती"ति च. तदा**होपेत्यात्मानं मायया योषित्वे**ति, आत्मानं योषितं कृत्वेत्यर्थः. तदा **प्राविशत्.** ननु तथाप्यज्ञाता स्त्री कथं प्रवेशं

प्रकाशः

पूतनामारणावसरे भगवान् षड्दिन इति ज्ञायते. उक्तं च पाद्मोत्तरखण्डे "भाद्रासितचतुर्दश्यां नन्दजः पूतनामहन्नि"ति. हरिवंशे त्वियं शकुनीशब्देनोच्यते. न च हरिवंशोक्तरीत्यनुरोधेन तदा षाण्मासिक एवाङ्गीकर्तव्य आश्लेषायास्तदापि सम्भवादत्र तु विशेषस्यानुक्तत्वादिति वाच्यम्, उत्सवोत्तरं तदैव करदानार्थगतव्रजेन्द्रवसुदेवसंवादसमय एव पूतनागमनस्योक्तत्वात् "तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोपवृत्त" इतिद्वितीयस्कन्धोक्तब्रह्मवाक्येपि शकटासुरमारणसमये त्रैमासिकत्वकथनेन तत्पूर्वकालीनलीलायां न षाण्मासिकत्वं वक्तुं शक्यमतस्तत् कल्पान्तरीयामिति दिक्. **तद्धर्मवत्त्वेने**त्यादि [1]भूचरत्वे **मर्यादानाशन**सामर्थ्यं यथा खेचर्यास्त**थागतस्य वैकुण्ठादे** रमाक्रीडत्वरूप**मर्यादानाशकत्वबोधनार्थ**मस्याः खेचरीत्वेनान्यथा कालातीतस्य कालादिदोषसम्बन्धोक्तिरपि विरुध्येतेत्यर्थः. **मायाप्रवेशमि**ति मायया प्रतिपादनं, **प्रकृष्टं वेशम्** ॥४॥

लेखः

सा खेचरीत्यत्र **वैकुण्ठादेरि**ति वैकुण्ठेष्वादिर्मुख्यो व्यापिवैकुण्ठस्तस्येत्यर्थः. **नन्दे विद्यमाने** इति नन्दे विशुद्धसत्त्वस्थापनस्योक्तत्वाद् गवां च धर्महेतुत्वाद् रक्षोनिवर्तकत्वम्. अत एव तद्दोषनिवारणाय गोमूत्रेण स्नापनं नन्देन च वात्सप्रेण सूक्तेनाघ्राणं वक्ष्यति. नन्दो मथुरां गतो गावश्चरणार्थं गताः किन्तु स्थानमात्रमस्तीत्यर्थः. गवां कुलं यत्र तादृशं स्थानमिति विग्रहः ॥४॥

---

१. 'त्वं म'.

प्राप्तवतीति तत्राह **कामचारिणी**ति, कामं यथेच्छं चरतीति तथा, प्रवेशे तरुणीरूपं कृतवतीति पुरुषा न निवारयिष्यन्तीति निश्चयः. यत्रयत्र कामप्रवेशस्तत्रतत्र प्रवेष्टुं शक्तेति, अतो यथा मूर्तिमति काम उद्रिक्ते वा प्राणिनामन्धत्वमेवं तस्यामपीत्युक्तम् ॥४॥

सर्वव्यामोहनार्थं भगवत्कृतं तस्या रूपं वर्णयति **तां केशे**ति द्वाभ्यां स्वरूपचेष्टाभेदेन.

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥५॥

मायाकृतमेव रूपमिति हिरण्याभरणाम्बरादिभिरेव तस्या मोहकत्वमुच्यते. **केशबन्धे व्यतिषक्ता मल्लिका** यस्यां, दूराद् दर्शनेन गन्धेन च व्यामोह उक्तः, बन्धे मल्लिकास्तु न पतन्ति, **मल्लिका** तत्कालपुष्पोपलक्षिका, सौन्दर्यं गन्धश्च तत्रैव प्रतिष्ठितौ. स्थूलनितम्बस्तनैरल्पमध्येन च सर्वबन्धसहितसम्भोगयोग्यता निरूपिता. वस्त्रं चोत्तमं रसजनकम्. **कम्पिते** ये **कर्णभूषणे** कुण्डले तयो**स्त्विषोल्लसन्ति** यानि **कुन्तलानि** तै**र्मण्डितमाननमि**ति, मुखे सौन्दर्यं मोहार्थे निरूपितं, **कर्णभूषणमु**-परिभागस्थं वा, तेन कुण्डलयोरपि कान्तिः, भूषणस्य सर्वोत्तमत्वं निरूपयति ॥५॥

तस्याश्चेष्टामाह **वल्गुस्मिते**ति.

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥

सहजस्मिताभावाय **वल्गुस्मितमि**त्युक्तं, तत्सहितं यद**पाङ्ग**निरीक्षणं कटाक्षदर्शनं, तदप्यनेकविधमलसवलितादिरूपं, तदाह बहुवचनेन अपाङ्गानां विशेषेण **सर्गा** यत्र **वीक्षितेषु**, अतो **व्रजौकसां मनो हरन्तीं**, व्रजस्थिता विवेकरहिता भवन्ति. अनेनैव गोपैर्निवारणं प्रतिषिद्धम्. **मन** इत्येकवचनं सर्वेषामेकरूपत्वबोधनाय. अत एव गोपैः सा सम्यग् दृष्टापि न. गोपीभिरेव परं दृष्टा, तास्तु पूर्णज्ञानवत्योपि

लेखः

तां केशेत्यत्र मल्लिका वसन्तर्ताविव भवन्तीत्यधुना प्रावृषि तदसम्भवादाहु-**र्मल्लिके**ति, मल्लिकापदं प्रावृट्कालीनपुष्पाणा**मुपलक्षकं** ज्ञापकमित्यर्थः. तथा च मल्लीसदृशी मल्लिका इवार्थे कप्रत्ययः मालत्यादिरित्यर्थः. सादृश्यसम्पादकं धर्मद्वयमाहुः **सौन्दर्यं गन्धश्चे**ति, **कुण्डलमण्डिताननामि**तिपाठमभिप्रेत्य कर्णभूषणमन्यमाहुः **उपरिभागस्थं वे**ति ॥५॥

भगवत्कृतं तद्रूपं मत्वा भगवच्चरित्रत्वाद् घातकत्वमबुद्ध्वा स्वभोगार्थं लक्ष्मीमेवा-कारितवानिति ज्ञातवत्यः. न हि लक्ष्म्यां दासीनां वैमनस्यं सम्भवति, तदाह **गोप्यो द्रष्टुमागतां तां श्रियमेवामंसत**, तथैव च भगवान् रूपं सम्पादितवानिति. लक्ष्म्या असाधारणं चिह्नमाह**ाम्भोजकरेणो**पलक्षितेति, लीलाकमलयुक्तेन करेण, अनेन रिक्तहस्ततापि निवारिता. **रूपिणीमि**ति स्वस्मिन्नावेशातिरिक्तरूपां, तत्रापि **पतिं द्रष्टुकामा** न केनापि निवार्या, अतो गोप्यः पुरस्कारमेव कृतवत्य इति न तासां बाधकत्वम् ॥६॥

सा गोकुलेपि बालकान्वेषणार्थमेव प्रवृत्ता न तु साक्षाद्भगवन्निकटे स्वतो गतेत्याह **बालग्रह** इति.

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून् यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥

बालान् गृह्णातीति **बालग्रहः**, भगवांस्तु न बाल इति तत्र तस्या नाग्रहः. **तत्र** गोकुले **शिशून् विचिन्वती** चचार, विचयन एव प्रवृत्ता जाता, न तु कश्चिन्मारितवती भगवतो रक्षकत्वात्, तदा भगवान् स्वनिकट एव तामानीतवानित्याह **यदृच्छया नन्दगृहे बालं ददर्शे**ति, भगवदिच्छाव्यतिरेकेण सर्वैरेवोपायैस्तत्र गमनमशक्यम्. नन्वेषा कृत्रिमा दुष्टा कथं भगवन्तं दृष्टवतीत्याशंक्या**हासदन्तकमि**ति,

---

टिप्पणी

अमंसताम्भोजकरेणेत्यत्र, स्वातन्त्र्येण सम्बन्धमत्रालभमाना गोपीद्वारा सम्बन्धेप्सया तत्राविशतीत्याशयेनाहुः **स्वस्मिन्नावेशातिरिक्तरूपामि**ति ॥६॥

प्रकाशः

वल्गुस्मितेत्यत्र 'श्रियममंसते'त्येतावतैव चारितार्थ्येपि **यद्रूपिणी**तित्युक्तं तत् कुत इत्याकाङ्क्षायां तदाशयं **स्वस्मिन्नावेशातिरिक्तरूपामि**त्यनेन वदन्तीति टिप्पण्यामाहुः **स्वातन्त्र्येणे**त्यादि. **तत्रे**ति गोपीषु, तथा च **स्वस्मिन्** गोपीजनात्मनि य **आवेश**स्तस्माद**तिरिक्तं रूपं** यस्यास्तामित्यर्थः. यद्वा **स्वस्मिन्** स्वात्मनि य **आवेशो** लक्ष्म्या भगवत्नीत्वाभिमानस्त**दतिरिक्तं** गोपीदास्यात्मकं **रूपं** यस्या इति गूढाभिसन्धिर्वा टिप्पणीस्थो ज्ञेयः॥६॥

लेखः

बालग्रह इत्यस्याभासे **इत्याहे**ति **इति** हेतोः यदृच्छया भगवदिच्छया दर्शनमाहेत्यर्थः. **बालग्रह** इति पुंस्त्वमजन्तस्य तथानुशासनात्. **आनीतवानित्याहे**ति

असतामन्तको मारकः, तांश्च दृष्ट्वैव मारयति, अतो मारणीयानामपि दर्शनं न बाधितम्. **नन्दगृहे**ष्यसन्तो भगवता निवारणीयाः. तस्या बालाविष्टचित्तायास्तत्र विचारो न जात इति सूचनार्थमाह **बालमि**ति. तथाप्यलौकिककान्त्या कथं न विचारो जात इत्यत आह **प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसमि**ति, **प्रतिच्छन्नं** स्वेनैवाच्छन्नं **प्रति**कूलार्थं **वाच्छन्नं निजं यदुरु तेजः**, वैष्णवतेजसि प्रकटेऽसुरघातकं तदिति सन्दिह्यमाना निवर्तेत, सर्वथा कान्तितिरोधाने यशोदादीनां भयं स्यादत आ**होर्वि**ति, यावता तस्या आगमनं सम्भवति तावत् तिरोधानम्. भगवतः क्रियाज्ञानशक्ती अतिरोहिते सर्वदा, प्रकृतेपि च तदुपयोगात्. ततः कथं ताभ्यां न निवारितेत्याशंक्याह **तल्प** इति, **तल्पे** शयानो बालकः क्रियारहितो भवति, अवस्थया क्रियाशक्तेस्तिरोभावः, तत उत्थाने चलनेन सह क्रियाविर्भविष्यति. ज्ञानशक्तेः प्रकाशः सहजो, यतो ब्रह्मविदामपि ज्ञाने सति तद् भवति; स कथं न बाधक इत्याशंक्या**हाग्निमिवाहितं भसी**ति, यथाग्निहोत्रिणा भस्मनाग्निस्तिरोहितः क्रियते काले प्रादुर्भावार्थं तत्तेजोन्यद् नाशयेन्न तु स्वजनितम्, अतो ज्ञानशक्त्या जनिता येच्छा तया तिरोहितं प्रवृत्तिपर्यन्तं न बाधकं भवति ॥७॥

स्वतो ज्ञानशक्तेर्बाधकत्वमाशंक्य तस्या अपि तिरोधानमाह **विबुध्ये**ति.

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥

प्रकाशः

बालग्रह इत्यत्र **नन्दगृहेष्यसन्त** इत्यन्यावेशादय इत्यर्थः ॥७॥

विबुध्येत्यस्याभास **स्वत** इत्यादि, मास्तु **ज्ञानशक्ति**प्रकाशस्य **बाधकत्वं** तथापि प्रकाशाधारभूताया ज्ञानशक्तेरग्निवद् विद्यमानत्वात् स्वतः स्वरूपतो

लेखः

यदृच्छयेतिपदकथनाद् भगवत्कर्तृकमानयनं विवृतावुक्तम्. **तल्प**पदस्याभासे **तत** इति भगवतः सकाशादित्यर्थः. **ज्ञानशक्तेरि**ति **ज्ञानशक्तेः प्रकाशो**ऽलौकिकं तेज इत्यर्थः. **तद् भवती**ति अलौकिकं तेजो भवतीत्यर्थः ॥७॥

विबुध्येत्यस्याभासे **स्वत** इति, पूर्वं धर्मरूपज्ञानस्य शक्तिरलौकिकं तेज उक्तमत एव तत्र ब्रह्मविदो दृष्टान्तार्थमुक्ताः, अत्र ज्ञानस्वरूपमुच्यत इति विभेदः. तथा च ज्ञानरूपा या शक्तिस्तस्याः स्वतः स्वरूपत इत्यर्थः. **तिरोधानमाह**

ज्ञानशक्तेः स्वरूपमेतत् कीर्तितं, न तु बोध उत्कर्षार्थमुक्तः. पुरोवर्तीन्द्रियसन्निकर्षे सङ्केतितस्य स्मरणमिव तस्या दर्शनेन तदीया गुणा उद्भूता इत्येतदर्थमाह **तां बालकमारिकाग्रहमि**ति. प्रसिद्धिप्रेरणादिकं **तच्छ**ब्देनोक्तम्. मुख्यं दोषमनुवदति. **बालकानां मारिका** बालघातिनी, तथाभूता सती ग्रहरूपा च. गृह्णन्तीति **ग्रहाः**, मारयितुं चेन्न शक्नुवन्ति शीघ्रं गृहीत्वापि तावत् तिष्ठन्ति तथा प्रतीकारेपि. ननु तर्ह्युत्थाय कथं न मारितवांस्तत्राह **चराचरात्मे**ति, स्थावरजङ्गमानामयमात्मा यदि मर्यादां त्यजेत् तदा जीवजडयोर्विलय एव स्यात्. अस्तु विलय इति चेत् तत्राह **स** इति, **स** मूलभूतो जगत्कर्ता. ज्ञानमतिरोहितमेव भवतीति तस्य तिरोधानार्थं यत्नं कृतवानित्याह **निमीलितेक्षणो** जात इति. एवं सर्वांशेनाबाधे जाते सा समागत्य भगवन्तं गृहीतवतीत्या**हानन्तमि**ति, ग्रहणे शङ्काभावार्थ**मनन्त**पदम्, अनेनान्यदपि सूचितमक्लिष्टकर्मा भगवान् स्वतो न कञ्चिन्मारयति तयैव परं स्वतः कालो गृहीत

प्रकाशः

[1]बाधकत्वमित्याशङ्क्**याहे**त्यनेन श्लोकार्धेनाहेत्यर्थः **कीर्तितमि**ति **विबुध्ये**तिपदेन कीर्तितमित्यर्थः. **न** [2]**त्वि**त्यादि **'चराचरात्मे'**त्यनेन महोत्कर्षस्य वक्ष्यमाणत्वादनेन नोक्त इत्यर्थः. **गुणा उद्भूता** इति मायाकृता गुणा भगवदज्ञानशक्तिविषयीभूता जाता उच्चैर्निर्वृत्ता इति वा. **अनेने**ति न विद्यतेन्तो यस्मादिति निर्वचनेन.

लेखः

अक्षिनिमीलनेनेति शेषः. व्याख्याने **गुणा उद्भूता** इति भगवन्मनसीति शेषः. तेजसस्तिरोभावः पूर्वश्लोके दृष्टान्तेनोक्तः स्वरूपतस्तिरोभावार्थं भगवत्कृतो यत्नो निरूप्यते, तत्र हेतुमाहु**र्ज्ञानमतिरोहितमेवे**ति. उत्तरार्धस्याभासमाहु**रेवं सर्वांशेने**ति. पूर्वमाभासः पूर्वार्धस्यैवोक्त इति ज्ञेयं, सहेतुकभगवद्ग्रहणं विशिष्टवाक्यार्थः॥८॥

योजना

विबुद्ध्य तामित्यस्य विवृतौ **ज्ञानशक्तेः स्वरूपमेतत् कीर्तितं न तु बोध उत्कर्षार्थमुक्त** इति, तस्याः पूतनायाः सर्वदुष्टप्रकारविशिष्टस्वरूपज्ञानं भगवतो यदभूत् तन्न भगवतः प्रतिष्ठाजनकं, सर्वपदार्थविषयकापरोक्षज्ञानवत्त्वात्. तर्हि किमर्थं शुकेनोक्तमित्याकाङ्क्षायामाहुः **ज्ञानशक्तेः स्वरूपमि**त्यादि ॥८॥

---

१. बो॰. २. न्वि॰.

इति निकट उपविश्य त**मङ्के समारोपयत्**. कालो हि घातकानां हितकारीति शङ्काव्युदासार्थमा**हान्तकमि**ति, स हि सर्वमारकः. नन्वारोपणे क्रियाशक्तिः प्रबुद्धा कथं न बाधिका जातेत्याह **यथोरगं सुप्तमि**ति, सर्पाणामतितामसत्वात् तेषामत्यन्तं निद्रा, अतो मारणपर्यन्तं न क्रिया तेषु, तथा भगवतोपि क्रिया सर्वथा नाविर्भूता. ननु स्पर्शेण ज्ञानशक्तिस्तेजः कथं नाविर्भूतमिति चेत् तत्रा**हाबुद्धिरज्जुधीरि**ति, अबुद्ध्याज्ञानेन सर्पे रज्जुधीर्यस्य; रज्जुर्बन्धिका, सर्पो मारकः, स्नेहेन स्तने दत्ते मय्यनुरक्तो भविष्यतीत्यापाततो बुद्धिर्न तु मारकत्वं जानाति, यथा रज्जुबुद्ध्या गृहीतः सर्पः स्वस्पर्शेपि न ज्ञानं जनयति. अतो भगवज्ज्ञानं तेजोपि स्पर्शेन नाविर्भूतमित्यर्थः॥८॥

ननु यशोदारोहिणीभ्यां कथं सा न निवारितेत्याह **तां तीक्ष्णचित्तामिति**.

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तराकोशपरिच्छदासिवत्।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥९॥

तां निरीक्ष्य **तत्प्रभया धर्षिते जननी** जनन्या**वतिष्ठतां** निवारयितुं वाशक्ते जाते, यशोदारोहिण्योर्मोहाभावात्, भगवत्समीपे मायाया विलयात्. तद्गता धर्मा सर्वे भाता इत्याह **तामि**त्यादिपदैः. **तच्छ**ब्देन तद्गताः पूर्वधर्माः सर्वे निरुक्ताः, पूर्वं प्रवेशार्थं व्यग्रचित्ता मोहनाभिनिविष्टा च. इदानीं तु तदुभयाभावात् चित्तक्रौर्यं प्रकटीभूतं ताभ्यां ज्ञातं निरूपयति **तीक्ष्णचित्तामि**ति तस्या अन्तर्गतो दोषो निरूपितः. बहिर्गतान् निरूपय**त्यतिवामचेष्टितामि**ति, **अत्यन्तं वामं** वक्रं कठिनस्पर्शादिरूपं **चेष्टितं** यस्याः. एवमन्तर्बहिस्तस्या दोषं दृष्ट्वापि स्वतो निवारणेऽशक्तावपि रक्षकेभ्यो निवेदनाभावे हेतुमा**हान्तराकोशपरिच्छदासिवदि**ति,

प्रकाशः

यथोरगमित्यत्र **तथा भगवत** इति स्वेच्छया ज्ञानशक्तेर[1]त्यन्ततिरोधानेनेत्यर्थः. **नाविर्भूतमि**ति पूतनाबुद्धिगोचरं न जातमित्यर्थः॥८॥

तां तीक्ष्णचित्तामित्यत्र **मोहाभावादि**ति, गोपानां कामो **मोह**जनकः

लेखः

"तां तीक्ष्णे" त्यस्याभासे **इत्याहे**ति, **इति**शङ्कातो हेतोरग्रिमं श्लोक**माहे**त्यर्थः.

१. लुप्तम्.

–**अन्तरा** गृहमध्येऽन्तर्वा महतां, तत्रागमनमयुक्तं मध्यस्थितानां चाप्रयोजकत्वं ज्ञातम्. किञ्च **कोश** एव **परिच्छदो** वेष्टनसाधनं [1]यस्यैतादृशो**ऽसिः** खड्गः. **आसमन्तात् कोश** इति वा, अतिधनयुक्तः परिच्छदो वा यस्य. अनेन बहिर्मुखलोका अन्तर्गतं दूषणं तद्गतं येनकेनचिदुच्यमानं न गृह्णन्त्येव. अत एवं[2] ज्ञात्वा ताभ्यां न कश्चिज्ज्ञापितः. तथाभूतं प्रकृते विशेषणमाह **वरस्त्रियमिति**, **वरणीया स्त्री** परमसुन्दरी, अतः पुरुषमात्रेणैव वरणीयेति न कोप्येनां मारयिष्यतीति भावः. स्त्रीणां त्वसामर्थ्यमेव, तथापि भगवत्स्नेहात् प्रयत्न एव कर्तुमुचितो न त्वौदासीन्यमिति चेत् तत्राह **तत्प्रभया च धर्षिते** इति, **तस्याः प्रभा** भगवत्कृता, राक्षसो भावो मानुषभावोपमर्दकः, अतस्तस्याः **प्रभयोभे** अपि **धर्षिते**, **च**कारात् भगवदिच्छया च. अत एव **निरीक्षमाणे** ए**वातिष्ठताम्**, **अजननी**त्यपि, जनने हि सहजो भावो भवति. जनन्यावपीति वा ॥९॥

एवमप्रतिबन्धे यत् कृतवती तदाह **तस्मा** इति.

तस्मै स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ।
गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत् प्राणैः समं रोषसमान्वितोपिबत् ॥१०॥

प्रकाशः

स्वामिनीनां [3]त्वस्यां स्वभावानुरोधाल्लक्ष्मीत्वप्रत्यय;[4] एतयोस्तु तदुभयाभावेन मोहाभावात्. **अन्तरे**तिपदस्य **वीक्ष्ये**त्यनेना[3]न्वयमभिप्रेत्य तस्यार्थमाहु**रन्तरे**त्यादि. **अन्तरा गृहमध्येन्तर्वा महतामि**ति. **अत्र**[5]द्वितीयः पक्षोग्रे गोष्ठे निजरूपस्थान-कथनानुरोधाद् ज्ञेयः[5]. [6]तत्र द्वितीयपक्ष **आसमन्तात् कोश** इति व्याख्यानं ज्ञेयम्. **धर्षिते** इतीतिकर्तव्यतामूढे, धृष प्रसहने[7] प्रसहनमितिकर्तव्यतामोहादिरूपेण प्रकर्षेण सहनमिति तथा. पराहते इति वा ॥९॥

लेखः

व्याख्याने **प्रभा भगवत्कृते**ति तदुपास्यमायारूपेण भगवता कृतेत्यर्थः. **सहजो भाव** इति लौकिकः पुत्रत्वभाव इत्यर्थः. अत्र तु भगवत्सम्पादितोऽलौकिक एव भावः, स च भगवदिच्छानुरूप एव भवतीति भगवदिच्छया धर्षितत्वे तथा स्थितिरिति भावः॥९॥

१. यस्य तादृश इत्यपि पाठः. २. एवेत्यपि पाठः. ३-३, ५-५. लुप्तम्.
४. 'त्वं प्रत्याय्यते तयो'. ६. अत्र. ७. 'न इत्यत्र.

तस्मै सम्भृतसर्वधर्माय भगवते **स्तनं ददौ**, अन्यथा दातुमेव न शक्नुयात् **स्तन**मेकम्. ननु दत्ते स्तने तस्याः कःपुरुषार्थ इति चेत् तत्राह **दुर्जरवीर्यमि**ति, **दुर्जरं वीर्यं** यस्य स्तन्यस्य, स्तने स्तन्यं तिष्ठतीति स्तन्यदानमप्रत्यक्षमिति **स्तन**पदप्रयोगः. न केवलं परिणामाहितकर्तृत्वं **किन्तूल्बणं** क्रूरं, ग्रहणदशायामप्यनिष्टजनकम्. नन्वेवं भगवति कथं कृतवती तत्राह **घोरे**ति, कदाचित् स्तनं न पिबेदिति लालनार्थं **शिशोरङ्कमादाय** बालकस्याङ्कस्थानं स्पृशन्त्युत्तोलयन्ती ततो भगवतः पृष्ठभाग ऊरुणा परिगृहीतः, दक्षिणहस्तेन स्तनं निःपीडयन्ती वामहस्तेन भगवतोङ्कस्थानमुत्तोलयन्ती स्तनं ददावित्यर्थः.

अथ तस्याः क्रियासमाप्त्यनन्तरं भिन्नप्रक्रमेण भगवान् स्तन्यमपिबदित्याह **गाढमि**ति, यथा निर्बन्धेन पाययिष्यामीति यत्नं कृतवती तथा भगवान् स्तन्यमप्यदत्वा पलायिष्यतीति निग्रहस्यावश्यकर्तव्यत्वात् **कराभ्यां गाढं स्तनं प्रपीड्यापिबदि**ति सम्बन्धः. एवं निर्भयतया स्तनपानप्रवृत्तौ हेतुमाह **भगवानि**ति, ईश्वरत्वात् स्त्रीमारणदोषः परिहृतः, "पुमान् योषिदुत क्लीब" इतिवाक्याद् वीर्यवत्त्वाद् जीरणादिसामर्थ्यं द्योतितं, यशोवत्त्वादलौकिकचरित्रकरणं, श्रीयुक्तत्वान्न प्रकारान्तरेण मारणं तादृशशोभानाशप्रसङ्गात्, ज्ञानित्वात् तस्या दोषपरिज्ञानेन मारणावश्यकत्वं, वैराग्ययुक्तत्वाद दैत्यपक्षवधो न बाधकः, एवं तस्या मारणे हेतुषट्कं गुणैर्धर्मिणा च मोक्षदानं, अन्यथा न पिबेत्, अत एव तस्याः सर्वप्रायश्चित्तार्थं **प्राणैः सममपिबत्.** प्राणरक्षार्थं हि तया सर्वं कृतं, प्राणे तु भक्षिते सर्वं भगवदर्पणं भवति, शिशूनां प्राणा अप्यत्र सन्तीति तेषामपि मुक्तिः सूचिता. बहुवचनेन च **प्राण**पदेनेन्द्रियाण्यपि गृह्यन्ते. ततः सर्वैव सामग्री तदीया पीता भवति. ननु निन्दितपदार्थं भगवान् कथं गृहीतवानपहतपाप्मा हि स तत्राह **रोषसमन्वित** इति,

---

प्रकाशः

तस्मा[1] इत्यत्र तच्छब्दार्थमाहुः **सम्भृतसर्वधर्माये**ति. **सम्यग् भृता** यज्ञसम्भारवद् गुप्ततया स्थापिता स्वकीयाः क्रियात्मज्ञानादिरूपा **धर्मा** येन तादृशाय. **अन्यथे**ति

लेखः

तस्मै स्तनमित्यत्र **सम्भृतसर्वधर्माये**ति **सम्भृता** बहिरप्रकटिताः **सर्वे धर्मा** येनेति त्रिपदत्वात् नानिच्. **न बाधक** इति स्तनपाने प्रवृत्तौ **न बाधक** इत्यर्थः. **ततः सर्वैव सामग्री**ति आधिदैविकीति शेषः॥१०॥

---

१. तस्मै स्तनमित्यत्र.

रोषेण सम्यगन्वितः, यथा तदीयोंशो दुष्टो भगवति सम्बद्धो न भवति यथा वा स सर्वोप्यंशो दग्धो भवति, भगवान् सर्वसमन्वित इति क्रोधसमन्वितत्वेपि न दोषः. पूर्वं रोषसम्बन्धो नास्तीति वक्तुं **प्राणैः समं रोषसमन्वित** इत्युक्तं, सर्वात्मकत्वात् नासङ्गत्वक्षतिः, न तु तस्या मारणार्थं रोषोपेक्ष्यते. वीर्यस्योक्तत्वात् स्तनद्वारापि प्राणपानं न विरुध्यते. साधनफलरूपा तदीया क्रिया नाशितेति ज्ञापयितुं **कराभ्यामि**त्युक्तम् ॥१०॥

अतो भगवता पेपीयमाने स्तने तत्र स्थितो भगवान् मायारूपोपि भगवत्येव प्रविष्टः, तत्सङ्ग आधिदैविकी पूतनापि भगवति प्रविष्टा, आध्यात्मिक्यास्तु कृत्यमाह **सा मुञ्चमुञ्चे**ति.

सा मुञ्चमुञ्चालमितिप्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।

सा पूर्वमेवं निर्बन्धयुक्तापि भगवता निःपीडिता तदानीमपि भगवत्स्वरूपमज्ञात्वा वचनत्रयमुक्तवती **मुञ्चमुञ्चालमि**ति. यथा प्राकृते बालके पेपीयमाने च स्तनव्यथायां

प्रकाशः

धर्माणां प्रकटतया स्थापने. **आधिदैविकी पूतने**ति श्रवणाद्यनाश्या भगवदेकनाश्या सेत्यर्थः॥१०॥

लेखः

तत्सङ्गे आधिदैविकीति लीलोपयोगिदेहेन्द्रियादिविशिष्टा **भगवति प्रविष्टा** मुक्ता. यदा पुनः कृष्णावतारो भविष्यति तदा सा पूतनापि पुनस्तथैवाविर्भविष्यति, "सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दादि"ति तत्त्वसूत्रन्यायादिति भावः. **आध्यात्मिक्या** इति लौकिकेन्द्रियप्राणान्तःकरणरूपाया इत्यर्थः. लौकिकदेहरूपा आधिभौतिकी, तस्याः पातोग्रे वक्ष्यते. इह्ययमभिसन्धिः – लीलापदार्थास्तदुपयोगिदेहेन्द्रियादिविशिष्टा नित्या भगवति तिष्ठन्ति, यदा भगवानवतरति तदा तेप्यवतरन्ति, स्वकार्यान्ते

योजना

रोषसमन्वित इत्यस्य विवृतौ **सर्वात्मकत्वात् नासङ्गत्वक्षतिरि**ति न"न्व सङ्गोह्ययं पुरुष" इति श्रुतेः कथं भगवतः समन्वय इत्याशङ्क्याहुः **सर्वात्मकत्वादि**त्यादि, "पुरुष एवेदं सर्वमि"तिश्रुतेः सर्वस्य भगवदभेदात् स्वरूप एव स्वसमन्वय इति नासङ्गत्वबाध इत्यर्थः॥१०॥

तत्सङ्गे आधिदैविकी पूतनापीति "मायेत्यसुरा" इति श्रुतेरसुरोपास्येन मायारूपेण भगवता विनिर्मिता श्रीलक्ष्मीभ्रमोत्पादिकाधिदैविकीत्युच्यते, सा

विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः निःस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

मुञ्चेत्युच्यते, अतिव्यथायां पुनः पुनर्बालकस्य क्षुन्निवृत्तेति ज्ञात्वा**लमि**त्याह. बालो हि स्वबुद्ध्या पूर्णतां न जानात्यन्योक्तं च गृह्णात्यत आह. अन्तःस्थितो दुष्टभावो गतः. तेन लौकिकभाषोक्ता. मात्रोश्च परिज्ञानार्थं गतेपि प्राणे भगवत्सम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् प्राणवत्या एव तस्याश्चेष्टामा**हेतिप्रभाषिणी**ति. "भगवान् कराभ्यां प्रपीड्ये"ति यदुक्तं तद् बालकेन स्तने मर्दनं पीडाजनकं न भविष्यतीत्याशङ्क्या**हाखिलजीवमर्मणि निष्पीडयमाने**ति, जीवस्य मर्मस्थानानि बहूनि यत्र प्रहारेण जीवो गच्छति, अखिल एव **जीवमर्मणि** मर्मस्थाने नितरां पीड्यमाने सति, निष्पीड्यमाना वा. वस्तुत**स्त्वखिले**त्युक्त्वा **मर्मणी**त्येकवचनं यदुक्तं ते**नाखिल**पदं **जीव**विशेषणमेव. तथा च तया स्वस्मिन्नानीता ये बालकानां जीवास्ते स्वजीवमर्मस्थाने स्थापिताः सन्तीति तान् स्वस्मिन्नानेतुं भगवांस्तन्निष्पीडनमेव कृतवानित्याभिप्रेतोर्थः.

प्रकाशः

सा मुञ्चेत्यत्र**लमि**त्युक्तेः प्रयोजनमाहु**र्बालो हीत्या**दि. **लौकिकभाषे**ति, लौकिकसमानं तस्या भाषणम्. **परिज्ञानार्थमि**ति पूतनामरणपरिज्ञानार्थम्. अत्र **वस्तुत** इत्यारभ्य **वक्ष्यन्त** इत्यन्ते ग्रन्थेऽयमाशयः— भगवज्जन्मानन्तरं द्वितीयदिने कंसमन्त्रनिश्चयोत्तरमन्यदुर्मन्त्रिवत् पूतनापि पूरग्रामव्रजादिषु बालान् निघ्नन्ती षष्ठे दिवसे श्रीनन्दव्रजे समागता. तथा सति तावत्पर्यन्तं हतानां बालानां ये प्राणास्ते सजीवास्तस्यां समागताः. न च तेषां जीवानां सलिङ्गानां यमगतिः शंक्या, साधनाध्यायप्रथमपादे रंहत्याद्यधिकरणेष्वर्चिरादिगतीनामपि विचारितत्वात् तत्र

लेखः

पुनर्भगवत्येव प्रविशन्तीति. येषां मुक्तिर्नोक्ता ते प्रकृतौ तिष्ठन्ति. **सा मुञ्च मुञ्चे**त्यत्र **गतेपि प्राणे** इति आधिदैविके इति शेषः. प्राणस्य वागादिषु सामर्थ्यजनकत्वं बृहदारण्यके छान्दोग्ये कौषीतक्यां च प्राणविद्यायां व्युत्पादितम्. तत्राधिदैविक एव प्राणो ज्ञेयः,"द्वया ह प्रजापत्या" इतिप्रसङ्गे तस्यैवापहतपाप्मत्वस्य वेधाद्यर्थभेदादितितार्तीयाधिकरणे निर्णीतत्वेन तदभावे एव शरीरस्य पापिष्ठत्वसम्भवात्, वायुरूपभौतिकप्राणविद्यया "यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाद् जायेरन्नेवास्मिन् शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानी" ति छान्दोग्योक्तफलासम्भवाच्च. तथा चाधिदैविकप्राणस्य भगवति प्रविष्टत्वाद् भाषणादिकं कथं सम्भवतीत्याशङ्क्यैतदुक्तम्. **निष्पीड्यमाने**त्यत्र

बालकद्रोहाज्ञायां भगवानेव निमित्तमिति तादृशानां स्वस्मिन्नानयनमावश्यकमिति तथा. अत एव बाललीलारसंताननुभावयन् मृत्स्नामप्यनुभावितवानत एव "नाहं भक्षितवानि" तिवचनं सत्यं, अत एव तस्या उरसो भगवत्क्रीडायोग्यतापि भक्तानां तत्र स्थितिरासीद्यतः. एत एव व्रतप्रसङ्गे च "वयस्यैरि"तिपदेन वक्ष्यन्ते.

प्रकाशः

च[1] जननात् पूर्वं वृष्ट्यन्नरेतोभावोपि सलिङ्गानां जीवानामुक्तः स एव न्यायोन्यत्राप्यवगन्तव्यः. एवं सति यथा ते जीवा आहुतिद्वारा वान्यकर्मद्वारा वा वृष्ट्यादौ प्रविशन्ति तथात्र भगवल्लीलाचिकीर्षारूपमूलकारणवशात् केनचिद् द्वारेण पूतनायामेव प्रविष्टा **इत्यखिलपदमत्र जीवविशेषणमेव.** पूतना चाधिदैविकी तान् स्वजीवमर्मणि स्थापितवतीति तान् स्वस्मिन्नानेतुं भगवांस्तथा कृतवानित्यभिप्रेतोर्थः. ननु भगवतः [2]किमावश्यकं येनैवं कृतवानित्यत आहु**र्बालके**त्यादि. किमत्र गमकमित्यत आहु**रत एवे**ति स्वस्मिन्नानयनादेव. तथा च भगवतः [3]सत्यवाक्त्वाद् वक्ष्यमाण-वाक्यार्थापत्तिरेव गमकमित्यर्थः. ननु भगवतः [3]सर्वात्मकत्वाद् वाक्यमन्यथाप्युपपद्यत इत्याशङ्क्य गमकान्तरमाहु**रत एव तस्या** [4]इत्यादि. तेषां बहिःप्राकट्येपि वाक्यान्तरार्थापत्तिं प्रमाणय**न्त्यत एवे**ति. **वक्ष्यन्त** इति साक्षित्वेन वक्ष्यन्ते. **रजोमध्यस्थमि**ति रजोगुणस्य

योजना

भगवदुत्पन्नत्वाद् भगवति तिरोहितेत्यर्थः. **तया स्वस्मिन्नानीता ये बालकानांजीवा** इत्यारभ्य **'वयस्यै' रितिपदेन वक्ष्यन्त** इति, अत्रेदं ज्ञेयं— ये श्रीरामावतारे दण्डकारण्यवासिन ऋषयस्तेषां भगवद्रूपयौवनसौन्दर्यवशात् स्त्रीरूपेण रिरंसाभूदतो गौडदेशे कुमारिकारूपेणाजनिषत. तेषां ये पुम्भावास्ते बालकरूपेण गोकुले उत्पन्नास्ते पूतनया भक्षिताः पूतनाजीवमर्मस्थाने स्थापितास्ते पूतनासुपयःपाने भगवता स्वस्मिन्नानीतास्तेषां पुम्भावरूपाणां योन्तरङ्गलीलासम्बन्धे प्रतिबन्धकीभूतो दोषः पुंस्त्वाख्यः स तु पूतनासम्बन्धेन नाशितः, सद्वैद्यशोधितविषौषधसम्बन्धे महारोग इव. यश्च पुम्भावे स्वतन्त्रताप्रागल्भ्यादिरूपो गुणः स रमणौपयिकत्वाद् रक्षितः. एवं शुद्धान् तान् पुम्भावरूपान् जीवान् लौकिकविग्रहान् विधाय

---

१. लुप्तम्. २-२. स्वस्मिन्नानयने तेषां किं गमकमित्याशङ्क्याहु**रत एव नाहं भक्षिते**त्यादि, तथा च भगवतः. ३. सर्वस्वरूपत्वात्. ४. इति.

तदातिव्यथया निवृत्तवाङ् **नेत्रे विवृत्य** विपरीततया प्रसार्य **चरणौ भुजौ** चेतस्ततः **क्षिपन्ती नितरां स्विन्नं** सम्पूर्णं **गात्रं** यस्यास्तादृशी सती **रुरोद** उच्चैःशब्दं कृतवती. अतिबालकस्पर्श एवम्भाव आश्चर्यजनको भवतीति **हे**त्युक्तम्. अनेनान्तःपीडा महती तस्याः सूचिता भगवतश्च पराक्रमः, आकर्षणात्मकवायौ प्रविष्ट एवं कृतवानिति वीर्यं निरूपितम्. सात्त्विके नेत्रे हस्तपादौ राजसौ गात्रं तामसमिति

लेखः

सप्तम्यन्तः प्रथमान्तश्चेति पाठद्वयमभिप्रेत्य व्याख्यानद्वयमुक्तम्. चरणयोर्भुज- योश्च विवर्तनं विवृण्वन्ति **इतस्ततः क्षिपन्तीति**. **आकर्षणात्मके**ति भगवता तत्प्राण आकृष्टः, तद् भगवत्कृतमाकर्षण**मात्मा** स्वरूपभूता शक्तिर्यस्य, क्रियाया वायुशक्तित्वादिति भावः. तादृशे **वायावन्तःप्रविष्टे** सति **एवं कृतवान्**, आध्यात्मिको गुण इति शेषः. राजसकथने **चरणौ भुजौ** चेति द्वयमुक्तं तत्तात्पर्यमाहुः, **रजो**

योजनाः

भक्तिरूपचरणालोडितमृद्भक्षणेन व्रजवरवधूसदनस्थचौर्यगृहीतदधिदुग्धादिरूपस्वोच्छिष्टमहाप्रसादभक्षणेन तादृशलीलाधिकारं सम्पाद्य वस्त्रदानसमये कुमारिकासु तत्तत्पुम्भावरूपान् तासु तासु योजयिष्यति भगवान्. ततश्च [1]गुप्तलीलौपयिकप्रागल्भ्यस्वातन्त्र्यादिगुणरूपपुम्भावयुक्ताः कुमारिका रासोत्सवे भगवता सह पुम्भावेनापि रंस्यन्त इति श्रीकृष्णहार्दविदां श्रीमदाचार्यश्रीविट्ठलेश्वराणां निगूढ आशयो भाग्यवद्भिर्बोध्यः.

ननु पुम्भावस्य मनोधर्मत्वात् कथं बालकत्वं कथं वा विग्रहप्राप्तिरिति चेत्, श्रृणु. तृतीयस्कन्धे "क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे धिया निगृह्यमाणोपि भ्रुवोर्मध्यात् प्रजापतेः सद्योजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहित" इत्यनेन मनोधर्मस्य क्रोधस्य कुमाररूपतोक्ता, एवमत्रापि ज्ञेयम्. किञ्च "येऽहीयन्ताऽमुतः केशा अहयस्तेङ्गजज्ञिर" इत्यनेन कमलासनकेशानामहिरूपजीव.त्वं विग्रहवत्त्वं चोक्तमेवमिहापि. "वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठ" इत्यत्र शब्दरूपाणां वेदानां विग्रहवत्वं वर्णितं तद्वदिहापि. न च कमलासनस्य देवोत्तमत्वात् तद्धर्मस्य क्रोधस्य भवतु कुमारत्वमिह तु दण्डकारण्यवासिनामृषीणां पुम्भावस्य कथं बालकरूपेणावतरणं

---

१. शुद्धलीलोपयिक - इति पाठः.

त्रिगुणपीडा निरूपिता, रजो मध्यस्थमुभयसङ्गतं भवतीति द्वयं निरूपितम्. निर्गमनसमये प्राणस्य महान् घोषो रोदनं तेनाकृष्ट एव प्राणो भगवताकृष्ट इति ज्ञापितम् ॥११॥

प्रकाशः

पूर्वापरगुणसङ्गतत्वेन द्विरूपात् तत्स्थानीयं नेत्रं गात्रं चेति **द्वयम्** ॥११॥

लेखः

मध्यस्थं भवत्यत **उभयत्र** सात्त्विके तामसे च **सङ्गतं भवतीति**हेतोर्**द्वयमु**क्तमित्यर्थः. आध्यात्मिकपूतनाया मरणमुक्तमित्यग्रे वक्ष्यते, अतो मरणमेतच्छ्लोके वाक्यार्थस्तं व्युत्पादयन्ति **निर्गमने**ति, मृङ् प्राणत्यागे इतिपाठात् मरणं प्राणत्यागः. अत्र **रुरोदे**तिपदेन निर्गच्छतः **प्राणस्य घोष** उच्यते. तथा च कार्यपुरःसरं मरणं प्राणत्याग एवोक्तः इति भावः. **तेने**ति यदा तया स्वस्मिन् **प्राण आकृष्ट**स्तदा **भगवता** स्वस्मिन्न**ाकृष्ट इति तेन** महाघोषकथनेन **ज्ञापितम्**. अन्यथा तादृशघोषो न स्यादिति भावः ॥११॥

योजना

सम्भवति तेषामृषीणां लौकिकत्वादिति वाच्यं, "गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासन" इति कृष्णोपनिषद्भ्यस्तासां गौडदेशोद्भवानां कुमारिकाणां वेदरूपत्वेनात्यलौकिकत्वात् यत्र भगवत्सेवकस्य कमलासनमनोधर्मस्य क्रोधस्य कुमाररूपत्वं तत्र भगवद्भोग्यानां कुमारीणां मनोधर्मस्य पुम्भावस्य विग्रहवत्त्वे किमाश्चर्यमिति दिक्. अत एव नवमस्कन्धे अम्बरीषप्रसङ्गे दुर्वाससा क्षिप्ताया जटाया अपि विग्रहवत्त्वमलौकिकत्वात्, "तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवमि"ति वाक्यात्. अतो ह्यलौकिकप्रमेये ह्यलौकिकी रीतिरेव श्रुतिपुराणेषु सर्वत्र दृश्यत इति न युक्तिविरोधो दोषसम्पादक इति ज्ञेयम्. न च कमलासनमनोधर्मक्रोधस्य कुमारत्वनिरूपणं तु तस्य क्रोधस्याधिदैविकत्वात् युक्तमिह तु कथं विग्रहवत्त्वमिति वाच्यं, एतत्पुम्भावस्याप्याधिदैविकत्वात्.

निःस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद हेत्यस्य व्याख्याने, **तेनाकृष्ट एव प्राण** इति, **तेन** पूतनाकृतरोदनेन **इति ज्ञापितमि**त्यन्वयः. किं ज्ञापितं, तदाहुः **आकृष्ट एव प्राणो भगवताकृष्ट** इति, तया स्वदेहे प्राणस्थापनार्थं बहुधा स्वप्राणाकर्षणं कृतं बहुधा स्वबलेन यत्नः कृतस्तथापि भगवता तत्प्राणाकर्षणे कृते पूतनाकृतयत्नवैयर्थ्यं

भगवतो माहात्म्यं शृङ्गग्राहिकया प्रदर्शयिष्यन् भगवदाकृष्यमाणप्राणकृतस्वनस्य माहात्म्यमाह **तस्याः स्वनेने**ति.

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा।

रसा दिशश्च प्रतिभेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया॥१२॥

शब्दस्त्वमूर्तो मूर्तकार्यं चेत् कुर्यात् तदालौकिकं भवति. चरणाद्याघातेन हि कम्पो भवति, शब्देनैव तथा जातमित्याह **मही द्यौश्च चचाले**ति. तत्तदधिष्ठातृदेवतानां भीतत्वात् कम्प इति केचित्. पुरुषोत्तमस्य वीर्यमवताराणामपि वीर्यादधिकमिति ज्ञापयितुं ब्रह्माण्डविग्रहस्य पुरुषस्यापि स्वनेन कम्पो जात इत्युच्यते. एकदैव सर्वत्र कम्पजनने हेतु**रतिगभीररंहसे**ति. **अत्यन्तगभीरम**धस्तलविदारणसमर्थमुपरिस्थित-मज्जनसमर्थं च **रंहो** वेगो यस्य तेन. पर्वतसहिता पृथिवी, ग्रहनक्षत्रादिसहिता **द्यौः, च**कारात् तदुपरितना लोकाः. पर्वतानां महत्त्वात् स्थिरत्वात् कम्पाभावमाशङ्क्य**चाद्रि-सहिते**त्युक्तम्. ग्रहाणां भचक्रे ध्रुवे प्रतिष्ठितानां चलनाभावमाशङ्क्य **सग्रहे**ति. उभयोरुभयं वरप्राप्तं च "नक्षत्रविहिताहं चित्रविहिताहमि"तिश्रुतेः. पातालदिशा-मसम्बन्धाद् दूरस्थितत्वाच्चलनाभावमाशङ्क्याह **रसा दिशश्चे**ति, तासामपि

प्रकाशः

तस्याः स्वनेनेत्य**त्रोभयोरुभयमि**त्यादि. महीदिवोः सम्बन्धि यदुभयं पर्वत-ग्रहात्मकं च. **चो**प्यर्थे. 'नक्षत्रे' त्यादिवक्ष्यमाणश्रुत्या ताभ्यां वरप्राप्तमपि चचालेति फलितोर्थः. वरप्राप्तस्य चलनाभावमाशङ्क्यैतदुक्तम्. श्रुतिस्तु तैत्तिरीयसंहिता-द्वितीयाष्टकपञ्चमाध्यायद्वितीयानुवाके "ते अब्रूतां द्यावापृथिवी मा प्रहारावयोर्वै श्रित इति ते अब्रूतां वरं वृणावहै[1] नक्षत्रविहिताहमसानीत्यसावब्रवीच्चित्रविहिताहमि"ति. अर्थस्तु द्यावापृथिव्याविन्द्राद् वरं याचितवत्यौ नक्षत्रैर्विहितालङ्कृतासानि स्यामिति दिवो वरः, चित्रेण मनुष्यपशुवृक्षनगनदीसमुद्रादिरूपेण विहितालङ्कृतेति पृथिव्या वरः. दिशाममूर्तत्वेनाकाशतुल्यतया वरणाभावमाशङ्क्य **तासामपी**त्यादिना यत् सुबोधिन्यामुक्तं तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**स्तासामपी**त्यादिना. सुबोधिन्यां **देवताभयात्**

योजना

जातमितिरोदनेन ज्ञापितमिति भावः ॥११॥

---

१. वृणाव.

चलनं प्रतिस्वनजननं चाधिकं, तत्रत्यानां तु न किञ्चिदवशिष्टमित्याह **जनाः पेतुः क्षिताव**िति. ननु कम्प उपपत्तिरुक्ता देवताभयात् पुरुषभयाद्वेति जनानां विवेकधैर्यादियुक्तानां पाते को हेतुरिति चेत् तत्राह **वज्रनिपातशङ्क्ये**ति, **वज्र** एव पतितः क्वचित् पतिष्यति वा तेन भयादेव पातः, विवेकेनापि पातः सम्भवति, उच्चैःस्थिते तस्य तेजोसहमानो वज्रस्तं मारयेदिति ॥१२॥

एवं स्वनकृतकार्येण वीर्यमाहात्म्यमुक्त्वा भगवदाकृष्टानां प्राणानां पुनरावृत्तिमा-शङ्क्य तत् परिहरन् पूतनायाः सर्वजनीनं मरणमाह **निशाचरी**ति.

निशाचरीत्थंव्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि।

प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप॥१३॥

इत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्भूत्वापतत्. निशाचरीति कठिनप्राणत्वं निरूपितं, तादृश्याः शीघ्रं प्राणपरित्याग आश्चर्यहेतुर्भवति. राक्षसा व्यथां महतीमपि सहन्ते, तादृश्य**पीत्थं व्यथितस्तना** जाता, येन साङ्गे सम्पूर्ण एव शरीरे महान् क्षोभो जातः. ततः प्राणानपि त्यक्तवती. प्राणत्यागोपि वैकल्यात्, तदाह **व्यादाय मुखं**

टिप्पणी

रसा दिशश्चेत्यत्र, **तासामपि चलनमि**ति, तद्देवतानामित्यर्थः ॥१२॥

प्रकाशः

–**पुरुषभयाद्** वेत्यधिष्ठातृदेवतानिष्ठाद् **भयाद्** ब्रह्माण्डपुरुषनिष्ठाद् भयाद् वेत्यर्थः. **विवेकेन पातं**[1] व्युत्पादयन्त्यु**च्चै**रित्यादि. **उच्चैःस्थिते** पुरुषे तस्योच्चैः स्थितस्य यत् **तेजो** निर्भयत्वं **तदसहमान**स्तथेत्यर्थः॥१२॥

निशाचरीत्यत्र **साङ्ग** इति प्रत्यङ्गपीडाबोधनार्थः, मूले **व्यादाये**त्यादिना तथोक्तत्वात्. ननु मूले गोष्ठ उत्पातादिकथनस्य किं प्रयोजनमित्यत आहु**र्गोष्ठ** इत्यादि. **अवीरवद्भूमौ** गवां वृषाणां वत्सानां च चरणार्थं वने गतत्वात् तैः सह

लेखः

निशाचरीत्यस्याभासे **पूतनाया** इति आधिभौतिक्या इतिशेषः **सर्वजनीनं मरणं** भूमौ पात इत्यर्थः, उपसंहारे तथोक्तत्वात्. व्याख्याने **साङ्गे** इति नेत्रचरणभुजसहिते इत्यर्थः. अयं सर्वोपि पूर्वानुवादो मूले **आस्थिते**त्यन्तेनोक्तः.

---

१. °किनः.

–केशांश्चरणौ भुजावपि प्रसार्य गोष्ठे-ऽवीरवद्भूमावपि कृत्रिमरूपग्रहणकारणाभावाद् भगवत्सम्बन्धेन कृतार्थत्वा**न्निजरूपमास्थितापतत्.** तस्याः स्वरूपमत्यन्तं स्थूलं सर्वोपद्रवकारीति दृष्टान्तेनाह **वृत्र इवे**ति. वृत्रः स्वेच्छयापि पतति ततः पुनरुत्थानं भवेदिति **वज्राहत** इत्युक्तम्. **नृपे**तिसम्बोधनं महत्त्वेन विश्वासार्थम्. मुखव्यादानादिकं प्राणोत्क्रमणार्थं न भवति किन्तु नाडीनां वायुवशादाकर्षे तथा सर्वचेष्टा, मुखव्यादानेनैव देहक्लेशो निरूपितः. आदिमध्यावसानेषु क्लेशो जात इति वक्तुं केशचरणभुजानां ग्रहणम्. प्रसारणं सत्त्वपरित्यागेन मुक्तिसूचकम्. **निजरूपं** राक्षसं रूपं, यथा वृत्रे हते त्रयो लोकाः स्वस्थास्तथापूतनावधे जाता इति. एवमाध्यात्मिकपूतनाया मरणमुक्तम्, आधिभौतिक्या भूमौ पातः ॥१३॥

टिप्पणी

प्राणैः समपानोक्त्यैव व्यसुत्वे प्राप्तेपि पुनस्तदुक्तिराध्यात्मिकादिभेदविवक्षयेत्याशयेनात्र तद्भेदा उक्ताः. अत एव जीवमर्मोक्तिरपि मूले ॥१३॥

प्रकाशः

गोपिकापतिपुत्राणामपि चारणार्थं गतत्वा**दवीरवती** पतिपुत्ररहिता भूमिर्यस्मिंस्तादृशे **गोष्ठे कृत्रिमरूपग्रहणस्य कारणं** मायारूपो भगवांस्त**स्याभावात्** तत्रापि हेतु**र्भगवत्सम्बन्धेना**धिदैविकरूपायाः **कृतार्थत्वात् निजं राक्षसरूपमास्थिता** स**त्यपतत्.** तथा च तद्देहस्य पाते कस्यापि चेतनस्य जङ्गमस्य क्लेशो न जात इतिबोधनार्थं **गोष्ठ**पदकथनम्. किञ्चान्तःसूतिगृह एव निजरूपास्थाने तत्र तस्य मातुमशक्यतया गृहावरणादिभङ्गप्रसक्तिरिति तदनुक्त्या व्यथितस्तना सा भगवत्सहितैव ततो बहिरन्तर्गोष्ठे **निजरूपमास्थिता** जातेति बोधनार्थं च तत्कथनमित्यर्थः. तदेव व्युत्पादयन्ति **तस्या** इत्यादि. व्यादानाद्युक्तिप्रयोजनमाहु**र्मुखे**त्यादि. **न भवती**ति स्तन्यद्वारैव भगवता प्राणानां ग्रहणान् **न भवति. सत्त्वपरित्यागे**नेति, **सत्त्वं** देहे प्राणानां विद्यमानता तत्परित्यागेन.

लेखः

एतद्वाक्यार्थस्तु पात उक्तः. **मुखव्यादानादिक**मिति, प्राणोत्क्रमस्तु स्तनद्वारैव जात इति भावः. **सत्त्वपरित्यागे**नेति सत्त्वे सति परित्यागः प्राणानामिति शेषः. सत्त्वावस्थायां प्राणपरित्यागे मुक्तिर्भवति, "ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था"इतिवाक्यात्. **प्रसारणम**वयवानां यथास्थानां स्थितिः सत्त्वावस्था, "यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत् सत्त्वं विद्धि मत्पदमि"तिवाक्यात् ॥१३॥

साधारणस्थितिर्लोके पूर्वाध्याये निवारिता ।
अविद्या पूतना नष्टा गन्धमात्रावशेषिता ॥(५)॥

टिप्पणी

ननु भगवत्यागते गोकुले सर्वोत्कर्षवर्णनमेवोचितम्, न त्वेतादृशोपद्रवस्येत्याशङ्क्य पूतनावधोक्त्याऽलौकिकेभ्य उत्कर्ष उक्त इति वक्तुमुत्कर्षस्य च लौकिकालौकिकभेदेन द्विविधत्वाल्लौकिकः स पूर्वाध्यायेनोक्त इत्याहुः **साधारणस्थिति**रिति. तादृगुत्सवेन 'तत आरभ्ये'ति वाक्येन 'गोकुल' इति पदात्तदतिरिक्ते तदभावः सूचित इति तत्रैवोत्पातोक्त्या च **लोकसाधारणी स्थिति**र्गोकुलस्य तथेत्यर्थः. तेन लौकिकेभ्य उत्कर्ष उक्तो भवति. अलौकिकेभ्य उत्कर्षमाहुः **अविद्ये**ति. अत्रायं

प्रकाशः

एवमाध्यात्मिकेत्यादि यदुक्तं तदाशयं टिप्पण्यामाहुः **प्राणै**रित्यादि. **तद्भेदा** इत्याध्यात्मिकादिभेदाः, तथा चाधिदैविकी भगवत्येव प्रविष्टा, आध्यात्मिकी तु 'सलिङ्गा सा व्यसुरभूत्' प्राणा इन्द्रियाणि च भगवति लीनानि शेषापतदिति बोध्यम्. **अत एवे**त्याध्यात्मिक्या [1]मारणादेव. **मर्म**शब्दस्य 'मृङ् प्राणत्याग' इत्यतो निष्पत्तेः सर्वजीवप्राणत्यागस्थलोक्तिरित्यर्थः॥१३॥

'चरित्रमद्भुतं शास्त्र' इत्यादिना यदुक्तं तदिदानीं कारिकाद्वयेन व्युत्पादयन्तीत्याशयेनाहु**र्नन्वि**त्यादि. **तथे**ति वारिता. प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रस्तुतमाहु**रलौकिकेभ्य** इत्यादि. **अलौकिकेभ्य** इति शुकसनकादिभ्यः. तथा चैतेन चरित्रेणालौकिकसाधारण्यपि गोकुलस्थितिर्वार्यत इत्यर्थः. नन्वविद्यायाः पञ्चपर्वसु विविक्तजीवस्वरूपस्य यदज्ञानं तत् स्वरूपाज्ञानं देहादिषु या आत्मत्वेन बुद्धयस्ताः पर्वान्तराणीति हि शास्त्रे स्थितं, तत्पञ्चकं तु गोकुलस्थेषु दृश्यत एवेति कस्तस्या[2] नाशःकथं चैतेषामुत्कर्ष इत्याकाङ्क्षायामाहु**रत्रायं भाव** इत्यादि. मूलाविद्या ह्युक्तपञ्चपर्वात्मिका. सात्र नष्टात्वेन

कारिकार्थः

निशाचरीत्थमित्यत्र **साधारणस्थिति**रिति तादृगुत्सवेन "तत आरभ्य नन्दस्ये" ति वाक्येन श्रीगोकुलस्योत्कर्षोक्त्या तत्रैव "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इत्युत्पातोक्त्या च गोकुलस्य **लोकसाधारणी स्थितिर्वारिता. अविद्ये**ति गोकुलस्थाना-

---

१. म°, प्रे°. २. तस्य°.

टिप्पणी

भावः— सा हि स्वरूपाज्ञानदेहेन्द्रियप्राणान्तःकरणाध्यासलक्षणपञ्चपर्वात्मिका. तत्र "तत्प्रभया धर्षिते निरीक्ष्यमाणे[1] अतिष्ठतामि"त्युक्त्या जनन्योस्तत्कृतस्वस्वरूपविस्मृतिरुक्ता. ततो नष्टायां तस्यां सर्ववृत्तान्तानुभवे सत्यस्मत्तूष्णींस्थित्यैतादृशमभवत्कार्यमित्यतः परं सावधानतया भगवद्रक्षा कार्या, अन्या काप्यत्र न प्रवेशनीयेत्यवधृतिरभूदिति. तयोर्जननीत्वधर्मो यादृशस्तादृशो हृद्यागत इति निरोधरूपस्वरूपस्मृतिरुक्ता भवति. गोपानां च रक्षकत्वेन स्थापितानां तद्रूपजमोहेनोक्तस्वरूपविस्मृतिरभूत्. ततश्च जननीवदेतेषामपि भावो ज्ञेयः. एतेषां स्त्रीरूपेण मोहाद्धि तदनिवारणम्. तत्र च पुंस्त्वमेव हेतुरितिदेहाध्यासस्य तदनिवारणे हेतुत्वमायाति. तस्यां सौन्दर्यमल्लिकादिसत्त्वेन रूपगन्धादिभिर्मनोहरणे चेन्द्रियाध्यासस्तथा. वज्रनिपातशङ्कायां भगवानधुना क्वास्ति कथमस्ति इति विचार एवोचितस्तमकृत्वा स्वप्राणरक्षार्थं क्षितौ पातस्तदध्यासहेतुकः. व्रजसीमन्तिनीनाम-

प्रकाशः

नाभिप्रेता किन्तु तूलाविद्या. शुक्तिरजतादिस्थले यत्[२] शुक्त्याद्यज्ञानरजताद्यध्यासश्च तद्यथा तस्याः कार्यं तथा स्वदेहादावपि भयकामादिना मोहे स्वात्माज्ञानाद्यपि तत्कार्यमिति द्रष्टव्यम्. एवं सति प्रकृते मातृचरणप्रभृतीनां ये स्वरूपाज्ञानादय उक्तास्ते तस्या एव कार्याणि पर्वरूपाणि, पूतनानाशे च ते सर्वे निःशेषं निवृत्ताः. यद्यपि ते भिन्नभिन्ननिष्ठा उक्तास्तथाप्युपलक्षणविधया सार्वत्रिका एव ज्ञेया[३] इति ज्ञातव्यम्. एवं स्वविवक्षितरूपे स्वरूपज्ञानादौ जाते निरोधस्तेषां जातः. तदेतदाहु**स्ततश्च जननीवदेतेषामपि भावो ज्ञेय** इति, गोपानामपि सावधानत्वेन रक्षाकर्तृभावो ज्ञेय

योजना

अविद्या पूतना नष्टेतिकारिका. तत्र पूतनाया अविद्यात्वं कृष्णोपनिषत्सूक्तं, तथा च श्रुतिः "लोभक्रोधादयो दैत्या" इति कृष्णावतारे ये दैत्या हतास्ते सर्वे लोभादिष्वन्यतमरूपा इत्यर्थः. दैत्यपदेन पूतनापि ग्राह्या, दैत्योत्पन्नत्वात्, अत एव बकभगिनीत्वम्. तत्र यस्मिन् दैत्ये यस्य दोषस्य सादृश्यमायाति स तद्दोषात्मक इतिनिर्णयः. तत्र पूतनाया अविद्यासादृश्यादविद्यारूपतोक्ता. अविद्यासादृश्यं श्रीमत्प्रभुचरणैष्टिप्पण्यां विवृतम्, अतो ह्यविद्यारूपोक्तिः सूपपन्नैव(५).

१. निरीक्षमाण मू. पा. २,३. लुप्तम्.

अतः परं निरोधस्तु गोकुले सुगमो भवेत् ।
प्रपञ्चविस्मृतिः सा हि कृष्णासक्तिसमन्विता ॥(६)॥

टिप्पणी

न्तःकरणे भगवत्सम्बन्धसत्त्वेन तस्यैवात्रापि स्फुरणेन तदवारणमभूदित्यन्तःकरणाध्यासस्य तद्धेतुत्वम्. तथाचैवं तूष्णींभावस्य तन्मारणानन्तरं भगवद्वामिस्वानिष्टपर्यवसायित्वं दृष्ट्वा यथाकथञ्चित् कुशलिनं प्रियं प्राप्य पश्चात्तापयुक्ताः सन्ताऽतः परं नैवं स्थेयं, किन्तु तत्परतयैवेति ज्ञानमभूदिति सुष्ठूक्त'मविद्या पूतना नष्टा,' 'अतःपरं निरोधः सुगम' इति च. अत एव व्रजौकसां साधारणानां गोपीनां जनन्योश्च उक्ताः. अत एवाग्रे 'सन्तत्रसुरि'त्युक्त्वा 'गोप्यस्तूर्णं जगृहुरि'त्युक्तम्. **कृष्णासक्तिसमन्विता प्रपञ्चविस्मृतिः सा** निरोधरूपेत्यर्थः(५-६).

प्रकाशः

इत्यर्थः. **तदध्यासहेतुक** इति प्राणाध्यासहेतुकः. एवं तस्याः पर्वाणि तेषां निवृत्तिं इति प्राणाध्यासहेतुकः. एवं तस्याः पर्वाणि तेषां निवृत्तिं चोक्त्वा निगमयन्ति **तथा चे**त्यादि **ज्ञानमभूदि**त्यन्तम्. तदेतत् सुबोधिन्यां निगमयन्ति **सुष्ठूक्तमि**त्यादि. तथा चायं कारिकार्थः — पूर्वं "जायमाने जनार्दन" इत्यत्र सर्वाविद्यानाशकस्य प्रादुर्भाव उक्तस्तत्कार्यमविद्यानाश इति साविद्या पूतनानेन चरित्रेण नष्टा सती "कटधूमस्ये"त्यत्र वक्ष्यमाणेन **गन्धमात्रेणावशेषिता** स्थापिता. **अतः परं** तन्नाशनगन्धस्थापनयोरनन्तरं **गोकुले निरोधः सुगमो भवेदि**ति. **अत एवे**ति तस्या अविद्यात्वादेव, **उक्ता** इति सुबोधिन्यामुक्ताः. **अत एवाग्र** इति निरोधसौगम्यादेव. कारिकाशेषं व्याकुर्वन्ति **कृष्णे**त्यादि. **हि**र्हेतौ. तथा च यतो हेतोर्निरोधरूपा सा तथातो हेतोरलौकिकसनकादिसाधारणी स्थितिर्गोकुलस्यानेन चरित्रेणात्र[१]वारिता शुकादीनामेवं निरोधस्य क्वाप्यनुक्तत्वादितिभावः. न चास्यां नष्टायामपि मूलाविद्यापर्वणां देहाध्यासादीनां व्रजस्थेषु दर्शनात् कथं तन्नाशोवगन्तुं शक्य इति शङ्क्यम्, अस्या मूलाविद्याया अपि

कारिकार्थः

मविद्यारूपा पूतना नष्टा. गन्धमात्रेति "कटधूमस्य सौरभ्यमि"तिवक्ष्यमाणप्रकारेणेत्यर्थः. तेन भक्तेष्वपि सेवोपयोगिसंसारः स्थापित इति भावः **अतः परमि**ति, **अतः परं** पूतना नाशोत्तरम्. **से**ति निरोधरूपेत्यर्थः(५-६).

१. लुप्तम्.

एवं पूतनाया वधमुक्त्वा काचित् स्वप्रयोजिका मारितेति शङ्कां दूरीकर्तुं तस्या देहस्य मृतस्यापि महत्त्वमाह **पतमानोपी**ति.

पतमानोपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥१४॥

अपिशब्देन कृत्रिमसामर्थ्ये ततोपि महद् रूपं भवतीति सूचितम्. **त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्** क्रोशषट्कमध्यस्थितवृक्षांश्**चूर्णयामासे**तिभारस्थौल्यमुक्तं लम्बताप्युक्ता, भगवद्वीर्यस्य स्पष्टत्वात्, लोके **तदेव महदद्भुतमासीत्.** अलौकिकात्मनेपदप्रयोगेन तद्देहदाह एव तानि काष्ठान्युपयोक्ष्यन्त इति ज्ञाप्यते एतच्च भगवदिच्छयेति च. गोकुलवासिनां **गव्यूति**रेव प्रसिद्धा, त्रिगव्यूत्यधिको देशस्तैर्न दृष्ट इति तावदेवोक्तम्.

प्रकाशः

—भिन्नत्वात् तृतीयस्कन्धे विंशाध्याये "ससर्जच्छाययाविद्यामि"त्यत्र तस्याः [1]पूर्वाविद्याभिन्नत्वेनोक्तत्वात् तत्सुबोधिन्यां तस्या लीलोपयोगित्वस्य दिङ्मात्रेणोक्तत्वाच्च. अतः**साधारणी ने**ति न किञ्चिदनुपपन्नमिति दिक् ॥१३॥

पतमानोपीत्यत्र **कृत्रिमसामर्थ्ये ततोपी**ति, कृत्रिमरूपकरणसामर्थ्ये सति साहजिकादपि यथा म्रियमाणेन घटोत्कचेनाक्षौहिणीपरिमितसैन्यनाशकं शरीरमाकाशे गत्वा कृतं तद्वत्. **अलौकिकात्मनेपदप्रयोगेणे**ति **पतमान** इति प्रयोगेण. अत्रायं भावः— कर्तृगामिनि क्रियाफले सत्यात्मनेपदं भवति. [2]नष्टेयं तु लीलार्थं वर्तमानाविद्या तत्कार्याविद्यापर्वनाशः[2]. तथा चा**त्रालौकिकात्मनेपदप्रयोगेण**[3] पतनक्रियाफलं देहे महत्त्वमात्रं स्यात्, एवं तु पतनक्रियाजन्यशकलीभावशालिवृक्षजवह्निजन्यफलं दाहरूपं देहे ज्ञापितं भवतीति तथोक्तमित्यर्थः. अलौकिकप्रयोगे ह्यंशद्वयं, तेन किञ्चित् फलं परस्मै किञ्चिदात्मन इति तथा. **प्रसिद्धे**त्यत्र हेतुमाहु**स्त्रिगव्यूती**-

योजना

पतमानोपि तद्देह इत्यस्य विवृतौ, **अलौकिकात्मनेपदप्रयोगेणे**ति पत्लृ गतौ इति धातोः परस्मैपदित्वात् **पतमान** इति प्रयोगो लोके न भवति, शानचः आत्मनेपदत्वात्, अतोयमलौकिकः प्रयोग इति तेन आत्मगामि फलमपेक्षितं, तदाहुः **तद्देहदाह एव तानि काष्ठान्युपयोक्ष्यन्त इति ज्ञाप्यत** इति ॥१४॥

---

१. 'स'. २-२ लीलार्थं विद्यमानाविद्येयं नष्टा, एतत्कार्यं त्वविद्यानाशः. ३. 'न.

राजेन्द्रेति, इन्द्रेण वृत्रवधः कृत इति तन्नाम्ना सम्बोधनं विश्वासार्थम् ॥१४॥

तद्रूपमवयवशो वर्णय**तीषे**ति द्वाभ्याम्.

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥१५॥

ईषा लाङ्गलदण्डश्चतुर्हस्तः; **ईषामात्रोग्रा दंष्ट्रा यस्मिन्नास्ये,** अनेन तत्र कृषीवलानां दण्डस्थानीया एव दंष्ट्रा जातेत्युक्तम्. तादृश**मास्यं** यस्मिन् रूपे. **गिरेः कन्दर**प्राया **नासिका** यस्य, क्रीडास्थानं तज्जातमिति. **गण्डशैलाः** पर्वताच्च्युताः स्थूलाः पाषाणाः, **गण्डशैलाविव स्तनौ** यस्य. **प्रकीर्णा अरुण**वर्णा **मूर्धजा** यस्य ॥१५॥

अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥

अन्धकूपवद् गभीरे अक्षिणी यस्य. **पुलिन**वत् नदीसैकतप्रदेशव**दारो**हस्थानं जघनभागस्तद् गुह्येन **भीषणं** भयानकम्. **बद्धाः सेतव** इव **भुजावूरू अङ्घ्री** यस्य. **शून्यं तोयं** यस्मिन् तादृश**ह्रदवदुदरं** यस्य. नव विशेषणानि प्राकृतगुणानां सर्वेषां समवायार्थानि; अविद्या हि नवधा भीषिका ॥१६॥

टिप्पणी

ईषामात्रेत्यत्र, **अनेने**ति हस्तादिमानं हित्वेषामात्रत्वकथनेनेत्यर्थः. कन्दराद्युपमाने हेतुमाहुः **क्रीडे**ति. **तत्** तस्याः शरीरम्; 'तस्या उरसि क्रीडन्तमि'ति वाक्या**त्तथाजातमि**ति क्रीडायोग्यस्थानैरुपमीयत इत्यर्थः. तज्ज्ञानेन्द्रियं दुष्टमिति तथोपमा ॥१५॥

प्रकाशः

त्यादि ॥१४॥

ईषेत्यत्र**ानेने**त्यारभ्**याक्षिणी यस्ये**त्यन्तस्य तात्पर्यमाहुष्टिप्पण्या**मनेने**त्यादि **तथोपमे**त्यन्तम्. **तथोपमे**त्यन्धकूपोपमा. सुबोधिन्यां **सर्वेषामि**त्यादि सत्त्वरजस्तमः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणामविद्यागुणानां प्रतिजीवं भिन्नानां यः समवाय एकत्रस्थितिस्तत्प्रयोजनकानि. नन्वेवं विशेषणतात्पर्योक्तौ किं कारणमत[1] आहु**रविद्या ही**त्यादि ॥१५-१६॥

---

१. त्रा'.

अत एव तादृशावयवैर्बिभीषिका जातेत्याह **सन्तत्रसुरिति**.

सन्तत्रसुः स्म संवीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम्।
पूर्वं तु तन्निस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥

सम्यक् तत्रसुर्भीताः. **स्मे**ति प्रसिद्धे. भगवत्सान्निध्याद् भयाभावमाशङ्क्य प्रमाणं कथयन्नाह **संवीक्ष्ये**ति. प्रथमत अज्ञानान्न तथा भयं, सम्यग्दर्शने तु भयं जातमिति. **गोपा गोप्य** इति, तेषां मुग्धभावेन सम्यग्दर्शनप्राप्तिर्निरूपिता. **कलेवरं** मृतशरीरम्. नन्वेतावत्कालमदर्शनं कुतस्तत्राह **पूर्वमिति**, **तस्या निस्वनितेन** रोदनेन **भिन्नानि हृदयकर्णमस्तकानि** येषाम्. तामसभूयिष्ठत्वात् त्रिविधावयवाः सर्वत्र निरूप्यन्ते ॥१७॥

एवं तस्या रूपं सकार्यं निरूप्य स्वापेक्षया भगवन्तमुत्कृष्टं दृष्टवन्त इति वक्तुं भगवन्त पूतनाहृदये स्थितं वर्णयति **बालमिति**.

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम्।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥

एतावतीं पूतनां मारयिष्यन्नपि न स्थूलरूपं कृतवान्, अत एव कृष्णावतारचरित्रमत्यलौकिकम्, अवस्थासाधनविरुद्ध- कार्यत्वात्. **चकाराद् बालं** ददृशुः पूतनां च. **च**स्त्वर्थे वा स्वसमानधर्मव्यावृत्त्यर्थम्. **तस्या उरसि क्रीडन्तमिति** सर्वेषां हृदयेऽन्तर्बहिरपि क्रीडतीति सूचितम्. न हि तल्लोकदृष्ट्या क्रीडास्थानं भवति. नापि मुग्धभावेन क्रीडा, तथा सत्यपरिचितदर्शने भयाविष्कारं कुर्यात्. तत् तु नास्तीत्याह**ाकुतोभयमि**ति. "संवीक्ष्य तत्रसुरि" ति पूर्वेणैव सम्बन्धः, दृष्ट्वेत्येव वा, त्रासस्य भिन्नविषयत्वापत्तेः; कलेवरदर्शने त्रासः स्वविषयकः, भगवद्दर्शने तु भगवद्विषयकः. इत्येवं दृष्ट्वा यत् कृतवत्यस्तदाह **गोप्य** इति. गोपापेक्षया गोपीनां स्नेहः साहसं वाधिकमिति ता एव ग्रहीतुं प्रवृत्ताः. अत एवाविचारेण **तूर्णमभ्येत्य जगृहुः**. भगवद्ग्रहणानन्तरं **जातसम्भ्रमा** जाताः, पूतनादेहं दृष्ट्वा, भगवत्सम्बन्धं च, महानयमुत्पात इति मनसि सञ्जातभया जाताः ॥१८॥

प्रकाशः

सन्तत्रसुरित्यस्याभासे **त एवे**त्यादि. **अत एव** नवधाबिभीषकत्वादेतन्नवकत्वेना-विद्यात्वं ज्ञाप्यत इत्यर्थः. यद्वा यतस्तादृशावयवैः सर्वेषां भक्तानां **बिभीषिका** भगवद्विषयकभयजनिका. **मृतशरीरमिति**, यद्यपि **कलेवर**पदं शरीरमात्रबोधकं तथापि प्रकरणात् मृतत्वेन विशेषितं ज्ञेयम्. **तामसे**त्यादि, रोदनस्य सात्त्विकोपद्रव-कारित्वेन **तामसभूयिष्ठयात्** सात्त्विका**त्रिविधावयवाः सर्वत्र** भयेषु दुःखित्वेन **निरूप्यन्त** इत्यर्थः ॥१७॥

बालमित्यत्रोत्कृष्टमिति निर्भयम्. **बालश्चे**त्यर्धस्योत्तरेण सम्बन्धमभिप्रेत्य पक्षान्तरमाहुर्**दृष्ट्वेत्येव वे**ति. तथा च **दृष्ट्वे**त्यस्याध्याहारो वा **संवीक्ष्ये**त्यस्यानुषङ्गो वा. एवं व्याख्याने हेतुमाहु**स्त्रासस्ये**त्यादि. तद् व्युत्पादयन्ति **कलेवरे**त्यादि. तथा चैवं विषयभेदलाभादयं[1] पक्ष उत्तम इत्यर्थः ॥१८॥

यशोदेत्यस्याभासे **ततः** [2]**स्वातन्त्र्येणे**त्यादि. ननु मात्रोर्गोपानां च विद्यमानत्वेपि

लेखः

बालं चेत्यस्याभासे **सकार्यमिति** रूपस्य कार्यं त्रासस्तत्सहितमित्यर्थः. **उत्कृष्टमि**ति भयरहितमित्यर्थः. व्याख्याने **चकारादि**त्यस्य **पूतनां चे**त्यनेनान्वयः. **संवीक्ष्य तत्रसुरि**ति पूर्वेण सम्बन्धोऽग्रे व्युत्पाद्यस्तत्र **संवीक्ष्ये**ति गौणक्रिया **ददृशुरि**त्यनेनात्र विवृतेति ज्ञेयम्. तुशब्दार्थकत्वपक्षे **च**शब्दकथनस्य प्रयोजनमाहुः **स्वसमाने**ति, **स्वस्य समानो धर्म**स्त्रासः, भगवति तद्व्यावृत्त्यर्थमित्यर्थः. **दृष्ट्वेत्येव वे**ति **तत्रसुरि**तिपर्यन्तं नान्वयः किन्तु **संवीक्ष्ये**त्यनेनैवान्वयः. तथा च **संवीक्ष्य तूर्णं समभ्येत्य जगृहुरि**त्यग्रिमेणान्वयः. तत्र हेतुमाहु**स्त्रासस्ये**ति, दृश्यमानविषयकस्त्रासो न सम्भवतीति. यथा तत्कलेवरदर्शने स्वविषयकस्त्रासस्तथा भगवद्दर्शनेपि भगवद्भिन्नविषयकः स्यात् न तु भगवद्विषयक इत्यर्थः. विवक्षितस्तु तत्रैव स्वविषयकोत्र तु भगवद्विषयक इत्याहुः **कलेवरे**ति ॥१८॥

योजना

बालं च तस्येत्यस्य विवृतौ **पूर्वेणैव सम्बन्ध** इति, **बालं च संवीक्ष्य तत्रसुरि**ति पूर्वेण सम्बन्ध इत्यर्थः. **दृष्ट्वेत्येव वे**ति दृष्ट्वेति **संवीक्ष्ये**त्यस्य पर्याय उक्तो न तु दृष्ट्वेतिपदं मूलेस्ति न वाध्याहार्यं किन्तु **संवीक्ष्ये**तिपूर्वं पदमस्ति तेनैवान्वयः. अस्मिन् पक्षे **तत्रसुरि**तिपदपर्यन्तं नान्वयः किन्तु **बालं च तस्या उरसि संवीक्ष्य गोप्यो जगृहुरि**त्युत्तरक्रिययान्वयः ॥१७-१८॥

---

१. लुप्तम्. २. स्वातन्त्र्येणेति.

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः।
रक्षां विदधिरे सम्यग् गोपुच्छभ्रामणादिभिः ॥१९॥

ततः स्वातन्त्र्येण किञ्चित् कर्तुमशक्ता **यशोदारोहिणीभ्यां** सहिता जाताः, यशोदारोहिण्योः स्त्रीप्रकृतिकत्वाद् गोपीनामग्निकुमारत्वेनर्षित्वाद् गोपानां तत्तदभिमानिदेवत्वात्. तत्रापि केवलभगवदुपासकानां गोपसम्बन्धरहितत्वादुपायमन्त्रदृष्टृत्वेन प्रसिद्धा इति **ता** इत्युक्तम्. **यशोदारोहिणीभ्यां समं बालस्ये**ति वा सम्बन्धः. सहार्थे **सम**शब्दः, **सम**मित्यव्ययम्. ननु भगवानयमिति ज्ञात्वा कथं रक्षां चक्रुस्तत्राह **बालस्ये**ति, यतो भगवान् **बाल**भावं प्राप्तः, अतो यथान्य उपचारास्तथैतदपि कर्तव्यमित्यर्थः. **सर्वत** इति, अन्तर्बहिः केनाप्यंशेन यथानिष्टसम्बन्धो न भवति तथा. **रक्षां** कर्मविशेषं मन्त्राभिमन्त्रणरूपं **विदधिरे** कृतवत्यः. **सम्यग**ित्याधिदैविकप्रकारेण तत्तद्देवतं तत्रतत्र स्थापितवत्य इत्यर्थः. आदौ स्थितस्य दैत्यसम्बन्धस्य परितो वा विद्यमानस्याधिभौतिकादित्रितयस्य निवृत्तिं **गोपुच्छभ्रामणादिभिः**

योजना

यशोदारोहिणीभ्यां ता इत्यस्य विवृतौ **गोपीनामग्निकुमारत्वेने**ति **गोपीनां मध्ये** कासाञ्चिदग्निकुमारत्वेनेत्यर्थः. **गोपानां तत्तदभिमानिदेवतात्वा**दिति. श्रुतिरूपगोपिकानां ये पतित्वेन प्रसिद्धास्ते तु न पतयः किन्तु श्रुतिमन्त्ररूपा एता गोप्यस्तन्मन्त्राभिमानिदेवरूपा एते गोपाः, पतिस्तु भगवानेव. अत एव टिप्पण्यां 'मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्' इतिवाक्यात् स्वपार्श्वस्थाभिमानमात्रं यथा रासोत्सवसमये गोपानां तथा सर्वदैवभोगाद्यभिमानमात्रं न तु वस्तुतो गोपानां स्वपत्नीषु भोगस्तासां भगवदेकभोग्यत्वादिति सिद्धान्तितं सप्तदशाध्यायप्रसङ्गे. तर्हि पुत्राद्युत्पत्तिः कथमिति चेत्, भगवत एवालौकिकप्रकारेणेति बोध्यम्. तर्हि किमर्थं पतित्वेन स्वीकार इति चेत्, परकीयतारसपोषार्थमिति ज्ञेयम्. **तत्रापि केवल भगवदुपासकानामि**ति अनन्यपूर्वाणामग्निकुमाराणामित्यर्थः. केचित् तु श्रुतिरूपास्वपि काश्चिदनन्यपूर्वाः सन्ति ताः केवलभगवदुपासका इत्याहुः. तथा च सिद्धमेतत्—अनन्यपूर्वाणामृषिरूपाणां गोपसम्बन्धराहित्यं स्फुटमेव, श्रुतिरूपाणामन्यपूर्वात्वेप्यभिमानमात्रमिति न गोपसम्बन्धः. श्रुतिरूपास्वपि कासाञ्चिदनन्यपूर्वात्वे सुतरां गोपसम्बन्धाभावः. एवं सर्वत्र गोपसम्बन्धाभावसूचनार्थं "**यशोदारोहिणीभ्यां ता**" इतिश्लोके **तच्छब्द** उक्तः, अन्यथा न वदेत्, "गोप्यस्तूर्णम्" इति पूर्वपठितेन **गोपी**पदेनाकाङ्क्षापूर्तेः ॥१९॥

प्रकाशः

गोपीभिरेव कुतो रक्षाकरणमित्याकाङ्क्षायां मूलस्थस्य **ता** इतिपदस्य तात्पर्यमाहु**र्यशोदारोहिण्योरि**त्यादि. तथा च मात्रोस्तथात्वादेतासाञ्च **ऋषित्वाद् गोपानां** चाभिमानित्वेन प्रेरकत्वात् कासाञ्चित् सम्बन्धराहित्याद् विवक्षितमन्त्रद्रष्टृत्वं [१]तास्वेवातस्तथेत्यर्थः. कृष्णोपनिषच्छ्रुतौ "गोपान् नः स्त्रीश्च नो कुर्वि"ति भगवन्तं

लेखः

यशोदारोहिणीभ्यां ता इत्यत्र पूर्ववाक्यस्थस्य **गोप्य** इतिपदस्य **तच्छब्दं** विनापि सान्निध्यादेवानुवृत्तिसम्भवात् पूर्वपरामर्षार्थकत्वे **ता** इतिपदमप्रयोजनकं स्यादतः प्रसिद्ध्यर्थकत्वमित्यभिप्रेत्य तां प्रसिद्धिं विवृण्वन्ति **यशोदारोहिण्योरि**ति. एतयोरप्राधान्ये हेतुमाहुः **स्त्रीप्रकृतिकत्वा**दिति. गोपसम्बन्धेन प्रसिद्धिबोधकं गोपीपदं विहाय प्रसिद्ध्यन्तरबोधक**तच्छब्द**कथने हेतुमाहु**र्गोपीनामि**ति. अत्र कर्मणि गोप्यो द्विविधाः— कुमारिकाः श्रुतिरूपाश्च. तत्र कुमारिकाणामग्निकुमारत्वेन ऋषित्वात् न गोपसम्बन्धः, श्रुतिरूपाणामपि तथेत्याहुः **गोपानामि**ति. एतेषां तत्तदभिमानयुक्तदेवत्वमेव, न तु वस्तुतः सम्बन्धः. अत एव "क्वेमाः स्त्रिय" इत्यस्य द्वितीयव्याख्याने पुत्रोत्पत्त्यादिकं तु सर्वभवनसमर्थादलौकिकप्रकाराद् भगवत एवेत्यादि वक्ष्यते. **तत्रापी**ति श्रुतिरूपास्वपि काश्चिदनन्यपूर्वास्तासां त्वाभिमानिकोपि सम्बन्धो नास्ति. अतः सर्वास्वपि वस्तुतो गोपसम्बन्धाभावात् मान्त्रिकरक्षाकर्मणि च यथार्थप्रसिद्धेरेव वक्तव्यत्वाद् रक्षोपायभूतमन्त्रत्वेन श्रुतिरूपाणां तद् द्रष्टृत्वेनाग्निकुमाराणां प्रसिद्धिं वक्तुं **ता** इतिपदमुक्तवानित्यर्थः. **गोपीनां** मध्ये कासुचि**दग्निकुमारत्वेनर्षित्वा**दन्यासु च **गोपानां तत्तदभिमानिदेवत्वा**दित्यन्वयः. **उपाये**ति उपायमन्त्रत्वेन द्रष्टृत्वेन चेत्यर्थः. अत्र टिप्पण्यां "ननु पूर्वमात्मभूषणकर्त्रीभिः प्रियतमे गोमूत्रसम्बन्धः कथं कारित" इत्युक्तत्वात् श्रुतिरूपा अपि सन्तीति ज्ञेयम्. श्रुतिरूपाणां मध्ये मन्त्रभागे येषां येषां मन्त्राणां ये ये देवास्ते ते तासां तासामत्र पतयः. तत्र तत्तन्मत्रेषु तेषां तेषामभिमान एव, वस्तुतस्त्वखिलमन्त्राधिपतिर्भगवानेव. ब्राह्मणभागे देवाभावात् तद्रूपा अत्र **केवलभगवदुपासका** उक्ता इति ज्ञेयम्. मात्रोः स्त्रीप्रकृतिकत्वेपि मातृत्वाद् रक्षाकर्मण्यप्राधान्यं नोचितमित्याशयेन पक्षान्तरमाहु**र्यशोदे**ति, **इति वा**

---

१. तास्वेवेति तथा.

कृतवत्यः. आधिभौतिकमनिष्टं तीर्थस्नानादिना गच्छति, गवां पुच्छेषु तीर्थानि सन्ति, तेषां भ्रामणे मन्त्रेण तत्रत्यानि तीर्थानि परितः स्थापितानि भवन्ति. **आदि**शब्देन मन्त्रध्याने अपरयोर्निर्वर्तके ॥१९॥

एवमेकप्रकारेण बाह्यतो रक्षा कृता लोकसिद्धा परम्परया प्राप्ता. आर्षज्ञानेनापि सिद्धां रक्षामाह **गोमूत्रेणे**ति.

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।
रक्षां चक्रुः सशकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥२०॥

बालकं तथैव **गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गवामा**गतानां सम्मुखं खुरोद्भूत**रजसा स्नापयित्वा;** आर्द्रे शरीरे रजः सर्वत्र सम्बद्धं भवतीति पुनःस्नापनम्. ननु कथं भगवति संस्काराः क्रियन्त इत्याशङ्क्याह**ार्भकमि**ति. पूर्वं केवलमन्त्रेण कृता रक्षा, इदानीं सद्रव्येणेति रक्षायां विशेषः. **सशकृता गोरजसे**ति गोमयेन सहिता गोखुरमृत्तिका पुनरङ्गेषु स्थापिता. **द्वादशाङ्गानि** भवन्ति पुरुषे "द्वे सक्थावि"त्यादिश्रुतेः, स्मार्तानि वा "ललाटं बाहुमूले च हृदयं नाभिपार्श्वकं कण्ठः स्कन्धौ कटिर्मूर्धा स्तनौ चेति विदुर्बुधाः". **नामभिः** केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामनश्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोदरेति ॥२०॥

प्रकाशः

प्रति [1]देवप्रार्थनाश्रावणाद् गोपा गोप्यश्च देवा एव, "गोप्यो गाव ऋचस्तस्ये"ति तत्रैव[2] श्रावणात् काश्चिद् ऋग्रूपा अपि. बृहद्वामनपुराणे तु सामान्यतः 'श्रुतय' इत्युक्तम् "अग्निपुत्रा महात्मान"इति वाक्ये ऋषिरूपत्वप्युक्तम्. एवं नानारूपत्वे सत्यग्निपुत्रेषु गोपसम्बन्धित्वं तदसम्बन्धित्वं [3]चेत्युभयमपि कल्पयितुं शक्यं, केषाञ्चित् स्त्रीत्वमात्रमेव केषाञ्चिद् भगवद्भर्तृकस्त्रीत्वमित्युभयरूपत्वान्न विरोध इति सुस्थम्. **अपरयोरि**त्याध्यात्मिकाधिदैविकयोरनिष्टयोरित्यर्थः ॥१९॥

गोमूत्रेणत्यत्रार्षज्ञानसिद्धाया रक्षायाः किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां तत्रोपपत्तिं वदन्तीत्याशयेन टिप्पण्यामाहु**र्ननु पूर्वमि**त्यादि. **अन्यपरत्वमि**ति भक्तिपरत्वम्.

लेखः

सम्बन्ध इति. **अपरयोर्निर्वर्तके** इति आध्यात्मिकाधिदैविकदैत्यसम्बन्धयोरित्यर्थः ॥१९॥

---

१. देवप्रार्थनाश्रवणाद्. २, ३. लुप्तम्.

टिप्पणी

ननु पूर्वमात्मभूषणकर्त्रीभिः प्रियतमे गोमूत्रसम्बन्धः कथं कारितस्तत्राह **अर्भकमि**ति. प्रिये दुष्टसम्बन्धज्ञानेनातिकातर्येण सर्वविस्मृतिर्यथाकथञ्चिदमंगलनिवृत्त्याशंसा च स्नेहस्वाभाव्यादवश्यं सदैव भवितुमुचिता, किं पुनरर्भकभावापन्न इति ज्ञापयितु**मर्भक**पदम्. मूले[1] अयमेवार्थो **ननु कथमि**त्यादिना पितृचरणैरुक्त इति ज्ञेयम्. नन्वितरार्भकवत्तत्कालोचितरूपदर्शनाभिप्रायेण तदुक्तमिति शङ्कनीयम्, **क्रीडन्तमकुतोभयमि**ति पदेन पूर्वमेव तन्निरासात्.

ननु स्नेहवशाद्रक्षाकृतिरिति सत्यम्, परन्तु तस्या उपयोग क्वेति विचारणीयम्. न च दोषाभावे, तेषामेवाभावात्. न च तदारोपाभावे, भ्रममूलकत्वापत्त्या रक्षाया अप्रामाणिकत्वापत्तेः. एवं सति भक्तिमार्गीयभजनमात्रस्य तथात्वापत्त्या महानेवानर्थश्च स्यात् स्नेहस्य भ्रमजनकत्वेन दोषापत्तिश्च[2]. न चैवमपि वक्तुं शक्यम्, सर्वप्रमाणविरोधात्. न च प्रमाणानामन्यपरत्वम्, स्नेहस्यैव भक्तिपदार्थत्वेन विवृतत्वात् सर्वत्र. नन्वत्र यथाकथञ्चिन्निरोध एव साध्यः; रक्षाकृत्या चासक्तिविशेषरूपः स सिद्ध इति न किञ्चिदनुपपन्नमिति चेत्, एवं सति देहाद्यध्यासरूपाज्ञानमूलकत्वेन स्रक्चन्दनादिसुखस्य हेयत्वं यथा तथा लीलारसस्याप्यज्ञानमूलकत्वेन तथात्वं स्यात्. मोक्षादप्याधिक्यं भक्तौ तत्र तत्र निरूप्यत इति न तथा वक्तुं शक्यं चेत्युभयतः पाशारज्जुरिति चेत्, अत्रेदं प्रतिभाति– माहात्म्यज्ञानदशायामपि स्नेहजो भावो दृश्यत इति नाज्ञानमूलकत्वं वक्तुं शक्यम्. तदुक्तं देवकीस्तुतौ 'रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मां सदृशां त्वं कृषीष्ठा'इत्युपक्रम्य 'समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीरि'त्यादि. एवं सति ज्ञानभक्त्योर्युगपत्सत्त्वेपि स्नेहकार्यस्यैव सम्भवेन स्नेहस्य ज्ञानमार्गीयज्ञानाद् बलिष्ठत्वं ज्ञायते. तथा च "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावर" इत्यादिश्रुतिभ्यः शास्त्रीयज्ञानपूर्वकभगवत्साक्षात्कारवति भ्रमसम्भावनापि न कर्तुं शक्या.

प्रकाशः

रक्षाया निरोधपरत्वमाशङ्कन्ते **नन्वि**त्यादि. तां परिहरन्त्**येवं सती**त्यादि. **लीलारसस्ये**ति लीलया कृतस्य भक्तिरूपस्य रसस्येत्यर्थः. सिद्धान्तेन [3]समादधतेऽ**त्रेदमि**त्यादि. **अत** इति स्नेहस्य ज्ञानापेक्षयाधिक्यात्. **विषयाबाध** इति

---

१. पदं मूले मू. पा. २. दोषत्वापत्तिः मू. पा. ३. अत्रेदं प्रतिभाति.

टिप्पणी

अतः स्नेहजभावस्य न भ्रमत्वमिति सर्वथा मन्तव्यम्. तथा सति विषयाबाधश्च वाच्यः. प्रकृतेऽपि 'पतिं द्रष्टुमागतां श्रियममंसते' ति वाक्याद्भगवत्त्वेन ज्ञानवतीभिरेव रक्षा कृतेति ज्ञायते. एवं सति यथैकस्मिन्नेव पुरुषे पुत्रत्वभाववत्याः स्त्रियास्तद्दर्शने वात्सल्योत्पत्तिः स्वपोषणपुष्टत्वपोष्यत्वादिज्ञानस्य च. पतिभाववत्या विनयविशेषपूर्वकरसभावो ममैहिकपारलौकिकनिर्वाहक इति च भाव उत्पद्यते. जारभावत्यास्तु तत्प्रत्यङ्गेषु स्वरसपोषकत्वज्ञानेन प्रौढिपूर्वकविविधरसभावविशेषोत्पत्तिस्तदनुरूपभावाः पुंस्यप्युत्पद्यन्ते. न ह्युक्तभावविषया धर्माः पुंस्यसन्त इति वक्तुं शक्यम्, अनुभवविरोधात्. तथा च तत्र विद्यमाना अपि धर्मास्तत्तद्भावैकगम्यत्वेन तत्तद्भाववतीनामेव विषयास्तथा स्नेहभावे सत्येव ये धर्मा भगवन्निष्ठाः स्फुरन्ति ते तत्र सन्त एव तादृगेकवेद्या एव तथेति न भ्रमत्वशङ्कापि. यथा 'न चान्तर्न बहिर्यस्ये' ति श्लोकोक्तधर्मवत एव दाम्नावच्छिन्नत्वम्, तथा लोकविलक्षणत्वेन माहात्म्यज्ञानजनकत्वेन ज्ञानप्रकरणोक्तधर्मविपरीतधर्मा लीलारूपा अपि प्रभौ सन्तीति नानुपपत्तिः काचित्. अत एव 'अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावि'त्युक्तं शुकैः, अन्यथा 'न चान्तरि'त्यादिधर्मवतः स्तन्येन तृप्तिस्तदप्राप्त्या चातृप्तिर्विरुद्धा नोक्ता स्यात्. किञ्च शास्त्रं हि यथाधिकारं ब्रह्मस्वरूपं निरूपयति. ज्ञानमार्गीयेभ्यो भक्तिरसादानान्मोक्षमात्रदानाच्च रसात्मकब्रह्मधर्मबोधने प्रयोजनाभावान्नैतान् धर्मान् ज्ञानमार्गे निरूपयति. नह्येतावता तदतिरिक्तधर्माभावः सिध्यति. येषु तज्ज्ञापनप्रयोजनमस्ति तान् ज्ञापयतीति व्रजसीमन्तिन्यादिषु तदज्ञापनम्[१]. ते च ब्रह्मधर्माः स्नेहे जाते स्वत एवानुभूयन्त इति फलरूपत्वेन साधनमार्गे तदकथनं युक्तं च, ज्ञानकर्मादीनां विहितत्वेन साधनमार्गीयत्वात्. ननु ज्ञानमार्गस्याक्षरविषयत्वेन तथात्वस्य युक्तत्वेपि भक्तिमार्गीयेष्वपि केषाञ्चिन्मुमुक्षूणामुक्तधर्मस्फूर्तिः[२] स्नेहवतां तु तत्फूर्तिः— तत्रापि तारतम्यमिति कथमिति शङ्का 'यथैकस्मिन्नेव पुरुष' इत्यादिना निरस्ता ज्ञेया[१*]. यथा प्रत्यासत्तिसाम्येपि न चक्षुषा गन्धादिग्रहोऽयोग्यत्वात्तथात्रापीति ज्ञेयम्. किञ्च "रसो

प्रकाशः

रक्षाविषयस्य बालभावानुरूपस्य धर्मस्येत्यर्थः. "वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवद्" इति सूत्रमनुसृत्य समादधते **किञ्च शास्त्रमि**त्यादि. सूत्रार्थस्तु भाष्यादवगन्तव्यः ॥२०॥

१. तज्ज्ञापनम् मू. पा. २. धर्मास्फूर्तिः मू. पा.

एवमियं द्वितीया रक्षा निरूपिताध्यात्मिकी, आधिदैविकीमाह **गोप्य** इति.

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजैर्न्यासमकुर्वत ॥२१॥

पूर्वं कर्तृकर्मणोरसंस्कारः, कर्मण एव मध्यमे, कर्तुरपि तृतीये. प्रथममात्मसंस्कारो द्विविधो निरूप्यते **सम्यक्स्पृष्टसलिला** इति, बहिः स्नानमन्तराचमनं चोक्तम्. ततो **बीजमन्त्रानेकादशात्मनि न्यासं** कृतवत्यः. स्वस्मिन्नागतायां

टिप्पणी

वै स" इत्यादिश्रुत्या लीलायाः स्वरूपात्मकत्वान्नानुपपत्तिः काचित्. यथैतत्तथा विद्वन्मण्डने प्रपञ्चितमस्माभिः. यद्वा "तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमह" इत्यादिश्रुतौ ब्रह्मणः पावनं श्रूयते; तच्च ब्रह्मात्मकातिशयविशेषप्राकट्यमेव. प्रकृते च "रसो वै स" इत्यादिश्रुत्या भगवतो रसात्मकत्वात्तस्य च भावात्मकत्वाद्रक्षाकृत्या स्वामिनीभावविशेषरूपातिशयप्राकट्यमभूदिति तत्रैवोपयोगो रक्षाकृतेः, सौन्दर्यविशेषाभिव्यक्तौ मण्डनकृतेरिव. अत एवाधुनापि स्वक्षुत्पिपासादि ज्ञापयति भक्ते हरिः. पूतनातः स्वस्मिन्नानीतानां बालकानामग्रे विनियोगयोग्यतासिद्ध्यर्थं राक्षसीस्पर्शजदोषोऽवश्यं निवारणीय इति स्वामिनीकृतरक्षायास्तन्निवारणमप्येकं प्रयोजनं भगवदभिमतमिति ज्ञेयम्, एकस्या भगवल्लीलाया अनेककार्यसाधकत्वात् ॥२०॥

प्रकाशः

गोप्यः संस्पृष्टेत्यत्राधिदैविक्यां रक्षायां विशेषं वक्तुं **पूर्वं कर्तृकर्मणोरसंस्कार** इति – प्रथमरक्षायां रक्षाकर्तुः स्वस्य रक्षाकर्मणो भगवतश्च न संस्कारो, **मध्यमे** भगवत एव संस्कार**स्तृतीये** तु द्वयोरित्यर्थः. **बीजमन्त्राणि** 'अव्यादि'तिश्लोके

योजना

गोप्यः संस्पृष्टसलिला इत्यस्य विवृतौ **पूर्वं कर्तृकर्मणोरसंस्कार** इति. "**गोपुच्छभ्रामणादिभिरि**"त्यनेन पूर्वं भौतिकी रक्षोक्ता; तत्र रक्षाकर्त्रीणां रक्षाकर्मरूपस्य भगवतोप्य**संस्कार** इत्यर्थः. **कर्मण एव मध्यम** इति – **मध्यमे** रक्षणे "**गोमूत्रेण स्नापयित्वे**"त्यनेन रक्षाकर्मणो हरेः संस्कार इत्यर्थः. **कर्तुरपि तृतीय** इति **अपि**शब्दात् कर्मरूपस्य भगवतः संस्कारः. एवं तृतीये रक्षणे **गोप्यः संस्पृष्टसलिला** इत्युक्ते कर्तृकर्मणोर्गोपीभगवतोरुभयोरपि संस्कार इत्यर्थः ॥२१॥

१.* 'ज्ञेया' इति मू. पाठे नास्ति.

देवतायामन्यस्मिन् स्थापनमनुभवसाक्षिकं भवति. ततस्त्वाजित आधिदैविको दोषः स्वात्मानं वा गृह्णीयाद्, बलिष्ठदोषस्य त्याजकग्राहकत्वाद् " अग्निं वै जातमि"त्यत्र तथोक्तेः. आत्मन्यपि द्विगुणा रक्षा कृता करणकर्तृभेदेन, साक्षात्करणे कर्तरि च दोषसम्बन्धसम्भवात्. तदाह**ाङ्गेषु** वक्ष्यमाणेषूक्तेषु वा तैरेव **नामभिः. करयोरि**ति, करतलकरपृष्ठाभ्यां सह दशाङ्गुलीषु दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामांगुष्ठपर्यन्तासु, **पृथगि**ति करयोरेव वा सम्बध्यते. तेनाङ्गुलिचतुष्टये पर्वत्रये न्यासो भवति, "अङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वस्वि"तिवचनात्. **पृथगि**ति दशन्यासा वा निरूपिता मातृकान्यासादयः. एव**मात्मनि न्यस्य** सर्वदेवताधारभूताः सत्योऽथ भिन्नप्रकारेण देवताः सर्वाः बहिः स्थिता विधाय **बालस्य** भगवतोऽ**ङ्गेषु बीजैरे**कादशभि**र्न्यासमकुर्वत** कृतवत्यः॥२१॥

टिप्पणी

अङ्गानि करणानि आत्मा कर्ता; तदाहुः **करणकर्तृभेदेने**ति ॥२१॥

प्रकाशः

वक्ष्यमाणानि. **करणकर्तृभेदेने**त्येतस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**रङ्गानी**त्यादि[१]. सुबोधिन्यां द्वैगुण्यप्रयो- जनमाहुः**साक्षादि**त्यादि. **साक्षात्करण** इत्यव्यवधानेन रक्षाकरणे. वक्ष्यमाणपक्षे बीजानामेव न्यास उक्तपक्षे केशवादिनामभिरिति ज्ञेयम्. नाम्नां विनियोगान्तरमाहुः **करतले**त्यादि, प्रकारान्तरमाहुः **करयोरि**त्यादि. तथा सति द्वादशनाम्नामङ्गुलि- चतुष्कपर्वस्वेव न्यासः, एवं करन्यासे प्रकारद्वयम्. [२]अथाङ्गन्यासादौ प्रकारान्तरमाहुः **पृथगि**त्यादि **मातृकान्यासादे**रिति ॥२१॥

लेखः

गोप्यः संस्पृष्टेत्यत्र **न्यस्ये**तिपदं विवृण्वन्ति **ततो बीजमन्त्रानेकादशे**ति, अग्रिमश्लोकोक्तान् नमोऽन्तान् स्वाङ्गेषु स्थापितवत्य इतिशेषः. **आत्मनी**ति एवमिति शेषः. **अङ्गेषु वक्ष्यमाणेष्वि**ति एतत्पक्षे तेषामेकादशत्वाद् बीजमन्त्रानेकादशेत्युक्त एव प्रकारः. **उक्तेष्वि**तिपक्षे पूर्वश्लोकोक्ताङ्गानां द्वादशत्वाद् तत्रोक्तैरेव केशवादिद्वादश- नामभिरित्यर्थः. पूर्वश्लोके भगवदङ्गेषु न्यास उक्तः, अत्र स्वाङ्गेष्विति विभेदः ॥२१॥

---

१. लुप्तम्. २. अथागुंलिन्या°.

बीजानि स्थानानि च गोप्यानीति भङ्ग्यन्तरेण देवताप्रार्थनरूपेण रक्षां स्तोत्ररूपां वदन्नाहा**व्यादि**ति.

अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

भगवत एकादश रूपाणि मूलतः प्रसिद्धानि वैष्णवतन्त्रे, अन्यानि तु न समर्थान्युपढौकनेनारोपितसामर्थ्यानि वा भवन्ति. तत्र प्रथम**मजो** न जायत इत्यविकृतो, मूलभूत इति यावत्, सोक्षरात्मको भवति; सोक्षरात्माऽ**जो** भगवतो- ऽ**ङ्घ्रिमव्यात्.** अङ्घ्रिरयमाध्यात्मिकः, स त्वाधिदैविक इति "अन्तर्याम्यवतारादिरूपे

टिप्पणी

अव्यादज इत्यत्र, **अङ्घ्रिरयमि**त्यादि **अयं** अवनीयत्वेनोच्यमान इत्यर्थः. परिदृश्यमान एवाधिदैविकोऽ**ज**पदेनोच्यते. स स्वाधिष्ठानभूतमाध्यात्मिकं स्वस्मिन्विद्यमानमेव वाव्यादिति प्रार्थनेति भावः॥२२॥

प्रकाशः

अव्यादित्यत्र टिप्पण्यां मूलरूपविचारेवताररूपविचारे चाक्षरस्य [१]पादत्वात् तस्य चाविकृतत्वेनात्रोक्तत्वादवनीयोऽङ्घ्रिः क इत्याकाङ्क्षायां तं विवेचयन्तीत्याशये- **नाङ्घ्रिरयमि**त्यादेरर्थमाहु**रयमि**त्यादि. ननु तस्यैवाधिदैविकत्वमित्यवनीयत्वं कस्येत्यत आहुः **परी**[२]त्यादि. तथा च स्वस्मिन् [३]विद्यमानस्यैवावनीयत्वमित्यर्थः. सुबोधिन्यां

लेखः

अव्यादज इत्यस्याभासे **भङ्ग्यन्तरेणे**ति तत्तद्दैवतं तत्र तत्र तिष्ठत्विति वक्तव्यं तथात्र नोक्तमित्यर्थः. भङ्ग्यन्तरस्यैव विवरणं **देवते**ति.. **वदन्नाहे**ति शुकस्तत्कृतां रक्षां **वदन्नाह** अग्रिमवाक्यानीतिशेषः. एतेनावान्तरप्रकरणार्थ उक्तः. एतद्वाक्यार्थस्तु एतच्छ्लोकोपसंहारे **एवं पाद्वि**त्यनेन सूचयिष्यते. **अव्यादज**

योजना

अव्यादजोङ्घ्रिमणिमांस्तवेत्यस्य विवृतौ **सः अक्षरात्माजः भगवतः अङ्घ्रि- मव्या**दित्यादि. इह भगवदङ्घ्रिरक्षणमक्षरात्मकेन भगवता कर्तव्यमित्यत्र**ाङ्घ्रिरय- माध्यात्मिकः स त्वाधिदैविक** इत्यादिनोपपत्तिरुच्यते. व्यासचरणानामभिप्रेतैव, यतो "जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु

---

१. पद°. २. परिदृश्यमाने°. ३. विद्यमानस्यैवाधिदैविकत्वम्.

पादत्वमस्ये" तिनिरूपणात्. ततः स एव सर्वोपास्यरूपो भवन् दुर्ज्ञेयत्वाद**णिमान्** भवति. बीजरूपाण्येतानि नामान्यविकृतानि भवन्ति.[१] **जानुद्वयं सोऽव्यात्** स्थूलादग्रे सूक्ष्मभावात्. एतद् द्वयं प्रमेयबलेन रूपद्वयेन निरूपितं, प्रमाणबलेन पुनः पृथङ् निरूपय**त्यथे**ति, अनेन भक्तिमार्गो ज्ञानमार्गश्च प्रमेयबलादेव सिध्यतीति ज्ञापितम्. **यज्ञ उरू अव्यात्**, स हि प्रजननात्मकः. **अच्युतो** यज्ञस्यैवाधिदैविकं रूपं

प्रकाशः

स्थूलादग्रे सूक्ष्मभावादिति—**स्थूलाद**क्षरभावाद**ग्रे**नन्तरं सर्वोपास्यतायां **सूक्ष्मभावाद्** दुर्ज्ञेयत्वात् तस्योपरि तत्राङ्गरक्षकत्वप्रार्थनेतिभावः. **एतद् द्वयमि**त्यादि. "नैतन्मनो विशती"ति वाक्येनाक्षरस्य प्रमाणातीतत्वात् स्वरूपबलेन **रूपद्वयेन** रक्षाद्वयं **निरूपितमि**त्यर्थः. **अनेने**त्यङ्घ्रिजानुनोः पूर्वं रक्षानिरूपणेन मानान्मेयसिद्धि-रितिन्यायमुल्लङ्घ्यापि पूर्वं प्रमेयबलनिरूपणेन च जानुनोर्ज्ञानमार्गत्वं [२]भक्तिकर्म-सन्दंशाद् ज्ञेयम्. यज्ञस्य कर्मरूपत्वादिति. भक्तिमार्गो ज्ञानमार्गश्च भगवदक्षरयोः प्रत्यक्षहेतुत्वात् प्रमाणम् ॥२२॥

लेखः

इत्यत्र **अणिमानि**त्यस्य दुर्ज्ञेयत्वार्थकत्वेऽणिष्ठ इति स्यादित्याशङ्क्याहु**र्नामान्य-विकृतानी**ति. अतो नातीवाग्रहः कर्तव्यः इति भावः. **अनेने**ति चरणरक्षाप्रार्थनायां प्रमेयबलकथनेनेत्यर्थः. जान्वोरपि चरणत्वमभिप्रेत्येदमुक्तं; "विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य चे"ति द्वितीयस्कन्धवाक्यात् चरणस्य भक्तिरूपत्वमक्षरात्मकत्वाद् ज्ञानरूपत्वम्. **प्रजननात्मक** इति प्रजननमात्मनि स्वरूपे यस्येत्यर्थः. "अग्निहोत्रं

योजना

केशव" इत्यादिभिरुपपत्तिपूर्वकमेव रक्षाया उक्तत्वात् जले वराहरूपस्य प्रवेशसामर्थ्यात्. अत एवारण्ये नृसिंहस्य रक्षकत्वमुक्तम्. अतो ज्ञायते तत्तन्नामभिस्तत्तद्रक्षा निरूप्यते सोपपत्तिपूर्विकैवेति. अतः श्रीमदाचार्यैः सर्वत्रोपपत्तयो निरूपिताः. **अनेन भक्तिमार्गोज्ञानमार्गश्चे**ति. **अनेन** अक्षरस्य भक्तिमार्गरूपाधिदैविकचरणारविन्दरूप-त्वकथनेनेत्यर्थः. अक्षरस्य हि रूपद्वयेन स्थलद्वयरक्षोक्ता. तत्र अजत्वरूपेण चरणरक्षोक्ता, तेन भक्तिमार्ग उक्तः, चरणस्य भक्तिरूपत्वाद्. **अणिम**त्पदेन

---

१. लुप्तं क्वचित्. २. भक्तिमार्गत्वं चरणस्य ज्ञेयम्.

कटितटमव्यात्, स हि रक्षको न केनापि प्रकारेण च्युत इति, वेदानां यज्ञानां च नित्यताप्युक्ता. **हयास्यो जठरमव्यात्**, नष्टेषु वेदेषु रक्षणार्थमवतीर्णः, उदरं सर्वमेव जगत्, तच्च कर्मणा परिपाल्यत इति यज्ञे प्रादुर्भूत उक्तः. **हृद्** हृदयं **केशवोऽव्यात्**, कश्चेशश्च केशौ तयोर्वं सुखं यस्मादिति, ब्रह्मशिवयोर्बुद्ध्यहङ्कार-नियामकयोरपि सुखदातान्तर्यामी हृदयपरिपालको भूयात्. हृदयं स्तनयोर्मध्ये निम्नस्थानं, उरस्तूच्चस्थानम्. स्तनादुपरि कण्ठादध**स्त्वदुर ईशोऽव्यात्**, यस्त्वाधिदैविक-कालरूपो येन प्रकृतेर्गुणाः क्षुब्धा भवन्ति. **त्वदुर** इति, उरसि लक्ष्मीरपि वर्तते, अतस्तद्व्यावृत्त्यर्थं **त्व**त्पदम्. **इनस्तु कण्ठं**, तुशब्दो ब्रह्माण्डमध्यस्थितं वक्तुं बहिःस्थिताद् व्यावृत्तिमाह. **इनः** सूर्यान्तःस्थितो नारायणः, स **कण्ठमव्यात्**, सरस्वतीस्थानं तत्, त्रयीमयात्मकश्च सः. ततो जगद्रक्षायां स्थितः क्रियाशक्ति**र्विष्णु-र्भुजमव्यात्**, क्रियाभुजयोरेव प्रतिष्ठितेति. ततो भक्तबाधकत्वेन दैत्येषु समागतेषु तन्निवृत्त्यर्थं समागतो बलिबन्धनक**र्तोरुक्रमो** वामनो **मुखमव्यात्**. ततः **कं** शिर **ईश्वरोऽव्यात्**, यस्तु सङ्कर्षणरूपो "यस्य केशौ सितकृष्णौ" स शिरः प्रधानभूत इति शिरःपालनं युक्तमेव ॥२२॥

एवं पादादिशिरोन्तानां रक्षा प्रार्थनया निरूपिता. बाह्यतः परितो रक्षामाह

लेखः

जुहोति, यदेवं किञ्च यजमानस्य स्वं तस्यैव तद्रेतः सिञ्चति प्रजनने" इति श्रुतिसम्मतिसूचनाय **हि**शब्दः. **वेदानामि**ति वेदप्रतिपाद्यस्य यज्ञाधिदैविकस्य च्युतिराहित्यकथनादुभयोर्नित्यतोक्तेत्यर्थः. **उक्त** इति रक्षकत्वेनेति शेषः ॥२२॥

योजना

दुर्ज्ञेयत्वकथनात् ज्ञानमार्ग उक्तः, ज्ञानमार्गे प्रमेयस्य दुर्ज्ञेयत्वकथनात् "कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदि"त्यादिषु दुर्ज्ञेयत्वोक्तेः. **स हि प्रजननात्मक** इति. यज्ञस्य प्रजननात्मकत्वं "यज्ञाद् भवति पर्जन्य" इति गीतावाक्येऽन्नाद्युत्पादकस्य पर्जन्यस्यापि यत उत्पादको यज्ञ उक्तोतो ज्ञेयम्. उरूरपि प्रजननात्मकः "यदा हि नग्न उरूर्भवती" ति श्रुतौ उरोः प्रजनने प्रयोजकत्वात्. **अच्युतः कटितटमव्यादि**त्युक्तं तत्रोपपत्तिमाहुः **अच्युतो यज्ञस्यैवाधिदैविकं रूपम्** इति. यतो यज्ञरूपता अच्युतस्यातः पृथ्वीरूपायाः कटेः रक्षा युक्तैव, पृथिव्याः कर्मक्षेत्रत्वेनोपजीव्यत्वात् उपजीव्यरक्षा युक्तैव ॥२२॥

चक्र्यग्रत इति:

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात् त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

पुरुषस्य यावन्तो भागा बहिर्भवन्ति तेषु तत्र तत्र प्रयोजको रक्षत्विति प्रार्थयन्ति. **चक्री** चक्रपाणिश्चक्रं गृहीत्**वाग्रे** रक्षतु पूर्वभागं परिपालयतु. **सहगदो** गदाधरो गदासहितः **पश्चाद**व्यात् पृष्ठभागं परिपालयतु. ननु महतः कथं पृष्ठभागपरिपालनमुच्यते? तत्र प्रार्थनया हेतुमाह **हरिरस्त्व**ति– स हि सर्वदुःखहर्ता, यथा वा प्रार्थनया गजेन्द्रमागत्योद्धृतवान् न तु वैमनस्यं विचारितवान्. अत इदानीमपि प्रार्थनया **पश्चाद्धरिः** स्वय**मस्तु** स्थितः सन् पालयत्वित्यर्थः. **त्वत्पार्श्वयो**-र्दक्षिणवामयोर्**धनुर्धरोऽसिधर**श्च **मधुसूदनोजन**श्चाव्यात्. दक्षिणपार्श्वे धनुर्गृहीत्वा राक्षसांस्तत्रत्यान् दूरादेव (मधुहा) मारयतु. अजन उत्तरपार्श्वे सर्वज्ञानिसेव्यः सर्वेषां जन्मादिसर्वदुःखनाशकोसिं गृहीत्वाविद्याछेदकोव्यात्. आयुधयोरपि स्वतःसामर्थ्यं द्योतयितुं भिन्नतया निरूपणम्. **च**कारादुत्तरभागस्थिता हरिवर्षादिमूर्तयोपि पालयन्त्वित्युक्तम्. **कोणेषु** चतुर्षु विदिक्षु **शङ्खं** गृहीत्**वोरुगाय**श्चावतु. शब्दो हि स सर्वेषां दैत्यानां दर्पहन्र्ता, "विष्णोर्मुखोत्थानिलपूरितस्ये" तिवाक्यात्. अत एव प्रत्येकं कोणेषु भिन्ना निरुक्ताः. सोप्**यु–रुगाय** उरुभिर्नारदादिभिर्गीयत इति. अत एकेनैव सर्वत्र रक्षा सम्भवति. **उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यो**ऽव्यात्. गरुडारूढो मन्वन्तरावतार-रूपः, गरुडस्यापि रक्षकत्वं; उभावप्युपर्येव भवतः. **क्षितौ हलधरो** हलं गृहीत्वा सङ्कर्षणोधोभागे पालयतु. एवं प्रत्येकं रक्षामुक्त्वा सामान्यत आहुः **पुरुषः समन्तादि**ति, **पुरुषो** नारायणः समन्तात् पालयतु. यस्योदरे सर्वे वर्तन्त इति स हि सर्वत्र तिष्ठति ।।२३।।

प्रकाशः

चक्रीत्यत्र **वैमनस्यमि**तिविविधलिङ्गभिदाभिमानानां ब्रह्मादीनां वैमनस्यम् ।।२३।।

लेखः

चक्र्यग्रत इत्यत्र **अविद्याच्छेदक** इति; न जना अविद्या यस्मादिति व्युत्पत्तेरितिभावः. **शब्दो हि स** इति, चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य शङ्खस्पर्शेन वाक्सञ्जीवन-तात्पर्यकथने निबन्धे "अपां तत्त्वे स्वतृप्त्यर्थमासन्यो वर्तते हरेरि"त्युक्तं तत्सम्मतिसूचनाय **हि**शब्दः. **सोपीति** गृहीतशङ्खोपीत्यर्थः।।२३।।

एवं बाह्यरक्षामुक्त्वाध्यात्मिकांशभूतानां प्राणादीनां रक्षामाहु**रिन्द्रियाणी**ति.

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगीश्वरोवतु ॥२४॥

हृषीकाणामिन्द्रियाणामेव नियामकत्वेन स्थितः. **'अव्यादि'**ति पूर्वेण सम्बन्धः. **इन्द्रियाणि** दश, चक्षुषश्चक्षूरूपत्वाद् भगवतः. **प्राणान् नारायणोवतु.** प्राणापानादयो दश प्राणाः. **नारं** जीवसमूहस्त**दयति** प्रेरयति प्रविशतीति वा. प्राणमूलकं हि सर्वमतो नारायणात् प्राणरक्षा. अन्तःकरणचतुष्टयस्य रक्षामाह **श्वेतद्वीपपति**र्वासुदेवः; श्वेतद्वीपस्य शुद्धसत्त्वरूपत्वा**च्चित्त**रक्षकश्च स भवत्येव. अनिरुद्धो योगिभिः संराध्यः, अतो **योगीश्वरो मनो**ऽव्यात्. योगशास्त्रं च मनोमूलकमेव ।।२४।।

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

बुद्धिं प्रद्युम्नः सर्ववंशकर्ता प्रथमं **पृश्निगर्भो** जात इति स एवावतु. **आत्मानम**हङ्कारं सङ्कर्षणोवतु. स चास्मात् **पर**श्चतुर्मूर्तावुक्तः. **आत्मानं** जीवरूपं च

प्रकाशः

इन्द्रियाणीत्यत्रा**ध्यात्मिकांश**[1]**भूतानामि**त्यक्षरांशभूतानामित्यर्थः. हृषीकेशस्य स्वरूपं विवृण्वन्ति **चक्षुषश्चक्षुरि**त्यादिना. **तदयती**ति 'वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्य-वसादनेष्वि'त्यत्र प्रश्लिष्टस्यायते रूपम् ।।२४।।

पृश्निगर्भ इत्यत्र **भगव**त्पदेन सङ्कर्षणोक्तौ हेतुमाहुः **स चे**त्यादि. **स** सङ्कर्षणः **अस्मात्** प्रद्युम्नात् **परो**ग्रिमः यतश्चतुर्मूर्त्तिनिरूपण **उक्तो**तस्तथेत्यर्थः. **आत्मानमि**त्यादे-रर्थान्तरद्वय[2]माहु**रात्मानं जीवरूपमि**त्यादि. **क्रीडन्तमि**त्यत्र **गुप्ततया रक्षक** इति

लेखः

इन्द्रियाणीत्यस्याभासे **आध्यात्मिकांशे**ति, इन्द्रियप्राणान्तःकरणसङ्घात आध्यात्मिकः तदंशभूताः प्रत्येकमेते इत्यर्थः. **प्राणादीनामि**ति. अत्र **प्राण**पदेने-न्द्रियाणि, तदादीनामित्यर्थः. इन्द्रियाणां प्राणपदवाच्यत्वं "तथा प्राण" इतिसूत्रे श्रुतौ बहुशो व्युत्पादितम्. व्याख्याने **चित्तरक्षकश्चे**ति "यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तत् महदात्मकमि"त्यस्य सम्मतिः सूचिता ।।२४।।

पृश्निगर्भस्तु इत्यत्र **स चास्मादिति – स** चतुर्मूर्तावुक्तः सङ्कर्षण **श्च**कारात्

---

१. अंश इत्यक्षरांश इत्यर्थः. २. लुप्तम्.

परः पुरुषोत्तमोव्यात्. देहं च **भगवान्** सर्वनियामकोव्यादा**त्मानमेव** वा **भगवान**व्यादिति. कृत्रिमभगवत्त्वव्यावृत्त्यर्थं **पर** इति. सर्वावस्थासु रक्षां प्रार्थयन्ति— **क्रीडन्तं** बालकलीलया शृङ्ग्यग्रादिष्वपि गच्छन्तं **गोविन्दः पातु,** यस्तु सदा गवामिन्द्रो गुप्ततया रक्षकः. **शयानं माधवः पातु,** लक्ष्म्यास्तत्र प्रयोजकत्वात् ॥२५॥

व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठस्त्वासीनं त्वां श्रियः पतिः।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥२६॥

व्रजन्तं शनैर्बाललीलया गच्छन्तं **वैकुण्ठः** पातु. स हि गतिदानार्थमेव वैकुण्ठं निर्माय स्थितः. अनेन सर्वत्र पदस्थापने कोमलत्वादिसुखदो भवत्विति प्रार्थितम्. **आसीनमु**पविष्टं **त्वां लक्ष्मीपतिर**वतु. स हि लक्ष्मीविवाहसमय उपविष्टो लक्ष्म्या वृतः. तादृशभावापन्नः सर्वसौभाग्ययुक्तो लक्ष्मीपति**रासीनम**वतु, सर्वमेव जगद् भगवत्युपविश्य तिष्ठतीति. तदर्थमाह **त्वामि**ति. एवं देहावस्थाचतुष्टयमुक्त्वा क्रियावस्थायामाह **भुञ्जानमि**ति, स्तन्यं दुग्धादिकं वा स्वतश्चौर्यादिना वा, **यज्ञभोक्ता** विष्णुः **पातु.** भोजने क्रियायां कालफलनियामका ग्रहाः सन्ति, तैरवश्यं

प्रकाशः

गोवर्धनोद्धरणव्याजेनालौकिकसामर्थ्यदातृत्वादिति भावः. **लक्ष्म्यास्तत्रे**ति शयन इत्यर्थः ॥२५॥

लेखः

—पूर्वश्लोकोक्तो हलधर**श्चास्माद्** बलदेवात् **परः**. वासुदेवाविष्टसङ्कर्षणाविष्टशेषरूपो बल इति प्रथमाध्याये निरूपितमतस्तस्मात् परस्तत्राविश्य स्थित उत्कृष्टस्तन्नियामक इत्यर्थः. तं परिचाययन्ति **चतुर्मूर्तावुक्त** इति— अन्तःकरणचतुष्टयमध्येऽहङ्कारदेवतात्वेनोक्त इत्यर्थः. "हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुज" इतिपञ्चमस्कन्धोक्तो हलधरो ज्ञेयः. एतयोर्वस्तुत ऐक्यमेवेति भिन्नतया कथनारुच्या **आत्म**पदस्य **पर**पदस्य चार्थान्तरमप्याहुः **आत्मानं जीवरूपं चे**ति. समुच्चयोयं न तु विकल्प इति **च**कारः. **प्रयोजकत्वादि**ति, प्रयोजनं फलं, शयने तत्सम्पादिका लक्ष्मीरित्यर्थः ॥२५॥

व्रजन्तमित्यत्र **क्रियावस्थायामाहे**ति रक्षणमितिशेषः. अत्र यज्ञभुक्कृतरक्षाप्रार्थनात् तस्य च क्रियाप्रधानत्वादुपलक्षणविधया क्रियामात्रावस्थायां रक्षा प्रार्थितेतिभावः. तथा च विशेषत**श्चतुष्टयमुक्त्वा** क्रियासामान्यावस्थायां यज्ञभुक्तरक्षणं तत्प्रार्थितं शुक **आहे**त्यर्थः ॥२६॥

स्वकालोद्भवं फलं देयमित्याशङ्क्याह **सर्वग्रहभयङ्कर** इति— सर्वेषां ग्रहाणां कालक्रियाद्रव्यादिनियामकानां नवग्रहाणां भयजनको भवति. अन्यथा यज्ञादीनां फलदातृत्वं न स्यात्; तत्तत्कालफलमेव तेषां स्यात्. अतो यदा यज्ञभोक्ता फलं प्रयच्छति तदा ग्रहा निवृत्ता भवन्ति. निवृत्तिरपि न वचनादिना किन्तु रूपमेव दृष्ट्वा भीता निवृत्ता भवन्ति. तत उक्तं **भयङ्कर** इति ॥२६॥

एवं सहजदोषाणां निवर्तकैर्निवृत्तिं प्रार्थयित्वागन्तुकान् दोषान् गणयन्त्यः स्वत एव तेषां भगवन्नामोच्चारणेन निवृत्तिमाहु**र्डाकिन्य** इतित्रिभिः.

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥

एके महादेवसम्बन्धिनो दोषाः स्थूला, अन्य आध्यात्मिका मध्यमास्ततोप्याधिभौतिका निकृष्टाः. स्वप्नादिष्वेव तेषां भयजनकत्वम्. **डाकिन्यः** स्त्रिय एव दुष्टा दास्य इव पतिरहिताः सेनारूपाः. **यातुधान्यो** यक्षादिस्त्रियः, **च**कारात् तदवान्तरभेदाः. **कूष्माण्डादयः** पुरुषाः, कुत्सितो य ऊष्मा तत्कृता अण्डा इव ये भवन्ति. **कूष्माण्ड**शब्दो यौगिको दुष्टमहादेवगणवाचकः, प्रलये तेषां विनियोगः; रूढो लौकिकः, नैमित्तिको वैदिकः. अतो दोषगणनायां तदुभयव्यावृत्त्यर्थं **य** इत्युक्तम्. **अर्भकग्रहा** अर्भकरूपा ग्रहाः; तेपि पिशाचविशेषाः बालका एव भूत्वा सर्वान् गृह्णन्ति. **भूतप्रेतपिशाचाः** प्रसिद्धा **यक्षरक्षांसि** च **विनायका** विघ्नकर्तारः; ते सञ्छिन्ना भिन्ना भवन्तीति तेषामधिपति**र्विनायक** उक्तः. स तु न क्वापि स्वत

प्रकाशः

भुञ्जानमित्यत्र यज्ञभुजः सर्वग्रहभयङ्करत्व उपपत्तिमाहु**रन्यथे**त्यादि. यदि ग्रहाणामेव नियामकत्वं स्यात् तदा यज्ञैर्हि यत् फलं दीयते तत् पूर्वकर्मानुरूपग्रहादिप्रतिकूलं, तथा च तद्भयङ्करत्वाभावे तदुपमर्देन स्वतन्त्रतया फलदानसामर्थ्यं यज्ञानां न स्यात् किन्तु ग्रहैः कृत्वा तत्तत्कालफलमेव स्यादतो यज्ञैः फलदाने ग्रहनिवृत्तेरवश्यमपेक्षे[1]त्यतस्तथेत्यर्थः ॥२६॥

डाकिन्य इत्यत्र **रूढ** इति फलविशेषवाचकः. **नैमित्तिक** इत्युपवीतादौ सूतकसम्भावनायां निमित्ते यो होमस्तत्र नैमित्तिकः **कूष्माण्ड**शब्दो वैदिके [2]कर्मणि प्रसिद्धः. **स त्विति** विघ्नकर्तॄणामधिपतिर्गणेश इत्यर्थः ॥२७॥

---

१. 'क्ष्ये'. २. लुप्तम्.

आयातीति तन्निवृत्त्यर्थं **य** इत्यत्राप्यनुसन्धेयम् ॥२७॥

कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥२८॥

ततो हीनाः स्वतन्त्रस्त्रीरूपाः. **कोटरा** पूर्वदेशे 'कुठारे' ति प्रसिद्धा. तथा **रेवती**, रेणुकेति केचित्. **ज्येष्ठा** दक्षिणदेशे प्रसिद्धा. **पूतने**यमेव. अज्ञानात् कीर्तनं, वस्तुतस्त्वेते मन्त्रास्ते च यादृशास्तादृशा एव कीर्तनीयाः, अन्यथा "मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वे" तिवाक्यान्मन्त्रस्यान्यथात्वेन रक्षोपयोगित्वं न स्यात्. तेन तथा कीर्तनं तज्ज्ञानेपि, अत एवाप्रस्तुतस्यापि वृद्धग्रहस्य कीर्तनम्. **मातृकाः** षोडश प्रसिद्धाः. **आदि**शब्देन सर्वा एव ग्रामदेवताः. एतावत्यः स्त्रियः, **उन्मादा**दयः पुरुषाः. **उद्गतो मादो यैः**, यतः प्राणिन उन्मत्ता भवन्ति. **य** इति रोगव्यावृत्त्यर्थम्. **अपस्मारा** अपि बुद्धिभ्रंशहेतवः; यतो रोगरूपा अपि भवन्तीति **य** इति तेष्वपि ग्रहणम्. उभयेषामुभयत्वं लोकसिद्धमिति तद्व्यावृत्तिर्युक्तैव. त्रिविधानन्यानाह **देहप्राणेन्द्रियद्रुह** इति. केचिद् देहद्रोहं कुर्वन्ति येन देहे निरन्तरं पीडा भवति. तथा प्राणेषु येन क्षुधादिर्न भवतीन्द्रियाणां च स्वावबाधिर्यादि ॥२८॥

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥२९॥

भौतिकानाह. **स्वप्नदृष्टाः** स्वप्न एव भयपलायनशिरश्छेदादिदर्शनहेतवो **महोत्पाताश्च**; तेषां लक्षणं स्वप्नाध्याये भवति. **वृद्धबालग्रहाश्च** भवन्ति, नियतास्ते भगवदीयं भ्रामयन्त्येव. अतः पिशाचवद् भ्रान्तवद् वृद्धो बालश्च तिष्ठति. अत्रापि कालरोगव्यावृत्त्यर्थं **य** इति. एवं सर्वाननूद्य विनियोगमाहुः **सर्व**इति – उक्ता अनुक्ताश्च **ते सर्वे**स्मद्वाक्यात् स्वत एव **नश्यन्तु** पलायन्ताम्. तेषां निवृत्तौ नाधिकः प्रयास इति विशेषणमाह **नामग्रहणमात्रेणैव भीरव** इति. **विष्णोस्ते** तवैव नामग्रहणेन न ते तिष्ठन्ति, कुतः पुनस्त्वत्समीप? इत्यतोस्माभिर्वचनादेव निराक्रियन्ते ॥२९॥

एवं सर्वप्रकारेण त्रिविधामपि रक्षां कृतवत्यस्ततो यज्जातं तदा**हे**तीति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इतिप्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम्।
पाययित्वा स्तनं माता सन्न्यवेशयदात्मजम् ॥३०॥

प्रणयेन स्नेहेन **बद्धाभिर्न** तु लौकिकन्यायेन. **बद्ध**पदान्न प्रेरणया नापि निवारितास्तिष्ठन्तीति ज्ञापितम्. **गोपीभिरि**तिपुनर्वचनं मध्ये ब्राह्मणादिशिक्षया कृतमितिव्यावृत्त्यर्थम्. **कृतं रक्षणं यस्य**, रक्षाबन्धनादिकमपि कृतमिति ज्ञायते. पूतनास्तनपानेनाजीर्णशङ्कां व्यावर्तयति **पाययित्वा स्तनमि**ति. **माता** यशोदा. गोपिकादीनां भाव्यर्थज्ञानात् स्तनादानम्. अनुपद्रवज्ञापकं च स्तनपानम्. **आत्मजं** पुत्रं **सन्न्यवेशयत् सम्यक्** पर्यङ्के **न्यवेशयच्**छायितवती ॥३०॥

एवं बुद्ध्युत्पादनादेतद् भगवच्चरित्रं निरोधरूपं च स्पष्टमेव. एवं पूतनावधं कृत्वाग्रिमलीलासिद्ध्यर्थमज्ञानशेषं चाभिमन्त्रणादिना सम्यग् जातमिति स्थापयित्वा पूतनाया मोक्षो जात इति ज्ञापनार्थमग्रिमचरित्रमारभते **तावदि**ति यावदध्यायसमाप्ति.

तावन् नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥

देहसौरभ्येण हि मुक्तेति ज्ञातव्यं, रूपदर्शनाद् भयं जायत इति गन्धाग्रहश्च. तद् दाहे स्पष्टं भवति. तद्दाहश्च प्रभुसाध्यः. अतो नन्दागमनमाह **तावदि**ति. यावद् गोप्य एतावत् कृतवत्य**स्तावत्**काले जाते मथुरायां गता **नन्दादयः** पूर्वोक्त**गोपिकानां पतयो** गोपिकाप्राधान्यात् प्राधान्येनोक्ताः **मथुरायाः** सकाशाद् **व्रजं गताः**.

लेखः

इति प्रणयबद्धाभिरित्यत्र **निरोधरूपं चे**ति शक्तिभिः सहानुशयनरूपमित्यर्थः॥३०॥

([1]**तावदि**त्यस्याभासे **ज्ञापनार्थमि**त्यस्यान्तरं भगवता कृतमितिशेषः, **चरित्रमि**त्यस्यानन्तरं वक्तुमितिशेषः. तथा चेदं **कृत्वा इति स्थापयित्वा इति ज्ञापनार्थं** भगवता कृत**मग्रिमं चरित्रं** वक्तुं शुक **आरभत** इत्यन्वयः) **अज्ञानशेषं चे**ति, "गन्धमात्रावशेषिते"त्युक्तत्वा**दभिमन्त्रणादिना सम्यग्जातम**भिमानशेषं **इत्येवं** प्रकारेण **स्थापयित्वे**त्यर्थः. **तावदि**त्यत्र **रूपे**ति. सौरभ्यज्ञानं विना मुक्तिज्ञानं न भवति. सौरभ्यं च भयाद् ग्रहीतुं न शक्यते. **तत्** तस्माद्धेतो**दाहे सति** देहदर्शनकृतभयाभावात् सौरभ्यं **स्पष्टं** भविष्यतीत्यर्थः. **पूर्वोक्ते**ति "यशोदारोहिणीभ्यां ता" इत्यत्रोक्तानां मध्ये अन्यपूर्वाणामित्यर्थः. गमने "गोपान् गोकुलरक्षायामि"-त्यत्र नन्दस्यैव प्राधान्यमुक्तमत्रागमने "नन्दादयो गोपा" इत्यनेन सर्वेषां प्राधान्यमुच्यते, तत्र हेतुमाहुः **गोपिके**ति. अत्र रक्षायां यशोदाया अपि गौणत्वमुक्त्वा गोपिकानामेव

१. कोष्ठकान्तर्गतमधिकमेकस्मिन्नादर्शे.

शुकस्तत्रैव भगवति स्थित्वा वदतीति **गता** इत्युक्तवान्. तादृशं **पूतनादेहं विलोक्यातिविस्मिता जाता** लौकिकं न स्मृतवन्तः, अन्यथा तेषां निरोधो न स्यात्. बालक्रीडायां तेषामासक्तिर्न वक्तव्येति तदर्थं व्यापारान्तरं कर्तव्यमिति ॥३१॥

तेषामत्र प्रमाणपरतामाह **नूनमिति**.

नूनं बतर्षिः सञ्जातो योगेशो वा समास सः ।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यमाहानकदुन्दुभिः ॥३२॥

बतेति खेदे. वसुदेवो **नूनं ऋषिरेव सञ्जातः** पूर्वं क्षत्रियः स्थित इदानीमृषिर्जातः. ऋषिवाक्यमेव हि प्रमाणम्. ननु लौकिके ऋषिरप्रयोजकोन्यथा मन्त्राणां लौकिकत्वं स्यादत आह **योगेशो वा स सम्यगासे**ति. योगेश्वराः सर्वं जानन्ति योगचक्षुषा. **सम्**इति सभायामपि ज्ञानात्. **स** वसुदेवः, प्रसिद्धत्वात् तस्य तदुचितमिति नासम्भावना. तस्य वाक्यस्य संवादमनुवदन्ति स्वज्ञानदार्ढ्याय **यमुत्पातमानकदुन्दुभिराह स एवास्माभिर्दृष्ट** इति. **ही**ति युक्तश्चायमर्थः. "तदुदितः स हि यो यदनन्तर" इतिन्यायाद् यादृच्छिकसंवादित्वं परिहरन्ना**हानकदुन्दुभि**रिति, आनका दुन्दुभयश्च तस्य जन्मनि नेदुरतः प्रामाणिकमेव तस्य ज्ञानम् ॥३२॥

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा ते तु व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो निर्दहन् काष्ठवेष्टितम् ॥३३॥

ततः सर्व एव व्यवहारसिद्ध्यर्थं तस्याः **कलेवरं परशुभिश्छित्त्वावयवशो दूरे क्षिप्त्वा** राशीकृत्य गन्धादिव्यावृत्त्यर्थं **काष्ठवेष्टितं** कृत्वा **निर्दहन्** निरदहन्. जले क्षिप्ते राक्षसानां गतिर्दुर्ज्ञेयेति पुनर्जीवेत्, अदाहे वा खण्डशो नयेयुः पश्चाद् योजयेयुः, अतो दाह एवोचित इति तेषां बुद्धिस्तस्या मुक्तिज्ञापनाय भगवता तथा सम्पादितम्. भस्मान्त एव मुक्तिरिति श्रुत्यभिप्रायः॥३३॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥३४॥

तस्या मुक्तिलक्षणमाह. **दह्यमानस्य देहस्य** सम्बन्धी **धूमः**; काष्ठभ्रमव्यावृत्त्यर्थं तथोक्तम्. **च**कारादङ्गारा अपि सोज्ज्वला, देहोपि घृतवत् ज्वलतीति ज्ञातव्यम्. [1]अगरुजनितधूमवत् सौरभ्यं यस्य सो**ऽगरुसौरभः** सर्वजनीनार्थ**मुत्थित** ऊर्ध्वगतः. ऊर्ध्वगमनमप्युत्तमगतिज्ञापकम्. ननु दुष्टाया देहस्य कथं तथात्वमित्याशङ्क्य हेतुमाह **कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मन** इति. यदैव कृष्णेन नितरां भुक्तं तस्याः स्तन्यं प्राणाश्च. **कृष्णभुक्त** एव **सपदि** तस्मिन् कृष्णभुक्तक्षण इत्यर्थः. **सपदी**त्यव्ययं; कृष्णभुक्तस्य **सपद्य**व्यवहितः क्षणस्तस्मिन्ने**वासमन्ताद् हतं** नष्टं **पाप्म यस्य** देहस्य. **आहतपाप्मा** देहः॥३४॥

प्रकाशः

तावदित्यत्रागता इति वक्तव्ये यद् **गता** इत्युक्तवांस्तत्र हेतुमाहु**स्तत्रैव**[1] **भगवति स्थित्वा वदती**ति. परीक्षितः समीप एव स्थित्वा [2]भगवद्विषये वदतीति पारोक्ष्येणोक्तवानित्यर्थः ॥३१॥

नूनमित्यत्र लौकिक इत्यादि **लौकिके** वाक्य **ऋषिरप्रयोजकः** प्रामाण्यप्रयोजनको न भव**त्यन्यथा** यदि तत्रापि प्रयोजकः स्यात् तदा तथा **स्यादि**त्यर्थः. **स्वज्ञानदार्ढ्याये**ति स्वस्य यद् वसुदेवोक्त[3]प्रामाणिकत्वज्ञानं तद्दार्ढ्याय ॥३२॥

कलेवरमित्यत्र निर्दहन्नितिपाठेऽडभावश्छान्दसः. श्रीधरीये **न्यदहन्नि**तिपाठः ॥३३॥

लेखः

प्राधान्यमुक्तमतस्तत्सम्बन्धात् तत्पतीनामपि प्राधान्यमित्यर्थः. **तत्रैवे**ति– मथुरास्थिते वसुदेवनन्दयोस्तथासंवादसम्पादके **भगवति** भावनया **स्थित्वे**त्यर्थः. एतत्संवादस्य भगवच्चरित्रत्वं तत्रैव विवरणे स्फुटम् ॥३१॥

नूनमित्यस्याभासे बालक्रीडायामिति, गोपानामासक्तिः प्रमेयप्रकरणे मध्यलीलायां वक्तव्येतिभावः. **तदर्थमि**ति गोपानामासक्तिसिद्ध्यर्थम्. आध्यात्मिकाऽविद्यानिवर्तनरूप**व्यापारान्तरं** प्रमेयप्रकरणे वक्तव्यमित्यर्थः. **प्रमाणपरतामाहे**ति तात्पर्य इतिशेषः. **नूनमित्यत्र तदुदित** इति, कंसमन्त्रणानन्तरं जात उत्पातः कंसमन्त्रणोदित एवेत्यर्थः ॥३२॥

कलेवरमित्यत्र गन्धादीति. मृतदेहस्य ज्वालने दौर्गन्ध्यं स्यात्, तद्व्यावृत्त्यर्थमित्यर्थः. तेषां बुद्धिमनुसृत्यैवमुक्तम् ॥३३॥

दह्यमानस्येत्यत्र सोज्ज्वला इति उज्ज्वलवर्णसहिता इत्यर्थः. **सर्वजनीनार्थमि**ति सर्वजनप्रसिद्धगन्धार्थमित्यर्थः॥३४॥

१,२. लुप्तम्. ३. वसुदेवे प्रा°.

१. 'अगुरु' पाठोपि.

पूतनालोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाप सद्गतिम् ॥३५॥
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।
यच्छन् प्रियतमं लोके रक्तास्तन्मातरो यथा ॥३६॥
पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः।
अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥३७॥
यातुधान्यापि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥३८॥
पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम्।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलार्थदः ॥३९॥
तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम्।
न पुनः कल्प्यते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥४०॥

एवं देहधूमे निर्गते यदासीत् तदाह **कटधूमस्येति**.

अत्र षट् श्लोका विगीताः सर्वत्र दृश्यन्ते तेप्यध्यायत्रयवद् व्याख्येयाः. स्पष्टत्वाद्[1]वोपेक्ष्यन्ते. **तन्मातरो**(३६) 'वसुदेवस्त्रिय' इति व्याख्यातारः.

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥४१॥

कटस्य प्रेतदाहस्थानस्य चितायाः सम्बन्धिधूमस्य **सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसो** गोरक्षणार्थं कार्यान्तरार्थं वा दूरे गताः **किमिदमा**श्चर्यमिति व्याकुलाः समीचीनं गन्धमाघ्रायागरुर्ज्वलतीति ज्ञात्वा **कुत एवेति वदन्त**स्तत्तत्कार्यं परित्यज्य **व्रजमेवाययुः**. अनेन व्रजस्थानां सर्वेषामेव प्रपञ्चविस्मृतिरुक्ता भगवदनुभावस्यान्तःप्रवेशश्च,

प्रकाशः

"पूतना लोकबालघ्नी"त्यादिषण्णां श्लोकानामव्याख्याने हेतुमाहु**रत्रे**त्यादि. **विगीता** इति क्षेपकाः. तेष्वेव श्लोकेषु **तन्मातर** इतिपदस्यार्थमाहु**स्तन्मातर** इत्यादि. **व्याख्यातार** इति श्रीधरादयः. उपेक्षाबीजं तु **तन्मातृ**पदस्य वसुदेवस्त्रीपरत्वेन व्याख्याने बीजाभावः. अत्र तत्प्रसङ्गस्याभावादग्रिमश्लोके"किमु गावो नु मातर" इति गोसमभिव्याहारेण वसुदेवस्त्रीणां ग्रहीतुमशक्यत्वं चेत्यादि बोध्यम्.

१. 'चोपे'त्यादिरपि.

येनान्तःस्थितःप्रपञ्चो निवर्तिष्यते. तामसः प्रपञ्चस्तामसी च पूतना, अतो युक्तं गन्धस्य प्रपञ्चनाशकत्वम् ॥४१॥

तेषामपि निदानपरिज्ञाने विस्मय एव जात इत्याह **ते तत्रे**ति.

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम्।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोरासन् सुविस्मिताः ॥४२॥

तत्र गोकुले **गोपैर्वर्णितं पूतनागमनादिकं श्रुत्वा, आदि**शब्देन स्तनदानादिप्रकारं, **तन्निधनं** पूतनामरणं च **शिशोः स्वस्ति** कल्याणं– त्रयं **श्रुत्वा अत्यन्तविस्मिता** जाताः. सर्वेषामग्र आगमनमेवाश्चर्यं, अकस्मान्मरणं, ततोपि तस्या महत्या भक्षको मृत्युर्बालं त्यक्तवानिति सुतरां विस्मयः ॥४२॥

नन्दस्य प्रोषितस्य पुत्राघ्राणं विहितमित्याजन्मदुर्लभं तदिदानीं कृतवानित्याह **नन्द** इति.

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रोष्यागत उदारधीः।
मूर्ध्न्यवघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥

आश्चर्ये जिज्ञासोत्पद्यते, नटविद्यायां तथादर्शनात्. **स्वपुत्रं** बलभद्रव्यावृत्त्यर्थम्.

प्रकाशः

भगवदनुभावस्यान्तः प्रवेश इति भगवतो योनुभावः पूतनायां स्वसम्बन्धेन सुगन्धप्रवेशनरूपस्तस्य व्रजस्थानामन्तः प्रवेशश्चोक्त इत्यर्थः. तस्य प्रयोजनमाहु**र्येने**त्यादि. **[1]अन्तःस्थित** इति वासनारूपः, [2]नन्वनुभावद्वारैवङ्करणस्य किं प्रयोजनमत आहु**स्तामस** इत्यादि. तथा च सजातीयस्य सजातीयनाशकत्वं तु[3] गन्धतैलादौ दृष्टमतोत्र तामस्यामविद्यारूपायां पूतनायां [4]स्वगन्धं सङ्क्रामयित्वा तां 'गन्धमात्रावशेषितां' कृत्वा तया गन्धमात्रावशेषित आन्तरस्तामस [5]आविद्यकः प्रपञ्चो नाशित इति नाशनसौकर्य[6]मेव प्रयोजनमित्यर्थः ॥३५-४०॥

नन्द इत्यत्र ननु श्रीनन्दानां बालकेन स्तने गृहीते सा मृतेतिश्रवणानन्तरं[7] जिज्ञासा कथं नोत्पन्ना बालकोयं कथं राक्षसीं मारितवानित्युत[8] कथं वा मृतेति तत्राहु**राश्चर्य** इत्यादि. **आश्चर्य** इति सति सप्तमी. ननु श्रीनन्दानामुत्पातागमस्य सन्देहः स्थित एव, तथा च 'तस्याः स्वनेने'तिश्लोकोक्तधर्मविशिष्टस्वनश्रवण

१. अन्तःस्थितवासनारूपः. २. नन्वनुभव. ३. लुप्तम्. ४. स्वसम्बन्धम्. ५. आधिदैविकः. ६. 'र्यार्थम्. ७. श्रवणार्थम्. ८. 'चोत.

विहितत्वा**दादाय** हस्ते गृहीत्वा. तथाकरणे हेतुः **प्रोष्यागत** इति, नूतनमिदं कर्म कृत्वा बहु देयमिति मनसि कृतवान्. भगवते च नानाविधान्याभरणानि कृत्वा समानीतवांस्तदा**होदारधीरि**ति, उदारा धीर्यस्य तदानीमुत्पन्ना. सर्वापि बुद्धिरुदारा नन्दस्यापि मोक्षदात्री, तस्य तामवस्थां ये च भावयन्ति. **मूर्ध्न्युपघ्राणं** विहितं वात्सप्रेण सूक्तेन "दिवस्परी" त्यादिना. गन्धेन प्रपञ्चस्य नाशितत्वाद् भगवदाघ्राणे परमानन्दो हृदि जात इत्याह **परमां मुदमि**ति. **कुरूद्वहे**तिसम्बोधनं समस्तोपाख्यान-विश्वासार्थम् ॥४३॥

पूतनाया मोक्षं स्थापयितुं कैमुतिकन्यायेन तच्चरित्रश्रोतॄणामपि मोक्षादप्यधि-कफलां भक्तिं फलत्वेनाह **य एत**दिति.

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया ऽमर्त्यो गोविन्दे लभते गतिम्[1] ॥४४॥

एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकं बाल्यसम्बन्धि चरित्र**मद्भुतं** लौकिकोपपत्ति-रहितम्. अनिष्टार्थं मारणमिष्टजनकमिति वा निशम्य **श्रद्धया** युक्तो भवति, **अमर्त्यो** वा भवति, देवभावं प्राप्नोति; देवा हि सत्ये प्रतिष्ठिताः, सर्वथेदं सत्यमिति मन्यते, स **गोविन्दे गतिं** मोक्षं **रतिं** वा **लभते.** इदमपि विगीतमिति केचित् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे
द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरणे वीर्यापरनामधर्मनिरूपकद्वितीयाध्यायस्य
स्कन्धादितः षष्ठाध्यायस्य विवरणम् ॥

टिप्पणी

य एतदित्यत्र **इष्टजनकं** मोक्षजनकमित्यर्थः॥४४॥

प्रकाशः

उत्पातनिश्चये प्राणस्थितिः कथं जातेति शङ्का "तूत्पातागमशङ्कित" इत्यत्रैव श्रीमदाचार्यैर्निरस्तेति दिक् ॥४३॥

य एतदित्य**त्रेष्टजनक**पदस्यार्थष्टिप्पणीतोवगन्तव्यः ॥४४॥

इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते
दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशे षष्ठाध्यायविवरणम् ॥

१. 'रतिम्' इत्यपि पाठः.

लेखः

य एतदित्यत्र **आर्भकमि**ति पदच्छेदमभिप्रेत्याहुः **बाल्यसम्बन्धी**ति. भावप्रधानाद**र्भक**शब्दाच्चैषिकोऽण्. **गतिं रतिमि**तिपाठद्वयमित्यभिप्रेत्य व्याख्यानं द्विधोक्तम् ॥४४॥

॥ इति षष्ठोध्यायः ॥

॥ तृतीयः स्कन्धादितः सप्तमोध्यायः ॥

पूतनासुपयःपानं भगवत्त्वाय यत् कृतम् ।
अलौकिकत्वज्ञानाय तत् षष्ठे विनिरूपितम् ॥(१)॥
ततोप्यलौकिकं लोके विशेषासक्तिबोधकम् ।
सप्तमे त्रिविधं प्राह शकटोत्पाटनादिकम् ॥(२)॥
उत्क्षेपणमवक्षेपः प्रसारणमितीर्यते ।
राजसानां तामसानां सात्विकानां च सङ्ग्रहे ॥(३)॥

प्रकाशः

[1]अथ सप्तमाध्यायं विवरिषवः सङ्गतिं वक्तुं पूर्वाध्यायार्थमनुवदन्ति. **पूतनासुपयःपानं यत् तद् भगवत्त्वाय** वीर्यप्राकट्याय [2]**निरूपितमि**त्यग्रिमेण सम्बन्धः. **यत्कृतं** पूतनासुपयःपानकृतं गन्धादिक**मलौकिकत्वज्ञानाय**[3] चरित्रे लोकवैलक्षण्यज्ञानाय, तदेतदुभयं **षष्ठे निरूपितमि**त्यर्थः (१). एवं पूर्वाध्यायार्थसप्रयोजनचरित्रादप्य**लौकिकः**. तत्र हि मर्मपीडया प्राणनाशः सम्भवत्यपि कदाचिद्, बालचरणोत्क्षेपादिना[4] शकटादिभङ्गस्तु न सम्भावयितुमपि लोके शक्य इति तथा. तच्च **त्रिविधं** चरित्रं **शकटोत्पाटनादिकं** भगवद्विषयक**विशेषासक्तिबोधकं**[5] **सप्तमे** राजप्रश्नात् शुक **आह**. तथा च पूर्वस्मादप्यलौकिकबोधनात् प्रसङ्गः सङ्गतिः. किञ्चालौकिकज्ञानस्य विशेषासक्तिं प्रति हेतुत्वात् तत्कृतोपि प्रसङ्गस्तथेत्यर्थः (२).

लेखः

सप्तमेध्याये कारिकासु **उत्क्षेपणमि**ति. **उत्क्षेपणं** शकट**स्यावक्षेप**स्तृणावर्तस्य **प्रसारणं** जृम्भालीलायां मुखस्येत्यर्थः (३). **सुप्तमि**ति विशेषतः पदार्थग्रहणाक्षमं

योजना

सप्तमाध्याये कारिका**सूत्क्षेपणमवक्षेपः प्रसारणमिति— उत्क्षेपः** शकट**स्यावक्षेप**स्तृणावर्तस्य **प्रसारणं** जृम्भालीलायां मुखस्येति ज्ञेयम् (३).

कारिकार्थः

सप्तमाध्याये सङ्गतिं वक्तुं पूर्वाध्यायार्थमनुवदन्ति **पूतनेति**. **भगवत्त्वाय** भगवत्त्वबोधनाय (१). **तत** इति **आदि**पदेन तृणावर्तवधो जृम्भालीला चेति (२).

---

१. लुप्तम्. २. 'पणा'. ३. 'कमिति. ४. 'मिति. ५. लुप्तम्.

सुप्तं चित्तमथोल्लास्य त्याजयित्वा च लौकिकान् ।
स्वासक्तिसिद्धये प्रीत्या दुःखं च कृतवान् क्वचित् ॥(४)॥

टिप्पणी

सप्तमाध्यायप्रकरणार्थोक्तौ, **सङ्ग्रह** इति. अग्रे स्वोपयोगं ज्ञात्वोत्तमानामतादृशानां च स्वीयत्वेन स्थापनं हि लोके सङ्ग्रह इत्युच्यते. सोऽत्राधुनिक निरोध एव. तथा च सङ्ग्रहनिमित्तमीर्यत इति सम्बन्धः (३). सर्वेषां दुःखोक्तेस्तात्पर्यमाहुः **यश**

प्रकाशः

एवं सङ्गतिबोधनायाध्यायार्थमुक्त्वा विशेषतो वक्तुं चरित्रस्य त्रैविध्यं प्रकटय**न्त्युत्क्षेपणमि**त्यादि. त्रैविध्यप्रयोजनमाहू **राजसानामि**त्यादि. टिप्पण्यां **सङ्ग्रह**शब्दार्थं तत्प्रयोजनं चाहु**रग्र** इत्यादि. **आधुनिक निरोध एवे**त्याधुनिकानां सप्तमाध्यायोक्तानां तत्सजातीयभाववतां च निरोध एव. **सङ्ग्रह** इति, तदर्थं त्रिविधं चरित्रमीर्यत इत्यर्थः (३). सुबोधिन्यां कथं विशेषासक्तिरूपं सङ्ग्रहं कृतवानित्याकाङ्क्षायामाहुः **सुप्तमि**त्यादि. **अथे**ति भिन्नप्रक्रमे पूतनामारणोत्तरं **सुप्तं**

लेखः

मूढं यशोदाया**श्चित्तमौ**त्थानिकोत्सवप्रेरणे**नोल्लास्य** ततो **लौकिकान्** धर्मान् समागतगोपपूजनादीन् यशोदात**स्त्याजयित्वा** प्रपञ्चविस्मृतिं कारयित्वा ततोग्रिमप्रकरणे **स्वासक्तिसिद्धये** तथा **कृतवानि**तिप्रकरणद्वयार्थः(४). **स्वासक्त्यैवे**ति चरित्रपक्षा-

कारिकार्थः

उत्क्षेपणमिति. **उत्क्षेपणं** शकटस्य, **अवक्षेप**स्तृणावर्तस्य, **प्रसारणं** जृम्भालीलायां मुखस्येत्यर्थः. त्रैविध्यप्रयोजनमाहुः **राजसानामि**ति. अत्र **सङ्ग्रह**पदार्थो **राजसा**दिभक्तानां निरोध एव, तथा च सङ्ग्रहनिमित्तमीर्यत इति सम्बन्धः. अत्र क्रमो न विवक्षित इति प्रतिभाति निबन्धानुरोधात्. उक्तं हि दशमस्कन्धनिबन्धे "शकटं तामसं प्रोक्तं तृणावर्तस्तु राजसः लालनं पुत्रभावेन सात्त्विकं मोहनं तथे"ति. तथा च शकटभङ्गादिभिस्त्रिभिश्चरित्रैः तामसराजससात्त्विकानां निरोधो ज्ञेयः(३). **सुप्तमि**ति. **सुप्तं** विशेषासक्तिरहितं यशोदादीनां **चित्तं उल्लास्य** विशेषासक्त्यनुकूलं कृत्वा [1]**लौकिकात् त्याजयित्वा स्वासक्तिसिद्धये प्रीत्या** भक्तविषयकस्नेहेन **क्वचित्** तृणावर्तभङ्गादिलीलायां **दुःखं कृतवान्** (४). सर्वेषां दुःखोक्तेस्तात्पर्यमाहु**र्यश**

---

१ कारिकायां **लौकिकात्** इतिपाठः ग्राह्यः, यतः आदर्शद्वयेपि स एव वर्तते.

यशो हि सर्वगं चेत् स्यात् स्वासक्त्यैव च तद् भवेत् ।
यशोदानन्दयोरत्र निःप्रपञ्चो विधीयते ॥(५)॥
आनुषङ्गिमन्येषां गोपानां सर्वदेहिनाम् ।
गोपीनामिति तत्राद्ये यशोदाया वितन्यते ॥(६)॥

टिप्पणी

इति. **सर्वगमि**ति चरित्रमिति शेषः दुःखमिति वा. एवं सति तन्निवारके सर्वेषामासक्त्या चरित्रगानेन यशस्सिद्धिरित्यर्थः (५). आद्यपक्षे चरित्रस्य सर्वगत्वे हेतुमाहुः **स्वासत्त्ये**ति. सर्वेषां तदा गानसम्भवेन तथेत्यर्थः (६).

प्रकाशः

मासत्रयपर्यन्तं विशेषासत्त्यनुत्पत्त्या[1] सामान्यासक्तिमद्भक्तानां[2] **चित्तमुल्लास्य** विशेषासक्त्यनुकूलं कृत्वानुकूल्येन[3] चित्तस्य [4]जागरणेन स्फुरितान् **लौकिकान्** विषयादीनपि **त्याजयित्वा** तेषां विशेषतः **स्वासक्तिसिद्धये प्रीत्या** भक्तविषयकस्नेहेन **क्वचित्** तृणावर्तभङ्गलीलायां **दुःखमपि कृतवान्**. तथा चैवं चित्तोल्लासादिभिः**सङ्ग्रहं** कृतवानित्यर्थः. अत्र लौकिकरीत्या स्वासक्तिकरणं प्रथमलीलया प्रीत्या दुःखादिकरणं च द्वितीयलीलया सम्भावना[5]निवृत्तिर्या प्रकृतसहकारिणी सा तृतीयलीलयेति ज्ञेयम्. ननु सम्बन्धाधिक्येनैवासक्तिर्भविष्यतीति भक्तेषु दुःखदानस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां टिप्पण्यामाहुः **सर्वेषामि**त्यादि. तथा च भाविनां भक्तानां कृतार्थत्वाय यशोपेक्ष्यते तच्च गानेन प्रसरति, तदपि भगवदासक्त्यैव चेत् तदा फलतीत्येतत् सर्वं विचार्य यशःप्रकटनार्थं तथा कृतवानित्यर्थः (५). एवं दुःखोत्पादनतात्पर्यमुक्त्वा निरोधाधिकारिणो विभजन्ते सुबोधिन्यां **यशोदे**त्यादि. **अत्रा**स्मिन्नध्याये **यशोदानन्दयोर्निःप्रपञ्चो** निर्गतो विस्मृतः प्रपञ्चो यस्मात् तादृशो निरोधो भगवता **विधीयतेन्येषां [6]गोपानामप्यानुषङ्गिकं** प्रपञ्चविस्मृत्यादि **विधीयत** इति पूर्वेणैवान्वयः. अत्र **सर्वदेहि**पदेन गोपगोपीनामनुचरा बोध्याः. एवमधिकारिणो विभज्याद्ये चरित्रे [7]यस्या निरोधस्तामाहु**स्तत्राद्य** इत्यादि. **वितन्यत** इति मुख्यत्वेन विस्तार्यत [7]इत्यर्थः (६). [1*]ननु भवत्वेवं तथापि "व्रजे वसन् किमकरोदि"ति राज्ञा प्रथममेव

---

१. ॰पपत्त्या. २. लुप्तम्. ३. ॰न वा. ४. करणेन. ५. ॰नीया. ६. गोपादीनां.
७-७. पूतनामोक्षाख्या श्चर्योत्पादनद्वारा प्रपञ्चविस्मृतिं सम्पाद्य स्वासक्तिं विशेषाकारणे वक्तुं पुनर्यशोदाया निष्प्रपञ्चो वितन्यते.

पूर्वाध्याय आश्चर्योत्पादनेन प्रपञ्चविस्मृतिं कारयित्वा विशेषाकारेण यशोदायाः स्वासक्तिं वक्तुं मतान्तरे प्रपञ्चविस्मृतिमात्रस्यैव पुरुषार्थत्वात् तदासक्तिं न वक्ष्यतीत्याशङ्क्य राजा पृच्छति **येनयेने**तित्रयेण.

प्रकाशः

पृष्ठत्वाच्छुकश्चरित्रान्तरमपि वक्ष्यत्येवेति [1*]पुनः प्रश्नान्तरस्य किं [2]प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां तत्प्रयोजनमाहुः **पूर्वे**त्यादि. तथा चोक्तविशेषज्ञापनार्थं प्रश्न इत्यर्थः. श्लोकत्रयतात्पर्यं [3]कारिकयाहुः **सर्वमि**त्यादि. **इतिस्थितिरि**ति, एषा स्नेहजननार्था मर्यादा (७). ननु कृष्णावतारचरित्रे पृष्टव्ये सामान्यतश्चरित्रप्रशंसा

लेखः

र्थस्तु टिप्पण्यामुक्त एव, दुःखपक्षेपि **स्वासक्त्यैव सर्वगं** दुःखं **भवेत्**, आसक्त्यभावे दुःखं न स्यादिति भावः. **निःप्रपञ्च** इति निर्गतः प्रपञ्चो यस्मात् तादृशो भावोऽत्र प्रमाणप्रकरणे इत्यर्थः (५). **आनुषङ्गिकमि**ति प्रपञ्चाभावसम्पादनमितिशेषः. **तत्राद्ये** इति. **आद्ये** शकटप्रकरणे केवलं **यशोदायाः**, आनुषङ्गिकत्वेनाप्यन्येषां नेत्यर्थः (६).

कारयित्वेति एतदनन्तरं भगवता सम्पादितामिति शेषो ज्ञेयः. तथा च **पूर्वाध्याये आश्चर्योत्पादनेन प्रपञ्चो विस्मृतिं कारयित्वा भगवता** सम्पादितां **स्वासक्तिं** विशेषाकारेण **वक्तुमा**द्ये प्रकरणे **पुनर्यशोदाया निःप्रपञ्चो वितन्यते** इति पूर्वेणैवान्वयः. **येन येने**त्यस्याभासे **मतान्तरे** इति. तदापि ऋषीणां बहुधा विवादात् केषाञ्चिन्मते अविद्यानिवृत्तेरेव मोक्षत्वादिति भावः ॥१॥

कारिकार्थः

इति. यशस्तदैव सिध्येद् यदि चरित्रं दुःखं वा सर्वगं स्यात्. दुःखपक्षे दुःखनिवारके भगवति सर्वेषामासत्त्या गानसम्भवेन यशःसिद्धिरित्यर्थः. आद्यपक्षे चरित्रस्य सर्वगत्वे हेतुमाहुः **स्वासक्त्ये**ति, सर्वेषां तदा गानसम्भवेन यशः सर्वगं भवेदित्यर्थः. एवं **यशोदानन्दयोर्निःप्रपञ्चो** निर्गतः प्रपञ्चो यस्मात् तादृशो निरोधो निरूप्यत इत्यर्थः (५). **आनुषङ्गिकमि**ति– यशोदानन्दव्यतिरिक्तानां सर्वेषां निःप्रपञ्चसम्पादन- मानुषङ्गिकम्. **तत्राद्ये** शकटप्रकरणे **यशोदाया** एव निःप्रपञ्चो विधीयत इत्यर्थः (६).

१*-१*. लुप्तम्. २. जनमत आहुः. ३. कारिकायामाहुः

सर्वं चरित्रं हितकृद् गुणकृच्च ततोधिकम् ।
तत्रापि स्नेहजनकं तद् वक्तव्यमिति स्थितिः ॥(७)॥

आदौ सर्वमेव चरित्रं भगवतः सर्वोत्तममित्याह.

॥ श्रीराजोवाच ॥

येनयेनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरस्यानि चरितानि च नः प्रभो ॥१॥

येनयेन मत्स्यकूर्मादिमध्ये यानि यानि **चरितानि करोति** तानि **नः कर्णरस्यानी**तिसम्बन्धः. कृष्णावतारचरित्र एव कस्यचित् प्रीतिपक्षे तद्गतो भेदो द्वेषापरपर्यायः सिध्येदिति तन्निवृत्त्यर्थमेतद् वक्तव्यं **येनैवावतारेण करोती**ति. अवतारपरत्वे लौकिकबुद्धिर्भगवति भविष्यतीति तत्रानादरश्च वक्तव्यः, तदाह वीप्सया. वस्तुतस्तु **भगवान्** करोति. कृतौ प्रयोजनं **हरिरि**ति. तथाविर्भाव उपपत्ति**रीश्वर** इति. इदानीन्तनानामस्माकं तथाभाग्याभावाद् दर्शनाभावेपि भवदादिप्रसादात् **कर्ण्यरस्यानि** भवन्ति. लोक उपनिबन्धनाभावशङ्कापि नास्तीत्याह **चरितानी**ति. उपनिबद्धं कृत्यं **चरित्रं, च**कारात् महतां मुखादकस्मादप्युक्तम्. **न** इति श्रोतृणां सर्वेषाम्. **प्रभो** इतिसम्बोधनमन्तःकरणज्ञानार्थमन्यथाकथने दण्डकरणे सामर्थ्यार्थं च ॥१॥

यद्यपि साभिप्राये ज्ञाते सर्वमेव चरित्रमेतादृशगुणजनकं भवति तथाप्यापाततोपि यच्चरित्रं सर्वदोषनिवृत्तिपूर्वकं सर्वगुणदायकं भवति तद् वक्तव्यमित्याह **यच्छृण्वत** इति.

यच्छृण्वतोपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

यच्चरित्रं **शृण्वतः** पुरुषस्य भगवच्चरित्रविषयिणी **यारतिः सापैति;** माहात्म्ये स्वोपकारे च ज्ञाते तथात्वम्. **विशेषेण** संसारविषयिणी **तृष्णा चापैति** संसारस्य बाधकत्वे ज्ञाते. गुणदोषाभावारूपावेतौ साधारणौ दोषाभावरूपौ वा. गुणानाह **सत्त्वं च शुध्यति. अचिरेण** शीघ्रमेव **पुंसः** स्वतन्त्रस्य **सत्त्वम**न्तःकरणं **शुध्यति** कामक्रोधादिवासनारहितं भवति. ज्ञानात्मनः संसारातीतचरित्रे श्रुते, यथा भगवतो मुखारविन्दे त्रैलोक्यवर्णनम्. किञ्च **भक्तिर्हरौ** यथोलूखलबन्धने, **तत्पुरुषे** भगवत्सेवके **सख्यं** यथा यमलार्जुनभञ्जने, **च**कारात् तत्सेवकसेवकेपि. **तदेव हारं** मनोहारि यथा भवति तथा **वदे**ति प्रार्थना. **चेद् मन्यस** इति, तादृशं फलमस्य सिध्यत्विति यदि तव कृपा, यथाधिकारेण बोधने मनोहारि भवति. एवं पञ्चविधं चरित्रं पृष्टं, तद् वक्ष्यति क्रमेण तृणावर्तवधादि. आश्चर्यरूपस्तृणावर्तवध इत्यरतिर्गच्छति, तृष्णा

प्रकाशः

कुत्रोपयुज्यत इत्याशङ्क्य तत्तात्पर्यमाहुः **कृष्णे**त्यादि. **तद्गत**श्चरित्रान्तरगतः. तर्हि 'येनैवे'ति वक्तव्यं, वीप्सायाः किं प्रयोजनमत आहु**रवतारे**त्यादि. प्रश्नस्यावतारत्वेवतारस्यालौकिकतेजःसङ्क्रमणरूपत्वात् तथा च **वीप्सया** प्रश्न**माहे**त्यर्थः. **भगवान् करोती**त्यत्रावतारस्य करणत्वात् तथा ॥१॥

योजना

सर्वं चरित्रं हितकृदित्यादि – **हितकृद्गुणकृत्स्नेहजनकानि चरित्राणि** क्रमेण **येन येनावतारेणे**त्यादित्रिभिः श्लोकैः पृष्टानि (७).

कारिकार्थः

येन येनेत्यत्र, **सर्वमिति हितकृद्गुणकृत्स्नेहजनकानि चरित्राणि** क्रमेण "येन येनावतारेणे" त्यादित्रिभिः श्लोकैः पृष्टानि. अत्र **हित**शब्देन कर्णरसजननादयश्चरित्राश्रवणफलात्मकाः साधारणा गुणा विवक्षिताः. तादृशहितकृच्चरित्रं प्रथमश्लोकेन पृष्टम्. **गुणकृदिति गुण**पदेन सर्वदोषनिवृत्तिपूर्वकसत्त्वशुद्ध्यादयो गुणाः ज्ञेयाः. तादृशगुणकृच्चरित्रं प्रथमश्लोकोक्तचरित्रादधिकं "यच्छृण्वत" इति द्वितीयश्लोकेन पृष्टम्. **तत्रापि** विशेषतो भक्तिजनकं शकटभङ्गलक्षणं चरित्र"मथान्यदीप कृष्णस्य" इति तृतीयश्लोकेन पृष्टम्. **तच्च**रित्रं विशेषतो **वक्तव्यमितिस्थिति**र्मर्यादेत्यर्थः (७).

प्रकाशः

यच्छृण्वत इत्य**त्रैतावि**ति. भगवच्चरित्रविषयकोऽरत्यभावः संसारवैतृष्ण्यं च क्रमेण **गुणदोषाभावरूपौ. अरती** रत्यभावस्तदभावो रतिरेवेति गुणत्वं, तदभावाभावस्य तद्रूपत्वात्. अस्मिन् पक्षे सत्त्वशुद्धेराधिक्यमायातीति[1] तदभावस्यातिरिक्तत्वमङ्गीकृत्य पक्षान्तरमाहुः **साधारणौ दोषाभावरूपौ** वेति. **संसारातीते**ति संसारमत्याययति नाशयतीति तादृशे चरित्रे. **तृष्णा चे**त्यादि **सत्त्वमि**त्यन्तेन

लेखः

यच्छृण्वत इत्यत्र **ज्ञानात्मन** इति, "यशोदाभयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषते" त्यत्र विवृतं– "ज्ञानमात्मानिं स्वरूपे यस्ये"त्यर्थः॥२॥

---

१. 'मापतत्यतस्त'.

च संसारेण गच्छति, भगवति सर्वसत्त्वात्. अन्तःकरणं देहेन्द्रियादिकमपि[1] शुध्यति भगवतो नामधौर्यादिश्रवणेन[2]. उलूखलबन्धने भक्तिर्यमलार्जुनभङ्गे सख्यमिति ॥२॥

एतत्पञ्चविधात् पूर्वमपरमेकं कृष्णासक्तिजनकं साधारण्येन वक्तव्यमित्याहाथान्यदपीति.

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य[3] तज्जातिमनुरुन्धतः ॥३॥

अथेति भिन्नप्रक्रमे, आदावेव वक्तव्यम्, अनन्तरं शीघ्रमेव वक्तव्यम्. **अन्यदपि** यथा बाल्ये पूतनावधः तथा(न्यद!)पि बाल्ये यच्चरित्रं, **कृष्णस्येति** अवतारान्तरबाल्यचरित्रव्युदासः. बाल्ये चरित्रसम्भवार्थं वा भगवतो नाम. **तोकाचरितं** तोकेनाचरितं, **तोक** उत्थानासमर्थः. तदप्य**द्भुतम**लौकिकं, लोके हेतुकल्पनारहितं, तत्रापि लौकिकभावेन कृतमित्याह **मानुषं लोकमासाद्येति**, मनुष्यलोकं भूमिं मानुषभावं **चासाद्य** स्वीकृत्य. **तज्जातिं** शिशोर्जातिलीला**मनुरुन्धतो** जातिलीलामनतिक्रम्य; यथा गोपालशिशोः. तादृशं पूतनावधतुल्यमेकं वक्तव्यमिति प्रार्थना ॥३॥

शुकस्तादृशमेव शकटभङ्गलक्षणं चरित्रमाह **कदाचिदिति**चतुर्दशभिः सर्वेन्द्रियाणामन्तःकरणस्य च प्रीतिजनकम्. आदावुत्सवमाह **कदाचिदिति**.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लुवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥४॥

प्रकाशः

विश्वप्रदर्शनतात्पर्यमुक्तम् ॥२॥

अथेत्यत्र **व्युदास**पक्षेनादर इवायातीतिपक्षान्तरमाहु**र्बाल्य** इत्यादि ॥३॥

लेखः

अथान्यदपीत्यत्र **अथ**शब्दस्यार्थद्वयमपीत्यभिप्रेत्यानन्तर्यमप्यर्थमाहुः **आदावेवेति**. पञ्चविधचरित्रा**दादौ** न अन्तरं यत्र; प्रश्नाव्यवधानेनेत्यर्थः॥३॥

कदाचिदित्यत्र सङ्ख्यातात्पर्यमाहुः **सर्वेन्द्रियाणामिति**, इन्द्रियाणि दश अन्तःकरणचतुष्टयमेवं चतुर्दशेत्यर्थः. **अन्यत्रोत्सवेति**, स्वपित्रादिगृहे उत्सवं न

---

१. चकारविवरणम्. २. °चौर्या°. ३. °श्रित्येत्यपि पाठः.

औत्थानिकं कर्म निष्क्रमणात्मकं "चतुर्थे मासि निष्क्रम" इति. तस्मिन्नेव दिवसे रोहिणीनक्षत्रम्. औत्थानिकं कर्म कृत्वा तत्र कौतुकाविष्टे चित्ते जात उत्सवेन तत् कर्म कर्तव्यमिति विचिन्त्य तस्मिन् दिवसे **जन्मर्क्ष**स्यापि **योगे** सति **समवेतानां योषितां** सर्वस्त्रीणां मध्ये तूर्यादि**वादित्रै**र्नानाविध**गीतैः** स्त्रीकर्तृकैः पुरुषकर्तृकैश्च **द्विजानां** ब्राह्मणानां **मन्त्रवाचकैः** सह **सूनोः** पुत्र**स्याभिषेचनं** कलशस्थापनपूर्वकं ब्राह्मणैः क्रियमाणं मन्त्रवत्प्रोक्षणरूपं **चकार.** मङ्गलस्नानादिकं तु पूर्वमेव कृतमस्ति, प्रोक्षणसंस्कारेभ्युदयो भवति. यतः सा **सती** पतिव्रता, पत्युस्तथेच्छेति. अन्यत्रोत्सवकरणाभावार्थं वा ॥४॥

टिप्पणी

तस्मिन्नेव दिवसे रोहिणीनक्षत्रमिति वाक्यमनतिप्रयोजनमपि स्वरूपकीर्तनपरमिति ज्ञेयम्, न तु व्याख्यानमिति ॥४॥

प्रकाशः

कदाचिदित्यत्र **निष्क्रमणात्मकमि**ति. तत्स्वरूपं तु– बालकं मङ्गलेन स्नापयित्वेष्टदेवतापूजां विधा'योद्रातेवे'त्यादिमन्त्रैः कुमारमलङ्कृत्य मङ्गलतूर्यनिर्घोषैः सह [1]देवालयगङ्गादिनदीतीरे प्रशस्तारामबन्धुगृहाणामन्यतमस्थानं गत्वा बन्ध्वादिदत्तं पारिबर्हं गृहीत्वा पुनर्गृह आगत्य पुण्याहवाचनादिकं कृत्वारार्तिकदक्षिणादिना महोत्सवकरणम्. **तस्मिन्नेवेति** [2]फक्किकायास्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**रस्मिन्नि**त्यादि. **स्वरूपकीर्तनपरमि**ति– रोहिणीनक्षत्रं चतुर्थे पर्यायेष्टोत्तरशतदिवसे समायाति; तथा सति "त्रैमासिकस्ये" तिवाक्यानुरोधाच्चतुर्थमासस्याष्टादशे दिवसे मार्गशीर्षशुक्लैकादश्या[3]दिदिनादन्तरा[4] न भवतीति तत्स्वरूपमात्रकथनपरमित्यर्थः. अग्रिमे व्याख्यान[5]वाक्ये तदुल्लेखदर्शनात् तथेत्यर्थः. सुबोधिन्यां **सती**पदस्य तात्पर्यान्तरमाहु**रन्यत्रे**त्यादि[6].

लेखः

कृतवती सतीत्वादित्यर्थः॥४॥

योजना

कदाचिदित्यस्याभासे **कदाचिदिति चतुर्दशभिरि**ति **सर्वेन्द्रियाणामन्तःकरणस्य च प्रीतिजनकमि**ति. मनःसहितानीन्द्रियाण्येकादश बुद्धिचित्ताहङ्कारा अन्तःकरणत्रयरूपा– एवं चतुर्दश ॥४॥

१, ६. लुप्तम्. २. फक्किकाता°. ३. °द्यन्यतरा. ४. °रन्यतरा ५. °ने त°.

एवं महोत्सवमुक्त्वा बालकविस्मरणार्थं बालकस्य पल्यङ्के स्थापनमाह **नन्दस्य पत्नी**ति.

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाज्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः सञ्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥

नन्दस्य पत्नी नन्दकार्यमवश्यं करोति, अन्यथा तदभावे ज्ञातीनां वैमनस्यं स्यात्. अतः **कृतमज्जनादिकं** भगवन्तं **सञ्जातनिद्राक्षं** शयनं कारितवतीति सम्बन्धः. आदौ स्त्रीणामाकारणं कृत्वा स्नानस्थानमलङ्कृत्य नानाविधगीतैस्तैलेन नानाविधसुगन्धद्रव्यैः स्नानं कारयित्वाभरणानि परिधाप्य कस्तूरीगोरोचनादितिलकं दत्वा धूपादिना चार्द्रतां दूरीकृत्य सर्वाभरणभूषितं विधाय तदनन्तरं **विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं** कृतं रक्षाबन्धनादिकं यस्य तादृशं, तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो बहु दत्वा सन्तुष्टानामाशिषं गृहीत्वा श्रान्ताभिनयने कृते, **सञ्जातनिद्राक्षं** मन्यमाना शयनं कारितवती. **अन्न**मोदनः **आज्यं** घृतं **स्रक्** माला **वासो** वस्त्राणि **अभीष्टं** प्रार्थितं **धेनवश्च**, तैः सर्वैरेव पूजिता ब्राह्मणाः. तेषां ब्राह्मणानां ज्ञानशक्तिसङ्कोचार्थं सञ्जातनिद्राक्षता, अन्यथाशिषो न प्रयुञ्जीरन्. **शनैरि**ति यथा निद्राभङ्गो न भवति तथा हस्तलाघवेन. ब्राह्मणानां

प्रकाशः

अन्यत्रेति पत्यसन्निधाने ॥४॥

नन्दस्य पत्नीत्यत्रान्यथेत्यादि, ज्ञानशक्तिसङ्कोचाभावे भगवन्तं ज्ञात्वा स्तुत्यादिकमेव कुर्वीरन्निति भावः॥५॥

लेखः

नन्दस्येत्यत्र **अत** इति कार्यस्यावश्यकत्वाद्धेतोस्तत्करणार्थं शयनं कारितवतीत्यन्वयः. **आदावि**ति, वैदिकमन्त्रैर्मङ्गलस्नानं निष्क्रमणात् पूर्वं प्रातरेव कृतम्. अधुना मन्त्रैः प्रोक्षणमात्रं विधाय स्नानं लौकिकोत्सवपुरःसरमभिप्रेत्य

योजना

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकमित्यस्य विवृतौ **आदौ स्त्रीणामाकारणं कृत्वे**त्यारभ्य **सर्वाभरणभूषितं विधाये**त्यन्तं मूले **कृतमज्जनादिक-**मित्यत्र आदिशब्द उक्तस्तस्येदं विवरणं ज्ञेयम्. **सञ्जातनिद्राक्षमि**त्यस्य व्याख्याने, **अन्यथा आशिष** इति. यदि ज्ञानशक्तेः सङ्कोचो न स्यात् तर्हि भगवन्तं पूर्णब्रह्म ज्ञात्वा आशीर्वादं न कुर्युस्तथा सति बाललीलारसानुभवो न स्यादतः सञ्जातनिद्राक्षतया ज्ञानशक्तेः सङ्कोच इत्यर्थः ॥५॥

प्रीतिश्चतुर्विधा भवति– आदौ साज्यभोजनेन, पश्चाद् वस्त्रैः, उभाभ्यां स्वयं पूर्णा भूत्वैहिके यावदपेक्षितं तत् प्रार्थयन्ति, ततो वैदिककर्मसिद्ध्यर्थं धेनवश्च. एवं चतुर्भिः पूजिताः लौकिकख्यापनार्थं मालया च पूजिता अन्तःकरणपूर्वकं स्वस्त्ययनं कुर्वन्ति. तेषां यथा परमार्थसर्वदृष्टिस्तिरोहिता भवति तथा सम्यङ् निद्रा ॥५॥

एवं कृते प्रसङ्गात् सर्वेषामेव बहिर्मुखता जातेत्याह**औत्थानिकौत्सुक्यमना** इति.

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥६॥

ब्राह्मणार्थे निमीलने कृते भगवतो ज्ञानशक्तेर्निमीलितत्वाल्लौकिकप्राबल्यम्. अथापि प्रपञ्चात् पूर्वाध्यायाभ्यां निरोधस्योक्तत्वान्नात्यन्तं लौकिके यशोदाया बुद्धिः किन्तु भगवत्सम्बन्धिलौकिके, तदा**हौत्थानिके** कर्मणि शोभार्थं **यदौत्सुक्यमु**त्सुकता लौकिकाभिनिवेशस्तत्रैव **मनो** यस्या इति. भगवत्सम्बन्धस्य गौणत्वात् प्रवाहस्य बलिष्ठत्वाद् भगवदंशमपि परित्यज्य लौकिकसम्भावनार्थमभिमानवती च जातेत्याह **मनस्विनी**ति. एवं बाह्याभ्यन्तरभेदेन तस्या बहिर्मुखत्वं जातम्. स्वकार्यमपि कृतवतीत्याह **समागतान् पूजयती**ति, ये लौकिकव्यवहारेण सम्यगागतास्तान् पूजयती (पूजयन्ती). मालाकुङ्कुमोपहारैर्बालाः पुरुषाः स्त्रियश्च सर्वे पूजिता इति पुल्लिङ्गनिर्देशः. ते चेत् सन्तो भवेयुः सर्वथा भगवदीयास्तथापि न दोषः स्यादिति

टिप्पणी

नन्दव्रजस्थानां भगवदीयत्वात्तत्पूजनं चेत्स्याद्रुदिताश्रवणं न स्यात् . किन्त्वन्यव्रजस्थानां तत्रापि केवलं भिक्षुकाणां तेन तथेत्याशयेन **ते चेत्सन्त** इत्याद्युक्तम् ॥६॥

प्रकाशः

औत्थानिकेत्यत्रै**वं कृत** इति भगवता नेत्रनिमीलने कृते. **ते चेत् सन्त**

लेखः

सर्वोप्युत्सवप्रकार उक्त इति ज्ञेयम्. **आभरणानी**ति बाललीलायामावश्यकानि सर्वदा परिधेयानि नूपुरादीनीत्यर्थः. **परमार्थसर्वदृष्टिरि**ति, निद्रायास्तात्पर्यं पूर्वमुक्तमत्र **समु**पसर्गस्यार्थ उच्यते. भगवन्मातृकृतपूजा न योग्येत्यपि दृष्टिर्न जाता. तथा च परमार्थविषयिणी सर्वा भगवदीयस्वरूपविषयिण्यपि दृष्टिस्तिरोहितेत्यर्थः॥५॥

औत्थानिकौत्सुक्येत्यत्र **मनस्विनी**ति मत्वर्थीयोतिशायने इत्यभिप्रेत्याहुः **अभिमानवती चे**ति. मनोबुद्धिश्चित्तमहङ्कार इतिक्रमान्मनसश्चतुर्थी अवस्था अहङ्कार

तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **व्रजौकस** इति, व्रज एव तामस ओकः स्थानं येषामिति तामसभूयिष्ठ एव स्थिता न तां पदवीमारोढुमर्हन्ति. भगवांस्तु निरोधार्थमेव समागत इति लौकिकप्रकारेणैव प्रपञ्चविस्मरणपूर्वकं स्वासक्तिं करिष्यन् रोदनं कृतवान् मदीया अप्येवं बहिर्मुखा जायन्त इति च ज्ञापयितुम्. कल्पान्तरे ज्ञानशक्तितिरोभावे तस्मिन् शकटे दैत्यः कश्चिदाविष्टः स नेतुं समागत इति तन्निवृत्त्यर्थं रोदनं शकटाक्षेपश्चेत्याहुः[१]. अत एव ब्रह्माण्डपुराणे "शकटासुरखण्डन" इतिभगवन्नाम. अत्र तु शकटमात्रं तद्धर्माभिनिवेशो वा, साधारणधर्माणां परित्यागासम्भवात्. एवं

प्रकाशः

इत्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहुर्**नन्दव्रजे**त्यादि. सुबोधिन्या**माहुरि**ति श्रीधरव्यतिरिक्ताष्टी-काकाराः. एतत्कल्पव्यवस्थामाहु**रत्रत्वि**त्यादि, नाशितमितिशेषः. तर्हि नाशनस्य किं प्रयोजनमत आहु**स्तद्धर्मे**त्यादि. तेषामासुराणां सम्बन्धिनो धर्मा येषु ते लोकिक-पदार्थास्तेषु योभिनिवेशो [२]यशोदादीनां स एव शकटभङ्गेन नाशित इति शकटेन शकटद्वारासुरखण्डन [३]इति व्युत्पत्त्या शकटासुरखण्डन [४]इति नामसम्भवादासुर-नाशनमेव प्रयोजनमित्यर्थः. ननु 'पूतनासुपयःपान'चरित्रेण मूलाविद्या पूर्वाध्याय एव नाशितेति मातृचरणानां कुत आसुराभिनिवेश इत्यत आहुः **साधारणे**त्यादि. लीलोपयोगिन्या अविद्याया मूलाविद्यायाश्च ये साधारणा[५] धर्मास्तेषां **त्यागा-**

लेखः

इत्याशयः. भूयिष्ठतामसस्थित्या व्रजस्य तामसत्वमित्याशयेनाहुः **तामसभूयिष्ठे एवे**ति, तामसा भूयिष्ठा यत्रेति. केचनान्येपि सन्तीति **भूयिष्ठ**पदम्. **तां पदवीमि**ति भगवन्मातृकृतपूजामित्यर्थः. शकटमात्रत्वे तथा न कुर्यादित्याशयेन पक्षान्तरमाहुः **तद्धर्माभी**ति. तद् व्युत्पादयन्ति **साधारणे**ति, आसुरधर्माभिनिवेशाभावे साधारणा-नां धर्माणां शकटनिष्ठचक्राक्षादीनां परित्यागं वृथैव भगवान् न कुर्यादित्यर्थः. **पूर्वं**

योजना

तद्धर्माभिनिवेश इति शकटे आसुरधर्माभिनिवेश इत्यर्थः. आसुरधर्माभि-निवेशे प्रमाणमाहुः **साधारणधर्माणामि**त्यादि. यदि आसुरधर्माभिनिवेशस्तत्र न स्यात् तदा तेषां शकटधर्माणां चक्राक्षादीनां त्यागं भगवान् न कुर्यादतस्त्यागान्यथा-नुपपपत्त्यैव शकटधर्मेषु चक्राक्षादिष्वासुरधर्माभिनिवेशः कल्पनीय इत्यर्थः. **एवं**

---

१. श्रीधरादयः. २. नन्दादीनाम्. ३. °मिति. ४. °मिति. ५. साधारणध°.

सर्वभावेन बहिर्मुखत्वे भगवता प्रबोध्यमानापि प्रकारं न गृहीतवतीत्याह **नैवाशृणो-दि**ति, **एव**कारेण श्रवणसम्भावनापि निवारिता. ननु श्रुत्वैव कार्यव्यग्रोपेक्षां कृतव-तीति कथं न कल्प्यते तत्राह **वै** निश्चयेन. अन्यथा चित्तमर्धमप्यत्रागतं भवेत् तदाधि-करोदनेनापि समागच्छेत्, अतस्तन्निषेध एव. **सुतस्य रुदितं** श्रुतं न विलम्बं सम्पादयति. तत्रापि **सा** महता कष्टेन प्राप्तपुत्रा. अश्रवणे वा हेतुः; पूर्वोक्तन्यायेन बहिर्मुखेति. तदा भगवान् रोदनमात्रेण कार्यासिद्धिं ज्ञात्वा **रुदन्नेव स्तनार्थी** सन् **चरणावूर्ध्वमुदक्षिपत्**. यथा बालकाश्चरणावूर्ध्वघर्षणेन प्रसारयन्ति. वाक्यापेक्षया कृतेः प्रबलत्वात् तथाकरणम्. अनेन भगवान् मनसैव निरोधं कथं न कृतवानिति परिहृतं, केवलक्रियायां क्रियाबुद्धिः स्यात्, शकटभङ्गेप्यक्लिष्टकारित्वं न स्यात्, एवं कृते त्वानुषङ्गिकं जातमिति न क्लिष्टम्. पूर्वं रोदनं यशोदाया बहिर्मुखत्वज्ञापना-यान्यथा मनसैव कथं न कुर्यात्? अयं च निरोधः स्वार्थः, अन्यथा पञ्चानां परार्था-नामग्रे वक्ष्यमाणत्वात् पञ्चपर्वाविद्या तेनैव नाश्यत इति व्यर्थमेतत् स्यात्. तच्च

प्रकाशः

सम्भवात् यथा निमन्त्रितेषु भोजनार्थमागतेषु तत्सङ्गे सजातीयस्यान्यस्यागमने सोपि भोज्यते न तु [१]त्यज्यते तद्वत् त्यागासम्भवात्. तथा च साधारणबलेनासुराभिनिवेश इत्यर्थः. **से**ति **तच्छ**ब्दस्य तात्पर्यान्तरमाहु**रश्रवण** इत्यादि. **अनेने**ति चरणोत्क्षेपणेन. **परिहृतमि**ति क्रियैकसाध्ये कार्ये मनसः प्रयोजकमात्रत्वेन प्रवेशात् परिहृतमित्यर्थः. **स्वार्थ**इति स्वस्यार्थः प्रयोजनं यत्र तादृश इत्यर्थः. स्वार्थत्वे गमकमाहु**रन्यथे**त्यादि. **परार्थानामि**ति निरोध्यानाम्. प्रयोजनं स्फुटीकुर्वन्ति **तच्चे**त्यादि. ननु यथा भगव-

लेखः

रोदनमिति शकटभङ्गात् पूर्वमित्यर्थः. **अन्यथे**ति बहिर्मुखत्वाभावे. **मनसैव कथं न कुर्यात्** निरोधमिति शेषः, किमिति रोदनं कुर्यादित्यर्थः. मनसैव निरोधाकरणे हेत्वन्तरमप्याहुः **अयं चे**ति. स्वस्य स्तनसम्बन्धरूपोर्थो यस्मात् तादृशोयं निरोधः,

योजना

कृते त्वानुषङ्गिकं जातमिति न क्लिष्टमिति. स्तनार्थित्वेन बाललीलया चरणोत्क्षेपे शकटभङ्गो जातो न तु तदुद्देशेन चरणोत्क्षेपः. अतो भगवतः कर्म अक्लिष्टमेव. अनेन "कृष्णमक्लिष्टकारिणमि"त्यादिवचांसि समर्थितानि ॥६॥

---

१. त्या°.

स्वप्रयोजनं **स्तनार्थित्वं**; स्वार्थमुत्पन्नस्य स्वविनियोगावश्यकत्वज्ञापनाय स्तनमेवापेक्षते न तु पानम्. तदग्रे वक्ष्यति स्वयमेव "नाहं भक्षितवानि"ति मृत्प्रसङ्गे. अतः पूतनास्तनपानसमये यावन्तो बालास्तद्भक्षिता अत्र समागतास्तेषामन्नार्थमवश्यं स्तनापेक्षा. दुष्टत्वं पूतनासम्बन्धिक्रोधेनैव नाशितं, तान् स्वसमानत्वेन सम्पादयितुं स्वभोग्यगोपिकादर्शनदोषाभावार्थं तानेव तासु समारोपयितुं ज्ञानं चोपदेष्टुं प्रथमं स्वकीयमेव सर्वथा निर्दुष्टं तेभ्यो ददाति. ते च बहवः पीडिता भवन्ति, अतः स्तनेर्थित्वम्. भक्त्यैव तेषां निस्तारो जात इति ख्यापयितुं चरणयोर्व्यापार उक्तः. अवतारविषयिणी भक्तिरतिपुष्टेति ज्ञापयितुं द्विवचनम् ॥६॥

प्रकाशः

व्रद्धक्तस्थित्या [1]पूतनाहृदयस्य भगवत्क्रीडास्थानत्वं तथा पूतनासम्बन्धेन[2] तद्गृहीतानां बालानां दुष्टत्वमपि सम्भाव्यत इति किं तेषामन्नदानेनेत्यत [3]आहुर्दुष्टत्वमित्यादि. मास्तु दुष्टत्वं तथापि पोषणस्य किं प्रयोजनमत [3]आहुस्तानित्यादि. शेषं स्पष्टम्. इदं शकटभङ्गचरित्रं [4]पद्मपुराण आश्विनशुक्लदशम्यामुक्तं, तथा सति भगवान् सार्धमासो भवति. तदत्र नाभिप्रेतं "त्रैमासिकस्ये"तिवाक्यविरोधादतस्तत् कल्पान्तरीयमिति ज्ञेयम् ॥६॥

लेखः

तथा च मनसैव निरोधकरणे स्तनपानं न सिद्ध्येदतस्तत्सिद्ध्यर्थं रोदनेन निरोधकरणं, न मनसेत्यर्थः. **स्वविनियोगे**ति स्वेषु स्वकीयेषु विनियोग इत्यर्थः. **तेषामन्नार्थमि**ति, तेषामन्नसिद्ध्यर्थं भगवतः स्तनापेक्षा, स्वस्य तु तदपेक्षाभावस्योक्तत्वात् पूर्वोक्तमेव प्रयोजनमिति स्तनमात्रार्थित्वमुक्तमिति भावः. **ज्ञानं चोपदेष्टुमि**ति रमणोपयोगि ज्ञानं सम्पादयितुमित्यर्थः. इदं समारोपणकालिकमेवेति पूर्वोक्तेन समुच्चयबोधनाय **च**कारोत्र. तादृशज्ञानयुक्तानां तेषां तासु स्थापने तासामपि तावज्ज्ञानसम्पत्तिरन्यथा तासामप्रौढात्वेन तावत्प्रकारज्ञानाभावात् पूर्णरसदानं न भवेत्. शुद्धान्नसम्बन्धे तादृशज्ञानाधिकारो भवति. अधिकारं विना च तत् ज्ञानं तेषां पुंस्त्वादनर्थपर्यवसायि स्यादिति भावः. **सर्वथा निर्दुष्टमि**ति मोक्षदातृवासुदेवव्यूहजनितत्वादिति भावः. **अवतारे**ति, अनवतारदशायां "सर्वतः पाणिपादान्तत्वादि"तिभावः. **अतिपुष्टा** निरोधलीलास्थानामितिशेषः ॥६॥

---

१. पूतनायाः. २. °वधेन. ३-३. लुप्तम्. ४. मत्स्य°.

एवं कृते यद् जातं तदाहाधःशयानस्येति.

अधःशयानस्य शिशोरनोल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥७॥

अधस्तादवलम्बे शकटस्य पृष्ठभागाधः पल्यङ्के शायितो भगवान् छायार्थम्. यदि निरोधो नाङ्गीक्रियते तर्हि भवत्कृता छायापि मास्त्विति ज्ञापयितुं शकटाक्षेप इति ज्ञापयत्य**धःशयानस्ये**ति. **शिशोरि**त्युत्थानासमर्थस्य. तथाबुद्धिः सम्पादितेति नान्यथाकरणम्. भगवतो भिन्नतया सम्बन्धित्वेन निरूपणं चरणस्यैव माहात्म्यज्ञापनार्थम्. **अनः** शकटम्. **अल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं** सद् **व्यवर्तत** विपरीततया पतितं, तद्गतानां कार्याणां नाशस्त्वग्रे वक्ष्यते, सकार्यस्यानसो भङ्गो जातः. पूतनायां तु भगवत ओष्ठद्वयसम्बन्धो हस्तद्वयसम्बन्धश्च जात इति तदपेक्षयाधिकमाहात्म्यज्ञापनार्थमल्पसम्बन्धो वक्तव्यः. अत एव विचारक्रमेणैतानि चरित्राणि गृहीतानि, तदुक्तं द्वितीयस्कन्धविवरणे[1]. अत्यन्तमल्पा**वल्पकौ प्रवाला**पेक्षयापि **मृदू, अल्पको** वा **प्रवालो** नूतनाम्रपत्रमत्यारक्तं तदपेक्षयापि **मृदु** भगवच्चरणारविन्दं तथैवारक्तमूर्ध्वरेखायुक्तं च. तादृशा**ङ्घ्रिभ्यामङ्घ्रिणा वा हतम**ल्पं ताडितं सत् चलनेप्ययोग्यं विपरीततया पतितम्. मारणसमये चरणस्य महत्त्वं जातं भविष्यतीतिशङ्काव्युदासाय प्रवालतुल्यतया वर्णितम्. मृदुत्वमात्रे दृष्टान्तो मा भवत्वित्याकृतावपि

प्रकाशः

अधः शयानस्येत्यत्र **पल्यङ्के शायित** इतीदं विष्णुपुराण उक्तं न तु 'प्रेङ्खपर्यङ्क' इति ज्ञातव्यम्. **तथाबुद्धिरि**त्यादि, भगवता[2] स्वस्मिन् शिशुत्वबुद्धिः **सम्पादिते**ति न तद्विरुद्ध[3]करणमित्यर्थः. भगवत्कृतेः केवललौकिकत्वासम्भवात् समभिव्याहार-

लेखः

अधःशयानस्येत्यत्र **तद्गतानामि**ति. अङ्घ्रिणा शकटस्यैव नाशो न तु कुप्यादिष्वप्यङ्घ्रिसम्बन्धः. तथा च शकटनाशा**दग्रे** तेनैव तेषां **नाश** उत्तरार्धे **वक्ष्यत**

योजना

अधशयानस्येत्यस्य विवृतौ **तथाबुद्धिः सम्पादितेति नान्यथाकरणमि**ति. अयं नन्दनन्दन उत्थानासमर्थः शिशुत्वादित्याकारिका बुद्धिर्भगवतैव सम्पादितातो **नान्यथाकरणं** भगवता उत्थाय न किञ्चित् क्रियत इत्यर्थः. **अङ्घ्रिणा हत-**

---

१. आयुर्हरतीति श्लोके. २. भगवति शिशु°. ३. विरुद्ध.

समानमिति वक्तुमल्पकता निरूपिता. तदपेक्षयापि मृदुत्वकथनं शकटादेः प्रत्युत सुखजनकमिति ज्ञापयितुं "पदा शकटोपवृत्त" इति विचार एकमेव पदं गृहीतमत्र तु 'चरणावि'त्युक्तम्. समासे सन्दिग्धत्वात् करणतैकस्यैव युक्तेत्यङ्घ्रिणा हतमिति समासः. अतोवस्थासाधनवैपरीत्यं कार्ये निरूपितम्. भाराक्रान्तमनो वालयितुं न शक्यमिति ख्यापयितुं विशेषणद्वयमाह बाह्याभ्यन्तरभेदेन **विध्वस्ते**ति, **विशेषेण ध्वस्ता**न्यधःपतितानि **नाना**विध**रस**युक्तानि घृतमधुगुडदधिनवनीतादियुक्तानि **कुप्यभाजना**नि चर्मणा निर्मितानि रसस्थापनार्थम्. कुप्यानि तस्मिन् देशे प्रसिद्धानि, अनेन तेषां स्थापनमपि भगवतो न सम्मतं, सर्वनिधेर्भगवत एव विद्यमानत्वात्. **भाजन**पदेन तान्येव व्यवहारपात्राणीति ज्ञापितम्. एवं शकटस्थितानां सर्वेषामधःपात उक्तः; न हि भगवदुपरि रसान्तरं स्थातुं शक्नोति. अतो भक्तेरल्पांशेनापि ते सर्वे निराकृताः. भिन्नरसवान् भगवदुपरि स्थितः स्वरूपतोपि नष्ट इत्याह **व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरमि**ति– व्यत्यस्ते इतस्ततः पतिते चक्रे, तन्मध्ये स्थितोक्षोपि लोहमय इतस्ततः पतितो यस्य, विशेषेण भिन्नं कूबरमग्रिमभागो लम्बो यस्य, व्यत्यस्तचक्राक्षं च तद् विभिन्नकूबरं च. संसारकालचक्र उभयसङ्ग्राहकश्चाहङ्कारो विशेषेणात्यन्तमस्तं गतो भवति. भक्त्येकदेशेनापि क्रियाशक्तेर्महत्त्वात् तथात्वमुचितमेव. **कूबरमुच्च-**

प्रकाशः

लभ्यं परमार्थं व्याकुर्वन्ति **संसारकालचक्रे**त्यादि. **भक्त्येकदेशेनापि** प्रत्येकेन[१] श्रवणादिनापि संसारशकटकालचक्रोभयसङ्ग्राहकश्चाक्षस्थानीयोहङ्कारस्तथा भवति. [२]तत्र हेतुमाहुः **क्रियाशक्तेरि**त्यादि– **क्रियाशक्ते**र्भगवद्भजनस्य "सांकेत्यं पारिहास्यं वे"तिवाक्येन **महत्त्वात् तथात्वं** सर्वोपमर्दकत्व**मुचितमेवे**त्यर्थः. **कूबर उच्चस्थान-मि**त्यादि, कूबरः पुनः "कुब्जे युगन्धरे रम्य" इति हैमकोशात् **कूबर**पदं कुब्जवाचकं

लेखः

इत्यर्थः. **विशेषेणे**ति मूले **विना भिन्नमि**तिविग्रहः. अत्र **वि**पदं कालवाचकं, तथा च कालात्मको विशेषो भगवच्चेष्टारूपो धर्मस्तेन भिन्नमित्यर्थः॥७॥

योजना

मितिसमास इति. "त्रैमासिकस्य च पदा शकटोपवृत्त" इति द्वितीयस्कन्धे परमेष्ठिवाक्ये एकेन पदाघात उक्तः. अतोत्रा'प्यङ्घ्रिणा हतमि'त्येकवचनान्तेन

---

१. प्रत्येकश्रवणा°. २. अत्र.

स्थानमप्यस्तीति **कूबरं** तद् **विशेषेण** कालात्मकेन **भिन्नं** भवत्येव, स्वभावत उच्चा अपि भगवद्विरुद्धधर्मा भक्त्यंशेन नश्यन्तीति. अनेन भगवांस्तद्गृहमेव दूरीकृतवानित्युक्तम् ॥७॥

तदा लौकिकनाशात् तन्नाशद्वारा तत्कर्तरि भगवत्यभिनिविष्टा इति वक्तुं प्रथमतस्सर्वेषां तन्नाशचित्तत्वमाह **दृष्ट्वे**ति.

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥८॥

दूरे पतितमन एव **दृष्ट्वा** न तु भगवन्तं तत्सम्बन्धं वा. स्त्रीषु यशोदा मुख्या पुरुषेषु नन्दः. गोपिकानां ज्ञानं भविष्यतीति तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **व्रजस्त्रिय** इति.

प्रकाशः

रम्यत्वाद्यवस्थानमपि [१]सङ्गृह्णाति ततो मत्वर्थीयो "अर्श आदिभ्योजि"ति-सूत्रेणाच्प्रत्यये तेषामाकृतिस्तत् **कूबरं विना** कालेन **भिन्नं** यस्य तद् **विभिन्नकूबरं भवत्येव.** तत्र प्रकारमाहुः **स्वभावत** इत्यादि. सिद्धमाहु**रनेने**त्यादि शकटभङ्गचरित्रेण. **तद्गृहम**विद्याकृतसंसारजनकं लौकिकं गृह**मेव दूरीकृतवानि**त्यर्थः. तथा च शकटं न नाशितं किन्तु तल्लौकिकमेव नाशितमित्यनया रीत्यापि 'शकटासुरखण्डन' [२]इतिनाम सङ्गच्छत इत्यभिप्रायो बोध्यः॥७॥

द्रष्ट्वेत्यत्र **गोपिकानामि**ति स्वामिनीनां, तथा च स्वामिन्यो नात्रेदानीं समागता इति बोध्यम्. **मुख्या** इति [३]श्रीरोहिणीप्रमुखाः ॥८॥

लेखः

दृष्ट्वेत्यत्र **गोपिकानामि**ति. एतासां तु लीला**ज्ञानं भविष्य**त्यत एव "तोकायित्वा रुदन्त्यन्ये" ति प्रकारकानुकरणं करिष्यन्ति **इति** हेतोर्गोपिका**व्यावृत्त्यर्थं** व्रजमात्रस्य स्त्रिय **इत्याहे**त्यर्थः॥८॥

योजना

समासे कृते उभयत्राविरोधः सिद्धः. **विभिन्नकुबरमि**त्यस्य विवृतौ **तद् विशेषेण कालात्मकेन भिन्नं भवत्येवे**ति. **वि**शब्दस्य कालवाचकत्वात् "योयं कालस्तस्य तेव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुरि"तिदेवकीवाक्याद् भगवच्चेष्टायाः कालात्मकत्वात् कालात्मिकया भगवच्चरणचेष्टया भिन्नं भवतीत्यर्थः॥७॥

---

१. गृह्णाति. २. °मिति. ३. इति रोहि°.

तथापि "मुख्ये कार्यसम्प्रत्यय" इति न्यायेन गोपिका एव व्रजस्त्रियो भविष्यन्तीत्याशङ्क्याह**औत्थानिके कर्मणि याः समागता** इति. यशोदायाः साधारण्ये प्रवेशान्मुख्या अपि साधारण एवाभिनिविष्टा, नन्दादयोप्यौत्थानिकं कर्मेति कृत्वा गृह एव स्थिताः. अन्यतोपि समागता अन्ये **च**कारेणोक्ताः. स्त्रीणामपेक्षय**ाद्भुतदर्शनेनाकुला** जाताः किं जातं किं भविष्यतीति शकटपाते सर्वे हेतुं विचारयन्तीत्याह **कथमि**ति. **स्वयमेव** बलीवर्दाद्याघातव्यतिरेकेणैव **वै** निश्चयेन **स्वयमेव शकटं विपर्यगात्** विपर्ययं प्राप्तवद् **वि**परीततया **परितश्च** भिन्नतया शकलत**श्चागाद्** कथं तावद्दूरे पतितमित्यर्थः।।८।।

भगवत्यत्यन्तमसम्भावना तेनान्योक्तेपि निमित्ते तेषां विश्वासो न जात इत्याह द्वाभ्या**मूचुरि**ति.

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥९॥

ननु विपरीतभावनायुक्तेभ्यो न वक्तव्यमिति सिद्धान्तात् कथमुक्तवन्त इत्याशङ्क्याह **बालका** इति, ज्ञानवन्तोपि विवेकरहिताः परस्वभावाधिकारादिकं न विचारितवन्तः. तर्हि कथं ज्ञानवत्त्वमित्याशङ्क्य तेषां श्रोतॄणां विपरीतज्ञानं स्वभावदोषश्च नास्तीत्याह**ाव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्चे**ति, न व्यवसिता निश्चयं प्राप्ता मतिर्येषाम्. उपायान्वेषणपरा एव न तु विपरीततया किञ्चिन्निश्चितवन्तस्तथा सति न वक्तव्याः स्युः. **गोपा गोप्य** इति स्वभावतो दोषाभावो गोरक्षणधर्मपातिव्रत्यधर्मश्चोक्तः. **च**कारात् तादृशा एव ब्राह्मणाः. अन्येपि. उपायान्वेषणेपृष्टेनापि वक्तव्यमि**त्यनेन** बालकेन **रुदतै**तदनः **पादेन क्षिप्तं** नास्त्यत्र **संशयः**. न हि दृष्टेनुपपन्नं नाम व्याघातात्, दृष्टानुसारिण्येव कल्पना च कर्तव्याः, अतःसंशयाभाव इति बालाभिप्रायः. रोदनं निमित्तमिति नास्यापि दोषः. कर्तृकरणयोरसम्भावनया नाङ्गीकृतवन्तः॥९॥

प्रत्यक्षमेतत्; प्रत्यक्षमूलकं च वाक्यं तर्कविरुद्धं नाङ्गीकर्तव्यमिति. तदाह **न ते श्रद्दधिरे गोपा** इति.

प्रकाशः

ऊचुरित्यत्र **दृष्टानुसारिणी**त्यादि, शकटक्षेपो यथा जातो येन वा कृतस्तद् भवद्भिर्न दृष्टमस्माभिस्तु दृष्टमिति भवद्भिः शकटनाशे या वा **कल्पना कर्तव्या** साप्यस्मद्वाक्यविरुद्धा न प्रामाणि**क्यतो**स्मद्वाक्यविश्वासान्न सन्देहः कर्तव्य **इति बालाभिप्रायः**॥९॥

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमप्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

गोप्यस्तु मध्यस्था जाताः. **त** इति बहिर्मुखाः. ज्ञानं तु जातं, अत्यन्तासत्यप्यर्थे शब्दाद् ज्ञानोत्पत्तिसम्भवात्, अतो ज्ञातवन्तो न तु श्रद्दधिरे, यतो **गोपा** अलौकिकज्ञानरहिताः. हेत्वन्तरमप्याह **बालभाषितमप्युते**ति, बाला भ्रमाददृष्टमपि वदन्ति, भूतादिना तथा कृते क्षिप्तोपि पादोन्यथासिद्धः करणत्वेन ज्ञात इति. बालास्तु भगवत्परा भगवत्सामर्थ्यं भूताद्यभावं च दृष्टवन्तः. अन्यैस्तु तद्दर्शनाभावात् स्वप्रतीतिसिद्धमेवाङ्गीक्रियत इति. अश्रद्धायां हेतुमाह**ाप्रमेयमि**ति, **बालकस्य बलं न ते विदुः**. यद्यपि बलं न प्रत्यक्षं तथापि कार्येणानुमीयते, स्वस्मिन् कार्यकरणभावस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्. यद्ययं बलिष्ठः स्यात् स्वयमप्यन्तत उत्तिष्ठेत् कार्यान्तरं वा कुर्याद् रोदनं च न कुर्यात्, अतो नैयाय(यि)कवदिदानीन्तनमीमांसकवद् वा भ्रान्ता **बलं न विदुरि**त्यर्थः. तत्र हेतु**रप्रमेयमि**ति, न तेषां दोषो नापि तर्कस्य किन्तु तस्य **बालकस्य बलमेवाप्रमेयं** प्रमातुमयोग्य"मलौकिकास्तु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेदि"ति तु न तेषां बुद्धिः. अलौकिकत्वनिश्चयाभावात् सन्देहस्त्वनेन जातः. जिज्ञासोत्पादिका

टिप्पणी

अप्रमेयं बलमित्यत्र. यद्यप्यत्र संशयो न कण्ठोक्तस्तथापि बालोक्ते श्रद्धाभावोक्त्या तन्निश्चयाभाव एवायाति, न तु विपरीतनिश्चयोपीति संशयप्राप्तिरित्याशयेनाहुः **सन्देहस्त्वनेने**त्यादि ॥१०॥

प्रकाशः

न ते श्रद्दधिर इत्यत्र **बहिर्मुखा** इति लौकिकासक्तिभाजः. ननु मूले बालवाक्ये श्रद्धाभावमात्रमुक्तमिति सन्देहः कथं व्याख्यायत इत्याकाङ्क्षायां टिप्पण्यामाहु**र्यद्यपी**त्यादि. **तन्निश्चयाभाव** इति हेतुनिश्चयाभावः. सुबोधिन्या**मनेने**ति

योजना

न ते श्रद्दधिरे इत्यस्य विवृतौ **ज्ञानं तु जातमि**ति, यद् बालकैरुक्तं "रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतदि"ति श्रुत्वा शाब्दबोधे जाते तत्र भगवत्यसम्भावनाया बलिष्ठत्वात् तदनङ्गीकारो जातः. **अत्यन्तासत्यप्यर्थ** इति, वन्ध्यापुत्रः शशशृङ्गं गगनकुसममित्यादौ शब्देन ज्ञानस्य सर्वानुभवसिद्धत्वाद् ज्ञानमप्यत्राभूदित्यर्थः॥१०॥

तु पूतना, वसुदेववाक्यपूतने च सन्देहोत्पादिके. यद्यपि बालका अलौकिकं जानन्तीत्यपि न जानन्ति तथापि मुख्येनैव चरितार्थत्वादेकमेवोक्तम् ॥१०॥

ततोत्यन्तमविचार्य लौकिक एव प्रवृत्त इत्याह **रुदन्तमि**त्यादिसप्तभिः.

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥११॥

चतुष्टयमत्र कर्तव्यमुत्पातोयमिति रोदनप्रतीकारो, ग्रहकृतोपद्रवस्य बालकानिष्टस्य निवृत्तिः, शकटस्थापनं, शकटसम्बन्ध्युत्पातपरिहारश्च. वस्तुतस्तु द्वयमेव कर्तव्यं रोदनप्रतीकारः शकटस्थापनं च. तथा सति लौकिकबुद्धिर्दृढा भविष्यतीति तन्निवृत्त्यर्थं भगवदिच्छयोत्पन्नभ्रमस्य वर्णनं भगवच्चरित्रत्वाय. तत्रादौ भगवद्विषयकं

प्रकाशः

बालवाक्येन [१]निश्चयाभावेनेति वा. ननु बालवाक्यस्य [२]तर्कविरुद्धत्वाद् विपरीततयैव किञ्चित् कुतो न निश्चितवन्त इत्याकाङ्क्षायां ससामग्रीकं सन्देहबीजमाहु**र्जिज्ञासे**त्यादि. यद्ययं बलिष्ठो न स्यात् पूतनां कथं मारयेद् यद्यनेन सा मारिता न स्यात् "मुञ्च मुञ्चालमि"ति कथं वदेदिति बलिष्ठप्रतिपक्षतर्कसद्भावात् **पूतना जिज्ञासोत्पादिका**. [३]न च तथा सति निश्चय एव कुतो न जात इति शङ्क्यं, "सन्त्युत्पाताश्च गोकुल" इति**वसुदेववाक्यं** "मुञ्च मुञ्चे"ति भाषिणी **पूतना चे**त्युभे कोटिद्वयमुपस्थापयत इति **सन्देहोत्पादिके,** तथा च वसुदेवेनोक्त"[४]मुत्पाताः सन्ती"त्युत्पातेनैव शकटं [५]पातितमुत पूर्ववद् बालकेनेति सन्देहजनिके इत्यर्थः. ननु तथाप्याप्तवाक्यस्यात्र [६]सहकारित्वान्निश्चयो भवितुमुचित इत्याशङ्क्य बालानामाप्तत्वमेव तैर्न ज्ञातमिति न दोष इति वक्तुं पूतनावधेनापि भगवद्बलं तैर्न ज्ञातमिति कुतो बालभाषितं प्रमाणयिष्यन्तीत्याहु**र्यद्यपी**त्यादि, **मुख्येन** बालाज्ञाने**नैव** [७]**चरितार्थत्वाद्** द्वितीयकोटिप्रतिघाता**देकम**श्रद्दधान**मेवोक्तमि**त्यर्थः॥१०॥

रुदन्तमित्यत्र ग्रहकृतोपद्रवसम्भावनया स्वस्त्ययनादिकृतेः शकटसम्बन्ध्युत्पातपरिहारकृतेश्च भ्रान्तिमूलकत्वाद् द्वयस्यैव कर्तव्यत्वमित्यभिप्रेत्याहु**र्वस्तुतस्त्वि**त्यादि. **तथा सती**ति चतुष्टयकर्तव्यत्वे सति. **लौकिकबुद्धिरि**ति सामान्यबालकबुद्धिः. **भ्रमस्ये**ति ग्रहशङ्कारूपस्य [८]भ्रमस्य. **भगवच्चरित्रत्वाये**त्यन्यथा तावतो ग्रन्थस्य भगवच्चरित्रप्रतिपादकत्वं न स्यादित्यर्थः. **द्वयमाहे**ति भ्रमप्रमाप्रतिपन्नं कर्तव्यद्वयम्.

१. लुप्तम्. २. कर्मविरुद्धत्वात्. ३. ननु. ४. सन्त्युत्पाताश्च गोकुले इति उत्पाताः. ५. पतितम्. ६. बालानां यथादृष्टार्थवादित्वादिति भावः. ७. चारितार्थ्याद्. ८. लुप्तम्.

द्वयमाह तेषामज्ञानस्थापनार्थं– भग्नेपि शकटे रोदनं, ग्रहसम्भावनायामपि **सुत**त्वाद् ग्रहणम्. **यशोदे**ति लौकिकबुद्धिनिपुणेति **ग्रहशङ्का**सम्भावना कश्चिद् बालग्रहादिस्तत्र प्रविष्टो रोदनं कारयतीति सम्भावना. अतः शीघ्रं स्तनं न दत्तवती किन्त्वभिज्ञैर्ब्राह्मणैः **कृतं स्वस्त्ययनं** यस्य रक्षाबन्धनाभिमन्त्रादिकं स्वस्त्ययनं **सुष्ठूक्तं** येषां वचनं प्रमाणमतस्ते रक्षां कृत्वा तद्गतदोषादर्शनात् सुष्ठूक्तवन्तः, ततः **स्तनमपाययत्** ॥११॥

एवं भगवति द्वयमुक्त्वा शकटे द्वयमाह षड्भिर्भगवद्गुणैरेवानिष्टनिवृत्तेः **पूर्ववदि**ति.

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥१२॥

यथा तस्यानसः संस्थानं पूर्वमासीद् यथा वा कुप्यस्थितिस्तदाह **पूर्ववदे**व **गोपैः स्थापितमि**ति. **बलिभिरि**ति तस्य महत्त्वमुक्तम्. **परिच्छदादिसहितं** तस्य परितो भागा एव परिच्छदाः. अथवा पूजार्थं परिच्छदं वा सम्पादितवन्तः. तादृशं शकटमेव शकटाधिष्ठात्रीं देवतां तत्रावाह्य **विप्रास्तदभिज्ञाः** विशेषेण रिक्तपूरणसमर्थाः प्रथमतोनिष्टनिवृत्त्यर्थं सामान्यतो होमं कृत्वाज्येन व्याहृतिभिः सर्वत्र निवृत्ते सामान्यहोमः पश्चात् तच्छकट**मर्चयाञ्चक्रुर्दधि**मिश्रिता **अक्षता**स्तस्य परितः स्थापिताः कुङ्कुमाक्षता इव **कुश**सहितानि प्रोक्षणजलानि च. ब्राह्मणैः

प्रकाशः

एवमग्रेपि ज्ञेयम्. **अज्ञानस्थापनार्थमि**ति बालकेनैव शकटं क्षिप्तमितिज्ञानाभावस्य[१] स्थापनार्थं, तथा सति [२]पूर्णमाहात्म्यज्ञाने लीला न सिध्येदिति भावः. कर्तव्यद्वयमेव[३] स्फुटीकुर्वन्ति **भग्न** इत्यादि ॥११॥

लेखः

रुदन्तमित्यत्र **तथा सती**ति चतुष्टये कृते सतीत्यर्थः. **तन्निवृत्त्यर्थमि**ति ग्रहकृतोपद्रव- शकटसम्बन्ध्युत्पातयोर्निवृत्त्यर्थमित्यर्थः. **यशोदेती**ति, "यशोदाप्रमुखा" इत्यनेन लौकिकव्रजस्त्रीषु मुख्यत्वकथनात् तथेत्यर्थः ॥११॥

पूर्ववदित्यत्र **परिच्छदं वे**ति अत्र **वा**शब्द एवकारार्थो वाक्यालङ्कारे ॥१२॥

१. लुप्तम्. २. पूर्णे. ३. द्वयमाह.

क्रियमाणं समन्त्रकमेव भवति ॥१२॥

एवं सामान्यत उभयोः प्रतीकार उक्तः.. यशोदाप्रेरणयैवैतदुभयं जातं, नन्दस्तु विशेषाकारेण द्वयमेकत्र स्थापयित्वा शान्तिं कृतवानित्याह **येसूयानृते**ति चतुर्भिः. नन्दस्यादौ ब्राह्मणेषु वैशिष्ट्यबुद्धिस्ततः शकटे समारोप्याभिषेकस्ततः- स्वस्तिवाचनादिपूर्वकं होमो दानं च. एवं कृतस्य वैयर्थ्याभावसाधनं च पञ्चमे वक्ष्यति. तत्रादौ ब्राह्मणेषु महत्त्वबुद्धिर्जातेत्याह **य** इति.

येसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥

ब्राह्मणे चेदलौकिकी बुद्धिस्तद्वाक्याद् भगवत्यप्यग्रे भविष्यतीति सूचितम्. ब्राह्मणाः स्वभावत उत्तमा अविकृतब्रह्मस्वरूपा, दोषषट्केन तु ते प्राकृता भवन्ति. भगवति तु षड् गुणा अधिकाः. निर्दुष्टो ब्राह्मणो धर्मी भगवांश्चैकस्तुल्यो वा. अतो यथा भगवद्विचारितं सत्यमेव भवति तथा ब्राह्मणोक्तमपि सत्यं भवति, कृतं तु सर्वेषां पूर्वाविरोधि. तत्र ब्राह्मणेषु षड् दोषास्तत्सामर्थ्यप्रतिबन्धकास्तद्रहितास्तु

टिप्पणी

येसूयेत्यत्र विप्रवाच एव सत्यत्वमुक्तम्, न कृतेरपीति यत्तत्तात्पर्यमाहुः **कृतं तु सर्वेषामि**ति. **सर्वेषां** भगवतो विप्राणां च निर्दोषाणां **कृतमपि** सत्यमेव, परन्तु तद्वचनाविरोध्येव, न तु स्वच्छन्दचरितमपीत्यर्थः. स्वकर्तव्यजातीयत्वेन ग्रहविषयत्वा- भाव एव कृतौ सत्यत्वाभावो ज्ञेयः॥१३॥

प्रकाशः

येसूयेत्यस्याभासे[१] स्वस्त्ययनग्रहशान्त्योः पूर्वं कृतत्वेन[२] पुनस्तत्करणं कुत इत्याकाङ्क्षायां मूलोक्तं हेतुद्वयं द्वितीये प्रकारविशेषं च स्फुटीकर्तुमाहु**र्यशोदे**त्यादि. **द्वयमि**ति भगवन्तं शकटञ्चेत्यर्थः. विवृतौ [३]**पञ्चम** इति श्लोके[३]. ब्राह्मणवाक्यसत्यत्व उपपत्तिमाहु**र्ब्राह्मणा** इत्यादि. **एकस्तुल्यो वे**ति सत्यरूपत्वादेकोंशत्वाद् भगवत्तुल्यो वा, तथा च [४]तद्रूपत्वे तुल्यत्वे वा भगवद्धर्मवत्त्वं जातमिति तथेति भावः. ननु मूले ब्राह्मणोक्ता[५]नामाशिषामेव सत्यत्वमुक्तं कृतेः[६] कुतो नोक्तमित्याकाङ्क्षायां टिप्पण्या-

---

१. इत्यत्राभासे. २. कृतत्वे. ३-३. लुप्तम्.
४. तत्तद्रूपत्वे. ५. ब्राह्मणोक्तानामेवाशिषां. ६. कृतेः सत्यत्वं.

निर्दुष्टास्तान् दोषान् वर्जनार्थं गणयति. कामक्रोधलोभा दोषा अप्यवस्थाविषय- भेदेनैव दोषा भवन्तीति ते न गणिताः. तत्कार्यभूता एव सर्वावस्थासु सर्वविषया ये दोषास्ते दोषा इति षड् गण्यन्ते. **असूया** मुख्यो दोषः, अदुष्टे दोषारोपणात्, अयं बाह्यविषयको दोषः. **अनृतं** वाचनिको मिथ्याभाषणरूपः. **दम्भः** परस्य स्वोत्कर्ष- ख्यापकचेष्टादिः. "निमित्ताभावे तु नैमित्तिकाभावः" चेत् तदा **दम्भः**. **ईर्ष्या** पर- गुणानामसहनेन दोषचिन्तनं मानसम्. ततो **हिंसा** मारणं, तस्मिन्नपि सम्पन्ने **मानो**भिमानः. एवमेकेनैव त्रिदोषेण प्राणी नष्टो भवति किम्पुनर्द्वयेन ? असूयानृते दम्भहिंसे ईर्ष्यामानौ– वाक्कायमनसामेत एव दोषाः. एत**द्विवर्जिता**श्चेत् **तेषा- माशिषो न विफलाः कृता** भवन्ति, विफलकर्तारस्तु निवृत्ता इति. ननु प्रकृति-

---

प्रकाशः

माहु**र्विप्रे**त्यादि. तथा "चेश्वराणां वचस्तथ्यमि"तिशुक[१]वाक्यात् तथेति भावः[२]. सुबोधिन्यां **पूर्वाविरोधी**ति, यद् वाक्याविरोधि तत् सत्यमित्यर्थः. तर्हि कृतविचारस्य किं प्रयोजनमित्यत आहुष्टिप्पण्यां **स्वकर्तव्ये**त्यादि, स्वस्य कर्तव्यं यत् शान्तिकर्म तत् पापभ्रमेण कृतप्रायश्चित्तवत् तस्य ग्रहशान्तिकर्मसजातीयत्वेन **ग्रहविषयत्वाभाव एव सत्यत्वाभाव** इति [३]फलतोसत्यत्वज्ञापनमेव प्रयोजनमित्यर्थः. एवं दम्भस्वरूपकथने साहजिकतया चेष्टाया अपि दम्भत्वं [४]स्यादिति तन्निवृत्त्यर्थं तज्ज्ञापकमाहुः सुबोधिन्यां **निमित्ते**त्यादि ॥१३॥

योजना

येऽसूयेत्यत्र पञ्चमे वक्ष्यतीति.... निमित्ताभावे तु नैमित्तिकाभावश्चेत् तदा दम्भ इति. ये हि शमदमादिज्ञापिकां भजनादिज्ञापिकां चेष्टां कञ्चिद्धनादिदा- तारमवलोक्य कुर्वन्ति तदा तस्यां क्रियायां धनाशायां निमित्तत्वं, तथा च यदा धनादिप्राप्तिरसम्भाविता तदा न कुर्वन्तीति निमित्तस्य धनाशाया अभावे नैमित्तिकस्य शमदमादिभजनादिज्ञापकचेष्टितस्याभावो भवति; तच्चेष्टितं दम्भरूपं बोध्यमित्यर्थः. **असूयानृते दम्भहिंसे ईर्ष्यामानावि**ति. असूयानृतयोर्वाग्दोषत्वम्, असूयाया गुणेषु दोषारोपरूपत्वाद् अनृतस्य मृषाभाषणरूपत्वात्. दम्भहिंसयोः कायदोषत्वं, दम्भस्य स्वोत्कर्षख्यापकपरप्रतारणचेष्टारूपत्वाद् हिंसायाः परप्राणहरणचेष्टारूपत्वात्. ईर्ष्यामानयोर्मानसदोषत्वं स्फुटमेव ॥१३॥

---

१. शुको वक्ष्यति तेन. २. लुप्तम्. ३. कलतः. ४. स्यादतः.

सम्बन्धो वर्तत इति कायवाङ्मनोदोषनिवृत्तावपि स्वभावदोषस्य विद्यमानत्वात् कथं निर्दुष्टतेत्याशङ्क्याह **सत्यशीलानामिति**, सत्यमेव शीलं स्वाभाविको धर्मो येषां; यद् भगवतः सत्यरूपमुक्तं तदेव तेषां स्वभावः सत्यव्रतादिः. एतादृशा ब्राह्मणा ब्रह्मविदः. **तेषामिति** पुनरनुसन्धानं वाक्यसमये दोषाभाववत्त्वज्ञापनार्थम् ॥१३॥

अत उत्पातेषु सत्स्वपि तेषां वाक्यान्निवृत्ता भविष्यन्तीति ज्ञात्वा बालकं शकटे समारोप्याभिषेकं कारितवानित्याहेतीति.

इति बालकमानीय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥

स्वयं यशोदा हस्ताद् गृहीत्वा तत्र शकटनिकटे स**मानीय** वेदत्रयविद्भिर्ब्राह्मणैः **सामर्ग्यजु**र्भिविधैरपि मन्त्रै**रुपाकृतै**रुप समीप आसमन्तात् कृतैर्मन्त्रैरलौकिकत्वेनोत्पादितज**लैः, पवित्रा औषधयो** येषु शतावर्यादयस्तादृशैः पवित्रैरनुपहतैर्ज**लैरभिषिच्य** स्नानं कारयित्वा मार्जयित्वा च ॥१४॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥१५॥

ततो भगवन्तमलङ्कृत्य **स्वस्ति**पुण्याहवाचनादिकं कारयित्वा स्वयं **नन्दगोप**

प्रकाशः

इतीत्यस्याभासे बालकं शकटे समारोप्येति. ननु मूले शकटारोपणवाचक[1]पदाभावात् कं हेतुमभिसन्धाय श्रीमदाचार्यैरिद[2]मुक्तमिति चेदत्रेदं प्रतिभाति— यथा श्रीमातृचरणैरुभयत्र रक्षा कृता सामान्यतस्तथैव[3] श्रीनन्दैरपि विशेषेण कृतेति [4]ज्ञायतेन्यथा श्रीनन्दकर्तृकबालकानयनं 'समाहित'पदोक्तं समवधानत्वं[5] च व्यर्थं स्यादत आनयनेधिकरणाकाङ्क्षापूर्त्यर्थं 'समाहित'त्वोक्त्युपपत्त्यर्थं च शकटारोपणरूपो विशेष आचार्यैरुक्त इति ज्ञेयम् ॥१४॥

लेखः

येऽसूयानृतेत्यत्र अनृतवर्जनकथने सत्यवचनं प्राप्तमेवेति **सत्यशील**पदे **सत्य**पदार्थमन्यमाहुः **यद् भगवत** इति. **वाक्यसमये** इति, तथा चानृतादयः कादाचित्का भवन्त्वपि, सत्यव्रतत्वादिकं तु सार्वदिकमपेक्षितमित्यर्थः॥१३॥

इतीत्यत्र मार्जयित्वेति अलङ्कृत्येति. इदं द्वयं स्नानकथने अर्थात्सिद्धम् ॥१४॥

१. लुप्तम्. २. लुप्तम्. ३. लुप्तम्. ४. लुप्तम्. ५. सावधानत्वम्.

उपविश्य स्वयमपि **समाहितः** सावधानो भूत्वा ब्राह्मणसन्निधाने होमं कृत्वा ब्राह्म**णाग्नाव**पि होमं कृतवांस्तदाह **द्विजातिभ्यः प्रादादन्नमिति, महागुणं** बहुव्यञ्जनसहितं भोजितवानित्यर्थः॥१५॥

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रक्रुक्ममालिनीः।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात् ते चान्वयुञ्जत ॥१६॥

तदा दक्षिणा **गावः सर्वगुणोपेता** बहुदोग्ध्र्यः सुन्दर्यः साध्व्यश्च. गवामलङ्कारार्थं **वासः स्रक्**माला **रुक्ममया** सुवर्णमय्यो **मालाश्च**; सर्वालङ्करणयुक्ता गावो दत्ता इत्यर्थः. प्रयोजनमा**हात्मजाभ्युदयार्थायेति**, आत्मजस्य भगवतोभ्युदयोभिवृद्धिः स एव तस्यार्थः प्रयोजनम्. अय**मर्थ**शब्दोर्थान्तरव्युदासार्थः. **ते चान्वयुञ्जत** अनु पश्चात् प्राप्त्यनन्तरमाशिषोयुञ्जत योजितवन्तः, न केवलमुक्तवन्तः॥१६॥

ननु कथमेवं ज्ञायते तत्राह **विप्रा** इति.

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥१७॥

प्रथमतो **विप्रा** विशेषेण पूरका निर्दुष्टास्तदैव तेषां विशेषपूरकत्वं भवति, तत्रापि **मन्त्रविद** ऋषयस्तत्रापि **युक्ताः** सत्कर्मकर्तारः. एवं गुणत्रययुक्तै**र्या आशिषः प्रोक्तास्ताः कदाचिदपि निष्फला न भविष्यन्ति, स्फुटं** सत्यम्, अतस्तैर्योजनं युक्तमेव ॥१७॥

एवमेकं चरित्रं यशोदानन्दयोः भगवत्परतासाधकं निरूप्य पृष्टानां पञ्चानां मध्ये प्रथमस्योत्तरत्वेनोपाख्यानमारभत **एकदे**त्यष्टादशभिः.

प्रकाशः

एकदेत्यत्र पृष्टानामित्यादि. यद्यपि "यच्छृण्वत" इति राज्ञो वाक्य एकवचनात् पञ्चकार्यजनकमेकमेव चरित्रं पृष्टमिति ज्ञायते चरित्रं च सर्वमेव तादृशं तथापि [1]यशोध्यायत्वाद् भगवतः[1] प्रत्येकमेकैककार्यकर[2]त्वमेवात्राभिप्रेतं चरित्र इति ज्ञात्वा शुकः **पृष्टानां पञ्चानां मध्ये तथारभत** इत्यर्थः.

लेखः

एकदा रोहमित्यत्र टिप्पण्यां, पूर्वाध्यायचरित्रस्य शास्त्रलोकयोरद्भुतत्वं तत्कारिकायां निरूपितं तथात्रापीत्याशयेन शास्त्रेऽद्भुतत्वं निरूप्य लोकेऽद्भुतत्व-

१-१. वक्ष्यमाणभगवच्चरित्रेषु. २. कार्यकर्तृ.

वाचिकं कायिकं चोक्तं मानसं तूच्यतेधुना ।
अन्यथाज्ञानतः सर्वं करोतीति भविष्यति ॥(८)॥

टिप्पणी

एकदेत्यत्र, **वाचिकमि**त्यादि. पूतनावधे रक्षाकरणे वाङ्नियुक्तेति तन्निरोध उक्तः. शकटभङ्गे भगवदर्थः कायिको व्यापार उक्त इति तथा. तृणावर्तप्रसङ्गे भगवन्निमित्तकं दुःखं वक्ष्यते **मानसमि**ति, मानसो निरोधस्तथा. प्रकरणान्निरोध एव विशेष्य इति लिङ्गमविवक्षितमत्रेति ज्ञेयम्. उक्तत्रयसम्बन्धिनिरोधकरणं वा विशेष्यम्. रक्षाविधानशान्त्यादेर्भगवल्लीलात्व उपपत्तिमाहुः **अन्यथे**ति. एतस्य निमित्तत्वाल्ल्यब्लोपे पञ्चमी ज्ञेया. तथा च तत्प्राप्य तद्विषयत्वं प्राप्येति यावत्. ज्ञानहेतुषु स्वरूपतद्धर्मेषु सत्स्वपि स्वलीलार्थं तेषा**मन्यथाज्ञानं** स्वस्मिन् प्राकृततुल्यत्वेन ज्ञानमुत्पाद्य स्वयमेव **सर्वं करोती**त्यर्थः. तेन रक्षाविधानादिना पूर्वस्माद्वैलक्षण्यभानं यथा लोके तथा स्वस्मिन्नपि प्रकटयतीति ज्ञेयम्. तथाज्ञानाभावे तूक्तप्रकारको निरोधो न स्यादिति भावः. अन्यथाज्ञाने सति कायवाङ्मनोनिरोधकथनाच्छास्त्रेत्यद्भुतत्वं चरित्रेस्मिन् ज्ञापितं भवति. किञ्च एकस्मिन् बाले सर्वेषां सहजस्नेहो लोके न सम्भवतीति तथात्वं यदत्र तद्भगवत्कृतमेवेति ज्ञायते. यद्वा. मानसिक-निरोधस्यावश्यकतामाहुः **अन्यथे**ति. अत्र गुरुत्वात्मकस्वधर्मज्ञापनपूर्विका लीलोच्यत इत्येतत्कथनाभावे जीवसह**जाज्ञानतो** हेतोर्नन्दयशोदादिः **सर्वं करोतीति** ज्ञानं सर्वेषां **भविष्यती**ति तदभावायैतदुच्यत इत्यर्थः (८).

प्रकाशः

[1]**वाचिकमि**त्यादिकारिकाणां[2] तात्पर्यं टिप्पण्यामाहुः **पूतने**त्यादि. **तथे**त्यधुनोच्यते. **तथाज्ञानाभाव** इति वैलक्षण्यभानाभावे. **उक्तप्रकारक** इति रक्षाविधानादिरूपः. **अन्यथाज्ञाने सती**ति प्राकृतबालज्ञाने सति. रक्षाविधानशान्त्यादेर्भगवच्चरित्रत्वमुत्सवाध्यायोक्तदिशापि ज्ञातुं शक्यत इत्यरुच्या पक्षान्तरमाहु**र्यद्वे**त्यादि, अर्थस्तु स्पष्टः (८).

लेखः

माहुः**किञ्चे**ति. **तत्** तृणावर्तप्रसङ्गोक्तं सर्वेषामेकबालकविषयकसहजस्नेहवत्त्वं **भगवत्कृतमेवे**त्यर्थः (८).

ब्राह्मणाग्राविति, तथा च पूर्वोक्तो वाक्यार्थो होम एव सिद्ध इतिभावः॥१५॥

---

१. वाचनिकम्. २. कारिकातो.

लौकिकेनापि भावेन यावत् कृष्णैकतानता ।

प्रकाशः

सुबोधिन्यां, ननु शकटभङ्गश्चतुर्थे मासि तृणावर्तवधस्तु वर्षानन्तर "एकाहायन आसीन" इतिवाक्यात्, तथा सति नाडीवर्धापनं षष्ठिकापूजनं सूतीस्नानं चन्द्रसूर्यदर्शनं कर्णवेधोन्नप्राशनं मुण्डनं चूडाकर्म चेत्यादि नवमासकृत्यं मार्कण्डेयपूजा च कुतो नोक्ता? न च कुत्रापि पुराणे नोक्तातोत्रापि नोक्तेति शङ्क्यं, "नाडीवर्धापनं षष्ठी नामादेःकरणं [1]ममे"ति जन्माष्टमीपूजाविधौ वाक्यदर्शनेन[2] पुराणान्तरसिद्धत्वात् कर्णवेधस्य च श्रीगोकुल इदानीमपि दर्शनात् नवमासपर्यन्तस्य लीला कुतो-

लेखः

सुबोधिन्यां, पूतनाप्रसङ्गे शकटप्रसङ्गे च कार्यमेव तथा कृतवान् न तु स्वधर्मं ज्ञापितवान्, अत्र तु स्वधर्मगुरुत्वज्ञापनपूर्वकं लीलां कृतवांस्तत्तात्पर्यमाहुः **लौकिकेनापी**ति, **कृष्णैकतानता** न भवतीतिशेषः. पूर्वमन्यचित्तता स्थिता, अत्र

कारिकार्थः

एकदा रोहमारूढमित्यत्र **वाचिकमि**त्यादि. पूतनावधे रक्षाकरणे वाङ्नियुक्तेति वाचनिको निरोधः उक्तः. शकटभङ्गे भगवदर्थः कायिको व्यापारउक्त इति कायिको निरोध उक्तः. तृणावर्तप्रसङ्गे भगवन्निमित्तकं दुःखं वक्ष्यते **मानसमि**ति, मानसो निरोध उच्यते इत्यर्थः. प्रकरणात् निरोध एव विशेष्य इति नपुंसकलिङ्गमविवक्षितमत्रेति ज्ञेयम्. निरोधकरणं वा विशेष्यम्. **अन्यथाज्ञानत** इति पदं टिप्पण्यां प्रकारद्वयेन व्याख्यातम्. तत्राद्यपक्षे **अन्यथाज्ञानत** इति नञश्लेषरहितमेकमेव पदं, तद्यथा – ननु रक्षाविधानशान्त्यादेः कथं भगवल्लीलात्वमित्याशङ्क्याहु**रन्यथे**ति. ल्यब्लोपे पञ्चमी, तथा च अन्यथाज्ञानं प्राप्य अन्यथाज्ञानविषयत्वं प्राप्येति यावत्, लीलार्थं तेषा**मन्यथाज्ञानं** स्वस्मिन् प्राकृततुल्यत्वेन ज्ञानमुत्पाद्य स्वयमेव **सर्वं करोती**त्यर्थः. अथ टिप्पण्युक्ते द्वितीयव्याख्याने**ऽन्यथा अज्ञानत** इति पदच्छेदः, तथा च **अन्यथा** मानसनिरोधकथनाभावे **अज्ञाना**द्धेतोर्नन्दयशोदादिः **सर्वं करोतीति** ज्ञानं सर्वेषां **भविष्यती**ति तदभावाय **मानस**निरोधकरण**मुच्यत** इत्यर्थः. एतदेवोक्तं टिप्पण्यां **यद्वे**त्यादिना (८). ननु शकटभङ्गश्चतुर्थे मासि, तृणावर्तवधस्तु द्वितीयवर्षे, "एकहायन आसीन" इतिवाक्यात्, तथा च तावत्पर्यन्तं तादृशीं नूतनलीलां कुतो न कृतवानित्याशङ्क्याहु**र्लौकिकेने**ति (९). द्वितीयवर्षे

---

१. मयेति. २. वाक्य-दर्शनात्.

तावन्नूतनकृत्यानि न करोति हरिः स्वयम् ॥(९)॥
वर्षेण तु परावृत्तिर्धर्माणां भवतीति हि ।
अतो वर्षान्तरे कृत्यं तृणावर्तगतं कृतम् ॥(१०)॥
देहबुद्धिर्भगवति निवृत्ता चेन्निवर्तते ।
तत्पराणां देहमतिः सजातीया विशेषतः ॥(११)॥

प्रकाशः

नोक्तेत्याकाङ्क्षायामाहुर्**लौकिकेने**त्यादिकारिकाद्वयम्. **कृतमि**ति मारणं कृतम्. तथा च नाडीवर्धापनादिषु केषाञ्चित् [1]परकृतत्वात् सर्वेषां कृष्णैकताननतासाधकत्वेन[2] निरोधाननुकूलत्वात्[3] राज्ञा प्रथमप्रश्ने अत्र च द्वितीयप्रश्ने भगवत्कृतानामेव पृष्टत्वादिति (९-१०). [4]ननु पूतनानाशेन [5]यद्यप्यविद्यापर्वाणि नष्टानि तथापि तूलाविद्याया एव नष्टानि न तु मूलाविद्याया इति सा पुनः व्रजवासिनः संसारे पातयेदिति तन्निवृत्त्यर्थं प्रथमं गुरुत्वप्रकटनलीलया स्वस्मिन् देहबुद्धिं निवर्तयतीत्याहुर्**देह**[1*]**बुद्धिरि**त्यादि. **सजातीयाविशेषत** इति सजातीयत्वादित्यर्थः (११).

लेखः

तु लालनाद् भगवत्परता जातेत्यर्थः. **नूतनकृत्यानि** गुरुत्वधर्मज्ञापनपूर्वकलीलेत्यर्थः (९). **वर्षेणे**ति, प्रपञ्चविस्मृतौ सत्यामपि वर्षस्यैकायूरूपत्वेनैककालत्वात् प्रपञ्चविस्मृतिशङ्का स्या**दतो वर्षान्तरे** द्वितीयायूरूपे तथा **कृतमि**त्यर्थः. द्वितीयस्कन्धे "आयुर्हरती"त्यत्र श्लोके उत्तमश्लोकवार्तानीतक्षणकायुषो हरणाभावकथनेनैकायुषि सिद्धस्य धर्मस्य तदायुःपर्यन्तमनुवृत्तिः सूचितेति सम्मतिसूचनाय **हि**शब्दः(१०). गुरुत्वज्ञापने हेत्वन्तरमप्याहुः **देहबुद्धिरि**ति, तत्र हेतुमाहुः **सजातीये**ति, यत इतिशेषः; भगवति निर्दोषबुद्धिः सामान्यतः स्वदोषनिवर्तिका परं **सजातीया**

कारिकार्थः

नूतनलीलाकरणे हेतुमाहु**र्वर्षेणे**ति (१०). गुरुत्वज्ञापने हेतुमाहु**र्देहबुद्धिरि**ति, **भगवति** लौकिकदेहवत्ताबुद्धि**र्निवृत्ता चेत्** तदा **तत्पराणां** भगवत्पराणां **देहमतिं** देहात्ममतिं **निवर्तयेत्.** यद्यपि भगवति सर्वैव दोषाभावबुद्धिः सर्वदोषनिवर्तिका तथापि **सजातीया** बुद्धि**र्विशेषतो** निवर्तयेदित्यर्थः. यथा भगवति निःकामत्वबुद्धिः स्वस्य कामदोषनिवर्तिका तथा भगवति लौकिकदेहाभावबुद्धिः स्वस्य देहात्ममतिरूपसजातीयदोषस्य विशेषतो निवर्तिकेत्यर्थः (११). अत्रैवाग्रे **पूतनावधमि**त्यादि (१२-१४).

१. पुरतः. २. साधकत्वाभावेन. ३. अनुकूलत्वात्. ४. लुप्तम्. ५. यद्यविद्या.

अष्टादशविद्यास्वपि भगवतो देहो नास्तीति ज्ञापयितुमेकदैव गुरुत्वं लघुत्वं चोच्यते,
पूतनावधमारभ्य कंसो जानाति गोकुले ।
हरिरस्ति जगद्वन्द्यो मम हन्तेति सर्वथा ॥(१२)॥
तमानेतुं तृणावर्तं ततः प्रेषितवान् स्वयम् ।
त्रयो ह्यत्यन्तबलिनः सर्वकार्यविचक्षणाः ॥(१३)॥
तृणावर्तो बकः केशी तत्राप्याद्यो महान् स्मृतः ।
तृणवत् सकलं विश्वमावर्तयति सर्वथा ॥(१४)॥
तृणावर्तस्ततः प्रोक्तस्तमादौ प्राहिणोत् ततः ॥

भगवान् सर्वज्ञः, तृणावर्तं मथुरातः प्रचलितं ज्ञात्वा गुरुपदार्थं न नयतीति स्वयमेव गुरुर्जातः. तत्र यशोदाया गुरुत्वज्ञानं भवत्विति तस्यास्ततो व्युदासार्थं च

प्रकाशः

भगवतो देहाभावे प्रमाणमाहु[1*]**रष्टादशे**त्यादि, [2]ताश्च "पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशे"ति याज्ञवल्क्येनोक्ताश्चतुर्दश चत्वारश्चोपवेदा इत्येवमष्टादशसु तथेत्यर्थः. ननु [3]यथा पूतना पुरग्रामादिषु [4]पूर्वं निघ्नन्ती पश्चाद् गोकुले समागता तृणावर्तस्तु पूर्वमेव गोकुले समागतस्तत्र को हेतुः? अत्राहुः **पूतने**त्यादि. **पूतनावधमि**त्यारभ्य **गुरुर्जात** [5]इत्यन्तं यदुक्तं तत् सर्वमादिपुराणे वृन्दावनमाहात्म्ये द्वादशाध्याये कण्ठत उक्तमिति

लेखः

विशेषतो निवर्तयतीत्यर्थः (११). प्रकरणीयश्लोकसङ्घातात्पर्यमाहुः **अष्टादशे**ति. **लघुत्वम्** [6]"आदाय मात्र" इत्यत्र प्रतिपादितम्. **गुरुपदार्थमि**ति, गुरुत्वाभावे

योजना

एकदा रोहमारूढमित्याद्यष्टादशश्लोकसङ्ख्यातात्पर्योक्तौ **भगवतो देहो नास्तीति ज्ञापयितुमि**ति. "आनन्दरूपममृतं यद् विभाति" "सच्चिदानन्दविग्रहं" "सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे" इत्याद्युपनिषद्भ्याम् "आनन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापमि"त्यादिपुराणाद् "आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिरि"त्यादितन्त्राच्च आनन्दविग्रहे सिद्धे प्राकृतदेहो नास्तीति ज्ञापयितुमित्यर्थः. प्राकृतस्यैव देहस्य देहपदवाच्यत्वात् दिह उपचय इति धातुना उपचयरूपभावविकारस्योक्तत्वात् ब्रह्मणस्तु षड्भावविकारराहित्येन न देहवत्त्वम्. **गिरिकूटवदि**त्यस्य

१-१, २, ३, ४. लुप्तम्. ५. इत्यन्तेन. ६. भाग. १०।७।३०

तस्या अङ्क उपविष्टः स्तनं पिबन्नेव गुरुर्जातस्तद् भगवतः सहजं गुरुत्वं तदानीमाविर्भूतं, तद् गुरुत्वं यशोदा ज्ञातवतीत्याह **ऐकदे**ति.

एकदा रोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

कालविशेषस्तत्राज्ञातोऽनिमित्तश्च. **रोहमङ्कमारूढमा**रुह्योपविष्टं स्वयमेव **लालयन्ती** कुन्तलानि प्रसारयन्ती मुखचुम्बनादिना भगवतो हासं जनयन्ती जाता. सुते हि तत् कर्तव्यम्. **सती**ति तस्यास्तथाभाग्ये हेतुभूतो धर्म उक्तः. लौकिकभावेनैव स्नेहादि करोतीति तन्निवृत्त्यर्थं गुरौ जाते **शिशोर्गरिमाणं वोढुं न सेहे** न शक्ता. **गिरिकूटवद्** गिरिसमूहमिव, यथा भूमिरप्येकत्र पर्वतकोटीनां समुदायं न सहते, इयमप्यदितिराधिदैविकरूपापि **न सेह** इति वक्तुं दृष्टान्तः. अन्यथाऽयुक्तो दृष्टान्तो नोक्तः स्यात्. क्रमेण भगवान् गुरुर्जात इति न तस्या भङ्गः॥१८॥

टिप्पणी

अनिमित्तश्चेति अङ्कारोहे कालो न निमित्तमिति न विद्यते कालो निमित्तं यस्य तादृगारोह इति च न तत्कथनमित्यर्थः॥१८॥

प्रकाशः

ज्ञेयम्. **अनिमित्त** इत्यस्यार्थमाहुष्टिप्पण्या**मङ्कारोहे**त्यादि॥१८॥

लेखः

मथुरायां नयेदिति भावः. यावतोच्चैर्गमनं भवति तिर्यग्गन्तुं च न शक्नोति तावदेव गुरुत्वं प्रकटितवानिति ज्ञेयम्. लालनं विवृण्वन्ति **कुन्तलानि**ति ॥१८॥

योजना

व्याख्याने, **इयमप्यदितिरि**ति, **इयं** यशोदा देवकीरूपत्वाददितिरूपेत्यर्थः. यदा वसुदेवः स्वाधिदैविकं वसुदेवं नन्दे स्थापितवांस्तदा ह्याधिदैविकी देवकी श्रीयशोदायां समागतेति भावः. आधिदैविकवसुदेवदेवक्योर्नन्दयशोदयोः समागमनस्योपयोगस्तु भगवतो राजलीलायां वसुदेवनन्दनत्वे नन्दयशोदाभ्यां ज्ञातेपि स्वपुत्रभावदार्ढ्यस्थितौ ज्ञेयः. वसुदेवपुत्रत्वे ज्ञातेपि स्वपुत्रत्वज्ञानं नन्दस्य न निवृत्तं, स्वस्य वसुदेवत्वात्. एवं श्रीयशोदाया अपि भगवति देवकीपुत्रत्वज्ञानेपि स्वपुत्रत्वबुद्धिर्न गता, स्वस्याः श्रीदेवकीरूपत्वात्. अन्यथा परपुत्रत्वे ज्ञाते स्नेहो न तिष्ठेत्, तथा सति कृतोपि निरोधो व्यर्थः स्यात्. अतः श्रीनन्दे आधिदैविकवसुदेवस्थापनं श्रीयशोदायामाधिदैविकदेवकीस्थापनमिति ज्ञेयम् ॥१८॥

अत एव यावच्छक्यं गृहीत्वाऽशक्ये भूमौ स्थापितवतीत्याह **भूमौ निधाये**ति.

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥

तं भगवन्तम्. भूमौ स्थापने हेतुभूतस्याविवेकस्य निधानमाह **गोपी**ति, यद्यपि महती तथापि गोपभार्या. स्थापनानन्तरं भारं स्मृत्वा **विस्मिता**. ननु पुत्रगुरुत्वं मातुः सुखदं भवतीति कथं विस्मय इति चेत् तत्राह **भारपीडिते**ति, भारेण पीडिता, अलौकिकोयं भारः पीडाजनकत्वाद्, अतो **विस्मिता,** अग्रे भीतापि भविष्यतीति, क्रमेण माहात्म्यज्ञानात्. तदा किं कर्तव्यमिति विचार्योत्पातशङ्कया **महापुरुषं** पुरुषोत्तमं **दध्यौ** ध्यातवती. सर्वानिष्टनिवृत्त्यर्थं **महापुरुष** एवायमिति वा ध्यातवती. **जगतां** ब्रह्माण्डकोटीनामपि मध्ये स्वामिनम्, अयं सर्वजगतां **महापुरुष** इति. **सती**तिपदाद् गुरुत्वेन पुरुषान्तरं ज्ञात्वा व्रतक्षतिभयभीतेव परमपुरुषं सर्वेषामेव भर्तारं ज्ञातवती. **आ**समन्ताद् **दध्यावि**ति भवत्ययं न वेति ध्यानं प्रतीत्यर्थम्. ततो भगवन्तं ज्ञात्वा तस्य परिचर्यार्थं स्नानादि**कर्मसु आस,** तत्तत्कार्याणि कर्तुमारब्धवतीत्यर्थः. अन्यथा क्षणवियोगे प्राणा एव गच्छेयुः. समागतस्तु मोहयिष्यतीति न

टिप्पणी

महापुरुषमादध्यावित्यत्र, **आगतस्त्वि**त्यादि. उक्तविधासक्तौ मातृत्वेन

प्रकाशः

महापुरुषमादध्यावित्यत्र **सतीतिपदा**दिति पूर्वश्लोकोक्तात्[१] पदात्. टिप्पण्यां **समागत** इत्यादेरर्थमाहु**रागत** इत्यादि ॥१९॥

लेखः

भूमौ निधायेत्यत्र **अविवेकस्ये**ति. विवेके सति अकस्मादयं तथा **गुरुर्जातः** अतोयं भगवानेवेति ज्ञानेन स्वदेहविस्मरणमेव भवेत् न तु स्वदेहभङ्गशङ्कया भूमौ स्थापनमिति भावः. **अग्रे** इति जृम्भालीलायामित्यर्थः. मूले **कर्मस्वि**ति सामान्यत उक्तं, तस्य भगवत्परिचर्यार्थकत्वेन व्याख्यानेर्थापत्तिमाहुः **अन्यथे**ति, कार्यान्तरकृतौ जानातीच्छति यतत इति नियमात् तत्तद्विषयकं ज्ञानं शङ्कितं स्यात्, तथा च भगवदसम्बान्धिकार्यविषयकज्ञानक्षणे भगवत्सम्बन्धाभावात् तद्वियोगे सत्यधुना भगवत्त्वे ज्ञानस्य जातत्वात् स्थितिर्न भवेदित्यर्थः॥१९॥

---

१. पूर्वोक्तश्लोकात्.

काप्यनुपपत्तिः. लालनफलमानुषङ्गिकं ज्ञानमिति च. अज्ञानाद् वा जगतो भर्तारं भगवन्तं ध्यात्वा गृहकर्मसु गतेति. उभयोराद्यः साधीयान् ॥१९॥

एवं मातारि निर्गतायां तृणावर्तः समागत इत्याह **दैत्य** इति.

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥२०॥

जात्यैव क्रूर उक्तो **नाम्नैव तृणावर्त** इति माहात्म्यमप्रतीकारे हेतुः. **कंसभृत्य** इत्यवश्यानिष्टकर्तृत्वज्ञापकम्. **प्रणोदित** इति तेनैव कंसेन प्रकर्षेण प्रेरितः. एवं चतुर्भिर्धर्मैस्तस्य महत्त्वमुक्तं तन्निराकरणे भगवन्माहात्म्यज्ञापनार्थम्. **दैत्यत्वेन** देवविरोधित्वं **नाम्ना** महाबलत्वं **भृत्यत्वेन** स्वधर्मो वचनं ततोप्यावश्यकम्. सत्त्वरजस्तमोगुणानां प्रत्येकसमुदायभेदेन विरोधित्वं चोक्तं, तं तृणवद् भगवान् निराकरिष्यतीति. चतुर्विधपुरुषार्थबाधकत्वेनोक्तस्तादृशः सर्ववञ्चनार्थं कृत्रिमवेषं कृत्वा **जहारे**त्याह **चक्रवातस्वरूपेणे**ति. चक्रस्वरूपो वातश्चक्रवातः, चक्रवाते स्वरूपं यस्य, परितश्चक्रवातं कृत्वा वायुरायातीति भ्रममुत्पाद्य तत्सङ्ग एव लघुदेह उपविष्टं भगवन्तं निधिमिव **जहार**. ननु महत्त्वात् कथं जहारेत्याशङ्क्याह**अर्भकमि**ति. वेगवशान्महाबलः स्वोपास्यभगवद्बलाद् भगवन्तं **जहार**, सहजबले उत्थातुमेव न शक्नुयात्. अत एव भगवानक्लिष्टकर्मा ॥२०॥

तस्य तृणावर्तस्योपासितमायारूपस्य भगवन्माहात्म्यमाह पञ्चभिः, अविद्यारूपस्तेषामिति.

अयोग्यता दर्शने हि हरेश्चादर्शनं ततः ॥(१५)॥
सर्वाज्ञानं ततः स्वस्मिन् यशोदास्नेह एव च ।

टिप्पणी

परानुरोधाभावाद्गोचारणरात्रिलीलादिकं सर्वं प्रतिबद्धं तया स्यादुक्तज्ञाने सार्वदिके वा लीलारसानुभवो न भविष्यतीत्याशङ्क्य गोकुले समागमनं सर्वसुखदानार्थमिति यथैव तद्भविष्यति तथैव सम्पादयिष्यतीति न काप्यनुपपत्तिरित्युक्तमेतेन. किञ्च **लालने**त्यादि आनुषङ्गिकफलस्यासार्वदिकत्वादपि ज्ञानमिदं न स्थास्यतीति भावः. मुख्यं फलं तदेव स्वयं, निरोधो वा तत्कृतः॥१९॥

प्रकाशः

दैत्य इत्यत्र **चतुर्विधपुरुषार्थबाधकत्वेनोक्त** इति भक्तानां तथात्वेनोक्त इत्यर्थः[१]. **अत एवे**ति [२]सहजबलाप्रकटनादेव ॥२०॥

लेखः

दैत्यो नाम्नेत्यत्र सत्त्वेति. आद्येन देवविरोधकथनात् **सत्त्वविरोधित्वं**, द्वितीयेन रजःकार्यस्य विश्वस्य तृणवदावर्तकथनाद् **रजोविरोधित्वं**, तृतीयेन स्वधर्मनिष्ठत्वकथनात् **तमोविरोधित्वं**, चतुर्थेन **समुदायविरोधित्वमि**त्यर्थः. **चतुर्विधपुरुषार्थे**ति सङ्ख्यातात्पर्यमुक्तम्. **चक्रवाते स्वरूपं यस्ये**ति चक्रवाते स्वरूपं यस्य देहस्य तेन देहेनेत्यर्थः. **अत एवे**ति आसीनस्य हरणकथनादित्यर्थः. तस्यैव पूर्वमपराध इति भावः॥२०॥

तस्य तृणावर्तस्येति, तादृशभगवत्कृतं तृणावर्तस्य माहात्म्यमाहेत्यर्थः. सङ्ख्यातात्पर्यमाहुः **अविद्यारूप** इति. तदुपासितमायारूपो भगवां**स्तेषां** गोकुलस्थानामविद्यानिरूपको जात इति मायायाः कार्यमविद्यारूपं गोकुले प्रकटमिति-

योजना

दैत्यो नाम्ना तृणावर्त इत्यस्य व्याख्याने, **दैत्यतृणावर्तकंसभृत्यप्रचोदिते**तिपदैश्चतुर्भिश्चतुर्विधपुमर्थबाधकतोक्तेति सङ्ख्यातात्पर्यमुक्तम् ॥२०॥

अविद्यारूपस्तेषामितीति. अविद्यां स्वोपास्यमायां कार्यद्वारा रूपयति प्रकाशयतीत्यविद्यारूपः. तत्कार्याणि तु **अयोग्यता दर्शने ही**त्यादिकारिकाभिः स्फुटिकृतानि. तत्र यशोदास्नेहगोपिकास्नेहयोरविद्याकार्यत्वकथने दोषः प्राप्तः स तु श्रीमत्प्रभुचरणैष्टिप्पण्यां परिहृतः॥२१॥

कारिकार्थः

गोकुलं सर्वमावृण्वन्नित्यादिश्लोकपञ्चकप्रतिपाद्यानर्थानाहु**रयोग्यते**ति. "गोकुलं सर्वमावृण्वन्नि"ति श्लोकेन हरिदर्शने **अयोग्यतोक्ता**. "मुहूर्तमभवद्गोष्ठम्" इत्यनेन **हरेरदर्शनमु**क्तम्. "नापश्यत् कश्चनात्मानम्"इत्यनेन **सर्वपदार्थाज्ञानं**, "इतिखरपवन" इत्यत्र भगवति **यशोदायाः स्नेहः**. "रुदितमनुनिशम्ये"त्यत्र **गोपिकानां स्नेहः**– इमान्यविद्यायाः पञ्चपर्वाणि ज्ञेयानि. ननु यशोदादिस्नेहेऽविद्यापर्वत्वोक्तिरनुपपन्नेत्याशङ्क्याहु**र्लौकिकादि**ति. प्राकृतबालके तादृक्समये लोकानां

---

१. लुप्तम्. २. साहजः

गोपिकानां तथा स्नेहः पञ्चपर्वाणि लौकिकात् ॥(१६)॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
पूरयन् सुमहाघोरं शब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥

प्रथमतोऽज्ञानं तत्कृतं वक्तव्यम्. ज्ञानेंशत्रयं – वेद्यांश इन्द्रियांशोन्तः-करणांशश्चेति त्रयाणामपि तत्कृतदोषसम्बन्धमाह. स हि न तूष्णीं जहार किन्तु **गोकुलं सर्वमावृण्वन्नन्**धकारेण वेष्टयन्. तमोगुणकार्यमेतत्. रजोगुणकार्यमाह **मुष्णन् चक्षूंषि रेणुभिरि**ति, सर्वेषां दृष्टिः पांसुभिः कृत्वा हृता देवतात्वात्. सा

टिप्पणी

गोकुलं सर्वमावृण्वन्नित्यादि प्रकरणार्थनिरूपणेऽविद्यापर्वपञ्चककथनं तच्चानुपपन्नं, यशोदादिस्नेहे तथात्वस्यायोगादत आहुः **लौकिकादि**ति. प्राकृतबालके तादृक्समये लोकानां यथा शङ्का तथात्रापि सात्ययुक्तेत्ययमंशो लौकिकः स तत्पर्वरूप उच्यते. न तु स्नेहदुःखादिरपि, अलौकिकत्वात्. एतदेवाहुः **लौकिकादि**ति, लौकिकसजातीयत्वादुक्तभावस्य पर्वत्वमुच्यत इत्यर्थः (१६).

प्रकाशः

गोकुलमित्यत्र. ननु पूर्वाध्याये पूतनानाश एव तूलाविद्यापञ्चपर्वणां नाश-स्योक्तत्वादत्र पुनस्तत्कथनस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां टिप्पण्यामुपपाद्याहु-**र्गोकुलमि**त्यादि[1]. तथा च साधारणधर्माणां परित्यागासम्भवस्य शकटप्रसङ्ग उक्तत्वात् तेत्र तिष्ठन्तीति सोत्रोक्त इत्यर्थः. **देवतात्वादि**ति 'तृणावर्तोपास्यस्येति शेषः. 'देवतासत्त्वादि'तिपाठे तु तृणावर्तोपास्यदेवतायाः सत्त्वादित्यर्थः[२] ॥२१॥

लेखः

भावः. **प्रथमतोऽज्ञानमि**ति न ज्ञायतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या दर्शनायोग्यतेत्यर्थः. **देवतात्वादि**ति दृष्टेरिति शेषः, अन्यथा अमूर्तस्येन्द्रियस्य हरणं न सम्भवतीति भावः॥२१॥

कारिकार्थः

यथा शङ्का तथा भगवत्यपि आशङ्काऽत्ययुक्तेत्ययमंशो लौकिकः. स अविद्यापर्वरूप उच्यते न तु स्नेहदुःखादिरपि, अलौकिकत्वात्. एतदेवाहु**र्लौकिकादि**ति, लौकिकसजातीयत्वादुक्तभावस्याविद्यापर्वत्वमुच्यत इत्यर्थः (१५-१६).

---

१. इत्यादिना. २-२. लुप्तम्.

दृष्टिस्तेन च गृहिता, स पश्यति ते न पश्यन्तीति, न तु केवलं तिरोहिता. अन्तःकरणे वैयग्र्यं चोत्पादयतीत्याह **पूरयन्नि**ति. **सुमहाघोरं** यथा भवति तथा **शब्देन** दश **दिशः** पूरयन् यथा कुसूले धान्यं निर्बन्धेनापि पूर्यत एवं यथा सर्वदिक्षु भयमुत्पद्येत तथा शब्दं पूरितवान्. आधिदैविकादित्रयस्यापि भयमुत्पादयितुं पदत्रयं **सुमहाघोरमि**ति. **प्रदिश** इति प्रकृष्टा दिशो देवसम्बन्धिन्यः. अनेन देवपक्षपातिनामेव भयं न दैत्यपक्षपातिनामित्युक्तम् ॥२१॥

ततो भगवददर्शनमाह **मूहूर्तमि**ति.

मुहूर्तमभवद् गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत् स्वयं न्यस्तवती यतः ॥२२॥

बहिःस्थितानां गोकुलदर्शनमपि न जातम्. बहिर्मुखानां भगवद्दर्शनं कथं भविष्यतीति वदन् दृष्टान्तपूर्वकमाह– **मुहूर्तं** घटिकाद्वयं **गोष्ठं** सर्वमेव गोकुलं **रजसा** पांसुना **तमसा** तमोरूपेण रजोजनिततमसा **वावृतमा**सीत्. ततोन्तःस्थितं भगवन्तं **यशोदापि नापश्यत्, सुत**बुद्धिश्चजाता. ननु भगवद्दर्शनं सर्वेषामेव दुर्लभं किमाश्चर्यं यशोदा नापश्यदिति तत्राह **स्वयं न्यस्तवती यतः** यतः स्वयमेव तत्र न्यस्तवती स्थापितवती; स्वस्थापितं स्वयं द्रष्टुमुचितमेव तथाप्यदर्शनमाश्चर्यम्. **यत** इति सप्तम्यर्थे वा, **स्वयं न्यस्तवती**ति भ्रमाभावः॥२२॥

यथा भगवति विदिते सर्वं विदितं भवत्येवं भगवत्यविदिते सर्वमेवाविदितं जातमित्याह **नापश्यदि**ति.

नापश्यत् कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तविसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥

कोप्यात्मानं स्वदेहं **परं** परदेहं च **नापश्यत्. च**कारात् घटपटादिकं च. शब्दादिनापि प्रतीतिर्न जातेत्याह **विमोहित** इति, विशेषेण मोहितः. किञ्चाज्ञानकार्यमपि प्राप्तवानित्याह **तृणावर्तेन विशेषेण सृष्टाभिः शर्कराभि**र्विशेषेण**पद्रुतः** पीडितः. तामसपीडैवाज्ञानकार्यम् ॥२३॥

लेखः

मुहूर्तमित्यत्र **दृष्टान्तेति**. वाक्यार्थो भगवददर्शनमेव, पूर्वार्धं तु दृष्टान्तार्थमुक्तम्. रजस्तमोवृतत्वाद् गोकुलदर्शनं बहिःस्थितानां न जातं तथा सुतदर्शनं यशोदाया न जातमिति बिम्बप्रतिबिम्बभावेन **दृष्टान्तालङ्कारपूर्वकमाहे**त्यर्थः. **बहिर्मुखत्वाद्** रजसा दृष्टिप्रतिरोधो जात इति भावः॥२२॥

एवमज्ञानं सकार्यं निरूप्य तदपगमार्थं यशोदाया गोपिकानां च भगवति प्रेमातिशयमाह भिन्नवृत्तेन द्वाभ्याम्. तत्र गोपिकायां भगवति पुत्रत्वेन स्नेहातिशयमा**हेती**ति.

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद् भुवि पतितामृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥

एवं तृणावर्तकृत उपद्रवे जात **इत्ये**तावति सति. **खरः पवनो** यस्य **चक्रस्य** स **खरपवनचक्र**स्तृणावर्तस्तस्य **पांशु**वृष्टिभिः कृत्वा वर्षासु मार्गानिव **सुतपदवीं** पुत्रमार्गमितस्ततः पर्यटन्त्य**प्यविलक्ष्य** ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजचिह्नैरपि चिह्नितां भूमिमदृष्ट्वा **माता** सर्वथा स्नेहाधिकरणं क्वचिद् भगवानात्मानं विहाय गत इति भगवतः कृपोत्पादनार्थ**मतिकरुणं** यथा भवति त**थानुस्मरन्त्यशोच**दात्मानं शोचितवत्यकृतार्थाहमिति. ततो भगवद्विरहाद् **भुवि पतिता** जाता. क्रियाशक्तिर्लुप्ता, ज्ञानशक्तिरपि लुप्तेति वदन् मूर्छिता जातेति दृष्टान्तेनाह **मृतवत्सका यथा गौ**रिति. गौरज्ञानजन्तुस्तत्रापि वत्से [1]गतेतिविवेकाभावान्मूर्छिता भवत्येव. **अमृतवत्सके**ति; मृतवत्सका तु मृतमाघ्राय निवृत्तैव भवति, नष्टवत्सैव तथा भवति ॥२४॥

एवं यशोदायाः परमस्नेहेन मूर्छापर्यन्तमवस्था निरूपिता, गोपिकानामाह **रुदितमि**ति.

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांशुवर्षवेगे ॥२५॥

अनुनिशम्येति, गोप्यः स्वयमेव ज्ञानसम्पन्ना भगवति नीयमाने रोदनं कुर्वन्त्यः स्वरोदनं शृण्वन्त्योऽन्यरोदनमपि श्रुतवत्य इत्य**नुनिशम्ये**त्युक्तम्. **तत्र** भगवद्गृहे, **गोप्यो** भगवदीयाः **भृशम**त्यर्थ**मनुतप्ता धी**र्यासामस्माभिस्तत्र भगवन्तं गृहीत्वा कथं न स्थितमित्यनुतापयुक्ताः स्वबुद्धिदोषं स्मरन्त्यो **भृशं तप्ता** अश्रुप्रोञ्छनेप्यशक्ता **अश्रुपूर्णमुख्यो** जाताः, अश्रुभिः पूर्णं मुखं यासामिति. स्वयं तत्र गृहे

लेखः

तदपगमार्थमिति. एतयोः प्रेमातिशयेन भगवांस्तं मारयित्वा समायास्यति तदा सकार्यस्याज्ञानस्यापगमो भविष्यतीत्यर्थः.

इतीत्यत्र यस्य चक्रस्येति, यस्य तृणावर्तस्य यत् चक्रं तस्येत्यर्थकथनम्. विग्रहस्तु – खरः पवनो यस्य तादृशं चक्रं यस्येति पुनर्बहुव्रीहिः॥२४॥

१. अतीति लुप्तं क्वचन.

गत्वा **नन्दसूनुमनुपलभ्य** रोदनेपि लौकिकदोषनिवृत्त्यर्थं प्रभुपुत्रमनुपलभ्य सर्वाः संहत्य **रुरुदुः**. एवं रोदने क्रियमाणे देवतान्तर्हिता. तस्यामन्तर्हितायां **पवनोप्युपारतः पांशुवर्षस्य वेगो** यस्य तादृशो जातस्तस्मिन् ॥२५॥

तथा जाते तृणावर्तोपि शान्तवेगो जात इत्याह **तृणावर्त** इति.

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन्।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ॥२६॥

प्राप्ते भगवति नयन एव सामर्थ्यस्य व्यापृतत्वात् पूर्वं **वात्यायां रूपधरो** भूत्वा हरन्नाकाशं गतः **कृष्णं हरन् गन्तुं नाशक्नोत्**. उच्चैर्गमन एव देवतावशाद् बलं जातं न तिर्यग्गमने. तत्र हेतु**र्भूरिभारभृ**दिति, स्वसामर्थ्यापेक्षयाप्यधिकं भारं बिभ्रत् ॥२६॥

ततोऽशक्तौ यत् कृतवांस्तदाह **तमश्मानमि**ति.

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥

तं भगवन्तं बालकं सूक्ष्मरूपमतिगरिष्ठ**मश्मानं** हीरकं नीलमणिं वा **मन्यमानो** जातस्तत्र हेतु**रात्मनो गुरुमत्त**येति. **आत्मनो**प्यतिबलिष्ठस्यापि **गुरुमत्तया**शक्यगौरवेण कृ**त्वाश्मानं मन्यमानो** जातः. तत उत्स्रक्ष्यामीति विचार्य भगवता **गले गृहित**स्सन्नु**त्स्रष्टु**मपि **नाशक्नोत्**. ननु हस्तौ मोचयित्वा कथं न त्यक्तवानित्याहा**द्भुतार्भक**मिति. **अद्भुतो**ऽलौकिकः, त्याजने क्रियमाणे सम्बन्धो भवति. विपरीता हि भगवल्लीला – प्राप्तव्य इत्युक्ते न प्राप्नोति त्यज्यत इत्युक्ते न

प्रकाशः

तमश्मानमित्यत्र **गुरु**शब्दस्य धर्मवाचकत्वेपि गुरुपाषाण इत्यादौ धर्मिण्यपि प्रयोगात् प्रकृते धर्मिभिन्नधर्मोभिप्रेत इत्याशयेनाहु**रशक्यगौरवेणे**ति, सोढुं न शक्तो भवति ॥२७॥

लेखः

तृणावर्त इत्यत्र अधुना शान्तरयत्वे हेतुमाहुः **प्राप्ते** इति ॥२६॥

तमनश्मानमित्यत्र **गुरुमत्तये**ति. "वस्तुनो लघुकाठीन्यमृदुगुर्वोष्णशीतताम्" इत्यत्र द्वितीयस्कन्धदशमाध्याये लघ्वादिशब्दाः धर्मवाचकत्वेन व्याख्याता अतोत्रापि **गुरु**शब्दो धर्मवाचकस्तथा च **गुरुमत्ता** गौरवमित्यर्थः. अतिशायने मतुबित्यभिप्रेत्य अशक्यं यद् गौरवं तेनेति व्याख्यातम्. अद्भुतत्वं विवृण्वन्ति **विपरीता ही**ति. इदमवतारकालिकं ज्ञेयम् ॥२७॥

त्यक्तो भवति ॥२७॥

तदा भगवान् यत् कृतवांस्तदाह **गलग्रहणेति**.

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥

उच्चस्थाने बालकस्वभावख्यापक इव गलं गृह्णाति भगवान्. देहेन प्राणैः सह त्यक्तव्यः, तत्प्रियत्वस्यैव देहादौ समारोपणात्. तस्मिन् विद्यमाने भगवान् न त्यक्तो भवति. हस्ते गृहीत्वा त्यजन्निव तदा **गलग्रहणेन निश्चेष्टो** जात इति. तदा भगवान् दयया त्यक्ष्यतीत्याशङ्क्याह **दैत्य** इति, अत एवातिनिःपीडनेन **निर्गते लोचने** यस्य. शब्देनापि भयं जनयिष्यामीति विचार्य ततोपि पीडितोऽ**व्यक्तरावो** जातः, न व्यक्तो रावः शब्दो यस्य. तदा विवशः सन् हृदयस्थित**बालक** एव **व्रजमध्ये न्यपतत्**. न हि गोकुलसर्वस्वं कश्चिदन्यत्र नेतुं शक्तः. **नितरामपतदिति** सर्वाङ्गे भूमिसम्बन्ध उक्तः॥२८॥

लेखः

यत् कृतवांस्तदाहेति अत्र सर्वत्र प्रायशो गौणवाक्यार्थ एवाभासेषूक्तः. **गलग्रहणेत्यत्र** भगवता तस्य गलग्रहणे उपपत्तिं विचारयन्ति **देहेनेति**, प्राणसहभूतेन **देहेन** कर्त्रा भगवांस्**त्यक्तव्यः** स्यात्, तथा तु भगवान् न त्यक्तो भवति. तत्र हेतु**स्तत्प्रियत्वस्यैवेत्या**रभ्य **विद्यमाने** इत्यन्तेन. **प्रियत्वस्य** भगवद्धर्मस्य तेन **देहादौ समारोपणात् तस्मिन्** प्रियत्वधर्मे देहादौ **विद्यमाने भगवांस्त्यक्तो न भवत्य**तो गलं गृह्णातीत्यर्थः. भगवदसम्बद्धे देहे आरोपितं जीवनिष्ठं प्रियत्वं भवति, भगवत्सम्बद्धे तु देहादावारोपितं भगवद्धर्मरूपमेव भवति, तस्य महत्त्वादिति भावः ॥२८॥

योजना

गलग्रहणनिश्चेष्ट इत्यस्य विवृत्तौ **तत्प्रियत्वस्यैव देहादौ समारोपणादिति**. "अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रिय" इति तृतीयस्कन्धे ब्रह्माणं प्रति भगवद्वाक्यात् जीवानां वस्तुतः प्रियो भगवानात्मत्वात्. तदज्ञानात् देहादावात्मबुद्धिं कृत्वा प्रियत्वमारोपितं, तदारोपितप्रियत्वाधिकरणदेहप्राणयोस्त्यागे वस्तुतः प्रियत्वाधिकरणरूपो भगवांस्त्यक्तो भवति. यदि वस्तुत आत्मरूपो भगवांस्त्यज्यते तर्हि आत्मत्वेन अभिमतौ देहप्राणावपि कुतो न त्याज्याविति भावः॥२८॥

तदा मायायां गतायां पतन् सर्वजनीनो जात इत्याह **तमन्तरिक्षात् पतितमिति**.

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ॥२९॥

अन्तरिक्षाद् दूरादाकाशात् निरालम्बा**च्छिलायां पतितं** भगवदासक्ताः **स्त्रियो ददृशुरिति** सम्बन्धः. व्रजमध्ये महान् पाषाणो भवति यत्र स्थितो नन्दः सर्वमेव दोहमनुसन्धते. सा शिला ब्रह्मपुत्रीव स्थिता दैत्यघातिनी. अत एव **विशीर्णाः**

प्रकाशः

गलग्रहण इत्यत्र भगवान् गलग्रहणं कुतः कृतवानित्याकाङ्क्षायां तदभिप्रायमाहु**र्देहेने**त्यादि. अयं **देहेन प्राणैः सह** भगवता **त्यक्तव्यो**, न तु पूतनावत् केवलदेहेन. तत्त्यागश्च तदा भवति यदायं प्रियत्वधर्मं त्यजति "प्राणबुद्धिमनः-स्वात्मदारापत्यधनादयो 'यत्सम्बन्धात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रिय" इति यज्ञपत्नीः प्रति भगवद्वाक्ये प्रियत्वस्य भगवद्धर्मत्वेन सिद्धत्वात् तस्यैव देहादावारोपणस्यापि सिद्धत्वाद् देहादिविषयेपि **तस्मिन्** भगवद्धर्मे **विद्यमाने भगवान्न त्यक्तो भवत्य**तो गृहीतवानित्यर्थः. इयं फक्किका पूर्वश्लोकस्यैवेति[२] प्रतिभात्येतदग्रे **तदा भगवानि**त्याभासोपेक्ष्यत इति च. नन्वेवं भगवत्त्यागाभावे बहिर्मुखानामपि भगवत्सम्बन्धापत्तिरिति चेदस्तु. न च मुक्त्याद्यापत्तिः साधनाभावात् कृपाभावाच्च तदभावे व्यापकत्वकृतस्य सम्बन्धस्येवास्याप्यप्रयोजनकत्वाच्च[३]. या पुनः पुराणान्तरे तृणावर्तस्य मुक्तिरुक्ता तत्र पूर्वजन्मीनं साधनं स्वरूपसम्बन्धश्चेति हेतू स्फुटाविति न कोपि शङ्कालेशः. तर्ह्यग्रे कथं त्यक्तव्य इत्यत आहु**र्हस्त** इत्यादि. तथा च निश्चेष्टायां व्यसुत्वे प्रियत्वस्य निवृत्तत्वात् तस्मिन् गते त्यक्त इत्यर्थः॥२८॥

तमन्तरिक्षादित्यत्र **ब्रह्मपुत्रीवेति**, रक्षोघ्नीसरस्वतीरूपर्गिवेत्यर्थः[४] प्रतिभाति ॥२९॥

योजना

तमन्तरिक्षादित्यत्र **ब्रह्मपुत्रीवेति** अहल्येवेत्यर्थः. "मुद्गलाद् ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम्" इति नवमस्कन्धवाक्याद् ब्रह्मत्वे सिद्धे ब्रह्मपुत्रीत्वमहल्यायाः. तथा च यथा अहल्या शिला स्थिता लोकैर्न ज्ञाता भगवता श्रीरामेणोद्धृता तथेयमपि

---

१. यत्सम्पर्कात्. २. लुप्तम्. ३. लुप्तम्. ४. ऋगेवेत्यर्थः .

सर्वेवयवा यस्य. मृतोपि सर्वेषां भयानकः किं पुनर्जीवन्नित्याह **करालमिति**, **करालः** क्रूरो भगवता मारणीयत्वे हेतुः. **पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धिमिति**, सर्वोपद्रवकारीणि पुराणि तैर्लोका अतिपीडिता अतः सर्वदेवप्रार्थनया भगवांस्तं मारितवान् नो चेददृश्य एव भवेत्, न तु गच्छेत्. विकलस्यापि मारणे हेतू **रुद्रशरेण** स्वेनैव नारायणेन **विद्धमिति**, न हि दुष्टेषु वधक्रियया व्याप्तेषु दयोचिता. त्रिपुरं यथा शरेण विद्धमेव परिभ्रमत् पतति तथा **पतितं रुदन्त्यो** रोदनं विस्मृत्याश्चर्याद् **ददृशुः**, यथास्थानस्थिता अपि तदा **समेताश्च** जाताः॥२९॥

तथाभूता यत् कृतवत्यस्तदाह**आदायेति**.

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योपरि लम्बमानम्।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ॥३०॥

तस्योपरि लम्बमानं भगवन्त**मादाय मात्रे प्रतिहृत्य** समर्प्य स्तनपानादिना स्वस्थं ज्ञात्वा **विस्मिता** जाताः परमाश्चर्यं प्राप्तवत्यः, राक्षसस्पर्शे सहजदोषजनकेपि दोषस्पर्शाभावात्. अपहतपाप्मन एवैतत् सम्भवति; अपहतपाप्मत्वनिश्चयाभावाद् विस्मयः. किञ्च विस्मयान्तरेपि हेतुमाहुः **कृष्णं च तस्योपरि लम्बमानमिति**. वायुर्लघुः, कृष्णः पूर्वं गुरुरनुभुतो, लघुरधस्तात् पतितो विशीर्णो; भगवांस्तु तस्योपरिभागे तमस्पृष्ट्वैव पत्रपाषाणाविव पाषाणे पतिते पत्रं तदुपरि लम्बमानं शनैः शनैरायाति तद्वत् मध्यत ए**वादायेति** सम्बन्धः. अत **आदायैव** च **विस्मिताः**, **प्रतिहृत्य** च **विस्मिताः. च**कारात् पतितं दैत्यमपि दृष्ट्वा **विस्मिताः**, भगवन्तमभीतं दृष्ट्वा वा. एवमान्तरालौकिकदोषाभावाद् विस्मयत्रयमुक्तं, बाह्यलौकिकदोषाभावाद् विस्मयत्रयमाह **पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तमिति**. **पुरुषादा** राक्षसाः, पुरुषमेवादन्तीति. तेन शरीरोपघातोवयवोपघातो वावश्यम्भावी.

लेखः

तमन्तरिक्षादित्यत्र ब्रह्मपुत्रीवेति अहल्यावदित्यर्थः. स्थितिमात्रे दृष्टान्तो, न तु दैत्यनाशने, तस्यास्तथात्वाभावात्. **नोचेदिति** मारणाभावेऽ**दृश्यः** संस्तत्रैव तिष्ठेत् **न तु** व्रजाद् **गच्छेदित्यर्थः**॥२९॥

योजना

शिला भगवतोद्धृता. एतस्या अपि स्वरूपं किञ्चिद् वाच्यं; न त्वियं केवला शिला किन्तु कश्चिद् दैवजीवः शापादिना यमलार्जुनवदिह स्थितः प्राप्तशिलाभावो भगवता मोचितः, "अन्यैव काचित् सा सृष्टिर्विधातुर्व्यतिरेकिणी"ति वाराहवचनात् ॥२९॥

प्रमादाद् विगलितस्यापि तथेत्याह **विहायसेति**, आकाशमार्ग उच्चैस्त्यक्तोपि खेदं प्राप्नोति. न चानयोरन्यथापि सम्भवो यतो नियतमृत्युरूपावेतौ. तथापि सर्वथा सम्बन्धाभावे कदाचिदुर्वरितोपि भवेत् तदपि नास्तीत्याह **मृत्युमुखात् प्रमुक्तं**, ल्यब्लोपे पञ्चमी, मृत्युमुखं प्राप्य स्वेच्छया प्रकर्षेण मृत्युं मारयित्वा स्वयं मुक्तं, मृत्युर्दैत्ये स्थितो मुखमाकाशे. एवं त्रिविधादपि मृत्योर्मुक्त इति लौकिकाश्चर्याणि. एतादृशोपि **स्वस्तिमान्** कल्याणवान्, शोभा हर्षो वा केनाप्यंशेन न न्यून इति ॥३०॥

एवं तासामाश्चर्याभिनिवेशमुक्त्वा प्रपञ्चे विस्मृते भगवदासक्त्या परमानन्दं च प्राप्तवत्य इत्याह **गोप्यश्चेति**.

गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वार्भकं प्रापुरतीव मोदम् ॥३१॥

गोप्यश्चकारादन्यस्त्रियोपि **गोपा** अ**प्यर्भकं लब्ध्वा प्रमोदं प्रापुः**. तेषां विस्मयस्यानुक्तत्वात् प्रपञ्चविस्मरणाभावे प्रकृष्टो मोदो न सम्भवतीति युक्त्यभावेपि प्रमाणस्य बलिष्ठत्वाज्जात एवेति **किलेत्याह**. उपपत्तिं चाह **नन्द** एव **मुख्यो** येषामिति. मुख्ये प्रपञ्चविस्मरणस्य सिद्धत्वात् परमानन्द उचितः. तदाह**ार्भकं** बालकं **लब्ध्वा**, अवस्थापि परमानन्दजनिका. **अतीव मोदं** परमानन्दं प्रापुः॥३१॥

अर्धमात्रमत्र पतितं यत्र सम्बन्धो निरूपितो भवति. सर्वा गोप्यो गोपा यशोदानन्दमुख्या एकत्रोपविश्य विमर्शं कृतवन्तस्तं विमर्शमाह**ाहो** इति द्वाभ्याम्.

समेत्य चैकत्र कृताशिषोमला विचारयामासुरुपायमत्र ॥३२॥

समेत्य चैकत्र कृताशिषोमला विचारयामासुरुपायमत्र — एवमर्थः सखण्डो

प्रकाशः

आदायेत्यत्रा'न्तरालौकिकदोषाभावादित्यस्वास्थ्यभयदुष्टस्पर्शात्मकालौकिदोषाभावात्[1] ॥३०॥

गोप्य इत्यत्र **प्रपञ्चविस्मरणस्येति** पूर्वलीलाकृतस्य तस्य[2]. **अर्धमात्रमित्य**र्धश्लोकमात्रम्. **सर्वा[3] गोप्य** इति स्वामिनीव्यतिरिक्ताः सर्वा इति ज्ञातव्यम्, तासामेकत्रोपवेशनासम्भवात् पूर्णज्ञानवतीनां तादृग्विमर्षासम्भवाच्चेति प्रातिभाति ॥३१-३२॥

लेखः

गोप्यश्चेत्यत्र तदाहेति तत् तस्मात् परमानन्दस्योचितत्वात् परमानन्द**माहेत्यर्थः** ॥३१॥

१-१. लुप्तम्. २. तस्येति. ३. सर्वगोप्य.

भवति ॥३२॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोभ्यगात् पुनः।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥३३॥

भगवतो नयनमारभ्य स्वस्त्यागमनपर्यन्तं यत् किञ्चित् कृत्यं तत् सर्व**महो** आश्चर्यं, नात्रोपपत्तिः काचित् सम्भवति. आश्चर्यमपि लोके प्रसिद्धं भवति यथा नटविद्यायां मायायां स्वप्ने च; ततोप्येतदधिकमित्या**हात्यद्भुतमि**ति. मायायां प्रदर्शनमात्रमिति. जातं त्वद्भुतं यत् पुनः क्षणान्तरेन्यथा न भवति, ततोपि यत् कदाचिदपि न जातं क्वचिदपि तदत्यन्तमद्भुतम्. तत् स्वस्यात्यन्तमनिष्टमिति तत् स्मृत्वा **बते**त्याहुः. **एष** इत्यक्षताव्याहतत्वं प्रत्यक्षेण प्रदर्शितम्. विपरीतहेतुः सुदृढो जात इत्याह **रक्षसा** क्रूरेण **बालो**तिसूक्ष्म इतो **निवृत्तिं गमितो** दूरे नीतोन्येन नीतः स्वयमागत इत्याश्चर्यं, बालत्वात्. तत्रापि **रक्षसा**, **निवृत्ति**पदेन क्रियानिष्पत्तिरपि सूचिता. एवं सति पुनरागमने कोपपत्तिरिति शङ्कायामाहु**र्हिंस्र** इति, **हिंस्रो** मारको राक्षसः **स्वपापेनै**व **विहिंसितः**. मृत्युस्तत्र तिष्ठत्येवान्यमारणार्थं स तु पापपुरःसरमेव प्रवर्तते. अतः पूर्वं बहूनां वधानां कृतत्वात् स्वाधारे पापमस्ति. अपापे विषये चेत् प्रयुक्तस्तमगृहीत्वा व्याघुट्यागच्छन् स्वाश्रयमेव गृह्णातीति हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितो भवति. किञ्च मृत्युरत्यन्तं दुष्ट आश्रये न तिष्ठति, अतोपि हेतोस्तं भक्षितवानित्याह **खल** इति. **खलः** पिशुनः, न ततो दुष्टोस्ति जगति कश्चित्. विषये पापाभावमाहुः **साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यत** इति. अपहतपाप्मरूपं ब्रह्मैव. तस्यापि बहूनि रूपाणि सन्ति, तत्रापि यत् **समं** रूपं तत् सर्वदोषरहितं भवति, "निर्दोषं हि समं ब्रह्मे"ति वाक्यात्. यः सर्वत्र समदृष्टिः स दोषाभावान्न हन्यते. यस्तु **साधुः** स समदृष्टिरेव भवति. अतोयं बालकोपि समदृष्टिः साधुर्भवितुमर्हति. अतः **साधुरयं समत्वेन भया**दुपस्थिताद् **वि**शेषेण **मुच्यते**. एतावता कृत्रिमभगवत्त्वं ज्ञातमिति. एवं ज्ञाननिष्ठैर्निर्णयः कृतः ॥३३॥

कर्मनिष्ठानां निर्णयमाह **किं नस्तपश्चीर्णमि**ति.

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम्।
यत् सम्परेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥३४॥

लेखः

अहो इत्यत्र **विपरीतहेतुरि**ति, रक्षसा नयनमक्षताव्याहतागमनस्य विपरीतो हेतुः सोपि **सुदृढो** निवृत्तिपर्यन्तं **जात** इत्यर्थः॥३३॥

पूर्वजन्मन्यस्माभिः सर्वैरेव किञ्चित् **तपश्चीर्णं** येन तपसैतादृशो बालको निधिरूपोस्माकं स्थाने तिष्ठति. एवं राजसानां सिद्धान्तः. सात्त्विकानामा**हाधोक्षजार्चनमि**ति. न हि तपसालौकिकं प्राप्यते, अयं च बालको लोकोत्तरोतोयं विष्णुप्रसादादेव प्राप्यते. विष्णुश्च पूजितः प्रसन्नो भवति. तत्रापि साधारणरूपेण पूजितः साधारणमेव फलं प्रयच्छति, अस्माभिस्त्वलौकिकप्रकारेण पूजितस्तदा**हाधोक्षजे**ति, अधोऽक्षजं ज्ञानं यस्मात्, शास्त्रदृष्ट्या शोधितैरर्चनं नेन्द्रियबलकार्यम्. तामसानां निर्णयमाह **पूर्तेष्टदत्तमि**ति. **पूर्तं** खातादि, **इष्टं** यागादि, **दत्तं** तुलापुरुषदानादि; लौकिकप्रकारा एते. अतिबहिर्मुखानामेष निर्णयः. अन्तर्मुखानामा**होत भूतसौहृदमि**ति. सर्वेषु भूतेषु भगवानस्तीति तेषु दानमानादिभिः सौहृदं कर्तव्यम्. तत् केवलं ज्ञानमार्गे प्रविशति तद्व्यावृत्त्यर्थ**मुते**त्युक्तम्. भूतसौहृदमपि पूर्वोक्तेन सह लोकवत् सर्वाण्येव कर्माणि कुर्वन् लोकसौहृदमपि करोति तस्येदं फलमित्यन्तर्मुखानां कर्मिणां सिद्धान्तः. एवं कल्पनायां हेतुमाह **यदि**ति, कर्मिणां लौकिकत्वादमङ्गलवचनं लोकोक्त्या न निन्दितम्. **पुनरेव** पूर्ववत्. **बालकोपि दिष्ट्या** स्वभाग्येनापि स्वगृहे **स्वबन्धून्** स्वस्य पित्रादिन् **प्र**कर्षेण **नयन्** सर्वलोकप्रसिद्धान् कुर्वन् **उपस्थित** इति **यत्**॥३४॥

एवं सर्वेषां निर्णय उक्तः. नन्दस्तूत्पातसम्भवे हेत्वन्तरं ज्ञातवान् नान्य इति विशेषमाह **दृष्ट्वे**ति.

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३५॥

बहुशोद्भुतानि दृष्ट्वा वसुदेववचो मानयामासेति सम्बन्धः. पूतनाशकटतृणावर्तास्त्रयः प्रसिद्धाः, अन्येप्येवंविधाः शतशः, सर्वाण्ये**वाद्भुतानि** रसान्तर्विस्मारकाणि. **नन्दगोप** इति सम्पूर्णं नाम ज्ञानक्रियासमन्वितमनाश्चर्ये हेतुः

प्रकाशः

दृष्ट्वेत्यत्र **हेत्वन्तरमि**ति ज्ञापकरूपमित्यर्थः. **शतश** इति ते कुक्कुटादयः

लेखः

दृष्ट्वेत्यस्याभासे **हेत्वन्तरमि**ति, कंसमन्त्रणरूपं हेतुं वसुदेववाक्यात् **ज्ञातवान् इतिविशेषं** वसुदेववाक्यविश्वासकथनेन शुक **आहे**त्यर्थः. व्याख्याने, **ज्ञानक्रिये**ति. "टुनदि समृद्धावि"ति पाठात् **नन्द**पदस्य समृद्धिवाचकत्वं, तेना"त्मलाभात् न परं विद्यते" इतिवाक्यात् ज्ञानसमन्वितत्वमुक्तम्. **गोप**पदस्य गोरक्षारूपक्रियावाचकत्वात् तेन क्रियासमन्वितत्वमुक्तमित्यर्थः॥३५॥

परमैश्वर्यपरिज्ञानात्. **वृहद्वन** एवैतज्ज्ञायत इति **भूयो वसुदेववचो मानयामास**. स हि ज्ञान एव महत्त्वं मन्यते न तु क्रियायां, भाव्यर्थस्यैव तादृशत्वात्. किमाश्चर्यं यद्यत्यलौकिकं स्यात् पूर्वं कैरपि न ज्ञायते ज्योतिःशास्त्रादौ न प्रसिद्धमिति तस्य ज्ञानमेव स्मृत्वा **विस्मितश्च** जातः॥३५॥

एवमेकमुपाख्यानं पञ्चानां मध्ये निरूपितं, द्वितीयमाह**एकदे**ति चतुर्भिः.

भक्तिर्ज्ञानं तथा पूर्णं विस्मयश्च ततः परम् ।
जातो लौकिकभावस्य दृढत्वादिति रूप्यते ॥(१७)॥

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३६॥

आदौ स्वतन्त्रा पूतना निवर्तिता ततः परतन्त्रोपि शकटस्ततः सर्वमारकः. हेत्वन्तरं च न प्रदर्शितं तथाप्यसम्भावनाया दृढत्वान्न दृढा भगवत्यासक्ति-र्भविष्यतीत्यसम्भावनानिवृत्त्यर्थं स्वस्मिन् भगवत्येव तादृशं रूपं प्रदर्शितवान् भगवान्. स्वधर्मनिष्ठधर्मपरिज्ञाने भक्तिरेव हेतुरिति प्रथमतो भक्तिमाह. **एकदा** गृहकार्यादिवैयग्र्याभावदशायां भगवदेकप्रवणचित्तदशायां वा. **अर्भकं** बालकं कलवाक्यं वर्षाधिकम्. **आदाय** क्रीडन्तं बलात् स्वयं गृहीत्वा **स्वस्याङ्कं समारोप्य** सर्वोत्तममासनं दत्वा. **भामिनी** परमसौभाग्यवती, सर्वाभरणभूषितं च विधाय.

प्रकाशः

पुराणान्तराद् ज्ञातव्याः. **'ज्ञानक्रियासमन्वितमि**ति, "टुनदि समृद्धावि"त्यस्मादचि कृते **नन्द** इति भवति. 'समृद्धि'श्च ज्ञानस्यात्र ग्राह्या[२], गोपत्वाद् गोरक्षणक्रिया च, ताभ्यां समन्वितम्. ज्ञाने महत्त्वमानने हेतुमाहु**र्भाव्यर्थस्ये**त्यादि ॥३५॥

एकदेत्यत्राभासे **द्वितीयमि**ति तृष्णानिवर्तकम्. विवृतौ, ननु "पत्रं पुष्प-

लेखः

एकदेत्यत्र **परमसौभाग्यवतीति** "कोपना सैव भामिनी" त्युक्तत्वात्

कारिकार्थः

एकदार्भकमादायेत्यस्याभासे श्लोकचतुष्टयस्य क्रमेण वाक्यार्थानाहु-**र्भक्तिर्ज्ञानमि**ति. "एकदार्भकमादाये" ति श्लोके **भक्तिः**, "पीतप्रायस्य जननी"त्यत्र **ज्ञानं**, "खं रोदसी"त्यत्र **पूर्णं ज्ञानं**, "सा वीक्ष्य विश्वमि"त्यत्र **विस्मयः** (१७).

---

१. क्रियाज्ञान°. २. ज्ञातव्या.

भामिनी भामयुक्ता च, तेन भगिन्या अपि सौभाग्यं द्योतितम्. एवं परम्परासौभाग्य-वती स्वतः कर्मवशाच्चोत्तमा. **प्रकर्षेण स्नुतं** स्नेहवशान्निर्गतं **स्नेहेन** च **परिप्लुता**न्त-र्बहिर्व्याप्ता जातस्नेहकार्या च **स्तनं पाययामास**. 'प्रयतात्म'त्वं **भामिनी**पदेनोक्तम्. **प्र**शब्देन 'भक्त्युपहृत'त्वमुक्तम्. **स्नेहपरिप्लुवाद्** भक्त्यादानमुक्तम्. अन्तःस्थितबा-लानामल्पतृप्तत्वात् स्वतोपानम्. अपेक्षाया अपि विद्यमानत्वादन्यप्रेरणया पानम्. अत एव भगवतो न सर्वपानम्, अधिकपाने बालानामुपद्रवो भवतीति. प्रयोजक-कर्तृव्यापारनिवृत्त्यर्थं भक्तिप्रवणां कृत्वा स्वधर्मं दर्शितवान्. "ये यथा मां प्रपद्यन्त" इति न्यायेन भक्त्युद्गततद्धर्मं गृहीत्वा कृपया फलरूपं स्वधर्मज्ञानं सम्पादयति ॥३६॥

अतो दानाभिनिवेशं परित्यज्य कौतुकाभिनिविष्टा भगवद्धर्मपरा प्रदर्शितं धर्मं दृष्टवतीत्याह **पीतप्रायस्ये**ति.

प्रकाशः

मि"ति गीतावाक्ये ये हेतवो भगवद्भोजन[१] उक्तास्तेषामभावे भगवान् कथं स्तन्यं भुक्तवानित्याकाङ्क्षायां तेषां सत्तां मातृचरणेष्वाहुः **प्रयतात्मत्वमि**त्यादि **दानमुक्तमि**त्यन्तम्. नन्वेवं [२]सति स्वत एव कुतो न स्तन्यं गृहीतवानित्याकाङ्क्षायां श्रुत्युक्तमनश्नत्त्वं वैराग्यं च हेतुत्वेन सूचय**न्त्यन्तरि**त्यादि. **व्यापारनिवृत्त्यर्थमि**ति पानमिति शेषः. तर्ह्येतावत् करणस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायामग्रिमाभासमाहु**र्भक्ती**त्यादि ॥३६॥

लेखः

स्वाधीनपतिकेत्यर्थः. **स्वत** इति भामिनीत्वादङ्के भगवदारोपणाच्चेत्यर्थः. **प्रयतात्मत्वमि**ति, जितेन्द्रियाया एव पतिरधीनो भवतीति भावः. एतेन "पत्रं पुष्पम्" इतिवाक्योक्तमर्यादा सिद्धेति भावः. **फलरूपं स्वधर्मज्ञानमि**ति, "भक्त्या मामभिजानाती"ति वाक्याद् भगवद्धर्मज्ञानं भक्तेः फलमिति भावः ॥३६॥

योजना

एकदार्भकमादायेत्यस्य विवृतौ **प्रयोजककर्तृव्यापारनिवृत्त्यर्थमि**ति. स्तनपाने प्रयोजककर्त्री श्रीयशोदा, तस्या आग्रहपूर्वकस्तनपानजनक-व्यापारनिवृत्त्यर्थमित्यर्थः. **भक्तिप्रवणां कृत्वे**ति शुद्धपुष्टिभक्तिरूपमुखार-विन्ददर्शनपरां कृत्वेत्यर्थः. अन्यथाऽऽग्रहेण चेत् स्तनपानं कारयेत् तदा बालानामुपद्रवो भवेदिति भावः॥३६॥

---

१. भजने. २. लुप्तम्.

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम्।
मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे त्विदम्॥३७॥

सर्वात्मना भगवता न पीतमेव, आपाततः पीतं; तथाकरणे हेतु**र्जननी**ति, जननबुद्धिः स्वेनैवोत्पादितेति भगवच्चरित्रम्. **सा** पूर्वोक्तभक्तियुक्ता, कार्यार्थं भक्तेः पुनरनुसन्धानं कार्यदशायां सद्भावज्ञापनाय. **तस्ये**ति निरोधार्थमागतस्य. **रुचिरं स्मितं** यस्य मुखस्य; मोहसहितं स्नेहं जनयतीति परमसौन्दर्यं भावयन्ती तादृशं **मुखं लालयन्ती** जाता. **राजन्नि**ति सम्बोधनं राजलीलायामस्यानुभवः सिद्ध इत्यग्रे वक्ष्यमाणस्यापूर्वत्वात् सावधानतया स्थातव्यमितिज्ञापनार्थम्. अग्निवायू ज्ञानक्रियारूपे; ते यशोदायां योजयितुं जृम्भा भगवतः, अन्यथा द्रष्टुं सा न शक्नुयात्. भिन्नं जगत् मायिकं वा तत्र दृष्टवतीति पक्षं व्यावर्तयितुं **तु**शब्दः. **इदं** जगज्**जृम्भतो** भगवतोर्था-

प्रकाशः

पीतप्रायेत्यस्य[1] विवृतौ **तथाकरण** इति मुखलालने, तथा च स्नेहाधिक्यात् तथाकृतिरिति भावः. [2]**अस्ये**ति परीक्षितः, मुखलालनादेर्वा. **सर्वस्यापी**ति ब्रह्माण्डस्य ॥३७॥

लेखः

पीतप्रायस्येत्यत्र **मोहसहितमि**ति, स्मितस्य मायारूपत्वादिति भावः. **अग्निवायू** इति. श्रुतौ "इन्द्र आत्मनः शीतरूरावजनयद्"इत्युक्त्वाग्रे "ताभ्यामेनमभ्यनयत् तस्माद् जञ्जभ्यमानादग्नीषोमौ निराक्रामताम्"इति वृत्रप्रसङ्गे निरूपितम्. 'शीतं' जाड्यं 'रूर'स्तज्जनितो ज्वरात्मकस्ताप इति वेदभाष्ये निरूपितम्. तत्र 'शीतं' वायुः, 'रूरो'ग्निः; अतो जृम्भा अग्निवायुजन्या. भगवद्धर्माणामलौकिकत्वादत्राग्निर्ज्ञानशक्तिरूपो वायुः क्रियाशक्तिरूप इति भावः ॥३७॥

योजना

पीतप्रायस्येत्यत्र **अग्निवायू ज्ञानक्रियारूपे** इति. जृम्भाया अग्निवायुजन्यत्वं तैत्तिरीयाणां द्वितीयाष्टके "इन्द्र आत्मनः शीतरूरावजनयदि"त्यत्र पठितम्. तत्र शीतरूरयोर्वाय्वग्निरूपता वेदभाष्ये निरूपिता. तथा च भगवता स्वसम्बन्धिक्रियारूपो वायुः स्वसम्बन्धिज्ञानरूपोग्निर्यशोदायां योजितः. स्वस्य क्रियाशक्तिज्ञानशक्ती योजिते इत्यर्थः ॥३७॥

१. लुप्तम्. २. तस्येति.

न्मुखद्वारा भगवति **ददृशे**. इदं ब्रह्माण्डमात्रस्यैव प्रदर्शनम्, अग्रे सम्यगधिकारे सिद्धे सर्वस्यापि प्रदर्शनं वक्ष्यति ॥३७॥

"द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दादि"त्यधिकरणे प्रपञ्चाधारत्वे ब्रह्मत्वं सिद्धं तदचिन्त्यानन्तशक्तिमति सर्वं सम्भविष्यतीत्याश्चर्यं विहाय भगवत्परं चित्तं भवति. तत्र दृष्टं भ्रमव्यावृत्त्यर्थं गणयति **खमि**ति.

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च।
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥३८॥

आदौ **खमा**काशं विस्तीर्णम्. ततो **रोदसी** द्यावापृथिव्यौ तत् तु तदाधारम्. तथा **ज्योतिरनीकं** ज्योतिश्चक्रं द्यावापृथिव्याधारम्. दश दिशस्तत एव विभक्ताः. **सूर्येन्दुवह्नय**स्त्रिविधं ज्योतिः. **श्वसनो** वायुः, **अम्बुधयः** समुद्राः, भूम्याकाशावुक्तावेव – एवं पञ्च भूतान्युक्तानि. भूमिभेदा द्वीपादयोऽलौकिकज्ञानार्थं सप्त **द्वीपाः**, **नगाः** पर्वतास्तद्व्यावर्तकावान्तरज्ञानहेतवः. तद्**दुहितरो** नद्यः. **वनानि** तदवान्तरभेदा अल्पीयांसोपि. ततोपि सूक्ष्मा दृष्टा इत्याह **भूतानी**ति. **यानि** प्रसिद्धान्यपि यथा कल्पवृक्षा यथा वा नारदादयो ब्रह्मादयो वा. आधाराधेयभावस्तु तस्या न प्रतीतोऽकस्माज्जृम्भानन्तरमेव सर्वं दृष्टम् ॥३८॥

प्रकाशः

तद्बहिस्थस्यापि तत्प्रयोजनम् आहुः **द्युभ्वाद्यायतनम्** इत्यादि **भवती**त्यन्तम्.

खमित्यत्र **तत्तु तदाधारमि**त्याकाशं द्यावापृथिव्योराधारं, अवकाशाभावे तत्स्थित्यसम्भवेन तत्स्थितिजनकसहकारीत्यर्थः. **तत एवे**ति ज्योतिश्चक्रादेव. **अलौकिके**ति [1]कदाप्यस्मिन् जन्मन्यप्रत्यक्ष इत्यर्थः. **आधाराधेयभाव** इति भगवानाधारः सर्वमाधेयमिति भावः. जृम्भानन्तरमेव दर्शने हेतु**रग्नी**त्यादि ॥३८॥

लेखः

खमित्यत्र पूर्वं विश्वदर्शने ज्ञानक्रियायुक्तत्वं यशोदानिष्ठो हेतुरुक्तः. अत्र जगन्निष्ठमपि हेतुमाहुः **अग्निषोमात्मकत्वाच्चे**ति. इदं बृहदारण्यके "सोमोन्नमग्निरन्नाद" इति स्फुटम्. यद्यपि श्रुतौ वृत्रस्य जृम्भयाग्नीषोमयोर्निष्क्रमणमुक्तं तथापि तत्सामर्थ्यं तदाविष्टभगवत एव. अत एव तत्राग्नीषोमयोः स्वरूपत एव निर्गमनं, अत्र तु भगवतः पूर्णत्वात् तदात्मकविश्वस्य सर्वस्यैव निर्गमनमिति भावः.

१. कस्याप्य॰.

अग्नीषोमात्मकत्वाच्च जगतोद्यापि तस्यास्तथाधिकारो न जात इत्यधिकारार्थं प्रदर्श्य पुनर्नेत्रनिमीलने तत् तिरोहितं कृत्वा विस्मयाविष्टैव भगवता कृतेत्याह **सा वीक्ष्येति.**

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥३९॥

विश्वं तया पूर्वं श्रुतमिदानीं दृष्टम्. **सहसा** गमनादिकारणव्यतिरेकेणैव, न जानाति भगवता द्वयं सम्पादितमिति. "तस्माज्जञ्जृभ्यमानादग्नीषोमौ निरक्रामताम्" इति श्रुतेः तिरोभावप्रस्तावात् सिद्धवत्कारेणोक्तम्. **सहसे**त्यकस्मात्. तस्मिन् दृष्टे सम्यग् **जातो वेपथुः** कम्पो यस्यास्ततः समीचीनमेव विश्वमधिकाराभावाद् भयानकं जातम्. ततो **नेत्रे सम्मील्य.** तत्र स्वभावो हेतुर्बलिष्ठ इति दृष्टान्तमिवाह **मृगशाववदक्षिणी** यस्याः. मृग एव भीरुस्ततोपि शावो बालकः. सौन्दर्यं चाक्ष्णोर्निरूपितं भगवद्दर्शनयोग्यत्वाय. ततोन्तःकरणे विस्मय एवोत्पन्न इत्याह **सुविस्मितासीदि**ति, सुतरां विस्मितासीत्. पूर्वं कार्यदर्शनापेक्षयापि कारणे दृष्टेऽधिको विस्मयो जात इत्यर्थः ॥३९॥

पूतनासुपयःपाता बालदुःखनिवारकः ।
प्रपञ्चस्मृतिहन्ता च गोकुले राजते हरिः ॥(१८)॥

टिप्पणी

सा वीक्ष्येत्यस्याभासोक्तौ, **अद्यापि तस्या** इत्यादि. अत्रायमाशयः – मातुर्हि पुत्रत्वेनैवात्र स्नेहः, स च लौकिकसरूप एव वाच्यः, परन्तूत्कटः स्वरूपतोऽलौकिकश्च. तथा च तत्र लौकिकविजातीयधर्मदर्शनं प्रथमत एव स्नेहप्रयुक्तातिभयजनकम्, येन प्राणस्थितिर्न भवति. अतः क्रमेण किञ्चित् किञ्चित् तथाविधधर्मदर्शनेऽग्रे सहजभगवद्धर्मत्वेन ज्ञानाद्धैर्येण सर्वसामञ्जस्यं भविष्यतीत्यधुना तथा ज्ञानाभावाद्धैर्याभाव एवाधिकाराभावरूप उच्यते. तेन क्षणमात्रं प्रदर्श्य तिरोहितं कृत्वा विस्मयरसमुत्पादितवानिति सर्वं सुस्थमिति ॥३९॥

लेखः

सा वीक्ष्येत्यत्र **गमनादी**ति, भगवत्क्रियास्थापनाद् दर्शनार्थं तत्र तत्र द्वीपादिषु गमनमपि "तदेजति तन्नेजती"तिप्रकारकमेव सम्पन्नमिति भावः. **द्वयं सम्पादितमि**ति अग्नेः सोमस्य च निष्क्रमणमित्यर्थः. जृम्भया तन्निर्गमे श्रुतिं प्रमाणयन्ति **तस्मादि**ति. **सिद्धवत्कारेणे**ति **वीक्ष्ये**ति ल्यबन्तेनैवोपसंहार उक्तः ॥३९॥

स्वासक्त्यर्थं शकटभित् तृणावर्तविनाशकः ।
सामर्थ्यज्ञापनार्थाय विश्वाधारः प्रसीदतु ॥(१९)॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां
दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरणे
यशोनिरूपकतृतीयाध्यायस्य स्कन्धादितः सप्तमाध्यायस्य विवरणम् ॥

प्रकाशः

सा वीक्ष्येत्यस्याभासे **जगतोग्नीषोमात्मकत्वात्** प्राणापानात्मकत्वादित्यर्थः. [1]इदमग्रिमश्लोके स्फुटीकर्तव्यम्. **अद्यापि तस्या** इत्यादि, एतत्तात्पर्यं टिप्पणीतोवगन्तव्यम्. विवृतौ **द्वयमि**ति विश्वदर्शनं जृम्भा च. तत्र श्रुतिं प्रमाणयन्ति **तस्मादि**त्यादि. श्रुतिस्तु तैत्तिरीयानां द्वितीयाष्टकेऽग्नीषोमीयपुरोडाशोपाख्यानेऽस्ति. अर्थस्तु– **तस्माद्** वृत्राद् **जञ्जृभ्यमाणाद्** जृम्भया विकासितमुखाद**ग्नीषोमौ** प्राणापानात्मकौ देवौ **निरक्रामतां** निर्गतौ जाताविति. तथा च जृम्भया विकासितमुखत्वे प्राणापानात्मकं सर्वं जगत् निर्गतमिति श्रुत्या कथनाद् भगवता जृम्भा जगत्प्रदर्शनं च सम्पादितमित्यर्थः. ननु विश्वदर्शनप्रस्तावे शुकेन जगदुत्पत्तिरपि संशयाभावाय कुतो नोक्ता, सिद्धवदेव कस्मादुक्तमित्यत आहु**स्तिरोभाव** इत्यादि. राज्ञा हि तृष्णानिवृत्त्यर्थं यत् चरित्रं पृष्टं तदुत्तरत्वेन शुकैरिदमुच्यते. तृष्णा च तदैवापैति यदा जगतोऽनित्यत्वं ज्ञायते. तच्च "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चे"त्यत्र सिद्धं; तच्च जगत ओदनत्वादिकं तदैव ज्ञातुं शक्यते यदा मुखे दृश्यतेत**स्तिरोभावप्रस्तावात् सिद्धवत्कारेणोक्त**मित्यर्थः. **कार्यदर्शनापेक्षये**ति गुरुत्वानुभवापेक्षया. [2]**कारण** इति जगति. **सामर्थ्यज्ञापनार्थाये**ति सामर्थ्यज्ञापनेन योऽर्थः सम्भवेत् तन्निवृत्तिरूपस्तन्निमित्तमित्यर्थः ॥३९॥

कारिकार्थः

अध्यायसमाप्तौ **पूतने**त्यादि (१८-१९).

॥ इति सप्तमोध्यायः ॥

---

१. इदमित्यग्रिमः २. कारणे दृष्टे.

॥ चतुर्थः स्कन्धादितोष्टमोध्यायः ॥

येनैव तु चरित्रेण सत्त्वं शुध्यति सर्वथा ।
सर्वस्य मूलं यद्यस्मात् तदष्टम उदीर्यते ॥(१)॥
नामान्यग्रे शोधकानि ततो रूपाण्यनेकशः ।
ज्ञानं भक्तिश्च भाग्यं च पञ्चार्थाः सर्वशोधकाः ॥(२)॥

प्रकाशः

अथाष्टमाध्यायं व्याचिख्यासवोऽवान्तरसङ्गतेरवसरस्य स्फुटं प्रतीयमानत्वात् [१]तामनुक्त्वैवाध्यायतात्पर्यं निरूपयन्तः पूर्वाध्यायोक्तलीलयैव स्वासक्तेः सिद्धत्वात् किमग्रिमचरित्रेणेत्याकाङ्क्षायां तत्कथनप्रयोजनमाहुर्**येनैवे**त्यादि. **सत्त्वम**न्तःकरणं **यत् सर्वस्य** निरोधस्य [२]**मूलं** कृतस्य करिष्यमाणस्य च निरोधस्य सहकारि **यस्मात्** तस्माद् **येनैव चरित्रेण सत्त्वं सर्वथा शुध्यति तत्** चरित्र**मष्टम उदीर्यते.** तथा चोपोद्घातः स्कन्धार्थेऽध्यायसङ्गतिरित्यर्थः. यद्वा **सत्त्वं** देहेन्द्रियप्राणान्तः-करणात्मसङ्घातः, तथा चाविद्यानाशेपि घृतभाण्डे गन्धवत् तत्कार्यं न नष्टमिति तन्नाशनार्थमेतत् चरित्रमुदीर्यत इत्यर्थः. अत्र च [३]तच्छोधनद्वाराविद्याकार्यनाशनं ज्ञेयम्. न चोक्तसङ्घातशोधनमेवात्रा[४]भिप्रेतमित्यत्र किं मानमिति शङ्क्यं, शोधकपञ्चकोक्तेरेव मानत्वात् (१).

तत्र **नामा**न्तःकरणस्य[५] "यत् शृण्वतोपैत्यरतिरि"ति वाक्याद् **रूप**मिन्द्रियस्य दर्शनादिना भगवत्परतासाधकत्वाद् **ज्ञानं** देहस्याध्यासनिवर्तकत्वाद् **भक्तिः** प्राणस्य "प्राणबुद्धिमनःस्वात्मे" ति वाक्योक्तप्राणादिनिष्ठप्रियत्वस्य भगवदेकवृत्तित्वापाद-कत्वाद् [६]**भाग्यं** चात्मनस्तस्य पूर्वजन्मीनत्वेन सर्वमूलत्वात्.[६] तादृशी चात्र गुरुकृपा, तां विना जीवे भगवदनुग्रहस्याजायमानत्वात् तत्राप्रसिद्धत्वात्. तैः सत्त्वशोधने कारणमाहुर्**नामानी**त्यादि. **अग्र** इति पूर्वं, तथा चैतैः सङ्घातशुद्धिरित्यर्थः (२).

लेखः

अष्टमेध्याये कारिकासु **येनैवे**ति, **येनैव चरित्रेण सत्त्वं शुद्ध्यति तत्** चरित्र**मष्टमे उदीर्यते.** तत्र हेतुः **सर्वस्ये**ति, **यस्मा**द्धेतोस्तत् सत्त्वशोधनं **सर्वस्य** साधनकलापस्य **मूलमत** इत्यर्थः(१).

---

१. त°. २. लुप्तम्. ३. तद्धनन°. ४. °द्रियत इ°. ५. °स्य शोधकं. ६-६ लुप्तम्.

संस्कृतान्येव नामानि शोधकानीति संस्कृतिः ।
स्वेच्छालीलाविशिष्टं हि रूपमानन्दभावतः ॥(३)॥

टिप्पणी

अष्टमेध्याये प्रकरणार्थोक्तौ, **संस्कृतान्येव नामानी**ति. सत्त्वशोधनस्य मर्यादामार्गीयत्वाद्गुरूपदेशलक्षणसंस्कारवन्त्येव तानि तथेत्यर्थः. इयदवधि यशोदा-द्यधीनमेव गमनादिकमुक्तमस्मिन् सत्त्वशोधकाध्याये स्वातन्त्र्येण रिङ्गणादिलीलोक्त्या सत्त्वशुद्धिपर्यन्तं स्त्रीसम्बन्धि लीलाविशिष्टं रूपं न भावनीयम्, पाक्षिकोपि दोषः परिहरणीय इति न्यायात्, किन्तु केवलभगवत्कृतलीलाविशिष्टमेव रूपं तच्छुद्ध्यनन्तरं सा लीला भावनीयेति तात्पर्यं ज्ञाप्यते. एतदेवाहुः **स्वेच्छालीले**त्यादीना. स्वेच्छया, न त्वन्येच्छया कृता या लीला तद्विशिष्टं रूपं शोधकमिति सम्बन्धः. पूर्वस्मादेतस्य वैलक्षण्ये हेतुमाहुः **आनन्दे**ति, आनन्दस्वरूपत्वादित्यर्थः. गूढाभिसन्धिमुद्घाटयन्ति

प्रकाशः

ननु नामादीनां सर्वत्र प्रसिद्धत्वात् तैः सत्त्वशोधनं स्वतो भविष्यत्येवेति पुनरत्र कथनस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायामाहुः **संस्कृतानी**त्यादि. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहुः **सत्त्वे**त्यादि. सुबोधिनीस्थकारिकोक्तपदानामर्थस्त्वेवं बोध्यः, **शोधकानी**ति– **संस्कृति**रिति, यतः **संस्कृतान्येव नामानि सत्त्वशोधकानीति**हेतोः

योजना

अष्टमाध्यायार्थकथने कारिकासु **नामान्यग्रे शोधकानी**त्यादि. पूर्वमत्र नामकरणप्रसङ्ग**स्ततोग्रे** "कालेन व्रजताल्पेने"त्यादिना **रूपाणि** निरूपितानि, तेन भगवन्नाम्ना शुद्धहृदयस्य भगवद्रूपदर्शनात् शुद्धिः. रूपनिरूपणानन्तरं मृद्भक्षण-प्रसङ्गस्तेन भगव**ज्ज्ञानं**, तस्य ज्ञानस्य सत्त्वशोधकत्वं, तत "इत्थं विदिततत्त्वाया" इत्यादिना **भक्ति**र्निरूपिता तस्याः शोधकत्वं, ततो "नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन्नि"ति प्रश्ने "द्रोणो वसुनां प्रवर" इत्यादिना **भाग्यं** निरूपितम्. एवं भगवान्नामरूपज्ञान-भक्तिभाग्यानि सत्त्व**शोधकानि** सिद्धान्याध्यात्मिकपक्षे (२).

कारिकार्थः

अष्टमेध्याये **येनैवे**ति. अत्राध्यायेऽवान्तरप्रकरणानि विभजन्ते **नामानी**ति. "गर्ग" इत्येकविंशत्या **नाम**प्रकरणं, "कालेनाल्पेने"त्यादिदशभी **रूप**प्रकरणम्, "एकदे"त्येकादशभि**र्ज्ञानम्**, "इत्थं विदिततत्त्वाया" इत्यादित्रिभि**र्भक्तिः**, "नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन्" इत्यादिसप्तभिर्नन्द**भाग्यम्** (२). **संस्कृतानी**ति. **स्वेच्छया** न

अन्येच्छया कृतान्यत्र चरित्राणि ततोन्यथा ।
ज्ञानं प्रत्यक्षतो दृष्टं माहात्म्यज्ञानपूर्वकम् ॥(४)॥

टिप्पणी

अन्येच्छयेति. भक्तानां भगवत्सम्बन्धेनैवानन्दो, भगवांस्त्वानन्दरूप एवेत्यस्मिन्नध्याये न दुःखकथनम्. अन्याधीने चरित्रे क्वचिद्दुःखमप्युक्तमिति तस्माद्वैलक्षण्यमित्यर्थः(३-४). [1]कंसस्यैतज्ज्ञानं स्वानिष्टमित्युक्त्या[1] रहसि नामकरणाद् दुःसङ्गवर्जनमङ्गत्वेन सूचितमिति तदाहुः **दुःसङ्गवर्जनमि**ति ($५\frac{१}{२}$).

प्रकाशः

संस्कृतिः संस्कारोत्रोच्यत इत्यर्थः. **हि** यतो हेतो **रूपं स्वेच्छालीलाविशिष्टमेवानन्दत्वात्**[2] शीघ्रं सत्त्वशोधकं तत् तस्माद्धेतो**रत्रान्येच्छया कृतानि चरित्राणि ततोन्यथा** शीघ्रं सत्त्वशोधकानि न भवन्ति किन्तु विलम्बेन शोधकानीत्यर्थः. **ज्ञानं माहात्म्यज्ञानपूर्वकं** तत् **प्रत्यक्षतो दृष्टं** सत्त्वशोधकं च पुन**रलौकिके स्नेहो,**

लेखः

अन्येच्छयेति, **अन्येच्छया कृतानि** यानि **चरित्राणि** तत्र दुःखमप्युच्यते. **अत्र** स्वाधीनचरित्रे भगवत आनन्दरूपत्वात् **ततोन्यथा** प्रकारान्तरेण दुःखानुक्तिप्रकारेणोच्यते इतिशेषः – एवमन्वयः. **आनन्दभाव** इत्यस्याग्रिमकारिकायामन्वयः. अर्थस्तु टिप्पण्यां स्फुटः. **प्रत्यक्षतो दृष्टमि**ति शोधकमिति शेषः. **माहात्म्यज्ञान-**

कारिकार्थः

त्वन्येच्छया कृता या **लीला** त**द्विशिष्टं रूपं** शोधकमिति सम्बन्धः. पूर्वस्मादेतस्य वैलक्षण्ये हेतुमाहु**रानन्दभावत** इति. आनन्दरूपत्वादित्यर्थः. इयदवधि यशोदाद्यधीनमेव गमनादिकमुक्तम्, अस्मिन् सत्त्वशोधकाध्याये स्वातन्त्र्येण रिङ्गणादिलीलोक्ता; तथा च केवलभगवत्कृतलीलाविशिष्टमेव रूपं शोधकमिति भावः (३). गूढाभिप्रायमुद्घाटयन्ति **अन्येच्छये**ति. **अन्येच्छया कृताना**त्यनन्तरं यानीति शेषः. तथा **चान्येच्छया कृतानि** यानि **चरित्राणि तत**स्तेभ्यश्चरित्रेभ्योऽत्राध्याये उक्तानि **चरित्राण्यन्यथे**त्यन्वयः. तदेतद् व्याख्यातं टिप्पण्यां– "भक्तानां भगवत्सम्बन्धेनैवानन्दो, भगवांस्त्वानन्दरूप एवेत्यस्मिन्नध्याये न दुःखकथनम्. अन्याधीने चरित्रे क्वचिद् दुःखमप्युक्तमिति. तस्माद् वैलक्षण्यमित्यर्थ" इति. एवं नामादीनां पञ्चानां मध्ये नामरूपयोः सत्त्वशोधकत्वमुपपाद्य ज्ञानभक्तिभाग्यानां

१-१. एतन्नास्ति मूले. २. °नन्दं दत्वा.

स्नेहश्चालौकिके तद्वद् हेतुश्च महतां कृपा ।
पूर्वस्मिन् हृदये सिद्धे स्वत एवाग्रिमं भवेत् ॥(५)॥
तत्राङ्गं द्वितयं प्रोक्तं गुरुर्दुःसङ्गवर्जनम् ।

प्रकाशः

भक्तिरिति यावत्, सोपि **तद्वत्** माहात्म्यज्ञानपूर्वक एव शोधक इत्यर्थः. **हेतु**र्हेतुभूता **महतां कृपा** भाग्यरूपा **तद्वद्** गुरुभगवतोर्माहात्म्यज्ञानपूर्विकैव सत्त्वशोधिकेत्यर्थः. पूर्वं नाम्नामेव कथने हेतुमाहुः **पूर्वस्मिन्नि**त्यादि, नाम्नि चेद् द्वयं **सिद्धं** स्थिरं भवेत् त**दाग्रिमं स्वत एव भवे**दित्यर्थः. **शुद्ध** इतिपाठेऽलौकिकत्वेन ज्ञानयुक्ते त्वखण्डशब्दे, ब्रह्मात्मकत्वेन ज्ञानयुक्त इति यावत्, तादृशे **हृदये** सतीत्यर्थो बोध्यः. शेषं पूर्ववत्. तथा च नाम्न्यलौकिकत्वज्ञानाभावे स्वरूपेपि तथा ज्ञानं न स्यात् तथा सति शोधनस्यैवासिद्धिरित्यर्थः. [1]नाम्न्यप्यङ्गद्वयमाहु**स्तत्रे**त्यादि. इदं च रहसि नामकरणस्य तात्पर्यं ज्ञेयम् ($३\text{-}५\frac{१}{२}$).

न च [2]गुणकर्मविचारे पूर्वेष्वध्यायेष्वैश्वर्यवीर्ययशसां लीलाकरणत्वेन निरूपणादत्र श्रीस्तथा वाच्या सा चात्र न स्फुटेति शङ्क्यं, वासुदेवनामार्थनिरूपणे

लेखः

पूर्वकमलौकिके स्नेहश्च तद्वत् शोधक इत्यर्थः. **हेतुश्चे**ति, एतच्चतुष्टये महत्कृपा हेतुः. तथा च कृपा परम्परया शोधिका, तथाप्यव्यभिचारितत्वात् साप्युक्तेति युक्तिबोधनाय **च**कारः. **पूर्वस्मिन्नि**ति, चतुष्टयमध्ये **पूर्वस्मिन्** पदार्थे **हृदये सिद्धे स्वत एव** तत्सामर्थ्यादे**वाग्रिमं भवेत्,** न तु साधनान्तरापेक्षा. नामश्रवणे सिद्धे तत्सामर्थ्यादेव रूपदर्शनं, तस्मिन् सिद्धे तादृशं ज्ञानं, तस्मिन् सिद्धे तादृशी भक्तिरिति (४-५). **तत्राङ्गे**ति. "पुरुषश्च कर्मार्थत्वाद्" इति प्रतितन्त्रन्यायेन गुरुरप्यङ्गमिति भावः ($५\frac{१}{२}$).

कारिकार्थः

सत्त्वशोधकत्वमाहु**र्ज्ञानमि**ति. **ज्ञानं प्रत्यक्षत** एव शोधकं **दृष्टम्.** एवं **माहात्म्यज्ञानपूर्वकं** यथा स्यात् तथा **अलौकिके** भगवति **स्नेहश्च तद्व**च्छोधकः. **महतां** ब्रह्मादीनां भगवद्भक्तानां **कृपा** सत्त्वशुद्धौ हेतुः. **पूर्वस्मिन्नि**ति. पञ्चानां मध्ये **पूर्वस्मिन्** नामादिके **हृदये सिद्धे** सति **अग्रिमं** रूपादिकं **स्वत एव** हृदये सिद्धं **भवेदि**त्यर्थः(४-५). **तत्राङ्गे**ति. रहसि नामकरणाद् दुःसङ्गवर्जनमङ्गत्वेन सूचितम् ($५\frac{१}{२}$).

१. नाम्नामप्य°. २. °क्रम.

निरोधे भगवदासक्तिसिद्ध्यर्थमन्तःकरणशुद्ध्यर्थं च भगवतो नामकरणो-त्सवमाह **गर्ग** इत्येकविंशत्या. चिरकालोत्पन्नोऽसंस्कृत एव तिष्ठत्विति स्वतो नामाकरणं; चिरकालातिक्रमश्च तथैव भगवत्प्रेरणात्. कालस्य निमित्तत्वाभावान्न कोपि दोषस्तद् ज्ञात्वा वसुदेवः स्वपुरोहितं प्रेषयामास, क्षत्रियाणां पुरोधसैव संस्काराः क्रियन्त इति. वसुदेवश्चात्मानमाधिदैविकवसुदेवं नन्दे स्थापितवान्. तेन बलभद्रभगवतोरविशेषेण पुत्रत्वज्ञानादिकं न दोषाय. भयनिवृत्त्यर्थं बोधनं चापेक्षितं प्रसङ्गात्. अन्यथा प्राकृतानामलौकिकबुद्धिरपि बाधिकाऽतो नामकरणहेतुभूतो गर्गः समागत इत्याह **गर्ग** इति.

प्रकाशः

"श्रीमानि"तिकथनाद्[१] रूपनिरूपणे च "श्रीमुखालोकिनीभिरि"त्यत्र श्रीव्याप्तिकथनाच्च तस्यापि करणतायाः सूचितत्वादिति बोध्यम्.

एवं तात्पर्यं निरूप्य सामान्यतो जातेपि निरोधे विशेषासक्तिप्रभृतिसिद्ध्यर्थं पूर्वं नामकरणोत्सव उच्यत इत्याहु**र्निरोध** इत्यादि. अलौकिकभावरतानां विशेषतो न निरोधसिद्धिरिति तेषां **स्वासक्तिसिद्ध्यर्थं** सर्वेषा**मन्तःकरणशुद्ध्यर्थं चे**यं लीलोच्यत[२] इत्यर्थः. **एकविंशत्ये**त्यत्र [३]यदूनामपृथग्भावात् "सङ्कर्षणमुशन्त्युते"ति तद्धर्मैकत्वेन गणितं तेनैकविंशतिरिति ज्ञेयम्. तत्र पूर्वं कालातिक्रम उपपत्तिमाहु**श्चिरे**त्यादि **न दोष** इत्यन्तम्. श्रीवसुदेवकृतगर्गप्रेषणस्य तात्पर्यमाहु**स्तद् ज्ञात्वे**त्यादि. **तदि**ति नामकरणम्. **आधिदैविकवसुदेवमि**ति निगमात्मकं स्वस्वरूपम्. [४]गर्गागमनप्रयोजनमाहु**र्भयनिवृत्त्यर्थं बोधनं चापेक्षितमि**त्यादि– [५] कंसज्ञानकृतस्य स्वकापट्यकृतस्य च **भयस्य निवृत्त्यर्थं** तदीयपुत्रत्वस्य **बोधनमप्यपेक्षितं, प्रसङ्ग**स्य विद्यमानत्वात्. **अन्यथा** पुत्रत्वज्ञानाभावे **प्राकृतानां** ग्राम्याणा**मलौकिकबुद्धिरपि बाधिका** रहसि करणाज्ञायां किमित्ययं[६] लोकविरुद्धं वदतीति बुद्धिर्विविधसन्देहोत्पादिका स्यात्. **अपि**शब्दात् स्वस्यापि कापट्यमतस्तथेत्यर्थः॥१॥

लेखः

निरोधे इति निरोधनिरूपकस्कन्धे **नामकरणोत्सवं** प्रयोजनद्वयसिद्ध्यर्थ-**माहे**त्यन्वयः॥१॥

---

१. °निरूपणाद्. २. लुप्तम्. ३. च य°. ४. °नस्य प्र°. ५. मिति कं°. ६. °त्यर्थं°.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥१॥

राजन्निति सम्बोधनं गुप्तचर्या राजपरिज्ञातेति ज्ञापनार्थम्. **यदूनां पुरोहितो** वंशस्यैव स्वत एव हितकारी. तेनान्तःकरणशुद्धिरुक्ता. महानुभावत्वमाह **सुमहातपा** इति, सुमहत् तपो यस्य सः. अकस्मात् कार्यसिद्धिं मुहूर्तं ज्ञात्वा **नन्दस्य व्रजं जगाम.** अन्यत्र स्थितः शुको वदति. पितुराज्ञाव्यतिरेकेण पुत्रसंस्कारो न कर्तव्य इति तदर्थमाह **वसुदेवेन प्र**कर्षेण **चोदितः** प्रेरितः॥१॥

आगतस्य पुरस्कारमाह **तं दृष्ट्वे**ति.

तं दृष्ट्वा परमप्रीत प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥२॥

आकाङ्क्षितपदार्थदर्शनात् परमप्रीतिः. प्रत्युत्थानं धर्मनिष्ठताज्ञापनार्थम्. **कृताञ्जलि**र्विनीतस्तेनान्तःकरणशुद्धिरुक्ता. अतिथिरयमित्यत्र भगवत्पूजां कृतवा-नित्याहा**नर्चे**ति, अतिथिबुद्ध्यापि पूज्यते हरिबुद्ध्याप्यतिथि"रातिथ्येन तु विप्राग्र्य" इति वाक्यात्. तदाहा**धोक्षजधिये**ति, चतुर्भजं भगवन्तं ज्ञा**त्वानर्चा**र्चा कृतवान्. तत्रापि भक्तिमार्गानुसारेणेत्याह **प्रणिपातपुरःसरमि**ति. प्रणिपातोऽपराधदूरीकरणं, तद् दासस्यैव नित्यसेवकस्य सम्भवति नान्यस्य ॥२॥

प्रकाशः

तं दृष्ट्वेत्यत्र **चतुर्भुजमित्यधोक्षज**पदतात्पर्यम्[१] ॥२॥

लेखः

तमित्यत्र **चतुर्भुजमि**ति. एकादशस्कन्धे पूजाविधाने "लसच्चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत् समाहित" इत्यनेनातिथौ चतुर्भुजत्वेन ध्यानकथनादिति भावः ॥२॥

योजना

आनर्चाधोक्षजधियेत्यस्य विवृतौ **चतुर्भुजं भगवन्तमि**ति. **अधोक्षज**पदेने-न्द्रियातीतत्वकथनाद् द्विभुजस्य पुरुषोत्तमस्येन्द्रियग्राह्यत्वात् तत्र न सर्वेषामधोक्ष-जत्वबुद्धिरतश्चतुर्भुजरूपमेव **अधोक्षज**पदेनोच्यत इति तथोक्तम् ॥२॥

---

१. तात्पर्यं निरूपयति.

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

एतदेव पुरःसरमग्रे यथा भवति तथा प्रार्थनां वक्तुं किञ्चिदुक्तवानित्याह **सूपविष्टमि**ति. सुष्ठु गमनक्लेशाभावेन वैयग्र्यं परित्य**ज्योपविष्टम्.** स्वकृत्यमाह **कृतमातिथ्यं** यस्मै यस्मिन्निति वा; अतिथेर्हितं भोजनान्तं कर्म तद् गृहस्थकर्तव्यम्. भक्तिमार्गानुसारेण पूजितत्वादस्मिन् स्नेहेधिके जाते गद्गदया वा**ण्याब्रवीत्** येन स सर्वमेव सामर्थ्यं विनियुञ्ज्यात्. कापट्याभावायाह **मुनिमि**ति, स हि सर्वज्ञस्तदैव सर्वं जानाति. अन्यत्र भगवद्बुद्ध्या स्तोत्रं क्रियमाणमारोपितविषयं भवतीति तन्निवृत्त्यर्थमाह **सूनृतये**ति स्तोत्रेण **नन्दयित्वा** सन्तुष्टं ज्ञात्वाऽ**ब्रवीत्. ब्रह्मन्नि**ति सम्बोधनं ब्राह्मणस्य तत्परमोत्कर्षख्यापनम्. अयं **ब्रह्म**शब्दः परब्रह्मवाचक इति ख्यापयितुं **पूर्णस्य करवाम किमि**त्याह. "बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म" दश दिक्षु किर्मीरितमिह तादृशस्यान्यैः कर्तव्य उपकारे देशाभावात् कृत्रिमस्य हीनत्वात् तत्रापि सदृशस्याज्ञानात् **किं करवाम** ? देहेन्द्रियान्तःकरणानां न्यूनत्वात् तत्रोपकारः कर्तुं शक्यते, ब्रह्मभूततदध्यासनिवृत्तेस्तत्र कृतं न प्रयोजनाय भवतीति ॥३॥

प्रकाशः

सूपविष्टमित्यत्र **गद्गदये**ति **गिरे**त्यस्य तात्पर्यं[१] **सूनृतये**त्यत्र[२] पाठान्तरं वा. [३]**बृहत्त्वादि**त्यादि, **तादृशस्ये**ति ब्रह्मभूतस्य, **देशाभावादि**ति तदीयदेशाभावात्. ननु पूजायां वस्तुतो भगवदीयमपि स्वीयत्वेनाभिमतं पूज्याय भगवते दत्तं भगवानुपकारत्वेन मनुते तथात्रापि स्यादत आहुः **कृत्रिमस्ये**त्यादि. स्वीयत्वेनाभिमतस्य वस्तुन उपकृतिरूपत्वाभावेन [४]**हीनत्वात्**. ननु तथापि स्वविहितमार्गीयत्वात् तेन फलभवने "ऽण्वप्युपाहृतं भक्तैरि"तिवाक्याद् भक्तिमार्गानुसारेण सर्वमप्युपकृतिरूपं भविष्यतीत्यत आहु**स्तत्रापी**त्यादि. भक्तिमार्गेपि तादृशस्य भगवद्रुचिविषयस्याज्ञानात् कृतमप्यकृतप्रायमित्यर्थः. नन्वीश्वरस्य देहाद्यभावात् न तत्कृतोपचारोऽपेक्ष्यते गर्गे तु तत्सद्भावादुपचारो नानुचित इत्याशङ्कायामाहु**र्देहे**त्यादि, तथा च ब्रह्मभूतत्वात् न तस्यापि तदपेक्षेत्यर्थः॥३॥

लेखः

सूपविष्टमित्यत्र **आतिथ्य**पदस्य निरुक्तिमाहुः **अतिथेर्हितमि**ति, ब्राह्मणादित्वात् कर्मणि ष्यञ्. अतिथेर्हितरूपं तत्सम्बन्धि कर्म भोजनान्तमित्यर्थः॥३॥

१. र्यं पूर्वे सू°. २. °त्र गद्गदयेति. ३. स बृ°. ४. दीन°.

एतावतास्माभिः कोप्युपकारः कर्तुं न शक्यत इत्युक्तम्, त्वया त्वनुक्तमेव क्रियत इत्याह **महद्विचलनमि**ति.

महद्विचलनं नृणां गृहिणो दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥

महान्तः स्वतः कार्याभावान्न कुत्रापि गच्छन्ति. तादृशाश्चेद् गच्छन्ति परोपकारार्थमेव गच्छन्तीति ज्ञातव्यम्. **विशेषेण चलनं** ग्रामान्तरगमनं न तु स्नानाद्यर्थम्. तत्र परार्थे विचार्यमाणे यस्यैव गृहे गच्छन्ति तस्यैव कार्यं साधयन्तीति निश्चीयते, अन्यथा गृहासक्तचित्तानां वृद्धानां तत्रापि परमदुःखेन पीडितानां **दीनचेतसां** गृहे न गच्छेयुः. तेषां च मुख्यं प्रयोजनं तद्दुःखनिवृत्तिस्ततः परमानन्दावाप्तिरिति. अतो **निःश्रेयसायै**व गमनम्. तादृशफलदाने सामर्थ्यं **भगवन्नि**ति. यद्यपि ते न प्रार्थयन्ति तथापि गमनमेव तथा कल्पते, **अन्यथा** एतत्फलानुद्देशे **क्वचि**दपि देशे गमनं **न कल्पते** ॥४॥

एवं ब्रह्मवित्त्वेन परोपकारैककार्यत्वेन च स्तुत्वा सर्वज्ञतामुपपाद्य तत्सार्वज्ञ्यं यथान्येषामब्रह्मविदामपि भवति तथोपायं कृतवानिति स्तौति **ज्योतिषामयनमि**ति.

ज्योतिषामयनं साक्षात् यत् तद् ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ॥५॥

अनेनान्यस्यापि तत्तत्पदार्थरहितस्यापि तत्तत्पदार्थकरणसामर्थ्यं द्योतितं ग्रहादिबलरहितस्यापि तद्बलजनकत्वम्. **ज्योतिषां** सूर्यादीना**मयनं** स्थानमिदमित्थतया यस्मिन् क्षणे यो ग्रहो यत्र वर्तते, तस्य ज्ञानं यस्मात् तद् **ज्योतिषामयनं** ज्योतिःशास्त्रम्; अलुक्समासः. ज्योतिषां सम्बन्धि वा अयनं ज्ञानं यस्मात्. तत्रापि सामान्यतो ग्रन्थकर्तारः सुगमाः परोपजीवकाः, त्वं तु ब्रह्मसूर्यवत् **साक्षात्**कर्ता. तत्रापि **यत्** प्रसिद्धं सर्ववाद्यप्रतिपन्नं तादृशमेव **तत्** त्वदुक्तं तच्छास्त्रं केवलं **ज्ञानमेव** ब्रह्मस्वरूपं, "यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितं भवती"ति. तच्च ज्ञानरूपं शास्त्र**मती-**

लेखः

महद्विचलनमित्यत्र **तेषां चे**ति. मतभेदेन दुःखनिवृत्तिरानन्दावाप्तिश्च मोक्ष इति द्वयमपि निःश्रेयसत्वेनोक्तम् ॥४॥

ज्योतिषामयनमित्यत्र प्रथमपक्षे **ज्योतिषामयनं** स्थानं यस्मात्; तथा च स्थानविषयकज्ञानं यस्मादिति पर्यवसन्नोर्थः. द्वितीयपक्षे **ज्योतिर्विषयकमयनं** ज्ञानं यस्मादित्यर्थः ॥५॥

न्द्रियमिन्द्रियागोचरमन्यस्य बुद्धिगम्यमपि न भवति गुरूपदेशव्यतिरेकेणैतादृशं शास्त्रं **भवता प्रणीतं येन** शास्त्रेण कृत्वा **पुमान् परावरं वेद** भूतभविष्यद् वेद. **परं** स्वापेक्षया पुरुषोत्तमपर्यन्तम्, **अवरं** परमाणुपर्यन्तम् ॥५॥

अतः सर्वज्ञो भवान् ब्राह्मणोत्तमोत्तमः, अतः पुत्रयोः संस्कारान् कर्तुमर्हसीत्याह **त्वं ही**ति.

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥६॥

ब्रह्मविदेव ब्राह्मणः. स हि सर्वज्ञः, **त्वं** तु **ब्रह्मविदाम**पि **श्रेष्ठो**ऽन्यस्यापि ज्ञानोत्पादने यत्नकरणात्. अतो **बालयोरनयोः संस्कारान् कर्तुमर्हसि.** यथैकं नामकरणं तथान्यान्यपि कर्माणि विद्याभाग्यफलकानि संस्कारत्वेनाप्युक्तानि जातेष्ट्यादीन्यैन्द्राबार्हस्पत्यादीनि चान्यानि च प्रसिद्धानि, लोके साम्प्रतं लुप्तानि. उभावप्येतावसंस्कृतौ. ननु गुरुणा पुरोहितेन कर्तव्यं न तु येनकेनचिदिति चेत् तत्राह **जन्मना ब्राह्मणो गुरुरि**ति– उत्पत्तिमात्रेण सर्वोपि ब्राह्मणो गुरुर्भवति, अतो भवानपि गुरुरित्यवश्यं कर्तव्यम् ॥६॥

तत्र गर्गो गुप्ततयैतत् कर्तव्यमिति, साक्षात् तथोक्ते ग्रामीणत्वान्न मंस्यत इति; वैदिके कर्मण्यसुराणां ज्ञानमयुक्तमिति "यद् वेदमुच्चैर्यज्ञेन चराम तन्नोसुराः पाप्मानुविदन्त्युपांशूपसदाचराम तथा नोसुराः पाप्मा नानुवेत्स्यन्ती"ति श्रुतेः.

प्रकाशः

त्वं हीत्यत्र जातेष्ट्यादीनीति. "वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जात"[1]इत्यनेन विहिता, तत्फलं च "तस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियाव्यायुष्मान् भवती"त्युक्तम्. **ऐन्द्राबार्हस्पत्यं** तु "यं कामयेत राजन्यमनयेष्ट्या वृत्रणिघ्नँश्चरेदि"ति "तस्मा एतदैन्द्राबार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेदि"-त्यनेनोक्तम्. एवमन्यान्यपि ज्ञातव्यानि ॥६॥

लेखः

यदूनामित्यस्याभासे यद्वेति. पूर्वमसुराणां ज्ञानस्यायुक्ततामात्रमुक्तम्, अत्र तु श्रुतौ "तत् नः कर्म असुराः पाप्मा च एते अनुविन्दन्ति" प्राप्नुवन्तीत्युक्तं, विद्लृ लाभे इत्यस्य रूपम्. तथा चोच्चैः कृतं कर्म आसुरं भवतीत्यर्थः ॥७॥

---

१. इत्यादिना.

तथापि यावल्लौकिकभयं नोच्येत तावन्न निवर्तत इति भयमुत्पादयति त्रिभिर्**यदूनामि**ति.

॥ गर्ग उवाच ॥

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥७॥

सर्वज्ञानां वचनं सर्वतोमुखं भवति सर्वं स्पष्टं वदन्ति च न वदन्ति च. उच्यमानमप्यनुक्तमिव भवति. "द्रव्यसंस्कारविरोधे द्रव्यं बलीय" इति न्यायेनोच्चैः क्रियमाणे द्रव्यविरोधो भवति. विरोधे कारणं कंसः, तस्यापि देवकीपुत्रः. मया कृतः संस्कारो देवकीपुत्रत्वं ख्यापयतीत्याह**ाहं** सर्वेषामेव **यदूनां** यदुवंशोद्भवाना**माचार्यः** संस्कारकर्ता नान्येषाम्. तत्रापि **भुवि सर्वतः ख्यातो** मदीयाः सर्व एव धर्माः सर्वेषां प्रसिद्धा भवन्ति, अतोत्रागमनमपि प्रसिद्धमेव. ततः किम्? अत आह **ते सुतं मया संस्कृतं** कंसो **देवकीसुतम**ेव **मन्यते** –निर्धारितोयमर्थः ॥७॥

यादवान्यस्य मया संस्कारो न क्रियत इति मन्यतां को दोष इति चेत् तत्राह **कंसः पापमतिरि**ति.

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥

स हि मारकोऽतो देवकीपुत्रत्वज्ञानमनिष्टजनकम्. नन्वत्र देवकीपुत्रस्य कः प्रसङ्गः? तत्राह **सख्यं तव चानकदुन्दुभेरि**ति. अतः सखिगृहेऽष्टमः पुत्रः स्थापितोय-मिति मन्यते. **च**कारोर्थविशेषख्यापकः; सोपि दुष्टस्तव च सख्यमित्युभयोः सम्बन्धित्वज्ञापनाय षष्ठ्यौ. ननु देवकीगर्भः स्त्रीरूपेन दृष्ट एव, कथं सन्देह इति चेत् तत्राह **देवक्या अष्टमो गर्भः** स्वमारकत्वेन श्रुतः **स्त्री भवितुं नार्हति** ॥८॥

प्रकाशः

यदूनामित्यस्याभासे पाप्मानुविदन्तीत्यादि. **पाप्मे**त्यत्र श्रुतौ जसः स्वादेशो बोध्यः; एवमग्रेपि. श्रुतिस्तु ब्राह्मणप्रथमाष्टके पञ्चमाध्याये नवमानुवाकेऽस्ति. **न निवर्तत** इत्युत्सवसम्भ्रमाद् श्रीनन्दो न निवर्तते, "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वे"ति. **द्रव्यविरोध** इति पुत्रविरोधः. **तस्यापी**ति **विरोध**स्य **कारणं कंसः** ॥७॥

कंसः पापमतिरित्यत्र **चकारोऽर्थविशेषख्यापक** इत्यत एव रोहिणीपुत्रोत्पत्तौ तात्पर्यस्य ख्यापकः॥८॥

लेखः

देवक्या इत्यत्र **कंसो मारयेदि**ति. **अपि हन्ते**त्यस्यैवार्थतः कथनमिदम् ॥८-९॥

इति सञ्चिन्तयन् श्रुत्वा देवकीदारिकावचः ।
अपि हन्ताऽऽगताशङ्कस्तर्हि तन्नोनयो भवेत् (महान्!) ॥९॥

कथमियं **स्त्रीति सञ्चिन्तयन् कंसो** मारयेदिति सम्बन्धः. शङ्कायां कारणान्तरमप्यस्तीत्याह **श्रुत्वा देवकीदारिकावच** इति. **देवक्या दारिका** बालिका तस्या **वचः** "किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृदि"ति. अतोऽस्या आकाशवाण्याश्चैकार्थे विचार्यमाणे देवक्याः पुत्रो रात्रावत्रानीय वसुदेवेन स्थापितस्तव च कन्या तत्र नीतेति फलति. त**दापीति** सम्भावनाया**मागताशङ्कः** सन् **हन्ता** हनिष्यति, तथा सति **नोस्माकं महाननयः** स्यात्. अतस्तव पुत्रस्य संस्कारो मया प्रसिद्धतया न कर्तव्य इति फलितम् ॥९॥

नन्दस्तस्य प्रतीकारमाह**ालक्षित** इति.

॥ श्रीनन्द उवाच ॥

अलक्षितोस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

ज्ञापितं च हरेस्तत्त्वं स्नेहाधिक्यान्न बुध्यते ॥(६)॥
अतो निरोधः कर्तव्यः शास्त्रं तत्राप्रयोजकम् ।

अस्मिन् गोष्ठे गुप्तस्थाने **मामकैरप्यलक्षितो**नुमानेनाप्यज्ञातः सन् **द्विजातिसंस्कारं कुरु.** अनेनेयं वार्ताप्येकान्त एव कृतेति ज्ञायते. गवां व्रजे न कश्चिदभिज्ञो नागरिकवद्; गवां बुद्ध्या तुल्या एव सम्भवन्ति. मामकानां स्वरूपं मया ज्ञायत, इति तेषामज्ञानं साधनीयम्. एतेनान्ये व्याख्याताः. द्विजातीनां मन्त्रवत्संस्कारो भवति, अन्येषाममन्त्रकं, अतो मन्त्रप्राधान्येनैव कर्तव्यं नोत्सवप्रधान्येन, तदाह **द्विजातिसंस्कारमि**ति. मङ्गलमावश्यकमिति विचार्य मङ्गलमपि वैदिकमेव कर्तव्य-

---

प्रकाशः

अलक्षित इत्य**त्रामन्त्रकमि**ति; शूद्राणां नामकरणादिकं मन्त्ररहितं, सामान्ये नपुंसकम् ॥१०॥

कारिकार्थः

अलक्षितोऽस्मिन् रहसीत्यत्र **ज्ञापितमि**ति. गर्गेण "यदूनामहमाचार्य" इत्यादिना **ज्ञापितम**पि **हरेस्तत्त्वं** देवकीसुतत्वादिलक्षणं **स्नेहाधिक्यात्** नन्देन **न बुध्यते अतो** निरोधाधिकारित्वात् **निरोध** एव **कर्तव्यः. शास्त्रमि**ति, निरोधाद् ज्ञानस्य दुर्बलत्वाद् ज्ञानमप्रयोजकमित्यर्थः ($६\frac{१}{२}$).

मित्याह **स्वस्तिवाचनपूर्वकमि**ति. **स्वस्तिवाचनं** पुण्याहवाचनं, पुण्याहःस्वस्त्यृद्धय-स्त्रिस्त्रिरुक्ताः स्वस्तिवाचनं, तत् सर्वकर्मस्वावश्यकम् ॥१०॥

एवमुक्ते स्वाभिलषितं सिद्धमिति कृतवानित्या**हैवं स प्रार्थित** इति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं स प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥

ज्ञातेपि लोके प्रतीकारं करिष्यामीति तस्याभिप्राय इति ज्ञापयितुं **विप्र** इति, शीघ्रं च तस्य कर्तव्यमिति. पुरोहितत्वात् **स्वस्य चिकीर्षितमेव तत् नामकरणं** कर्म प्रसिद्धमिति वा सर्वत्र. **गूढः** स्वयमपि गुप्तः सन् वेशान्तरेण यावत् तत्र तिष्ठति. **रहस्ये**कान्ते. उभयोरपि नामकरणमुभयोरनुगुणमुहूर्ते. **बालयोरि**ति केशाभिप्रायो वा ॥११॥

ज्येष्ठानुक्रमेण नामकरणं कुर्वन्नादौ ज्येष्ठस्य नामत्रयमा**हायमि**ति सार्धेन.

॥ गर्ग उवाच ॥

अयं वै रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ॥१२॥

प्रकाशः

एवं स प्रार्थित इत्यत्र **तदिति** तच्छब्दस्य पूर्वोक्तपरामर्षित्वं प्रकरणबलादेव सिध्यतीति पक्षान्तरमाहुः **प्रसिद्धं**[१] वेति. **केशाभिप्रायो वेति** "प्राक् चूडाकरणाद् बाल" इति वाक्यात् चूडाकरणतः पूर्वकालाभिप्रायं **बाल**पदमित्यर्थः. पाद्मे "फाल्गुने शुक्लपक्षे च गर्गो नामाकरोत् तयोरि"ति मासोप्युक्तः, दिनं चाष्टमीति पूर्वापरसन्दंशादवसीयते. ब्रह्मवैवर्ते तु नामकरणेन सहान्नप्राशनमप्युक्तम् ॥११॥

अयं वै रोहिणीपुत्र इत्यत्र. नन्वत्र नामकरणप्रस्तावे मूलनामैव कुतो नोक्तं; गुणयोगात् कुत उच्यत इत्याकाङ्क्षायामाहु**र्वस्तुत** इत्यादि. ब्रह्म हि मनोवागविषयत्वात् स्वेन रूपेण न व्यवहार्यं व्यवहारविषयं न भवत्यतस्तादृशे ब्रह्मणि डित्थकपित्थादिवत्

लेखः

एवं सम्प्रार्थिते इत्यत्र **ज्ञातेपी**ति लोकेस्मिन् कर्मणि ज्ञातेपि; इदं कर्म लोके ज्ञातं भवेत् तदापीत्यर्थः. **शीघ्रं चे**ति. अनेनापि **विप्र**पदार्थ एवोक्तः. विप्रा हि पश्चिमबुद्धयः; शीघ्रमेव कार्यं कुर्वन्ति न तु विचार्येत्यर्थः ॥११॥

---

१. °मिति वेति.

वस्तुतो ब्रह्मण्यव्यवहार्ये स्वरूपतो नामाभावात् सङ्केताभावाद् गुणयोगादेव नामानि भवन्ति. उभावत्र पुत्रौ वसुदेवस्य, तत्रैको मातृनाम्नापरः पितृनाम्ना. प्रथमं गुप्ततया मातृनाम्ना नामा**हायं वै** निश्चयेन **रोहिणीपुत्रो**तो रौहिणेय इत्युक्तो भवति. रोहिण्यामाविर्भूतस्यावेश इति च. **वै** निश्चयेनेति यशोदायाः पुत्रत्वे सन्देह इति ज्ञापितम्. यदि भगवान् प्राकृतः केनाप्यंशेन भवेत् तदा याशोदेयो दैवकेय इति नाम भवेद् यथा रौहिणेय इति. तस्माद**यमेव वै** निश्चयेन **रोहिणीपुत्रः.** किञ्च योनिकृतसम्बन्धाध्यासोप्यस्य दृढ इत्याह **रमयन् सुहृदो गुणैरिति– सुहृदः** सर्वानेव सम्बन्धिनो **गुणैः** स्वसामर्थ्यैः पालनपोषणप्रीणनादिभी **रमयन्** लोके **राम इत्याख्यास्यते; गुणैः** सुस्वभावादिभिर्वा. अयं च बलिष्ठो भविष्यति, तथा ग्रहदर्शनादित्यन्यबुद्धिः. अतो **बलाधिक्याद् बलरूपमेवैनं विदुः** ॥१२॥

टिप्पणी

अयं वै रोहिणीपुत्र इत्यत्र, **वस्तुत** इत्यादि. अप्राकट्यदशाया**मव्यवहार्ये ब्रह्मणि** सत्यन्यपदार्थवल्लोके केवलं **स्वरूपत** एव भगवन्नामप्राकट्याभावाद्भगवतः प्राकट्यात्मक**गुणयोगादेव** लोके **नामानि** प्रकटानि **भवन्ती**त्यर्थः. यथाश्रुतार्थकथने "नामानि रूपवन्नामरूपस्यापि भगवतो रूपाणी"त्यार"भ्याखण्डान्येवे"त्यन्ते-नाग्रिमग्रन्थेन विरोधः स्यात्. **यशोदायाः पुत्रत्व** इति. अत्रायं भावः– गर्गः पूर्व-वृत्तान्ताभिज्ञोऽत्रागत्याधुना भगवद्भाववत्त्वेन भगवति यशोदापुत्रत्वलक्षणं धर्मं च दृष्ट्वा सन्दिहानस्तत्त्व[1]निश्चयं जानंस्तद्वाच्यव्ययं **वा** इत्युक्तवान्. अत एव विपरीतनिश्चयो नोक्त इति भगवन्नामकरणप्रस्तावे सम्यग्भगवद्भावानिश्चयोभूदिति **तवात्मजस्ते सुतस्ये**त्युक्तवान् ॥१२॥

लेखः

अयं वै इत्यत्र **तत्रैक** इति. भगवति शौरिरित्यादिप्रयोगो न तु दैवकेय इति, बले रौहिणेय इति प्रयोगो न तु शौरिरिति. क्वचित् तथापि प्रयोगो भगवदावेशे. **देवकीसुत**पदे तु समासे पदद्वयं भिन्नमतः सर्वथैक्यं न बोधयतीति भावः. **अयं वै निश्चयेने**ति. देवक्यां गर्भमात्रसम्भवेपि पुत्रो रोहिण्या एवा**ऽतो** हेतोः रौहिणेयः **रोहिण्यामाविर्भूतस्य** वासुदेव**स्यावेश इति च** हेतो **रौहिणेय** न तु दैवकेय इति भावः. नामप्रकरणे स्वरूपमात्रकथनमप्रयोजकमतो रौहिणेय इति पर्यवसितं नामोक्तम् ॥१२॥

१. तत्रेति मूले पाठः.

भगवदाज्ञया मायाकृतमपि कर्मास्मिँल्लोके प्रसिद्धं भवत्विति "गर्भसङ्कर्षणात् सङ्कर्षण" इतिभगवद्वचनाद् देवगुह्यत्वात् तत् लोके न वक्तव्यमिति प्रकारान्तरेण **सङ्कर्षण**व्युत्पत्तिमाह **यदूनामि**ति.

यदूनामपृथग्भावात् सङ्कर्षणमुशन्त्युत ॥१३॥

यदूनां मध्येऽस्य **न पृथग्भावो**स्ति, सर्वत्रात्मबुद्धिरेव. अत एव भगवता मातृद्वयमस्य सम्पादितं भिन्नमातृसुतेषु वैराभावज्ञापनार्थम्. अतो भगवत्कृतं संवदतीति नात्यन्तं दोषोपि. **यदूनां** वास्मिन् **पृथग्भावो** ना**स्ती**ति **सम्यक्**

प्रकाशः

स्वरूपकृतनामाभावादव्यवहार्यत्वादेव 'अस्मात् पदादयमर्थो बोद्धव्य' इत्याकारकपद**सङ्केतस्याप्यभावात् स्वरूपतो** नाम नोक्तं, "प्रकाशवच्चावैयर्थ्यादि"ति तार्तीयीक[1]द्वितीयपादोक्तन्यायेन **गुणयोगादेव नामानि** [2]**भवन्ति** तथा "पूर्ववद् वे"ति न्यायेन पश्चाद् वा भवन्त्यतस्तथोच्यत इत्यर्थः. तदेतदभिसन्धाय टिप्पण्यां **वस्तुत** इत्यादिफक्किकां व्याकुर्व**न्त्यप्राकट्ये**त्यादि. **अन्यपदार्थवदि**ति व्यतिरेके दृष्टान्तः. ननु यथाश्रुत एवार्थः कुतो नोच्यते, **नामरूप**मेव ब्रह्मेति भङ्ग्या किमिति व्याख्यायत इत्यत आहु**र्यथे**त्यादि. **अग्रिमग्रन्थेने**ति "सुतस्य त" एतद्व्याख्यानगतविचाररूपग्रन्थेन. सुबोधिन्यां **पितृनाम्ने**ति सर्वत्र प्रसिद्ध इति शेषः. **गुप्ततये**ति कंसभयात् पितृगोपनेन. गोपनस्य किं प्रयोजनमित्यत आहू **रोहिण्यामि**त्यादि. [3]**रोहिण्यामाविर्भूतस्य** वासुदेवांशस्यैव देवकीत आकृष्टे गर्भ **आवेश इति**हेतो**र्वै** इत्युक्तम्. तथा च[3] रोहिण्यामाविर्भूतो वासुदेवांशोत्र गुप्त इति तथानिरूपणमित्यर्थः. **वै** इत्यस्य प्रयोजनान्तरमाहु**र्यशोदाया** इत्यादि. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामुक्त**मत्रायमि**त्यादि; [4]**अत्रे**ति रोहिणीपुत्रत्वे. सुबोधिन्यां सन्देहबीजमाहु**र्यदी**त्यादि. **तस्मादि**ति भगवानजनत्वान्न यशोदाया न वा देवक्याः पुत्रः किन्त्वंशद्वारैव पुत्रस्तस्मात्. **योनिकृत** इत्यत्र **योनि**शब्देन माता बोद्धव्या. **बलरूपमि**त्याधिदैविकबलरूपमित्यर्थः॥१२॥

यदूनामित्यत्र भगवद्वचनादिति भगवद्वचनं विज्ञाय. **प्रकारान्तरेणे**ति– सम्यक् कर्षणं यस्यासौ सङ्कर्षण इत्यस्मात् प्रकारान्तरं सम्यक् कर्षणं येन रूपेण तेनेत्यर्थः. **अत एवे**ति सर्वत्रात्मबुद्धेरेव[5]. ननु तथापि भगवद्वचनविरुद्धव्युत्पत्ति-करणाद् गर्गस्य दोषः कुतो नाभूदित्यत आहु**रत** इत्यादि. तथापि किञ्चिद् भविष्य-

१. तृतीयाध्याय°. २. लुप्तम्. ३-३. लुप्तम्. ४. तत्र. ५. °बुद्धिमेव मनुते तथापि.

सर्वेषा**माकर्षण**माकारणं यस्मिन्निति **सङ्कर्षणमुशन्ति** वदन्ति. **उता**पि, अनेन **सङ्कर्षण**पदादर्थान्तरं मुख्यमस्तीति ज्ञापितम् ॥१३॥

चतुर्मूर्तेर्भगवतश्चत्वारि नामानि वक्तव्यानि. तत्र द्वयमाह द्वयं तु गुप्ततयानेकभेदभिन्नं वक्ष्यति चतुष्टयस्य च द्वये प्रवेशश्च. तत्रादौ कृष्णोयमिति नाम वक्तव्यम्. तत्र भगवन्नाम कथमस्येति शङ्कां वारयन् वर्णपरत्वेन सत्यं वदन्ना**हासन्निति**.

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१४॥

अय**मनुयुगं तनू**र्गृह्णाति, अन्यथा युगमेव न स्यात् – भगवान् जगच्चेति द्वयं **युग**शब्देनोच्यते, तत्रैकश्चेन्नाविर्भवेदेकमेव स्यात् न तु युगलं; धात्वर्थोपयोगो द्वयोरेव. अतो भगवतावश्यमनुयुगमवतारः कर्तव्यस्तत्र युगधर्मख्यापनार्थं रूपं च तथा कर्तव्यम्, अन्यथा लोकानां प्रतीतिर्नस्यात्. तदाह **शुक्लो रक्तस्तथा पीत** इति **त्रयो वर्णा अस्यासन्.** अग्रे च कलिर्भविष्यति तत **इदानीं कृष्णतां गतः** कृष्णवर्णं प्राप्तवानित्यर्थः. एनं कृष्णत्वं न प्राप्तवत् किन्त्वयमेव कृष्णत्वं प्राप्तः सर्वगतत्वात् सर्वसमन्वयाच्च. अनेन परब्रह्मतोक्तैव, "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयत" इति निर्वचनात्. यद्यपि सदैव कृष्णस्तथापि प्राकृतसत्त्वस्याप्यनाश्रयेषु स्वस्वरूपात्मकसत्त्वप्रकटनात् तादृशेष्वपि स्वरूपानन्ददानादिदानीमेव कृष्णत्वं प्रकटितवानित्यर्थः. एतद्गोपनाय शब्दच्छलेन वर्णक्रममुक्तवान्. तेनायं सङ्कर्षणरूपोप्युक्तः कालानुगुणत्वात्, पुरुषोत्तमरूपोप्युक्तः सर्वसमन्वयात् ॥१४॥

प्रकाशः

तीत्यतस्तृतीयां व्युत्पत्तिमाहु**र्यदूनां वे**त्यादि. **अनेने**त्यपिशब्दार्थ**कोत**पदकथनेन. तथा च न भगवदुक्तनिरुक्तिविरोध इत्यर्थः. एवं ज्येष्ठस्य बालस्य चत्वारि नामान्युक्तानि ॥१३॥

लेखः

यदूनामित्यत्र **अनेनेति**. **उते**तिकथनेन गर्भसङ्कर्षणरूप**मर्थान्तरं मुख्यमस्तीति** सूचितमित्यर्थः ॥१३॥

चतुष्टयस्य चेति– भगवति बले च व्यूह**चतुष्टयस्य** यथायथं **प्रवेश** इत्यर्थः. बले वासुदेवसङ्कर्षणयोर्भगवति चतुर्णामिति विभागः. **आसन्नि**त्यत्र युगमत्रास्तीति **युग**मिति व्युत्पत्त्या अर्शआद्यजन्तत्वेन कालवाचकत्वं **युग**पदस्य. **एनं कृष्णत्वं ने**ति. तथा सत्येतदवतारो रामोपि कृष्णवर्णः स्यादिति भावः ॥१४॥

प्रकाशः

आसन् वर्णा इत्यत्र.[1] ननु जन्मप्रकरणे भगवतश्चतुर्मूर्तेः प्राकट्याच्चत्वारि नामानि वक्तव्यानीति कथं द्वयमेवोच्यत इत्याशङ्क्य तत्र [2]प्रकारं वदन्तोऽवतारयन्ति **चतुर्मूर्तेरि**त्यादि. **प्रवेशश्चे**ति वक्ष्यतीतिशेषः. तथा च नामद्वयकथनेनैव सर्वाणि कथितानि भविष्यन्तीत्यर्थः. **तत्रादावि**ति नामोक्तिप्रस्तावे प्रथमं **वक्तव्यमि**ति ब्रह्मनामत्वाद् वक्तव्यम्. **आहे**ति गुप्ततया वदति. **प्रतीतिरि**ति तत्तद्युगत्वेन तत्तत्कालस्य प्रतीतिः. **कृष्णवर्णं प्राप्तवानि**ति कलिकाले प्रकटीभवंस्तद्देवता[3]रूपप्रतिफलनात्[4] प्राप्तवानित्यर्थः. कृष्णत्वप्राप्तौ हेतुद्वयमाहुः **सर्वगतत्वात् सर्वसमन्वयाच्चे**ति. **अनेने**ति हेतुद्वयेन. तत्र प्रमाणमाहुः **कृषिरि**त्यादि. तथा च [5]सद्रूपेण सर्वगतत्वादानन्दरूपेण[5] समन्वयाच्च तथेत्यर्थः. नन्वेवं चेद् भगवतः सदैव कृष्णत्वं प्राप्यत **इतीदानीं कृष्णतां गत** इति कथमुक्तवानित्यत आहु**र्यद्यपी**त्यादि. **तादृशेष्वि**ति तामसेष्वित्यर्थः. **एतद्गोपनाये**ति तद्गततामसत्वगोपनाय भगवति ब्रह्मत्वस्य च गोपनाय. एतेन ब्रह्मवैवर्ते नामकरणप्रस्तावे याः कृष्णशब्दस्य निरुक्तयो गर्गेणोक्ता– "ब्रह्मणो वाचकः कोयमृकारोऽनन्तवाचकः, शिवस्य वाचकः षश्च णकारो धर्मवाचकः, अकारो विष्णोर्वचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः, नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः, सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्तिस्वरूपकः, सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः, कृषिर्निर्वाणवचनो णकारो मोक्षवाचकः, अकारः दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः, कृषिर्निश्चेष्टवचनो णकारो भक्तिवाचकः, अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः, नाम्नां भगवतोनन्तकोटीनां स्मरणेन तु, तत् फलं लभते नूनं कृष्णेतिस्मरणान्नरः, यद्धि संस्मरणे पुंसो वचनाच्छ्रवणात् तथा, कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद् यत्स्मरणादिकाद्,[6] विष्णोर्नाम्नां च सर्वेषां सारात् सारं परात् परं, कृष्णेति सुन्दरं नाम मङ्गलं भक्तिदायकं,[7] ककारोच्चारणाद् भक्तकैवल्यं जन्ममृत्युहम्, ऋकाराद् दास्यमतुलं षकाराद् भक्तिनिश्चलां,[8] णकारात् सहवासं च तत्समं कालमेव च, तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः, ककारोच्चारणान्नन्द वेपन्ते यमकिङ्कराः, ऋकारोक्तेवशिष्टानि षकारात् पातकानि च, णकारोच्चारणाद् रोगा अकारात् मृत्युरेव च, ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरव" इति फलमुक्तम्. अत्र प्रथम-

---

१. °त्रावतरणे. २. °रान्तरम्. ३. लुप्तम्. ४. °फलनम्.
५-५. °रूपत्वेन. ६. °णादपि. ७. °दास्यदं, °दास्यकम्. ८. °लाः.

नामान्तरमाह **प्रागयमि**ति.

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिद् जातस्तवात्मजः ।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१५॥

क्वचिद् देशविशेषे **प्राक्** त्वद्गृहागमनात् पूर्वमेव **वसुदेवस्य** पुत्रो **जातो. वसुदेवस्ये**ति **तवे**ति च सामानाधिकरण्यादाधिदैविकस्य **वसुदेवस्य तवात्मजो जात**

प्रकाशः

निरुक्तौ ककारादयो विसर्गान्ताः वर्णाः हलन्रूपाः प्रत्येकमर्थवन्तः प्रातिपदिकानि ततः सुबुत्पत्तौ पश्चात् समाहारे द्वन्द्वस्तालव्यशकारस्य मूर्धन्यादेशः "पुरि शेत इति पुरुष" इतिवद् बोध्यः. "सर्वेषामि"ति श्लोकेन तस्य तात्पर्यार्थो विवृतो बोध्यः. अग्रे निरुक्तिद्वये च **कृषिरिती**कारो धात्वर्थमात्रे, तथा च कृष्सहितो णः कृष्णो 'निर्वाण' शब्दोऽविद्यानाशवचनो नकारान्ताद् ङस्[1], कृष्णः अः दाता कृष्णो हिताहितप्राप्तिपरिहारा क्रिया 'चेष्टा' तस्या[2] निर्गता [3]चेष्टायास्तादृशभक्तेः दातेत्यर्थस्तृतीये ज्ञेयः. एवमन्यास्वपि निरुक्तिषु बोध्यम्. तथात्राकथने यद् बीजं तदप्युक्तं ज्ञेयम्– अत्र ब्रह्मत्वगोपनेन स्नेहप्राधान्येनैव लीलानां करणात्, माहात्म्यस्य सर्वत्र[4] प्राकट्ये स्नेहांशस्य स्वल्पत्वापातात्, ब्रह्मवैवर्ते तु "कृष्णमाहात्म्यसंयुतमि"ति तत्पुराणलक्षणकथनेन तत्र माहात्म्यज्ञापनांशस्यैव भूयस्त्वादिति.[5] प्रसङ्गाच्छ्रीस्वामिनी-नामोच्चारणफलमपि तत्रैव गर्गोक्तमुच्यते "रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्, आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्, धकार[6] आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनं, श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः, रेफो हि निश्चलां भक्तिं[7] दास्यं कृष्णपदाम्बुजे,[8] सर्वेप्सितं[9] सदानन्दं सर्वसिद्धिदमीश्वरं, धकारः सहवासं च तत्तुल्यं कालमेव च, ददाति सार्ष्टिं सारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः सुखम्, आकारस्तेजसो राशिं दानं शक्तिं हरौ यथा, योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरेः स्मृतिं, प्रत्युक्तिस्मरणाद् [10]योगात् मोहजालं च किल्विषं, रोगशोकमृत्युभयमावेद्यं नात्र संशय" इति. अथ प्रकृतमनुसरामः. शब्दच्छलेन कथनस्य[11] फलान्तरमाहु**स्तेने**त्यादि **समन्वयादि**त्यन्तम्. **तेने**ति "पापकर्षणो[12] ह वा" इतिश्रौतनिर्वचनेनेत्यर्थः ॥१४॥

प्रागयमित्यत्र श्रीनन्दस्याधिदैविकवसुदेवत्वं यदुक्तं तत् कृष्णोपनिषदि श्रीनन्दस्य परमानन्दत्वश्रवणात् पूर्वमुपपादितं ज्ञेयम्. अत्रापि शब्दच्छलेन यत्

१. ङम्. २, ७. लुप्तम्. ३. °ष्टा यस्या. ४. सर्वमाहात्म्यप्राक°. ५. °स्त्वमिति.
६. °रोपयशो हानि°. ८. °पादाम्बुजे सदा. ९. °श्वरं. १०. °णायो°. ११. °ने. १२. °र्म°.

इत्युक्तं भवति. अनेन प्रद्युम्नताप्युक्ता, वसुदेवे शुद्धसत्त्व आविर्भावादनिरुद्धता च. वस्तुत**स्त्वयं तवात्मजः क्वचिद् वसुदेवस्य जात** इति तस्य बुद्धिः. **वासुदेव**त्वे हेतुः **श्रीमानि**ति, लक्ष्मीपतिरयमित्यर्थः. इमं गूढाभिप्राय**मभिज्ञा** एतज्ज्ञातारोभितोस्य स्वरूपं ये जानन्ति "यावान् यश्चास्मि यादृश" इति. अत एव **सम्य**क्त्वेन **प्रकर्षेण** च **चक्षते** ॥१५॥

एवं नामद्वयमुक्त्वा गुणयोगादयमनन्तनामेति सर्वशास्त्रेषु तानि नामानि स्वत एव ज्ञातव्यानीत्यतिदिशति **बहूनी**ति.

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१६॥

बहून्यसङ्ख्यातानि **नामानि रूपाणि च** – अन्यथा क्रियायां निवृत्तायां तन्नाम न स्यात् पाचकपाठकवत्, रूपं चेत् तादृशं भिन्नं भवति तदा क्वचिद् गुण-

प्रकाशः

सिद्धं तद् वदन्ति **वस्तुत** इत्यार**भ्यायमर्थ** इत्यन्तम्. **तस्य बुद्धिरि**ति नन्दस्य बुद्धिः. वास्तवमर्थं श्रीमत्पदविवरणेनाहुः **श्रीमानि**त्यादि. तेन वसूनां देवी वसुदेवी लक्ष्मीः सास्यास्तीति वसुदेवोर्शा[1]दिभ्योच्, स[2] एव स्वार्थेऽणि **वासुदेव** इति. तथा च श्रीनन्दस्य स्नेहाधिक्यस्थापनं वास्तवार्थकथनं फलमित्यर्थः. एतदेव विशदय**न्तीम**-**मि**त्यादि. विष्णुपुराणे षष्ठेंशे पञ्चमाध्याये **वासुदेव**शब्दोऽधिकरणव्युत्पत्त्या कर्तृव्युत्पत्त्या चेति द्वेधा निरुक्तः– "सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृत" इति. तथा चैवं पञ्चधा व्याचक्षत इत्यर्थः ॥१५॥

बहूनीत्यत्रातिदिशतीति बहूनां सत्ताकथनेन तेषां ज्ञातव्यत्वमतिदिशति. ननु नाम्नां गुणकर्माणि लक्षीकृत्य प्रवृत्तत्वात् ताभ्यामेव नामसत्तासिद्धेस्तत्कथन-प्रस्तावे रूपसत्ताकथनस्य किं प्रयोजनमित्यत आहु**रन्यथे**त्यादि. नामसत्ता यदि कर्मसत्ताप्रयुक्ता स्यात् तदा **क्रियायां निवृत्तायां** तत्प्रत्युक्तनामाप्याख्यातवत् **न स्याद्,** यदा हि क्रियां करोति तदा पचति पठति गच्छतीत्युच्यते न तु तदभावे तद्वत्. तर्हि रूपसद्भावे कथं तत्सत्तेत्यत आहुः **पाचके**त्यादि; सप्तम्यर्थे वतिः. **तादृशमि**ति क्रियाद्य[3]नुकूलम्. **गुणयोगादि**त्यत्र **गुण**पदं क्रियाया अप्युपलक्षकं, तथा च

लेखः

बहूनीत्यत्र अन्यथेति रूपाणां बहुत्वाभावे इत्यर्थः. **क्रियायाश्चे**ति बहुत्व-

१. अर्श आद्यचिरूपं. २. ततः स्वार्थाणि. ३. °द्यन°.

योगात् प्रवृत्तरूपे नामावश्यकत्वाद् गवादिवत्— सर्वदा भगवति. **च**कारान्नामरूपयोः क्रियायाश्च नित्यत्वं प्रतिपादयति **सन्ती**ति. तेन. भगवान् गोवर्धनमुद्धरन् सर्वदा वर्तत इति गोवर्धनोद्धरणधीरः क्रियानामभ्यां सहितो गोवर्द्धनोद्धरणरूपः सर्वदा वर्ततेऽद्यापि प्रतिकृत्यनुभवो भक्तानामतोनन्तान्येव रूपाणि नामानि चास्यैव कृष्णस्य भगवतः. तदाह **सुतस्य त** इति, अन्यथा तस्य भ्रमो भवेत्. वसुदेवस्य विद्यमानत्वात् न वाक्यं बाधितार्थम्. स्तुत्यर्थमननुरूपाण्यपि कदाचित् भवन्तीति

प्रकाशः

पचनपाठनक्रियानिवृत्तावपि क्वचित् क्रियायोगात् प्रवृत्तं पाचकपाठकेत्यादि नाम सर्वदा प्रयुज्यत एवं गुणयोगादपि 'पुष्पवन्तौ' 'वेगवानि'त्यादि. अतो रूपमेव नामसत्ताप्रयोजकमिति तदा यत् तत्प्रयोजनकात् सत्तेत्यर्थः. ननु तर्हि रूपसत्तैव वक्तव्या किं नामसत्ताकथनेनेत्यत आहू **रूप** इत्यादि. तथा च यदि नाम न स्यात् तदेदमेतदितिप्रतिनियताकारेण रूपं न प्रतीयेतातस्तज्ज्ञापनार्थं **रूपे नामावश्यकत्वाद् गवादिशब्दवत्** तदपि **सर्वदैव**. भवतीति समनियमज्ञापनार्थं नामसत्ताकथनमित्यर्थः. **च**कारप्रयोजनमाहु**श्चकारादि**त्यादि. सिद्धमाहु**स्तेने**त्यादि, **तेने**ति नामरूपयोर्नित्यसम्बन्धसाधनेन. अत्रायमर्थः— जैमिनीये दर्शने शब्दार्थयोर्नित्यः सम्बन्धः साधितः. शब्दस्य नित्यत्वं च तदेतद् व्यासैरप्यङ्गीक्रियते. अर्थस्थले तु जैमिनिना कृतिरूपस्यार्थस्य नित्यत्वं तेन च व्यक्तिराक्षिप्यत इत्यङ्गीक्रियते. तदेतद् व्यासचरणानां नाभिप्रेतं किन्तु वैदिकानामलौकिकानामर्थानां नित्यत्वात् तैः सहैव तादृशां शब्दानां सम्बन्धो लौकिकानां तु प्रवाहे(ण!) सह सम्बन्धः. इदं यथा तथा समन्वयतृतीयपादे "शब्द इतिचेदि"त्यादिषु त्रिषु सूत्रेषु निपुणतरमुपपादितं तत् सर्वमभिसन्धायात्रैवं सिद्धमुक्तं ज्ञेयम्. अत्र भक्तानुभवमपि प्रमाणय**न्त्यद्यापी**त्यादि. **विद्यमानत्वादि**त्याधिदैविकत्वेन श्रीनन्दे विद्यमानत्वात्. **अननुरूपाणी**ति "गो अश्वा एव पशव" इतिवत् प्रशंसारूपगौण्या प्रयुक्तानि. **अलौकिकानामि**ति गुणानां

लेखः

मितिशेषः. **गोवर्धनोद्धरणरूप** इति गोवर्धनस्योद्धरणं येन तादृशं तावत्प्रमाणकं रूपं यस्येति. अनेन रूपमुक्तम्. **अन्यथे**ति **ते सुतस्ये**ति कथनाभावे रूपबहुत्वमवतारबहुत्वेन जानीयादित्यर्थः. ननु भगवतो व्यापकत्वाद् रूपबहुत्वं बाधितमित्याशङ्क्य समाधानामाहुः **वसुदेवस्ये**ति, शुद्धसत्त्वं पृथक्कृत्य तत्र तत्र स्वयं तिष्ठतीति घटमठाद्याकाशवद् बहुत्वमित्यर्थः. अंशावतारेषु सत्त्वं मत्स्यादिरूपं

तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **गुणकर्मानुरूपाणी**ति. गुणानामौदार्यादीनां कर्मणां कालीयदमनादीनां चालौकिकानां नामान्यप्यलौकिकानि भवन्तीति **गुणकर्मानुरूपाणि तानि रूपाणि नामानि चा**लौकिकत्वे**नाहमे**व **वेद, नो जनाः**, व्यवहरन्त्युच्चारयन्ति च तथापि विचाराभावान्न जानन्ति, यतो **जना** जननादिभावधर्मयुक्ताः क्लिष्टा इत्यर्थः. विचारस्तु— क्रियायामनित्यतायां रूपे वा कालादिपरिणामेन प्रतिक्षणमन्यभावे तत्सम्बन्धेन प्राप्तं नामान्यदान्यस्मिन् वा सम्बन्धरहितत्वाद् वाचकमेव न भवेत्. ततो निरर्थकानि नामानि न फलन्ति, नाप्यन्तःकरणं शोधयन्ति. अतः स्वरूपाज्ञानेन केवलमुच्चारितानि रूपसम्बन्धाभावात् स्वतोप्यलौकिकत्वाज्ञानादग्न्युच्चारणे दाहाभाववद् भगवन्नामोच्चारणेपि न प्रपञ्चनिवृत्तिः. नामानि च वर्णात्मकत्वेनैव

प्रकाशः

कर्मणां च. **गुणकर्मानुरूपाणी**ति[1]— गुणाश्च कर्माणि च गुणकर्माणि तान्यनु लक्षीकृत्येत्यत आहु**र्व्यवहरन्ती**त्यादि. को वा विचारो यदभावान्न जानन्तीत्याकाङ्क्षायां तं स्फुटीकुर्वन्ति **विचारस्त्वि**त्यादिना. **रूप** इति रूपाधिकरणके. **तत्सम्बन्धेने**त्यनित्ययोः क्रियारूपयोः सम्बन्धेन. **अन्यदे**त्यादि. शब्दार्थयोरौत्पत्तिकसम्बन्धात् कालान्तरे क्रियाया अभावेन क्षणान्तरे रूपस्याप्यभावेन तथा. **तत** इत्यवाचकत्वात्. ननु नाम्नां तादृग्रूपसम्बन्धत्वे [2]रूपस्यापि श्रावणे शब्देन रूपसम्बन्धफलभूता प्रपञ्चनिवृत्तिरपि सर्वेषां स्यात्, सा तु न दृश्यत इति पूर्वोक्तं न साधीय इत्यत आहु**र्यत** इत्यादि. तथा च ज्ञानाभावेनोच्चारणेऽलौकिकस्य नाम्नोऽप्राकट्ये सति लौकिकमेव नाम लौकिकेनार्थेन सह वाच्यवाचकभावाख्येनोदासीनेन स्वरूपसम्बन्धेनैव सम्बद्धं सदर्थं नोपस्थापयतीत्यग्निशब्दोच्चारणे दाहाभाववद् भगवन्नामोच्चारणमपि प्रपञ्चनिवृत्त्या-

लेखः

कृत्वा तद्व्यवहित एव स्वयं तिष्ठति, अत्र त्वास्तरणमिव तिष्ठति न तु तद्व्यवहितो लीलां करोतीति विभेदः. **अलौकिकानामि**ति, पूर्वोक्तयोर्विशेषणमिदम्; एतादृशानां गुणानां कर्मणां च सम्बन्धीनि तद्योगात् प्रवृत्तानि नामानि **अपि**शब्दाद् रूपाणि चालौकिकान्येव भवन्तीत्यर्थः. विचारे **फलन्ती**ति, नामप्रकरणारम्भे आद्यश्लोकाभासे प्रयोजनद्वयकथनाद् भगवदासक्तिं जनयन्तीत्यर्थः. **अत** इति, यतो निरर्थकानि न फलन्त्य**तः स्वरूपाज्ञाने केवलमुच्चारितानि; न फलन्ती**ति पूर्वस्यैवानुवृत्तिः, न

---

१. कर्माणीति. २. लुप्तम्.

ज्ञातानि. पुरुषं जगच्च नामयन्त्युच्चारयितुरग्रे वश्यतया स्थापयन्तीति **नामानि** रूपवत् नामरूपस्यापि भगवतो रूपाणि. यथा भगवद्रूपं प्राकृततुल्यं प्रतीयते ग्राहकदोषादेवं नामान्यपि लौकिकानां ग्राहकदोषादेव लौकिकवर्णयुक्तानीव प्रतीयन्ते. वस्तुतस्त्वखण्डान्येव. तथा ज्ञानपूर्वकं शुद्धभावेन वस्तुतत्त्वे ज्ञात एव, तद्बुद्ध्योच्चारितानि न तु लोकसिद्धानुवादकरूपाणि, नामानि सर्वपुरुषार्थानि फलन्ति नान्यथेति सिद्धान्तोतो लोकन्यायेनोच्चारयितरि फलाभावे दोषसम्बन्धे वा न काप्यनुपपत्तिः. एतस्यैव तारतम्येन चित्तशुद्ध्यतिशयो नाम्ना भवति, अन्यथा त्वावृत्तं स्वाधिदैविकसहितमेवेति कदाचित् फलति यद्याधिदैविकोद्बोधपर्यन्तमावर्तेत. कालादीनां तु नाममाहात्म्यज्ञानादुच्चारयितुः परित्यागः. अनुगुणत्वात् सारूप्येण

प्रकाशः

दिरूपं फलं न जनयतीत्यतो न दृश्यतेऽतो वस्तुभेदात् फलाभाव इति न दोष इत्यर्थः. ज्ञातसम्बन्धानां नाम्नां कथमेवं सामर्थ्यमित्याकाङ्क्षायां 'नाम'पदनिरुक्त्या तत् स्फुटीकुर्वन्ति **नामानी**त्यादि. "स एव जीव" इत्यत्र शब्दब्रह्मणो **वर्णात्मकत्वेनैव** निरूपणात् तदात्मकत्वेन **ज्ञातानि नामानि पुरुषं जगच्च नामयन्ति** "नामभिर्दामभिः सितमि"तिश्रुत्या यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाश्च दामभिर्वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा हरन्ति बलिमीशितुरि"त्यादिस्मृतिभिस्तथा कुर्वन्ति. तथा च 'दाम'रूपत्वात् तथा सामर्थ्यमिति ज्ञात्वोच्चारणे भगवन्तमपि सन्निधापयन्तीत्यर्थः. अत एव "मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदे"त्यादिभगवद्वाक्यमपि सङ्गच्छते. सामर्थ्यमुक्त्वा स्वरूपमाहुर्**नामानि रूपवदि**त्यादि. तथा च यथाऽर्थस्वरूपस्य भगवतो रूपं तथैतानि नामरूपस्येत्यर्थः. अत एव लोकेपि "रामशब्दस्य रूपाणि गृहाण- भूधातो रूपाणि चे"ति व्यवहारः. एवं सामान्यं तेषां स्वरूपमुक्त्वा फलोपधायकं वैशेषिकं रूपमाहुर्**यथे**त्यादि **सिद्धान्त** इत्यन्तम्. **अखण्डानी**ति "पदे वर्णा न विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न चे"तिन्यायेन तादृशालौकिकशब्दात्मकानि. सिद्धमाहु**रत** इत्यादि. **दोषसम्बन्धे वा न काप्यनुपपत्तिरि**ति– दोषानिवृत्तौ वा न भगवन्नामादिसामर्थ्या-

लेखः

फलन्तीत्यर्थः. **वर्णात्मकत्वेनैवे**ति **एव**कारव्यावर्त्यं नामस्वरूपमाहुः **पुरुषमि**त्या-रभ्या**खण्डान्येवे**त्यन्तेन. **ग्राहकदोषादि**ति इन्द्रियदोषादित्यर्थः. **सर्वपुरुषार्थानी**ति, सर्वे पुरुषार्था येन तादृशानि नामानीत्यर्थः. **आवृत्तमि**ति, आवृत्तं सत् प्रमेयबलात्

साधकमिति लौकिकस्यापि प्रवर्तनापरत्वेन मोक्षदातृत्वमित्यजामिलोपाख्यानस्यापि न वैयर्थ्यम्. अन्यथा तत एव वैकुण्ठे गमनं स्यात्. अत उपायपरत्वमेव लौकिकस्य.

टिप्पणी

तान्यहं वेदेत्यस्य विवृतौ, **सारूप्येण साधकमि**त्यादि. ननु साङ्केत्यादिना भगवन्नामोच्चारणस्यापि फलसाधकत्वं श्रूयत इत्याशङ्क्य तत्तात्पर्यमुच्यते. सङ्केतिते

प्रकाशः

भावरूपानुपपत्तिरित्यर्थः. एवं दोषं परिहृत्येदानीं नामभिः फलजनने प्रकारमाहु**रेतस्यैवे**त्यादि, नामादिस्वस्वरूपज्ञानभक्त्यादेरित्यर्थः. नन्वेवंज्ञानाभावेपि भगवदीयत्वमात्रज्ञानवतामपि सत् फलं दृश्यते सहस्रनामादीनां फलं चोच्यते तत् कथं युज्यत इत्यत आहु**रन्यथे**त्यादि. पूर्णचित्तशुद्ध्यभावे तु भगवदीयत्वज्ञानमात्रे**णावृत्तं** नाम **स्वस्याधिदैविकसहितमि**ति नामाधिदैविकं यदखण्डशब्दरूपं नाम तत्सहितमे**वेति** हेतोः **कदाचित् फलति** यदेवं स्यात्. एवम्भावस्तु दैन्ये सति भगवत्कृपया, अतस्तादृशस्थले यत् फलति तदाधिदैविकमाहात्म्यादेव न तूच्चार्यमाणस्वरूपमाहात्म्यात्. यदि तादृशस्थले स्वमहिम्ना फलेदावृत्तिं विना तदैव फलेत्, तत् तु नास्ति, अत आधिदैविकमहिम्नैव फलतीति निश्चयः. ननु तर्हि "कृते यद् ध्यायतो यज्ञैस्त्रेतायां यजतो मखैः द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद् हरिकीर्तनादि"ति "सकृदुच्चारयेद् यस्तु नारायणमतन्द्रितः शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥ कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणीधराच्युत शङ्खचक्रपाणे भवशरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट इव त(दू!)-रेण तानपापानि"-त्यादिश्रीभागवतपाद्मवैष्णववाक्येषु नामकीर्तनादिमात्रेण कालादिभयनिवृत्तिकथनस्य कथमपि न गन्ध इत्यत आहुः **कालादीनामि**त्यादि. तथा च तत्र कालादीनां माहात्म्यज्ञानवत्त्वात् स्वत एव निवृत्तिर्न तु तत्र नाम्नः कश्चिद् व्यापारो, यथा राजपुरुषदर्शनेन प्राकृतानाम्, अतो व्यापाराभावेपि फलनान्न विरोध इति. "साङ्केत्यं पारिहास्यं वे" तिवाक्यविरोधमजामिलोपाख्यानवैयर्थ्यं च परिहरन्ति **सारूप्ये**त्यादि. तदेतट्टिप्पण्यामुपपाद्य विवृण्वन्ति **नन्वि**त्यादि. "साङ्केत्यं पारिहास्यं वे"ति वाक्यं श्रुत्वा वा साङ्केत्यादिरूपेण नामोच्चारणे फलवत्त्वं श्रूयते; तथा च

लेखः

कदाचित् स्वाधिदैविकसहितं भवत्येवेत्यर्थः. **लौकिकस्यापी**ति नाम्न इत्यर्थः. **अन्यथे**ति स्वातन्त्र्येण मोक्षदातृत्वे इत्यर्थः ॥१६॥

तस्मात् सुष्ठूक्तं **तान्यहं वेद नो जना** इति. अनेनानन्तान्येव नामान्युक्तान्युपास्यरूपाणि चान्त:करणशोधकानि, तदवस्थां भगवद्रूपस्य स्मृत्वा तन्नाम ग्राह्यमिति, अन्यथा नामप्रसङ्गे रूपकथनं व्यर्थं स्यात् ॥१६॥

ज्योति:शास्त्राभिज्ञत्वाद् रूपनामज्ञानार्थं भगवतो गुणकर्माण्याह चतुर्भिस्तत्रादौ द्वयेन कर्माण्याहै**ष व** इति.

टिप्पणी

पुरुषे सदानन्दत्वादिधर्मबाधेन भगवन्नाम्नस्तत्रावाचकत्वाल्लौकिक एव शब्दस्तत्समानाकारस्तद्वाचक: स इति मन्तव्यम्. तथा च सारूप्येणापि मोचकमिति माहात्म्यज्ञापनपराण्यप्रवर्तमानस्य च प्रवर्तनपराण्युपाख्यानानीत्यर्थ:॥१६॥

एष व: श्रेय आधास्यदित्यत्र, **ज्योति:शास्त्राभिज्ञत्वं** भाविज्ञाने लोकप्रती-

प्रकाश:

तेनापि नाम्नां फलवत्त्वे किमेतत्प्रयासेनेत्याशङ्क्य साङ्केत्यवाक्यस्य तात्पर्यमुच्यत इत्यर्थ:. तात्पर्यमाहु: **सङ्केतित** इत्यादि. 'कृष्ण' इतिपदस्य सदानन्दत्वादिधर्मवानिति योर्थस्तस्य सङ्केतितपुरुषे अभावेन तत्र भगवन्नाम्नोऽवाचकत्वात् तत्र सङ्केतितो लौकिक: शब्द: भगवन्नामसमानाकार: सङ्केतितपुरुषवाचक इति मन्तव्यम्. तथा च सारूप्येणापि भगवन्नाम मोचकमित्यादिज्ञापनार्थानि नानापुराणोक्तानि नाममाहात्म्योपाख्यानानीति नाजामिलोपाख्यानस्य वैयर्थ्यमित्यर्थ:. तेनात्रेदं सिद्धं — यस्य गुरौ भगवदभेदबुद्धिस्तथैव च गुरुभक्ति: सङ्गराहित्यं च तस्य गुर्वनुग्रहेण भगवन्नाम्नां तद्विषयाणां रूपाणां च यथावज्ज्ञानं; ततो भगवद्रूपवन्नामोक्तां रूपावस्थां स्मृत्वा यदा भगवन्नाम गृह्णाति तथा शीघ्रं तदैव तत् फलति. यदा त्वेवं प्रणाड्यभावस्तदा तु तन्नामावृत्तं सद् यदाधिदैविकं नामोद्बोधयति तदविलम्बेन फलति. यदा त्वावृत्त्यमानेपि नाम्नि नाधिदैविकोद्बोधपर्यन्ततास्य चान्तरा मृत्यूपस्थितिस्तदा नामव्यापाराभावेपि कालयमदूता स्वत एव निवर्तन्ते; ततो भगवदिच्छानुसारेण फलम्. यस्तु साङ्केत्यादिवाक्यं श्रुत्वा माहात्म्यं जानन्नुच्चारयति तस्यापि तथैव फलम्. यस्तु वाक्यमश्रुत्वा सङ्केतादिरूपेणोच्चारयति तस्यापि बहुकालविलम्बेन पापनिवृत्तिर्भवति; तन्निवृत्त्याऽन्यशेषाणि पापानि निवर्तन्ते "कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसङ्कीर्तनाच्च म" इतिवाक्याद् बोध्यम् ॥१६॥

एष व इत्यत्राभासे **ज्योति:शास्त्राभिज्ञत्वादि**ति गर्गविशेषणं यदुक्तं तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**र्ज्योतिरि**त्यादि. एवं कथनेऽपुष्टार्थत्वमित्यरुच्या पक्षान्तरमाहु-

एष व: श्रेय आधास्यद्[1] गोपगोकुलनन्दन: ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१७॥

एष भगवान् परिदृश्यमानो **वो** युष्मान् **श्रेय आधास्यद्** धृतवान् पोषितवान् वा. पूतनासुपय:पानादिकं यद् भगवता कृतं तद् भवतां **श्रेयो**निमित्तम्. अविद्या हि पञ्चपर्वा सा नाशिता शकट: संसारात्मको भञ्जितोऽविद्याकार्यरूपो मोहात्मकश्च तृणावर्तो मारित: —एवं त्रिदोषदूरीकरणेन ज्ञानोत्पादनेन **चासमन्ताच्छ्रेयोधास्यत्**. स्वयं सर्वपुरुषार्थरूपोपि दोषवशाद् ग्रहीतुमन्यैर्न शक्यत इति दोषदूरीकरणद्वारा श्रेयोधारकत्वम्. किञ्च न केवलं सकृद् दत्तवान् किन्तु धृत्वैव तिष्ठति. अतोऽग्रेपि

टिप्पणी

तिमनुसृत्य हेतुत्वेनोक्तम्, भगवद्धर्माणां तच्छास्त्रागम्यत्वात् "न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यध" इति वाक्यात्.[2] भाविरूपनामज्ञानहेतुत्वेन[3] वा तदुक्तम्.

स्वयं पुरुषार्थरूपोपीति. ननु धार्यधारकयोर्भेदाद् भगवदतिरिक्तस्य श्रेयस्त्वं भक्तिमार्गविरुद्धमित्यत आहु: **स्वनामि**त्यादि. एवं सति श्रेयोधारकत्वं नन्दादीनामेव तत्प्रतिबन्धकनिवर्तकत्वेन भगवत्युपचर्यत इत्यर्थ:. तथा च नन्दादीनां भक्तत्वेन सर्वपुरुषार्थरूपस्य भगवतस्तत्राविर्भूय विराजमानत्वादन्यस्य श्रेयस्त्वाभावेपि तद्धारकत्वमुक्ताभिप्रायेण भगवति न विरुध्यते. यद्यपि भगवति विद्यमाने दोषाणां प्रतिबन्धकत्वमेव न सम्भवति, क्व तन्निवर्तकत्वेनोपचार:, तथापि लीलायां निरोधसिद्ध्यर्थमस्मत्प्रभुणा लोकरीतिरेव स्वीकृता यतस्तदर्थं स्वरूपमपि तथा प्रदर्शितवान्. तदुपपादितं "बभूव प्राकृत: शिशुरि"त्यत्र. लोके च यथा यथा प्रतिबन्धबाहुल्यं तन्निवृत्त्या पुन: फलानुभव:, तथा तथा दुरापत्वज्ञानेन फलेप्यासक्तिरधिकतरा भवतीति दृश्यते. अतो नन्दादीनामासक्तिसिद्ध्यर्थं स्वेच्छयैव दोषरूपान् पूतनादीन् प्रतिबन्धकत्वेनोद्भाव्य तन्निराकरणद्वारा स्वयमेव तच्छ्रेयोरूप: फलतीति मनस्यभिसंधाय साधूक्तं **स्वयमि**त्यादि तातचरणै: ॥१७॥

प्रकाश:

भावीत्याद्यन्येषां यत् नामरूपज्ञानं भावि तादृशभाविज्ञानहेतुत्वेनेत्यर्थ:. विवृतौ **वो युष्मानि**त्यादि. **व** इत्यस्य द्वितीयाबहुवचनत्व **आधास्यादि**त्यस्य **धृतवानि**त्यर्थ:;

लेख:

एष व इत्यत्र **वो युष्मानि**ति लक्षीकृत्येत्यर्थ:. **आङुपसर्गस्यार्थमाहु: किञ्चे-**

---

१. आदास्यदित्यपि पाठ:. २. "भक्त्या मामभिजानाती"ति अधिकं क्वचित्. ३. ज्ञाने हेतुत्वेन मू. पा.

दास्यति, यावता च भवद्भिः परमश्रेयो गृहितो (गृहीतं) भविष्यति तावत् करिष्यतीत्याकारः. भूते लृङ्. तेन सिद्धं भवतां **श्रेय** इत्युक्तम्. अनेन भवद्रक्षार्थं बहूनि कर्माणि करिष्यतीति कर्माण्युक्तानि. एवं दोषाभावार्थं करिष्यमाणानि कृतानि कर्माणि चोक्त्वा परमानन्ददायकान्यपि कर्माणि करिष्यतीत्याह **गोपगोकुलनन्दन** इति, गोपान् गोकुलं च नन्दयतीति. **गोप**शब्देन गोप्योपि गृहीताः, **गोकुल**शब्देन तत्सम्बन्धिनश्च यावन्तस्तदुपजीवकाः. उभयविधानप्यानन्दयिष्यतीति क्रीडातत्प्रतिघातवधश्चोक्तः. ननु त्वया कंसो ज्ञात्वा मारयिष्यतीति भयं जनितं तत्र का गतिरिति चेत् तत्राह**अनेने**ति, **अनेन** भगवता **सर्वाण्येव दुर्गाणि** सङ्कटस्थानानि कंसोपद्रवरूपाणि सर्वाणि **यूयमञ्जसा**नायासेन[१] **सर्व** एव **तरिष्यथ**. अतः कंसादिभयमपि न कर्तव्यम्. इदं तु वसुदेवस्यास्माकं चोपद्रवो भविष्यतीत्युक्तं न तु भवतामिति भावः॥१७॥

एवं सर्वदुःखनिवृत्तिपूर्वकसर्वपुरुषार्थसिद्धिरस्माद् भवतामित्युक्तम्. अतोस्य चिन्ता नास्तीत्युक्तमेव. मोक्षोप्यस्माद् भविष्यतीति वक्तुं तदर्थमिन्द्रियजयमपि वक्तुं पूर्वोक्तेपि प्रमाणमाह **पुरानेने**ति.

प्रकाशः

षष्ठीबहुवचनत्वे **पोषितवानि**त्यर्थो ज्ञेयः. **भूते लृङ्** इति, "भूते चे"तिसूत्राद्धेतुमद्भावादिष्वर्थेषु लृङित्यर्थः. **इदमि**ति भयजननम् ॥१७॥

लेखः

त्यादिना. श्रेयोरूपस्य स्वरूपस्य धारणं पूर्वमेव प्राकट्यसमये सिद्धमित्याशयेनाहुः **भूते लृङि**ति, "भूते चे"ति सूत्रादिति भावः. **अनेने**ति **आङुपसर्गेणे**त्यर्थः. **दोषाभावार्थमि**ति श्रेयोग्रहणप्रतिबन्धनिवृत्त्यर्थमित्यर्थः. **इदं तु वसुदेवस्ये**ति. तथा च "अपि हन्तागताशङ्क" इत्यत्र वसुदेवमस्मांश्च हन्तेत्यर्थो ज्ञेयः. "यदूनामहमाचार्य" इत्यस्य व्याख्याने "द्रव्यविरोधो भवती"त्यत्रापि द्रव्यस्य विरोधस्तत्कृतेऽन्येषां हननमित्यर्थो ज्ञेयः ॥१७॥

योजना

पुरानेनेत्यस्याभासे **मोक्षोप्यस्माद् भविष्यतीति वक्तुं तदर्थमिन्द्रियजयमपि वक्तुमि**ति. **जिग्युर्दस्यूनि**त्यत्र **दस्यु**पदेन इन्द्रियाणामुक्तत्वात् "यस्यामिमे षण् नरदेव दस्यव" इति भवाटव्याः निरूपणे उक्तत्वात् ॥१८॥

---

१. प्रथमान्तोपि पाठः.

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजकेऽरक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥१८॥

हे व्रजपते, अनेन भगवता कृत्वा **दस्युपीडिता** अपि **साधवः समेधिताः** सन्तो **दस्यून् जिग्युः** क्षुद्रोपद्रवोपि चोरवत् कंसादिभिः कर्तुं न शक्यो यतोस्य कुशलं स्वभावकृतिरेव तादृशी. **व्रजपत** इति सम्बोधनं सर्वस्यापि व्रजस्य यथासुखं विहरणयुक्तस्य सर्वतः कुशलं भविष्यतीति ज्ञापयति. तेन यत्र क्वापि स्थातव्यं न चिन्तेति भावः. **पुरे**तिवचनात् सदातनोयं न तु त्वद्गृहेऽधुनावतीर्ण इति ज्ञापितम्. **अनेने**ति न तस्यावतारः किन्त्वयमेव. सम्बोधनं तु ज्ञानाभावज्ञापकम्. **दस्यवो** रावणादयः, 'त्रसद्दस्यु'पदे तथा निर्वचनस्योक्तत्वात् "यस्यामिमे षण् नरदेवदस्यव" इति भवाटव्यामिन्द्रियाणि चोक्तानि. कंसोपि तृणावर्तादिप्रेषणाद् **दस्युः**. नन्वनेन दस्यवो मारिता इत्यत्र किं प्रमाणम्? तत्राह **साधव** इति, यद्यन्तःकरणस्थितचोरान् बहिःस्थितांश्च न मारयेत् तदा **साधव** एव न भवेयुः. विशेषाकारेणापि मारयतीत्याह **दस्युपीडिता** इति, दस्युभिरुपहृतधनाः पुनः **समेधितास्**तथैव कृतास्ततोप्यधिकाश्च. ततो **जिग्युः** स्वयमेव तान् जितवन्तः. अतो भवन्तो**प्यनेन समेधिताः** स्वयमेव **दस्यून्** जेष्यन्ति. एवं भगवतस्त्रिविधानि कर्माणि निरूपितानि सर्वदोषनाशकानि सर्वसुखजनकानि सर्वसामर्थ्यजनकानीति. ननु कथं साधूनां दुष्टोपद्रवः पूर्वं राज्ञां विद्यमानत्वात् तत्राह**राजक** इति– न विद्यन्ते राजानो यस्मिन् देशे; परशुरामेण सर्वे हताः कालेन च विवेकादयोत ए**वारक्ष्यमाणा** रक्षकापेक्षामपि न कृतवन्तः. अतः कंसापेक्षां परित्यज्य स्वतन्त्रतया राजवत् स्थातव्यमित्युपदेशोप्युक्तः॥१८॥

एवं कर्माण्युक्त्वा गुणानाह **य एतस्मिन्नि**ति.

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥१९॥

गुणास्त्वनुभावरूपाः क्रिया नापेक्षन्ते. **ये महाभागा एतस्मिन्** भगवति **प्रीतिं** स्नेहं **कुर्वन्ति तानरयो नाभिभवन्ति.** स्वत एव तर्हि सर्व एव कथं प्रीतिं न कुर्वन्तीत्याशङ्क्य भगवत्प्रीतौ स्वरूपयोग्यता सहकारियोग्यता चापेक्ष्यत इत्याह **मानवा**– मनोर्जाताः सद्धर्मरूपा धर्मार्थ एवोत्पन्ना इति स्वरूपयोग्यानां "मन्वन्तराणि सद्धर्म"

लेखः

य एतस्मिन्नित्यत्र गुणकर्मणोर्भेदमाहुः **गुणास्त्वि**ति. **पटवदि**ति; यथा

इति वाक्यात्. **महाभागा** इति– "जन्मान्तरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायत" इति वाक्यात् परमभाग्येनैव प्रीतिर्जायते. **प्रीतिमि**ति, सर्वदैकविधप्रीतिकरणार्थमेकवचनं पटवद् वृद्ध्यर्थं वा खण्डशः करणाभावार्थं वा. हेतुस्तूक्त एव. **य** इतिप्रसिद्धतया तेषां निर्देशः. "भवन्तस्त" इति प्रतिनिर्देशार्थः. **एतान्** परिदृश्यमानान् गोकुलस्थान्. नन्वन्तर्यामिप्रेरणेनैव ते न बाधन्ते, अवश्यं चैतद् वक्तव्यं, भक्तिस्त्वन्तर्यामिप्रेरणार्था, ततो नानेन प्रकारेण भगवद्गुणा उक्ता भविष्यन्तीत्याशङ्क्याह **विष्णुपक्षानिवासुरा** इति– विष्णुः पक्षे पक्षपाते येषां; विष्णुरेषां रक्षक इति येषु ज्ञानमतः स्वकृतिवैयर्थ्यशङ्कयासुरा न बाधन्ते. अन्तर्यामी तेषां नान्यथाप्रेरक, आसुराणामासुरभावेनैव प्रेरणनियमात्. अतो विशेषाकारेणैव पालयिष्यतीति सर्वजनीनत्वात्. अम्बरीषादिचरित्रे तथा प्रसिद्धेः. अस्य प्रीतेरेषोनुभावः; गुणास्त एव ये सानुभावाः परम्परयाप्यनुभावं सम्पादयन्ति. अनेन साक्षाद्गुणा अनन्ता एव वक्तुमशक्या इति सूचितम् ॥१९॥

एवं गुणे प्रदर्शनमात्रमुक्त्वा विशेषाकारेण वदन्नुपसंहारमिषेण रक्षामुपदिशति **तस्मादि**ति.

तस्मात् नन्दात्मजोयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥२०॥

यस्मादयं महानुभावः पूर्वोक्तकर्मालौकिक**स्तस्मात्** हे **नन्द** सर्वानन्दकारिन्, त्वन्नामसार्थकत्वाय चैनं पालयेति भावः. **अयं ते** कुमारो **गुणैः** कृत्वा **नारायणसमो**

प्रकाशः

य एतस्मिन्नित्यत्र "जन्मान्तरसहस्रेष्वि"तिवाक्यं पाण्डवगीतास्थं बोध्यम्. **उक्त** इति **महाभाग-मानव**पदाभ्यामुक्तः. **येषु ज्ञानमि**ति येष्वसुराणां ज्ञानम् ॥१९॥

लेखः

पटस्तन्तुमेलनक्रमेण वर्धमान एको भवति तथा सर्वेन्द्रियैः प्रीतिमेलनक्रमेण वर्धमाना प्रीतिरेकैव भवतीत्यर्थः. **खण्डश** इति सर्वेन्द्रियैरपि तत्रैव प्रीतिरित्यर्थः. प्रीतेर्गुणत्वं व्युत्पादयन्ति **गुणास्त एवे**ति. **परम्परयापी**ति प्रीतिं नाशयितुं न शक्नुवन्तीति प्रीतेः साक्षादनुभावः, प्रीत्याश्रयमपि नाभिभवन्तीति परम्परानुभावः. **साक्षाद्गुणा** इति भगवति स्थिता ऐश्वर्यादय इत्यर्थः॥१९॥

तस्मादित्यत्र. यस्मादयं कुमारो गुणैर्नारायणसमत्वात् **महानुभावस्तस्मा**-द्धेतोः **नन्देति नामसार्थकत्वाय** च हेतवे, **एनं पालयेत्यर्थो यस्मादित्यारभ्य भाव**

नारायणस्य समः. त्रिविधोपि नारायणोऽक्षरं पुरुषोन्तर्यामी च गुणैरेव कृत्वा तत्समः. कर्माणि त्वधिकानि, **अनुभावश्च**. नराज्जातानीति पक्षे यावन्तो जीवगणाः सृष्टावुत्पन्नास्ते सर्वे भगवद्गुणख्यापकास्तावद्गुणप्रसिद्ध्यै तावद्रूपो जात इति. द्वितीयपुरुषस्य तु विशेषेण स्वसम्बन्धयोग्यजीवराशिपरिग्रहात् स्वतुल्यतामापादयितुं

टिप्पणी

नारायणसमो गुणैरित्यत्र. उपमेये तत्समाना धर्मा ये त उच्यन्ते. एतत्सृष्टि-विलक्षणा हि लीलासृष्टिरियम्, यस्यामुत्पादितास्तु जीवगणा दशरससम्बन्धिनो यावन्तो भावा भगवद्विषयकास्तद्वन्त इति तद्भावपोषार्थं भगवतापि तथैव स्वनिष्ठा गुणाः प्रकटीक्रियन्त इति **भगवद्गुणख्यापक**त्वं तेषाम्. न च मन्तव्यमेतादृशा एव केचन जीवाः सन्ति येषामेतादृक्सामर्थ्यं सहजमस्तीति, यतस्तद्रूपः स्वयमेव प्रकटो जात इति ज्ञापनायाहुः **तावद्गुणप्रसिद्ध्या** इत्यादि. एतेन प्राकृतानां नैतद्रसप्राप्ति-रिति ज्ञापितं भवति. **द्वितीये**त्यादि. अत्रैतादृशो व्रजसुन्दरीपरिग्रह एव; रसाधिक्ये

प्रकाशः

तस्मादित्यत्र **नामसार्थकत्वाय** चेति **च**कारात् पूर्वोक्तफलप्राप्तये च. नारायणशब्दस्त्रेधा निरुक्तस्तृतीयस्कन्ध ऊनविंशाध्यायसमाप्तौ सुबोधिन्याम्. तत्राक्षरपक्षे "नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः" तान्ययनं स्थानं यस्येति, पुरुषपक्ष "आपो नारा" इति, तृतीयपक्षे नराणां समूहो नारं तदयनं यस्येति. इयं च निरुक्तिरादिपुराणे "सर्वजीवाश्रयो वे"त्यनेनोक्ताः. तत्राद्ये पक्षे **यावन्तो जीवगणा सृष्टावुत्पन्नास्ते** तथेत्यर्थः. कथं ख्यापका इत्याकाङ्क्षायां यैः ख्यापकास्तान् धर्मांष्टिप्पण्यां प्रतिज्ञाय विवृण्व**न्त्युपमेय** इत्यादि. **एतत्सृष्टि-विलक्षणे**त्यक्षरोत्पन्नसाधारणसृष्ट्युत्पन्नानां जीवानाम्. अत्र हेतुमवतारयन्ति **न चे**त्यादि. तथा चात्र "तदभिध्यानादेवे"तिन्यायेन तथाप्राकट्यादक्षरगुणसाम्यं बोध्यम्. हेतूक्त्या फलितमाहु**रेतेने**त्यादि. सुबोधिन्यां **द्वितीयपुरुषस्य** ब्रह्माण्डविग्रहस्य **तु विशेषेण** स्थूलदेहेन **स्वसम्बन्धयोग्यः** स्वराट्पुरुषसम्बन्धयोग्यो **जीवराशि**स्तस्य

लेखः

इत्यन्तस्य. **नरादि**ति. नराद् जाता नारा जीवास्ते अय्यते ज्ञाप्यतेनेनेति व्युत्पत्त्या अयनानि ज्ञापकानि यस्येत्यक्षरस्य नारायणत्वम्. लौकिकसृष्टिपक्षे जीवानामक्ष-रात्मकत्वात् तज्ज्ञापकत्वम्. **द्वितीये**ति, द्वितीयो नारायणः **पुरुषस्तस्ये**त्यर्थः. नरसम्बन्धयोग्या नारास्तेषामयनं स्थानमिति पुरुषस्य नारायणत्वं; पुंस्त्वमार्षम्.

स्वभावनिवर्तकाः सानुभावा गुणा उक्ताः. तृतीयपुरुषे त्वन्तर्यामिणि जीववश्य इव तदधीनत्वेन तस्य सर्वकार्यप्रेरक इति भक्तिजनका असाधारणा गुणा उक्ताः. त्रिविधा अपि भगवति कृष्णे सन्तीति गुणैः कृत्वा नारायणसमानः. धर्मान्तरैरपि नारायणसमतामाह **श्रिया कीर्त्यानुभावेने**ति. ब्रह्माण्डमध्ये नारायणत्रयं— यो वैकुण्ठे लक्ष्मीसहितो, यः सूर्यमण्डले सर्ववेदसहितो, यो भूमौ सर्वब्राह्मणेषु यज्ञनारायणस्तत्सदृशोपि. यथा सर्वजगज्जनन्या अक्षरानन्दरूपाया सर्वशोभानिधानरूपाया य एतत्त्रयकर्ता. लक्ष्म्या जगज्जनकत्वं; तस्या अपि परमानन्दः सर्वशोभारूपाया अपि शोभा. यथा व्यापिवैकुण्ठस्थो भगवान् लक्ष्म्या एतावत् करोति एवं कृष्णोपि करोति. यथा सवितृमण्डलस्थः कीर्तिं स्थापयति

टिप्पणी

पुम्भावेनाग्रिमोक्तधर्माः स्पष्टाः. तृतीये गोपिकाधीनत्वादि स्पष्टम् "अहं भक्तपराधीनः" "एवं मदर्थोज्झिते"त्यादिवाक्येभ्यः. एतदेवोक्तं **त्रिविधा अपी**त्यादिना. **श्रिया कीर्त्ये**त्यत्र, **एवं कृष्णोपि करोती**ति व्रजसुन्दरीणामिति ज्ञेयम्. अग्रे स्पष्टम् ॥२०॥

प्रकाशः

परिग्रहात् स्वधारणया सर्वत [1]उपादानात् तत्क्रतुन्यायेन **स्वतुल्यतामापादयितुं** जीव**स्वभावनिवर्तकाः सानुभावा गुणाः** सर्वस्थूललिङ्गशरीरात्मकत्व-लौकिकेन्द्रियवत्त्व- सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वत्वादय **उक्ता**स्तत्सदृशानुपमेयगुणांष्टिप्प-ण्यामाहु**र्द्वितीये**त्यादि. **अत्रो**पमेये भगवत्**येतादृश** उक्तगुणत्रयसदृशो **व्रजसुन्दरी-परिग्रह एव,** तस्मात् परिग्रहणाद् **रसाधिक्ये पुम्भावेनाग्रिमोक्ताः स्वतुल्यतामि-**त्यादिनोक्ता **धर्माः स्पष्टा** इत्यर्थः. सुबोधिन्यां तृतीये पक्षे उपमेयधर्ममाहु**स्तृतीय** इत्यादि. **एतत्त्रयकर्ते**ति वक्ष्यमाणत्रयकर्ता. तदेवाहु**र्लक्ष्म्या** इत्यादि. **एवं कृष्णोपी-**

लेखः

स्वभावेति उपमाने जीवस्वभावः, सदोषत्वमित्यर्थः. **तृतीये**ति, नारानयते प्रेरयती-त्यन्तर्यामिणो नारायणत्वम्. **यथा सर्वे**ति. **यः** व्यापिवैकुण्ठस्थो भगवान् **यथा सर्वे**त्यादिधर्मविशिष्टाया लक्ष्म्या **एतत्त्रयकर्ता** स भगवांस्तथात्रापि करोतीति शेषः. तत् त्रयं विवृण्वन्ति **लक्ष्म्या जगज्जनकत्वमि**ति. इदमेव सर्वं स्पष्टयितुं पुनराहुः **यथा व्यापिवैकुण्ठस्थ** इति. जगदुपादानभूताक्षरात्मकत्वेन लक्ष्म्याः स्वरूपतो

१. उपमानात्.

सर्वलोकेषु "न ह्यस्मिन्ननुदिते दिनकरे सकलं कमलायते भुवनमि"ति वाक्यात्. कीर्तिः सूर्ये प्रतिष्ठिता यतः सर्वेषां स्वत एव शीताज्ञानादिसर्वदुःखनिवृत्तिः सर्वसुखं च भवत्येवं कृष्णकीर्तिरपि— यतः प्रभृत्युदितस्ततः प्रभृति सूर्यवदेव भागवतादिषु प्रकाशते. यथा यज्ञा आधिदैविकाः सर्वेषां सर्वकार्यकर्तारो दूरादेव माहात्म्यज्ञापका-स्तथा महानुभावो भगवान्. एवं षड्भिर्नारायणैस्तुल्यो भगवान् कृष्णो, **गुणैः** षड्गुणैः **श्रिया कीर्त्यानुभावेन** च तस्यैव विवरणम्. एवं भगवद्गुणानुक्त्वा **च**कारेण[1]

प्रकाशः

त्येतस्यार्थष्टिप्पण्यामुक्तो **व्रजसुन्दरीणामि**ति. सुबोधिन्या**माधिदैविका** इति षोढा विहिता निष्कामा भगवत्तोषकाः. **तथा महानुभाव** इत्याधुनिकानामपि स्वसेवया **दूरादेव माहात्म्यख्यापकाः. षड्गुणैरि**ति षण्णां च नारायणानां गुणैर्वेति. **तस्यैवे**ति समानभावस्य. **अनुभावैश्चे**तिपाठान्तरमङ्गीकृत्य तस्मिन् पक्षे **च**कारेण गुणान्तरांस्तत्रानुक्तान् सङ्गृह्णन्तश्चतुर्थपादमवतारय**न्त्येवमि**त्यादि. यद्यप्यत्र पाठान्तरं कण्ठतो नोक्तं तथापि **च**कारव्याख्यानात्[2] तथावसीयते ॥२०॥

लेखः

जगज्जननीत्वं पूर्वमप्यस्ति तथापि "मम योनिर्महद् ब्रह्मे"ति प्रकारेण निमित्तकारणत्वेन जगज्जननं भगवत्सम्बन्धादेवेति भावः. तथात्र भगवद्विषयक-विचित्रभावजननं पुरुषोत्तमात्मिकानामपि "आनन्दादयः प्रधानस्ये"ति न्यायेन परमानन्दः स्त्रीरत्नभूतानामपि शोभा भगवत्सम्बन्धादेव. तद्वियोगे तु स्थाणुदृष्टान्तेन तादृशभावपरमानन्दशोभानां तिरोभाव इति भावः. एतेषां त्रयाणां नारायणत्वं तु तत्र तत्र वाक्यैरेव स्फुटमिति रूढं ज्ञेयम्. **सूर्यवदेवे**ति सर्वेषां दुःखनिवृत्तिं सुखदानं च कुर्वन्नित्यर्थः. **यज्ञा आधिदैविका** इति विष्णुरूपा इत्यर्थः. **षड्गुणैरि**ति ऐश्वर्यवीर्यवैराग्यश्रीकीर्तिज्ञानानीति क्रमो ज्ञेयः. अन्तर्यामिणोऽनशनकथनाद् वैराग्यम्. **चकारेणे**ति तथा च मूले "श्रिया कीर्त्यानुभावैश्चे"ति पाठो ज्ञेयः.

योजना

श्रिया कीर्त्यानुभावेनेत्यस्य विवृतौ **ब्रह्माण्डमध्ये नारायणत्रयमि**ति प्रसिद्धमित्यर्थः. एवं सति **यो वैकुण्ठे लक्ष्मीसहित** इत्युक्तिरपि युज्यते, अन्यथा वैकुण्ठस्य ब्रह्माण्डातीतत्वाद् ब्रह्माण्डमध्ये इति न वदेयुः. **वैकुण्ठ**पदेनात्र व्यापि-वैकुण्ठो ग्राह्यः, "यथा व्यापिवैकुण्ठस्थो भगवान् लक्ष्म्या एतावत् करोती"त्यग्रे

१. वक्ष्यमाण-प्रथमस्कन्धीय-वचनस्थेन चकारेण इतिभावः. २. स च°.

"सत्यं शौचमि"त्यादिप्रथमस्कन्धोक्तगुणानपि सङ्गृह्य परमनिधानत्वेनोपपाद्य सावधानान्तःकरणो भूत्वा प्रपञ्चविस्मरेण गोपायस्वेत्युपदिशति **गोपायस्व समाहित** इति. एतावता सर्वथावेक्षा कर्तव्या, न क्वापि गन्तव्यं न नेय इत्युक्तम् ॥२०॥

एतावदुक्त्वा गते यज्जातं तदाहेतीति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेन आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥२१॥

आत्मानं नन्दं भगवन्तं वा **सम्यगादिश्यो**पदिश्य **गर्गे स्वगृहं** मथुरां **गते नन्द**स्तद्वाक्यात् **प्रमुदितः** सन्**नाशिषामा**शीर्भिः **पूर्णमात्मानं मेन** इति सम्बन्धः. स्वस्यायोग्यत्वेन महतो ज्ञानान्न भीतो जातो नाप्ययं पुत्रो न भवतीति ज्ञात्वा दुःखितो जातो; येनकेनापि प्रकारेण प्राप्तत्वाद् गर्गोक्तं प्रमाणमिति ज्ञापयितुं कृष्णो भगवानात्मेति नन्दश्च कृतार्थ इतित्रयं ज्ञापयितु**मात्म**पदम्. सम्यगुपदेशो; नास्मिन् शङ्का कर्तव्या, नाप्यन्यस्माद् भयं, सम्यग् रक्षणीयश्चे**त्यादेश** आज्ञा. अन्यथा गर्गोपि क्रुध्येदिति. एतावदुपदेशं कृत्वा, नामकरणं च, गर्गे गच्छति यदि कंसो मध्ये व्यसनं कुर्यात् तदापि चित्तस्वास्थ्यं न भवतीति **गर्गे स्वगृहं गत** इत्युक्तम्. **च**काराद् बालकयोः स्वस्मिन्नप्यन्येषु वा तत्र स्थितेष्वत्यन्तरङ्गेषु स्वगृहं गतेषु गोकुलेपि गर्गकर्मणोः प्राकट्याभावार्थम्. तदा नन्दः सार्थकनामा भविष्यामीति **प्रकर्षेण मुदितः** प्राप्तमहानिधिः **आशिषां** सर्वकामितपदार्थानामन्येषां च पूरणार्थं **पूर्णं** परमातिशयकाष्ठां प्राप्तं **मेने** स्वमनस्येव तथा ज्ञातवान् ॥२१॥

एवं नामचरित्रमुपपाद्य रूपचरित्रं वक्तुं भगवद्गतिः कालरूपेति तस्मिन्ने-

---

लेखः

([1]प्रथमस्कन्धे"[2]सत्यं शौचमि"त्यादिनोक्तान् सत्यादीन् गुणान्, "[3]इमे चान्ये चे"ति 'च'कारेणोक्तान् ब्रह्मण्यत्वभक्तवत्सलत्वादींश्च गुणानित्यर्थः. तथा च **चकारेण** सह **"सत्य शौचमि"त्यादिप्रथमस्कन्धोक्तगुणान् सङ्गृह्ये**त्यन्वयः. **अनुभाव**पदेनैतेषां गुणानां सङ्ग्रहो ज्ञेयः[1]).

योजना

वक्ष्यमाणत्वात्. **गोपायस्व समाहित** इत्यस्याभासे **गोपायस्वेत्युपदिशती**ति. एतावन्माहात्म्ये बोधितेपि पर्यवसाने एतस्मिन् भगवति स्नेह एव मुख्यतया कार्य इति वक्तुं **गोपायस्वे**त्यनेन रक्षामुपदिशतीत्यर्थः. अन्यथा एतादृग्माहात्म्यवतः कृष्णस्य रक्षां न वदेत्, तस्यैव सर्वरक्षकत्वात्. अतो माहात्म्यं ज्ञात्वा स्नेह एव मुख्यतया रक्षणीयः. एवं सति भगवत्सेवायामपि स्नेहोपचारा एव सर्वदा कर्तव्याः; अयं भगवानेतस्य शीतोष्णादिसम्बन्धाभावात् तूलकञ्चुकचन्दनाद्यर्पणं निष्प्रयोजनकमितिबुद्धिर्न कर्तव्येति फलितम् ॥२०॥

१-१. इत्यधिकमेकस्मिन्नादर्शे. २. भा. १-१६-२६. ३. भा. १-१६-२९.

टिप्पणी

कालेन व्रजतेत्यत्र आभासोक्तौ, **तस्मिन्नेवाधिदैविके गच्छती**ति. नन्वेवं

प्रकाशः

इतीत्यत्रादेशपदव्यञ्जितमर्थमाहु**रन्यथे**त्यादि. इयमाज्ञा न केवलं गर्गेण दत्ता किन्तु गर्गद्वारा भगवता. तथा चाग्रे तथा तदकरणे लौकिकालौकिकानुभवाभ्यां गर्गो भगवांश्च तथेत्यर्थः. **यद्वात्मानं पूर्णं मेने नन्द** इति व्यञ्जितमर्थमाहुर्भगवान् गर्गद्वारा तत्रत्येभ्यः स्वस्वरूपादिज्ञानं दत्तवांस्तथा च तदग्रहणे तथेत्यर्थः. अ**त्रात्मानं भगवन्त**मित्यप्यर्थो ज्ञेयः. **बालकयो**रिति गृहं प्राप्तयोः सतोरित्यर्थः. एवमग्रेपि ज्ञेयम्. ननु गर्गातिरिक्तानां स्थलविशेषे गोकुल एव स्थितत्वात् किं स्वस्वगृहप्राप्तिकथनेनेत्याशङ्क्य तत्तात्पर्यमाहु**र्गोकुलेपी**ति. मध्ये मार्गं गमनागमनप्रश्नः कैरपि न कृत इतिभावः. अत एवात्मानं भगवन्तं पूर्णत्वेन ज्ञातवान्. भगवत्स्वरूपज्ञानस्य स्नेहविरोधित्वाभावात् न रक्षणाद्यनुकूलकृत्यादौ बाधकमिति सर्वं सुस्थम्. नामकरणं च फाल्गुनशुक्लाष्टम्यां गर्गाचार्येण कृतमिति पद्मपुराण उत्तरखण्ड उक्तमष्टमीमुपक्रम्य "फाल्गुनामलपक्षे च गर्गो नामाकरोत् तयोरि"ति वाक्यात् ॥२१॥

कालेनेत्यस्याभासे **कालरूपे**ति– "योयं कालस्तस्य तेव्यक्तबन्धो

लेखः

इत्यात्मानमित्यत्र **गर्गकर्मणो**रिति उपदेशनामकरणयोरित्यर्थः ॥२०॥

कालेन व्रजतेत्यस्याभासे **कालरूपे**ति– **काले** आधिदैविके **रूपं** स्वरूपं यस्या इति टिप्पण्यनुसारेणार्थः. अत्र टिप्पण्यां **नन्वेवं सती**ति. **कालरूपे**ति पदस्य

योजना

इत्यात्मानं समादिश्येत्यस्य विवृतौ **आदेश आज्ञे**ति आदेशशब्दादवश्यं मन्तव्यत्वे हेतुरुक्तः. **अन्यथे**ति, यदि गर्गोपदिष्टं यथावत् न मन्येत तदा गर्गः क्रुध्येदित्यर्थः॥२१॥

वाधिदैविके गच्छति सति भगवद्गतिरित्याह **कालेने**ति दशभिः. दशधा भगवद्रूपमत्र वक्ष्यतेऽवान्तरानन्तभेदयुक्तम्.

गतौ गतिविशेषे च भूमौ रूपद्वयं हरेः ॥(७)॥
यशोदायां तथा रूपमुपविष्टं त्रिधा मतम् ।

टिप्पणी

सति गतेर्गमनमुक्तं भवतीत्यनुपपन्नमिति चेत्, अत्रेदं प्रतिभाति– उत्तरदेशसम्बन्धफलिका हि गतिः. तत्तत्कालविशिष्टा लीला च नित्यत्वेन विद्यमानैव क्रमेणाच्छाद्य क्रमेणाविष्क्रियत इति रिङ्गणादिलीला यस्मिन् काले स कालोऽधुना प्रकटित इत्ययमेव पूर्वलीलाकालस्योत्तरदेशस्थानीय इत्युक्तन्यायेन तत्सम्बन्धित्वे जाते तदाधेयरिङ्गणलीलामपि प्रकटतवानिति हृदयम्. तथा च लीलानित्यत्वज्ञापनाय **कालेन व्रजते**त्युक्तमिति सारम्. **उपविष्टमि**त्यादि,

प्रकाशः

चेष्टामाहुरि''ति वाक्यात् तथा. **दशभिरि**ति, यद्यप्यत्रैकादश श्लोकास्तथाप्येकस्मिन् रूपं न निरूपितमतो रूपनिरूपकैर्दशभिरित्यर्थः. आधिदैविककालगमनेन भगवद्गतिर्योक्ता तत्र टिप्पण्यामाशङ्क्य समादधते **नन्वि**त्यादि. **ही**ति क्रियेति शेषः. [1]सुबोधिन्या**मयमित्यधुना प्रकटितः कालः. उक्तन्यायेने**त्याच्छादनप्रकटनन्यायेन. तथा च न गतेर्गमनं किन्त्वाच्छादनप्रकटनाभ्यां गतिप्रतीतिर्वस्तुतः कालविषयिण्येवेति काल एव रिङ्गणलीलेति न गतेर्गतिरित्यर्थः. तदेतद् निगमयन्ति **तथा चे**त्यादि. कारिकायां **गतौ गतिविशेषे चे**त्यत्र निमित्तात् सप्तमी. **मतमि**ति क्रियां प्रति रूपद्वयस्यापि कर्मत्वादिति. कारिकाविवरणे. यशोदायामुपविष्टरूपे त्रिःप्रकारकत्वभ्रमवारणाय **त्रिधा**पदतात्पर्यमाहुष्टिप्पण्या**मुपविष्टे**त्यादि. **उपविष्टे त्रिधा मतमि**त्यनेनोक्तं यत् त्रिविधं रूपं तस्यानुवाद इत्यर्थः. तथा च भूमिष्ठाभ्यां रूपाभ्यां सहितमुपविष्टं तृतीयमिति सिध्यति($७\frac{१}{२}$).

लेखः

कालस्वरूपेति प्रातीतिकार्थमादाय शङ्केयम्. **अधुना प्रकटित** इति अस्मिन्नाधिभौतिके काले सम्बद्धो जात इत्यर्थः. **अयमेवे**ति **अधुना**पदेनोक्त आधिभौतिककाल एवेत्यर्थः. **पूर्वे**ति, पूर्वसिद्धाया रिङ्गणलीलायाः कालस्याधिदैविकस्येत्यर्थः.

१. पङ्क्तिरियं न सुबोधिन्यां किन्तु टिप्पण्याम्.

अन्याश्रितं स्वतश्चैव कथञ्चित् सर्वथा तथा ॥(८)॥
उत्थितं तु त्रिधा रूपं युक्तं त्रिविधलीलया ।

टिप्पणी

उक्तत्रिविधरूपस्यैवानुवादोयम्. **अन्याश्रितमि**त्यादि, कथञ्चित् केनाप्यंशेनान्याश्रितं रूपमित्यर्थः. स्वतः स्वातन्त्र्येण क्रियमाणलीलाविशिष्टं रूपमित्यर्थः. **सर्वथा**

प्रकाशः

अन्याश्रितेतिकारिकोक्तं रूपत्रयं विवृण्वन्ति **कथञ्चिदि**त्यारभ्य **विशिष्टमित्यर्थ** इत्यन्तम्. अत्र **कथञ्चिदि**त्यनेन तृतीयश्लोकोक्तं रूपं विवृतं **स्वत** इत्यनेन प्रथम-

योजना

कालेन व्रजतेत्यादिदशश्लोकार्थनिरूपणे कारिका **गतौ गतिविशेषे चे**त्यादि. ''कालेन व्रजते''त्यनेन गतिनिरूपणं ''तावङ्घ्री''त्यनेन गतिविशेषः. **यशोदायां तथारूपमि**ति ''तन्मातरौ निजसुतौ'' इत्यनेनोक्तम्. एव**मुपविष्टं त्रिधा**. **अन्याश्रितमि**ति, ''वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणावि''त्यनेन वत्साश्रितत्वेन अन्याश्रितत्वम्. **स्वतश्चैव कथञ्चिदि**ति– **कथञ्चित्** केनापि प्रकारेण **स्वतः** क्रीडारतमित्यर्थः; ''शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्य'' इत्यत्र स्वतः क्रीडाकर्तृरूपकथनात्. **सर्वथा तथे**ति सर्वथा क्रीडाकर्त्रित्यर्थः, ''कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोव्रजे'' इत्यत्र तथा निरूपणात्. एव**मुत्थितं स्वरूपं त्रिधा** ज्ञेयम्.

कारिकार्थः

''**कालेन व्रजते**''त्यत्र **गतौ गतिविशेषे चे**त्यादि. ''कालेन व्रजते''त्यत्र **गति**लीला, ''तावङ्घ्रियुग्ममि''त्यत्र **गतिविशेषः**, एवं **भूमावुपविष्टं हरे रूपद्वयं**, ''तन्मातरौ निजसुतावि''ति श्लोके **यशोदायामुपविष्टं रूपमे**कविधम्, एव**मुपविष्टं रूपं त्रिधा मतम्. अन्याश्रितमि**ति. **कथञ्चिदन्याश्रितं रूपं स्वतः** स्वातन्त्र्येण क्रियमाणलीलाविशिष्टं रूपं, **सर्वथा** सर्वांशेन स्वतः क्रियमाणलीलाविशिष्टमिति योजना टिप्पण्यनुसारिणी. तथा चैवं विवेकः– ''यर्ह्यङ्गने''ति श्लोके कथञ्चिदन्याश्रितं रूपं ज्ञेयम्. यद्यप्याभासे ''स्वतः स्थितयोर्लीलामाहे''त्युक्तं तथापि वत्सपुच्छावलम्बनेन कथञ्चिदन्याश्रितत्वं बोध्यम्. अत एव श्लोकव्याख्यासमाप्तौ ''गोपुच्छधारणलीलेयं पराधीना निरूपिते''ति (कारिकया) व्याख्यातम्. ''शृङ्ग्यग्नी''त्यत्र स्वतः क्रियमाणलीलाविशिष्टं रूपम्. अत्रापि मातृकर्तृकनिषेधात् न सर्वांशेन स्वातन्त्र्यम्. ''कालेनाल्पेने'' त्यत्र सर्वथा स्वातन्त्र्यम्. एवं **त्रिविधलीलया**

बालकैर्मुग्धलीलाद्या धाष्टर्यधौर्त्यसमन्विते ॥(९)॥
निर्गुणावस्थरूपे च ज्ञापिते तु ततः परम् ।

टिप्पणी

सर्वांशेन स्वतः क्रियमाणलीलाविशिष्टं रूपमित्यर्थः. **निर्गुणे**ति, ताभिश्चरित्रे ज्ञापिते सति तदनन्तरं ताभिः परिदृश्यमानं निर्गुणावस्थवेद्यं रूपमित्यर्थः. अखिलैतत्प्रकरण-

प्रकाशः

श्लोकोक्तं **सर्वथे**त्यनेन द्वितीयश्लोकोक्तमिति विवेकः. किञ्चोत्थितरूपेषु प्रथममन्याश्रितं द्वितीयं कथञ्चित् स्वतो गतियुक्तं तृतीयं सर्वथा स्वतो गतियुक्तमुत्थितरूपमिति ज्ञेयम्. **बालकैरि**ति कारिकायां **मुग्धलीलाद्ये**त्यनेन सात्त्विकी लीला विवृता ज्ञेया. "ततस्तु भगवान्" इतिश्लोकोक्तकारिकाशेषं विवृण्वन्ति **ताभिरि**त्यादि. कारिकायोजना तु– **बालकैः** सह **मुग्धलीलाद्या,** तथा च तल्लीलाविशिष्टमेक**मुत्थितं रूपमि**त्यर्थः. **ताभिरि**त्यादिना विवृतं धौर्त्यधाष्टर्यचरित्रयुक्तं रुपद्वयं ताभिर्वीक्ष्यमाणं निर्गुणावस्थं

योजना

बालकैर्मुग्धलीलाद्येति "ततश्च भगवान् कृष्ण" इतिवाक्यात्. **धाष्टर्यधौर्त्य-समन्विते** इति लीले इति विशेष्यम्. तथा च बालकैः सह मुग्धलीला धाष्टर्यधौर्त्यसमन्विते द्वे लीले –एवं लीलात्रयम्. लीलात्रये रूपत्रयं भवति. **धाष्टर्यधौर्त्यसमन्विते** रूपे इति वा. एवं च बालकैः सह मुग्धलीलाविशिष्टं धाष्टर्यधौर्त्यसमन्वितं चेति रूपत्रयं ज्ञेयम्. एवम् उपविष्टं त्रिधा, उत्थितं च त्रिधा, मुग्धलीलाधाष्टर्यधौर्त्यलीलासमन्वितं चेति नवरूपाणि (७-९).

कारिकार्थः

युक्तमुत्थितं त्रिधा रूपं निरूपितमित्यर्थः (८ $\frac{१}{२}$). सात्त्विकीं राजसीं च लीलां विभज्य तामसीं लीलां विभजन्ते **बालकैरि**ति. "ततस्तु भगवान् कृष्ण' इत्यत्र **बालकैः** सह **मुग्धलीला.** तदग्रे "कृष्णस्य गोप्यो रुचिरमि"ति श्लोकोधिकः "वत्सान् मुञ्चन्नि"ति "हस्ताग्राह्य" इति च श्लोकद्वयोक्तराजसतामस-तामसराजस[१]लीला-द्वयप्रसिद्धिबोधकः. अत एवोक्तं "ततस्तु भगवान कृष्ण" इति श्लोकव्याख्याने "राजसतामसीं तामसराजसीं[१] च स्वतो वक्तुमनुचितां मत्वान्यमुखेन निरूपयितुं मध्ये वाक्यान्तरं" श्रीशुकेनोक्तम्. अत्रेदं ज्ञेयम्– अत्र रूपप्रकरणे सात्त्विक-सात्त्विकादिभेदेन सगुणलीलाविशिष्टानि नवरूपाण्येकं च निर्गुणलीलाविशिष्टं

१-१. मू. पा. तामसतामस°, तामसतामसीं.

सात्त्विकादिविभेदेन तत्तद्धृदयगामिनि ॥(१०)॥
तांस्तांस्तु क्रमशो भावान् दूरीकृत्यान्तिमे स्थिरा ।
यशोदार्थमियं लीला प्रसङ्गादन्यगामिनी ॥(११)॥
यदैव ता गृहे व्यग्रास्तदैवं दशधा हरिः ।
तत्रादावुपशिष्टस्य हरेरल्पचलनात्मिकां गतिलीलामाह **कालेने**ति.

टिप्पणी

तात्पर्यमाहुः **सात्त्विकादी**ति. सात्त्विकादिभेदोपलक्षितास्ते ते ये पुरुषा-**स्तत्तद्धृदयगामिनि** रूपे सति सा हृदयस्थितिस्तथा कृ**त्वान्तिमे** रूपे **स्थिरा** भवति स्वरूपमात्रनिष्ठा भवतीत्यर्थः (७-१० $\frac{१}{२}$).

प्रकाशः

चेति सात्त्विकलीलातः परं रूपत्रयं ज्ञेयम् (८-९ $\frac{१}{२}$). **सात्त्विके**त्यादिकारिकामवतार्य व्याकुर्व**न्त्यखिले**त्यादि. सुबोधिन्यां लीलाप्रयोजनमाहु**र्यशोदे**तिकारिकया. **यदैवे**त्यादि– **ता** यशोदाप्रभृतयो यद्यपि नाम्ना निरुद्धास्तथापि गृहकार्यस्यावश्यकत्वात् तत्करणे **यदैव** यथा **व्यग्रा** जायन्ते **तदैव** तथा स्वरूपं प्रकटयतीत्यर्थः (१०-११ $\frac{१}{२}$).

कारिकार्थः

रूपम्. तत्र त्रिभिः श्लोकैः सात्त्विकरूपाणि, त्रिभिः राजसानि. "ततस्तु भगवान् कृष्ण" इत्यत्र तामससात्त्विकलीलाविशिष्टं रूपम्. मध्ये "कृष्णस्य गोप्यो रुचिरमि"त्यधिकः श्लोको वक्ष्यमाणलीलाद्वयप्रसिद्धिबोधकः. "वत्सान् मुञ्चन्नि"त्यत्र क्रियाप्रकारविशेषरूप**धाष्टर्यसमन्वितं** रूपम्. "हस्ताग्राह्य" इत्यत्र ज्ञानप्रकारविशेष-रूप**धौर्त्यसमन्वितं** रूपम्. तथा च तामसलीलायां प्रसिद्धिबोधकेन श्लोकेन सह चत्वारः श्लोकाः. "एवं धाष्टर्यानुशति कुरुते" इति श्लोके 'सभयनयनश्रीमुखे'त्यनेनोक्तं **निर्गुणावस्थ**वेद्यं रूपम्. एवं रूपप्रकरणे एकादशश्लोकाः. कारिकायोजना तु **बालकैः** सह **मुग्धलीलाद्या धाष्टर्यधौर्त्यसमन्विते** द्वे लीले रूपे वा **निर्गुणावस्थरूपं चे**ति. "वत्सान् मुञ्चन्नि"त्यादिना यशोदां प्रति ताभिश्चरित्रे **ज्ञापिते** सति **ततः परं** तदनन्तरं ताभिः परिदृश्यमानं 'सभयनयनश्रीमुखे'त्यनेनोक्तं रूपं निर्गुणावस्थवेद्यमित्यर्थः(९ $\frac{१}{२}$). **सात्त्विकादी**ति सात्त्विकादिभेदोपलक्षितास्ते ते ये पुरुषा**स्तत्तद्धृदयगामिनि** रूपे सति सा हृदयस्थितिस्तथा कृत्वा **तांस्तान् भावान् दूरीकृत्य अन्तिमे** रूपे **स्थिरा** भवति, स्वरूपमात्रनिष्ठा भवतीत्यर्थः(१० $\frac{१}{२}$). **यशोदार्थमि**ति. अत्रैव **जानुभ्यामि**ति. दैत्यपतित्वात् स्वतो न निवारयतीत्यर्थः(१२).

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥२२॥

स्वतो **व्रजता कालेन** कृत्वाल्पेनैव **गोकुले** तत्रापि यशोदाया अङ्गणे. **रामकेशवावु**भावपि नामकरणेन भगवदावेशाद् भगवन्तौ, योगिध्येयो ब्रह्मादिवन्द्यश्च **रामकेशवौ**. मत्वर्थीयो वत्प्रत्ययश्चात्र सौन्दर्यार्थं परिगृह्यते. वस्तुतस्तु

प्रकाशः

विवृता**वुपविष्टस्ये**ति भूमावुपविष्टस्य. ननूभयोर्नामकरणं श्रीवसुदेवप्रेरणयेति द्वयोस्तत्कथनं युक्तं; रिङ्गणलीला द्वयोर्योच्यते तत्र किं प्रयोजनमत आहू **रामे**त्यादि. **भगवदावेशा**दिति पुरुषोत्तमावेशात्. अयं भगवत उभयत्वसाधने हेतुर्न तूभयोर्भगवत्त्वसाधन इति. तदिदं "यर्ही"ति श्लोके "स्वत आवेशतश्च क्रीडती"त्यनेन स्फुटीभविष्यति. तथा च यतः श्रुतौ "स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स हैतवानासे"ति रमणेच्छायां स्वस्यैवैतावत्ताश्रावणादत्रापि स्वयमेव स्वरूपावेशाभ्यां द्विरूपो भूत्वा प्रथमं क्रीडतीति बोधनमेव प्रयोजनमित्यर्थः. ननु विशेषाभाव उभयत्वस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां नामभ्यां बोधितं तमाहु**र्योगी**त्यादि. "रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि इति 'राम'पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयत" इतिरामतापनीयश्रुते**र्योगिध्येयो** रामो, वक्ष्यमाणरीत्या **ब्रह्मादिवन्द्यश्च** केशव इत्यस्ति विशेषोऽतो **रामकेशवावि**त्यर्थः. एवं रूपद्वये विशेषमुपपाद्य प्रकृतोपयोगाय **केशव**शब्दस्यार्थान्तरमपि सङ्गृह्णन्ति **मत्वर्थीय** इत्यादि. नन्वेवं सत्यर्थद्वये को वा ज्यायानित्याकाङ्क्षायामाहु**र्वस्तुत** इत्यादि. तत्तात्पर्यमाहुष्टिप्पण्यां

लेखः

सुबोधिन्यां **स्वतो व्रजते**ति. लीलाकालस्य भगवदात्मकत्वात् स्वत एव तत्तल्लीलाचिकीर्षां ज्ञात्वा व्रजनं न तु सूर्यगत्येति भावः. ननु रामस्य ज्येष्ठत्वात् कथं गत्यादिषु भगवत्साम्यमित्यत आहुः **नामकरणेने**ति. इदमेव विवृण्वन्ति **उभयोरि**ति. ननु

योजना

कालेन व्रजताल्पेनेत्यस्य विवृतौ **योगिध्येय** इति राम इत्यर्थः, "रमन्ते योगिनोनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयत" इति श्रुतेः. यद्यपीदं रामतापिन्यामुक्तत्वाद् दाशरथिमेव वक्तीति वक्तुमुचितं तथापि परब्रह्मणो यत्रैव राम इति सञ्ज्ञा तत्रेयमेव व्युत्पत्तिरिति बोध्यम्. प्रकृते बलरामे पुरुषोत्तमावेशात् सर्वे पुरुषोत्तमधर्मा अत्र वक्तुमुचिता इति निरवद्यमखिलम्. **ब्रह्मादिवन्द्यश्चे**ति मूले **केशव**पदमुक्तं तस्य च कश्च ईशश्च केशौ तयोर्वं सुखं

लौकिक एव **केशव**शब्दस्तद्धितान्तः न तु भगवद्वाचकः, **केशयोर्वं** सुखं यस्मादित्यर्थे प्रत्ययापेक्षाभावात्. उभयोर्न्यूनाधिकभावेपि वयसि स्थितयोः समाना गतिः. भगवत्सन्निधाने नामद्वारा सम्बन्धानन्तरमेव भगवत्त्वमत उभौ **जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ** जातौ शनैस्तदान्योन्यं **विजह्रतु**र्विहारं कृतवन्तौ क्रीडां कृतवन्तावित्यर्थः.

जानुभ्यां गमनं विष्णोर्दैत्यानां मर्दनाय हि ॥(१२)॥

टिप्पणी

गोकुले रामकेशवावित्यत्र. रिङ्गणलीलायां केशकृतः शोभातिशयो भवतीति तत्राधिक्यं मन्वानैरुक्तं **वस्तुतस्त्वित्यारभ्यापेक्षाभावादि**त्यन्तम्. भगवद्वाचकत्वे योर्थस्तमनूद्य तत्रारुचौ हेतुमाहुः **प्रत्यये**ति. मत्वर्थीयवत्प्रत्ययाभावे तत्सौन्दर्यालाभादिति भावः. उभयोस्तरतमभावेपि गतिसाम्ये हेतुमाहुः भगवद्गतित्वेनेति. बलदेवेप्याविष्टस्यैव गतिर्निरूप्यते, सा चैकैवेति तथेत्यर्थः. वयसोऽधिकत्वेन बलदेवरिङ्गणं पूर्वं कुतो नोक्तमित्याशङ्क्यात्र भगवद्गतिरेव वाच्या तत्सम्बन्धश्चात्र नामकरणमारभ्येति भगवद्रिङ्गणलीलासमय एव तदुक्तिरपीत्याशयेनाहुः **भगवत्सन्निधान** इत्यादि. पाण्योः सहभावोक्त्या गौणत्वोक्तिपूर्वकं रिङ्गणे जानुनोः प्राधान्येन निरूपणस्य तात्पर्यमाहुः **जानुभ्यामि**ति. सर्वमूलरूपत्वेनैतयोः सुतलाधिदैविकरूपत्वमुच्यते, "द्वे जानुनी सुतलमि"ति वाक्यात्. तथा च रिङ्गणलीलायां जानुनोरपि घर्षणं सम्भवतीति तमंशमादायेदमुक्तम्. घर्षणे पीडासम्भवात् तस्याश्चात्रायुक्तत्वाल्लोकसाम्येन सर्वकरणात् तज्जनितकिणधारणेनापि सा तदपास्य दैत्यगामिनीति मन्तव्यमिति भावः. न च जानुनोरेव सहभावो वाच्य इति वाच्यम्, अस्या लीलायाः प्रथमगतिरूपत्वेन तस्याश्च पदधर्मत्वेन तयोरेव प्राधान्यस्योचितत्वादिति भावः॥२२॥

प्रकाशः

रिङ्गणेत्यादि **भाव** इत्यन्तम्. तथा च निरोधोपयोगित्वाल्लौकिकोर्थ एव ज्यायानित्यर्थः. ननु रामस्य ज्येष्ठत्वेन 'कृतमुण्डनतया केशवत्त्वाभावेन कथं निरोधोपयोगितेत्याकाङ्क्षाया**मुभयोरि**त्यादिना यत् सुबोधिन्यामुक्तं तत्तात्पर्यमाहु**रुभयोरि**त्यादि. **तत्सम्बन्ध** इति बलदेवसम्बन्धः, तथा च गत्यैव निरोधसम्भव इत्यर्थः. सुबोधिन्यां प्राथमिकी क्रीडा स्वस्वरूपेणैवेति श्रौतार्थबोधनायाहु**र्नामद्वारे**त्यादि. तद् विवृण्वन्ति टिप्पण्यां

योजना

यस्मादिति व्युत्पत्तेः. **जानुभ्यां रिङ्गणं विष्णोर्दैत्यानां मर्दनाय** हीति. इह

१. °म°.

बलिर्दैत्यपतिर्भूत्वा न निवारयति स्वतः।

उपविष्टयोर्नम्रीभूतयोर्गमनं पादाधीनमेवेति **जानुभ्यामेव** गमनमुच्यते. **पाण्योस्तु सह**भावः तत्र प्रतिष्ठाभावात्. सम्पूर्णेनापि शरीरेण **रिङ्गमाणाविति जानुभ्यां सह रिङ्गमाणाविति सह**पदप्रयोगः. अनेन मध्येल्पचलनेपि भूमौ शयानावेव भवतः पुनरुत्थाने च तथा. एवं रूपाणि भगवतः सहस्राणि ध्येयानि हसद्रूपाणि

लेखः

भक्तत्वाद् बलिरेव कुतो दैत्यान् न निवारयतीत्यत आहुः **बलिरिति**, **पति**त्वेन तत्सम्बन्धेन किञ्चिदासुरावेशात् **न निवारयती**त्यर्थः. भक्तत्वाद् भगवता मर्दने कृते प्रतीकारमपि न करोतीति **स्वत** इत्युक्तम् ॥२२॥

योजना

जानुगमनतात्पर्यमिदं यदुक्तं तच्छुकनारदादीनां माहात्म्यज्ञानयुक्तभक्तानां स्फुरति. तद्दृष्ट्यैवमुक्तम्. ते हि विचारयन्ति— प्राकृतबालवद् जानुभ्यां भगवान् गच्छति. तत्र प्राकृतबालस्त्वधिकसामर्थ्याभावाद् जानुभ्यां गच्छति. न तथा हरिः, सर्वदा सर्वसामर्थ्ययुक्तत्वात्. न च विद्यमानेपि सामर्थ्ये तथा करणं प्रदर्शनार्थमिति वाच्यं, तथा सत्येतल्लीलाया अस्वाभाविकत्वापत्तेः. एवं सति जानुभ्यां गमनं दैत्यानां मर्दनार्थं करोतीति युक्तः पन्थाः. सेयं आध्यात्मिकपक्षे व्यवस्था ज्ञेया, आध्यात्मिकपक्षस्य ज्ञानप्रधानत्वेन वस्तुविचारस्यावश्यकत्वात्. दैत्यमर्दनं यद्यपि सङ्कर्षणकार्यं तथापि पुरुषोत्तमे सर्वेषां व्यूहानां विद्यमानत्वात् सापि लीला तत्रोच्यते इति न दोषः. एवमेव पुरुषोत्तमे मस्तकादौ सत्यलोकत्वादिरूपताकथनं पुरुषरूपस्य तत्र सत्तयेति बोध्यम्. पुरुषोत्तमांशपुरुषशिरसः सत्यलोकरूपत्वात्, "सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः" इति वाक्यात्. न हि साक्षात्पुरुषोत्तमस्य शिरः सत्यलोकरूपं भवितुमर्हति, केवलमानन्दरूपत्वात्. अतः पुरुषोत्तमांशपुरुषसत्तामादाय तथोच्यते इति सुबोधिन्यां सर्वत्र ज्ञेयम्. प्रकृतेपि "द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरि"तिवाक्यात् जानुनोः सुतलरूपत्वात् तत्र च दैत्यानां स्थितेर्जानुसङ्घर्षणेन दैत्यमर्दनमुच्यते. तदपि पुरुषरूपस्य भगवति सत्त्वात् युक्तम्. न तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्य जानुनी सुतलरूपे, आनन्दमयत्वादिति दिक्. आधिदैविकपक्षे तु केवलं जानुभ्यां गमनं भगवतो बालरूपत्वात् तादृशरूपलीलयोर्नित्यत्वात् स्वाभाविकत्वेन बाललीलाधिकारिणां परमानन्ददानार्थमेवेत्याकलितव्यम्, आधिदैविकपक्षस्य लीलाप्रधानत्वेनानन्दमयत्वात् ॥२२॥

क्षणमुपविष्टानि क्षणं प्रचलितानि च ॥२२॥

इयं प्रथमगतिरुत्तरश्लोकोक्तगतिपर्यन्तमनुसन्धेयोत्तरोत्तरपुष्टा, उत्तरस्यादिना पूर्वावसानस्य न्यायसिद्धत्वात्. द्वितीयमाह **तावङ्घ्रीति**.

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२३॥

गतिविलासा अत्र निरूप्यन्ते. प्रथमतोऽलसवलितगतिः, **तावु**भावपि, एको भगवानिति न वैलक्षण्यम्. जानुभ्यामेव गच्छन्तौ मध्येमध्ये जानुपीडामिव भावयन्तौ **अङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य** पादाग्रमधोमुखं कृत्वा जानुपर्यन्तं भूमिष्ठं विधाय शनैराकृष्य पश्चाच्छीघ्रं **सरीसृपन्तौ** द्रुतं गच्छन्तौ भवतः. तथा गमने हेतुमाह **घोषप्रघोषरुचिरमि**ति— **घोषः** शब्दः **प्र**कृष्टो **घोष**स्ताभ्यां **रुचिरं** यथा भवति तथा. प्रथमं गच्छन्तौ नुपुरक्षुद्रघण्टिकादीनां वादनमाकर्णयन्ताविव शब्दे दत्तकर्णौ शब्दगतिं विचारयन्तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य शनैश्चलितौ. स शब्दः किं स्वाभरणादेव जायतेऽन्यस्मादिति वेति विचारयितुं गतेः शैघ्र्यं कुरुतः, तदा प्रघोषो भवति. तस्यापि विचारार्थं पुनः स्थितौ भवतः, तदा प्रघोषेण रुचिरं यथा भवति तथा सरीसृपन्तौ भवतः. पुनरेव घोषप्रघोषाभ्यां बहुधा गतितरतमभावं प्राप्तौ **व्रजकर्दमेषु** गतौ भूमिदेहसम्बन्धकृतशब्दवैलक्षण्यग्रहणाय. तत्रापि चेच्छब्द आभरणानामेव नान्यस्येति **तन्नादहृष्टमनसौ** जातौ. अस्मद्गत्या तदनुगामी शब्दोपि रुचिरो भवती-

---

प्रकाशः

पाण्योरित्यादि. सुबोधिन्यां **सम्पूर्ण** इत्याद्यनेनार्थान्तरं व्याख्यातं ज्ञेयम्. **सहपदप्रयोग** इति मध्य इतिशेषः. रिङ्गणलीलानिरूपणप्रयोजनमाहु**रेवं रूपाणी**त्यादि ॥२२॥

तावङ्घ्रीत्यत्र **द्वितीयमाहे**ति गतिविशेषविशिष्टं रूपमाह. **गतिविलासा** इति गत्या कृत्वा[1] विहाराः शोभा वा. **अलसवलितगतिरि**त्यङ्घ्रियुग्मानुकर्षणेनालसा **सरीसृपन्तावि**ति यङ्लुगन्तेनोक्ता द्रुता गतिर्वलिता[2], तां व्याकुर्वन्ति **जानुभ्यामि**त्यादि.

लेखः

तावङ्घ्रीत्यत्र **अलसे**ति. **अङ्घ्रियुग्ममनुकृष्ये**त्यनेनोक्तं शनैः कर्षण**मलस**गतिः. **सरीसृपन्तावि**ति यङ्लुगन्तेनोक्तं द्रुतगमनं **वलितगतिः**, "नित्यं कौटिल्ये गतावि"त्यनुशासनेन तद्गतौ कौटिल्यसूचनादिति भावः. इदं गतिद्वयं **प्रथमतः** पूर्वार्धे

---

१. °त्या. २. °र्वलिता कलवली कामधेनू.

त्येवं बहुधा वृत्तिर्मनःपरितोषार्था. अनेन भगवान् चरित्रं कृत्वां तत्प्रतिपादकं च वाक्यं विधायोभयोर्योग्यतायां सन्माननं वक्तुः श्रोतुश्च करोतीति लक्ष्यते. एवं तयोरेव परस्परं गतिलीलामुक्त्वान्यानुरोधेनापि गतिलीलामाह**ानुसृत्य लोकमि**ति. यं कश्चित् स्त्रियं पुरुषं वा गच्छन्तमनुगच्छन्तौ, गन्तव्यमेवेति कथमन्यथायं गच्छेदिति. कियद्दूरं गमनानन्तरं तस्मिन् परिवृत्य दृष्टं दूरं गते वा **मुग्धप्रभीतवत्** स्वमातु**रन्ति** समीप **उपेयतुरि**ति सम्बन्धः. गमने ज्ञानद्वयम्— अस्मदीयाः केचन गच्छन्तीत्यतोस्माभिरपि गन्तव्यं गन्तव्यमेव वा. तथा सत्येकाकिना न गन्तव्यमिति तस्मिन् दूरं गते पश्चात् पुरस्ताच्चासहायमात्मानं मत्वा भीतौ भवतः. व्याघुट्य प्रदर्शने तु नायं मदीय इति, मुख एव परिचयात् धर्मान्तरे तथा बुद्ध्यभावात्, मुग्धवत् परावृत्तिर्भवति. मुग्धश्चासौ प्रभीतश्चेति. प्रकर्षभये मुग्धभावोपि हेतुः, अन्यथा भये कारणाभावात्. "तस्मादेकाकी बिभेती"ति भयमात्रकारणत्वेपि प्रकर्षभये नान्यो हेतुः. गमनागमनलीला शीघ्रं सिद्धैव तथापि मुग्धभीतभावौ गमनागमनयोः क्रमेण सौन्दर्यसूचकौ, उभयत्र वा. तथैकाकिना नात्र स्थातव्यमिति गमनं, बालकयोः परिचयो मातर्येवावशिष्ट इति. **वदि**ति ज्ञात्वापि तथानुकरणेन

प्रकाशः

मनःपरितोषार्थेत्यलौकिकरतानां स्वीयानां परितोषार्था. तद् व्युत्पादय**न्त्यनेने**त्यादि **लक्ष्यत** इत्यन्तम्. तथा च शकटभङ्गलीलायां यथा "संसारकालचक्र" इत्यादिना तल्लीलातात्पर्यं बोधितं तथात्र रिङ्गणलीलायामिदं तात्पर्यमजहत्स्वार्थया लक्ष्यत इत्यर्थः. अत्र **नाद**पदस्याव्यक्तशब्दवाचित्वात् तेन परोक्षरूपं वाक्यं लक्ष्यते, **हृष्टमनस्त्वेन** वक्तृश्रोतृसन्माननं चेति ज्ञेयम्. **अनुसृत्ये**त्यस्य नानुकरणमर्थः किन्त्वनु पश्चाद् गमनमित्याशयेनाहु**र्यं कश्चि**दित्यादि. **परिवृत्य दृष्टमि**त्यादि कर्मणि क्तः; पश्यति सतीत्यर्थः. मुग्धप्रभीतभावहेतुं विवृण्वन्ति **गमने ज्ञानद्वयमि**त्यादि ॥२३॥

लेखः

उक्तमित्यर्थः. **अनेन भगवानि**ति. **चरित्रं** गति**स्तस्य प्रतिपादकं वाक्यं** शब्दः. भगवतः शब्दमात्रस्य सार्थकत्वाद् वाक्यत्वम्. अत एव निःश्वासस्य वेदत्वम्. व्यवधानेप्याभरणशब्देन गतिज्ञानं भवतीति तत्प्रतिपादकत्वम्. **उभयोरि**ति वक्तृश्रोत्रोरित्यर्थः. आभरणानां वक्तृत्वं भगवतः श्रोतृत्वं, तेन हर्षः **सम्माननम्. तस्मिन् परावृत्त्ये**ति स्थिते इति शेषः; **परावृत्त्य** स्थिते **तस्मिन्** भगवता **दृष्टे** सतीत्यन्वयः. **गन्तव्यमेवे**ति पक्षमाहुः **तथा सती**ति. आद्यपक्षमाहुः **व्याघुट्ये**ति.

पुर्नगमनागमने. तत्र हास्यादिना बहवः प्रकारा भावुकानां मनोहरा भवन्ति. **लोकमि**त्यालोकवन्तमुज्ज्वलवस्त्रादियुक्तम्. **मात्रोरन्ती**त्यनेनैव सामीप्ये सिद्धे पुन**रुपेति**ग्रहणं कदाचिदागत्योपर्येव पततः कदाचिन्मध्ये कदाचिददूरविप्रकर्षेणेति प्रकारभेदज्ञापकम् ॥२३॥

एवं नानाविधगमनागमनाभ्यामुपविष्टलीला स्वतन्त्रतया बहुधा वर्णिता. मात्रा सह नानाविधक्रियाभिः सहितस्योपविष्टस्य लीलामाह **तन्मातरावि**ति.

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्तुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगूह्य दोर्भ्याम् ।
दत्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२४॥

यशोदारोहिण्यौ **निजसुतौ** स्वं स्वं सुतं **घृणयौ**त्कण्ठ्यस्नेहेन **स्तुवन्त्यौ पङ्क** एव योय**मङ्गराग**स्तेन **रुचिरौ दोर्भ्यामुपगूह्या**लिङ्ग्य **स्तनं दत्वा पिबतोश्च मुखं निरीक्ष्य प्र**कर्षेण **मोदं ययुरि**ति सम्बन्धः. नृत्यन्ताविव समागच्छन्तौ धृत्वा वा नृत्यं कुर्वन्तौ मातृप्रेरणया वान्यप्रार्थनया वा नृत्यन्तं पश्यन्तौ वा. स्तोत्रे पञ्चधा नृत्यं हेतुः, लीलाभावासश्चासंख्याताः, रोषभावाश्च त्रिविधाः स्तोत्रविषयाः. तत्र स्तोत्रं द्वेधा सम्भवति— परमार्थतो लोकतश्च. लोकतो घृणा. **घृणयाऽस्तुवन्त्यावि**ति पदच्छेदे परमार्थतः स्तोत्रम्. **घृणयो**पलक्षिते वा **मातरौ**, भगवद्व्यतिरिक्ते सर्वत्र घृणा सञ्जातेति. 'सघृण' इत्यादौ 'घृणा'(?) स्नेहदयाप्युच्यते. भगवत्कर्तृकोपगूहनदशा

प्रकाशः

तन्मातरावित्यत्र. **रोषभावाश्च त्रिविधा** इति मन्दमध्यात्यन्तभेदेन त्रिविधा इत्यर्थः. एते च लौकिकस्तोत्रविषया लीलाभावाश्च परमार्थस्तोत्रविषया इति ज्ञातव्यम्. ननु परमार्थस्तोत्रे **घृणया स्तुवन्त्यावि**ति न सङ्गच्छत इत्यत आहु**रस्तुवन्त्यावि**त्यादि. "घृणा तु स्याद् जुगुप्सायां करुणायामि"ति हैमकोशात् तस्यार्थद्वयमभिप्रेत्य व्याकुर्वन्ति **भगवदि**त्यादि **सघृण** इत्यादि च. अत्र भगवद्भावनार्थं तां तां दशामनुभूय व्याकुर्वन्ति **भगवत्कर्तृके**त्यादि. **तन्मातरावि**ति पदतात्पर्यमाहु-

लेखः

उभावुभयत्र वेति पक्षे गमने भीतभावं साधयन्ति **तदे**ति. **बालकयोर्मातरि विशिष्टः परिचयो** भवति सा त्वत्र नास्त्यत **एकाकिनात्र न स्थातव्यमिति** हेतोर्भयेन **गमनं** परिचिते स्थलान्तरे इति शेषः॥२३॥

तन्मातरावित्यत्र नृत्यादिभावैः स्तोत्रं विवृतम्; अनुभवद्भिरुक्तत्वात् नातीव शब्दार्थाग्रहोऽत्र कर्तव्यः. **लोकतो घृणे**ति, अत्र घृणा कुत्सितत्वेन ज्ञान-

भिन्ना ताभ्यामुपगूढयोरन्या. अत्रापि बहवो भेदाः सम्भवन्ति. स्तनपानदशा तु स्वतन्त्रा, आलिङ्गितयोर्वा भयाभावात् स्तनपानम्. निरीक्षणलीलापि बहुविधा. सर्वत्र प्रमोदः फलमुभयोर्मातृत्वमन्यथा शङ्कितं भविष्यतीति बुद्धिदाढर्यार्थं निरूपितम्. भगवतोपि मातरि वैलक्षण्यभावाजननार्थं **निजसुतावि**त्युक्तम्. भगवत्सम्बन्धेपि सर्वपुरुषार्थानां भगवद्रूपेण भिन्नतया वा ज्ञानाभावाय घृणा निरूपिता. भौमाः सर्व एवावयवास्सुगन्धा भवन्ति, विजातीयैश्चोपहता अन्यथा भवन्त्यलौकिकं तेजश्चेद् भवति तदोत्तमता भवति. तत उच्यन्ते कस्तूरीकुङ्कुमचन्दनादिष्वङ्गरागपदानि. वस्तुतस्तु मृदवयवा एव गन्धतेजोभ्यां सहितास्तथा व्यपदिश्यन्ते. भगवत्सम्बन्धाद् दोषनिवृत्तिपूर्वकगुणाधानमुचितमेव. अतः पङ्कस्याङ्गरागत्वं, **पङ्क**पदप्रयोगाच्चैवं ज्ञायते– अङ्गसम्बन्धानन्तरमेवाङ्गरागत्वमिति. **रुचिरावि**ति परमार्थापेक्षयाधिक्यं सूचयति– स्वेनैव ह्यङ्गरागत्वं सम्पादितं, स्वतेजसानुभावेन वा, पुनस्तेनैव रुचिरत्वमङ्गरागस्य माहात्म्यख्यापनाय. ततोप्यधिकतेजस आविर्भावः. प्रत्यक्षतः पङ्कदर्शनयुक्तयोरपि पङ्काङ्गरागरुचिरत्वं निस्सन्दिग्धं भावितमिति दोर्भ्यामुपगूहनमुक्तं, निर्दुष्टभाव एव भगवत्युचित इति न तु दोषत्वमङ्गीकृत्य. अविहितभावख्यापनार्थं **दत्वा स्तनमि**त्युक्तं, अन्यथा मुक्तिलीलायां प्रवेशः स्यात्. गमनागमनाभ्यां बालकाः क्षुधिता इति **प्र**कर्षेण पानम्. नन्वेवं स्त्रीणां बाललीला कथं भवद्भिरवगता, योगे ध्याने वा कैवल्यस्यैव भाव्यत्वाद् गमनं तु नास्त्यवर्णितत्वादित्याशङ्क्याह **स्मे**ति. सर्वलोकप्रसिद्धैषा लीला, अतो नालौकिकप्रकारो ज्ञाने वक्तव्यः. **मुखमि**त्येकवचनमेकस्यावेशितत्वेन प्रकटमेकमेव मुखमिति ज्ञापयितुं; तदग्रे विस्तरेण वक्ष्यते. ननु मुखस्य भक्तिरूपत्वात् तत्र सम्यङ्निरीक्षणे जाते कथं लौकिकभावः सिध्येदित्याशङ्क्याह **मुग्धस्मिताल्प-**

प्रकाशः

रुभयोरित्यादि. **उभयोर्**यशोदारोहिण्यो**र्मातृत्वं** स्तन्यदानद्वारकं **शङ्कितं भविष्यतीति** हेतोस्तयोः पुत्रत्व**बुद्धिदाढर्याय** तन्मातृपदं **निरूपितमि**त्यर्थः. **घृणा**पदतात्पर्यमाहु**र्भगवत्सम्बन्ध** इत्यादि. **भगवद्रूपेणे**ति भावप्रधानो निर्देशः. **निरूपिते**त्यर्थद्वयेन

लेखः

मित्यर्थः. **भगवत्सम्बन्धेपी**ति. तथा च भगवदतिरिक्तपुरुषार्थानां स्फूर्तिरिव न जाता, सर्वत्र घृणैव जातेत्यर्थः. **सुगन्धा भवन्ती**ति, दोषस्य सत्तिरोभावरूपत्वादादितः सुगन्धा एवेत्यर्थः. **विजातीयैश्चे**ति तिरोहितसदंशगन्धैर्दुष्टगन्धैरित्यर्थः. **अन्यथे**ति, तिरोहितसदंशगन्धा दुष्टगन्धा भवन्तीत्यर्थः. मूलेच्छया सत्तिरोभावो

दशनमिति. स्मितस्य दन्तानां च मायास्नेहरूपत्वान्मोहकत्वम्. मुग्धं सुन्दरं स्मितमल्पता स्वासक्तिजनकता च निरूपिता. मोहकं त्वन्यत्रैवासक्तिं जनयति, अल्पदशनानि च तथा. क्षीरकणसहिता दन्तपङ्क्तिरुक्ता. अतो लौकिकालौकिकभावयोर्मिश्रणात् प्रकृष्टो मोदः॥२४॥

एवं लीलात्रयं फलान्तं निरूपितम्. स्वतःस्थितयोर्लीला आह **यर्ह्यङ्गने**ति त्रिभिः.

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जगृहुर्हसन्त्यः ॥२५॥

अत्र सर्वा एव स्त्रियोऽधिकारिण्यः; अन्यासां सामान्यतो निरोधाभावे तत्सङ्गदोषेण जनन्योर्निरोध उच्यमानो न भवेत्. राजसभावास्तु कोटिशो भवन्ति, तान् सर्वानेव सङ्ग्रहीतुं **यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावि**त्युक्तम्. अङ्गनास्तु तरुण्यस्तासां दर्शनीया कुमारलीला ययोः. तास्त्रिविधा भवन्ति– कौतुकाविष्टा

प्रकाशः

निरूपिता. **लौकिकभाव** इति पुत्रभावः. **मायास्नेहरूपत्वादि**ति– "हासो जनोन्मादकरी च माया मोहादयः स्नेहकला द्विजानी"तिवाक्यात् तथा. लौकिकभावसिद्धिं व्युत्पादयन्ति **मोहकं त्वि**त्यादि. तथा च स्मिताल्पदशनत्वरूपं धर्मद्वयं **मोहकं सदन्यत्र** लौकिकत्वेन भासमाने पुत्र **एवासक्तिं जनयती**ति तथेत्यर्थः ॥२४॥

यर्ह्यङ्गनेत्यत्राधिकारिण्य इति निरोधाधिकारिण्यः. तासां निरोधप्रयोजनमाहु**रन्यासामि**त्यादि. **राजसभावा** इति रसोद्दीपका भावाः. **जातानुभावानामि**ति.

लेखः

विजातीयोपहत्या च तथेति **च**कारः. **अल्पते**ति दशनानामिति शेषः. अतः स्वत्वभावपूर्विकाया आसक्तिस्तज्जनकतोक्तेत्यर्थः. उभयोर्लौकिकभावसाधकत्वं विवृण्वन्ति **मोहकं त्विति, अल्पे**ति; **तथा** स्वत्वरूपोपाधावासक्तिं जनयन्तीत्यर्थः. तथा चोभयोरन्यत्रासक्तिजनकत्वात् लौकिकभावसाधकत्वमिति भावः. **अत** इति विशेष्यस्य मुखस्य तादृशविशेषणवत्त्वादित्यर्थः. मुखस्य भक्तिरूपत्वादलौकिकभावसाधकत्वं विशेषणस्योक्तरीत्या लौकिकभावसाधकत्वं ज्ञेयम् ॥२४॥

यर्ह्यङ्गनेत्यस्याभासे **स्वतः स्थितयोरि**ति, कथञ्चिदन्याश्रितत्वेपि स्थितिः स्वत एव, न तूत्सङ्गे इत्यर्थः.

व्याख्याने. **राजसभावा** इति उद्दीप्तरसभावा इत्यर्थः. सर्वयाङ्गप्राशस्त्यं तारुण्य एव भवतीत्याशयेनाहुः **अङ्गनास्तु तरुण्य** इति. **प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहाः**

रसाविष्टाः कामाविष्टाश्चेति. यदैव तौ तासां दर्शनीयलीलौ तदैवातिमुग्धत्वख्यापनार्थं वत्सपुच्छावलम्बनेन स्थितौ भवतः. लौकिकाभिनिवेशभयाच्छुकेन न विशेषत उक्तः. कुमारोऽत्र द्विवार्षिकः, कुत्सितो मारो यस्मादिति कन्दर्पकोटिलावण्याधिकसुन्दर उक्तस्तद्गतोत्कृष्टभावा अप्यस्मिन् निरूपिताः. अङ्गनानां दर्शनीयभावनार्थं जातानुभावानां वा निर्भयेन दर्शनार्थं **यर्हीति**. तृणावर्तवधपर्यन्तमन्यदा वा यावदयं भावो न जात इति तावन्निरन्तरदर्शनं न जातमिति ज्ञापितम्. दृष्टिस्पर्शसम्बन्धैस्त्रिविधाः सुखदा उक्ताः. एतादृशा**वङ्गनादर्शनीयकुमारलीलौ अन्तर्व्रज** इति व्रजमध्ये सर्वासामेव दर्शनयोग्यस्थाने **तदबला** व्रजबाला अन्यत्र गमनयोग्यतारहिताः **वत्सैरितस्ततोनुकृष्यमाणौ जगृहु**रितिसम्बन्धः.

प्रकाशः

अत्र ह्यङ्गना द्विविधा— जातभगवदनुभावास्तद्रहिताश्च. तथा चैतावत्पर्यन्तमजातानुभावानां ननान्द्रादीनां भयेन पूर्वं[१]ताभिरहर्निशं दर्शनं कर्तुं न शक्तमिदानीं तु तासां ननान्द्रादीनामपि तथात्वेन[२] तदिष्टसिद्धिरप्रत्यूहेति भावः. **त्रिविधा** इति भगवल्लीलेत्यर्थः. **अन्यत्र गमनयोग्यतारहिता** इति[३] भगवदेकनिष्ठा इत्यर्थः. वत्सपुच्छावलम्बनतात्पर्यमाहुर्**भगवानि**त्यादि. **भगवांल्लीलार्थं** कर्माङ्गवदंशः शिपिविष्टो

लेखः

हसन्त्य इतिपदत्रयार्थमाहुः **कौतुकाविष्टा** इति त्रयेण. कुमारपदे पञ्चवर्षत्वभ्रमव्युदासायाहुः **द्विवार्षिक** इति. सार्धद्वयवार्षिकस्य तु वृन्दावने गमनं वक्ष्यते अतस्तथेति भावः. **कन्दर्पेति**, कन्दर्पकोटेरिव यल्लावण्यं तेनाधिकसुन्दर इत्यर्थः. **तद्गतेति**, कुत्सितत्वादिकमपि साजात्य एव भवतीति कन्दर्पगता अपि भावा निरूपिताः, परन्तूत्कृष्टाः सौन्दर्यादयो न तु हरदग्धत्वादय इत्यर्थः. **अयं भाव** इति उत्थितत्वरूपो भावो **यावत् न जातस्तावत्** यशोदाद्यावृतत्वेन **निरन्तरं** अन्तरं व्यवधानं तद्रहित**दर्शनम् इति** एवं प्रकारेण **न जातं** यशोदाद्युत्सङ्गे एव दृष्टस्तथा च तद्दर्शनीयलीलत्वमुत्थितलीलायामेव जातमित्यर्थः. **अन्यत्रेति**. वनरहःस्थलादिषु गमनं कार्यान्तरव्याजेन सख्यादिमाध्यस्थ्येन वा भवति, एतास्तु गवादिकार्ये एव नियुक्ताः अतः कार्यान्तराभावादन्तरङ्गसख्याद्यभावाच्च वनरहःस्थलादिषु **गमनयोग्यतारहिता** इत्यर्थः. **वत्सा** इति **गोपुत्रा** मूढा अतो भगवद्गृहीता न

---

१. पूर्वाभिः. २. तथात्वे. ३. इत्यादि.

वत्सा गोपुत्राः, भगवाँल्लीलार्थं कर्माङ्गदेवताभावं तदवलम्बनं वा करोति. ते तु मूढा इतस्ततः प्राकृते वैकृते च संयोजयन्ति यथा गर्भपादच्छेदनं कृत्वा "विष्णवे शिपिविष्टाय जुहोती" "त्यतिरिक्तस्य शान्त्या" इति फलार्थम्. एतेपि वत्सा भगवता प्रकर्षेण गृहीतं पुच्छं येषां; द्वयोरेकस्य वा प्रकर्षेण ग्रहणान्न तेषां धावनम्. प्रदर्शनार्थमेव यतो मुग्धभावः अतो न स्खलनमत्र. **उभाविति** भगवान् स्वत आवेशतश्च क्रीडतीति वक्तुम्. अनुकर्षणं शनैः शनैः कर्षणं भगवानपि वत्समाकर्षति वत्सतर्यश्च भगवन्तं, अतो वत्सस्यापि नेष्टगतिः, अत **इतस्तत** आकर्षणम्. **वत्सैरि**तिबहुवचनं धृतस्य पलायनेपि पुनरन्यग्रहणार्थम्. एवं पराधीनभगवद्गतिं दृष्ट्वा **प्रेक्षन्त्य** एव स्थिताः, अत्रैव तात्पर्ययुक्ता उपनिषद इव स्थिताः, नत्वन्याधीनत्वेनान्यथा

प्रकाशः

"यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिरि"तिश्रुत्यन्तरात् पशुस्वामी कश्चित् कर्माङ्गदेवता तद्भावं करोति **तदवलम्बनं** कर्माङ्गावलम्बनं **वा करोतीति ते** कर्माङ्गभूता **मूढाः** पुरुषा**स्त्वितस्ततः** सार्वविभक्तिकस्तसिर्यत्तत्फलार्थं **प्राकृते वैकृते च** कर्मणि तां देवतां **संयोजयन्ति.** तत्रोदाहरणमाहुर्**यथे**त्यादि. यथोपाकृतायां वपायां गर्भदर्शने सति गर्भस्य दक्षिणं पूर्वपादं प्रच्छिद्य "विष्णुं शिपिविष्टं यजती"ति कल्पसूत्रात् क्रमेण गर्भपादच्छेदनं कृत्वा "विष्णवे शिपिविष्टाय जुहोती" तिश्रुत्या होमविधान"मपि वा एतस्य यज्ञ ऋध्यते यस्य हविरतिरिच्यते यः पशोर्भूमा या पुष्टिस्तद्विष्णुः शिपिविष्टोतिरिक्त एवातिरिक्तं दधात्यतिरिक्तस्य शान्त्या" इति फलार्थमुक्तम्. तथा च "फलमत उपपत्तेरि"तिन्यायेन फलं ददद् भगवान् कर्माङ्गदेवताभावं प्राप्य कर्माङ्गद्रव्याद्यवलम्बनं वा कृत्वा मूढानां प्राकृतं वैकृतं च ददाति न तु स्वरूपेणेति

लेखः

तिष्ठन्तीत्यर्थः. इदं दृष्टान्तपूर्वकं विशदयन्ति **भगवानिति**. कर्मणो मेषीहोमस्याङ्गं गर्भहोमस्तत्र देवतात्वं स्वस्य **करोति** सम्पादयतीत्यर्थः. **तदवलम्बनं** तस्य कर्मणोऽवलम्बनं तदङ्गत्वमित्यर्थः, प्रतितन्त्रन्यायेन देवताप्यङ्गमिति भावः. **ते त्विति** कर्मजडास्तु **मूढा** भगवान् लीलार्थमेव हीनभावमवलम्बते वस्तुतस्तु सर्वाधिपतिरित्याकारकज्ञानरहिताः **प्राकृते वैकृते** नित्ये काम्ये **च** कर्मणि भगवन्तं **संयोजयन्ति** न तु स्वयं तत्सम्बद्धा भवन्ति, साक्षाद्भगवत्सेवां न कुर्वन्तीत्यर्थः. तत् स्पष्टयन्ति **यथेति**. मेष्यालभने कदाचित् तस्यां गर्भसम्भवे तस्य होम एवं क्रियते. अत्र चतुर्थ्याविष्ट्योर्देवतात्वम्. एवं दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाहुः **एतेपि वत्सा** इति, यथा कुर्वन्तीति

ज्ञातवत्यः. एवं कर्मभ्यस्त्याजयित्वा स्वार्थं ग्रहणमाश्रमपरित्यागव्यतिरेकेण न सम्भवतीति गृहं बिडालादिभिरप्युपद्रुतं परित्यज्य तदवेक्षामकृत्वा **जगृहुः. हसन्त्य** इति. अस्मत्परिग्रहे नैवमितस्तत आकर्षणं भवति न वा स्खलनसम्भावना. **प्रेक्षन्त्यो** ज्ञानपरा **उज्झितगृहा** विरक्ता **हसन्त्यः** फलार्थिन्यस्त्रिविधानां ग्रहणार्थमुक्तम्. ग्रहणानन्तरं विनियोगस्तु पूर्वमेव कथितः. सम्भूयग्रहणपक्षे स्वतोपि सर्वतो नयनं सम्भवति, **उज्झितगृहा** इतिवचनादन्यत्रापि नयनं, **हसन्त्य** इत्यपि तथा; किं बहुना, सर्वप्रकारेण **जगृहुः.** सर्वासामेव यथा ग्रहणं भवति तथा भगवान्. गोपुच्छधारणलीलेयं पराधीना निरूपिता ॥२५॥

स्वतो गतिलीलामनेकविधामाह शृङ्गीति.

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोनवस्थाम् ॥२६॥

टिप्पणी

उज्झितगृहा इत्यत्र. सूचितमानुषङ्गिकमप्यर्थमुक्तवन्तः **एवं कर्मभ्य** इत्यादिना. **प्रेक्षन्त्यो ज्ञानपरा** इत्यादि. उक्तत्रिविधासु तासु मध्ये त्वाद्याः कौतुकं मत्वा वत्सपुच्छालम्बनेन गतिं द्रष्टुमेवोद्यता इति ज्ञानपराः. प्रियदर्शनकटाक्ष-स्पर्शादिरसाविष्टानामन्यत्र रागाभावः स्पष्टः. तृतीयास्त्वेकाकी प्रियः प्राप्त इति सन्तोषाद्धसन्त्यो जाताः. **विनियोगस्त्विति** उक्तत्रैविध्यकथनेनेत्यर्थः. अङ्गं नयन्तीत्यङ्गे वा नयन्तीति तथेति तदुक्त्येति वा ॥२५॥

प्रकाशः

बोधितम्. **एवं कर्मभ्य** इत्यादिना यदुक्तं तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**रुज्झिते**त्यादि. तथा च मर्यादामार्गानुसरणात् तदानुषङ्गिकमित्यर्थः. शेषं स्फुटम् ॥२५॥

शृङ्गीत्यत्र. ननु **तन्मातरावि**त्यत्र प्रमोदात्मकफलकथनेन मातृचरणनिरोध उक्तस्ततो **यर्ही**त्यत्र मातृचरणानां निरोधार्थमन्यासामपि प्रासङ्गिको निरोध

लेखः

शेषः. भगवान् लीलार्थमेवं करोतीति ज्ञानरहिता भगवन्तं प्राकृतं मत्वा तत्सम्बद्धा न तिष्ठन्त्यतोऽनुकर्षणं भवतीत्यर्थः. **एवं कर्मभ्य** इति स्वान्तःकरणमिति शेषः. गोप्यः स्वान्तःकरणं **कर्मभ्यः** सकलेभ्य**स्त्याजयित्वे**त्यर्थः. **त्रिविधानां ग्रहणार्थमिति**— सत्त्वरजस्तमोभेदेन त्रिविधानां ग्रहणार्थं प्रेक्षणगृहत्यागहासभेदेन त्रैविध्यमुक्तमित्यर्थः ॥२५॥

गोपिकास्तु स्वत्वभावदोषरहिताः अलौकिकभावेनापि वशीकृताः विचाराभावाद् रसेनापि तारुण्यात् कौतुकेनाप्यन्यार्थं च निरूपिताः शीघ्रमेव विस्मृतप्रपञ्चा भगवदासक्ता निरूपिताः. यशोदारोहिण्यौ तु तद्विपरीते इति तयोस्तदुभय-सम्पादनार्थं षड्गुणैः स्वेन च सप्तधा लीलां कृतवान्.

इष्टस्य दुष्टसम्बन्धे शिष्टः पुष्टिं विमुञ्चति ॥(१३)॥

प्रकाशः

उक्तस्ततः पुनरपि मातृचरणानां निरोध उच्यते तत्र को विशेष इत्याकाङ्क्षायामाहु-**र्गोपिकास्त्वि**त्यादि. **स्वत्वभावे**ति गृहविषयकस्वत्वभाव इत्यर्थः. **रसवशेनापी**ति **वशीकृता** इति पूर्वेणैव सम्बन्धः; **कौतुकेनापी**त्यत्रापि तथा. **अन्यार्थं च निरूपिता** इति साधारणकार्यार्थं नियुक्ताः. तथा चैवं षड्भिर्हेतुभि**र्भगवदासक्ता निरूपिता** इत्यर्थः. **तद्विपरीत** इत्युक्तषड्धर्मरहिते. **तदुभयसम्पादनार्थमि**ति दोषाभावा-लौकिकभावसम्पादनार्थम्. ननु यशोदादिनिरोधस्य प्रकारान्तरेणापि सिद्धत्वात्[1] स्वयं दुष्टेषु गत्वा निरोधकरणे को हेतुस्तत्राहु**रिष्टस्ये**त्यादि. अभ्यर्हितत्वेनेच्छा-विषयस्य तत्क्लेशोत्पादकस्य **दुष्टस्य** संसर्गे सम्भवति सति **शिष्टः** स्वत्वादिधर्मवान्

लेखः

शृङ्गीत्यत्र **स्वत्वभावे**ति. मातरौ भगवति स्वत्वं जानीतो न तु स्वामित्वमिति सर्वात्मभावविचारेण दोष इत्यर्थः. **अलौकिकभावेने**ति— "सूक्ष्मरूपेण विश्वास-मुत्पाद्य प्रतिबन्धके तेनैवापगते स्वेष्टरूपमाविष्करोति ही"ति कारिकोक्तेन लोकावेद्येन भावेनेत्यर्थः. पूर्वश्लोके **अङ्गना**पदस्य कृदन्तत्वेनापि टिप्पण्यामर्थ उक्तः सोत्र **स्वत्वभावे**त्यनेनानूदितः— स्वामित्वभावनावत्यः अतो भगवदर्थमङ्गनयनं कुर्वन्तीति. तद्धितान्तत्वेनाङ्गप्राशस्त्यरूपोर्थः सुबोधिन्यामुक्तः सोत्र **अलौकिक-भावेने**त्यनेनानूदितः— तरुणीत्वात् तादृशभावेन **वशीकृता** भवन्तीत्यर्थः. **उज्झितगृहा** इति पदेन रसाविष्टा उक्तास्ता अनुवदन्ति **विचाराभावादि**ति. उज्झितगृहाणां गृहविचाराभावाद् **रसेनापि** वशीकृता भवन्तीत्यर्थः. **प्रेक्षन्त्यः** कौतुकाविष्टा उक्तास्ता अनुवदन्ति **तारुण्यादि**ति. **हसन्त्यः** कामाविष्टा उक्तास्ता अनुवदन्ति **अन्यार्थं चे**ति, कामफलार्थमित्यर्थः. एकत्रान्येषामपि समुच्चयइति समुच्चयबोधकं पदं सर्वत्रोक्तम्. शृङ्ग्यादिषु सप्तसङ्ख्यातात्पर्यमाहुः **षड्गुणैः स्वेन चे**ति. **इष्टस्ये**ति. **इष्टस्ये**च्छाविषयस्य **दुष्टसम्बन्धे** सति **शिष्टो**वशिष्टः इच्छाश्रयः **पुष्टिं** भोजनादिभिः

---

१. °सिद्धेः.

नान्यथेति हरिः प्रीतः सत्यः क्रूरगतोऽभवत् ।
शृङ्गिणो दंष्ट्रिणश्चैव पक्षिणश्च विघातकाः ॥(१४)॥
चेतनास्त्रिविधा एव ततोन्ये तु चतुर्विधाः ।
कृत्रिमाः सहजास्तेपि खड्गाग्निजलकण्टकाः ॥(१५)॥

शृङ्गिणो गावः. **अग्निर्** धूमार्थं स्वेदार्थं वा कृतः. **दंष्ट्रिणो** मर्कटाः. **असिः** खड्गादिसाधनानि. **जलं** कूपगर्तादिस्थितं कलशादिस्थितं वा पातनात्. **द्विजाः** पक्षिणः शुकादयः.

प्रकाशः

निरोधाधिकारी **पुष्टिं** गृहादावतिपोषणं, तदासक्तिमिति यावत् तां **विमुञ्चति** विशेषेण त्यजति **नान्यथा** प्रकारान्तरेण न त्यज**तीति**हेतोः **सत्य**रूपः **प्रीतो हरिः क्रूर**निकटे **गतोऽभवत्.** नन्वेतावत्करणे किं प्रयोजनमत उक्तं **हरि**रिति. तथा सति सर्वेषामेव तथा कुतो न करोतीत्यत उक्तं **प्रीत** इति. ननु प्रीतत्वेपि प्रकारान्तरेण निरोधः कर्तव्यो न तु स्वविरोधेनेत्यत उक्तं **सत्य** इति. तथा च स्वभावान्यथा-

लेखः

स्वस्य पोषणं **विमुञ्चति, अन्यथा** इष्टस्योत्तमसम्बन्धे **न** मुञ्चति. तदा त्वासक्तेस्तुल्यत्वाद् गृहकार्यमेव कुर्या**दिति** हेतोः **हरिर**नुचितदुःखजनककृतिरपि **सत्यः** सद्रूपत्वेन दुष्टसम्बन्धानर्होपि **क्रूरगतः प्रीतः** सन्न**भवद**ित्यर्थः. एतेन निरोधार्थं स्वरूपमर्यादामपि न मनुते इत्युक्तम्. खड्ग-जले सहजे, अग्नेः कृत्रिमत्वायाहुः **अग्नि**रिति. धूमे कृते

योजना

इष्टस्य दुष्टसम्बन्धे इति कारिका. **इष्टस्य** भगवतः **दुष्टसम्बन्धे** दुष्टाः शृङ्ग्य-ग्निदंष्ट्र्यादयस्तैः सह सम्बन्धे निकटस्थित्यादिरूपे जाते **शिष्टः** यशोदारोहिण्यादिः **पुष्टिं** स्वाधीनतां **विमुञ्चति** भगवदधीनो भवति. अन्यदा तु स्वाधीन एव व्यवहरन् भगवन्तं निजाधीनं करोति. "कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यत" इति निबन्धोक्तलक्षणेन पुष्टिशब्दवाच्यं स्वाधीनत्वमुच्यते इति बोद्धव्यम् ॥२६॥

कारिकार्थः

शृङ्ग्यग्नीत्यत्र **इष्टस्ये**ति. **इष्टस्य** इच्छाविषयस्य स्नेहविषयस्य शृङ्ग्यादि**दुष्टसम्बन्धे** सति **शिष्टः** इष्टेच्छावतोर्मध्ये अवशिष्ट इच्छाश्रयः **पुष्टिं** भोजनादिभिः स्वस्य पोषणं **विमुञ्चति** त्यजति, **अन्यथा** इष्टस्य उत्तमसम्बन्धे **न** मुञ्चति **इति** हेतोः **हरिः प्रीतः** सन् **सत्यः** सत्यरूपः भक्तनिरोधार्थं शृङ्ग्यादि**क्रूरगतोऽभवद**ित्यर्थः. **शृङ्गिण** इति (१३-१४).

कण्टकानि च्छित्वा स्थापितानि परितो वेष्टनरूपाणि. **तेभ्यो** निवारणं वचनान्न भवति, आज्ञाकारित्वेपि चाञ्चल्यात्. वस्तुतस्त्वाज्ञां दातुमपि न प्रेरयति. उपद्रवज्ञाने निर्बन्धेन निवारणं, तत् तु कर्तुमयुक्तमित्याह **क्रीडापराविति, क्रीडैव परो**त्कृष्टा नियामिका ययोर्बालकयोः. तर्हि क्रीडासाधनानि सम्यक्स्थले कृत्वा देयानीति चेत् तत्रा**हातिचलाविति**, अत्यन्तं चलौ. तर्ह्यन्यः कश्चित् तदवेक्षकः स्थाप्य इति चेत् तत्राह **स्वसुताविति**. स्वेनैव सूताविति तदर्थं क्लेशसहनात् स्नेहाधिक्याच्च नान्यविनियोगं कुरुतः. क्रिययैव च निषेधः कर्तव्यस्ततस्तत आदाय सम्यक् स्थाने स्थापनीयौ. तथा प्रतिक्षणं क्रियमाणे गृहकार्यं तयोरपि भोजनस्नानादिनिमित्तकार्यं न सिध्येत् तदाह **गृह्याणि कर्तुमपीति**. गृहेऽवश्यकर्तव्यानि **गृह्याणि**. लौकिकनिष्ठता भगवन्निष्ठता च परस्परं विरुद्धा. आसक्तिस्तुल्या मध्यलीलैवेति. पञ्चमलीलायां तु वक्ष्यति. तदर्थं सर्वपरित्यागं; उभयोस्तुल्यत्वख्यापना**यापि**शब्दः. यदा **न शेकाते** तदा **मनसोनवस्थामापतु**र्वैयग्र्यं चिन्तां च प्राप्तवत्यौ. **तयोर्जनन्याविति** ताभ्यां सह क्रिया निषिध्यत इति ज्ञापितम्. क्षणमपि मनसो नैकत्र स्थैर्यं तयोर्जातमित्यर्थः॥२६॥

टिप्पणी

गृह्याणि कर्तुमित्यत्र **पञ्चमलीलायामि**ति. जन्मप्रकरणयुक्तं फलप्रकरणं पञ्चममिति तत्रोक्ता सा पञ्चमीति ज्ञेयम् ॥२६॥

प्रकाशः

कृत्यभावेन यदा लौकिकप्रकारान्तरेण तत् सिद्धं न दृष्टवांस्तदा ब्रह्मवाक्यसत्यत्वार्थं तथा कृतवानित्यर्थः (१३ $\frac{१}{२}$). **स्वेदार्थमि**ति गोदोहनादिपात्रगन्धनिरासकस्वेदार्थम्. कलशीयजलस्य दुष्टत्वे हेतुमाहुः **पातनादि**ति. बालको हि बाल्यात् कलशारोहणं करोति तथा सति विपर्येति चेत् कलशस्तदा तथेत्यर्थः. **पञ्चमलीलायामि**त्यस्य तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**र्जन्मे**त्यादि. सुबोधिन्यां **सह क्रिया निषिध्यत** इति. पाकादौ धूमतापादिना स्नानादावनौचित्यादिना प्रतिरोधात् तथेत्यर्थः. यद्वा भगवत्क्रिया न

लेखः

गवादिषु मशका नायान्तीति **धूमार्थं** अग्निना पयः स्विन्नं भवतीति पयसः **स्वेदार्थं** वेत्यर्थः. कण्टकानां कृत्रिमत्वायाहुः **कण्टकानी**ति. अत उभयोः कृत्रिमत्वमितिभावः. **गृह्याणी**त्यत्र **सह क्रिये**ति. शृङ्ग्यादिभिः **सह क्रिया** जननीत्वात् **ताभ्यां निषिध्यते** इत्यर्थः॥२६॥

एवं मात्रोर्निरोधार्थं बहुविधां लीलामुक्त्वा स्वतन्त्रतया स्थितस्य भूमेर्मर्दन-क्लेशनिवृत्त्यर्थं पद्भ्यां संवाहयन्ताविव गतिविलासं कृतवन्तावित्याह **कालेनाल्पेने**ति.

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोव्रजे ।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥२७॥

यदर्थं तत् कर्तव्यं तत् प्रयोजनमल्पमित्**यल्पेनै**व **कालेन गोव्रजे पद्भिर्विचक्रमतुः, अञ्जसा**ऽनायासेनैव, नान्यावलम्बनापेक्षा. कालो गत्यात्मकइति क्रीडायामिवात्रापि करणता. अल्पस्य कालस्य कोमलत्वात् कोमलचरणस्पर्शे भूमेः

प्रकाशः

केनापि निरोद्धुं शक्या किन्तु भगवानेव यथा जननीत्वं सम्पादितवांस्तथा स्वक्रियानिरोधकत्वमपि सम्पादितवांस्तथा च भगवत्कर्तृकक्रियानिरोधकाले स्वयमेव निरोधं सम्पादितवान्. अस्मिन् पक्षे **ताभ्यां** बालकाभ्यां **सह क्रिया निषिध्यत** इत्यर्थो ज्ञेयः ॥२६॥

कालेनेत्यस्याभासे(व्याख्याने?)**ऽत्रापी**त्युत्थानरूपपादकार्येपि. **अधिकार-बोधकमि**ति राजत्वेन नैपुण्यबोधनात् महाराजलीलारूपचरित्रश्रवणाधिकारबोध-कमित्यर्थः. **निरोधानुसन्धानार्थमि**ति– "भक्तिर्हरावि"त्यनेन स्वयं पृष्टस्य सर्वेषां

लेखः

कालेनेत्यस्याभासे **एवमि**ति. **भूमेरे**तदर्थं रामकृष्णौ **गतिविलासं पद्भ्यां कृतवन्तावितिहे**तोः **स्वतन्त्रतया** भिन्नतया न त्वन्यावलम्बनेन **स्थितस्य** रामस्य कृष्णस्य च **आह** लीलामिति शेषः. मूले **रामः कृष्णश्चे**त्युक्तत्वादत्रापि **स्वतन्त्रतया स्थितस्यै**कवचनम्.

कालेनाल्पेनेत्यत्र आभासोक्तं अस्या लीलाया भूक्लेशनिवृत्त्यर्थकत्वं व्युत्पादयन्ति **गत्यात्मक** इति. गतिरात्मनि यस्येति पूर्ववद् व्याख्यानम्. अतो यथा **क्रीडायां** "विजह्रतुरि"तिपदोक्ते विहारे **करणतो**क्ता **तथात्रापि विचक्रमतुरि**ति पदोक्ते गमनेपि **करणते**त्यर्थः. **कोमलत्वादि**ति कोमलगत्याधारत्वादित्यर्थः. रिङ्गणादल्पकालानन्तरं या गतिः सा [१]कोमलैः भवतीति भावः. गतेः कोमलत्वं चरणकोमलत्वेनैवेति तेन चरणयोः कोमलत्वं सूचितमित्याशयेनाहुः **कोमल-चरणे**ति. तथा च संवाहनन्यायेन भूक्लेशनिवृत्त्यर्थकत्वमस्या लीलायाः सूचितमिति

१. कोमलैवेत्यपि पाठः.

खेदो गच्छतीत्यल्पत्वमुक्तम्. **राजर्षे** इत्युभयधर्मवत्त्वेन सम्बोधनमग्रिमचरित्र-श्रवणाधिकारबोधकं निरोधानुसन्धानार्थं च. **रामः कृष्णश्चे**तिनामग्रहणं रत्युत्पादन-सामर्थ्यजननायान्तःस्थितरूपेण बहिः परमानन्दविषयरूपेण च भूमेः सुखदानार्थम्. स्वतन्त्रतयोभयोस्तथात्वाय भिन्नतया निरूपणम्. **च**कारस्तूभयसमुच्चयार्थः, विषयस्यान्तर्नयने मनसो बहिरानयने च विनियोगात्. **गवां व्रज** इति खुराघातक्लेशः स्पष्टतया तत्र निरूपितः. जान्वाघर्षणेनैव दैत्यवधेग्रिमकार्यं व्यर्थं स्यादिति

प्रकाशः

निरोधस्यानुसन्धानार्थमृषित्वमुक्तमित्यर्थः. तथा च भवत्पृष्टनिरोधमध्ये किञ्चिदंशमुक्त्वा स एव वैशिष्ट्येन प्रतिपाद्यत इति नासङ्गताभिधानशङ्का कर्तव्येत्येतदर्थमित्यर्थः. **जनना**येति प्रकटीकरणाय. रत्युत्पादनसामर्थ्यप्रकटने हेतुमाहु**रन्तरि**ति. यतो रामो योगिध्येयत्वादन्तःस्थितरूपेण रत्युत्पादनसमर्थो भगवांश्च भक्तानुरोधेन तथैवातस्तद्वाचकयोस्तथात्वं युक्तं, बहीरूपेण भूमेः सुखदानं च युक्तमित्यर्थः. **तथात्वाये**ति समर्थत्वाय. भूम्यतिरिक्ते सुखदानव्यवस्थामाहु**श्चकार** इत्यादि; सम्भूय सुखदानाभिप्रायार्थः. तदेव विशदयन्ति **विषयस्ये**ति. रामो हि ध्येयत्वाद् बहिःस्थितं विषयमन्तर्नयति, लौकिकं त्याजयित्वालौकिकं सम्पादयति, भगवांश्च तद्भोगार्थं मनआकर्षणद्वारा सर्वं बहिरानयतीति तथेत्यर्थः. अत एव "हरेः प्रियचिकीर्षये"त्यपि सङ्गच्छते. मर्दनक्लेशस्वरूपमाहुः **खुराघाते**त्यादि. पद्भिश्चलने हेतुमाहु**र्जान्वि**त्यादि ॥२७॥

लेखः

भावः. **रत्युत्पादने**ति. रमयतीति **रामः**, तथा स्वनिष्ठस्य **रत्युपादनसामर्थ्यस्य** तासु **जननाय**; अतः परं ता रमयन्तीत्यर्थः. **रामः कृष्णश्च गोव्रजे** इति समभिव्याहारादपि तथेत्याशयेनाहुः **खुराघाते**ति ॥२७॥

योजना

रामः कृष्णश्च गोव्रजे इत्यस्य विवृतौ **अन्तःस्थितरूपेणे**ति रामेणेत्यर्थः, "रमन्ते योगिनोऽनन्त" इति श्रुतेः रामस्य योगिध्येयत्वेन अन्तःस्थितरूपत्वात्. **बहिः परमानन्दविषयरूपेण चे**ति कृष्णेनेत्यर्थः, "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचक" इति श्रुतेः कृष्णस्य परमानन्दरूपत्वात्. **विषयस्यान्तर्नयने** इति– योगिध्येयत्वेन ध्यानविषयस्य अन्तर्हृदि समानयनं रामस्येत्यर्थः. **मनसो बहिरानयने चे**ति. कृष्णस्तु परमानन्दरूपत्वात् परमसौन्दर्येण वशीकुर्वन् निजरूपं पश्यतां मनो बहिः स्वस्वरूपे आनयतीति हृदयम् ॥२७॥

पद्भिरिति. अनेकधा पादस्थापनैर्विशेषेण **चक्रमतुः**. "छन्दसि लुङ्लङ्लिट" इतिस्मृतेः भगवत्क्रियाया नातीतत्वं सर्वथा ज्ञातव्यम् ॥२७॥

एवं राजसीं लीलां कृत्वा लीलान्तरं कृतवानित्याह **ततस्त्वि**ति त्रिभिः[1].

राजसतामसीं तामसराजसीं च स्वतो वक्तुमनुचितां मत्वान्यमुखेन निरूपयितुं मध्ये वाक्यान्तरं ततश्चतुर्भिर्निरूपितं भवति. एवं भूमिक्लेशनिवृत्त्यनन्तरमक्लिष्टभूमौ स्वांशैर्बालकैः सह महाराजलीलां कृतवानित्याह **ततस्त्वि**ति.

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥२८॥

तुशब्दः पूर्वलीलाव्यावृत्त्यर्थः; नातः परं परतन्त्रलीला. स्वातन्त्र्ये सामर्थ्यार्थमाह **भगवानि**ति. आवेशिनः स्वातन्त्र्ये दौर्बल्यात् **कृष्ण** एवोक्तो, **रामस्तु सह**भावेन. एकेन कालेन भगवत्सेवकेन ते गृहीता इति तैः सह क्रीडेति ज्ञापयितुं **वयस्यैरि**त्युक्तं, समानं वयो येषां ते वयस्याः. देशोप्येक इत्याह **व्रजबालकैरि**ति. क्रीडायां बाला मुख्याः. रामस्तु स्वान्तर्निविशतीति **सहराम** इत्युक्तम्. अत्र लीलायां साक्षान्निरोधो व्रजस्त्रीणामेव, तासामेव तथात्वात्. ज्ञानद्वारा यशोदायास्तत्र सर्वथा गृहीतपरित्याजनार्थं लीलां कुर्वन्नादौ लौकिकप्रकारेण तासामनुरागं जनितवानित्याह **व्रजस्त्रीणां मुदं जनयन्नि**ति. व्रजसम्बन्धान्निरोध आवश्यकः. ययैव क्रीडया यथा कृतया तासां सन्तोषो भवति, न तु स्वसामर्थ्येन, अन्यथा प्रयोजनत्वेन करणे तन्निर्देशो न स्यात्. निरोधजनकत्वं स्वस्यैवेति स्वधर्मत्वेन निर्दिष्टम्. कार्यसाधनत्वेन बालकानामुपयोगो रामस्य रक्षकत्वेन; स्वतः सन्तोषजननम्. राजलीलायां च स्वयं राजा, मन्त्री रामः, सेवका बालका इति यावत्यो गोप्यो यादृग्भावापन्नास्तत्तदनुगुणां लीलामनन्तामेव भगवान् कृतवानित्यर्थः॥२८॥

टिप्पणी

ततस्विति त्रिभिरिति ततस्त्वत्यस्मादग्रिमैस्त्रिभिरित्यर्थः. तद्भाववतां निरोधहेतुत्वेन लीलायामपि ते गुणा उपचर्यन्ते ॥२८॥

व्रजस्त्रीणां मुदं जनयन्नित्यत्र **अन्यथे**ति **तन्निर्देशो न स्या**दित्यनेन सम्बध्यते. **अन्यथे**त्यस्यैव विवरणं शिष्टेन. तथा चानुषङ्गिकं फलं व्रजस्त्रीणां मुत्करणं न तु तदेक**प्रयोजनत्वेन** लीला**करण**मिति चेत् स्यात् तदा **व्रजस्त्रीणां मुदं जनयन्नि**ति शुको न वदेदित्यर्थः, अनावश्यकत्वादिति भावः. निरोधस्यात्रोद्देश्यत्वेनापि तथा मन्तव्यमिति हृदयम्. तर्हि तद्धर्मप्राधान्यात् 'ता मुमुदिर' इति वदेन्न तु प्रभुप्राधान्येनेति चेत्, तत्राह **निरोधजनकत्वं स्वस्ये**ति ॥२८॥

प्रकाशः

तत इत्यत्राभासे **राजसीं लीलामि**ति पादविक्षेपात्मिकां; क्रमु पादविक्षेपे, विक्षेपस्य राजसत्वादिति. प्रतीकस्यार्थमाहुष्टिप्पण्यां **तत** इत्यादि. ननु भगवतो गुणातीतत्वेन लीलानामपि तादृशत्वाद् राजसीत्वादिकं कथमुच्यत [2]इत्याशङ्क्याहु**स्तद्भावे**त्यादि. सुबोधिन्या**मन्यमुखेने**ति गोपीमुखेन. **तथात्वादि**ति लीलायोग्यत्वात्. **व्रजसम्बन्धादि**ति— व्रजस्तामसस्तत्सम्बन्धात् तामसभावयुक्तत्वात्. **स्वसामर्थ्येने**ति निरोधाजनकेन तेन. उक्ते मानमाहु**रन्यथे**त्यादि. तस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**रन्यथे**त्यादि **हृदयमि**त्यन्तम्. **शिष्टेने**ति **प्रयोजनत्व**पदेन. किञ्चिदाशङ्क्य परिहरन्तीत्याशयेनाहु**स्तर्ही**त्यादि. सुबोधिन्यां **निर्दिष्टमि**ति [1]मुत्कारणमिति शेषः. मुज्जनने प्रकारमाहु**र्यावत्य** इत्यादि. अनेन सात्त्विकी लीला सुखजनिका निरूपिता, "सत्त्वं सुखं सञ्जयती"ति वाक्यात् ॥२८॥

लेखः

ततस्त्वित्यत्र **स्वांशैरि**ति स्वसदृशैर्वयस्यैरित्यर्थः. **स्वान्तर्निविशते** इति यूथप्रकारेण लीलायां भगवद्यूथे निविशते इत्यर्थः. **तासामेव तथात्वादि**ति बहिरागत्य द्रष्टुं शक्तत्वादित्यर्थः. जनन्यास्तु महत्त्वेन बहिरागमनासम्भव इत्याशयेनाहुः **ज्ञानद्वारे**ति. **सर्वथा गृहीते**ति प्रपञ्चपरित्याजनार्थमित्यर्थः. **रामस्य रक्षकत्वेने**ति. भगवान् बालैः सह भुजबन्धादिलीलां करोति तदा तासां स्वस्मिन्नपि तथाभावनया तोषो भवति. पश्चाद् रामोपि बालैः सह तथा करोति तदा पूर्वसिद्ध एव सन्तोषो भूयः स्मरणाद् दृढो भवति –एवं रामस्य मुद्रक्षकत्वम्. एवं मुज्जनने उपयोगमुक्त्वा क्रीडायामुपयोगमाहुः **राजलीलायां चे**ति ॥२८॥

---

१. दशश्लोकात्मके रूपप्रकरणेत्रायं श्लोकोधिको वक्ष्यमाणलीलाद्वयप्रसिद्धिबोधक इति निर्भयरामभट्टाः.
२. लुप्तम्.

१. मुत्करण°.

यास्तु सर्वथा प्राकृतस्वभावा लौकिकवाक्यपरिनिष्ठिता वा तासां प्रपञ्च-विस्मरणं साधारणसात्त्विकलीलया न भवतीति यत्रैव ता आसक्तास्तदेव कार्यं नाशयंस्तन्निरोधं कृतवान्. तच्चेत् सह्यं स्यात् सर्वथा निरोधो न सिध्येदिति तत्कार्य-मसह्यमानमिति ज्ञापयंस्तथाविधा गोप्य उपालम्भं कृतवत्य इत्याह **कृष्णस्ये**ति.

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति प्रोचुः समागताः ॥२८/अ ॥

स्वतन्त्रकर्तृत्वं भगवत एवेति न बाला नापि राम उक्तः किन्तु **कृष्ण** एवोक्तः. **रुचिरं** मनोहरं भवत्येव. निरोधस्तु सिद्धः, तथापि न स्वतोस्माकं तथामन इति स्वदोषपरिहारार्थं यशोदायै निवेदयन्ति. ननु सर्वतः पूर्णा भगवत्कृपया प्राप्तसम्पदः कथमेवमुपालम्भं कृतवत्य इत्याह **गोप्य** इति. गोपभार्यात्वादेवं, न भगवति दोषदृष्ट्या. तथावचने निरोधो न सिध्येदित्याशङ्क्याह **कौमारचापलमि**ति. कौमारवयस एव चापलं चपलता, वयस एवायं दोषो न तु भगवत इति तासां बुद्धिः. **सम्यगागता** लोकन्यायेन समागता न तूपालम्भनार्थमेव. **तन्मातु**र्यशोदायाः **शृण्वन्त्याः** सत्याः **प्रोचुः**. एतादृशं वचनमयुक्तमपि सर्वलोकप्रसिद्धत्वादुच्यत इति स्वस्य दोषाभावख्यापनायाह **किले**ति ॥२८/अ॥

प्रकाशः

कृष्णस्येत्यत्र. ननु धौर्त्यलीलायाः किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायामाहु-**र्यास्त्वि**त्यादि. **लौकिकवाक्ये**त्यादि– लौकिकं यत् श्वश्र्वादिवाक्यं तत्र निष्ठावत्यः. **ज्ञापयन्नि**त्यस्य **तन्निरोधं कृतवानि**ति पूर्वेणैव सम्बन्धः. **तथाविधा** इति **यास्त्वि**त्यादिना व्याख्याताः. **तथा मन** इति तादृशलीलाकरणे मनः. **तथावचन** इत्युपालम्भवचने ॥२८/अ ॥

वत्सानित्यत्राभासे **तदभिनिवेशने**त्यादि– भगवत्कृतलीलाभिनिवेशेन तावद्वस्तुविषयकलोभादिरहितेत्यर्थः. अत्र श्लोकप्रतीकं त्रुटितमिति भाति. के

लेखः

यास्त्विति. **प्राकृतो** भगवत्कार्यानुन्मुखः **स्वभावो** यासां ताः "वत्सान् मुञ्चन्नि"तिश्लोकोक्ताः. **लौकिके**ति– **लौकिके** पत्यादिसेवाविधायके **वाक्ये परिनिष्ठिताः** "हस्ताग्राह्ये"इति श्लोकोक्ताः. अत एव बालकतर्पणे पत्यर्थं मन्दस्नानादौ च प्रवृत्तिः. **यत्रैव ता** इति, दधिदुग्धादिकार्ये उभयविधा अप्यासक्ता इत्यर्थः. **कृष्णस्ये**त्यत्र **गोपभार्यात्वादि**ति, तासां तथास्वभावादित्यर्थः ॥२८/अ॥

॥ श्रीगोप्य ऊचुः ॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः ।
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैःस्तेययोगैः ॥
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति ।
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्यनुक्रोश्य तोकान् ॥२९॥

भगवतो निरोधलीलां तत्तद्दोषदूरीकरणार्थे कृतां तदभिनिवेशेन तावत् कृतस्वदोषरहिता भगवद्गुणान् गणयन्ति[1] षड्विधान् जीवस्य दोषरूपान् भगवतो गुणान्; ईश्वरो हि हीनं कर्म न करोति. "वत्समोचनमनीश्वरं कर्मे"ति केचित्. सर्वमोक्षदाता भगवानक्षयनिधिकर्ता यावद्दिनं क्षुधितान् वत्सान् मातृसमागमेपि दुःखिता मा भवन्त्विति मर्यादासमयोल्लङ्घनं कृत्वा **वत्सान् मुञ्चति. क्वचिदि**ति, यत्र वत्सविमोक आतृप्तेः पूर्वबन्धनमशक्यम्. **आक्रोशे** कृते भगवानमानी मानदस्तासां

प्रकाशः

भगवद्गुणा इत्यपेक्षायामाहुः **षड्विधानि**त्यादि. तत्र[2] वत्समोचनस्यैश्वर्यत्वं व्युत्पादयन्तस्तद्विरोधं परिहरन्ति **सर्वे**त्या**द्यशक्यमि**त्यन्तम्. तथा चासमये वत्समोचकत्वेन कल्पादिरूपे काले मूढमोचकत्वरूपमैश्वर्यकर्मबोधकम्. हासप्रयोजन-माहु**राक्रोश** इत्यादि. **बहिःस्थितानामि**ति वत्सानां गोपिकानां च. ननु हासस्य मोचकत्वेन[3] पूर्वमोह[4]कृतदुःखनाशेपि मोह्यन्तरस्य जातत्वात् न[5] दुःखप्रसङ्गो

लेखः

वत्सानित्यस्याभासे **भगवत** इति. एतदर्थे **कृतां लीलां शृण्वन्त्याः** सत्याः **प्रोचुरि**ति पूर्वेणैवान्वयः. **तावत्कृते**ति– **तावद्भि**र्वत्सविमोचनादिषट्धर्मैः **कृतः स्वदोषो** भगवत्यनीश्वरत्वादिबुद्धिः हासकृतभगवदभिनिवेशेन कृत्वा स्वरूपज्ञानात् **तद्रहिता** इत्यर्थः. वत्सविमोचन-स्तेयभक्षण-मर्कविभजन-भाण्डभेदन-कोप-तोकानुक्रोशाः क्रमेण षड्गुणा ज्ञेयाः. **ईश्वरो ही**ति. विरुद्धधर्माश्रयत्वादैश्वर्य-विरुद्धोपि धर्मोस्ति, न तु तावतानीश्वरत्वमिति स्वसिद्धान्तो द्वितीयपक्षे **केचिदि**त्यस्वारस्येन सूचितः. तादृशकृतितात्पर्यमाहुः **सर्वमोक्षे**ति. अत्र **वत्सानि**ति वारद्वयं; तत्र **क्षुधितान् वत्सान् सर्वे**त्यादिप्रयोजनार्थं **मुञ्चति समयोल्लङ्घनं कृत्वा** च **वत्सान् दुःखिता मा भवन्त्वि**ति वि**मुञ्चती**ति विभज्यान्वयः. **अमानी मानद** इति, स्वयं मानरहितोन्यार्थमैश्वर्यविरुद्धस्यापि कार्यस्य कर्ता अन्येषां वत्सानां

---

१. अत्र श्लोकप्रतीकं त्रुटितमिति प्रकाशकाराः. २. ततद्व°. ३. °ह°. ४. °हात् कृ°. ५. पुनर्दु°.

दुर्बुद्धिं ज्ञात्वा **सञ्जातहासो** भवति. मायोत्तरोत्तरं मोहिका प्रवृद्धा भवति. एवं बहिःस्थितानामान्तरं दुःखं क्षुत्कृतं मोहकृतं च नाशयति. मोहोपि सम्यङ् मोहो जायते भगवद्विषयको; येन केनाप्युपायेन सर्वोपि मनोव्यापारो भगवद्विषयक इति लक्षणः. एवमुभयविधान् कृतार्थीकृत्य स्वकीयेषु स्वयं भोक्तव्यमिति स्वान्तःस्थितबालकानन्नादिना संवर्धयितुं वीर्यविरुद्धमिव चौर्येण भुङ्क्त इत्याहुः **स्तेयमि**ति. यस्तु हरति स चोरः, हरिर्हि भगवान् स्मरणेनैव सर्वं हरति. स्तेयेन प्राप्तं **स्तेयं** पक्वान्नाद्योदनव्यञ्जनात्मकं सूपादि पायसान्तं, तत्रापि यत् **स्वादु** भवति रस्यम्. गोपिकागृहे स्वयमुपविश्य बालकानुपवेश्य तामन्यत्रैव प्रेषयित्वा यद्यत् स्वादिष्टं खण्डलड्डुकादिकं मोदकादिकं च भुङ्क्ते. **अथ** तृप्त्यनन्तरमन्नसमाप्त्यनन्तरं वा **दधि पयः** प्रथमं दधि पश्चात् पयः; पयःपानान्तं शनैर्भोजनं करोतीत्यर्थः. चौर्ये भगवता उपाया बहव एव कल्पिताः– दूरे शिक्ये स्थालीं पूर्णजलां स्थापयित्वाधश्चेच्छेते तदापि नालेन जलं पीत्वा स्थालीमुत्तार्य वंशद्वारा समारुह्य नयति. एवमनेकप्रकारा अपरिज्ञाने. परिज्ञानेपि नवनीतभाण्डे भाण्डमग्रे स्थापयित्वा सावधानस्थितायामपि दुग्धादिना पूर्णमुखस्तदक्ष्णोः फूत्कारं कृत्वाक्षिनिमीलने नयति क्षणाददृष्टश्च भवति. न सोस्त्युपायो येन भगवतः सकाशाद् रक्षितुं शक्यते. इतोपि भगवतोऽवाङ्मनो-गोचरा उपायास्ते सर्वे भगवतैव कल्पिताः, न तु चोरशास्त्रे सिद्धाः. "बालकैः सह भुङ्क्त" इत्येके. वस्तुतस्त्वन्तःस्थितबालकप्रीत्यर्थमेव तथा करोति. स्वयं **भोक्ष्यन्** बालकेषु तृप्तेषु **मर्कान् विभजति. मर्का** मर्कटाः, मर्केभ्यो विभजतीत्यर्थः. ते हि

प्रकाशः

भवेदतः **समु**पसर्गं मूलस्थं व्याचक्षते **मोहोपी**त्यादिना. स्तेयादनस्य वीर्यविरोधित्वं परिहरन्तो वीर्यकर्मत्वं व्युत्पादय**न्त्येवमुभये**त्यादि. **उभयविधानि**ति मूढान् निरुद्धांश्च. **कल्पितैः स्तेययोगैरि**ति व्याकुर्वन्ति **चौर्ये**त्यादि. **दूरे शिक्य** इति, तत्र

लेखः

मानदो दुःखनिवारक इति वत्सविमोचनस्योक्तं तात्पर्यमनूदितम्. **तासां दुर्बुद्धिम**नीश्वरत्वबुद्धिमित्यर्थः. **बहिःस्थितानामि**ति गृहाद् बहिर्गोष्ठे स्थितानामित्यर्थः. तत्र वत्सानां **क्षुत्कृतं** मोचनेन **नाशयति** गोपीनां **मोहकृतं** हासेन **नाशयती**ति विभागः. हासस्य मोहकृतदुःखनाशकत्वं व्युत्पादयन्ति **मोहोपी**ति. **उभयविधानि**ति क्षुत्कृतमोहकृतदुःखयुक्तानित्यर्थः. स्तेययोगान् विवृण्वन्ति **चौर्य** इति. **नयती**ति पूर्णजलायां स्थाल्यां स्थितं नवनीतं नयतीत्यर्थः. **कल्पितैरि**त्यस्यार्थ-

पूर्वं रामावतारभक्तास्तेष्वपि तृप्तेषु स्वयमध्यात्मा स्वीकृतभावो भुङ्क्ते. जगदात्मा **सोपि चेन्नात्ति** योत्ता? "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र स" इति श्रुतेः. **स** प्रसिद्धः तदेकं भगवद्रूपं भोक्तृ. स त्वत्यन्तमेव शुद्धान् भुङ्क्ते. यत् पुनर्मोक्षसम्बन्धि न भवति दैत्याविष्टत्वात् **स चेन्नात्ति** न भक्षयति तदा **भाण्डं भिनत्ति** दैत्यानां सम्बन्ध्यन्यैर्न भक्षणीयमिति. **द्रव्याणामभावेत्वलाभे** वान्यत्र स्थापिते **सगृहकुपितो** भवति– **सगृहे** गृहसहिते गृहस्थे **कुपितो** भवति, अयुक्तकरणात्. गृहो हि धर्मार्थमेव भवति, धर्माभावे

टिप्पणी

मर्कान् मोक्ष्यन्नित्यत्र **सोपी**त्यादि. यद्यपि श्रौतं ज्ञानं न सहजमेतासां भगवता लीलार्थं न ज्ञाप्यते च, तथापि भगवद्धर्मनिरूपणे चित्ते तदावेशाद् भगवति सोपि धर्मोस्तीति वस्तुस्वभावात् तस्यापि स्फूर्तिः. तत्रापि भोजनप्रकरणादस्यैव धर्मस्य, अन्यथा पुरःस्थिते प्रिये**ऽयमि**त्यनुक्त्वा **स** इति न वदेयुरिति भावः॥२९॥

प्रकाशः

विद्यमाननवनीतादिभाजनोपरीति शेषः. अत्र **चौरशास्त्रे सिद्धा** इत्यनेन[1] नूतनोपायकल्पनात्मकं वीर्यं तेन निरोधश्चालौकिकं तत्कार्यं बोधितं ज्ञेयम्. मतान्तरमाहु**र्बालकैरि**त्यादि. मूलेऽनुक्तत्वात् तथेत्यर्थः. उपायकल्पनं स्वयमेव भोजनं च यशोविरुद्धमिवेति तन्निरासाय सिद्धान्तमाहु**र्वस्तुत** इत्यादि. तथा चात्यन्तनिरोधजनकत्वेन[2] बालप्रीतिजनकत्वेन च न यशोविरोधः किन्तु तदनुगुणत्वमेवेत्यर्थः. मर्कटसंसर्गस्य तात्पर्यं विवृण्वन्ति **स्वयमि**त्यादि. एतस्यार्थमाहुष्टिप्पण्यां **सोपी**त्यादि. श्रीविरोधपरिहारायाहु**स्ते हि पूर्वमि**त्यादि. **स्वीकृतभाव** इति स्वीकृतोऽध्यात्मनो भावो येनेत्यर्थः. अत्र **भोक्ष्यन्नि**त्यनेन भाविस्वभोगकथनात् मर्काध्यात्मरूपेण भोग इति बोध्यम्. **मर्कानि**तिबहुवचनात् **स** इत्यनेन ते परामृष्टुं न शक्यन्त इति तत्तात्पर्यमाहुः **सोपी**त्यादि. **स** इत्यध्यात्मा. सुबोधिन्यां **स त्वि**त्यादि **न भक्षणीयमि**त्यन्तं वैराग्यकार्यमाहु**र्द्रव्याणामि**त्यादि. अलाभे हेतु**रन्यत्र स्थापित** इति. कोपे हेतुं विवृण्वन्ति **सगृह** इत्यादि. **गृहवैयर्थ्या**दिति गृहपरिग्रहवैयर्थ्यात्. नन्वेवं द्रव्यनाशे धर्मोपि न सिध्येदित्यत आहुः **दिनान्तर**

लेखः

माहुः **इतोपी**ति. **कुपितो** भवतीति अनुभावेनैव तस्य कश्चनोपद्रवो भवतीत्यर्थः.

१. °न्तेन°. २. °वि°.

गृहवैयर्थ्यात्. धर्मश्च द्रव्यैर्भवति द्रव्यसाधकाश्च पुरुषाः ईश्वरस्य कोपभयाद् दिनान्तरे समृद्धिं करोत्येव. अथवा गृहस्थं बहिर्मारयेत् ताडयेद् वा. एवमलौकिकः क्रोधः. लौकिकमाह **यात्यनुक्रोश्य तोकानिति. तोकान्** बालकान् स्तनन्धयान्. त्वदपेक्षयाप्यन्तःस्थिता बालकास्तेषु क्षुधितेषु तदीयेन भवता स्थातुमयुक्तं भवतीत्**यनुक्रोश्य** रोदनं वा कारयित्वा, मयि विमुखे रुद्रः प्रवेक्ष्यतीति ॥२९॥

एवं भगवतः षड्गुणा निरूपिताः. धौर्त्ये क्रियाप्रकारमुक्त्वा ज्ञानप्रकारमाह **हस्ताग्राह्य** इति.

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥३०॥

प्रकाशः

इत्यादि. तथा चैवं सुखेन धर्मसिद्धिरित्यर्थः. **सगृहकुपित** इत्यस्यार्थान्तरमाहु**रथवे**त्यादि. वैराग्यस्यैव कार्यान्तरमाहु**र्लौकिकमाहे**त्यादि. तोकानुक्रोशे बीजमाहु**स्त्वदपेक्षये**त्यादि. **तदीयेने**ति तदाध्यात्मिकेन तत्सेवकेन वा **स्थातुं** सुखेनेति शेषः. अनुक्रोशस्यार्थान्तरमाहु **रोदनमि**त्यादि. षड्गुणनिरूपणं निगमय**न्त्येवमि**त्यादि; पूर्वोक्तप्रकारेण. यद्वा मोक्षदातृत्वेनैश्वर्यं, मोहकत्वेन श्रीश्चौर्येण वीर्यमद्भुतत्वात्, मर्केभ्यो दानेन सर्वथा भक्तहितकर्तृत्वाद्, वैराग्यं भाण्डभेदनाद्, यशः स्वत एव, सर्वहितकर्तृ[1] हि तत् स्यात्. कोपादिना ज्ञानं, अत एव **रुद्रः प्रवेक्ष्यती**त्युक्तम् ॥२९॥

हस्ताग्राह्य इत्यत्र यथा पूर्वश्लोके परमार्थतः षड्विधा गुणा उक्ताः क्रिया-

लेखः

अथवेति बहिर्निर्गतं त्वां कश्चिद् दैत्यादि**र्मारयेत्** प्राणवियुक्तं कुर्यात् **ताडयेद् वे**ति **गृहस्थं** प्रति वदति शापं ददातीत्यर्थः. अयमदृष्टप्रकारकत्वा**दलौकिकः क्रोधः. अन्तःस्थिता बालका** इति क्षुधिता इति शेषः. ते **त्वदपेक्षयापि** क्षुधिता इत्यर्थः. **तदीयेने**ति गोपसम्बन्धिना तद्बालेनेत्यर्थः. अन्तरङ्गेषु भगवदीयेषु क्षुधितेषु भक्तसम्बन्धिनः पुरुषस्य भोजनमनुचितमिति भावः ॥२९॥

---

१. 'करणतः कोपक्रोशादिना ज्ञानम्.

पञ्चविधं ज्ञानं, सप्रकारं निःप्रकारं च. काले वस्तुनि निःसाधनमल्पासाध्येऽत्यन्तासाध्ये चान्धकारस्थापित आलोकापेक्षायां सप्रकारं ज्ञानम्. अनेन पूर्णा विद्या निरूपिता भवति. लौकिकबुद्ध्या तु सर्वं ज्ञानं परोपद्रवायेति तदीयांशानां ज्ञाने तज्ज्ञानमपि भवतीति वस्तुतस्तूपकार एव. यत्र भगवतः कुसूलादौ वस्तु

टिप्पणी

हस्ताग्राह्य इत्यत्र **पञ्चविधमि**त्यादि. **प्रकार**शब्दोत्र साधनवाची. तथा च पीठादिसाधनयुक्तं तदयुक्तं चेति द्वैविध्यम्. यस्मिन्काले तद्गृहे कोपि न भवति तत्कालविषयकं ज्ञानं वस्तुविषयकं च तथा. **तदीयांशानामि**ति. पूर्वोक्तज्ञानस्यांशाः पीठादयो विषयत्वात्, ज्ञानस्य स्वतो निरंशत्वेन तस्यैव तथात्वात्. तथा च स्वगृहे सदा **तज्ज्ञानमि**ति तत्सम्बन्धिभगवज्ज्ञानमपि सदे**त्युपकार एवे**त्यर्थः॥३०॥

प्रकाशः

प्रयोजकास्तथात्र ज्ञानप्रकारबोधनेन पूर्णा विद्या निरूप्यत इत्याशयेन ज्ञानप्रकारमाहुः **पञ्चविधमि**त्यादि. वक्ष्यमाणरीत्या **पञ्चविधं** यत् **ज्ञानं** तत् **सप्रकारनिष्प्रकार**पूर्णविद्यारूपमित्यर्थः. **प्रकार**शब्दार्थमाहुष्टिप्पण्यां **प्रकारे**त्यादि. **अत्र** परोक्षवादे **प्रकारशब्दः साधनवाची.** तथा च ससाधनं निःसाधनं च ज्ञानं पूर्णविद्यारूपमित्यर्थः. सुबोधिन्यां प्रकारान् गणयन्ति **काल** इत्यादि. तथा च कालविषयकमाहारादिरूपवस्तुविषयकं [1]निर्विषयकमल्पासाध्यविषयकं [2]चेत्यर्थः. प्रत्यक्षवादे सप्रकारकज्ञानस्य विषयमाहु**रन्धकार** इत्यादि. तदेतत् परोक्षवादे योजय**न्त्यनेने**त्यादि. तथा च महति हार्दान्धकारे तत्र **ज्ञानालोकापेक्षायां** [3]ससाधनं **ज्ञानमु**पयुज्यते, "ध्वान्तागारे"त्यादिपर्यन्तवाक्येन **पूर्णा विद्या निरूपिते**त्यर्थः. प्रत्यक्षलीलायां साधनादिस्वरूपं टिप्पण्यां विवृण्वन्ति **तथा चे**त्यादि. **द्वैविध्यमिति**

योजना

हस्ताग्राह्य इत्यस्य व्याख्याने **पञ्चविधं ज्ञानमि**ति. चौर्यकालज्ञानं वस्तुज्ञानं अल्पासाध्यज्ञानं अत्यन्तासाध्यज्ञानं अन्धकारस्थापितपदार्थग्रहणसाधनज्ञानं चेति पञ्चविधम्. तत्र **काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ता** इत्यनेन कालज्ञानं, **अन्तर्निहितवयुन** इत्यनेन वस्तुज्ञानं, **छिद्रं ह्यन्तरि**ति अल्पासाध्यज्ञानं, **हस्ताग्राह्य** इत्यनेन अत्यन्तासाध्यज्ञानं ज्ञेयम् ॥३०॥

---

१. 'र्विकल्पकम्. २. वे'. ३. स्व'.

हस्तेनाग्राह्यं भवति तत्र **पीठ उलूखलम**धोमुखं प्रतिष्ठाप्य तदुपरि बालकं वा निवेश्य गृहवंशान् वा धृत्वा वस्तु गृह्णाति. रिक्तभाण्डेषु तु न प्रयत्नं करोति. तत्र हेतु**रन्तर्निहितवयुन** इति, अन्तर्भाण्डे मध्ये निहितं वयुनं ज्ञानं यस्य. **शिक्यभाण्डेषु** दुग्धादियुक्तेष्वन्तः कुन्तादिना **छिद्रं** करोति, अधस्ताच्च भाण्डान्तरं स्थापयति. दध्यादौ तु न करोति. शर्करादौ तु पातयति, घनीभूते दध्यादौ च. तत् सर्वं वेत्ति **तद्वित्. ध्वान्तागारे** तु **धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थतः प्रदीपभूतं** रचयति यदिदानीम-प्रकाशमानमपि तदानीमन्धकारगृहे सूर्यवत् प्रकाशते मणींश्च प्रकाशयति. **अर्था** एव वा **प्रदीपा** भवन्ति. **स्वाङ्गमेव वार्थार्थं प्रदीपो** यस्य, न त्वन्यस्मिन्नागते. एतदपि सर्वं **काले,** यदा **गोप्यो** न जानन्त्येव दूरे वा गता भवन्ति. किञ्च **यर्हि गृहकृत्येषु** पाकादिषु मन्दस्नानादौ बालकतर्पणे वात्यावश्यके **सुष्ठु व्यग्रं चित्तं** यासां– मथनादिसमये वा कालविलम्बे वा घृतमेव नोत्पद्येत ॥३०॥

एवं ज्ञानप्रकारमुक्त्वा पर्यवसानमाहु**रेवं धार्ष्ट्यानी**ति.

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ ।

प्रकाशः

सप्रकारं निःप्रकारं चेति द्वैविध्यम्. प्रत्यक्षे कालादिकं विवृण्वन्ति **यस्मिन्नि**त्यादि. **तदीयांश**पदं विवृण्वन्ति **पूर्वोक्ते**त्यादि. उपकारः कथमित्यपेक्षायामाहु**स्तथा चे**त्यादि. सुबोधिन्यां [१]श्लोकोक्तलीलातात्पर्यमुक्त्वा[१] श्लोकं व्याकुर्वन्ति **यत्रे**त्यादि. **भगवत** इत्यस्य **हस्त**पदेन सम्बन्धः. **अर्थत** इति षष्ठीबहुवचनतस्तसिः. **अर्थार्थमि**ति स्वार्थ-सिद्धिनिमित्तमेवेत्यर्थः. **विलम्बे वेति वा**शब्दस्त्वर्थे[२] वाक्यालङ्कारे वा[३] ॥३०॥

लेखः

हस्ताग्राह्ये इत्यत्र **अन्तर्निहितवयुन** इत्यनेन रिक्तारिक्तज्ञानमुक्तं **तद्विदि**-त्यनेन तन्निष्ठदध्यादिविशेषज्ञानमुक्तमिति विभेदः. इदं ज्ञानद्वयमपि वस्तुविषयक-मेवेति ज्ञेयम्. **अर्थतः प्रदीपभूतमि**ति. अय**मर्थ**शब्दो वस्तुवाची, तथा च वस्तुत इत्यर्थः. **अर्था एव वे**तिपक्षे अर्थाः प्रदीपा यत्रेति बहुव्रीहिः. **स्वाङ्गमेव वे**ति पक्षे **अर्थार्थं प्रदीप** इति तत्पुरुषः. तथा च प्रथमपक्षवदन्यत्रापि **रचयती**ति शेषो ज्ञेयः. **यस्ये**त्यनेन तस्यैवार्थकथनम्. **मन्दस्नानादावि**ति अभ्यङ्गस्नानादावित्यर्थः ॥३०॥ **पर्यवसानमाहे**ति निर्गुणावस्थावेद्यं सुप्रतीकं रूपमाहेत्यर्थः.

१-१, ३. लुप्तम्. २. र्थो.

स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिः ।
व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥

हे **उशति** कमनीये, **धार्ष्ट्यानि** वस्त्रविमोचनादीनि **कुरुते. उशति** कमनीये भाण्डादौ च **मेहनादीनि कुरुते, वास्तौ** यत्र वास्तुदेवता पूजिता भवति. किञ्च **स्तेयोपायै**र्भ्रमजनकै**र्विरचिता कृतिरा**कृतिर्यस्य, पतिवत् पुत्रवद् भ्रातृवच्च तिष्ठति. तत्र कार्यार्थमेतादृशोपि **सुप्रतीकः** साधुव**दास्ते.** धार्ष्ट्यादिकरणं पुरीषादीकरणं चौर्यकरणं रूपान्तरकरणं साधुवत् स्थितिश्चेति पञ्चधा रूपसङ्ग्रहः. देहवदिन्द्रियवत् प्राणवदन्तःकरणवदात्मवच्चेति पञ्चधा ज्ञानस्य पञ्चविशेषभूतानि रूपाणि. एवं क्रियारूपान् ज्ञानरूपानाकृतिरूपान् निरूप्योपसंहर**तीत्थमि**ति. एवम्प्रकारेण **स्त्रीभि-र्व्याख्यातार्था**पि **प्रहसितमुखी सत्युपालब्धुं नैच्छत्.** उपालम्भे द्वयं कार्यं– स्त्रीणां

प्रकाशः

एवमित्यत्र स्वार्थसिद्धिनिमित्तमेवेत्यर्थः. **पर्यवसानमाहुरि**ति – परोक्षवादे-नोक्तस्य ज्ञानस्य पर्यवसानं परोक्षवादेनाहुरित्यर्थः. **इति पञ्चधे**त्युक्तकार्यद्वारा पञ्चधा. अस्मिन् श्लोक उक्तं पञ्चधा रूपं स्वेच्छालीलाविशिष्टं, तत् कथं सत्त्वं शोधयतीत्याकाङ्क्षायां तत्प्रकारमाहु**र्देहव**दित्यादि. तथा च "प्राणन्नेव प्राणो भवती"ति श्रुतौ कार्यद्वारैव रूपान्तरश्रावणादत्र धार्ष्ट्यादि कुर्वन् **देहवद्** भवति, मेहनादि कुर्व**न्निन्द्रियवत्.** चौर्येण भुञ्जानः **प्राणवद्** भवति, प्राणस्यैव भोक्तृत्वाद्. रूपान्तराणि कुर्व**न्नन्तःकरणवद्** भवति, तस्यानेकवृत्तिकत्वात्. साधुवत् तिष्ठ**न्नात्मवद्** भवतीत्यर्थः. ननु पञ्चधा करणस्य किं प्रयोजनमत आहु**रज्ञानस्ये**त्यादि. अविद्यारूप**स्याज्ञानस्या**ध्यासविषयत्वाद् देहादीनि **पञ्चरूपाणि** तस्य **शेषभूतानि,**[१] तादर्थ्यात्. अतः पञ्चरूपः स्वयं भवन् निरुद्धानां विषयो भूत्वा सत्त्वं शोधयतीत्यतस्तथेत्यर्थः. **क्रियारूपानि**त्यादि धर्मानितिशेषः. **प्रथमत** इत्युपालम्भनं

लेखः

एवं धार्ष्ट्यानीत्यत्र **पतिवदि**ति, वस्तुग्रहणकाले पत्यादिवेशं स्वरूपे सम्पादयतीत्यर्थः. **देहवदि**ति, देहादीनामिव कार्यं प्रतीयते परं देहादिर्नास्तीत्यर्थः. **एवं क्रियारूपानि**त्यादिषु गुणानिति शेषः. **उभयोर्भयनयने** इति. भगवन्नयनस्थं

---

१. रूपाणि.

मनोरञ्जनं बालकस्य भयजननं च. तदुभयं प्रथमत एव जातम्. भयसहितं नयनं यस्य **सभयनयनो** भगवान् तस्य **श्रीयुक्तं मुखं तदालोकिनीभिः.** एवमुपालम्भनकर्त्र्योपि भगवन्मुखनिरीक्षिका एव. ज्ञानशक्तेरेव भयं नतु क्रियाशक्तेस्तदाह **सभयं नयनं** यस्येति. **श्रीसंयुक्तं मुखम्;** आक्रोशवतीनां दृष्टिर्भगवद्विषयिणी मा भवत्विति श्रिया मूर्तिमत्यैव मध्ये व्याप्तम्, अतः **सभयनयनं** यथा भवति तथा **श्रीमुखस्यालोकिनीभिः.** एवं **व्याख्यातोर्थः** स्वगृहव्यापाररूपो यस्याम्. तथा सति लोकदृष्ट्या भगवतो धौर्त्यं स्मृत्वोभयोर्भयनयने दृष्ट्वा; भगवान् स्त्रियश्च भीता, भगवान् मत्तः स्त्रियो भगवतो मत्ताश्चेत्यनेकरसाभिनिविष्टा प्रकर्षेण **हसितमुखी** भगवन्त**मुपालब्धुं नैच्छत्.** नामलीलया वसुदेवः कृतार्थ एव जातः, इयं तु लौकिकन्यायेन प्राप्तमनोरथा लौकिकभावदार्ढ्यादेव दोषान् न गृहीतवती, न तु माहात्म्यज्ञानात् ॥३१॥

अक्लिष्टकर्मा भगवांश्च यावन्नात्यन्तासक्त्या वैयग्र्यं न प्राप्नोति तावन्न वदति नापि प्रदर्शयति. अनेन च प्रकरणेन तस्याः स्वविषयकोध्यासो निवर्तितः, यतो वाच्यतासहनं जातम्. भगवद्विषयकगाढाध्यासेन सोप्युद्गतः स्वसमानविषयकविरोधेनैव निवर्तष्यत इति तदर्थं प्रकरणान्तरमारभते ज्ञानरूपमन्तःकरणशोधक**मेकदे**त्येकादशभिः. मनसो ह्येकादश वृत्तयस्तासां निवृत्त्यर्थमेकादशधा ज्ञानं वक्तव्यम्.

प्रकाशः

विनैव, भगवन्मुखावलोकत्वात्. तदुपपादयन्ति **ज्ञानशक्तेरि**त्यादि. ज्ञानशक्तिर्नयनं क्रियाशक्तिर्मुखमिति ज्ञातव्यम्. उपालम्भदानाऽनिच्छायां हेतुः स्वरूपज्ञानमेव भविष्यतीतिशङ्काभावायाहु**र्नामलीलये**त्यादि ॥३१॥

लेखः

भयं प्रथमव्याख्याने, गोपिकानयनस्थं द्वितीये क्रियाविशेषणत्वेन व्याख्याने; उभयोरनुवादोयम्. **भगवान् मत्त** इत्यादिकं यशोदाबुद्ध्यनुवादकम्. **मत्त** इति तसिलन्तम् ॥३१॥

अग्रिमप्रकरणाभासमाहुः **नामलीलये**ति. शुद्धसत्त्वस्य स्थापितत्वात् नन्दोपि वसुदेवः, अतो **वसुदेव**पदेन नन्दो वसुदेवश्च ज्ञेयः. **इयं त्विति** तुशब्देनान्यव्यावर्तनं, तत्र व्यावर्त्यस्वरूपमनेनोक्तमिति ज्ञेयम्. तथा च नन्दस्य गर्गवाक्यात् माहात्म्यज्ञानमस्तीतिभावः. **न वदती**ति, "नाहं भक्षितवानम्बे"तिवाक्योक्तमभोक्तृत्वरूपं स्वधर्मं न वदतीत्यर्थः. **नापि प्रदर्शयती**ति स्वान्तःस्थं

योजना

व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छदित्यस्य विवृतौ **नामलीलया वसुदेवः कृतार्थ एव जात** इति. इह **वसुदेव**शब्देन नन्दो ग्राह्यः, वसूनां देवो वसुदेव इति व्युत्पत्तेः; "द्रोणो वसूनां प्रवर" इति वाक्येन द्रोणस्य वसुश्रेष्ठत्वात् द्रोणाभिन्नस्य श्रीनन्दस्य वसुदेवत्वात् ॥३१॥

टिप्पणी

न ह्युपालब्धुमैच्छदित्यस्य विवृतौ, **यावन्नात्यन्तासक्त्ये**ति. **नेत्यत्यन्त**पदविशेषणम्. अत्यन्तासक्तौ तु बाह्यानुसंधानमेव न स्यादिति भावः. **सोप्युद्गत** इति. भगवद्विषयकः पुत्रत्वेनाध्यासोऽ**पि निवर्तिष्यत** इति सम्बन्धः. अत एव प्रणता 'स्वमति प्रकारगणनाया'"मेष मे सुत" इत्युक्तवती. निवर्तने हेतुमाहुः **स्वसमाने**ति. पुत्रत्वेन स्नेहाद्धि मृद्भक्षणे शिक्षार्थं लोकन्यायेन विरुद्धाचरणमपि सम्भवतीति तच्चिकीर्षायां स्नेह**समानविषयको विरोधो** भवतीति स्वधर्मप्रदर्शनेन **सोपि निवर्तिष्यत** इत्यर्थः.

प्रकाशः

एकदेत्यत्र. ननु यथा भगवानग्रे बालवाक्यदूषणार्थं वाक्यं वक्ष्यति[२] स्वस्य सत्यत्वार्थं स्वरूपं च प्रदर्शयिष्यति तथात्रापि कुतो नोक्तवान्[३] न प्रदर्शितवानित्यत आहु**रक्लिष्टकर्मे**त्यादि. **नात्यन्तासक्ते**स्तात्पर्यार्थमाहुष्टिप्पण्यां **नेत्यत्यन्तपदविशेषणमि**ति. 'नैकधे'त्यादिवत् **न**शब्देन सहा**त्यन्त**पदसमासात् तथा. तथा चात्यन्तासक्त्यभावे **भगवान् न वदति** वैयग्र्याभावे च **न प्रदर्शयती**त्यतस्तथेत्यर्थः. कथमेवमित्यत आहु**रत्यन्तासक्तावि**ति. सुबोधिन्यां धाष्टर्यादिलीलातात्पर्यमाहु**रनेने**त्यादि. अग्रिमप्रकरणतात्पर्योक्तौ **सोप्युद्गत** इत्यादि. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**र्भगवद्विषय** इति. सुबोधिनीस्थ**विरोध**शब्दगततृतीयायाः सहार्थत्वं विवृण्वन्ति **पुत्रत्वेने**त्यादि. तथा च स्वधर्मप्रदर्शनेन करणेन विरोधनिवृत्तिसमकालं[४] पुत्रत्वा-

लेखः

जगद्रूपं स्वधर्ममिति शेषः. **स्वविषयक** इति **स्व**पदेन यशोदायाः स्वकीयत्वप्रकारकोध्यासः स्वस्मिन्नेव पर्यवस्यतीति भावः. **स्वसमाने**ति, इयं हेतौ तृतीयेति टिप्पण्यनुसारेण ज्ञेयम्. **निवर्तिष्यते** इति अन्तर्भावितण्यर्थात् कर्मणि लृट्; भगवता निवर्तिष्यते इत्यर्थः.

---

१. प्रणतास्मीतिप्रकार इति पाठः. २, ३. लुप्तम्. ४. 'त्पु'.

दोषनिवृत्तये यत्नो वाक्यं वाक्यं च तस्य नुत् ।
तत्साधिका कृतिर्विष्णोर्ज्ञानं पूर्वनिवारकम् ॥(१६)॥
ज्ञानस्योत्कर्षसिद्ध्यर्थं विषयाणां च वर्णनम् ।
ततो भयं तन्निवृत्तौ पूर्वपक्षस्य युक्तयः ॥(१७)॥
सिद्धान्तेन प्रतिष्ठानं भीतायाः शरणागतिः ।

भगवत्यध्यासस्य दृढत्वाद् भिन्नविषयको दोषो न बाधक इति समानाश्रयविषयकं दोषं बाला अनिरुद्धा आहुरित्याह.

एकदाऽऽक्रीडमानास्ते रामाद्या गोपबालकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

प्रकाशः

ध्यासोपि निवर्तयिष्यत इतिभावः.[1]कारिकायां **दोष** इति बालकाज्ञानेन[2] कृत इत्यर्थः. **पूर्वनिवारकमि**ति भगवति[3] पुत्रत्वेनाध्यासस्य निवारकम्. **तन्निवृत्तावि**ति भयनिवृत्तिनिमित्तमित्यर्थः (१६-१७). विवृतौ **भिन्नविषयक** इत्यध्यासविषयकः.

लेखः

एकदेत्यत्र **भिन्नविषयक** इति वत्समोचनादिरूप इत्यर्थः. अनेन भगवत्स्वरूपे दोषो न भवति, मृद्भक्षणेन तु स्वरूपे दोषो भवतीत्याहुः **समानाश्रयविषयकमि**ति.

कारिकार्थः

एकदाक्रीडमानास्ते इत्याद्येकादशश्लोकानां वाक्यार्थानाहु**र्दोष** इत्यादि. "एकदाक्रीडमानास्ते" इति श्लोके भगवति मृद्भक्षणात्मकदोषदृष्टिः, "सा गृहीत्वे"त्यत्र **दोषनिवृत्त्यर्थं यत्नः**, "कस्माद् मृदमि"ति यशोदाया **वाक्यं**, "नाहं भक्षितवानि"ति भगव**द्वाक्यं तस्य** यशोदावाक्यस्य **नुत्** अप्रामाण्यसाधकमित्यर्थः. "यद्येवं तर्हि व्यादेही"त्यत्र **तत्साधिका** स्ववाक्यप्रामाण्यसाधिका मुखव्यादानरूपा **विष्णोः कृतिः**. "सा तत्र ददृशे विश्वमि"त्यत्र **ज्ञानं पूर्वनिवर्तकं** पूर्वोत्पन्नस्य भगवति दोषदर्शनस्य निवर्तकम्. "ज्योतिश्चक्रमि"ति "एतद्विचित्रमि"ति च द्वाभ्यां **विषयाणां वर्णनं**, "एतद्विचित्रमि"त्यत्रैव **भयमपि**. "किं स्वप्न" इतिश्लोकपूर्वार्धे भयनिवृत्त्यर्थं **पूर्वपक्षयुक्तयः**, "अथो अमुष्यैवे"त्युत्तरार्धे समाधानं, "अथो यथावदि"ति द्वाभ्यां **शरणागतिः** (१६-१७).

१, २, ३, लुप्तम्.

एकदा यदा भगवत्प्रवणमेव चित्तं स्थितम्. **आक्रीडमाना** आसमन्तात् क्रीडां कुर्वाणाः. समानभावेन सर्वेषु क्रीडा रसजनिका भवति, अतो भगवति साम्ये स्फुरिते विवेकिनां स्वस्मिन् दोषदर्शनवद् भगवत्यपि दोषं दृष्टवन्तः. **त** इति ये स्त्रीणां सुखार्थे नीतास्तेषां स्त्रीसङ्गान्निरोधस्याकृतत्वाद् भगवति दोषदृष्टिर्युक्तेति.तत्तत्कार्यं प्रदर्शयितुं **रामाद्या** इत्युक्तं, स हि रमयति एव सर्वा स्त्रियोतो दोषदृष्टिः. **गोपबालका**

टिप्पणी

एकदाक्रीडामाना इत्यत्र **ये स्त्रीणां सुखार्थ** इति. पूर्वं "वयस्यैर्व्रजबालकैर्व्रजस्त्रीणां मुदं जनयंश्चिक्रीड" इत्युक्तम्. तथा च **तच्छब्दस्य** पूर्वपरामर्शित्वेन त एवोच्यन्त इत्याशयेनाहु**र्य** इत्यादि. **निरोधस्ये**ति. मृदोऽनिष्टहेतुत्वेन ज्ञानेन हि तदभावाय निवेदनम्; तच्च स्नेहं विना न सम्भवतीति कथं तदकरणमुक्तमिति चेत्, उच्यते– **क्रीडमाना** इत्यात्मनेपदप्रयोगेण न भगवदर्थं नापि भगवत्सङ्गे क्रीडेयम्, किन्तु स्वार्थमेव परस्परमेवेति च ज्ञाप्यते. सर्वभावेन निरोधे तु तथाकरणं न सम्भवतीति तथोक्तमाचार्यैः. व्रजस्त्रीमुज्जननस्यैवोद्देश्यत्वेन तदुपयोगिलीलोपयोगित्वेन बालकसहभाव इति हृदि कृत्वा **स्त्रीसङ्गा**दित्युक्तम्. अत एव मुख्यो निरोधो न सम्पन्नः, आनुषङ्गिकस्तु जात इति भावः. **तत्कार्यं** निरोधाकरण-

प्रकाशः

समानाश्रयविषयकमित्यध्यासाश्रयविषयकम्. टिप्पण्यां **ये स्त्रीणां सुखार्थ** इत्यादेरर्थमाहुः **पूर्वमि**त्यादि. निरोधाकरणे[1] शङ्कते **मृद** इत्यादि. **तदकरणमि**ति[2] निरोधाकरणम्. समादधत **उच्यत** इत्यादि. **तथोक्तमि**ति निरोधाकरणमुक्तम्. तर्हि तेषां **स्त्रीसङ्गा**दिति कथनस्य किं प्रयोजनमत आहु**र्व्रजे**त्यादि. **अत एवे**ति निरोधे

लेखः

आक्रीडमाना इत्याङुपसर्गस्यार्थमाहुः **समानभावेने**ति. **अत** इति रसजननाद्धेतोः **साम्ये स्फुरिते** स्वात्मनीव **भगवत्यपि दोषं दृष्टवन्तः**. तत्र दृष्टान्तः– यथा **विवेकिनां स्वस्मिन् दोषदर्शनं** तथैतेषां तावद्विवेकाभावात् सामान्यमात्रेण **भगवत्यपि** दोषदर्शनमित्यर्थः. **रामाद्या इत्युक्तमि**ति. राम आद्यो येषामित्यतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा रामविजातीया (अ!)निरुद्धत्वधर्मवन्त इत्युक्तमित्यर्थः. तर्हि रामस्य कथं दोषदृष्टिरित्यत आहुः **स ही**ति. बालानां मुख्यनिरोधाभावादेवम्बुद्धिः, रामस्य तु स्नेहादिति.

---

१. °धक°. २. लुप्तम्.

इति— गोपा अनिरुद्धाः गोभिः सह सङ्गात् तत्तुल्यज्ञानास्तेषां बालका इति स्वरूपतोपि दोषसम्भवहेतुः. स्वसम्बन्धिस्तनादिपानेन पुष्टान् स्वचरणसम्बन्धिभक्तिरसालोडितमृत्स्नां बालकेभ्योन्तःस्थितेभ्यो ददद् बहिर्मुखैर्दध्यादिभक्षणवन्मृद्भक्षणमपि कल्पितम्. ततस्तदनिष्टं मत्वा बालाः प्रोचुः— **कृष्णो मृदं भक्षितवानिति.** पञ्चवर्षपर्यन्तं मात्रा शिक्षणीय **इति मात्रे न्यवेदयन्** सम्भावितं तदिति ॥३२॥

तेन देहापकारं ज्ञात्वा दोषनिवृत्त्यर्थं यत्नं कृतवतीत्याह **सा गृहीत्वे**ति.

सा गृहीत्वा करे पुत्रमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥

एकस्मिन् **करे पुत्रं गृहीत्वाभाषते**ति सम्बन्धः. **से**ति निरोधमध्यस्थिता, भगवति क्रियाशक्तिरेव लौकिकी तस्या दृढेति **करे गृहीत्वे**ति तावानेवांशस्तया

टिप्पणी

कार्यमित्यर्थः. यथैव ता भगवत्सङ्गता भवन्ति तथैव सम्पादयतीति स्त्रीरतिकर्तृत्वं रामे. अत एव रसरीत्या ताम्बूलाद्यङ्गीकार एवास्य रोचते, न त्वलौकिक्या अपि मृद इति स्नेहवशादेव दोषदृष्टिस्तत्र. अत एव **रामाद्या** इत्यत्रातद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः. तेन बालकविजातीयो भावः सूच्यते. रामे गोपबालकत्वाभावात्तथा. गोपानां त्वग्रे निरोधो वक्तव्य इत्यधुना तथा न निरोध इति तथोक्तम् ॥३२॥

प्रकाशः

तेषामुद्देश्यत्वाभावादेव. **तत्रे**ति मृद्भक्षणे. **तथोक्तमि**ति **गोपा अनिरुद्धा** इत्युक्तम्. सुबोधिन्यां मृत्स्नाग्राहणतात्पर्यमाहुः[१] **स्वसम्बन्धी**त्यादि. **पुष्टानि**ति कृत्वेति शेषः. **अददादि**ति. स्थूलशरीरसिद्ध्यर्थं दानमिति प्रतिभाति, प्रथमस्कन्धे "या वै लसच्छ्रीतुलसी"त्यत्र तथा सिद्धत्वात्. तेषां दान्तत्वार्थं वा, टिप्पण्या- "मदान्तात्मन्नि"त्यस्य व्याख्याने तथा सिद्धत्वादिति ॥३२॥

सा गृहीत्वेत्यत्र **दोषनिवृत्त्यर्थमि**ति बालकोक्तदोषनिवृत्त्यर्थम्. यत्ने हेतुमाहु- **र्निरोधमध्यस्थिते**ति — निरोधस्य यो मध्यभावस्तत्र स्थिता. करग्रहणे हेतुमाहु**र्भगवती-**

लेखः

पुष्टानिति ज्ञात्वेति शेषः. **स्वचरणसम्बन्धी**ति. **ददद्** भगवान् जातस्तदा बालकैस्तथा **कल्पितमि**त्यर्थः. तथा च **दददि**त्यस्याग्रे 'जातस्तदे'तिपदद्वयं शेषभूतं ज्ञेयम् ॥३२॥

१. 'ग्र'.

गृहीत इति. भगवांस्तु पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते, येन पापेन मातापितरौ पुरुषशब्दवाच्यमुपलक्षणात् स्त्रीशब्दवाच्यं च शरीरमस्थिपुरीषादिव्याप्तं सर्वरोगादिगृहं तामिस्रादिसर्वनरकेभ्योधिकं प्राप्तवन्तौ, स्वयं तत्र सन्ततौ प्रविष्टस्तत् कार्यं स्वयं करिष्यंस्तद्दोषमङ्गीकृत्य तौ तस्माद् देहसम्बन्धात् त्रायत इति पुत्रो भवति. तादृश**मुपालभ्यो**पालम्भनं कृत्वालभनमिव क्रूरं वाक्यमुक्त्वा. स्वस्य परमनिधानरूपः पुत्रः कुशलो भवत्विति **हित**मेवान्वेषमाणा **यशोदा** परमभाग(ग्य!)वती ज्ञानेप्यधिकारिणी. मारणे कृतेऽन्तःस्थिताः क्लिष्टा भविष्यन्ति ततो महापुरुषद्रोहान्नास्याः कदापि ज्ञानं

टिप्पणी

पुत्रशब्दविवरणं लोकसम्बन्धीति ज्ञेयम्. तथा च यत्र लौकिक एव स एतादृशस्तत्र भगवानङ्गीकृततथात्वः स्वापराधकरणात् क्रियारूपाद्रक्षतीति युक्तमेवेति भावः. अत एव वचनमेव, न तु क्रिया काचिद्विरुद्धा. **भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमि**त्या

प्रकाशः

त्यादि. भगवद्विषयिणी **क्रियाशक्तिः**[१] पुत्रशिक्षाकरणरूपा **लौकिक्येव तस्या दृढा,** न तु ज्ञानशक्तिरिति तथा कृतवतीत्यर्थः. ननु कथं तस्या न ज्ञानशक्तिर्निरोधेपीत्यत्राहु**स्तावानि**त्यादि. **तावानि**ति कररूपः तथा च क्रियाशक्तिरेव गृहीता न तु ज्ञानशक्तिरित्यर्थः. तर्हि क्रियान्तरमपि करिष्यतीत्याशङ्क्याहु**र्भगवांस्त्वि**त्यादि **भवती**त्यन्तम्. **पुत्र** इत्यत्र पुम्पदं स्त्रियोप्युपलक्षकम्. **तत्र सन्तताविति** पुत्ररूपायां सन्ततौ. तथा च पुत्रत्वात् तथा कर्तुं न दास्यतीति भावः. तदेतद् टिप्पण्यां **पुत्रशब्दविवरणमि**त्यादिग्रन्थे स्फुटम्. **भयसम्भ्रान्ते**ति विशेषणस्य तात्पर्यमाहु**र्मारण** इत्यादि.

लेखः

सा गृहीत्वेत्यत्र **लौकिकी**ति **करे** इत्येकवचनस्यार्थोयम्. द्वितीयस्यापि करस्य ग्रहणे अलौकिक्या अपि ग्रहणाद् भगवान् वश्य एव स्यात्. अत एव दामोदरलीलायां तथेति भावः. **तत् कार्यं स्वयं करिष्यन्नि**ति. पिता मरणसमये स्वकार्याणि पुत्रे स्थापयेत् पुत्रश्च गृह्णीयादिति. तन्मन्त्राश्च कौषितक्युपनिषदि स्फुटाः. **परमभाग्यवती**ति यशो ददातीति व्युत्पत्त्या यशसो दानकथनेन तदग्रिमगुणस्य श्रीशब्दवाच्यपरमभाग्यस्य स्थितिः सूचितेति भावः. अत एव ततोप्यग्रिमगुणे ज्ञानेप्यधिकार इत्याशयेनाहुः **ज्ञानेपी**ति ॥३३॥

१. लुप्तम्.

भविष्यतीति**भयेन सम्भ्रान्तं प्रेक्षणं यस्याक्षस्य.** प्रदर्शयिष्यमाणं ज्ञानमेव स्वाधिकरणस्याग्रे भविष्यमाणस्य विरोधिगुणप्रादुर्भावाद् गमनप्रतिबन्धशङ्कया **सम्यग् भ्रान्तं प्रेक्षणं** गमनरूपं यस्य तथाविधं भवति. भगवत्प्रेरणया गन्तव्यमेव, विरोधी च गुणो बलिष्ठो बाधां मा करोत्विति. तादृशं भगवन्तं कायिकव्यापारेण योजयित्वा भगवत्प्रेरि**ताभाषत** वाक्यमेवोक्तवती. तद्वाक्यं च भगवता परिहर्तव्यं क्रिया चेदशक्या भवेद्, भक्तद्रोहात् ॥३३॥

टिप्पणी

प्राकृता बाला हि ताडनभिया मातृसंमुखं द्रष्टुं न पारयन्ति, प्रभुरपिताननुकरोतीत्यस्यालौकिकत्वेन तत्तात्पर्यमुच्यते **प्रदर्शयिष्यमाणमि**त्यादि. मुखारविन्दे **प्रदर्शयिष्यमाणं** रूपं ब्रह्मधर्मत्वाद् **ज्ञानात्मकमेव.** तत्साधनत्वादपि तथोच्यते. एतस्य भविष्यमाणमधिकरणं माता, अग्रे ज्ञानजननात्. तत्र च भगवति दोषारोपो विरोधी गुणः. भगवत्प्रेक्षणं ज्ञानरूपमिति तच्चेन्मातर्यागच्छति तदा तेन ज्ञानमाविर्भवति. तच्चोक्तगुणशङ्कयेतस्तत एव भ्रमणं करोति, न तु संमुखं निरन्तरं यशोदाविषयकं भवतीति तथा. अत एवाग्रे ज्ञानं जननीयमिति मातरमीक्षते. परन्तु प्रकर्षेण नेति ज्ञापनाय प्रशब्दो मूले. **विरोधी च गुण** इत्यादिनेक्षणप्रेरणायां हेतुत्वेन प्रभुतात्पर्य-

प्रकाशः

भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणमित्यत्र भयसम्भ्रान्तं प्रेक्षणमक्ष्णि यस्येति न समासः, **प्रेक्षण**पदेनैवाक्षिलाभात्; किन्त्वक्षस्य मातृहस्तस्येन्द्रियत्वं विवक्षितमित्याशयेनोक्तं **यस्याक्षस्ये**ति. पुरःस्फूर्तिकमुक्त्वा पारमार्थिकं तदर्थं वदन्तीत्याशयेन टिप्पण्यामाहुः **प्राकृता** इत्यादि. "यद् यज्जनकं तत् तदात्मकमि"तिसमन्वयसूत्रे व्याप्तेः सिद्धत्वाद्धेत्वन्तरमाहु**स्तत्साधनत्वादि**त्यादि. **भविष्यमाणमि**त्यत्र "लृटः सद् वे"-तिसूत्रात् शानच्; सोपि "भू व्याप्तावि"ति धातोः. तथा च ज्ञानेनाग्रे व्याप्स्यमानम[१]धिकरणमित्यर्थः. वस्तुतस्तु "भू सत्तायामि"त्यतस्ताच्छील्ये शानजग्रे भवनशीलमित्यर्थः. **ज्ञानरूपमि**ति ज्ञानजनकत्वात् पूर्वोक्तरीत्या तद्रूपम्. **तथे**ति सम्भ्रान्तम्. **परन्त्वि**ति सम्भ्रान्तत्वात्. सुबोधिन्यां प्रेक्षणतात्पर्यमाहुः **प्रेक्षणं गमनरूपमि**त्यादि. भगवत्कृता प्रेक्षणक्रिया श्रीयशोदायां प्रापणरूपा **यस्य** भविष्यज्ज्ञानं[२] **तथाविधं भवति.** तथा च ज्ञानप्रापणाय प्रेक्षणमित्यर्थः. ईक्षणप्रेरण-

१. °सा. २. °ष्यज्ञा°.

यशोदाया वाक्यमाह **कस्मादि**ति.

॥ यशोदोवाच ॥

कस्माद् मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेग्रजोप्ययम् ॥३४॥

इच्छया भक्षितमिति चेत् सेच्छापकारिणीति तन्निवारणमुचितं; तदकरणादुपालभ्य एवेति सम्बोधनेनाह**दान्तात्मन्नि**ति– न **दान्त आत्मा**न्तःकरणं यस्य.

टिप्पणी

मुक्तम्; वस्तुतस्तु तत्कालीनमौग्ध्येनैव मोहिता नान्यत्कर्तुमशकत्, तथापि स्नेहभरवशतोऽस्मिन्नर्थे विज्ञप्तिः कार्यैवेति तां कृतवती ॥३३॥

तत्र सम्बोधनेन कृपालुत्वमुक्तम्. तथाहि– न दान्ता अदान्ता असंयतेन्द्रियाः, पुरुषा इति यावत्, तेषामप्यात्मा निरुपधिहितकर्तेत्यर्थः. मृद्भक्षणमस्मद्धितं न भवति, मनःखेदहेतुत्वादिति भावः. अत एव हेतुरेव पृष्टः. भगवांस्तु मात्रादिसम्भावितमृददनकार्याभावादेव हेतुविचारो न युक्त इत्याशयेनोत्तरितवान्. अन्यथा लोके बालस्वभावमेव प्रसिद्धं हेतुं जानन्ती **कस्मादि**ति न वदेत्. तदानीं ज्ञानदित्सया तादृगीक्षणेन चैतावन्मात्रं ज्ञानमभूदग्रे सम्पूर्णं भविष्यत्येवेति हृदयं "भगवत्प्रेरणया गन्तव्यमेवे"त्यनेन पितृचरणैर्ज्ञापितम् ॥३४॥

प्रकाशः

तात्पर्यमाहु**र्भगवदि**त्यादि. तदिदं टिप्पण्यां विवृण्वन्ति **विरोधी**त्यादि. **तथापी**ति मोहेपि. सुबोधिन्या**मशक्ये**त्यपरिहार्या ॥३३॥

कस्मादित्यत्र **तदकरणादि**तीच्छाया निवारणा[१]करणात्. सम्बोधनं प्रकारान्तरेण टिप्पण्यां व्याकुर्वन्तस्तत्तात्पर्यमाहु**र्तत्रे**त्यादि.[२] **तथापी**तिपदं **मृद्भक्षणे**त्याद्यग्रिमेण सम्बध्यते. एवम्भावोक्तौ प्रमाणमाहु**रत एवे**त्यादि. कृपायाः साधारण्यादेकत्र विशेषे हेतुरेव पृष्ट इति तदेव पदं प्रमाणमित्यर्थः. ननु तर्हि भगवान् किमिति निह्नुतवांस्तत्राहु**र्भगवांस्त्वि**त्यादि. तुशब्दः पुनरर्थकः. तथा च न कृपायां न्यूनाधिकभाव इत्यर्थः. युक्त्यन्तरमाहु**रन्यथे**त्यादि. ननु यद्येवं मातृचरणानां हेतुज्ञानमस्ति तदाचार्यैं "भगवत्प्रेरणये"[३]त्यादिना ज्ञानगमनशङ्का किमित्युक्तेत्यत आहु**स्तदानीमि**त्यादि.

१. °ण°. २. 'नचे'तिपाठस्याऽनुपलम्भात्, टिप्पण्यां'तत्रे'ति पाठोपलम्भाच्च संशोधितोयं मुद्रितपाठः. ३. पूर्वश्लोके.

अन्तःस्थितबालापरिज्ञानादाह **भवान् भक्षितवानिति**. **रह** एकान्ते; निष्कास्य बालकान् भक्तिं ग्राहयितुं देवगुह्यत्वादेकान्त एव कृतवान्. तद् बाला बहिःस्थिता अस्मद्व्यञ्चनार्थमेकान्ते भक्षितवानित्याहुः. प्रमाणमाह **वदन्ति तावका** इति, त्वदीयास्त्वनृतं न वदन्तीति. **हि** युक्तश्चायमर्थः, तेपि हितकारिण इति. अन्यथाकल्पने नाद्यापि समर्था इति वयो निर्दिशति **कुमारा** इति. तेषां जीवत्वात् कल्पकत्वाभावेपि भ्रमः सम्भवति; यथादृष्टं च वचनमतोपि न परमार्थदृष्टिरिति चेत् तत्राह **तेग्रजोप्ययमिति**. अग्रे जातत्वात् काचिद् बुद्धिरुत्कृष्टा. वदतीत्यत्र प्रमाणमाहायमिति— प्रत्यक्षमेव वदतीति नात्रासम्भावना.

भगवद्व्यतिरिक्तानामन्यधर्मं प्रवर्तते ॥(१८)॥
यदा तत्र हरिः स्वामी नाविष्टः सोन्यथा वदेत् । इति ॥३४॥

प्रकाशः

सुबोधिन्यां ननु बलो भगवदाविष्ट इति कथमेवमुक्तवानित्यत्र हेतुमाहुर्**भगवदित्यादि** कारिकया[१]. तथा च कार्यार्थमावेशात् तदानीं कार्याभावेन तदभावात्[२] तथेत्यर्थः॥३४॥

लेखः

कस्मादित्यत्र. ननु रामस्य भगवदावेशात् कथं तात्पर्याज्ञानमित्यत आहुः **भगवद्व्यतिरिक्तानामिति**— **भगवतः** सकाशाद् **व्यतिरिक्तानां** भिन्नतया स्थितानां **यदान्यो** भक्तिविरुद्धो **धर्मः प्रवर्तते** तदा **तत्र हरिः स्वामी आविष्टो न** भवत्यतः **सोन्यथा वदेत्.** आवेशे सर्वत्रैवमेव व्यवस्था. तथा च रामस्याप्यधुना भिन्नतया स्थितस्य भक्तिविरुद्धस्वतन्त्रक्रीडारूपधर्मप्रवृत्त्या आवेशाभावः, अतस्तात्पर्याज्ञानात् "कृष्णो मृदं भक्षितवानि"ति रामोपि वदतीति भावः $(१८\frac{१}{२})$.

कारिकार्थः

कस्मात् मृदमित्यत्र भगवद्व्यतिरिक्तानामन्यधर्मः प्रवर्तते । यदा तत्र हरिः स्वामी नाविष्टः सोन्यथा वदेत्[३]॥ ननु रामस्य भगवदावेशात् कथं मृद्भक्षणतात्पर्याज्ञानमित्यत आहुर्**भगवद्व्यतिरिक्तानामिति**. **भगवतः** सकाशाद् **व्यतिरिक्तानां** भिन्नतया स्थितानां **यदान्यो** भक्तिविरुद्धो **धर्मः प्रवर्तते** तदा **तत्र हरिः स्वामी आविष्टो न** भवत्यतः **सोन्यथा वदेत्.** तथा रामस्याप्यधुना भिन्नतया स्थितस्य

---

१ °कार्यां. २. °द्भा°. ३. एषा कारिका मुद्रापितकारिकाग्रन्थे नास्ति.

भगवांस्तु तद्वाक्यं विषयबाधान्न प्रमाणमाप्तानां भ्रान्तत्वादित्याह **नाहमिति**.

॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥३५॥

हे **अम्बेति** सम्बोधनमप्रतारणाय. अनेन तस्यां महती कृपा प्रदर्शिता. **अहं तु न भक्षितवान्,** बालकैर्भक्षितमिति भावः. एवं सम्बोधनेन स्ववाक्यप्रामाण्यमुक्त्वा विरोधवाक्यमाह **सर्व** इति. एते बालकाः सरामा गोप्यश्च ये केचिन्मया यत्किञ्चिद् भक्षितं यदाकदापीत्याहुस्ते **सर्व** एव **मिथ्याभिशंसिनो** मिथ्यानृतमेवा-

---

लेखः

नाहं भक्षितवानित्यत्र स्ववाक्यप्रामाण्यमपीति. आद्यचरणार्थस्तु विषयबाधः, इदं तु सम्बोधनेनाप्रतारणसूचनादुक्तं जातमित्यपिशब्दः. आभासोक्तं वाक्यार्थमाहुर्**विरोधीति**. एतद्धेतुर्विषयबाध आद्यचरणेनोक्तः, समर्थनमुत्तरार्धेनेति ज्ञेयम्.

योजना

सर्वे मिथ्याभिशंसिन इत्यस्य विवृतौ **एते बालकाः सरामा गोप्यश्च ये केचिद् मया यत्किञ्चिद् भक्षितं यदा कदापीत्याहुस्ते सर्वे मिथ्याभिशंसिन** इति. अत्रेदं ज्ञेयं— इह **सर्व**शब्देन रामाद्या गोपबालका एव गृहीतुं यद्यपि योग्यास्तथापि बालादिपदमनुक्त्वा **सर्व**पदं भगवतोक्तं तस्यायमाशयः श्रीमदाचार्यैर्विवृत इति श्रीमत्प्रभुचरणैष्टिप्पण्यामुक्तं; तत् तथैव. न च भगवता बाललीलया[१] मातुर्भयादसत्यमेवोक्तमिति वाच्यं, "सत्यं देवानामनृतं मनुष्याणामि"ति श्रुतेरसत्यभाषणस्य मनुष्यासाधारणधर्मत्वात्, मनुष्यासाधारणधर्माणां भगवत्यभावात्, "मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्" "गूढः कपटमानुषः" "मायामनुज ईश्वर" इत्यादिबहुभिर्वचनैर्मनुष्या-

कारिकार्थः

भक्तिविरुद्धस्वतन्त्रक्रीडारूपधर्मप्रवृत्त्या आवेशाभावः, अतस्तात्पर्याज्ञानात् "कृष्णो मृदं भक्षितवानि"ति रामोपि वदतीति भावः. यद्यपि इतरबालकवद् रामस्य न केवलदोषदृष्टिः किंतु स्नेहादेव दोषदृष्टिस्तथापि स्वातन्त्र्येण क्रीडाहेतुकभगवदावेशाभावात् [२]स्वोदरस्थबालकेभ्यो[२]मृद्दानतात्पर्याज्ञानम्. तदुक्तं टिप्पण्यां "इयं क्रीडा न भगवदर्थं नापि भगवत्सङ्गे किन्तु स्वार्थमेवे"ति $(१८\frac{१}{२})$.

---

१. °लीलायामिति पाठः. २-२. इत्यधिकमेकस्मिन्नादर्शे.

भिशंसन्ति, "अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीती"ति श्रुतिविरोधात्. "यस्य ब्रह्म च क्षत्रम्" "अत्ता चराचरग्रहणाद्" "भुङ्क्ते विश्वभुगि"त्यादिवाक्यान्याधिदैविकरूपधर्मप्रतिपादकानि, अतः पुराणपुरुषपराणि न भवन्तीति ये केचिद् भगवन्तं भोक्तारं मन्यन्त उपदिशन्ति च ते **सर्वे मिथ्याभिशंसिनः.** नैवेद्यं च तुष्टिदं भवति निवेदनमात्रेण. आरण्यानां भक्षणं त्वन्तःस्थितभक्तानां शुद्धान्नसम्बन्धेन कृतार्थ-

---

टिप्पणी

सर्वे मिथ्याभिशंसिन इत्यत्र, **नैवेद्यमि**ति. उपासनामार्गीयैः पूजायां दत्तं नैवेद्यं तथेत्यर्थः. **शुद्धान्नसम्बन्धेने**ति. साक्षाद्भगवद्भक्षितत्वेनोच्छिष्टं यदन्नं तच्छुद्धान्नपदेनोच्यते. भुक्तशिष्टान्नान्मुखारविन्दमध्यस्थं चर्वितं ताम्बूलमिव मुख्यमुच्छिष्टं भवति. न ततोन्यत्फलरूपं शोधकं वास्तीति तत्सम्बन्धेन तथात्वायेत्यर्थः. वन्यत्वं साधारणभगवत्सम्बन्धो वात्र शुद्धिपदार्थ इति न वक्तुं शक्यं, भगवदन्तःस्थितानां पूर्णपुरुषार्थत्वेन तथाविधेन तेन कृतार्थत्वोक्तेरनुचितत्वात्. **यत्त्वेते बालका** इत्यारभ्य **मिथ्याभिशंसिन** इत्यन्तं वाक्यं तन्मर्यादामार्गपरं ज्ञेयम्. "वशे कुर्वन्ति मां भक्त्ये" ति वाक्याद्यथैव तत्तोषस्तथैव भगवतः कर्तव्यं भवतीति स्वमर्यादामतिक्रम्य भक्तेच्छानियम्यत्वाङ्गीकारात् पुष्टिमार्गीयभक्तिमार्गे भक्षणादिकं सर्वमुपपद्यते. वस्तुतस्तु इयमेव पुरुषोत्तममर्यादा यद् भक्तवश्यत्वम्. अत एवाधुनापि भाग्यवतो भक्तानाज्ञापयति भोग्यविषये[1]. ज्ञानमिश्रभक्ते मर्यादाभक्तिमार्गीयभक्तेऽनवतारदशायां चानशनादयो धर्मा भगवता प्रकटीक्रियन्त इति तद्विषयाणि तथाविधवाक्यानीति ज्ञेयम्. यद्यपि यथा "सर्वे ब्राह्मणा भोजयितव्या" इत्यत्र सर्वपदस्य निमन्त्रिततत्परत्वं तथात्रापि रामादिपरत्वमिति नानुपपत्तिः काचित्, तथाप्याचार्यैस्तु 'बाला' इ'त्येत' इति वाऽनुक्त्वा **सर्व**पदं भगवतोक्तमिति तत्तात्पर्यमुक्त**मेते बालका** इत्यादिना. तत्तात्पर्यं चोक्तमेव. ज्ञानप्रकरणत्वादपि तथोक्तिरिति न भक्तिमार्गीयविरोधः शङ्कनीयः ॥३५॥

प्रकाशः

नाहमित्यत्र. ननु भक्षणवादिनां कथं मिथ्याभिशंसित्वमित्यत आहु**रनश्नन्नि**त्यादि. तर्हि"यस्य ब्रह्मे"त्यादिवाक्यानां का गतिरित्यत आहु**र्यस्ये**त्यादि. **आधिदैविकरूपधर्मप्रतिपादकानी**ति. "यो देवानां नामधा एक एवे"ति "एकं सद्

---

१. भोगविषये मू. पा.

प्रकाशः

विप्रा बहुधा वदन्ती"त्यादिश्रुतिभिः [1]सर्वदेवाधिदैविकत्वं भगवतः प्रतिपादितं; देवाश्च यज्ञभागभुज इति तद्द्वारा, "नाहं तथाभियजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेने"तिवाक्ये साक्षाच्च सर्वदेवाधिदैविकरूपस्य यो धर्मो भोक्तृत्वं तत्प्रतिपादकानि. **अत** इत्याधिदैविकपरत्वात्. नन्वेवं सति "यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः तत्तद् निवेदयेद् मह्यं तदानन्त्याय कल्पत" इत्यादिवाक्यानां का गतिरित्यत आहु**र्नैवेद्यमि**ति[2]. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**रुपासने**त्यादि. 'आनन्त्याय कल्पत' इतिफलोक्तेस्तथेति भावः. ननु तथापि "निर्विशन् भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशन" इत्यत्र [1]देवाधिदैविकरूपस्योपासनामार्गस्य चाभावात्[3] तस्य कथं सामञ्जस्यमित्यत आहु**रारण्याना**मित्यादि. **शुद्धान्नसम्बन्धेने**त्यादि. एतस्य तात्पर्यं टिप्पण्यामाहुः **साक्षादि**त्यादि. ननु वन्यत्वादिनैवान्नस्य शुद्धत्वमस्त्वित्याशङ्कायामाहु**र्वन्यत्व**मित्यादि. **तथाविधेने**ति वन्यत्वादिरूपेण. सुबोधिन्यां; नन्वत्र

लेखः

अनशनादयो धर्मा विवृतास्तत्रैवं ज्ञेयं– भगवत्युभयविधा अपि धर्माः सन्ति परं सापेक्षाः. यथैकस्मिन्नेव पुरुषे मातरमपेक्ष्य पुत्रत्वं बोध्यते, भार्यामपेक्ष्य तद्विरुद्धं पतित्वं बोध्यते. एवमन्यदपि. तथा ज्ञानमार्गीयमपेक्ष्य भगवत्यनशनादयो धर्मा बोध्यन्ते भक्तिमार्गीयमपेक्ष्य च भोक्तृत्वादय इति स्थितिः. अत्र च ज्ञानप्रकरणे "भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमि"त्यनेन यशोदायां ज्ञानस्थापनस्योक्तत्वात् ज्ञानमार्गीया एव धर्मा भगवता बोधनीया भवन्तीत्याशयेन तथा विवृतमाचार्यैः. अयमेवार्थो **ज्ञानप्रकरणत्वादपि तथे**त्यनेन टिप्पण्यामुक्तः. **आधिदैविके**ति. अक्षरं केनचिदंशेन जगद्रूपं जातं, तदेव जगतो लयस्थानं तदाधिदैविकं रूपं, तस्य धर्मा ब्रह्मक्षत्रभोक्तृत्वादयस्तत्प्रतिपादकानीत्यर्थः. **पुराणो** जगद्व्यतिरिक्तः **पुरुषो**ऽक्षररूपस्त**त्पराणी**त्यर्थः. ज्ञानमार्गस्याक्षरपर्यवसायित्वात् पुरुषोत्तमेप्यक्षरधर्मा एव बोधनीया इत्याशयेन भगवत्येते धर्मा उच्यन्ते इति ज्ञेयम्. भगवता **यदि सत्यगिर** इति

योजना

साधारणधर्माणां वस्तुतो भगवति निषेधात्. अतो यथार्थमेव भगवान् ब्रूत इति मन्तव्यम्. तथा च भगवता भक्षणनिषेधे **सर्व**पदमुक्तमिति तथा सुबोधिन्यां

१, १. दै°. २. °मित्यादि ३. °भावः.

योजना

व्याख्यातम्. तत्र परमाग्रहेण भोजनाभावः श्रीमदाचार्यैः स्थाप्यते तस्यायमाशयः– "क्षुत् खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्य" इतिश्रुते क्षुधो मनुष्यासाधारणधर्मत्वात् मनुष्यासाधारणधर्माणां "मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्नि"त्यादिवाक्यैर्भगवत्यभावात् क्षुत्पिपासादीनां वक्तुमशक्यत्वात् क्षुत्पिपासाजन्यानां भोजनपानादीनां निषेधो युक्त एव. ननु भगवता चेन्न भुज्यते तर्हि कथं महाप्रसादत्वं तदन्नादेरिति चेत्, सत्यं, न ह्यत्र सुबोधिन्यां भक्षणाभावः प्रतिपाद्यते, किन्तु भगवता भक्षितस्य प्रतिपत्तिर्निरूप्यते, यद् भगवता भुज्यते तदन्तःस्थितबालानां तृप्त्यर्थं न तु स्वतृप्त्यर्थमिति. अतः क्षुद्वशाद् भगवता न भुज्यते; तथा चेत् स्वार्थं भवेत्. अन्तःस्थितबालानां तृप्त्यर्थं भुक्तमिति परार्थतैव. स्वार्थभोजनं तु क्षुज्जन्यं; तत् तु भगवति नास्ति, तत्कारणीभूतायाः क्षुधाया असम्भवात्, पूर्वोक्तश्रुत्या मनुष्यासाधारणधर्मत्वेनोक्तत्वात्. अत एव सुबोधिन्यां **आरण्यानां भक्षणं तु अन्तःस्थितभक्तानां शुद्धान्नसम्बन्धेन कृतार्थत्वायेत्**युक्त्वा भक्षणमङ्गीकृतमेव. किन्तु जीवैर्यथा भक्ष्यते तथा न भुङ्क्ते भगवान्; जीवभोजने क्षुत्कारणं शरीरपोषणादिप्रयोजनं, भगवद्भोजने तु भगवदीयजननिरुपधिस्नेहः कारणं भगवदन्तःस्थितभक्ततृप्तिकृतार्थत्वादिप्रयोजनमिति कारणप्रयोजनभेदात्. एवमेव श्रीगोवर्धनप्रसङ्गे "शैलोस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुरि"त्यस्य व्याख्याने "तदा दत्तं बलिं बुभुजे" इत्युक्त्वा अग्रे "एवं भूरि बलिमादत् पक्वान्नादिकं बहु भक्षितवानि"त्युक्त्वा भगवत्कर्तृकं भक्षणमङ्गीकृतम्. अग्रे "पर्वतस्थान् सर्वानेव तर्पितवानि"त्युक्त्या भक्षणप्रयोजनं परतृप्तिर्न तु स्वतृप्तिरिति भोजनप्रतिपत्तिर्निरूपिता. अतोत्र स्फुटमेव भोजनं निरूपितमिति भुक्तशेषस्य भवत्येव महाप्रसादत्वम्. एवमेव यज्ञपत्नीप्रसङ्गे "भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुरि"त्यस्य सुबोधिन्यां "चतुर्विधेन सम्पूर्णरसात्मकेन गोपानाशयित्वा स्वयं च बुभुजे" इत्युक्त्वा भोजनमङ्गीकृतम्. भोजनप्रयोजनं तु एतच्छ्लोकाभासे "तस्यामन्तःसमागतायां तां बालकांश्च भोजितवानित्याहे"त्यनेन मुक्तयज्ञपत्न्या अन्तःस्थितबालकानां च तृप्तिरुक्ता. अतः प्रयोजनमेवान्यदुच्यते, भोजनं तु स्वीक्रियत एव. एवमेव "दध्योदनमुपानीतं शिलायां सलीलान्तिके सम्भोजनीयैर्बुभुज" इत्यस्य सुबोधिन्यां "सजातीयैर्गोपैः सङ्कर्षणेन चान्वितो बुभुजे" इत्युक्त्वा भोजनं स्वीकृतमेव. अत एव "केवलमायाजनितं स्तन्यं भगवान् न पिबेदि"त्यत्रापि पानमुक्तम्. अतो भगवता भुज्यत इति निर्विवादम्.

त्वाय अतः "पत्रं पुष्पमि"तिवाक्यं न विरुध्यते. नन्वत्र किं युक्तं– किं भगवान् भक्षयति न वेति? भक्षयतीत्येव, बहुवाक्यसंवादात् प्रत्यक्षतो दर्शनाद् "भुङ्क्त" इत्यादिवाक्यानां यथाश्रुतार्थत्वसिद्धेः. "अनश्नन्नन्य" इतिवाक्यं जीवभोगजननार्थं समागतोन्तर्यामी जीवभोग्यं जीवभोग्यप्रकारेण न भुङ्क्त इत्येतावन्मात्रपरं; तस्मात् प्रत्यक्षसंवादाद् भक्षणमेव सत्यमिति चेत् तत्राह **यदि सत्यगिर** इति. लोके वाक्यं संवादि प्रमाणं, तदर्थमत्र संवादो नास्तीत्यनूद्य दूषयति– **तर्हि समक्षं** प्रत्यक्षं

प्रकाशः

द्विविधेषु वाक्येषु पुराणपुरुषस्य भोक्तृत्वमभोक्तृत्वं चेति द्वयमपि प्रतिपादितं, तथा सति [1]तत्र कथं विरोधपरिहार [2]इत्याशङ्कन्ते **नन्वत्रे**त्यादि. सिद्धान्तमाहुर्**भक्षयती**त्यादि **परमि**त्यन्तम्. ननु यदि भक्तिमार्गे भक्षणं तदा **सर्वे मिथ्याभिशंसिन** इतिभगवद्वाक्यं तद्व्याख्यानग्रन्थश्च विरुध्येतेत्यत आहुष्टिप्पण्यां **यत्त्वि**त्यादि **वाक्यानीति ज्ञेयमि**त्यन्तम्. प्रकारान्तरमाहुर्**यद्यपी**त्यादि. **तत्तात्पर्यं चोक्तमेवे**ति – मर्यादामार्गेऽन्तर्यामिरूपेण च[3] न भुङ्क्त इत्येवाभोजनतात्पर्यं, मिथ्याभिशंसिनस्तात्पर्यं चोक्तमेवेत्यर्थः. प्रकरणेनापि समादधते **ज्ञाने**त्यादि ॥३५॥

लेखः

विचाररीत्योक्तत्वाद् तद्रीत्यैव तदाभासमाहुः **नन्वत्रे**ति. **भक्षणप्रयोजनमि**ति.

योजना

प्रयोजनं तु अन्तःस्थितबालानां तृप्तिकृतार्थत्वादिरूपं निरूपितम्, एतावता भगवान् न भुङ्क्ते इति नाभिप्रेतम्. अतो भवत्येव भगवत्प्रसादत्वं भगवदुच्छिष्टस्य. अत एव "उच्छिष्टभोजिनो दासाः तव मायां जयेमहि" इत्यादिवचांसि सङ्गच्छन्ते.

यत् तु **"यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च" "अत्ता चराचरग्रहणात्" "भुङ्क्ते विश्वभुगि"त्यादिवाक्यान्याधिदैविकरूपधर्मप्रतिपादकानि, अतः पुराणपुरुषपराणि न भवन्तीति ये केचित् भगवन्तं भोक्तारं मन्यन्ते उपदिशन्ति च ते सर्वे मिथ्याभिशंसिनः नैवेद्यं च तुष्टिदं भवति निवेदनमात्रेणे**त्यन्तेन भक्षणाभावः प्रतिपादितस्तस्य तु प्रकारो भिन्न एव, न तु पुष्टिभक्तौ भोजननिषेधपरः. तथा हि "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च" "अत्ता चराचरग्रहणादि"त्यादौ यो भोगः स तु ब्रह्मक्षत्रयोर्मुक्तिरूपः. "भुङ्क्ते विश्वभुगव्यय" इत्यत्र तु व्यापकरूपेण विद्यमानो

१. लुप्तम्. २. 'दि शङ्कते. ३. लुप्तम्.

योजना

भगवान् जीवद्वारा स्वयं भुङ्क्ते इत्युच्यते, "त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मे"ति-वाक्यात्. अत ए**वाधिदैविकरूपधर्मप्रतिपादकानी**त्युक्तं विवृतौ. अत एतेषु श्रुति-पुराणादिवाक्येषु न पुरुषोत्तमभोजनमुच्यते न वा सुबोधिन्यां पुरुषोत्तमभोजनाभावः प्रतिपाद्यते, किन्तु एतेषु वाक्येषु न पुरुषोत्तमभोजनव्यवस्थेत्युच्यते. तथा च अन्यैरेव वाक्यैर्व्यवस्थापनीयमिति हार्दं सुबोधिन्याः. ततोग्रे **आरण्यानां भक्षणं तु** इत्युक्त्वा भक्षणं सिद्धान्तितमेव. तत्र मानं तु "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन" इति भगवद्वाक्यमुपन्यस्तम् **अतः "पत्रं पुष्पमि"ति वाक्यं च न विरुध्यत** इति फक्किकया. एवं सति "पत्रं पुष्पमि"ति-वाक्ये "भक्त्या प्रयच्छती"त्यनेन "तदहं भक्त्युपहृतमि"त्यनेन च भक्तेः साधनत्वे-नोक्तत्वाद् भक्त्या समर्पितं भगवान् पुरुषोत्तमो "लोकवत् तु लीलाकैवल्य-मि"तिन्यायाल्लोकरीत्या भुङ्क्ते. प्रयोजनं त्वन्तःस्थितभक्तकृतार्थता न तु स्वतृप्तिः. एवं सति भक्तौ भोजनं सिद्धमेवेति महाप्रसादत्वमपि भगवदुच्छिष्टस्य निर्विवादमेव.

अपि च. **नन्वत्र किं युक्तं भगवान् भक्षयति न वेतीति** सन्दिह्य **भक्षयत्येवे-**त्यारभ्य **भक्षणमेव सत्यमिति चेदि**त्यन्तेन पूर्वपक्षमुक्त्वा भक्षणाभावः सिद्धान्तीक्रियते तत् तु भगवत्स्वरूपधर्ममर्यादा तादृश्येवेति प्रदर्श्यते. पुष्टिभक्तौ तु स्वरूपमर्यादा-मप्युल्लङ्घ्य भक्तानां प्रीत्यर्थं भोजनं करोत्येवेति सर्वप्रमाणातीतः पुष्टिभक्तिमहिमेति स्फुटीभवति. यदि सर्वत्र पुरुषोत्तमो भोजनं कुर्यात् तदा पुष्टिभक्तौ को वा विशेषः स्यादतो न कुत्रापि पुरुषोत्तमो भुङ्क्ते किन्तु पुष्टिभक्तावेव भुङ्क्ते इति महद्गौरवं पुष्टिभक्तेः. यथा "आत्मारामोप्यरीरमदि"त्यादिनात्मारामत्वेन सर्वत्र रमणाभावं प्रतिपाद्य "अरीरमदि"त्यनेन पुष्टिभक्तानां घोषमृगीदृशामुपरि परमकृपया रमणमुक्तं, ततश्च सिद्धं परमोत्कर्षेण. यदि सर्वत्रैव रमेत तदा व्रजस्त्रीभिः सह रमणे विशेषो न स्यादतस्तथोक्तिः. एवम् अत्रापि सर्वत्र भक्षणाभावे पुष्टिभक्तसमर्पितभक्षणे पुष्टिभक्तेः परममाहात्म्यं स्फुटतीत्याचार्याणामार्याणां चैतावानुद्यमः. पुष्टिभक्तौ तु सर्वत्रैव स्वरूपमर्यादामतिक्रम्य भगवान् क्रीडति. अत एव रासक्रीडायां गजदृष्टान्त-विवृतौ ब्रह्ममर्यादाभङ्गः सुबोधिन्यां निरूपित इति दिक्. नन्वन्तःस्थितभक्तानां तु कृतार्थतायाः सिद्धत्वेपि पुनर्भगवदुच्छिष्टप्रसादग्रहणे का वा कृतार्थतेति चेत्, मुक्तिरूपपुरुषार्थसिद्धावपि नित्यलीलामध्यपातिभक्तैः सह नित्यलीलानुभवरूप-कृतार्थता प्रसादग्रहणाद् भविष्यतीति सुधीभिराकलनीयम् ॥३५॥

स्वचक्षुषा वाक्यसंवादार्थं **मुखमध्यं पश्य;** यदि भक्षितं भविष्यति तदंशास्तद्गन्धश्च भविष्यति. सर्वं भक्षितमितिशङ्कायां च कालान्तरभक्षणस्यापि निवारणार्थं च भक्षणप्रयोजनं मुखेऽस्ति न वेति तदपि द्रष्टव्यमिति भावः ॥३५॥

लौकिका युक्तिपुरःसरं पदार्थं गृह्णन्तीति यशोदा तद्वाक्यमङ्गीकृत्य तत्रापेक्षितं प्रार्थयित्वा द्रष्टुमुद्युक्ता. ततो भगवान् प्रदर्शितवानित्याह **यद्येवमिति.**

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥

यदि प्रत्यक्षसंवादि तद्वाक्यं नान्येषां[1] **तदा व्यादेहि** मुखव्यादानं कर्तव्यम्. एव**मुक्तो व्यादत्ते**ति सम्बन्धः. **स** इति. स यतो निरोधार्थमेवागतः, अन्यथा लौकिकपरमार्थयोर्भिन्नविषयत्वाल्लौकिके परमार्थप्रदर्शनमयुक्तं स्यात्. निरोधसामर्थ्यं **भगवानिति**. करणावश्यकत्वे हेतु**र्हरि**रिति, अन्यथा प्राणिनः कृतार्था न भविष्यन्तीति.

टिप्पणी

यद्येवमित्यस्याभासे. **अपेक्षितमि**ति मुखव्यादानमित्यर्थः. विशेषेणासमन्ता-द्देहीत्यपि ध्वनिः. भक्तिमार्गीयत्वमत्र विशेषः. तस्यापि यावती मर्यादास्ति यावद्रूपं वा तत्तद्दान**माङो**र्थः. अत एव सर्वात्मभावावधि ज्ञानं जातम्, अन्यथा तदतिरिक्त-

प्रकाशः

यद्येवमित्यत्रापेक्षितमिति. एतस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्मुखे**त्याद्यु**च्यत** इत्यन्तम्.

लेखः

रसनेन्द्रियेण रसानुभवः प्रयोजनम्. तथा च मुखे रसनेन्द्रियस्यादर्शने तज्जनितरसा-नुभवरूपप्रयोजनाभावज्ञानं भविष्यतीति भावः. यद्यपीन्द्रि-याणामतीन्द्रियत्वात् तदभावोप्यतीन्द्रियस्तथाप्यग्रे "वैकारिकाणीन्द्रियाणी"त्यनेनेन्द्रियाणां दर्शनस्य वक्ष्यमाणत्वादिन्द्रियाभावस्यापि दर्शनयोग्यतेति ज्ञेयम्. यशोदया "कस्मादि"त्यनेन प्रयोजनं पृष्टमित्युत्तरमपि तथा वक्तव्यमिति भावः॥३५॥

यद्येवमित्यत्र **अन्यथे**ति निरोधार्थमागमनाभावे इत्यर्थः. लौकिकं लोक-साम्येन ज्ञानं, तस्य विषयः परिच्छिन्नं भगवत्स्वरूपं, परमार्थज्ञानस्य विषयोऽ-परिच्छिन्नं स्वरूपमतो **भिन्नविषयत्वाल्लौकिके** लोके प्रकटे परिच्छिन्नरूपे **परमार्थ-**भूतस्यापरिच्छिन्नरूपस्य **प्रदर्शनमयुक्तं स्यादि**त्यर्थः. **न तु प्रदर्शनार्थमि**ति. प्रदर्शनं

१. यद्यन्येषां तद्वाक्यं न प्रत्यक्षसंवादि इति अन्वयः.

विशेषेणादत्त मुखं प्रसारितवान्. ननु प्राकृतस्वीकारात् स्वधर्माणां तिरोभावसम्भवात् कथं सर्वसंवादो भविष्यतीत्याशङ्क्याह**अव्याहतैश्वर्य** इति– न केनापि प्रकारेण व्याहतमैश्वर्यं यस्य. ननु तर्हि कथं प्राकृतस्वीकारः? तत्राह **क्रीडार्थमेव मनुजबालको** न तु प्रदर्शनार्थमपि, अतः क्रियाशक्तावेव लौकिक्यां तिरोभावः. तदपि विशेषप्रयोजनाभावे, अन्यदा तु क्रियाशक्तेरपि प्राकट्यं; ज्ञानशक्तिस्त्वतिरोहितैव सर्वदा. अतः प्रदर्शितवानित्यर्थः ॥३६॥

सापि भगवता प्रेरिता भगवदिच्छया प्राप्तज्ञानशक्तिस्तन्मध्यस्थितं जगद् दृष्टवतीत्याह **सा तत्रे**ति.

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थाण्णु चरिष्णु च ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥

सा निरोधमध्यस्थिता **तत्र** मुखविवरे **विश्वं ददृशे.** आपाततो दर्शनं व्यावर्तयितुं विशेषाकारेण दृष्टं निर्दिशति **जगदि**ति द्वाभ्याम्. **विश्वमि**ति समुदायेन

टिप्पणी

बुद्धीनां भगवद्विषयिणीनामपि कुमतित्वं नोच्येत. **अव्याहतैश्वर्य** इत्यस्याभासे **कथं सर्वसंवाद** इति. "यः पृथिव्यां तिष्ठन्नि"त्यादि सर्वश्रुतिसंवाद इत्यर्थः॥३६॥

प्रकाशः

सुबोधिन्यां **कथं सर्वसंवाद** इत्येतस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्य** इत्यादि. सुबोधिन्याम् **अत** इत्यादि– क्रीडार्थत्वात् **क्रियाशक्तौ लौकिक्यां** हस्तरूपायां द्वयोर्हस्तयो**स्तिरोभावः**[१], अन्यथा चतुर्भुजत्वमपि प्रदर्शयेदित्यर्थः. **तदपी**ति तिरोभावनमपि ॥३६॥

सा तत्रेत्यत्र **द्वाभ्यामि**ति पदाभ्याम्. नन्वेकस्मिन् जगति प्रदर्शनीये पदद्वयस्य

लेखः

त्वमानुषरूपस्यापि करोति, परं क्रीडाकरणार्थं मानुषत्वमित्यर्थः. **लौकिक्यामि**ति. लोकसदृशी क्रियाशक्तिः रिङ्गणादिलीला तस्यां कर्तव्यायामलौकिकक्रियाशक्ते**स्तिरो-भावो**ऽप्रकटनमित्यर्थः. तथा च मूले **क्रीडार्थं** लौकिकक्रियाशक्त्यर्थं **मनुजबालक**-स्तिरोहितालौकिकक्रिय इत्यर्थः ॥३६॥

सा तत्रेत्यस्याभासे **सापी**त्यादि. "पश्य मे मुखमि"त्यनेन प्रेरणस्य "भय-सम्भ्रान्ते"त्यनेन ज्ञानशक्तिप्राप्तेश्चोक्तत्वात् **से**तिपदेन तदुभयपरामर्श इति भावः॥३७॥

---

१. लुप्तम्.

भगवद्रूपमाधिदैविकं वा, **जगदन्य**ल्लौकिकं विश्वरूपं; प्रतिकृतिरूपमित्यौपनिषदा, आधिदैविकमिति ब्रह्मविदः, कार्यकारणरूपमित्युभयोः समाधानमिति विचारकाः. जगति भेदानाह **स्थाष्णु चरिष्णु चे**ति, स्थावरं जङ्गमं च; **च**कारात् तद्धर्मा सर्व एव. **साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलमि**त्यधः खण्डः, उपरिखण्डं वक्ष्यत्यग्रिमश्लोके, अयमपि भेदस्तया ज्ञात इति. **अद्रयो** मेर्वादयो **द्वीपा** जम्ब्वादयो**ऽब्धयो** लवणादय; एतैः सहितं **भूगोलम्. सवाय्वग्नीन्दुतारकमि**ति भूगोलस्यैव विशेषणम्. वायुस्तत्रो-पलभ्यत एव, अग्निश्च. इन्दुः प्रथमाहुतिफलरूपः, "सोमो राजा भवती"ति श्रुतेः. यद्वा यज्ञियं रूपं भूमिष्ठं तत्र वर्तत इति, "यदस्यां यज्ञियमासीत् तदमुष्यामदधादि"-

---

टिप्पणी

सा तत्रेत्यत्र **प्रतिकृतिरूपमि**ति. "यथा क्षुरः क्षुरधान" इत्याद्युपनिषद्भि-स्तथा ॥३७॥

प्रकाशः

किं प्रयोजनमित्यत आहु**र्विश्वमि**त्यादि. नन्वेवंविभागः[१] कुत्र सिद्ध इत्यत आहुः **प्रतिकृती**त्यादि. तदर्थं टिप्पण्यामाहु**र्यथे**त्यादि. "स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यो यथा क्षुरः क्षुरधाने वहित" इति श्रुतौ क्षुरधानदृष्टान्तेनात्माधारतया यदुक्तं तत् तथेत्यर्थः. द्वितीयमाहु**राधिदैविकमि**त्यादि. "तदभिध्यान"सूत्रे तल्लिङ्गतया यत् सिद्धं तदित्यर्थः. श्रुति"स्त्वाकाशाद् वायुरि"त्यादिका. इयमेव च[२]टिप्पण्या**मादि**पदेन सङ्गृहीता. द्वयोर्निष्कृष्टं[३] रूपमाहुः **कार्ये**त्यादि. **उभयोः समाधानमि**त्युभयोर्जगतोः सम्यक् स्थापनम्. **विचारका** ब्रह्ममीमांसानुसारेण वाक्यविचारयितारः स्वयमेवाचार्याः. एतस्य भूगोलविशेषणत्व इन्दूक्तिः कथं सङ्गच्छत इत्यत आहु**रिन्दुरि**त्यादि. तथा च पञ्चाग्निविद्यायां तथा सिद्धत्वात् पूर्वमब्रूपेण [४]तत्स्थितिर्न विरुद्धेत्यर्थः. अस्मिन् पक्षे राजत्वदशापन्नेन्दुस्थितिर्विरुध्येतेत्यरुच्या[५] पक्षान्तरमाहु**र्यद्वे**त्यादि. **तत्र वर्तत** इति चन्द्रमसि कलङ्करूपेण कृष्णं वर्तते. तथाच[६] तत्सम्बन्धादिन्दोर्भूमिष्ठत्वमित्यर्थः. तत्र प्रमाणमाहु**र्यदि**त्यादि. श्रुतिस्तु "द्यावापृथिवी सहास्तां ते [७]वियत्यब्रूतामस्त्वेवं[८] नौ सह यज्ञियमिति तदमुष्या यज्ञियमासीत् तदस्यामदधात् तद्रूपा अभवन् यदस्या यज्ञियमासीत् तदमुष्यामदधात् तददश्चन्द्रमसि कृष्णमि"ति. तारकाणां भूमिष्ठत्व-

---

१. °वंभा°. २. लुप्तम्. ३. °र्निश्चित°. ४. लुप्तम्. ५. °ध्यत इ°. ६. लुप्तम्.
७. °ती अ°. ८. °व.

ति श्रुतेः. तारका अपि भूमिष्ठा भोगार्थं तत्र गच्छन्तीति पुनरायान्ति चेति तारका अपि भूमिष्ठा एव श्येना इव ॥३७॥

उपरितनं दलमाह **ज्योतिश्चक्रमिति.**

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥३८॥

जलं मध्यस्थितं "सलिलं वा इदमन्तरासीदि"ति वृष्टिर्वियद्गङ्गा च. **तेज** इति सूर्यादिध्रुवान्तानां किरणाः, विद्युदादयो वा. **नभस्वान्** वायुरुपरितनः. **वियदा**काशो. **वैकारिकाणि** सात्त्विकानि सर्वविकारसाध्यानि वेन्द्रियाधिष्ठातृरूपा**णीन्द्रियाणि** ब्रह्माण्डाद् बहिःस्थितानि. ब्रह्माण्डमपि गृहे घटवत् प्रतीयते, इन्द्रियाणि च ततो बहिः पदार्थान्तरवत्. सर्वदर्शनसामर्थ्यं भगवता दत्तमित्युक्तमेव. **इन्द्रियाणि** राजसानि **मनश्च** सात्त्विकं **मात्रा**स्तामसास्तेषां निधानभूता **गुणाश्च त्रय** इति— अहङ्कारगुणाः प्रकृतिगुणा मायागुणाश्च ॥३८॥

एवं दृष्टमनूद्य तद्दर्शनेन तस्या अपूर्वत्वाद् भयं जातमित्याह**ैतदि**ति.

एतद् विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥३९॥

विचित्रमिति युक्त्यापि न निर्णेतुं शक्यम्. करणान्यपि दृष्टवतीति तान्यनुवदति— **जीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गानां भेद**स्तत्सहितं जगत्. जीवास्त्रिविधा देवमानुषदानवाः. कालोपि तथा भूतभविष्यद्वर्तमानरूपः. स्वभावः प्रकृतिधर्मो भगवद्रूप इति निबन्धे विवृतं, कर्म च. आशयो हृदयकोशो यस्मिन्नाशेरते जीवाः लिङ्गं लिङ्गशरीरं स्थूलकोशात्मकं, लिङ्गभेदा वा स्त्रीपुन्नपुंसकाः. **एतत्** सर्वं स्थानविशेषस्यापरिज्ञानात् **सूनोस्तनौ वीक्ष्ये**त्युक्तम्. **विदारितमास्यं** यस्मिन्नन्तर्बहिः

टिप्पणी

सूनोस्तनौ सूनोर्विदारितं यदास्यं तस्मिंश्च **वीक्ष्ये**ति सम्बन्धो ज्ञेय इत्याशयेनाहुः **तस्मिन्नन्तर्बहिः सर्वत्रै**वेति. अन्यथा तनुविशेषणत्वेन स्त्रीलिङ्गत्वापत्तेः॥३९॥

प्रकाशः

मुपपादयन्ति **तारका** इत्यादि. तथा च यज्ञियं रूपं भूमिष्ठं यजमानात्मकं ता एव[1] तारका इति तासामपि सङ्ग्रह इत्यर्थः॥३७॥

---

१. °श्च.

सर्वत्रैव जगद् व्याप्तमिति वदं**स्तनौ विदारितास्य** इतिपदद्वयम्. स्वप्नभ्रमव्युदासार्थं **व्रजम**पि दृष्टवती; मायाव्युदासा**यात्मानं;** आत्मना सहितं व्रजमिति विशिष्टकथनं सर्वभ्रमव्युदासाय. एवमभ्रमेण सर्वं दृष्ट्वा **शङ्कामवाप** ॥३९॥

अस्याः शङ्काया व्युदासार्थं लौकिकप्रकारेण पक्षानाशङ्क्य परिहरति **किं स्वप्न** इति.

किं स्वप्नमेतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

अन्यदा प्रतीतं यत् कदाचित् प्रतीयते तत् त्रिधा भवति. स्वप्नेपि कदाचिदलौकिकं प्रतीयते, तस्य स्थानस्य सन्ध्यत्वाच्छीघ्रगमनात् "कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वाच्च". प्रकृते तद्वैलक्षण्यान्नायं स्वप्नो भवितुमर्हति पूर्वापरानुसन्धानाच्च, अतः पक्षान्तरमा**होत देवमाये**ति. मायामात्रं नात्यन्तमोहकं, देवानां तु माया

टिप्पणी

किं स्वप्न इत्यत्र **सन्ध्यत्वा**दिति. "तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवतः, इदं च परलोकस्थानं च, सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानमि"ति श्रुतौ स्वप्नस्य सन्ध्यत्वमुक्तम्. एतच्चेहलोकमध्यपात्येवेति तद्वैलक्षण्यम्. **कात्स्न्येने**त्यादि. स्वप्नसृष्टेरसत्यत्वे व्यासचरणैर्हेतुरुक्तो "मायामात्रं तु कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वादि"ति. एतदर्थस्तु— स्वप्नसृष्टिर्मायामात्रम्. तत्र हेतुरग्रे. यस्य यादृशं स्वरूपं देशकालवस्तुसापेक्षं तथाभिव्यक्तिः कात्स्न्येनाभिव्यक्तिस्तदभावादिति. **उभयोश्चादर्शनमि**ति.

प्रकाशः

एतद् विचित्रमित्यत्र **सूनोःस्तनावि**त्यत्र पदसम्बन्धबोधनार्थं **तस्मिन्नि**त्यादिना यदुक्तं तद् टिप्पण्यां विवृण्वन्ति **सूनोःस्तनावि**त्यादिना ॥३९॥

किं स्वप्न इत्यत्र **त्रिधे**ति वक्ष्यमाणप्रकारेण त्रिधा. सन्ध्यत्वादेरर्थं टिप्पण्यामाहु**स्तस्य वे**त्यादिना. वैलक्षण्यं स्फुटीकुर्व**न्त्येतदि**त्यादि. **कात्स्न्येने**त्यादेरर्थमाहुः **स्वप्ने**त्यादि. तथा चेह मध्यलोकपाताद् बहुकालस्थानात् कात्स्न्येनाभिव्यक्तत्वात् पूर्वापरानुसन्धानाच्च न स्वप्नपक्ष इत्यर्थः. सुबोधिन्यां मायामात्रपक्षं निराकुर्वन्ति **नात्यन्तमोहकमि**ति. स्वस्य पृथगदर्शनात् तथेत्यर्थः. देवमायापक्षमनूद्य निराकुर्वन्ति

लेखः

एतद्विचित्रमित्यत्र **स्वप्नभ्रमे**ति स्वप्नरूपो भ्रमस्तद्**व्युदासार्थमि**त्यर्थः. यत्र स्थीयते तत् स्थलं स्वप्ने न दृश्यत इति भावः॥३९॥

मनुष्यव्यामोहिका भवति. मोहवशाच्चातिरिक्तभानमपि सम्भवतीत्याशङ्क्य सा भगवति न सम्भवति, भगवत्प्रयत्नानन्तरभावित्वादस्य. भगवत्कृतापि माया न भवति, तथा सति स्थिरता न स्यात् मम च तत्र दर्शनं न स्यादुभयोश्चादर्शनम्. तर्हि दर्शनमेव भ्रान्तमिति पक्षं स्वीकरोति **किं वा मदीयो बत बुद्धिमोह** इति. बुद्धिमोहोप्येतादृशः कदापि न जात इति विशेषमाह **मदीय** इति– अन्यैर्न दृश्यत एव, तथा सति ते वदेयुः, न हि दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति न्यायात्. मदीय एवायं बुद्धिमोहः. एवं सति स्वस्य महत्त्वाद् **बते**ति हर्षः. यद्येवं स्याद् बालकान्तरे स्थलान्तरेप्येवमुपलभ्येत. अस्मिन्नेव बालक उपलभ्यत इति न पूर्वोक्तपक्षाः किन्त्वस्यैव कश्चनानुभाव इत्या**हाथो** इति, पूर्वपक्षव्युदासार्थम्. **अमुष्ये**त्यग्रेपि

टिप्पणी

द्रष्टृमायिनोर्मायिकैः पदार्थैः सहादर्शननियम इत्यर्थः ॥४०॥

प्रकाशः

देवानां त्वित्यादि. भगवत्यसम्भवे हेतुमाहु**र्भगवदि**त्यादि. भगवन्मायापक्षमनूद्य निराकुर्वन्ति **भगवत्कृतापी**त्यादि **तथा सती**त्यादि. **मम चेति च**काराद् भगवतश्च. **उभयोश्चादर्शनमि**त्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्द्रष्ट्रि**त्यादि. तथा च स्थिरत्वात् स्वस्य भगवतश्च दर्शनाद् **द्रष्ट्रि**त्याद्युक्तनियमभङ्गाच्च न भगवन्मायापीत्यर्थः. स्वबुद्धिमोहपक्षं० निराकुर्वन्ति **यद्येवमि**त्यादि. सिद्धान्तपक्षमवतारय**न्त्यस्मिन्नि**त्यादि. इदानीन्तनयोगपक्षं निराकुर्वन्ति **स्वाभाविके**त्यादि ॥४०॥

लेखः

किं स्वप्न इत्यत्र **देवस्य** भगवतो **माये**तिपक्षमाश्रित्याहुः **भगवत्प्रयत्ने**ति. भगवत्कृतत्वेऽयं हेतुः, अतो हेतोरियं **भगवत्कृता मायो**च्येत **सापि न भवती**-त्यन्वयः. तत्र दूषणमाहुः **तथा सती**त्यादि. **दर्शनमेवे**ति. प्रथमपक्षेषु पदार्था असन्त उक्ताः; अस्मिन् पक्षे पदार्थाः सत्या एव, दर्शनमात्रांशे भ्रम **इत्येव**कारः. यथा सुरभिचन्दनमित्यत्र सौरभ्यांशे स्मरणं न तु चक्षुषा सौरभ्यग्रहः तथापि कस्यचिद् भ्रान्तोनुव्यवसायो भवेत् "सौरभ्यमपि पश्यामी"ति तत्र सत्यस्यैव सौरभ्यस्य दर्शनमात्रांशे भ्रमस्तथातीन्द्रियाणां पदार्थानामिन्द्रियविषयत्वांशे भ्रम इत्यर्थः. **अथो अमुष्ये**त्यत्र **अस्मिन्नेव बालके** इति. आत्मयोगत्वाद् यं प्रदर्शयति स एव पश्यतीति यशोदयैव दृश्यते नान्यैरिति पक्षोप्युपपन्न इति भावः. **मुक्तिश्चे**ति. ज्ञानस्य जातत्वात् तन्मार्गीया मुक्तिर्ब्रह्मभावः स्यादित्यर्थः ॥४०॥

परिदृश्यते सूक्ष्मस्तस्मिंश्च जगद् विशालम्. **ममार्भकस्ये**ति पूर्वं भावदार्ढ्यम्, अन्यथा निरोधो न स्यान्मुक्तिश्च स्यादिति. कोयं तव बालकस्य गुण इति चेत् तत्राह **यः कश्चने**ति– भिन्नतयेदमित्थतया वा ज्ञातुं न शक्यते. इदानीमेव देवतान्तर-सम्बन्धाज्जातं भविष्यतीत्याशङ्क्या**हौत्पत्तिक** इति. स्वाभाविकोयमुत्पत्तिशिष्टः, पूर्वमप्यनुभूतत्वात् पूतनादीनां मारणाच्च. केवलं प्रदर्शकत्वे पूतनादीनां वधो न स्यात्, अत **आत्मयोगः**– आत्मन एव भगवतो योगरूपेयं विभूतिरित्यर्थः ॥४०॥

एवं भगवद्विभूतिरूपमेतदिति ज्ञात्वा यत् कर्तव्यं तत् कृतवतीत्या**हाथो** इति.

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥४१॥

अथो दर्शनानन्तरं यस्माद् भगवतः सकाशादेतत् **प्रतीयते यत् सुदुर्विभाव्यं,** अतः सोलौकिको भवतीति **तत्पदं प्रणतास्मी**ति सम्बन्धः. एतद्दर्शनस्यालौकिकत्वं वक्तुं लौकिकबुद्ध्यविषयत्वमाह **चेतोमनःकर्मवचोभिः यथावद् वितर्कगोचरं न** भवतीति. चित्तं योगादिभावितं, मनःकर्मवचांसि लौकिकानि. अलौकिकबुद्ध्यापि नैतावत् कल्पयितुं शक्यत इदमित्थमिति. अतीन्द्रियाणामपि दृष्टत्वान्मनसो बहिरस्वातन्त्र्याल्लौकिकप्रवणत्वाच्च. कायिकमत्रादृष्टं गृहीतमदृष्टवशादप्येतन्निर्णयो वक्तुं न शक्यतेऽलौकिकत्वात्. परस्परव्याघाताच्च न वचसा. आपाततः कल्पना-

टिप्पणी

चेतो मनःकर्मेत्यत्र. **कायिकमत्रे**ति उत्तमकायहेतुप्रारब्धमित्यर्थः. **परस्पर-**

प्रकाशः

अथो यथावदित्यत्र. चेतोमनःपौनरुक्त्यपरिहाराय [1]चेतःशब्दार्थ माहु**श्चित्त-मि**त्यादि. तस्य प्रयोजनमाहु**रलौकिके**त्यादि. मनसः कल्पकत्वं दूषयन्ति **मनस** इत्यादि. **कर्म**शब्दार्थं विवक्षितमाहुः **कायिकमि**त्यादि. तदर्थं टिप्पण्यामाहु**रुत्तमे**त्यादि. तथा च मूले **कर्म**पदेनोत्तमकायहेतुप्रारब्धरूपमदृष्टं गृहीतमित्यर्थः. तस्य कल्पकत्वं दूषयन्ति [2]सुबोधिन्या**मदृष्टवशादि**त्यादि. वचसा कल्पनपक्षं दूषयन्ति[2] **परस्परे**त्यादि.

लेखः

अथो यथावदित्यत्र. **यस्माद् भगवत** इति यस्माद्धेतुभूतादित्यर्थः. तथा च मूले **यत** इति हेतौ पञ्चमी. प्रतीयमानमाहुः **यत् सुदुर्विभाव्यमिति**. **यदाश्रयमि-**

१-१, २-२. लुप्तम्.

यामपि **यथावद् वितर्कगोचरं न** भवति. तथैव मायिकमित्यादिपक्षकल्पनाया-**मप्यञ्जसा** सामस्त्येन नोपपद्यते. न हि स्वस्यापि तत्र पूर्वापरानुसन्धानसहितस्य प्रतीतिः सम्भवति, तथैव पदार्थानां विचारेपि स्थैर्यं च, अवस्थादेशकालाश्च. किञ्चैतत् सर्वप्रदर्शकः स्वमाहात्म्यार्थं स्वभिन्ने स्थाने प्रदर्शयति; स्वस्मिंश्च पदार्थानां भाररूपत्वान्न स्थापयेत्, स्वावस्थादेशकालानां भ्रमासम्भवात्. **येन** च चक्षुषा **प्रतीयते** तच्चक्षुरपि नास्मदीयं, अन्यथा विद्यमानानां ज्योतिश्चक्रस्थपदार्थानामन्यदापि दर्शनं स्यात्. अतः सामर्थ्यं दत्वा स्वत एव स्वस्मिन् विद्यमानं जगत् स्वमाहात्म्यज्ञापनार्थं प्रदर्शितवान्. अतो ज्ञातमाहात्म्या **तत्पदं प्रणतास्मि** "नमो नम" इत्येतावत् सदुपशिक्षितमिति शास्त्रार्थत्वात् ॥४१॥

प्रणतायाः प्रार्थनामाह**ाहमिति**.

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

सर्वापि दुर्बुद्धिर्भगवत्प्रणताया गच्छतीति दुर्बुद्धीर्गणयति— आदाव**हं** यशोदेति, **ममासौ** नन्दः **पतिरित्येष** भगवान् विश्वाधारो **मे सुत** इत्यहं पुन**र्व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती** पतिव्रता चेति. नन्दस्य व्रजेश्वरत्वं, तत्स्त्रीत्वं च स्वस्य, ततस्तस्य धनसम्बन्धस्तद्रक्षकत्वं च स्वस्य, तदपि सामस्त्येनोभयत्र, तत्रापि पातिव्रत्यं, भगवानपि परपुरुष इति तदभजनं च; अतः "स्त्रीणां पतिरेव विष्णुरि"ति च. एता **गोप्यो** गोपभार्याः स्त्रियोऽस्मदीयाश्चेति; **च**कारात् तद्बालकास्तत्सम्बन्धाश्च. तथा **गोपाः सहगोधनाः** स्वपरिकरसहिता गोष्ठसहिताश्चैते सर्वे **मे यन्माययेत्थं कुमतिरहं स मे गति**रस्तु. **अहमि**ति चतुर्विधोध्यासो जातिलिङ्गकुलदेहभेदेन. **ममे**ति शतप्रकाराः, पतिपुत्रधनगोपगोपीगवां षड्विधानामनेकप्रकारत्वात्. **इत्थमहं** कुबुद्धि**र्यन्मायया म** आत्मनो जीवरूपस्य ब्रह्मरूपस्य वा. **कु**त्सिता चासौ **मति**श्च. तदीया माया हि तेनैव निवर्त्या. बुद्धिप्रकाराः सर्वे मायाया एवेति न तैः स्वकार्यसिद्धिः. मायातिरिक्तस्त्वहमेव; मायामोहविषयत्वात् पृथक्तया पुन**र्म** इतिवचनं मायासम्बन्धव्युदासार्थं सम्बद्धस्यैव गतित्वाभावाय. **गति**रत्र प्राप्यस्वरूपं फलम्. एवमुपालम्भार्थं प्रवृत्ता शरणं गता जाता ॥४२॥

एवं ज्ञाने जाते भक्तिसुखं न प्राप्स्यतीति भक्त्यानन्दस्य ब्रह्मानन्दापेक्षया महत्त्वाद् भक्तार्थं दैव्या मायया मोहितवानित्या**हेत्थमि**ति त्रिभिः.

टिप्पणी

व्याघातादिति. एकदैवेकस्यैव वस्तुनोन्तर्बहिश्च स्थितिकथने तथात्वादित्यर्थः. **विचारेपी**ति. मायिकानां भ्रमप्रतीतानां वस्तूनां विचारासहत्वम्, अत्र च तद्वैपरीत्यमित्यर्थः ॥४१॥

प्रकाशः

तदर्थं टिप्पण्यामाहु**रेकदैवे**त्यादि. सुबोधिन्यामनिर्वचनीयकल्पनपक्षमुद्भावयन्**त्यापतत** इत्यादि. तद् दूषयन्**त्यञ्जसे**त्यादि. तत्रोपपत्तिमाहु**र्न ही**त्यादि. **तत्रे**ति तादृशेऽनिर्वचनीयकल्पनपक्षे. युक्त्यन्तरमाहु**स्तथैवे**त्यादि. **विचारेपी**त्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्मायिकानामि**त्यादि. सुबोधिन्यां **कालाश्चे**ति सम्भवन्तीति शेषः. सर्वस्य श्लोकस्य निष्कृष्टमर्थमाहुः **किञ्चे**त्यादि. तथा च यथा "स्वधिष्ण्यं प्रतपन् प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमानि"तिवदेकमेव जगत् मुखान्तःप्रतीयमानमेव बहिः प्रदर्शयतीति तथेत्यर्थः ॥४१॥

लेखः

त्यस्यार्थमाहुः **किञ्चे**ति. **येने**त्यस्यार्थमाहुः **येन चे**ति ॥४१॥

टिप्पणी

मायातिरिक्तस्त्वहमिति विवरणे पुल्लिङ्गनिर्देशो बुद्धिप्रकाराणां दुष्टत्वेन गणनाच्छुद्धजीवमात्राभिप्रायेण कृतः॥४२॥

प्रकाशः

अहम्ममेत्यत्रानेकप्रकारत्वादित्यनेके प्रकारा उत्कृष्टा अपकृष्टा वा धर्मा येषु तत्त्वात्. '**मायातिरिक्तस्त्वहमेवे**त्येतस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्मायातिरिक्त**[१] इत्यादि. तथा च मूलेऽहम्पदेन शरीरविशिष्टपरमिति भावः. मायासम्बन्धव्युदासस्य प्रयोजनमाहुः **सम्बद्धस्ये**त्यादि. स्वस्य शुद्धत्वात् मायासम्बन्धयुक्तस्वरूपस्य विष्वादेस्तथात्वाभावादित्यर्थः.[२] इयं च लीला पद्मपुराणे माघशुक्लाष्टम्यामुक्ता "तेनैवाष्टादशे मासि माघशुक्लाष्टमीदिने मृत्तिकाभक्षणव्याजात् मात्रे विश्वं प्रदर्शितमि"ति. एतावान् विशेषः – जृम्भालीला तत्र पश्चात् श्रीभागवते तु पूर्वम् ॥४२॥

लेखः

अहमितिश्लोकस्यान्ते **सम्बद्धस्यैवे**ति. मायासम्बद्धजीवनिरूपितं गतित्वं भगवति मा भूयादित्यर्थः. ॥४२॥

१, १. मायाव्यति°. २. °येत्यर्थः.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्थं विदिततत्त्वाया गोपिकायाः स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां प्रजास्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **विदितं तत्त्वं** यया. तत्त्वज्ञानानन्तरं तस्या मातृत्वाभावाद् **गोपिकाया** इत्युक्तम्. ननु भगवान् ज्ञानं कुतो नाशितवान् तत्राह **स** इति, **स** निरोधकर्ता. ननु नाशनीये ज्ञाने किमर्थमुत्पादितवान् वा किमर्थं नाशितवानित्युभयाभिप्रायो ज्ञातव्य इति चेत् तत्राह**ेश्वर** इति– स हि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थोऽन्यथा च करोति, अतो नात्रोपपत्तिरन्वेष्टव्या[१]. **वैष्णवीमा**धिदैविकीं स्नेहसम्बन्धिनीं निरोधोपयोगिनीं **विशेषेणातनोद्**. विहितस्नेहभावव्युदासार्थमाह **प्रजास्नेहमयीमि**ति. यावदात्मीयतया परमस्नेहे रस उत्पद्यते न तावदीश्वरभावेन, भयज्ञानस्य स्नेहप्रतिबन्धकत्वादत्र च लौकिकत्वेपि प्रजारूपेण स्नेह उचितो नान्यथेत्यनन्तविधासु मायासु **प्रजास्नेहमयीमेव व्यतनोत्.** ननु विरोधिज्ञानस्य जातत्वात् कथं प्रजाबुद्धिर्भगवति भविष्यतीत्याशङ्क्याह **विभुरि**ति. स हि सर्वसमर्थः, एकस्मिन्नेव वस्तुनि कोटिधाबुद्ध्युत्पादनसमर्थः, अन्यथा पूर्वविरुद्धधर्मा उत्तरत्र न भवेयुः ॥४३॥

प्रकाशः

इत्थमित्यत्र **तत्रे**ति श्रीयशोदायाम्. **उचित** इति भगवता तत्र मातृभावस्यैवाङ्गीकारात् ॥४३॥

लेखः

अग्रिमप्रकरणार्थमाहुः **मोहितवानित्याहे**ति. अयं मोहो भक्त्यर्थ इतिभक्तिप्रकरणत्वमिति भावः. **इत्थमि**त्यत्र **अन्यथे**ति विभुत्वाभावे इत्यर्थः. पूर्वघटस्य श्यामत्वदशा; ततो विरुद्धा रक्तत्वादिधर्मा उत्तरस्यां पाकदशायां न भवेयुरित्यर्थः॥४३॥

कारिकार्थः

इत्थं विदिततत्वाया इत्यत्र [२]**प्रक्षिप्ता जालवन्माया तया ज्ञानं विनाशितम्। प्रमाणानां बलं दग्ध्वा मोहयामास गोपिकाम् ॥** अनयाकारिकयैतत्प्रकरणीयश्लोकानां त्रयाणां वाक्यार्था उक्ताः. **प्रक्षिप्ता जालवन्माये**तिप्रथमचरणेन

१. 'रेष्टव्ये'त्यपि पाठः. २. एषापि कारिकाग्रन्थे नास्ति. या या मुद्रापितग्रन्थे प्रमादतः अवशिष्टा सा सा अत्र सम्पूर्णैव निवेशिता.

प्रक्षिप्ता जालवन्माया तया ज्ञानं विनाशितम् ॥(१९)॥
प्रमाणानां बलं दग्ध्वा मोहयामास गोपिकाम् ।

मायामोहे ज्ञानं नष्टमित्याह **सद्य** इति.

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद् यथा पुरा ॥४४॥

तदानीमेव **नष्टा स्मृति**र्यस्याः.[१] अत्र भगवन्मतमनुभवस्मरणयोर्मध्ये न संस्कारोनुभवः स्मृतिमेव जनयति. [२]यथेन्द्रियसंयोग उत्तरोत्तरमनुभवोद्बोधकस्तथा

प्रकाशः

सद्य इत्यत्र**ानेने**ति नाशप्रतियोगितया स्मृतिकथनेन. **अन्यथे**त्यस्यैव विवरण**मनुभवे**त्यादि. तथा च यदैव माया प्रसारिता तदैव प्रसारितेपि मुखे तद्दर्शनं न जातमिति भावः. [३]नन्वनुभवस्थितिक्षणे संस्कारोत्पत्तिरनुभवनाशक्षणे च संस्कारस्थित्या तेन स्मृत्युत्पत्तिस्तत उत्तरक्षणे[४] स्थितिस्ततो नाश इत्युचितं, न त्वनुभवनाशक्षणे स्मृतिनाशः सङ्गच्छत इत्याकाङ्क्षायां सद्यः स्मृतिनाशोक्तितात्पर्यमाहु**रत्रे**त्यादि. नन्वेवं संस्कारमङ्गीकृत्य स्मृत्यङ्गीकारे बहुकालोत्तरं या स्मृतिः सा न स्यादित्यत

लेखः

एतत्प्रकरणीयश्लोकानां त्रयाणां प्रत्येकवाक्यार्थानाहुः **प्रक्षिप्ते**ति. प्रथमचरणेन द्वितीयचरणेनोत्तरार्धेन चेति ज्ञेयम्. **मायामोहे**ति, "त्रय्या चे"ति श्लोकोक्तमायामोहे भगवतश्चिकीर्षिते सति **ज्ञानं नष्टमित्य**र्थः. **सद्य** इत्यत्र. ननु पूर्वं पदार्थानुभव उक्तः, नाशोत्र स्मृतेरुच्यत इति पूर्वोत्तरविरोध इत्याशङ्क्याहुः **अनेने**ति. स्मृतिनाशकथनेन स्मृतेरनुभवानन्तरभावित्वादनुभवनाश उक्त इत्यर्थः. एतदेव विवृण्वन्ति **अन्यथे**ति. एतस्यैव विवरण**मनुभवे** इति. अनुभवे विद्यमाने स्मरणं न सम्भवतीति तत्प्रतियोगिको नाशोपि न सम्भवतीति. **स्मृतिमेवे**ति **एव**कारेण संस्कारो व्यावर्तितः॥४४॥

कारिकार्थः

"इत्थं विदिततत्त्वाया" इतिश्लोकार्थ उक्तः. **तया ज्ञानं विनाशितमि**तिद्वितीयचरणेन "सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी"तिश्लोकार्थ उक्तः. कारिकोत्तरार्धेन "त्रय्या चोपनिषद्भिश्चे"तिश्लोकवाक्यार्थ उक्तः $(१९\frac{१}{२})$.

१. अत्र सुबो. त्रुटिता. २. तयेन्द्रिय'. ३. न चानु'. ४. 'क्षण'.

टिप्पणी

सद्योनष्टस्मृतिरित्यत्र. **अनुभवस्मरणयो**रिति, न संस्कारनियम इत्यर्थः, अन्यथा अनुभवाव्यवहितोत्तरक्षणे यत्र स्मृतिः सा न स्यात्. न चैवंविधा सा नास्तीति वाच्यम्, बाधकाभावात्. न चोपनीतभानमेव तत्रेति वाच्यम्, स्मृतित्वोच्छेदप्रसङ्गात्, संस्कारोपनीतत्वस्य सर्वत्र वक्तुं शक्यत्वात्. न च ज्ञानातिरिक्तस्योपनायकत्वाभावान्न तथेति वाच्यम्, अप्रयोजकत्वात्, क्लृप्तमानाभावेपि

प्रकाशः

आहु**र्यथे**त्यादि. तथा च प्रतिवादिमते यथानुभवस्य त्रिक्षणावस्थायित्वं तज्जन्यसंस्कारस्यैव चिरकालस्थायित्वं सादृश्याद्युद्बोध्यत्वं चरमस्मृतिनाश्यत्वं च तथात्र[१] भगवन्मतेऽनुभवस्य चिरकालस्थायित्वमिन्द्रियसंयोगस्य च तदुद्बोधकत्वं; तथा स्मृतेरपि चिरकालस्थायित्वं सादृश्याद्युद्बोध्यत्वमदृष्टनाश्यत्वं चरमस्मृत्युत्तरकालिकानुभवादिनाश्यत्वं चेति बहुकालोत्तरमपि स्मृतिर्नानुपपन्नेत्यर्थः. एवं च धारावाहिकस्थलेप्येकमेव ज्ञानं; तदुपपादितं तृतीयस्कन्धे "तथाविभ्रंशितज्ञाना" इत्यत्र. नन्वत्र **सद्यः**पदोक्त्या द्वितीयक्षणे तन्नाशाद् भगवन्मतेऽनुद्भूतस्मृत्युत्पत्तिनाशधारैव कुतो नाङ्गीक्रियत इत्यत आहु**र्निरन्तरे**त्यादि. तथा चात्रैव[२] द्वितीयक्षणे नाशोन्यत्र तु ज्ञानस्य चिरकालस्थायित्वमेवेत्यर्थः.

इदमेव सर्वं कापिलेयसुबोधिनीविरोधाभावाय प्रभवष्टिप्पण्यां व्याकुर्वते[३]-**ऽनुभवे**त्यादि. **न संस्कारनियम** इति. "संशयोथ विपर्यास" इत्यस्य सुबोधिन्यां संस्काराङ्गीकारादत्र चानङ्गीकारात् तदनियम इत्यर्थः. नियमाङ्गीकारे दोषमाहु**रन्यथे**त्यादि. अनुभवाव्यवहितोत्तरक्षणकज्ञानस्योपनीतभानत्वे बाधकमुपपादयन्ति **न चोपे**त्यादि. तस्य सद्यो नष्टत्वेन तत्र "स्मरामी"त्यनुव्यवसायाभावात् तथेत्यर्थः. न चेष्टापत्तिः, मूलस्थ**स्मृति**पदविरोधप्रसङ्गात्. ननु संस्कारस्यातीन्द्रियत्वेन तदुद्भवस्यापि शक्यवचनत्वान्न स्मृतित्वोच्छेद इत्यत आहुः **संस्कारे**त्यादि. संस्कारस्यानुपनायकत्वमाशङ्क्य परिहरन्ति **न च ज्ञाने**त्यादि. अप्रयोजनकत्वं व्युत्पादयन्ति **क्लृप्तमाने**त्यादि. प्रमाणचतुष्टयस्यापि शब्दात् सन्निकर्षाणां चाभावे ज्ञानजनकत्वमेवोपनायकत्वमितिलक्षणं तदैवानतिव्याप्तं भवति यदा संस्कारस्योपनायकत्वं स्वीकर्त्तव्यम्, अतस्तत्रापि लक्षणसत्त्वात् ज्ञानस्योपनायकत्वमिति

१. लुप्तम्. २. तयात्रैव. ३. °कुर्वन्ति.

टिप्पणी

ज्ञानजनकत्वस्योपनायकत्वेन संस्कारेपि तत्सत्त्वात्. न च संस्कारजन्यत्वस्य स्मृतित्वात् नैवमिति वाच्यम्, साक्षात्प्रमाणजन्यज्ञानत्वस्यानुभवत्वेन तदतिरिक्तज्ञानत्वस्य स्मृतित्वात्. क्लृप्तद्वारातिरिक्तानन्तरितत्वं साक्षात्त्वं विवक्षितम्. अत एव स्मरामीत्यनुव्यवसायस्तदुत्तरक्षणे तमेव विशेषमवलम्ब्य भवति– यथानुभवत्वसामान्येप्यनुमित्यनन्तरमनुमिनोमीत्येव प्रत्ययो न त्वनुभवामीति तथेति भावः.

प्रकाशः

नियमोऽप्रयोजक इत्यर्थः. अत्र स्मृतिलक्षणविरोधमाशङ्कन्ते **न चे**त्यादि. **नैवमि**ति स्मृतिलक्षणविरोधात् न संस्कारस्योपनायकत्वमित्यर्थः. तद्दूषणाय स्मृतेर्लक्षणान्तरमाहुः **साक्षादि**त्यादि. तथा च स्मृतिलक्षणस्यात्मत्वात्न संस्कारस्योपनायकत्वबाधो नापि स्मृतेः स्मृतित्वोच्छेद इत्यर्थः. नन्वनुमितादावनुभवत्वाव्याप्तिरित्यत आहुः **क्लृप्तद्वारे**त्यादि. तथा च व्याप्तिस्मरणादेरपि क्लृप्तद्वारान्तःपातित्वात् तज्जन्यानुमित्यादेरपि साक्षात् प्रमाणजन्यतया नानुभवत्वाव्याप्तिरनुभवाव्यवहितोत्तरस्मृतौ तु क्लृप्तद्वारातिरिक्तानुभवान्तरितत्वानुभवत्वमिति तद्भिन्नतया स्मृतित्वं नानुपपन्नमित्यर्थः. नन्विदमेव स्मृतेर्लक्षणमिति कथं विनिगन्तव्यमित्यत आहु**रत एवे**त्यादि. क्लृप्तद्वारातिरिक्तान्तरितत्वादेव स्मृत्युत्तरक्षण उक्तविशेषमवलम्ब्यैव 'स्मरामी'त्यनुव्यवसायो भवतीत्यनुव्यवसायाकार एव विनिगमक इत्यर्थः. न [१]चानुभवातिरिक्तज्ञानत्वमेवावलम्ब्य तथानुव्यवसाय इत्यत्र किं मानमिति वाच्यं, अनुव्यवसायाकारे स्मृतित्वस्यैव गोचरतयानुभवभिन्नताया एव भानात्. तथा च यदि त्वदुक्तं लक्षणं स्यात्, तमालम्ब्यानुव्यवसीयेतातो[२] न तथेत्यर्थः. नन्वेवं संस्कारस्योपनायकत्वे तज्जन्यज्ञानस्याप्युपनीतभानत्वेनानुभवान्तःपाता'दनुभवामी'-त्यनुव्यवसायापत्तिरित्यतस्तद् दूषयन्ति **यथे**त्यादि. अनुभवविशेषस्यापि यत्र न तथानुव्यवसायस्तत्रास्य कथमापादयितुं शक्य इति भावः. यथा त्वन्मते ज्ञानस्य द्वारत्वेन तदुपनीतभानस्यानुभवत्वमेवं मन्मते संस्कारस्य द्वारत्वेन तदुपनीतभानस्याप्यनुभवत्वमिति 'जानामी'त्येवानुव्यवसायो न 'त्वनुभवामि स्मरामी'[३]त्यनुव्यवसायो; 'जानाम्यनुभवामी'त्यनुव्यवसायविषयातिरिक्तज्ञानस्यैव[३] स्मृतित्वमिति न तदुच्छेदः. किञ्च 'स्मरामी'त्यनुव्यवसायविषयत्वं स्मृतित्वमित्यतोपि न स्मृतित्वोच्छेद इत्यर्थः. तथा च संस्कारजन्यत्वौदासीन्येन 'स्मरामी'त्यनुव्यवसायगम्यस्य स्मृतित्वाङ्गी-

१. वा°. २. °यते ततो. ३-३. °ति वा तदुभयातिरिक्तज्ञानस्यैव.

टिप्पणी

यद्वा. लौकिकवस्तुतत्त्वनिरूपणे नास्माकं प्रवृत्तिरिति लोके स्मृतिः संस्कारजन्यैवास्ताम् न वा, प्रकृते त्वलौकिकप्रदर्शनप्रस्तावेन तत्सम्बन्ध्यग्रेतनमप्यलौकिकमेवेति ज्ञापनाय तथोक्तिः. एतदेव**वात्र**पदेनोच्यते. स्मृतिनाशोक्तेस्तदुत्पत्तिरवश्यं वाच्या. सा चोत्पत्तिक्षणोत्तरक्षण एव नष्टेति ज्ञापनाय **सद्यः**पदं मूले, अन्यथा नाशस्यानुक्तिसिद्धत्वेन तन्न वदेत्. एवं सति द्वितीयक्षणाधिकरणकनाशस्याप्राप्तत्वात्तदा [1]तन्नाश इति ज्ञापनाय **सद्यो नष्टस्मृतिरि**त्युक्तम्. तेनेदमप्येकमलौकिकं चरित्रमिति ज्ञाप्यते, आस्तिकैर्द्वितीयक्षणे लोके तन्नाशानङ्गीकारात्. एतेन भक्तिरसानुभावकत्वेन मोहने विलम्बासहिष्णुत्वं भगवत उक्तं भवति. यथा स्वावतारार्थं गर्भसङ्कर्षणं तथेदमिति भावः. यद्यप्येवं संस्कारजन्यत्वं तदजन्यत्वं वा न सिध्यति, तथाप्यत्र कालान्तरेपि स्मृत्यभावस्य वक्तव्यत्वा'न्नष्टसंस्कारे'त्येव वदेत्; स्मृतिनाशस्य स्वतःसम्भवेन तदुक्तिस्तदर्थं **मोहो**क्तिश्च न स्यात्. एवं सत्यन्यथानुपपत्त्यैव तेनानुभवेन स्मृतिरेवोत्पन्ना, सा चोक्तरीत्या नष्टा, संस्कारस्तु न जनित एव, भगवदिच्छाभावादिति मन्तव्यम्. एतदेवाभिसन्धायोक्तमाचार्यै**रत्र भगवन्मतमि**त्यादि.

प्रकाशः

कारेऽनुभवाव्यवहितोत्तरं तद्व्यवहितोत्तरं च स्मृतित्वप्राप्तिरिति बाधकाभावादुभयविधापि[2] स्मृतिः सिध्यतीति भावः.

एवं संस्कारानङ्गीकारपक्षं व्याकृत्य तत्त्वोपपादनायासबाहुल्यात् पक्षान्तरमाहुर्य**द्वे**त्यादि. **तथोक्तिरि**ति भगवन्मतोक्तिः. अथवा, ननु कालान्तरभाविन्याः स्मृतेर्व्यापारमन्तरेण त्रिक्षणावस्थायिनोऽनुभवस्य जनकत्वं न वक्तुं शक्यमित्यत आहुर्य**द्वे**ति. **न वे**ति तु सिद्धान्तग्रन्थाभिप्रायेण. **तथोक्तिरि**ति भगवन्मतोक्तिः. **से**ति स्मृतिः. सिद्धमाहु**रेवं सती**त्यादि. **तदा तन्नाश** इति द्वितीये स्मृतिक्षणेऽनुभवनाशकाले स्मरणस्य नाशः. ननु "यत् सत् तत् क्षणिकमि"त्यत्र किमलौकिकमत आहु**रास्तिकैरि**त्यादि. ननु भगवता तु तथैव सम्पादितमिति नास्तिकमतोपोद्बलनं भविष्यतीत्याशङ्क्य भगवत्कृत्यभिप्रायमाहु**रेतेने**त्यादि. **एतेने**त्येकत्रैवं कथनेनेत्यर्थः. सर्वत्र तथाकृत्यभावान्न नास्तिकमतोपोद्बलनमिति भावः. एतदेव श्रीमदाचार्यैर्विवृतं **निरन्तरे**त्यादिना. सिद्धमाहु**र्यद्यपी**त्यादि **मन्तव्यमि**त्यन्तम्.

१. तन्नाशककाल एव तस्य नाश इति मूले पाठः. २. 'भि'.

स्मृतिरपि केनचिद् बोध्यते नाश्यते च. निरन्तरनाशोत्पत्ती अप्रामाणिके [1]वेदविरुद्धे.

टिप्पणी

किञ्च. संस्कारवादिना सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वेनादृष्टस्यापि स्मृतिहेतोर्वक्तव्यत्व आवश्यकत्वाल्लाघवाच्च तदेवास्तु, कृतं संस्कारेणेत्याशयेनापि तन्निषेध उक्तः. न चानुभवस्याविहितत्वेन तदजनकत्वात्प्राचीनस्य तस्यानुभवं विनाऽजनकत्वात्तस्य च नष्टत्वेन सहकार्यभावात्स्मृतिरेव न स्याद् अनुभवं विनापि वा स्यादिति वाच्यम्, अनुभवतद्ध्वंसयोरन्यतरस्य सहकारित्वात्, त्वयापि सदृशादेरननुगतस्यैवोद्बोधकत्वाङ्गीकारात्. एतदेवोक्तं **स्मृतिरपी**त्यादिना. **नाश्यते चे**ति– स्वसमानाधिकरणस्वसजातीयप्रागभावासहभूतं क्रियत इत्यर्थः. न च प्रतियोग्यभावयोरेकत्राजनकत्वान्नैवमिति वाच्यं, व्यक्तिभेदेनादोषात् . न चैकजातीयेपि तथेति वाच्यं, ज्ञानजातीय उभयोरपि जनकत्वात्.

प्रकाशः

भगवन्मतानुवादग्रन्थं यथाश्रुतमेव व्याकरिष्यन्तो बहुकालोत्तरस्मृत्युपपत्तिसाधनं परप्रसिद्धरीत्याहुः **किञ्चे**त्यादि. **तदेवास्त्व**दृष्टमेव कारणमस्तु. अदृष्टपक्षे दूषणं विकल्पयन्ति **न चे**त्यादि. कालान्तरीयस्मृत्युपपत्त्यर्थमदृष्टस्य व्यापारत्वं सहकारित्वं कारणत्वं वादर्तव्यम्. तत्राद्ये लौकिकानुभवस्याविहितत्वेनादृष्टाजनकत्वाद् व्यापाराभावेन स्मृतिरेव न स्याद्. द्वितीये प्राचीनस्य **तस्य** मुख्यकारण**मनुभवं विनाजनकत्वात्** स्मृतिरेव न स्यात्. तृतीयेऽनुभवस्य **नष्टत्वेन सहकार्यभावात् स्मृतिरेव न स्यात्.** [2]प्राचीनादृष्टस्यासहायशूरत्वे **त्वनुभवं विनापि** स्मृतिः **स्यादि**त्यर्थः. [3]परिहर**न्त्यनुभवे**त्यादि. सहकार्यननुगममाशङ्क्य [3]परिहरन्ति **त्वयापी**त्यादि. तथा चोभयोस्तौल्यात् न पर्यनुयोग इत्यर्थः. अयमेवाचार्याशय इत्यत्र मानमाहु**रेतदेवोक्तमि**त्यादि. अनुभवतद्ध्वंसान्यतरसहकृतप्राचीनादृष्टजन्यायाः स्मृतेश्चिरकालस्थायित्वाङ्गीकारेण सादृश्याद्युद्बोध्यत्वमेवोक्तमित्यर्थः. ननु स्मृतिनाशस्य स्वत एव जायमानत्वात् किं तन्नाशकथनेनेत्यत आहुः **स्वसमाने**त्यादि. **सजातीयप्रागभाव** इत्यत्र षष्ठीसमासः, **सहभूतमि**ति स्मरणाभिप्रायेण नपुंसकं; तथा च पुनः सजातीयस्मरणानुत्पत्त्यर्थं तन्नाशोक्तिरित्यर्थः. अनुभवतद्ध्वंसयोः सहकारित्वपक्षे दूषणमनूद्य परिहरन्ति **न चे**त्यादि. **एकत्राजनकत्वादि**त्येकव्यक्त्यजनकत्वात्.

१. 'विरुद्धवादिनामेव मतसिद्धे. २. 'नस्या'. ३-३. लुप्तम्.

टिप्पणी

नन्वभावत्वेन कारणत्वे प्रतियोगिनः प्रतिबन्धकत्वापत्त्या नैवं वक्तुं युक्तम्, ज्ञानं प्रत्यभावस्य विषयत्वेन कारणत्वान्न दोषः, संसर्गाभावत्वेन प्रतिबन्धकाभावस्य हेतुत्वेनात्र तथात्वाभावादिति चेत्; अत्राप्यनुभवध्वंसत्वेन कारणत्वान्न दोष इति तुल्यम्, अन्यथानुभवप्रागभावेऽत्यन्ताभावे च सति स्मृतिप्रसङ्गः. एतच्चानुभवाव्यवहितोत्तरक्षणेपि स्मृतिमङ्गीकृत्योक्तम्. तदनङ्गीकारे तद्ध्वंसस्यैव सहकारित्वं वाच्यम्, तच्चोक्तरूपेणेति भगवन्मतानुवादग्रन्थो यथाश्रुत एव साधीयान् भवतीति

प्रकाशः

'**एकजातीयेपी**ति घटादावितिशेषः. परिहरन्ति **ज्ञाने**त्यादि. उक्तं व्यवस्थापयन्तः पुनर्दूषयन्ति **नन्वि**त्यादि. **अत्र तथात्वाभावा**दित्यनुभवध्वंसत्वेन कारणत्वाभावात्. ननु[२] ध्वंसस्याभावत्वादभावत्वेन रूपेण कारणत्वे प्रतियोगिनोऽनुभवस्य प्रतिबन्धकत्वापत्त्यानुभवध्वंसस्य कारणत्वं न वक्तुं युक्तम्. न च कार्यस्य ज्ञानजातीयत्वात् न दोष इति वाच्यं, ज्ञानं प्रत्यभावस्य विषयत्वेन कारणतया दोषाभावादिह तु विषयत्वेन कारणतयाविवक्षितत्वात् तदतिरिक्तनिमित्तत्वेनैव कारणता वाच्या. तत्र निमित्तरूपविचारे च यथा दाहे मण्यभावस्य तत्तद्रूपेण कारणतायां गौरवात् संसर्गाभावत्वेनैव प्रतिबन्धकाभावस्य हेतुताङ्गीक्रियते तथात्रापि ध्वंसस्य संसर्गाभावत्वेनैव रूपेण कारणरूपेण कारणताङ्गीकार्या, प्रतिबन्धकाभावस्थले तथा क्लृप्तत्वात्. तथा सति प्रकृतेपि ध्वंसत्वेन कारणत्वस्याभावादनुभवस्य प्रतिबन्धत्वापत्तिर्दुवारेत्यर्थः. अत्र समादधते**ऽत्रापी**त्यादि. प्रतिबन्धकाभावस्य संसर्गाभावत्वेन कारणता हि लाघवार्थमङ्गीकृता[३], प्रकृते चानुभवध्वंसत्वेन कारणताङ्गीकारे लाघवात् न गौरवमिति तुल्यं; तथा चानुभवस्य न प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः. ननु क्लृप्तकार्यकारणभावत्यागो न युक्त इत्यत आहु**रन्यथे**त्यादि. तथा च क्लृप्तकार्यकारणभावाङ्गीकारे दोषादनुभवध्वंसत्वेनैव कारणत्वमित्यनुभवतद्ध्वंसयोरदृष्टसहकारित्वेन निर्वाहात् संस्काराङ्गीकारो न युक्त इत्यर्थः. एवं द्वयोः सहकारित्वे बीजमाहु**रेतच्चे**त्यादि. **उक्तरूपेणे**त्यनुभवध्वंसत्वेन रूपेण.

नन्वेवं संस्कारे दूषिते सति यागादपूर्वमपि न सिध्येद्, यागध्वंसस्यैव कारणताया वक्तुं शक्यत्वादित्याशङ्क्य परिहरन्ति **न चैवमि**त्यादि. ननु मास्तु

१. 'ज्ञा'. २. लुप्तम्. ३. 'क्रियते.

टिप्पणी

सर्वं सुस्थम्. न चैवं यागजापूर्वासिद्धिः, श्रुत्या यागस्य हेतुत्वमुक्तमिति तदभावस्य तथा कथनायोगात्, प्रतियोग्यभावयोरेकव्यक्तिजनकत्वादर्शनाच्च. ननु घटतदभावयोः स्वसमूहालम्बिज्ञानजनकत्वं दृष्टमिति चेत्, सत्यम्. प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यैव यत्कार्यजनकतावच्छेदकत्वं तत्कार्यं तद्ध्वंसेन न जन्यत इति हि नियमः. तत्र यागत्वस्यैवोभयजनकतावच्छेदकत्वान्न तथा वक्तुं शक्यम्; प्रकृतेऽनुभवस्याजनकत्वान्नोक्तदूषणापत्तिः. अत एवानुभूतं स्मर्यत इति व्यवहारो भूते 'क्ता'नुशासनादतीतानुभवविषयत्वमेव तदर्थ इति ध्वंसस्यैव हेतुत्वमवगम्यते. अतीतमनुभवविषयत्वं यत्रेत्यर्थो ज्ञेयः. श्रुतिबलाद्यागे न तथा वक्तुं शक्यमिति.

प्रकाशः

पृथक्कारणत्वं, व्यापारतायां न दोष इत्यत आहुः **प्रतियोगी**त्यादि. तयोरेकव्यक्त्यजनकत्वे पुनः शङ्कते **नन्वि**त्यादि. तदङ्गीकृत्य परिहरन्ति **सत्यमि**त्यादि **दूषणापत्तिरि**त्यन्तम्. **नियम** इति दण्डघटादौ दृष्ट इति शेषः. **तत्रे**ति यागस्थले. यागत्वस्यैवापूर्वरूपस्वर्गादिरूपकार्यजनकतावच्छेदकत्वात् न तद्ध्वंसस्य स्वर्गकारणत्वं वक्तुं शक्यम्, अनुभवस्थले त्वनुभवस्य साक्षात्स्मृत्यजनकत्वात् नोक्तदूषणापत्तिरित्यर्थः. समूहालम्बनस्थले च घटाभावत्वस्यापि कार्यजनकतावच्छेदकत्वात् न प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यैव कार्यजनकतावच्छेदकत्वमिति न दोष इत्यर्थः. अत्र सम्मत्यर्थं युक्त्यन्तरमाहु**रत एवे**त्यादि. **अत एवे**त्यनुभवस्य साक्षात्स्मृत्यजनकत्वादेव. **तदर्थ** इति **भूत**पदस्यार्थः. **हेतुत्वमि**ति सहकारित्वम्. ननु यागध्वंसस्य द्वारत्वाङ्गीकारे को दोष इति चेत् तत्राहुः **श्रुती**त्यादि. अस्मदादिवैधचेष्टाया भगवद्रूपयागाभिव्यञ्जकत्वात् तेनैव फलसिद्धिः श्रुतिसम्मता, न तु ध्वंसेनेत्यर्थः.

नन्वदृष्टजन्यतावच्छेदकेन स्मृतित्वमिति तस्य मुख्यकारणत्वं न वक्तुं शक्यमिति चेत् न, सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वेनाङ्गीकृतस्यादृष्टस्य जन्यतावच्छेदकविचार उत्पत्तिमत्त्वं सर्वत्वविशिष्टमुत्पत्तिमत्त्वं वा न तज्जन्यतावच्छेदकं, तस्यादृष्टेपि सत्त्वात्. नापि कार्यमात्रवृत्तिजातिरुक्तदोषात्. अतस्तेन तेन प्रति नियतरूपेणैव[१] तज्जन्यतावच्छेदकत्वं वाच्यं; तथा सति स्मृतित्वस्यापि तज्जन्यतावच्छेदकत्वे को दोषः? अतोऽदृष्टस्य मुख्यकारणता तु न दुष्टा[२]. किञ्च संस्कारदूषणेऽस्माकं

१. लुप्तम्. २. दृष्टा.

विवेकेन ज्ञानोद्बोधनमाशङ्क्याह **गोपी**ति. तत्रापि **सारोहमङ्क**स्थानं भगवन्त**मारोप्य प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदया** सती पूर्ववदे**वासीत्.** बहिर्व्यापारोपि ज्ञानसाध्य आरोपणात् पूर्ववत् कृतः स्नेहोप्यान्तरः. ज्ञानानन्तरमान्तरः स्नेहोन्यथा भविष्यतीत्याशङ्क्य प्रवृद्धस्नेहेन कलिलं हृदयमित्युक्तम्. न हि विहितस्नेहे हृदये कलिलता भवति. कलिलमत्र पङ्किलमिव मोहसहितः स्नेहस्तादृशमेव हृदयं जातमिति कालान्तरेपि न कलिलनिवृत्तिः. पूर्वावस्थापरित्यागे मायया भक्तत्वमेव स्यात् न तु निरोध इति **यथा पुरे**त्युक्तम् ॥४४॥

अतः परं प्रमाणान्तरेणापि न स्मृत्युद्बोध इत्याह **त्रय्ये**ति.

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्ययोगैश्च सात्त्वतैः ।

टिप्पणी

आरोपणात्पूर्ववत्कृत इति. अङ्कारोपणनिरूपणात् स तथा कृत इति ज्ञाप्यत इत्यर्थः. **मोहसहित** इति. शुद्धं हि जलादिकमन्ययोगेन मलिनं भवति. प्रकृते च प्रवृद्धोपि स्नेहो न निरुपधिः किन्तु पुत्रत्वोपाधिक इत्याशयेन कलिलतोक्तेत्यर्थः. यद्वा. पूर्वोक्तज्ञाने सति भगवति भक्षणशयनशीतोष्णादिधर्मास्फूर्तिः सहजा, स्नेहे च सति तत्स्फूर्तिः सहजा. तथा चोभयोर्विरोध इति स्नेहसम्बन्धी यः **कलिः** कलहो, विरुद्धधर्मोपमर्दनमिति यावत्, **तं लाति** स्वीकरोत्येतादृशं हृदयं यस्याः सा तथेत्यर्थः. तेन हृदि ज्ञानतिरोभावपूर्वकः स्नेहभर उक्तो भवति. ज्ञानं निरूप्य तदन्ते स्नेहस्य प्रकृष्टवृद्धिकथनं तत्फलत्वाभिप्रायेण, अन्यस्य तत्त्वेनानुक्तेः. अन्यथा तु ज्ञानस्य निष्फलत्वापत्तिः. अननुसन्धानेपि वैदिकसंस्कारस्यालौकिकातिशयजनकत्ववज्ज्ञानस्यापि स्नेहवृद्धिहेतुत्वमिति भावः. जातिकुलधर्मपरता मातृत्वं च पूर्वावस्था. स्नेहवर्धिन्या मायायास्तत्त्वात्स्नेहेन सततमन्यत्यागपूर्वकं भजनमेव भवेदिति विहितभक्तौ प्रवेशः स्यात्, न तु पुष्टिमार्गीयलीलारसानुभव इत्यर्थः॥४४॥

प्रकाशः

प्रवृत्तिर्न त्वदृष्टस्य मुख्यकारणतात्वसाधने[1]. तथा सति सहकारित्वमेवास्तु किं नश्छिन्नम्? एतावत् कथनं तु वितण्डयेति न दोष इति दिक्.

प्रकृतमनुसरामः. सुबोधिन्यां **तत्रापि से**ति भगवता निरुद्धा. **आरोपणात् पूर्वमि**त्यादिग्रन्थस्तु टिप्पण्यां व्याख्यात इति ततोवधेयः[2] ॥४४॥

---

१. 'तासा'. २. 'धेयम्.

उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सा मन्यतात्मजम् ॥४५॥

त्रयी वेदत्रयी; तत्र क्रियाशक्तेः प्रतिपादितत्वाद् भगवन्माहात्म्यप्रतिपादकत्वम्. **उपनिषत्स्व**पि ब्रह्मप्रतिपादनाद् भगवज्ज्ञानशक्तिप्रतिपादनम्. **साङ्ख्ये**पि नित्यानित्यवस्तुविवेको भगवत्सम्बन्धतद्राहित्यभेदेनैव. **योगे**पि निश्चिन्ततया भगवच्चिन्तनम्. **च**कारात् पशुपतिमतेपि भगवन्माहात्म्यनिरूपणमेव. तथा **सात्त्वतै**र्वैष्णवतन्त्रैरपि. वेदस्य द्विरूपत्वात्. षड्दर्शनैरप्य**युपगीयमानमाहात्म्यो** भगवांस्तादृशं; तावन्ति प्रमाणानि श्रुत्वापि **हरिमात्मजमेव सा मन्यत.** अतो भक्तौ प्रतिष्ठिताऽविहितायां पुत्रभावेन ॥४५॥

एतस्या एतावत्त्वं कथं न त्वन्यासामितिशङ्कां परिहरन् महापुरुषकृपामाह सप्तभिः.

॥ राजोवाच ॥

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवम्महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

नन्दः किमकरोदितिप्रश्नो द्वयेन, कर्मव्युदासस्य वक्तव्यत्वात्. **ब्रह्मन्नि**ति-

---

टिप्पणी

नन्दः किमकरोदित्यत्र. पञ्चभिरुत्तरदाने तात्पर्यमाहुः **कर्मव्युदासस्ये**ति. नेदृशं फलं कर्मणो भवितुमर्हति किन्तु महदनुग्रहस्यैवेति कर्मव्युदासस्य वक्तव्यत्वात्

प्रकाशः

सुबोधिन्यां **त्रय्ये**त्यत्र **च**काराणामर्थमाहु**र्वेदस्ये**त्यादि. **वेदस्य** नित्यकाम्यभेदेन **द्विरूपत्वात् त्रय्या चे**ति **च**कार, उपनिषदामपि ज्ञानोपासनाभेदेन द्वैविध्यात् तत्रापि **च**कारः, दर्शनानां षट्सङ्ख्याकत्वात् **साङ्ख्ययोगैश्चे**ति **च**कार इति तथेत्यर्थः. एतावत्कथनतात्पर्यमाहु**स्तावन्ती**त्यादि ॥४५॥

नन्दः किमकरोदित्यत्र **प्रश्नो द्वयेने**ति. तथा च शेषैः पञ्चभिरुत्तरमित्यर्थः. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहुः **पञ्चभिरि**त्यादि ॥४६॥

लेखः

त्रय्येत्यस्याभासे **प्रमाणान्तरेणापी**ति. चक्षुरादिभिरनुद्बोधः पूर्वमुक्तोऽत्र शब्देन तदनुद्बोध उच्यते इत्यर्थः. प्रमाणैर्हि संस्कारमुद्बोध्य स्मृतिरुद्बोध्यते, अत्र तु संस्कार एव न जात इति भावः. व्याख्याने. **द्विरूपत्वादि**ति मन्त्रब्राह्मणभेदेनेत्यर्थः. तथा च मूले उपनिषदतिरिक्तः सर्वोपि भाग**स्त्रयी**पदेनोक्त इति ज्ञेयम् ॥४५॥

सम्बोधनं ज्ञानार्थं, नामप्रकरणे नन्दस्यैव प्रथमतो निरोधकथनात्. **किं श्रेयो** धर्मरूपं? लोकवेदयोरप्रसिद्धत्वात् प्रश्नः. प्रसिद्धार्थमेवा**हैवम्महोदयमि**ति— एवम्महानुदयोभ्युदयो भगवान् पुत्र इति यस्य श्रेयसः. भिन्नतया यशोदाया अपि निरूपणाद् भिन्नतया प्रश्नो **यशोदा चे**ति. नन्दापेक्षयापि निरन्तरसम्बन्धा**न्महाभागा**. किञ्च **यस्याः स्तनं** सर्वदुःखहर्तापि **पपौ;** सा हि जानाति क्षुन्निवृत्त्यर्थं भगवान् पिबतीति. अतो हरेरपि सा हरिरित्युक्तं भवति. बालकतोषपक्षेपि तदीयस्तन्येनैव तथाकरणादुत्कर्षः ।।४६।।

ननु प्रसिद्धमेव तत्सुकृतं यथा वसुदेवेन कृतमिति चेत् तत्राह **पितरावि**ति.

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भके हितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकस्य मलापहम् ॥४७॥

यद्यपि **पितरौ** जातौ तथापि तादृश आनन्दो नानुभूतो यादृश एताभ्यामनुभूतस्तदाह **नान्ववविन्देतामि**ति— एतदनन्तरमपि नाविन्देतां, अग्रेन्यथैव [1]करणात्. अयं महानानन्द इति ज्ञापयति **कृष्णोदारार्भके हितमि**ति. **कृष्णस्यार्भके हितं** बालचेष्टितं; अनधिकारिणोपि सर्वपुरुषार्थदाना**दुदारम्.** साधनफलं हीनं, तत्रापि

टिप्पणी

तस्य चाग्निहोत्रदर्शपौर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमात्मकत्वेन पश्वात्मकत्वात् तावद्भिस्तद्व्युदासोक्तिरित्यर्थः।।४६।।

कृष्णोदारेत्यत्र उदारत्वोक्तितात्पर्यमाहुः **साधनफलमि**त्यादि. अधिकारः साधनम्, तस्य हीनत्वात् तज्जन्यं फलमपि तथा. अथवा. सुखसाधनरूपं वैदिककर्मणः फलं पश्वादिरूपं तथा. साध्यफलं स्वर्गादि मोक्षान्तम्. ''एतस्यैवानन्द-

प्रकाशः

साधनं फलमित्यादि यदुक्तं तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**रुदारे**त्यादि. साधनशब्देनाधिकारसामान्यपरामर्शे भक्तिमार्गाधिकारस्य तत्फलस्य च तथात्वभ्रमः स्यादित्यरुच्या पक्षान्तरमाहु**रथ वे**त्यादि. **तथे**ति **साधन**शब्दवाच्यम्. **मोक्षान्तमि**ति

लेखः

कृष्णोदारेत्यत्र लौकिकपुरुषार्थेभ्यो भगवदीयपुरुषार्थानामुत्कर्षं साधयन्ति **साधने**त्यादिना. लोके धर्मः कर्मरूपः, अर्थः पश्वादिरूपः, कामः स्वर्गरूपः, मोक्षो

१. कारणात्.

लौकिकं; साध्यफला[1]दप्यधिकः परमानन्दः. स चेत् साध्यस्वर्गादिसाधनं तदा पशुपुत्रादिजन्यमलौकिकं सुखं लौकिकं च तादृशमेव. तत्र साधनोत्कर्षे साध्योत्कर्षो दृष्टो लोके, यथोत्तमैः सूत्रैरुत्तमः पटो यथोत्तमशर्करया भक्ष्यमिति. यत्र परमानन्द एव प्रथमकक्षा तेन साध्यं लौकिकं लौकिकवत्ततोप्यधिकं ततोप्यलौकिकं दिव्यपुत्रपश्वादिरूपं ततोपि स्वर्गादिस्तदिदमुक्तं **कृष्णः** परमानन्दः स **चार्भक**स्तस्य च लीला सा**प्युदारे**ति साक्षाल्लीला परमदुर्लभेति किं वक्तव्यम्? यतः शब्दतोपि श्रुता

टिप्पणी

स्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ती''ति श्रुतेस्तथा. **स** परमानन्द एव **चे**त्तथा **तदा** पश्वादि तज्जन्यं **लौकिकमलौकिकं च सुखं तादृशमेव** परमानन्दरूपमेवेत्यर्थः. **लौकिकवदि**ति— लौकिकवत् परिदृश्यमानं परमित्यर्थः. लोके वेदे च फलात्साधनमपकृष्टं दृष्टम्; यत्र परमकाष्ठापन्नं वस्तु साधनं तत्र तत्साध्यफलस्य का वार्तेति भावः ।।४७।।

प्रकाशः

फलशब्दवाच्यमितिशेषः. तत्र मानमाहु**रेतस्यैवे**त्यादि. सिद्धमाहुः **स परमानन्द** इत्यादि. सुबोधिनीस्थफक्किकायोजनात्वेवमौदार्य[2] ह्यल्पेपि महादानेन व्यक्तं भवति तदत्र व्युत्पाद्यते. तथा च **तत्र** [3]पित्रो**रपि**शब्दाद् श्रीनन्दयशोदयोश्च **साधनं फलं हीनम्.** तत्र हेतु**र्लौकिकं,** वैदिकत्वेपि [4]देवलोकमात्रसाधकत्वात्. तद् टिप्पण्यां विवृत**मधिकार** इत्यारभ्य **तथे**त्यन्तम्. साध्यफलं मोक्षान्तं, तस्मादधिकः परमानन्दः, तदपि[5] टिप्पण्यां श्रुतिविलेखनेन विवृतम्. **तेन** यत् सिद्धं तदपि **स परमानन्द** इत्यार**भ्येत्यर्थ** इत्यन्तेन विवृतम्. [6]सुबोधिन्यामुपपादयन्ति **तत्रे**त्यादिना **भक्ष्यमिती**त्यन्तेन. प्रकृते योजयन्ति **यत्रे**त्यादि. **प्रथमकक्षे**ति साधनरूपा कक्षा. **लौकिकमि**त्यस्यैवार्थो **लौकिकवदि**ति. तदर्थं टिप्पण्यामाहु**र्लौकिकवदि**[7]त्यादि. **ततोप्यधिकं ततोप्यलौकिकमि**ति— **लौकिकवत्** प्रतीयमानाद् **यदधिकं** विशेष-

लेखः

ब्रह्मभावरूपः, परमानन्दस्तु ततोप्यधिकः. सोत्र प्रथमकक्षा धर्मस्थानीयः, अर्थस्थानीयोर्भकरूपो भगवान्, कामस्थानीया लीलोपयोगिनः पुत्रपश्वादयः, मोक्षस्थानीयो भजनानन्दानुभवः. **स्वर्गादिरि**ति स्वर्ग आदिर्यस्येति मोक्ष इत्यर्थः. **अलौकिकं लौकिकमि**त्यत्र व्युत्क्रमेण पाठः क्रमाविवक्षा वा, टिप्पण्यां तथैव व्याख्यानात्.

१. °दधिकः. २. °र्यमल्पेपि. ३, ५. लुप्तम्. ४. °मात्रलोक°. ६. तत् सु°. ७. °दिति.

परमानन्दं जनयतीत्याह **गायन्त** इति. **अद्यापि** व्यासादयः शब्दरसाभिज्ञा निर्दुष्टशब्दार्थवक्तारो रसवद्वक्तारो वा तेन रसेन मत्ता गायन्ति. **अद्यापीति** कालविलम्बेपि तद्रसानुवृत्तिः सूचिता. किञ्च **यत्** चरित्रं **लोकस्य मलं** दूरीकरोति. अतो दोषनिवर्तकं गुणाधायकं च श्रुतमपि भवति तत्र साक्षात्तादृशभोक्तॄणां किं भाग्यं वक्तव्यमित्यर्थः ॥४७॥

अत्र महापुरुषकृपैव कारणमिति वक्तुमुपाख्यानमारभते **द्रोण** इतिपञ्चभिः–

प्रार्थना प्रश्नदाने च भक्तिरागमनं हरेः ॥(२०)॥

प्रकाशः

रसवत् तदेवालौकिकमत्र[१] न तु पूर्वविजातीयं, प्रथमायां तत् सिद्धम्. **दोषनिवर्तकमिति श्रुतमपि**[२] **दोषनिवर्तकमि**त्यन्वयो ज्ञेयः ॥४७॥

द्रोण इत्यत्र **प्रार्थनाप्रश्नदाने** इति. **प्रार्थना** द्वितीयश्लोकार्थ **प्रश्नदानं** राजप्रश्नोत्तरदानं तृतीयश्लोकार्थः ॥४८॥

लेखः

मूले **कृष्ण**पदेन परमानन्दः साधनत्वाद् धर्मः, **अर्भक**पदेनार्थः, लीलापदेन तदुपयोगिनः पश्वादयः कामरूपाः, तस्या औदार्यकथनेन भजनानन्दो मोक्षरूप उक्तः. तत्रापि सर्वपुरुषार्थदानकथनेनैतेषामुत्कर्षोऽवाङ्मनोगोचर इति सूचितम्. **गायन्ती**त्यत्र **शब्दे**ति. शब्दे दर्शनाद्यपेक्षया महान् रस इति ज्ञानं **कवि**पदेन सूचितम्. **निर्दुष्टे**ति. "अदोषौ शब्दार्थौ काव्यं" "रसवद् वाक्यं वा काव्यमि"ति पक्षद्वयमाश्रित्य **कवि**पदार्थ उक्तः. **मत्ता** इति गानस्य मत्तकार्यत्वादिति भावः॥४७॥

द्रोण इत्यत्र **प्रार्थने**त्यादिना सप्तश्लोकानामर्था उक्ताः. क्रमस्याविवक्षितत्वात् पूर्वं द्वयेन प्रश्न उक्तः, अत एव तत्र "प्रश्नो द्वयेने"त्युक्तम्. "द्रोण" इति "जातयोरि"ति द्वयेन **प्रार्थना**. प्रथमे प्रार्थना**मुवाचे**त्युक्तं, द्वितीये प्रार्थनेति भेदः. अत एव "जातयोरि"त्यस्याभासे एवकारः. अग्रे **दानं भक्तिरागमनं** चैकैकेनेति व्याख्यानानुसारेण श्लोकविभागो ज्ञेयः (२०).

कारिकार्थः

द्रोणो वसूनां प्रवर इत्यत्र **प्रार्थने**ति. अत्र "नन्दः किमकरोदि"त्यादि-पूर्वोक्तश्लोकद्वयेन सह सप्तश्लोकानामर्था उक्ताः. मूले प्रार्थनातः पूर्वोक्तोपि प्रश्नः कारिकायां क्रमस्याविवक्षितत्वात् पश्चादुक्तः. तत्र "नन्दःकिमकरोद् ब्रह्मन्नि"त्या-

१. 'वात्र लौकिकं. २. 'मिति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह ।
करिष्यमाण आदेशं ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥४८॥

पूर्वकल्पेऽष्टवसुषु **द्रोणो** नाम कश्चिद्. यद्यप्यस्मिन् कल्पे न तस्य भार्या धरा तथापि कल्पान्तरे तथेति न विरोधः. तस्मिन् कल्पे वस्वादयो **ब्रह्मण** एव जाता इति सृष्ट्यर्थमाज्ञापितो **भार्यया सह** सृष्टिलक्षण**मादेशं करिष्यमाणस्तं** ब्रह्माण**मुवाच. ह**ेत्याश्चर्ये– क्व सृष्टिकर्तृत्वं क्व भक्तिरिति ॥४८॥

प्रार्थनामेवाह **जातयोरि**ति.

॥ द्रोण उवाच ॥

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥४९॥

भुवि जातयोर्नावावयोर्हरौ भक्तिः स्यात्. प्रार्थनायां लिङ्. शाश्वतः साधनैश्च जायमाना ज्ञानकर्मणोरल्पत्वात् जीवेषु न परमा भवति. वरप्रसादात् लौकिकानामुत्कर्ष इव भक्तेरप्युत्कर्षो भविष्यतीति **परमा** प्रार्थ्यते. लोकोपकारं दृष्ट्वा यत्र क्वचिद् भक्तिर्भवति यथा धातरि तन्न पुरुषार्थरूपं, तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **महादेव** इति. यतः परमधिको देवो नास्ति यस्तु देवेषु परमां काष्ठां प्राप्तः स महादेवः. स्वयं वसुः, ब्रह्मा च देवेषु श्रेष्ठस्ततोपि महान् महादेवो भगवान् पुरुषोत्तम एव भवति. स्वत उत्कर्ष उक्तः, कार्यतोप्युत्कर्षमाह **विश्वेश्वरे हरा**विति. सर्वस्यापि सर्व-फलदातरि सर्वस्यापि सर्वदुःखनिवारके. ततः किं स्यात्? अत आह **ययाञ्जो दुर्गतिं तरे**दिति. देहसम्बन्धो दुर्गतिः. अनायासेन तरणं भक्त्यैव, अन्यकृतत्वान्नौकारूढवद्.

लेखः

ययाञ्जो दुर्गतिं तरेदित्यत्र **अन्यकृतत्वा**दिति. "तेषामहं समुद्धर्ते"तिवाक्येन भगवत्कृतत्वादित्यर्थः॥४९॥

कारिकार्थः

दिद्वयेन **प्रश्न** उक्तः. अत एव तत्र "प्रश्नो द्वयेने"त्युक्तम्. "द्रोण"इति "जातयोरि"तिद्वयेन **प्रार्थना**. प्रथमे "प्रार्थनामुवाचे"त्युक्तं द्वितीये "प्रार्थने"ति भेदः. अत एव "जातयोरि"त्यस्याभासे "प्रार्थनामेवाहे" त्येवकारः. अग्रे **वरदानं भक्तिरागमनं** चैकैकेनेति व्याख्यानानुसारेण श्लोकविभागो ज्ञेयः. "अस्त्वित्युक्त" इति **वरदानं**, "ततो भक्तिर्भगवती"ति **भक्तिः**, "कृष्णो ब्रह्मण आदेशमि"त्यनेन **हरेर्व्रजे आगमनमि**त्यर्थः (२०).

ब्रह्मा पुनः साधनोपदेशयोरसमर्थः॥४९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अस्त्वित्युक्तः स एवेह व्रजे द्रोणो महायशाः ।

जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥५०॥

ब्रह्मवाक्यं न मृषा भवतीति भगवत्प्रसादाद**स्त्वि**त्येवाह. ततः स्वे स्वर्ग एव सृष्टिमुत्पादितवांस्ततोऽधिकारे समाप्ते प्रलये च जाते ब्रह्मलोके स्थितो भाविभगवदवतारं ज्ञात्वा ब्रह्मणा प्रेरितः **स एव द्रोण इह व्रजे नन्द इत्याख्यातो जज्ञे.** पूर्वनामाग्रे न प्रकाशनीयमिति भगवानानन्दोयं नन्द इति फलग्रहणार्थं व्याप्तिं परित्यज्य

टिप्पणी

अस्त्वित्युक्त इत्यत्र **फलग्रहणार्थमि**त्यादि. अत्रायं भावः– पुरुषोत्तमानन्दाधिष्ठानं ब्रह्मानन्द इति तद्योग्यत्वार्थं ब्रह्मानन्दता महदनुग्रहेण सम्पन्नास्मिन्. तदा हि सर्वत एवानन्दस्फूर्तिर्भवति. एवं सत्येतेनैव पूर्णार्थताज्ञाने पुरुषोत्तमाविर्भावः स्वस्मिन्न भविष्यतीति भक्तिरसानुभवार्थमुक्तं बाधकमंशं त्यक्त्वा तथा प्रसिद्ध इति ॥५०॥

प्रकाशः

जातयोरित्यत्र **देहसम्बन्धस्य दुर्गति**त्वं "सा गृहीत्वे"त्यत्र प्रतिपादितं "पुन्नाम्नो नरकादि"त्यादिना. **अनायासेन तरणं भक्त्यैवे**त्यपि "तथा न ते माधव" "स्वयं समुत्तीर्ये"त्यादिना पूर्वमेव प्रतिपादितं ज्ञेयम्. अनायासेन तरणे हेतु**रन्यकृतत्वादि**ति. तरणस्य तथात्वादित्यर्थः ॥४९॥

अस्त्वित्युक्त इत्यत्र **तत** इत्यादि **प्रेरित** इत्यन्तग्रन्थस्तु **स एवे**त्येतत्तात्पर्यकः. **फलग्रहणार्थमि**ति. तदर्थं टिप्पण्यामाहु**रत्रायं भाव** इत्यादि ॥५०॥

लेखः

अस्त्वित्यस्याभासे **पुनः साधनोपदेशयोरि**ति. पूर्वं द्रोणे सृष्टिसामर्थ्यं साधितं तदुपदेशश्च कृतः, पुनर्भक्तिः स्थापनीया तदुपदेशश्च कर्तव्यः –एवमुभयकरणे**ऽसमर्थ** इत्यर्थः. **ततः स्वे स्वर्ग एवे**ति. सृष्टिलक्षण"मादेशं करिष्यमाण" इति पूर्वमुक्तत्वादितिभावः ॥५०॥

योजना

जज्ञे नन्द इति ख्यात इत्यस्य विवृतौ **भगवानानन्दः अयं नन्द इति फलग्रहणार्थं व्याप्तिं परित्यज्य शिष्टांशेन प्रसिद्ध** इति. "यो नन्दः परमानन्द"

शिष्टांशेन प्रसिद्धः. नन्वस्य वरः कथं न क्षीणः[१] सृष्टेरपि गतत्वादित्याशङ्क्याह **महायशा** इति– महद् यशो यस्य, यावद्यशस्तावन्न क्षीयत इति. **यशोदापि सैवाभवत्,** अन्यथा व्यभिचारे [२]धर्मक्षयाद् भक्तिर्न भवेत् ॥५०॥

ततो जातयोरेव भक्तिर्जातेत्याह **तत** इति.

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।

दम्पत्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥५१॥

योजना

इतिकृष्णोपनिषद्भ्यः आनन्दरूप एव श्रीनन्दो भगवद्रूपस्तथा सत्यभेदे बाललीलारसानुभवो न स्यात् तदर्थं "ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः" इतिशब्दशास्त्रात् व्याप्त्यर्थकस्य आङोर्थरूपां व्याप्तिं परित्यज्य आङ्शब्दं हित्वा नन्दशब्देन प्रसिद्धो भेदेन पितृभावेन मुक्तितोप्यधिकरसरूपा बाललीला अनुभवतीति भावः. अतो वस्तुतः परमानन्दरूप एव भगवद्रूपः. द्रोणरूपत्वकथनं त्वेतस्य द्रोणांशः स वसुरूपेणाविर्भूय पुनः स्वांशिनि नन्दे प्रविष्ट इत्याशयेन; यथा भगवदंशस्य नारायणस्य भगवति प्रवेशे "ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहावि"त्यनेन कृष्णरूपता उच्यते तद्वत्. न हि नारायणरूपः कृष्णः किन्तु नारायणः कृष्णस्यांशो अंशिनि कृष्णे प्रविष्ट इतिकृष्णरूपतोच्यते. एवमत्रापि द्रोणो नन्दस्यांशो अंशिनि नन्दे प्रविष्टोतो लोकाः श्रीनन्दं द्रोणावतारं वदन्ति, वस्तुतस्तु "यो नन्दः परमानन्द" इतिश्रुतेः श्रीनन्दस्य परमानन्दरूपत्वेन साक्षाद्भगवद्रूपत्वम्. एवं सति **जज्ञे नन्द इति ख्यात** इतिश्रीभागवतवाक्यस्य श्रुत्येकवाक्यताविचारेण नारायणस्यांशिनि कृष्णे प्रवेशात् कृष्णरूपतावत् द्रोणस्यापि स्वांशिनि नन्दे प्रवेशात् नन्दरूपतेति ज्ञातव्यम्. एवमेव श्रीयशोदाया धरा अंशरूपा स्वांशिन्यां श्रीयशोदायां प्रविष्टा ह्यभेदेन व्यवह्रियते. **यशोदा सा धराभवदि**ति तु नर्मदायाः सागरप्रवेशे नर्मदा सागरोभवदित्यादिवाक्यानि प्रवृत्तानि. नैतावता नर्मदामात्रं सागरः किन्तु नर्मदाप्रवेशस्थानत्वात् नर्मदारूपोपि. एवं न धरामात्रं यशोदा किन्तु धराप्रवेशस्थानत्वाद् धरारूपापीति ज्ञेयम्. स्वरूपं तु "यशोदा मुक्तिरूपिणी"ति कृष्णोपनिषत्सु निरूपितमेव. एवं सति श्रीनन्दयशोदयोर्नित्यत्वमेवेति नित्यलीलाविचारः सम्यक् सिध्यतीति वैष्णवाः प्रसीदन्तु ॥५०॥

१. गतः. २. कर्म°.

भगवति भक्तिर्जाता भजनसहितप्रेमात्मिका. ननु साधनव्यतिरेकेण कथं जातेत्याशङ्क्य प्रकारमाह **पुत्रीभूत** इति— अपुत्र एव पुत्रत्वं ज्ञापितवानिति पुत्रीभूतः. जायत एव पुत्रे स्नेहो भक्तिश्च. ननु भगवान् किमित्यवतीर्णः? तत्राह **जनार्दन** इति— जनामुत्पादिकामविद्यामर्दयतीति; अतो मोक्षदानार्थमागतः प्रसङ्गादिदमपि कृतवान् न तु प्रासङ्गिकमुत्पादयितुमर्हति. सर्वार्थं च तथा जातोतो **दम्पत्योः** स्वधर्मनिष्ठयो**र्नितरां भक्तिरासीत्; गोपगोपीषु** सत्सु तन्मध्ये वा सत्सङ्गव्यतिरेकेणापि. **भारते**ति सम्बोधनं सर्वेष्वेव वंशीयेषु सत्सु यथा भरत एवालौकिको जात इति ज्ञापयितुम् ॥५१॥

नन्वेतज्जातं भगवद्वाक्यात् चेत् तदा निरोधो भगवत्क्रियमाणो न भविष्यतीत्याशङ्क्याह **कृष्ण** इति.

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

टिप्पणी

अपुत्र इति निषेकादिहेत्वभावादिति भावः. **मोक्षदानार्थमि**ति. भजनानन्दो भक्तिमार्गे मोक्षस्तद्दानार्थमित्यर्थः. **न तु प्रासङ्गिकमि**ति. प्रासङ्गिकं प्रयोजनं प्राकट्यहेतुर्न भवितुं शक्नोतीत्यर्थः. प्रासङ्गिकप्रयोजनान्तरमाहुः **सर्वार्थमि**ति. स्वरूपकीर्तिभ्यां सर्वोद्धारार्थमपि प्रकट इत्यर्थः. एतेनाप्युक्तमोक्षपदस्योक्तमोक्ष एवार्थ इति ज्ञेयम्, अन्यथा पुनरुक्तित्वप्रसङ्गात्. नन्दचरणानां यद्विषयकोधिकारो येषां वा सर्वात्मना निरोधो न कृतो भगवता ते **गोपगोपी**पदेनोच्यन्ते, अन्यथा वयस्यानां व्रजस्त्रीरत्नानां चाग्रे सर्वाधिकनिरोधोक्तिर्विरुध्येत. अत एव **सत्सङ्गव्यतिरेकेणापी**त्येतत्तात्पर्यमुक्तम् ॥५१॥

प्रकाशः

ततो भक्तिरित्यत्रापुत्र इति. तदर्थं टिप्पण्यामाहु**र्निषेके**त्यादि. सुबोधिन्यां **जायत एवे**ति साधनं विनेति शेषः. **मोक्षदाने**त्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहु**र्भजने**त्यादि **तात्पर्यमुक्तमि**त्यन्तम् ॥५१॥

कृष्णो ब्रह्मण इत्यत्र यः कठिनांशः स टिप्पण्यामेव विवृत इति ततो ज्ञेयः॥५२॥

लेखः

तत इत्यत्र **भजनसहिते**ति. देवत्वेन भजने सेवैव मुख्या. पुत्रत्वेन भजने तु स्नेह एव मुख्यः, सेवाया अविहितत्वेन गौणत्वादिति भावः. ॥५१॥

भगवान् हि सर्वमेव योजयितुं शक्नोति, अतो **ब्रह्मण आदेशं** वरं **सत्यं कर्तुं व्रजे** समागत्य बलभद्रसहितो **वसं**स्तत्रत्यानां **तेषां** सर्वेषामेव[१] **स्वलीलया प्रीतिं चक्रे.** स्वस्याधिकारी ब्रह्मेति तद्वाक्यं सत्यं कर्तव्यम्. यद्यन्यत्र साधनवति देशे तमुत्पादयेद् वरे सन्देहोपि भवेत्; तदर्थं **व्रजे** समागतः. नन्वयुक्ते देशे कथमागत इति चेत् तत्राह **विभुरि**ति— स हि सर्वसमर्थः, सर्वत्रैव स्थित्वा सर्वं कर्तुं शक्नोति. बलभद्रो वेदात्मा साक्ष्यर्थं **सह**[२] गृहीतः. तेषां प्रीतिजनने न स्वेच्छास्थित्यधिको व्यापारोत आह **वसंश्चक्र** इति. ब्रह्मवाक्यापेक्षयाधिकं च कृतवानित्याह **तेषामि**ति. येष्वेतौ स्थितौ **तेषामपि स्वलीलया प्रीतिं** कुर्वन्. **लीलये**ति मनोरञ्जिका क्रियोक्ता ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेऽवान्तरप्रमाणप्रकरणे श्रीनिरूपकचतुर्थाध्यायस्य स्कन्धादितोष्टमाध्यायस्य विवरणम् ॥

टिप्पणी

कृष्णो ब्रह्मण इत्यत्र. **साक्ष्यर्थमि**ति. निःसाधनजीवनिमित्तं प्राकट्यं तदधीनत्वेन लीलाकरणादिकं च ब्रह्मणि श्रुतिविरुद्धमिति शङ्कानिरासं वेदात्मकतत्संमत्या कर्तुमित्यर्थः. अत एव श्रुतिरप्याह "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य" इत्युपक्रम्य "यमेवैष वृणुते तेन लभ्य" इति, "ते ते धामान्युश्मसी"ति "विष्णोः कर्माणि पश्यते"त्यादि. एतदर्थस्तु विद्वन्मण्डनेस्माभिः प्रपञ्चितः. **तेषां प्रीतिजनन** इत्यादि. स्वेच्छया या स्थितिस्तदपेक्षयाधिको व्यापारो भगवता न क्रियत इति ज्ञापनाय **वसन्प्रीतिं चक्र** इत्युक्तमित्यर्थः. अन्यथा लीलायाः[३] प्रीतिजननोक्त्यैव वासस्य स्वतःप्राप्त्या तत्कथनमनर्थकं स्यादिति भावः ॥५२॥

। इत्यष्टमोध्यायः ।

लेखः

कृष्ण इत्यत्र वासस्य प्रयोजनं प्रीतिजननं, लीलाया मुख्यं प्रयोजनं स्वरूपानन्दानुभावनम् ॥५२॥

---

१. °मेवम्. २. स. ३. लीलया मू. पा..

प्रकाशः

एवं चास्मिन्नध्याय इदं सिध्यति— येषां भाग्यरूपः पूर्वजन्मीनो महदनुग्रहः सत्त्वशुद्धिबीजं[1] तेषां गुरुतो यथावत् प्राप्तानि दुःसङ्गवर्जितान्यखण्डशब्दरूपाण्यर्थवन्ति नामानि शीघ्रं सत्त्वशोधकानि. स्वेच्छालीलाविशिष्टान्यानन्दरूपाणि रूपाण्यपि तथा. परेच्छाकृतलीलाविशिष्टानि रूपाणि तु चिरेण सत्त्वशोधकानि. साक्षात्कारस्तु माहात्म्यज्ञानपूर्वकः शीघ्रं तथा. भक्तिरपि माहात्म्यज्ञानपूर्विकैव तथा. माहात्म्यज्ञानाभावे तु ज्ञानभक्ती चिरेण तथा. अवतीर्णस्तु भगवान् सत्सङ्गव्यतिरेकेणापि स्वरूपबलेन तथा करोतीति.

|| इति श्रीमद्वल्लभचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते[2]
दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशेऽष्टमाध्यायविवरणम् ||

॥ इति अष्टमोध्यायः ॥

१. 'बद्धम्'. 'रचिते.

॥ पञ्चमः स्कन्धादितः नवमोध्यायः ॥

शास्त्रार्थतो यथा भक्तिर्हरौ भवति निश्चला ।
तदर्थं नवमे प्राह चरित्रं परमाद्भुतम् ॥(१)॥
स्वरूपं च कृपालुत्वं हरेर्ज्ञातव्यमञ्जसा ।

प्रकाशः

नवमाध्यायतात्पर्यं वदन्तो "भक्तिर्हराविʼʼत्यनेन राज्ञा पृष्टस्योत्तरत्वेनाध्यायारम्भ इति नासङ्गताभिधानशङ्केत्याहुः[1] **शास्त्रार्थत** इत्यादि. **शास्त्रार्थत** इति भावप्रधानो निर्देशः, पञ्चमी च ल्यब्लोपे; तथा च भगवतः शास्त्रार्थत्वं ज्ञात्वा **यथा हरौ भक्तिर्निश्चला** भवति **तदर्थं** तथेत्यर्थः. तथात्वं च दामबन्धनस्थले स्पष्टीभविष्यति (१).

ननु शास्त्रार्थत्वेन निरूपणस्य किं प्रयोजनं कश्च शास्त्रार्थ इत्यत आहुः **स्वरूपमि**त्यादि. राज्ञा हीशानुकथान्ताः सप्तलीलाः श्रुता, अष्टमी चेयं निरोधलीला.

लेखः

नवमाध्याये **शास्त्रार्थत** इति भगवतः शास्त्रप्रतिपाद्यत्वं ज्ञात्वा भगवतो भजनमित्यर्थः. तथा च शास्त्रार्थज्ञानपूर्विका **भक्तिर्यथा** येन प्रकारेण **निश्चला भवति तदर्थं** तत्प्रकारबोधनार्थं **चरित्रमिदं प्राहे**त्यर्थः. "यच्छृण्वतो हरौ भक्तिर्भवतीʼʼतिशास्त्रार्थज्ञानसहितभक्तेः साधनस्य पृष्टत्वात् तथैवोत्तरं, "किं शृण्वतʼʼ इतिपृष्टे भक्तवश्यताबोधकं चरित्रं शृण्वत इत्युत्तरं जातमित्यर्थः(१).

स्वरूपं चेति. पूर्वं जगद्रूपधर्मस्य दृष्टत्वादतः परं **स्वरूपं** भक्त्यर्थं **कृपालुत्वं**

कारिकार्थः

नवमाध्याये **शास्त्रार्थत** इति. "यच्छृण्वतो हरौ भक्तिर्भवतीʼʼति शास्त्रार्थज्ञानसहितभक्तेः साधनस्य पृष्टत्वात् तथैवोत्तरं, "किं शृण्वतʼʼ इति पृष्टे भक्तवश्यताबोधकं चरित्रं शृण्वत इत्युत्तरं जातमित्यर्थः. तथा च तादृशमुलूखलबन्धनचरित्रं प्राहेत्यर्थः (१).

स्वरूपं चेति स्वरूपज्ञापनं द्व्यङ्गुलन्यूनतया **कृपालुत्व**ज्ञापनं बन्धनेनेति ज्ञेयम् (२).

१. 'ङ्क्षमा'.

अतो दयासुसंमिश्रं ज्ञानमत्र निरूप्यते ॥(२)॥
निरोधो यदि भक्तानां स्वस्मिन् स्वस्य च तेषु च ।
तदोभयसुसम्बन्धाद् दृढो भवति नान्यथा ॥(३)॥

प्रकाशः

तत्र चारम्भे "वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामि"त्यस्मिन् श्लोके भगवतो राज्ञा स्वज्ञातं माहात्म्यमप्यनूदितमेवं सति राज्ञो माहात्म्यज्ञानपूर्विका भगवति भक्तिरस्त्येवेति "भक्तिर्हराव"त्यनेन यद् भक्तिजनकं चरित्रं पृष्टं तत्र द्वयं बीजत्वेन भाति– एवं लीलाः कुर्वन् भगवान् सर्वेषु प्रसीदति न वा शीघ्रं च भक्तदुःखं हरति न वेति. तत्र शास्त्रार्थत्वेन ज्ञातो दयालुत्वात् सर्वेषु प्रसीदति दुःखं च हरतीतिज्ञापनार्थं **दयासम्मिश्रं स्वरूपज्ञानमत्र** विषयनिरूपणमुखेन **निरूप्यते** ज्ञानाध्यायत्वादित्यर्थः. यादृशो भगवान् शास्त्रार्थस्तादृशो "नचान्तर्न बहिर्यस्ये"त्यादिषु नवसु श्लोकेषु विषयत्वेन स्फुटीभविष्यति (२).

ननु राज्ञः प्रश्नानुरोधेन शुकैस्तथोक्तरितमिति भवतु नाम तादृशचरित्रनिरूपणं, तथाप्येतस्या लीलायाः स्कन्धार्थे निरोधे क उपयोगो, मातृचरणादिषु प्रधानस्य साङ्गस्य निरोधस्य जातत्वादत आहु**र्निरोध** इति. तथा चेदमपि प्रकृतोपपादकतयोपोद्घातसङ्गत्या निरूप्यत इत्यर्थः. तच्च समाप्तौ श्लोकद्वये स्फुटीभविष्यति (३).

लेखः

च ज्ञातव्यमतो हेतोः "कृपयासीत् स्वबन्धन" इतिश्लोकोक्ता या **दया** तत्सहितं **ज्ञानं** "नाहं तेभ्यो मनागपी"ति वाक्योक्तं भक्तमात्रविषयक**मत्राध्याये निरूप्यत** इत्यर्थः. स्वरूपज्ञापनं द्व्यङ्गुलन्यूनतया कृपालुत्वज्ञापनं बन्धनेनेति ज्ञेयम् (२).

योजना

नवमाध्यायार्थनिरूपणे **अतो दयासुसम्मिश्रं ज्ञानमि**ति. "कृपयासीत् स्वबन्धने" "एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यते"तिवाक्ये दयामिश्रं भगवत्स्वरूपज्ञानमुक्तम् (२).

कारिकार्थः

निरोध इति. ननु सर्वज्ञस्य भगवतः प्रपञ्चविस्मृत्यसम्भवेन प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभक्तविषयकासक्तिर्न सम्भवतीति चेत्, मैवं, "मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपी"तिवचनाद् भगवतोपि भक्तेतरविषयकज्ञानाभावस्य प्रमाणसिद्ध-

ज्ञानवैराग्यरूपैर्हि स्वाधीनो भगवान् भवेत् ।

लेखः

ज्ञानेति. ज्ञानं पुष्टिमार्गीयभक्तमात्रविषयकं, तेन भगवान् वशो भवति. भगवान् भक्तानेव जानात्यतस्तद्वशो भवतीति पर्यवसन्नोर्थः. **वैराग्य**मन्यत्र रागाभावो भक्तेष्वेव राग इति. तेन भक्तविषयकरागेण वशो भवति. पुरुषोत्तमस्वरूपमेव तादृशं यद् भक्ताधीनमिति स्व**रूपेण** हेतुना **भगवान्** वशो भवतीत्यर्थः. **स्वाधीनो**

योजना

ज्ञानवैराग्यरूपैर्हीति. प्रसङ्गेन अध्यायत्रयसिद्धार्थमाहुः **ज्ञानवैराग्यरूपैर्ही**ति. अस्मिन् नवमाध्याये **ज्ञानं** दशमाध्याये **वैराग्यं** धर्मी एकादशाध्याये इत्यर्थः. अयमर्थः– "स्वमातुः स्विन्नगात्राया" इतिवाक्ये भगवतो यशोदायां स्वमातृत्वेन ज्ञानमुक्तम्. तथा च पुष्टिमार्गे भगवान् सम्बन्धं सर्वत्र यथावत् मनुते, सम्बन्धेनैव सर्वेष्टसाधको भवति. अतः पुष्टिमार्गीयं यत् स्वसम्बन्धिज्ञानं तद्वान् मतो भगवान्. अतो भक्तवश्यो भवतीति ज्ञानेन वश्यता नवमाध्याये दामोदरलीलयोक्ता. "नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ज्ञानिनां चात्मपोतानां यथा भक्तिमतामिहे"त्यनेन शुकैर्भक्त्येकलभ्यत्वोक्त्या यशोदापुत्रस्य भक्तेतरविषयकं वैराग्यमुक्तम्. तद् वैराग्यस्वरूपं नलकूबरोद्धारप्रसङ्गे भगवता प्रतिज्ञया निरूपितं "देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ तत् तथा साधयिष्यमि यद् गीतं तन्महात्मने"त्यनेन. इह भक्तमात्रे रागवत्त्वात् तादृगवस्थया सहित एव स्वभक्तवाक्यसत्यकरणार्थं भगवांस्तन्निकटे गत इति भक्तेतरविषयवैराग्यं नलकूबरमणिग्रीवोद्धारे दशमाध्याये निर्णीतम्. अतो वैराग्येण वश्यो भवतीति सिद्धम्. "गोपिभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् उद्गायति क्वचिद् मुग्धस्तद्वशो दारूयन्त्रवद्" इत्यत्र श्रीबालकृष्णो धर्मी निरूपितस्तस्य च भक्तवश्यत्वं निरूपितं "तद्वशो दारूयन्त्रवदि"त्यनेन. अत एव तादृशलीलाविशिष्टं भगवत्स्वरूपमतः स्वरूपेण भक्तवश्यो भवतीति ज्ञेयम्. **स्वाधीनो भगवानि**ति. **स्व**शब्दोत्रात्मीयवाची, "स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोस्त्रियां धने" इत्यमरकोशात्. तथा च भक्ताधीनो भवेदित्यर्थो भवति (४).

कारिकार्थः

त्वात्. विरुद्धधर्माश्रयत्वात् न सर्वज्ञत्वविरोधोपि. तथा चास्मिन्नध्याये भक्तवश्यताबोधकबन्धनेन भगवतो भक्तमात्रविषयकं ज्ञानं दयामिश्रितं निरूपितं भवति (३).

ज्ञानवैराग्येति **ज्ञानं** भक्तमात्रविषयकमेतदध्यायोक्तं, **वैराग्यं**

अतोध्यायत्रये लीला जीवाधीना निरूप्यते ॥(४)॥
अतिपौरुषमेतद्धि जीवानामिति निश्चितम् ।
द्वादशाङ्गमतिक्रम्य षड्भिर्वश्यो भवेद् गुणैः ॥(५)॥

प्रकाशः

ननु भगवन्निरोधो भक्तैः कथं कर्तव्य इत्यत आहुर्ज्ञानेत्यादिसार्धेन. **एतद्धीति** भगवद्वशीकरणं, **हिर्हेतौ**; तथा च यत एतैस्त्रिभिर्वशीभवतीत्यतः प्रथमं साधनं ज्ञानरूपमत्र **निरूप्यत** इत्यर्थः ($४\frac{१}{२}$).

ननु यदि ज्ञानादिना वशीभवति तदा ज्ञानिभिरपि वशीक्रियेतेत्याशङ्कामेत[१]-दध्यायश्लोकसङ्ख्यातात्पर्यनिरूपणेनापनुदन्ति **द्वादशाङ्गमिति**सार्धेन. **द्वादशाङ्गः** पुरुषोक्षरं त**दतिक्रम्य** तन्मर्यादामपहाय स्वस्य ये[२] **षड्गुणास्तैर्वश्यो भवति**

लेखः

भक्ताधीन इत्यर्थः. **अध्यायत्रये** वश्यतोक्तेस्तात्पर्यमिदं; "गोपिभिः स्तोभित" इत्यादिना तृतीयेध्याये वश्यतोक्तेति ज्ञेयम् (४).

द्वादशाङ्गमिति दशविधा भक्तिः काण्डद्वयप्रतिपादितं च ज्ञानमेतद्द्वय-

कारिकार्थः

दशमाध्यायोक्तं भक्तेष्वेव रागोन्यत्र रागाभाव इति, **रूपमे**कादशाध्यायोक्तं स्वयमेव धर्मी भगवान्; पुरुषोत्तमस्वरूपमेव तादृशं यद्भक्ताधीनमिति. **स्वाधीनो** भक्ताधीन इत्यर्थः. अत्राध्याये जीवाधीना बन्धनलीला. द्वितीयेध्याये "देवर्षिर्मे प्रियतम" इतिवाक्याद् भक्तेष्वेव रागोन्यत्र वैराग्यं, तेन भक्ताधीनत्वमेवोक्तम्. तृतीयेध्याये "गोपीभिः स्तोभित" इत्यादिना भक्तवश्यतोक्तेति ज्ञेयम् (४).

अतिपौरुषमित्यादि. एतत्कारिकाद्वयेनैतदध्यायान्तर्गत"न चान्तरि"-त्यादित्रयोविंशतिश्लोकसङ्ख्यातात्पर्याणि त्रिधा विभज्योक्तानि. अत्र हि "अन्वञ्च-माने"ति दशमश्लोके यशोदाया भगवत्प्राप्तिः, ततो द्वाभ्यां वशीकरणोद्यमः. "न चान्तर्न बहिर्यस्ये"त्यादिभिः षड्भिर्वशीकरणं, ततः पञ्चभिरविद्याबाधनम्. तत्र द्वादशश्लोकानन्तरं षड्भिः श्लोकैर्वशीकरणोक्तितात्पर्य**मतिपौरुषमेतद्धी**त्यने-नोक्तम्. **एतद्** भगवद्वशीकरणं **जीवानां** पौरुषसाध्यं न भवति. तथा च **द्वादशाङ्गपुरुषमर्यादामतिक्रम्य** स्वकीयैरैश्वर्यादिभिः **षड्भिर्गुणैरेव** पुरुषोत्तमो **वश्यो भवे**दिति सङ्ख्यातात्पर्यम् (५).

१. 'व'. २. येषु गु'.

पञ्चपर्वामविद्यां हि लोकानामपि नाशयेत् ।
अतः पञ्चभिरुक्तो हि विचारो भगवद्गतः ॥(६)॥

प्रकाशः

स्वेच्छयेति तत्समसङ्ख्यैः श्लोकैर्ज्ञाप्यते. ते च भगशब्दवाच्या बोध्याः. गुणेषु च क्रमो न विवक्षितः, टिप्पण्यां "कृपये"तिपदस्यैश्वर्यगमकत्वप्रतिपादनात्, "एवं स्वगेह"इत्यत्र वीर्ययशसो"र्न चान्तरि"तिपद्यैः सर्वव्यवहारातीतत्वादिभिर्वैराग्यज्ञानयोः स्फुटी-

लेखः

मर्यादा**मतिक्रम्य स्वगुणैरेव वश्योऽभव**दित्यर्थः. अत एव भक्तिज्ञानाभावेपि कृपैव हेतुत्वेन वक्ष्यते. द्वादशाङ्गः पुरुषः, अस्य पुरुषोत्तमत्वात् तदतिक्रमः (५).

योजना

द्वादशाङ्गमतिक्रम्येति. अत्र दशभिः श्लोकै "र्जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युत-प्रसूनानुगतिः परामृशदि"त्यन्तैर्भगवत्प्राप्तिरुक्ता. तत्तात्पर्यम् अग्रे वक्तव्यम्. तामसादिभेदैः सगुणया नवविधया गुणातीतत्वेनैकविधया भक्त्या भगवान् प्राप्यत इति दशश्लोकानां सङ्ख्यातात्पर्यम्. ततो द्वाभ्यां "दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदे"त्यन्ताभ्यां काण्डद्वयप्रतिपाद्यत्वे सङ्ख्यातात्पर्यमिति अग्रे वक्ष्यमाणम्. इह तु द्वादशश्लोकैर्भगव-द्बन्धनोद्यमपर्यन्तं गतिर्न तु बन्धनमिति विचार्य "एकदे"त्यारभ्य "दाम्नाऽतद्वीर्य-कोविदे"त्यन्तानां द्वादशश्लोकानां सङ्ख्यातात्पर्यमुक्तं **द्वादशाङ्गमतिक्रम्ये**त्यनेन. "द्वादशो वै पुरुष" इतिश्रुतेः पुरुषस्य द्वादशात्मकत्वात् तत्पर्यन्तं गतौ न भगवान् बद्धो भवति. तदतिक्रमस्तु पुष्टिभक्तौ सत्यां भवति, पुष्टिभक्तेः पुरुषोत्तम-प्रापकत्वात्; भक्तीतरसाधनानां पुरुषोत्तमांशपुरुषमात्रपर्यवसानादिति द्वादशश्लोकसङ्ख्यासूचितोर्थः. द्वादशभिः श्लोकैर्बन्धनेच्छामात्रनिरूपणेन बन्धाभावसूचनात् **षड्भिर्वश्यो भवेद् गुणैरि**ति पुष्टिमार्गीयैरैश्वर्यादिभिः षड्भिर्गुणैर्वश्यो भवेदित्यर्थः. "न चान्तर्न बहिर्यस्ये"त्यारभ्य "कृपयासीत् स्वबन्धन" इत्यन्तानां षण्णां सङ्ख्यातात्पर्यमिदमुक्तम्. "कृपयासीत् स्वबन्धन" इत्यत्र 'कृपा'पदात् पुष्टिमार्ग एव भगवान् वश्यो भवतीति भणितं श्रीशुकेन (५).

पञ्चपर्वामविद्यां हि लोकानामेवेति. "एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्त-वश्यते"त्यारभ्य पञ्चभिः श्लोकैः साधनान्तरप्राप्यो भगवानित्याकारकाज्ञानरूपा लोकानामविद्या नाशितेत्यर्थः. केवलपुष्टिभक्तिमात्रवश्यतानिरूपणात् अविद्यायाः पञ्चपर्वरूपत्वात् तन्नाशः पञ्चश्लोकसङ्ख्यातात्पर्यलभ्यः (६).

तत्र प्रथमं यशोदाया अतिपौरुषं कार्यं सिद्धमिति वक्तुं क्रियया भगवत्प्राप्तिमाहैकदेति दशभिः. भक्तिर्हि दशविधा; गुणातीतया भगवान् प्राप्यते, नवविधसहितस्नेहेन वा. ततो द्वाभ्यां वशीकरणोद्यमः काण्डद्वयसमावेशार्थस्ततो वशीकरणं षड्भिः पञ्चभिरविद्याबाधनमिति.

निवारितापि संसारे मोहिता सङ्गता पुनः।

टिप्पणी

नवमाध्याये **निवारितापी**ति. ननु मायाकार्याद् भगवत्कार्यं बलिष्ठमिति भगवत्कृते निवारणे सत्यपि कथं गृह्यकृत्ये प्रवृत्तिरित्याशङ्क्य तत्र हेतुमाहुः **पुनर्मोहिते**ति. निषेधेन पूर्वमोहापगमेनावश्यकमपि कार्यं त्यक्त्वा भगवत्परापि "सस्मितमीक्षती मुखमि"तिवाक्यात् स्मितेन **पुन**र्भगवता **मोहिता** सती तथा जातेत्यर्थः. नन्वन्यासक्तिहेतुत्वेन निरोधविरोधि पूर्वमोहनमित्याशङ्काभावायाहुः

प्रकाशः

भावाच्च. अत्र [1]चैश्वर्यस्य वश्यताहेतुत्वं शेषाणां तु तदुपोद्बलकत्वमिति बोध्यम्. अवशिष्टतात्पर्यं **पञ्चभिरि**त्यादिनोच्यते (६).

कारिकोक्तमर्थं वैशद्यार्थं पुनरनुवदन्ति **भक्तिरि**त्यादि **बाधनमिती**त्यन्तम्. अत्र "ततो भक्तिर्भगवती"तिपूर्ववाक्यानुरोधेन भक्तिपक्ष उक्तस्तत्रापि भगवद्दर्शनरूपेण फलेन[2] दशम्या गुणातीतत्वं; माहात्म्यस्य विस्मृतत्वेन केवलं स्नेहस्य सत्त्वात् मध्ये गुणगानस्मरणयोरुक्तत्वाच्च स्नेहपक्ष उक्तो. **द्वाभ्यामि**त्यादिनोक्तं तु सङ्ख्याया एव तात्पर्यं, काण्डद्वयोक्तकर्मोपासनयोर्भगवद्वशीकरणोद्यम एव पर्यवसानात्. न हि भगवांस्ताभ्यां वशीभवति, "यमेवैष वृणुत"इत्यादिश्रुतिभ्यस्तथावसायादिति.

प्राथमिकानां भक्तिबोधकानां दशश्लोकानां प्रत्येकमर्थमाहु**र्निवारितापी**त्यादिभिः. तदर्थं टिप्पण्यामुपपादयन्ति **नन्वि**त्यादि. एवमर्धेन प्रथमश्लोकार्थ उपपादितः. योजना तु **निवारितापि पुनर्मोहिता संसारे सङ्गते**त्येवं बोध्या.

लेखः

भक्तिर्हीति. भगवत्प्राप्तिर्भक्त्या जायत इति दशभिः श्लोकैः प्राप्तिनिरूपणं; सात्र **क्रियया** जाते**त्यतिपौरुषं सिद्धमि**ति भावः. **काण्डद्वये**पि द्वादशाङ्गे **समावेशार्थ** इत्यर्थः.

१. वैश्वर्यस्य. २. यत्नेन.

गुणगाने स कालोभूत् श्रमो द्वाभ्यां ततोभवत् ॥(७)॥

टिप्पणी

गुणगान इति; भगवत्कृतत्वान्मोहस्य तत्कालोपि गुणगानार्थमे**वाभू**दित्यर्थः. मोहेस्मिन्नस्ति रूपद्वयम्– विषयासञ्जकत्वं भगवत्कृतत्वं च. तेन **द्वाभ्यामु**क्तमिति शेषः. तर्ह्येवंरूपतन्निषेधोनुचित इत्याशङ्क्य तन्निमित्तमाहुः **ततः श्रमोभव**दिति. **ततः** श्लोकद्वयानन्तरमेकेन **श्रमोभवदि**ति निरूप्यत इत्यर्थः (७).

यत एवमतो भक्तक्लेशासहिष्णुत्वेन स कृत इत्याहुः **अत** इति(८).

प्रकाशः

द्वितीयस्योपपादयन्ति **नन्वन्यासक्ती**त्यादि. **पूर्वमोहनमि**ति स्मितकृतं पूर्वाध्यायोक्तं वा. तृतीयस्योपपादयन्ति **तर्ही**त्यादि (७).

लेखः

टिप्पण्यां **निवारितापी**त्यादिकारिकाव्याख्याने **पूर्वमोहनमि**ति, आद्यश्लोकद्वयोक्तं "पूर्वाध्यायोक्तमोहनस्यैव कार्यमि"त्याद्यश्लोकाभासे कथितत्वादितिभावः(७).

कारिकार्थः

एकदा गृहदासीष्वित्यत्र **निवारितापी**ति. ननु मायाकार्याद् भगवत्कार्यं बलिष्ठमिति भगवत्कृते निवारणे सत्यपि कथं गृहकृत्ये प्रवृत्तिरित्याशङ्क्य तत्र हेतुमाहुः **पुनर्मोहिते**ति. अत्र हि मोहनं द्विविधं; "वैष्णवीं व्यतनोत् मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुरि"ति पूर्वाध्यायोक्तमेकम्, अत्राध्याये "तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखमि"ति श्लोकोक्तमायारूपस्मितकृतं च द्वितीयं मोहनम्. तत्र "गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन्नि"ति भगवत्कृतनिषेधेन पूर्वमोहापगमेनावश्यकमपि कार्यं त्यक्त्वा भगवत्परापि यशोदा "सस्मितमीक्षती मुखमि"ति वाक्यात् स्मितेन पुनर्भगवता मोहिता सती गृह्यकृत्ये प्रवृत्तेत्यर्थः. नन्वन्यासक्तिहेतुत्वेन निरोधविरोधि पूर्वमोहनमित्याशङ्काभावायाहु**र्गुणगान** इति. भगवत्कृतत्वात् मोहस्य तत्कालोपि गुणगानार्थमेवाभूदित्यर्थः. मोहेस्मिन्नस्ति रूपद्वयं– विषयासक्तिजनकत्वं भगवत्कृतत्वं च. तेन **द्वाभ्यां** श्लोकाभ्यां दधिमथनरूपं संसारकार्यं गुणगानं चोक्तमितिशेषः. ननु मोहस्य भगवत्कृतत्वे "न्यषेधत् प्रीतिमावहन्नि"ति भगवत्कृतो दधिमथननिषेधोनुपपन्न इत्याशङ्क्य तन्निमित्तमाहुः **ततः श्रमोभवदि**ति. **ततः** श्लोकद्वयानन्तरमेकेन "क्षौमं वास" इत्यनेन **श्रमोभवदि**ति निरूप्यत इत्यर्थः (७).

अतः कृतो निषेधो हि भक्तिसारं हरिः पपौ ।
ततो रिक्ता पूर्वबुद्ध्या सङ्गतान्यत् चकार ह ॥(८)॥
एवं निरुद्धा चेद् भ्रान्ता कोपयुक्तो हरिर्भवेत् ।
धौर्त्यं दृष्ट्वा लोकदृष्ट्या प्रीता तस्मान्न पश्यति ॥(९)॥
जिज्ञासायां ततो दृष्ट्वा प्राप्त्यर्थं यत्नमाचरत् ।

टिप्पणी

लोके धनं पुत्रार्थमिति न्यायेन भगवदर्थमिदमिति ज्ञानेन माता प्रवृत्तेति कथं कोप इत्याशङ्क्य तत्र हेतुमाहुः **भ्रान्ते**ति भगवतस्तदपेक्षाभावात्[१] तथाज्ञानं भ्रम इति तथा. एतादृश्येव भक्तिमार्गमर्यादेति ज्ञापनाय **भवेदि**त्युक्तम् (९).

प्रकाशः

चतुर्थस्याहुर्**यत** इत्यादि. पञ्चमस्य तु **भक्तिसारमि**त्यादिना सुबोधिन्यां स्फुटः. **तत्रान्यदि**त्यनेनोत्सृज्य गमनं बोधितम् (८).

षष्ठस्योपपादयन्ति **लोक** इत्यादि. **तदपेक्षाभावादि**ति सुशृतदुग्धापेक्षाभावात्. **एतादृशी**ति भगवदनपेक्षिते अपेक्षितभ्रमे सति भगवान् कुप्यतीत्येवंरूपा. सप्तमस्य तु **धौर्त्यमि**त्यादिना सुबोधिन्यां स्पष्टः (९).

अष्टमस्य तु **जिज्ञासायामि**त्यर्धे सुबोधिन्यां स्फुटः. नवमस्य विवृण्वन्ति

कारिकार्थः

यत एवमतो भक्तक्लेशासहिष्णुत्वेन निषेधः कृत इत्याहु**रत** इति. "तां स्तन्यकाम आसाद्ये"ति चतुर्थश्लोकोक्तो दधिमथन**निषेधः**, ततो **भक्तेः सारभूतं** स्तन्यं **हरिः पपौ.** पुत्रादिविषयकस्नेहेन मातरि स्तन्योत्पत्तेः स्तन्यस्य भक्तिसारत्वम्. एतेन "तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनमि"ति पञ्चमश्लोकपूर्वार्धार्थ उक्तः. उत्तरार्धार्थमाहु**स्ततो रिक्ते**ति. भक्त्यात्मकस्तन्ये पीते सति **रिक्ता** भक्तिशून्या सती **पूर्वबुद्ध्या** संसारासक्त्या **सङ्गता अन्यत्** कार्यं **चकार** उत्सिच्यमानपयोरक्षार्थं गमनं चकारेत्यर्थः (८).

एवमिति अनेन "स जातकोप" इति षष्ठश्लोकार्थ उक्तः. **धौर्त्यमि**ति यथा लोकाः स्वसुतधौर्त्यं दृष्ट्वा प्रीता भवन्ति तद्वत्. **तस्मात्** लौकिकदृष्ट्या दर्शनाद् भगवन्तं **न पश्यति.** अनेन "विलोक्य भग्नं स्वसुतस्य कर्म तत् जहास तं चापि न तत्र पश्यती"त्यस्यार्थ उक्तः (९).

---

१. भावात् मू. पा.

विरुद्धांस्तान् हरिर्ज्ञात्वा तपसे निर्गतस्ततः ॥(१०)॥
पूर्णे तपसि तत्प्राप्तिरेवं दशभिरुच्यते ।

टिप्पणी

तान् यष्टिग्रहणादियत्नानित्यर्थः. **तपो**न्तःकरणदोषापहं दुःखरूपं भगवत्प्रापकं चेत्यनुधावनयत्नेन[१] तपस्त्वमुक्तम्. अत्रापि प्रचुरदोषबुद्धिसत्त्वात्तथा. अत एवाग्रे यष्टित्यागः. सर्वात्मना दोषारोपनिवृत्तेस्तत्प्रापकस्य दुःखस्य भक्तिमध्यपातित्वं नोक्तम्. अत्रायं भावः— पूर्वमेव स्वप्रापणमकृत्वा तावत्क्लेशानन्तरं तथाकरणे कश्चन विशेषो वाच्यः. स च पूर्वं यष्टिग्रहणेन क्लेशानन्तरं तत्त्यागेन चान्तःकरणगत एवेति लक्ष्यते. एवं सति "वीर्यं मे दुश्चरं तप" इतिवाक्यात् तद्गतालौकिकविशेषहेतुस्तप इति तथोक्तम्. भक्तित्वानुक्तौ हेतुरुक्त एव. एतदेवाभिस-

प्रकाश

तानित्यादि. **तथे**त्यनुधावनं, तन्निवर्तकं तप एव; तस्य दोषनिवर्तकत्वं स्फुटीकुर्व**न्त्यत एवे**त्यादि दोषबुद्धिनिवर्तकत्वादेव. ननु भक्तिप्रकरण एतस्य तपस्त्वं कुत उक्तमित्याकाङ्क्षायां तत्तात्पर्यमाहु**रत्रायं भाव** इत्यादि. **विशेष** इति मातृचरणगतो [२]यो विशेषः. **तद्गते**त्यन्तःकरणगतो यो भीतत्वोपनायकज्ञानात्मको विशेषस्तद्धेतुरित्यर्थः. इदं सात्त्विकत्वमभिप्रेत्योक्तं, "सत्त्वं तत्तीर्थमि"तिवाक्यात्. ननु भक्तिप्रकरणे तपसः कः प्रसङ्ग इत्यत आहु**रेतदेवे**त्यादि. तथा चात्र परोक्षवादेन

लेखः

कारिकासु **तपसे निर्गत** इति तस्यास्तपःसिद्ध्यर्थमित्यर्थः (१०).

कारिकार्थः

"उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितमि"तिश्लोकार्थमाहु**र्जिज्ञासायामि**ति. भगवान् कुत्रास्तीति **जिज्ञासायां** सत्यां **ततो** जिज्ञासाबलादेव भगवन्तं **दृष्ट्वा प्राप्त्यर्थं** ग्रहणार्थं **यत्नं** कृतवतीत्यर्थः. तदुक्तं "निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैरि"ति. "तामात्तयष्टिमि"ति श्लोकोक्तार्थमाहु**र्विरुद्धांस्तानि**ति. **तान्** यष्टिग्रहणादियत्नान् **विरुद्धान् ज्ञात्वा हरिस्तपसे** यशोदाया अनुधावनयत्नात्मकतपःसिद्ध्यर्थं **निर्गतः**. तपोन्तःकरणदोषापहं दुःखरूपं भगवत्प्रापकं चेत्यनुधावनयत्ने तपस्त्वमुक्तम् (१०).

"अन्वञ्चमाने"ति दशमश्लोकार्थमाहुः **पूर्ण** इति. अत्र दशानां श्लोकानां

---

१. यत्ने मू. पा. २. लुप्तम्.

परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं च हरिप्रियम् ॥(११)॥
आसक्तिं चेत् स्वतः कुर्यात् जीवः कृष्णः पलायते ।
तदा दृढो निरोधः स्यात् नान्यथेत्येष निर्णयः ॥(१२)॥

पूर्वाध्याय आधिदैविकमोहस्य प्रतिपादितत्वात् तत्कार्यमाहै**कदे**ति.

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

यदा भगवदिच्छया सर्वा एव गृहदास्यः क्षेत्रादिसंस्कारार्थं तत्प्रसङ्गाल्लतादिगृहनिर्माणार्थं वा गतास्तदा **यशोदा स्वयं दधि निर्ममन्थे**तिसम्बन्धः. दास्य-

---

टिप्पणी

न्धायोक्तं **परोक्षे**त्यादि. परोक्षवादविषय ए**वासक्तिं चे**दित्यादिनाप्युक्तः (१०-१२).

प्रकाशः

मातृचरणस्वरूपव्यवस्थाबोधनार्थं तथोक्तम्. सा चाग्रे "स जातकोप" इत्यत्र स्फुटीभविष्यति. दशभिः सिद्धोर्थोप्यग्रे कारिकयोच्यत इत्याशयेनाहुः **परोक्षवादे**त्यादि. कारिकार्थस्तु— **जीवश्चेत् स्वतः** सत्त्वमभिसन्धाय गृहोपकारणादा**वासक्तिं कुर्यात् तदा कृष्णः पलायते** विमुखो भवति. तदैव वैमुख्ये सति भगवति **निरोधो दृढः स्यान्नान्यथा इत्येष** दशश्लोकसिद्धो **निर्णय** इति ज्ञेयम् (१०-१२).

योजना

आसक्तिं चेत् स्वतः कुर्यात् जीवः कृष्णे पलायते तदा दृढो निरोधः स्यादिति. मातृचरणानामग्रे भगवत्पलायनस्य तात्पर्यमाहुः **आसक्तिमि**त्यादिना. **जीवः स्वतः** कृष्णे **आसक्तिं कुर्यात् कृष्णश्चेत् पलायते तदा दृढो निरोधो** नाम प्रपञ्चविस्मृतिपूर्विका भगवदासक्तिर्जीवस्य भवतीत्यर्थः. युक्तं चैतत्, आसक्तिविषयस्य दूरदेशस्थितौ आसक्तिवृद्धेरनुभवसिद्धत्वात् (१२).

कारिकार्थः

परोक्षार्थोपि विवक्षित इत्याशयेनाहुः **परोक्षे**ति. परोक्षार्थमेवाहु**रासक्तिमि**ति. **जीवः स्वत आसक्तिं कुर्यात् कृष्णश्चेत् पलायते तदा निरोधो दृढः स्यात्** प्रियपदार्थदूरस्थितेरासक्तिदार्ढ्यजनकत्वप्रसिद्धेरित्यर्थः. प्रकृते च. यशोदाया भगवत्पश्चाद्गमने सति भगवतः पलायनेन अयं निर्णयः परोक्षवादात् सिद्धः. **कृष्णे पलायिते** इति सप्तम्यन्तपाठे तु **पलायितेपि कृष्णे जीवः स्वत आसक्तिं चेत् कुर्यात् तदा निरोधो दृढः स्या**दित्यर्थः (११-१२).

श्चतुर्विधाः— प्रभुभ्यो देया गोष्ठक्षेत्रविचारिकाश्चान्या यशोदासख्यो नन्दभोग्या गृहकार्यकर्त्र्यश्च. तत्र **गृहदासीषु कर्मान्तरनियुक्तासु** सत्सु प्रकरणाद् भगवदभ्युदयार्थमेव कर्मान्तरमिति लक्ष्यते. स्वतःकरणे हेतु**र्नन्दगेहिनी**ति गेहिन्याः कर्मैतदावश्यकम् ॥१॥

एवं संसारव्यापृतिरपि भगवदीयानां भगवद्गुणगानार्थमेव जातेत्याह **यानि यानी**ति.

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मथने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥२॥

उपनिबन्धनं स्वेनैव कर्तुं शक्यते, स्त्रीणामद्यापि तथासामर्थ्यात्. **यानि** प्रसिद्धानि भगवच्चरित्राणि; पूर्व**मिह** गोकुले वा शास्त्रतो लोकतश्च, तन्मध्ये **यानीह** प्रसिद्धानि, वीप्सया सर्वाण्येव. अनेन गानमेव मुख्यं न तु दधिमन्थनमिति ज्ञापितम्, अन्यथा शीघ्रं दधिमन्थने सर्वाणि गीतानि गातुं न शक्यानि स्युः. **तस्य बालचरितानि** स्वदृष्टानि **च**काराद् गोपिकादिभिरप्युक्तानि. **तस्य** भगवतो **बालचरितानि** येषु **तानि** वा **गीतानि च**कारादन्यानि च. **दध्नो** नितरां **मथनं** यस्मिन् **काले.** भगवतो गुणगानस्य स एव कालो यस्मिन् काले क्रियाशक्तेराधिदैविकस्यापीन्द्रियं मथितं भवति. तदाह **दध्नो नितरां मथनं** यस्मिन् **काल** इति. ननु

टिप्पणी

दधिनिर्मन्थने काल इत्यत्र, **क्रियाशक्तेरि**त्यादि. क्रियाशक्तिर्भुजयोः प्रतिष्ठिता. तदाधिदैविकश्चेन्द्रः. "इन्द्रियं वै दधी"तिश्रुतेस्तस्येन्द्रियरूपं तदिति तथा.

प्रकाशः

यानीत्यत्र भगवत इत्यादिना गुणगानकालो यो विवृतस्तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहुः **क्रियाशक्तेरि**त्यादि. कारिकासु परोक्षवादस्याङ्गीकृतत्वात् तमादायात्र प्रासङ्गिकं वदन्ति भक्तिमार्गमर्यादाज्ञापनार्थमित्याशयेन तात्पर्यान्तरमाहु**र्वस्तुत** इत्यादि ॥२॥

लेखः

एकदेत्यत्र. **गृहदास्य** इति चतुर्विधा अपीति ज्ञेयम्. **गृहदासीष्वि**ति गृहकार्यकर्त्रीष्विति ज्ञेयम्. गताः सर्वा अपि, अतो यशोदैव ममन्थ. कासुचिदपि सतीषु मुख्याया मथनासम्भवादर्थापत्त्या सर्वासामेव गमनं प्राप्तं, तत्र कर्मान्तरे नियोगो गृहकार्यकर्त्रीणामेवेत्यर्थः॥१॥

कथं तस्यैव कालस्य गाने हेतुत्वमिति चेत् तत्राह **स्मरन्तीति**, **तानि गीतानि स्मरन्ती;** तस्मिन्नेव काले गीतानां स्मरणं भवतीति ॥२॥

एवं गानपरतया मथने क्रियमाणे गानस्यामृतरूपत्वाद् दधिमथनं न भवतीति गानस्य गौणभावं सम्पाद्य भगवद्भजनौपयिकं देहमपि पीडयित्वा भगवदुपभोग्यं रसमपि निरुध्य तद्देवतामपि निवार्य भौतिकीं क्रियां श्रमजनिकां भक्तिमपि पीडयन्तीं मुक्तानामपि क्षोभजनिकां क्रियां कृतवतीत्याह **क्षौमं वास** इति.

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥३॥

क्षौमं पट्टवस्त्रं, तदतिपिच्छिलं भवतीति तद्दाढर्यार्थं **सूत्रेण** दोरकेण **नद्धं** क्रियते. उत्थिता सती मथनं करोति. मथनावेशाद् वस्त्रस्याप्यननुसन्धानमिव वक्तुं स्थूले **कटितटे बिभ्रतीत्युक्तम्**. कटिस्थौल्यात् मध्ये कृशभावेन बद्धं **वासः** परं न

टिप्पणी

वस्तुतस्तु परोक्षवादविषय एवार्थोनेनोक्तः. तथाहि **क्रियाशक्तेरिति** पञ्चमी हेतौ, भगवद्वियोगे[1] हि सर्वेन्द्रियगतस्तादृक् क्षोभो भवत्यतिप्रचुरो, येन तत्तदाधिदैविकस्यापीन्द्रियं क्षुभितं भवति. तदा भावविशेषैर्गुणगानं भवति, यथा व्रजरत्नानाम्. तदेतत्प्रसङ्गादुक्तं **भगवत** इत्यादिना ॥२॥

प्रकाशः

क्षौमं वास इत्यत्र **रसमिति** स्तन्यम्. **तद्देवतामिति** स्तन्यजनिकां स्नेहाभिमानिनीं देवतां, सा च मायाया रूपान्तरमिति प्रतिभाति. **भक्तिमिति** स्नेहरूपाम्. **मुक्तानामि**त्येतदर्थोनुपदं स्फुटीभविष्यति. सुबोधिन्यां वस्त्रादिवर्णनस्य

लेखः

दधिनिर्मथने काले इत्यस्य टिप्पण्यां **वस्तुतस्त्वतिपक्षे क्रियाशक्तेरिति हेतौ पञ्चमी** व्याख्याता. तत्र पक्षे क्रियायां शक्तिः सामर्थ्यं तत्सिद्ध्यर्थमिन्द्रियेषु स्थिता ये तत्तदाधिदैविकास्तेषामपीन्द्रियमित्यर्थो ज्ञेयः. **आधिदैविकस्येति** जात्यपेक्षयैकवचनम् ॥२॥

क्षौमं वास इत्यस्याभासे **गानस्येति**. पूर्वं'मगायते'त्यनेन गानस्य मुख्यतोक्ता;

1. भगवद्विप्रयोगे मू. पा.

पतति. अयुक्तकरणं वा ज्ञापयितुं वस्त्रादिसौन्दर्यं वर्ण्यते. **तट**पदेन चास्या गतिरूपत्वं नद्या इव प्रदर्शितम्. अनेनावश्यकशरीरापेक्षापि मथनार्थं परित्यक्तेति सूचितम्. पुत्रस्नेहेन सहजधर्मेणाधिक्यात् प्रेरितं दुग्धं बहिरपि निःसरन् न विचारवतीत्याह **पुत्रस्नेहे**ति. दुग्धं यद्यपि स्रवति तथापि **पुत्रस्नेह एव स्नुतो** यत्र तादृशं **कुचयुगं बिभ्रती.** स्नेहे वृथा गच्छति सति तदभिमानिनी देवता भीता सती **कुचयुगम**पि **कम्पयति,** तादृशमपि **बिभ्रती.** अनेनाधिभौतिकाध्यात्मिकाधिदैविकापेक्षामपि त्यक्तवतीत्युक्तं भवति, **च**कारादन्तर्यामिप्रेरणामपि. नन्वेवमतिक्रमे भगवता रक्षकत्वेन स्थापितौ दण्डधरौ मृत्युयमौ कथं न तां दण्डितवन्तावित्याह **सुभ्रूरि**ति– शोभने भ्रुवौ यस्याः. "भ्रुवौ यम" इतिवाक्याद् भाव्यर्थमङ्गीकृत्य पर्यवसानात् शोभनभ्रूत्वम्.

टिप्पणी

क्षौमं वास इत्यत्र **सुभ्रूरि**त्यस्याभासः, **नन्वेवमतिक्रम** इत्यादि. व्रजजनक्लेशहेतुभूतानां नाशाय दुःखप्रापणाय च मृत्युयमौ तत्राज्ञप्ताविति कुचकम्पस्य क्लेशहेतुत्वेन तत्कर्त्री पूर्वोक्तदेवतां तौ कथं न तथा कृतवन्तावित्यर्थः. सर्वनियमनत्वेन तयोर्यमत्वं, दिक्पालस्यात्रातथात्वमिति ज्ञापनायेदमुक्तम्. **भाव्यर्थः**

प्रकाशः

पुरःस्फूर्तिकमर्थमाहु**रयुक्ते**त्यादि. बह्वीषु गृहदासीषु सतीषु तासु काञ्चित् कार्यान्तरादनिवार्यानाकार्य स्वयं करणमयुक्तकरणं तवेति ज्ञापयितुं तथेत्यर्थः. **गतिरूपत्वमि**ति चाञ्चल्यम्. **आधिभौतिके**त्याद्याधिभौतिकं दुग्धमाध्यात्मिकः स्नेहो देवताधिदैविकी. **नन्वेवमतिक्रम** इत्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्व्रज** इत्यादि. **भाव्यर्थे-**

लेखः

अत्र **निर्ममन्थे**त्यनेन गानस्य गौणत्वं सूचितमितिभावः. **क्षौममि**त्यत्र **गतिरूपत्वमि**ति– गतिनिरूपकत्वमस्याः कट्या इत्यर्थः. तटयोर्मध्ये सूक्ष्मायाः कट्याश्चलनात् लोकरीत्या सौन्दर्यकथनेन **शरीरापेक्षाया आवश्यकत्वमि**तिभावः. **पुत्रस्नेहे**त्यत्र **तदभिमानिनी देवते**ति कुचयुगाभिमानिनी तन्नियामिका तदावरिकेत्यर्थः. तद्ग्रन्थ्योः शैथिल्यात् कम्पो जात इत्यर्थः. **भीतेति**– भयं जाड्यं तद्युक्ता आर्द्रेत्यर्थः. **सुभ्रूरि**त्यस्याभासे **तां दण्डितवन्तावि**ति, देवताया ग्रन्थिः सम्यक्तया कुतो न बद्धा, विदीर्णत्वे वा तामुत्तार्यान्या कुतो न परिहितेत्यर्थः. उत्तारणेन तदभावरूपो नाशो ग्रन्थिबन्धनेन दुःखप्रापणं च मृत्युयमयोः कार्यं दण्डपदार्थष्टिप्पण्यामुक्तः. क्लेशहेतवो व्रजजनानां भ्रूभङ्गमात्रेणैव नष्टा दुःखिताश्च भवन्तीति भ्रुवोर्मृत्युयमरूपत्वम्.

रज्जोर्नेत्रस्याकर्षेण यः **श्रमस्**तत्सहितं **भुजद्वयं** तावत्पर्यन्तं **चलन्ति कङ्कणानि** ययोरेतादृशौ हस्तौ **बिभ्रती**. अनेन भक्तिमार्गः कर्ममार्गश्च तद्देवास्तन्नियमाश्च सर्वे क्लिष्टा इत्युक्तं, **कुण्डले** साङ्ख्ययोगं द्वयमपि क्लिष्टं; सर्वत्र **बिभर्ती**तिसम्बन्धः.

टिप्पणी

श्रमस्तस्यानङ्गीकारे तद्धेतौ न प्रवर्तेत. तथा च **तदङ्गीकृत्य ममन्थे**ति सम्बन्धः. क्लेशे भ्रूसङ्कोचसम्भवेनात्र च शोभनत्वेन तदभावात् क्लेशाभावो ज्ञाप्यत इत्याशयेनाहुः **पर्यवसानादि**ति. तददण्डः पर्यवसानम्. रज्ज्वाकर्षे भुजद्वयस्यापि व्यापृतत्वं भवतीति दक्षिणवामयोर्यथाक्रमं तद्रूपत्वम्. अत्रायं भावः. अस्त्यत्र क्रिया द्विविधा– भगवत्सम्बन्धिनी गार्हस्थ्यसम्बन्धिनी चेति प्रधानत्वाप्रधानत्वाभ्यां [1]तद्रूपत्वमुच्यते. तत्तत्कङ्कणानां भक्तिमार्गीयनियमरूपत्वं कर्ममार्गीयदेवतारूपत्वम्, तदाश्रितत्वात्. **सुभ्रूरि**तिवत्स्वतन्त्रविशेषणत्वं सर्वेषामनुक्त्वाभरणकर्मत्वोक्तेस्तात्पर्यमाहुः **क्लिष्टं सर्वत्रे**ति– क्लेशरूपसमानधर्मवत्त्वं सर्वेष्वस्तीति ज्ञापनाय तथेत्यर्थः. विशेषणत्वोक्तौ [2]प्रकारकत्वापत्त्या तदप्राधान्येन तत्क्लेशस्याप्रयोजकत्वात् तद्धेतुभूतमन्थनेनुचितत्वं न ज्ञापितं भवेदिति भावः. शीर्ष्णः सत्यलोकाधिदैविकरूपत्वेन तदुपरि ज्ञानिनां जीवन्मुक्तानामेव स्थानमिति तथोक्तम्. लीलामध्यपातिनां भगवदात्मकत्वमभि-

प्रकाशः

त्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहु**र्भाव्यर्थ** इत्यादि. तथा चैवं फक्किकार्थः– श्रममङ्गीकृत्य मथनेन क्लेशाभावतो 'वक्षःकम्पक'[3]देवताया अदण्डात् शोभनभ्रूत्वमिति. रज्ज्वाकर्षस्य हस्तधर्मत्वात् मूले **रज्ज्वाकर्ष**विशिष्टपदकथनेन तस्य हस्तविशेषणत्वं बोध्यत इत्याशयेन सुबोधिन्यां **रज्जोरि**त्याद्युक्तं तत्तात्पर्यं **चानेने**त्यादिनोक्तं तद् विवृण्वन्ति **रज्ज्वाकर्ष** इत्यादि. **क्लिष्टमि**त्यादि यदुक्तं तदर्थं विवृण्वन्ति **सुभ्रूरिती**त्यादि. **क्लेशरूपसमानधर्मवत्त्वमि**ति क्लेशरूपो यः समानो धर्मस्तद्वत्त्वमित्यर्थः. भरणकर्मोक्तितात्पर्यमाहु**र्विशेषणे**त्यादि. **तथोक्तमि**ति **च**कारसूचितं शिर उक्तम्.

लेखः

भ्रूभङ्गपूर्वकं दर्शने देवतायाः पूर्वोक्तं दण्डं कुर्यादिति "स्वव्यापारे ही"ति न्यायेन भ्रुवोर्दण्डकर्तृत्वम्. **एतादृशौ हस्तावि**ति– कूर्परात् किञ्चिदधोभागोत्र **भुज**पदेनोच्यते, **हस्त**पदेन सर्व इति विभागः. कर्मधारये सुवर्णकङ्कणयोश्चलनासम्भवात् काचकङ्कणानां च बहुत्वेन द्विवचनानुपपत्तेर्बहुव्रीहिरुक्तः ॥३॥

१. तत्तद्रूपत्व- मू. पा. २. प्रकारत्वा- मू. पा. ३. 'कम्पज-'पङ्कज.

चकाराच्छिरश्च **जातकम्पमि**त्यनुवर्तते. एतदर्थमेव पृथङ्निर्देशः, अन्यथा **सुतसकम्पकुचयुगमि**त्येव वदेत्. **वक्त्रम**पि **स्विन्नं** परमक्षोभात् स्वेदयुक्तं, निर्गतसारा भक्तिरप्युच्यते. **कबरे** केशपाशे सिद्धस्थानेषु **विगलन्ती मालती** यस्यां, **कबरात्** केशपाशात् सिद्धस्थानाद् **विगलन्ती मालती** यस्यामिति वा. **मा** लक्ष्मी**रलं** यस्मिंस्तादृशं जग**दति**क्रम्य वर्तत इति **मालती** ब्रह्मविद्या, सापि गच्छति. एवं प्रपञ्चासक्ता **निर्ममन्थ.** आकृतिमात्रवर्णनायां वैयर्थ्यं शुकवाक्यविरोधश्च भवेत् ॥३॥

टिप्पणी

सन्धायैव सर्वत्राचार्यैर्निरूप्यत इति ज्ञेयम्. प्रभौ स्नेहवतां तथैव तत्सम्बन्धिष्वपि स्नेह इति मातुस्तादृक्श्रमदर्शने तदसहिष्णुत्वेन क्षोभात् मुक्तानामपि स्वधर्मविस्मृतिर्भवतीत्याशयेन **मा लक्ष्मीरि**त्याद्युक्तम्. किञ्च सर्वमूलभूतभगवदाविर्भावस्थानत्वेन सर्वमूलभूतत्वान्मातरि तादृशधर्मे सति तत्कार्यपरम्परायां स्वत एव तादृशत्वं भवतीति भावेनापि तथोक्तम्. विपक्षे बाधकमाहुः **आकृती**त्यादि. मन्थनोक्त्यैव तदनुरूपाकृतेरपि प्राप्तेस्तत्कथनं पुनर्मन्थनोक्तेश्च[1] तथा स्यादित्यर्थः. एवं सति विशेषस्यावश्यवाच्यत्वे मन्थनस्यानुचितत्वज्ञापनमेव विशेष इति वक्तुं युक्तमिति लोकतः परमार्थतश्च तथात्वमुक्तम्. किञ्च. पूर्वं "दधिनिर्मन्थने काल" इति वाक्याद् गुणगानाङ्गत्वेन मन्थनमुक्तम्. तेन मन्थनेन न किमपि क्लिष्टमभूत्. तथैव चेदग्रेपि स्यान्न निवारयेत्प्रभुः, निरोधाविरोधात्. एवं सत्यग्रे निषेधस्य वाच्यत्वात् तद्धेतुभूतं निरोधविरोधिमन्थनमवश्यं वाच्यमित्येकेन तदुक्तम्. एवं सति विवृतिस्तथाविधेति युक्ततरम्, अन्यथा निषेधोक्तिर्विरुद्धा स्यादित्यभिसंधायाहुः **शुकवाक्ये**त्यादि.

प्रकाशः

ननु मातृचरणस्वरूप एवं ब्रह्माण्डाधिदैविकत्वरूपनिरूपणं कथं युज्यत इत्यत आहु**र्लीले**त्यादि. **मालती**तात्पर्यविवरणप्रयोजनमाहु **प्रभावि**त्यादि. **मालती**शब्देतिपरोक्षवृत्तिर्ज्ञेया, 'निघण्टव' इत्यत्र यास्कभाष्ये तथाङ्गीकारात्. एवं शब्दसिद्धिश्च पृषोदरादित्वात् ज्ञेया. वैदिकी चेयं निरुक्तिरिति तात्पर्यान्तरमाहुः **किञ्चे**त्यादि. **तत्कार्यपरम्परायामि**ति स्नेहरूपायाम्. **तथोक्तमि**ति ब्रह्मविद्यागमनमुक्तम्. **विपक्ष** इति पुरःस्फूर्तिकार्थग्रहणे. **तथा स्यादि**ति व्यर्थं स्यात्. **इति लोकत** इत्य**त्रे**तिर्हेतौ. **तथात्वमि**त्यनुचितत्वम्. एतस्यैव तात्पर्यान्तरमाहुः **किञ्चे**त्यादि. हेत्वन्तरतात्पर्यमाहु-

१. थोक्तिश्च मू. पा.

पूर्ववद् भगवान् बालकानामर्थे स्तन्यकामः सन् श्रमं वारितवानित्याह **तामिति**.

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥४॥

आसाद्य निकटे गत्वा; नैकट्यदर्शनाभ्यां क्रियाज्ञानाभ्यामुभयविधनिरोधसिद्धिः. **मथ्नन्तीमि**ति दध्नो विकृतत्वं, स्वस्यापि प्रयासः. **जननीमि**ति निरोधावश्यकत्वं, तथाबुद्धिस्तेनैव कृतेति. **हरिरि**ति सामान्यतोपि सर्वदुःखहर्ता साम्प्रतं कर्तुरत्यन्तान्याभिनिवेशात् करणप्रतिबन्धमेव कृतवानित्याह **गृहीत्वा दधिमन्थानमि**ति. **मन्थानं** दण्डं हस्तेन धृत्वा **प्रीतिमावहन् न्यषेध**न्मथननिषेधं कृतवान्. निषेधेपकाराकरणाय **प्रीतिमावहन्नि**ति— यथा तस्याः स्वस्मिन् प्रीतिर्भवति तथा कुर्वन्—

सर्वाङ्गं चालयन् हस्तौ पादौ चैव विचालयन् ।
मुखाब्जं मधुरारावं बिभ्रत् कृष्णः समागतः ॥(१३)॥४॥

टिप्पणी

मन्थनसामयिकाकृतेः साधारणत्वेन विशिष्टलीलारूपत्वं न सम्भवती"त्युत्तमश्लोकलीलया गृहीतचेता" इतिलक्षणं शुकवाक्यं तथा स्यादिति वा. उक्तरीतेस्तु माहात्म्यज्ञानहेतुत्वेन भक्तिजनकत्वादुत्कर्षः. **पूर्ववदि**ति निष्क्रमणोत्सववदित्यर्थः॥३-४॥

प्रकाशः

रेवमित्यादि. अस्मिन् पक्षे निषेधोक्तिरेव शुकवाक्यं ज्ञेयम्. प्रकारान्तरेणाहु**र्मन्थने**त्यादि ॥३॥

पूर्ववदित्यस्यार्थमाहु**र्निष्क्रमणे**त्यादि ॥४॥

लेखः

तां स्तन्यकाम इत्यत्र **नैकट्यदर्शनाभ्यामि**ति— **आसाद्ये**ति **नैकट्यं, प्रीतिमावहन्नि**त्यनेन सूचितं **दर्शनं,** ताभ्यां "अपाययत् स्तनमि"त्यनेनोक्तस्य **क्रिया**रूपस्य "ईक्षती मुखमि"त्यनेनोक्तस्य **ज्ञान**रूपस्य च **निरोधस्य सिद्धिरि**त्यर्थः. **स्वस्यापी**ति मथनस्य वर्तमानत्वाद् भगवतः करणप्रतिबन्धरूपः **प्रयासः. अपिना** पूर्वार्थसमुच्चयः ॥४॥

कारिकार्थः

तां स्तन्यकाम इत्यत्र **सर्वाङ्गमि**ति **प्रीतिमावहन्नि**ति पदसूचितोयमर्थः (१३).

भगवता प्रीतिर्जनितेति भगवदर्थं प्रपञ्चासक्तिं परित्यज्य स्तनं पायितवतीत्याह **तमङ्कमिति**.

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥५॥

स्वयमे**वाङ्कमारूढमी**षदुत्थितं **स्तनमपाययत्.** यथा सा विमुच्य न गच्छति तदर्थ**मङ्कमारूढो** दैत्यानाक्रमगितुं च. **स्नेहस्नुतमि**ति नास्याः स्तनपानजनितोपि क्लेशः. यद्यपि मोहितायाः प्रपञ्चासक्तिर्महती, गृहे च बहु कार्यं, दास्यश्च न सन्ति, तथापि मन्दहासयुक्तं **मुखं** पश्य**न्त्यपाययत्.** इदानीं स्थित्यर्थं मोहनं पूर्वमोहनस्य सङ्कोचश्च. एवं निर्बन्धेन स्थापितापि दोषवशात् त्यक्त्वा निर्गतेत्याह**ातृप्तमुत्सृज्ये**ति— न तृप्ता यस्मिन् प्रतिबन्धं कुर्वाणम**प्युत्सृज्यो**र्ध्वं त्यक्त्वा **जवेना**तिवेगेन **सा** पूर्वोक्ता प्रबलप्रपञ्चा **ययौ** उद्देश्यपर्यन्तं गतवती. गमने लौकिकमावश्यकं कार्यमा**होत्सिच्यमाने पयसी**ति— **अधिश्रिते**ग्नौ स्थापिते **पयस्युत्सिच्यमाने** [1]विष्यन्दमाने सति. विष्यन्दनं द्रव्यनाशकं दोषजनकं च. **तु**शब्दः प्रक्रमान्तरमाह— भगवदनुरोधेन यथा मन्थानं परित्यज्य भगवदनुरोधं कृतवती मथनाविरोधेनैवं भगवदनुरोधेन

टिप्पणी

तमङ्कमारूढमित्यत्र, **दैत्यानि**ति. उक्तन्यायेनाधिदैविकभूरूपत्वादङ्कस्य भूस्थितांस्तांस्तथाकर्तुमित्यर्थः. मात्रा ग्रहणसम्भवेपि स्वयमङ्कारोहणस्येदं तात्पर्यमुक्तम्. **उत्सिच्यमान** इत्यत्र, वैदिकेग्निहोत्रादावलौकिकदोषजनकं यथा तथा लौकिके तल्लौकिकदोषजनकमित्याशयेनोक्तं **दोषजनकं चे**ति ॥५॥

प्रकाशः

तमङ्कमित्यत्र सुबोधिनी टिप्पणी च प्रकटार्था ॥५॥

लेखः

सस्मितमीक्षतीत्यस्य तात्पर्ये **इदानीं स्थित्यर्थमि**ति— भगवतेदं **मोहनं** निषेधेन **पूर्वाध्यायोक्तमोहनस्य सङ्कोचश्च इदानीमे**तस्याः **स्थित्यर्थमे**व कृतः परन्तु मोहस्वरूपस्यैव दोषरूपत्वात् तथा न जातमित्याहुः **दोषवशादि**ति. अत एव "निवारितापि संसारे" इति कारिकायामेतस्य मोहस्य गृहकृत्यप्रवृत्तिहेतुत्वमुक्तम्. **प्रबलप्रपञ्चे**ति भगवता सम्पादितः स्वस्मिन् मोहोपि यस्याः प्रपञ्चे एव पर्यवसन्नस्ता-

१. 'ष्य'.

दुग्धोत्तारणं न कृतवती किन्तु भगवदनुरोधं परित्यज्यैव कृतवतीति ॥५॥

स जातकोपः स्फुरितारुणाधरं सन्दश्य दद्भिर्दधिमण्डभाजनम् ।
भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहे जघास हैयङ्गवमन्तरङ्गतः ॥६॥

ततो बालकानामतृप्तत्वाद् भगवान् **जातकोपो** जातः, यतः **स** बालकरक्षकः. बालकरक्षाप्रतिघाते भक्तिमार्गावेशेन वैषम्यादकस्मादेव क्रोधो जातः; स्थित एव निमित्तवशादुद्गतः. ततः कोपो यशोदां मारयिष्यतीति लोभं तद्गतं भाण्डं च स्फोटितवानित्याह**ाधरं दद्भिस्सन्दश्य दृषदश्मना दधिमण्डभाजनं भित्त्वे**ति. अधरस्य दंशे हेतुः **स्फुरितारुणे**ति– स्फुरितोरुणवर्णश्च जात इति. लोभाद् भगवत्परित्यागे लोभस्यैवापराधो भवति. तदा लोभ आधिदैविको यशोदां मारयितुमाध्यात्मिकं वा स्वयं विज्ञापनार्थमागतः. तदा स्फुरणं जातं, तत् त्रयं निवारणीयम्.

टिप्पणी

स जातकोपेत्यत्र **तत्त्रयं निवारणीयमि**ति. यशोदाया अपराधस्तन्निष्ठाध्यात्मिकलोभस्य च नाशनमेतदमारणार्थमाधिदैविकविज्ञापनं चेति त्रयम्. आधिदैविकश्चेदाध्यात्मिकं मारयेत्, सर्वांशेन मारयेत्, तथा सत्यग्रिमकार्यं न भविष्यतीति तत्कृततन्मारणस्य निवारणमत्रोच्यते. भगवांस्त्वेतत्कालीनापराधहेतुभूतलोभमात्रं नाशितवानिति पूर्वोक्तेन **लोभं तद्गतं भाण्डं च स्फोटितवानि**त्यनेनाग्रिमग्रन्थेन न

प्रकाशः

स जातकोप इत्यत्र **भक्तिमार्गेणे**ति सहार्थे तृतीया. **अकस्मादि**ति सहसा. **स्थित** इति "प्राणैः समं रोषसमन्वितोपिबदि"त्यत्र यः स्थितः स इत्यर्थः. **मारयिष्यतीतीति**शब्दो हेतौ तदभावरूपं हेतुं बोधयति. अधरदंशतात्पर्यमाहु**स्तत् त्रयमि**त्यादि. तस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्यशोदाया** इत्यादि. **पूर्वोक्तेने**ति **यशोदां**

लेखः

दृशीत्यर्थः. **भगवदनुरोधमि**ति भगवन्तमनुरोधयति तादृशं स्तनदानमित्यर्थः ॥५॥

स जातकोप इत्यत्र **अकस्मादेवे**ति करणं विनैवेत्यर्थः. **स जातकोप** इत्येवोक्तं, न तु **तेन जातकोप** इति, अतो गमनस्य निमित्तत्वमात्रं, न तु करणतेति भावः. एतदेव **स्थित एवे**त्यनेन विवृतम्. एतेन भगवद्धर्मत्वात् नित्यता सूचिता. **तद्गतमि**ति लोभस्यैव विशेषणं; यशोदागतमित्यर्थः. नाशनं स्फोटपदार्थ उभयसाधारणो ज्ञेयः. **तदा लोभ** इति– भगवन्निष्ठो बालानामर्थे स्तन्यविषयक आधिदैविकः, यशोदानिष्ठः पयोविषयक आध्यात्मिक इतिज्ञेयम्. **आध्यात्मिकं चे**ति

रजोगुणश्च प्रादुर्भूतो जातस्त्रयमुत्पादयितुं भिन्नं; तदुभयमपि निवारयितुमोष्ठदंशः. दन्ताः स्नेहकला यशोदानिष्ठाः, तैस्तेषां निवारणं कृतम्. अनुकरणं तु स्पष्टमेव. **दधिमण्ड**स्तक्रं, तदाधारभूतं भाण्डं; नवनीतं तु भिन्नं जातमस्ति. ततो **दृषदश्मना** दृषत्सम्बन्धिकुट्टनपाषाणेन **भित्त्वा.** दैत्याविष्टेव सा निर्गता. तेषां दैत्यानामाधिदैविकानां

टिप्पणी

विरोधः. अत्रैवाग्रे **त्रयमुत्पादयितुं भिन्नमि**ति. यथाधिदैविकेन तथाकर्तुमुद्यतं, तथान्यां यशोदां तद्गतं लोभं च भगवदेकविषयं; तदुपभोग्यत्वेन भोगविषयान् दुग्धादींश्चान्यानुत्पादयितुं स तथेत्यर्थः. तेन क्रोधातिशयो निरूपितो भवति. **तदुभयमपी**ति आधिदैविकं लोभं रजोगुणं चेत्यर्थः. ननु पुत्रदुग्धयोः समानप्रीतिविषयत्वेपि नैवं सम्भवतीत्यनुपपन्नमिदमित्याशङ्क्य तत्रोपपत्तिं वदन्तो दृषदश्मना भेदनस्यापि तात्पर्यमाहुः **दैत्याविष्टेवे**ति– **सा** यशोदानिष्ठा पयोविषयिणी स्नेहकला प्रभुविस्मारकत्वेन दैत्याविष्टैवोद्गतेति तथागमनमभूत्. तन्नाशं [1]वालौकिकप्रकारेण करिष्यन्, "स्फ्यश्च कपालानि चाग्निहोत्रहवणी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दश यज्ञायुधानी"ति श्रुतेस्तथेत्यर्थः. तच्छ्रवणे पुत्रानुसन्धानात् तथा. तत्रैवं कथनमयुक्तमि**तीवे**त्युक्तम्. वस्तुतस्तु भगवत्कृतो मोह एव तादृगिति तथात्वम्. अत एवास्यापि लीलात्वं, [2]तथाप्यनुचितमभूदिति तथोक्तमाचार्यैः. **जघास हैयङ्गवमन्तरङ्गत** इत्यत्र

प्रकाशः

मारयिष्यतीत्यनेनाग्रिमग्रन्थेनेति **अनेने**त्यस्यैव विवरणम्. **त्रयमि**त्यस्यार्थमाहु**र्यथे**त्यादि. **नैवं सम्भवती**ति न पुत्रत्यागः सम्भवति. **दैत्याविष्टेवे**त्यस्यार्थमाहुः **से**त्यादि. **तथे**ति दैत्यावेशनिवृत्तिः. **तत्रे**ति श्रीयशोदायाम्. **तथात्वमि**ति दैत्याविष्टत्वम्.

लेखः

मारयितुमिति पूर्वेणान्वयः. टिप्पण्यां **यशोदाया** इति कर्मणि षष्ठी. मया तत् सम्पादनीयमेव किमर्थं विज्ञाप्यत इति विज्ञापननिवारणं ज्ञेयम्. **तथान्यां यशोदामि**ति एतादृशदोषरहितां; "सविशेषणे ही"ति न्यायेन दोषाभावमित्यर्थः. सुबोधिन्यां **त्रयमुत्पादयितुमि**ति– **रजोगुणो भिन्नं त्रयमुत्पादयितुं प्रादर्भूतो जात** इत्यन्वयः, रजोगुणस्योत्पत्तिहेतुत्वादित्यर्थः. **यशोदानिष्ठा** इति यशोदाविषयिण्य इत्यर्थः.

१.चालौकिक–मू. पा. २. तथाप्यत्यनु– मू. पा.

यज्ञायुधेनैव जनितशब्देन निवारणं कर्तव्यम्. तत्र महति शब्दे क्रियमाणे भाण्डमेव भिन्नम्. एवमुपकारं कृत्वा **मृषाश्रु**र्जातः, दधिभाण्डभङ्गेपि दोषसम्भवात्. यद्यपि स्वतः कृतभङ्गे दोषो नास्ति तथापि रुद्रः समागत इति लोके ज्ञापयितुमश्रूण्यवर्तयत्, अन्यथा भाण्डदेवताया भङ्गो न स्यात्. अश्रूणां कार्यं च रजतादि, नैमित्तिकं च, तदुभयाभावात् मृषाश्रुत्वं, यशोदाया नाशशङ्कया वा. तथापि रक्षकः स्वयमित्यश्रूणां मृषात्वमेव. वस्तुतस्तु भाण्डे दैत्य आविष्टः, तद्वधार्थमेव तत् कृतवान्. ततस्तस्याः श्रमः सार्थको भवत्विति **हैयङ्गवं रह** एकान्ते बालकार्थं **जघास, जहारे**ति वा. स्वस्यापि भक्षणं प्राप्स्यती**त्यन्तरङ्गतो** भेदं प्राप्तवान्. ततः प्रभृति ते भिन्नाः कृताः,

---

प्रकाशः

अत्रेदं बोध्यं– कृष्णोपनिषदि "यशोदा मुक्तिगेहिनी"त्युपक्रम्य "माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्त्वराजसतामसी प्रोक्ता सा सात्त्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी तामसी दैत्यपक्षेषु माया त्रेधा ह्युदाहृते"तिश्रावणात् मुक्तिरूपाया अपि तस्या एवं मायात्वमभिप्रेतम्. तथा सति रुद्रागती, रजःसंसर्गो दैत्यावेशश्च तमादाय विवृतः, श्रुतौ सूक्ष्मरूपेणोक्तत्वात् श्रीभागवतस्य श्रुतिरूपत्वादुपबृंहणत्वाच्चेति. सुबोधिन्या**मन्यथे**ति रुद्रानागमने. **भङ्गो न स्यादि**ति भगवता न कृतः स्यात्. तथा च रुद्रदूरीकरणार्थमेव भाण्डभेदनमितिभावः. **रजतादि नैमित्तिकं चे**ति– "यदश्रवसीयत तद् रजतं हिरण्यमभवदि"तिश्रुत्युक्तमेकं कार्यं, निमित्तात् क्रोधाद् दण्डो द्वितीयं **नैमित्तिकं** कार्यं चेत्यर्थः. **रहः**पदेनैवैकान्ते प्राप्ते पुन**रन्तरङ्गत** इतिकथनमनतिप्रयोजनमित्यतस्तद् विवृण्वन्ति **स्वस्यापी**त्यादि– **स्वस्यापि भक्षणं** "भक्त्युपहृतम"ग्रिमलीलासु प्राप्स्यतीत्यतस्तथेत्यर्थः. तथा **चान्तर**शब्दस्यार्थो भेद इति न वैयर्थ्यमित्यर्थः. एतस्यैवार्थान्तरमाहु**र्गृहमध्य** इत्यादि. **आधिदैविके**त्यादेरर्थमाहुष्टिप्पण्यां **मातृदर्शने**त्यादि ॥६॥

लेखः

आधिदैविकानामिति "द्वया ह प्राजापत्या" इत्यत्रोक्तप्रकारेणोत्पत्तिसिद्धानामित्यर्थः. **भङ्गेपी**तिस्वतो जातेपीत्यर्थः. **रुद्रः समागत** इति– "सविशेषणे ही"तिन्यायेन तद्धर्मो रोदनं, तत्साधर्म्यात् क्रोधश्च सर्वनाशकः **समागत** इत्यर्थः. **अन्यथे**ति क्रोधाभावे इत्यर्थः. **नैमित्तिकं चे**ति निमित्तस्य नाशनमित्यर्थः. **स्वस्यापी**ति गुणगानावस्थासम्पादितनवनीतस्य भोगः स्वस्याप्युचित इतिभावः. अत्र बालकानां भिन्नत्वाद् भगवतोपि भक्षणमिति ज्ञेयम्. **बालकार्थमेवे**ति बालकेभ्यो दानार्थमेव

गृहमध्ये गतः, तत्राप्येकान्त आधिदैविकदैत्यानामगम्यस्थाने बालकार्थमेव **जघास** भक्षितवान् ॥६॥

ततो यज्जातं तदाह **उत्तार्ये**ति.

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य सन्दृश्य च दध्यमत्रकम् ।
विलोक्य भग्नं स्वसुतस्य कर्म तद् जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥७॥

पयस्तु सुशृतं सम्यक् पक्वं तद**ुत्तार्य** भूमौ स्थापयित्वा **पुनः** सुशृतमिति प्रथममुत्सेक उत्तार्य पुनरधिश्रित्य ततः शृते पुनरुत्तारितवतीत्यर्थः. **प्रविश्य** मथनस्थानं, अनेनाङ्गणे पयोधिश्रितमिति ज्ञायते. बहिर्गृहे मन्थनं, तद्गृहं **प्रविश्य सन्दृश्य च दध्यमत्रकं भग्नममत्रकं** भाण्डं सम्यग् दृष्ट्वा, कर्तृकरणकर्मणां याथार्थ्यं, **च**कारात् नवनीताभावं च दधिमण्डप्रवाहं च. तत**स्तत्कर्म स्वसुतस्ये**ति च **सन्दृश्य** सम्यग् ज्ञात्वा लौकिकाविष्टचित्ता दैत्यानां निवारणात् **जहास** हास्यं कृतवती, न तु क्रोधम्. भगवांश्चेत् तत्रैव तिष्ठेत् न किञ्चित् कुर्यात्. तदा स्वस्यैवापराध इत्यतृप्तपरित्यागात् तूष्णीमेव तिष्ठेत् ॥७॥

टिप्पणी

आधिदैविकदैत्यानामिति. मातृदर्शनयोग्ये स्थाने भक्षणे तस्याः क्रोधो भवेत्, अतो यत्र भक्षणे कृते तदनुत्पादस्तत्र तथाकृतवानिति भावः॥६॥

प्रकाशः

उलूखलाङ्घ्रेरितिश्लोकं व्याकर्तुमारभन्ते **भगवानि**त्यादि. अत्र श्लोके द्वितीयः

लेखः

स्वयमपि **जघासे**त्यर्थः॥६॥

उलूखलाङ्घ्रेरित्यस्याभासमाहुः **भगवांश्चे**दित्यादिना. **अनुपयुक्तमि**ति दैत्या-

योजना

उत्तार्य गोपी सुशृतं पय इत्यत्र **जहास तं चापि न तत्र पश्यती**त्यस्य व्याख्याने **दैत्यानां निवारणात् जहास हास्यं कृतवती न तु क्रोधमि**ति. दधिभाण्डस्फोटने हि दैत्याविष्टपदार्थनाशोभूदतो दैत्यानां निवारणाद् भगवदुपरि वात्सल्यरस आविर्भूतः. अतो मत्पुत्र एतावत् कार्यं कर्तुं समर्थोभूदित्यानन्देन हास्यं जातं न तु क्रोध इति. दैत्यानां निवारणं चेत् न स्यात् तदा तन्नैकट्याद् दैत्यधर्मावेशे भगवदुपरि क्रोधः स्यात्. प्रकृते दैत्यनिवारणं भगवता कृतमित्यसत्सङ्गाभावात् न भगवदुपरि क्रोध इतिभावः ॥७॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिविस्थितम् ।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥८॥

भगवांस्तु रूढं तस्या लौकिकज्ञानं दूरीकर्तुं दृढमिति ज्ञापयितुं वा तस्यास्ताम-सभावोत्पत्त्यर्थं ततो गतः. तत्र च गत्वा पूर्वमपि दैत्यावेशेन यत् सम्पादितं **हैयङ्गवादिकं** तदपि **शिक्ये स्थितं कामं** यथेच्छं **मर्कटाय** प्रयच्छति. मर्कटोपि दंष्ट्रित्वात् क्रूरजन्तुर्हैयङ्गवमप्यनुपयुक्तं शिक्यं च निर्ऋतिपाशः स्वयं **चोलूखलाङ्घ्रे-रुपरि व्यवस्थितो** भवति. उलूखलं विपरीतं कृत्वा तत्र स्थितः. तेषां दोषनिवृत्त्यर्थं यज्ञपुरुषो भूत्वा "सुपर्णचयन" इव स्थितः. अग्नेर्नाभिरूपत्वादुलूखलस्य तदुपरि स्थितः स"न्नतिरिक्तमतिरिक्ताय प्रयच्छति रिक्तस्य शान्त्यै." ततो यशोदा अन्तः-प्रविश्य तथाभूतं पुत्रं दृष्टवतीत्याह**ोलूखलाङ्घ्रेरि**ति. पूर्वं तत्र भगवददर्शने मर्कटोपि न दृष्टस्तेन शङ्कापि, अतोन्वेषणमपि कर्तव्यं, अन्वेषणे पुनश्चित्तं भगवत्परं

टिप्पणी

मर्काय काममित्यत्र, पूर्वमपि दैत्यावेशेनेति – **पूर्वमपि यत्सम्पादितं** तन्मर्काय यच्छतीति सम्बन्धः. तत्र हैयङ्गवगतं हेतुमाहु**र्दैत्यावेशेने**ति. भक्तीय-(भोग्य!)पदार्थस्य स्वयमनङ्गीकारात्[1] क्रूरे विनियोगाच्च दुष्टत्वं लक्ष्यते. स चालौकिक एव दोषो वाच्यो, लौकिकस्यादर्शनात्. तदेतदुक्तं **दैत्ये**त्यादिना. शकट-

प्रकाशः

पादः प्रथमस्थानेस्तीति व्याख्यानवशात् प्रतिभाति. **लौकिकं ज्ञानमि**ति गृहाध्यासरूपं ज्ञानम्. **पूर्वमपी**त्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहुः **पूर्वमपी**त्यादि. सुबोधिन्यां **शिक्यं च निर्ऋतिपाश** इति "शिक्यमभ्युपदधाति नैऋतो वै पाश"इतिश्रुते-रितिभावः. **तेषामि**ति मातृचरणहैयङ्गवशिक्यानामित्यर्थः. अत्र **"सुपर्णचयन"**-इत्यादिकं शाखान्तरस्थं प्रमेयकल्पस्थं वेति ज्ञेयम्. **अग्नेरि**त्या"चुलूखलमुपदधात्येषा वा अग्नेर्नाभिरि"तितैत्तिरीयश्रुतेः. **मर्कटोपि न दृष्ट** इति 'तं चे'ति पूर्वश्लोकस्थस्य **च**कारस्यार्थ उक्तः. परं भगवच्चिह्नवत् मर्कटचिह्नानि दृष्टानीति ज्ञातव्यम्. अत

लेखः

विष्टत्वाद् भगवतोनुपयुक्तमित्यर्थः. **तेषामि**ति मर्कटानां क्रूरत्वदोषनिवृत्त्यर्थ-मित्यर्थः. यज्ञपुरुषदर्शने चित्तशुद्धिर्भवतीतिभावः. **अग्नेर्नाभिरूपत्वादि**ति. ननु

१. कारात् क्रूरे मू. पा.

जातमिति भगवन्तं दृष्टवती. दोषाणामप्रयोजकत्वज्ञापनायोलूखलं विपरीतं कृतं तदा सुपर्ण एव विपरीतः कृतो भवति. अतः सर्वदोषनाशकाग्नेरपि यत्र वैपरीत्यं तत्र दोषाणां किं वक्तव्यमिति ज्ञापितम्. **कामम**िति यथेच्छं, सन्देहाभावाद् देयमेव तत्. **ह्यं** गोः सम्बन्धि **हैयङ्गवं** पूर्वकालगोसम्बन्धि नवनीतम्. **चौर्ये** जाते **विशङ्किते ईक्षणे** यस्य. भगवता **चौर्यं** कृतमस्ति; तस्याश्चौर्यदोषनिवारणाय सर्वपतिरपि तथाभावोत्पादनाल्लोकानुसारेण नवनीतहरणं चौर्यमित्युच्यते. तत्र दोषदृष्टौ तस्या

टिप्पणी

दृष्टान्तेनान्यत्राप्येवंभूते दृष्टिः कार्येति नासम्भावना काचित्. **चौर्यविशङ्किते-क्षणमि**त्यत्र **तस्याश्चौर्यदोषनिवारणाये**ति. "पुत्रस्नेहस्नुते"ति वाक्यात् भगवदेक-भोग्यस्तन्यनिरोधश्चौर्यम्. तच्च तदीयवस्तुनो यथेच्छं विनियोगकरणेन सन्तोषान्नि-वार्यते. **वि**शब्दस्य कालवाचित्वपक्षमादायाहुः **तस्या ज्ञानं कालेने**ति. बालत्वं ज्ञात्वा

प्रकाश

एवाहु**स्तेन शङ्कापी**ति– भगवता मर्कटेन वा नाशितमितिशङ्का. यद्वा मर्कटचिह्नानां दर्शने किं भगवान् मर्कटभयात् पलाय्य गत उत क्रीडार्थमित्यु**भयथापि** तत्सहभावे तस्य दुष्टत्वाद् दूरीकरणमेव कर्तव्यमित्यन्वेषणस्यावश्यकत्वमाहु**रत** इति. **अपि**शब्दादनिवारणम्. नन्वन्वेषणमात्रेण दोषकृतभगवद्दर्शनप्रतिबन्धः कुतो नेत्याहु**र्दोषाणामि**त्यादि. तथा च यत्र भक्तिमार्गे मर्यादामार्गधर्मवैपरीत्यमपि करोति तत्र दोषदूरीकरणे कः सन्देह इतिभावः. **सन्देहाभावादि**ति तस्य हैयङ्गवस्य दुष्टत्व इत्यर्थः. **चौर्यदोषे**त्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहुः **पुत्रे**त्यादि. सुबोधिन्यां **सर्वपतिरि**ति चौरत्वेनात्रागत इतिशेषः. तत्र हेतु**स्तथे**त्यादि. **तस्या ज्ञानमि**त्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्विशब्दस्ये**त्यादि. **तथा व्यवहरतीति– तथे**ति चौरत्वेन **व्यवहरती**त्यतः कालेन नाश्यत इत्यतः शङ्कितमित्यर्थः. सुबोधिन्यामेतस्यैव पदस्य पुनरर्थद्वयमाहु**र्विशेषे**त्यादि. अत्रापि शङ्कायां तदेव बीजमित्याहु**रुभयथे**त्यादि ॥८॥

लेखः

क्रूराणां यज्ञपुरुषदर्शने कथमधिकार इत्यत आहुः **दोषाणामि**ति. **ह्यं गोः सम्बन्धी**ति– अव्ययानामाकृतिगणत्वाद् **ह्यमि**त्यव्ययं पूर्वकालवाचकं, तत्सम्बन्धिनी गौः ह्यंगौः तस्याः सम्बन्धीति तस्येदमित्यण्. चौर्यस्वरूपमाहुः **सर्वपतेरि**ति, इदं चौर्यं पूर्वोक्तप्रयोजनाय कृतमित्यर्थः. **तत्रे**ति दोषनिवारके भगवति **दोषदृष्टावि**त्यर्थः. **कालेन** बाललीलाकालेनेति टिप्पण्यनुसृतोर्थः; बालभावस्वीकारादेव दोषदृष्टिरि-

ज्ञानं कालेन नाशयत इति **विशेषाकारेण** वा **शङ्कितमीक्षणं** यस्य तथा भवति. **चौर्यविशङ्कितायां वेक्षणं** यस्य. उभयथापि तस्या ज्ञाननाशशङ्का. तादृशं स्वयं **निरीक्ष्य सुतं पश्चात्** पृष्ठभागे पृष्ठे च पश्यन्ती पापदृष्टिः **शनैरागमत्** ईषन्मात्रमागतवती, न हि पापदृष्टिः शीघ्रमागन्तुमर्हति ॥८॥

ततस्तां दृष्ट्वायोग्या स्प्रष्टुमिति ततो निर्गतवानित्याह **तामात्तयष्टिमि**ति.

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोवरुह्यापससार भीतवत् ।

गोप्यन्वधावन् न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥९॥

यष्टिरत्र गोवत्सनिवारिका, तस्या भगवत्यपि वत्सबुद्धिर्जाता. **आत्ता** गृहीता **यष्टि**र्यया. दर्शनादेव न पलायितवान् किन्तु तस्या अन्तर्गतं बाह्यं च भावं प्रकर्षेण सम्यग् दृष्ट्वा नैकट्यमपि नार्हतीति ज्ञात्वा तद्दोषपरिहारार्थं **त्वरासहितस्ततोव-रुह्यापससार** प्रतिमुखतयैव पलायनं कृतवान्. तस्या दोषेण स्वस्मिन् स्थितबालका-

टिप्पणी

तथा व्यवहरतीति तथा. "पृष्ठे कृतो मे यदधर्म" इति वाक्यात्पृष्ठभागदिशि पापस्था-नमिति तत्र व्याप्ता दृष्टिस्तद्विषयिणी भवत्येवेति भावेन **पापदृष्टिरि**त्युक्तम् ॥८॥

लेखः

तिभावः. तथा च चौर्ये जाते सति **वेः** कालात् **शङ्कितमीक्षणं** ज्ञानं **यस्ये**ति मूलार्थः, विषयता षष्ठ्यर्थः. विनश्यदवस्थाशङ्कापदार्थो ज्ञेयः. ईक्षणस्य ज्ञानेन्द्रियत्वात् ज्ञानरूपत्वम्. यद्यपि ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च तथापि बृहदारण्यके "चक्षुर्वै सत्यमि"त्युक्त्वा "चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद् यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयाता-महमद्राक्षमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमद्राक्षमिति तस्मा एव श्रद्दध्यामे" त्यनेन (बृ. ५।१४।४) चक्षुषो मुख्यत्वप्रतिपादनात् तस्यैव ज्ञानरूपत्वं सर्वत्रोच्यते इतिज्ञेयम्. विग्रहे **ईक्षणे** इति द्विवचनान्तमुक्तं, परोक्षवादेन तदर्थकथने तु ज्ञानपरत्वादेकवचनमेव युक्तमिति तथोक्तम्. **तथा भवती**ति भगवानितिशेषः. **चौर्ये**ति चौर्यशङ्कायुक्तायामित्यर्थः. अस्मिन् पक्षे चौर्यशङ्कामात्रं न तु वस्तुतश्चौर्यं सर्वपतित्वादितिभावः. **उभयथापी**ति– वस्तुतश्चौर्यपक्षे तात्पर्याज्ञानात् ज्ञाननाशः, चौर्यशङ्कापक्षे स्वरूपाज्ञानात् ज्ञाननाशः इत्यर्थः ॥८॥

तामात्तेत्यत्र **तद्दोषे**ति– तत्रैव स्थितौ तत्कृतो विरुद्धक्रियारूपो दोषः स्यात्, ताडनादि कुर्यादित्यर्थः. **तस्या दोषेणे**ति कर्तरि षष्ठी. तत्कृतेन क्रियारूपदोषेण बालकाः क्लिष्टा भविष्यन्ति, भगवत्स्वरूपे तु न भयमितिभावः॥९॥

मपि दोषो भविष्यतीति ज्ञापयितुं दृष्टान्तमाह **भीतवत्**– यथा भीतस्तदपकारं स्वस्मिन् जानाति तथा भगवानपि तद्दोषं स्वस्मिन् विचारितवान्. अनेनैव न भीत इति ज्ञापितम्. सापि **गोपी,** अतोऽ**न्वधावत् अनु**पश्चाद् धावनं कृतवती. तस्या अविवेकं प्रकटयितुं शुको भगवन्तं विशिनष्टि– **यं** भगवन्तं **योगिनां** सिद्धयोगानां निवृत्तदोषं **मनस्**तत्रापि **तपसेरितं** प्रेरितं धर्मेण संस्कृतमपि **प्रवेष्टुं नाप** न प्राप्तवत्. अत इयमप्यर्थादेव न प्राप्तवतीत्यर्थः ॥९॥

एवं भगवति दोषदर्शने भगवदीयोपि भगवन्तं न प्राप्नोतीत्युक्तं, तादृशेपि भगवान् कृपां करोतीति भगवत्कृपया भगवन्तं स्पृष्टवतीत्याह**ान्वञ्चमाने**ति.

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।

जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृषत् ॥१०॥

प्रतिकूलोपि भगवदर्थं श्रमः सार्थकः. **श्रोणी अन्वञ्चमाना** श्रोण्योराकर्षणं कुर्वन्ती रथाकर्षणे बलीवर्दवद् भाराक्रान्तगतिर्जाता, **भरेण भारेणाक्रान्ता गति**र्यस्या; दुष्टा गतिर्भरिणैवाक्रान्ता. ततो बुद्धिरपि दोषादेर्निवृत्ता गमनार्थमेव प्रवृत्ता, तदाह **सुमध्यमे**ति. **जननी**तिवचनात् सदुग्धयोः स्तनयोरपि भारः सूचितः, जननीत्वाच्च न वर्णितः, वस्तुतस्त्वजननी; जननी न काचिदप्येवं करोति. **सुमध्यमे**त्यनेन मध्ये भक्ता बहिर्व्यामोहिता, परं दुष्टभावाद् भारेण गत्याक्रमणमुक्त्वा शोभनमध्यभावं वदंस्तस्या दोषाभावं गुणं चोक्तवान्. अभिमानाभावार्थं चाह **जवेने**ति– वेगेन **विशेषेण स्रंसितानि केशबन्धाच्च्युतानि प्रसूनानि** तेषा**मनु** पश्चाद् **गति**र्यस्याः.

प्रकाशः

अन्वञ्चमानेत्यत्र. "श्रोण सङ्घाते"इतिधातोः श्रोण्यते संहन्यत इति श्रोणिरिन्प्रत्यये कृते भवति. ततः "सर्वतोक्तिन्नर्थादित्येक" इत्यनेन ङीषीकृते **श्रोणी**ति भवति. **तत** इति भाराक्रान्तगत्या जाततपस्त इत्यर्थः. **वस्तुतस्त्वजननी**ति पुरुषोत्तमस्याजन्यत्वात् तथेत्यर्थः. **दुष्टभावादि**ति दुष्टत्वाद् बहिर्व्यापारस्येत्यर्थः. **वदन्नि**ति दोषाभावादेर्विशेषणम्. **उत्पत्ती**त्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहुः **कशब्दे**त्यादि. **तत**

लेखः

अन्वञ्चमानेत्यत्र **श्रोणी**ति द्वितीयाद्विवचनान्तं ज्ञेयम्. **वस्तुतस्त्वि**ति आत्मजत्वस्य वासुदेवपर्यवसायित्वेन पञ्चमाध्याये व्यवस्थापितत्वादितिभावः. एतद्भावस्य पुरुषोत्तमपर्यवसायित्वे "भक्त्या त्वनन्यये" तिवाक्यात् निरुपधिभावः स्यादेवेत्याहुः **जननी**ति. अत एव व्रजरत्नानां तथेतिभावः. **भगवदर्थक्रियये**ति

पुष्पाण्यपि सङ्गे चलन्ति. प्रकृष्टा सूना येषां तानि प्रसूनानि. उत्तारणमात्रेणैव ते नश्यन्तीतिदेवाद्यर्थं च तेषां सूना, तान्यपि बद्ध्वा स्थापितवती. तानि च पुनः केशबन्धाद् विगलितानि. उत्पत्तिप्रलयौ तदधिष्ठात्र्यौ देवते च तत्रैव सम्बद्धे, तद्रूपाणां च बन्धनं यत्र, ततस्तु मुक्ता न पुनर्जन्मभाजः. ततो मोक्षश्च भगवदर्थ-क्रियया. अतः केशानामपि बन्धविमोचकस्तत एव विस्रंसितः केशबन्धस्ततश्च्यु-तानि प्रसूनानि. एतस्या दोषाभावो गुणो मुक्तानुगतिश्चेति धर्मत्रयेण भगवन्तं **परामृषत्** परितो धृतवती, आलिङ्गितवतीत्यर्थः ॥१०॥

तस्या दोषभावं दृष्ट्वा भगवान् रोदिति तस्या विवेकभ्रंशलक्षणमपराधं च कृतवान्. यशोदाबुद्ध्या तु भाण्डभेदनमपराधः. अत्यन्तमौढ्यदोषनिवृत्त्यर्थं च ज्ञानशक्तेर्घर्षणमपि करोति. ज्ञानशक्तिस्तु भगवत्कृत्यैव सोज्ज्वला भवति, "यथायथात्मा परिमृज्यत" इतिवाक्यात्. यशोदाया निरोधः सर्वथा व्यर्थो मा भवत्विति स्वकार्यं तद्भावं च दृष्ट्वा **भयेन विह्वले ईक्षणे** यस्य– सोपाधिकं निरुपाधिकं च ज्ञानं तस्या गमिष्यत इति विह्वलता.

एवं परमकृपालुं गृहीत्वा यत् कृतवती तदाह **कृतागसमि**ति.

टिप्पणी

विस्रंसितकेशबन्धनेत्यत्र, **उत्पत्तिप्रलयावि**त्यादि. कशब्देशशब्दयोरुत्पत्ति-लयाधिष्ठातृदेववाचकत्वात्तद्वाच्यत्वात्केशानां तयोस्तत्र सत्त्वं ज्ञायते, तत्सत्त्वेनैव तदधिष्ठेयोत्पत्तिलययोरपि. एतादृशान्मुक्तानां युक्तमेवाजननम्, अन्यथा स्वाधिष्ठातृसहितोत्पत्तिलयाधिष्ठानाच्च्युतिर्न स्यादिति भावः. **तत** इति तादृशानां बन्धादित्यर्थः ॥१०॥

प्रकाशः

एवेत्यस्यार्थमाहु**स्तादृशानामि**त्यादि ॥१०॥

लेखः

क्रियावैपरीत्यं तु **प्रतिकूलोपि भगवदर्थं श्रमः सार्थक** इत्यनेन पूर्वमेव समाहितम्. **अत** इति उत्पत्तिलयाधिष्ठातृदेवानामपि बन्धविमोको भगवदर्थक्रियातो जायते **तत एव** हेतोरत्रापि केशबन्धः क्रियया विस्रंसितो जात इत्यर्थः. "स्वर्गे तपोहमि"ति वाक्ये उत्पत्तिलयकर्तॄणां बहुत्वमुक्तमतः **केशानामपी**ति बहुवचनमुक्तम्. ब्रह्मादीनामपि भक्तानामेव मोक्ष इति निबन्धे व्यवस्थापितम् ॥१०॥

सोज्ज्वलेति– उज्ज्वलादिशब्दा गुणवाचका अपि, अत उज्ज्वलवर्णसहिते-

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणा भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥११॥

कृत आगोपराधो येन. कोयमपराध इत्याकाङ्क्षायामाह **तमि**ति व्यामोहकम्. यशोदाबुद्धौ तु भाण्डभेत्तारम्. यद्यपि स्वयमीश्वरो, न कोप्यपराधो भवति, तथाप्येषा व्यामोहिका लीला. तामत्यन्तं व्यामोहितवान्, यथाग्र उत्तरलीलासु प्रतिबन्धिका न भवति; अन्यथात्यन्तमासक्ताग्रिमकार्ये प्रतिबन्धिकैव स्यात्.

तच्चासुराणां मोहाय सतामपि च कुत्रचित् ॥

"सा मां विमोहयति भीरपि यद् बिभेती"तिवाक्यात् निदानाज्ञानाच्च मोहः. लोकदृष्ट्या मारयिष्यतीति **प्रकर्षेण रोदनं,** इदमपि द्वितीयं व्यामोहकम्. **अक्षिणी**

प्रकाशः

कृतागसमित्यत्र. **स्वकार्यमि**ति निरोधम्. **तच्चे**ति व्यामोहकलीलाकरणम्. सतां विमोहे प्रमाणमाहुः **'सा मामि'**ति, इदं वाक्यं तु कुन्त्याः प्रथमस्कन्धीयम्. **मोह**

लेखः

त्यर्थः. **सोपाधिकमि**ति पुत्रत्वेन ज्ञानं रूपप्रकरणोक्तमित्यर्थः. **निरुपाधिकमि**ति ज्ञानप्रकरणोक्तमित्यर्थः.

व्याख्याने **व्यामोहितवानि**ति भगवानितिशेषः. **इदमपी**ति रोदनमित्यर्थः.

योजना

कृतागसं तं प्ररुदन्तमित्यस्य विवृतौ **तामत्यन्तं व्यामोहितवानि**ति भगवानितिशेषः; भगवांस्तां आसक्तिन्यूनतासम्पादनेन व्यामोहितवानित्यर्थः. **यथाग्र उत्तरलीलास्वि**ति– श्रीयशोदानयनगोचरदेशतोतिरिक्तदेशसम्बन्धिन्यो या गोचारणादिलीलास्तास्वित्यर्थः. **अन्यथे**त्यादि. यदि मोहं कृत्वासक्तिन्यूनतां न सम्पादयेत् तदा परमासक्तिवशाद् भगवन्तं स्वनिकट एव स्थापयेत्. तथा सति भगवान् व्रजवरसुन्दरीणां मनोरथपूरणसमर्थां लीलां कथं कुर्यात्? अतो भगवान् स्वमातुः स्वस्मिन्नासक्तिन्यूनतां सम्पादितवान्. तदा मातृदूरस्थित्या शृङ्गारलीला-सौकर्यमभूदितिभावः. तदेतदुक्तं **अग्रिमकार्ये प्रतिबन्धिकैव स्यादि**ति ॥११॥

कारिकार्थः

कृतागसं तमित्यत्र, **तच्चासुराणां मोहाय सतामपि च कुत्रचिदि**ति. **तद्** रोदनादिक**मासुराणां मोहाय** क्वचित् **सतामपि मोहाय.** तथाच प्रथमस्कन्धे कुन्तीवाक्यं "सा मां विमोहयति भीरपि यद् बिभेती"ति ($१३\frac{१}{२}$).

कषन्तमिति बालभावदार्ढ्यकरणम्. पूर्वं कृतमोहस्य दार्ढ्यार्थम**ञ्जनं** शोभार्थं तयैव कृतम्; अञ्जनसाधनीभूत**मषीयुक्ते अक्षिणी. स्वपाणिने**ति पर्यायेणैकेनैव पाणिना. भगवदीयक्रिययैव भक्तिरूपया नयनमुज्ज्वलं न भवतीति **कषन्तमि**ति, तत्रत्या कण्डूरपि नाशिता. तेन रजोगुणोपि शामितो मारणसाधनीभूत:. अत एव तिष्ठन्नपि भगवांस्तादृशचेष्टया स्थितस्तां न दृष्टवान्. सैव पुनस्त**मुद्वीक्षमाणो**र्ध्वं विलोकयन्ती, न तु पादौ; तथा सति भक्तिर्वा भवेत्. भगवांस्तु परित: स्थिता गोपी: पश्यति. तासामपि दोषारोपाभावार्थं भयम्; अन्त:स्थितोप्ययं भावो मोहनार्थमेव प्रकटित:. एवं त्रिभिर्धर्मै: सा मोहिता नात: परमुत्थास्यति. अत एवाग्रेस्या: कापि स्नेहकला

प्रकाशः

इति कुन्त्या मोह:. एकपाणिघर्षणतात्पर्यमाहु**र्भगवदीये**त्यादि. **उज्ज्वलं** भगवत्स्वरूपग्रहणसमर्थम्. **भयविह्वलेक्षणमि**त्यस्य तात्पर्यान्तरमाहु**र्भगवांस्त्वि**त्यादिना. **त्रिभिधर्मैरि**त्यादि – रोदनाक्षिकषणदर्शनाभावै:. **मोहिता** मत्पुत्र एवायमिति दृढभाववती **नोत्थास्यति** न भगवत्त्वादिभाववती भविष्यतीत्यर्थ:. यद्वोक्तैर्धर्मैर्मोहिता गृहकार्य आसज्जिता न पुत्रस्नेहं पूर्ववदत्यन्तं करिष्यतीत्यर्थ:. द्वितीये मानमाहु**रत एवे**त्या**द्युक्त** इत्यन्तम्. कालीयदमनोत्तरं "या परिष्वज्याङ्कमारोप्ये"त्यादिनोक्ता स्नेहकला, सापि परीक्षामात्रोपयोगिनीति ज्ञेयम्. तत्र हेतु**र्नन्दस्यैव मुख्यत्वा**दिति, प्रमाणप्रकरणीयलीलाया: पुरुषनिरोधकत्वात् तथेत्यर्थ:. अत एव ब्रह्मवैवर्ते श्रीनन्दानामेतासामुपरि त्वया बालकस्यैवमपराध: कृत इत्युक्तिपर्यन्त: क्रोधोद्रेके गृहीत्वा भगवदालिङ्गनं चोक्तम्. प्रथमपक्षे तु **स्नेहकले**तीश्वरत्व-

लेखः

तमित्यनेन परामृष्टं पूर्वोक्तं स्मितं प्रथमं व्यामोहकमितिभाव:. **अञ्जन्मषिणी**त्यत्र अञ्जन्ती मषी ययोरितिविग्रह:. अञ्जन्तीत्यत्र करणस्य कर्तृत्वविवक्षया शतृप्रत्यय:. **अत एवेति**– अक्ष्णोर्मारणसाधनीभूतरजोगुणयुक्तत्वाद् दर्शने तस्या अन्यथाभाव: सम्पद्येत**तात एव** हेतोरित्यर्थ:. **भक्तिर्वा भवेदि**ति– धूलिधूसरितश्रममुकुलितचरणारविन्ददर्शने स्नेहभरेणाङ्कमेवारोहयेदितिभाव:. **त्रिभिर्धर्मैरि**ति– पूर्वोक्तं स्मितमेतच्छ्लोकोक्तं रोदनं, भयं चेत्यर्थ:. **नात: परमुत्थास्यती**ति– पूर्वं ज्ञानप्रकरणे सर्वात्मभावावधिस्नेहो जनितस्ततो मोहिता सर्वात्मभावं न प्राप्स्यति किन्तु रूपप्रकरणसम्पादितस्वविषयकाध्यासरहितपुत्रत्वोपाधिकस्नेहे एव पर्यवसिता भविष्यतीतिभाव:. **कापि स्नेहकलेति**, निरुपधिस्नेहांश: कोप्यग्रे न निरूपित इत्यर्थ:.

न निरूपिता. "श्रुण्वन्त्यश्रूण्यवाम्राक्षीदि"ति तु गुणानां माहात्म्यं; "जनन्युपहृतं प्राश्य" "तत्कथाश्रवणोत्सुके"त्यादि तु रोहिणीसहभावात् तस्या अपि भावोस्यां सङ्क्रान्त उक्त:, नन्दस्यैव मुख्यत्वात्. एतादृशी भगवत: सर्वाङ्गसम्बन्धं परित्यज्य **हस्ते गृहीत्वा भिषयन्ती** भीषय**न्त्यवगुरत्** आगूरणसङ्कल्पं कृतवती; यथा पामरा अनिष्टागूरणानि कुर्वन्ति. अनेन तस्या अनृतवादित्वमपि निरूपितम् ॥११॥

तत: किं कृतवतीत्याकाङ्क्षायामाह **त्यक्त्वा यष्टिमि**ति.

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ॥१२॥

अनेन पूर्वं यष्टिरानीतेति लक्ष्यते, तेन मनोदुष्टा. मन:सङ्कल्पं च त्यक्तवती, तेन मनोदोषस्य गतत्वात् चिकित्स्यत्रिदोषा जातेति निरूपयति. **यष्टिं त्यक्त्वा सुतं भीतं विज्ञाय** भगवद्धर्मानपि ज्ञा**त्वार्भकवत्सला** जाता. तथापि तस्या न सर्वात्मना दोषनिवृत्तिनित्याह**इयेषे**ति. निरूपकस्यापि दोषो भवतीति शुको भीत: सन्नाह **किले**ति– प्रसिद्धिरेषा, नास्माभिस्तदा दृष्टं नापि भावितं कदाचिदपि. **दाम्ना बद्धुमियेषे**त्यन्त:करणशरीरपरिकरदोषा निरूपिता:. नन्वसाध्ये कथं प्रवृत्ता? लोके-

---

प्रकाशः

भावोपमर्दिका पुत्रत्वस्नेहकलेत्यर्थो ज्ञेय:. **श्रुण्वन्ती**त्यादि तु तादृक्कृतिमसहमानैरुक्तमन्यथा "नेमं विरिञ्च्य"इत्यादिग्रन्थस्य, कालीयदमनोत्तरं"परिष्वज्याङ्कमारोप्ये"त्यस्य, हस्तादुत्तारितगोवर्धनस्य भगवत आलिङ्गननिरूपकश्लोकव्याख्यानस्य च विरोध: स्यात्. तयो:[1] पक्षयोर्मध्ये यद्वृतं तत् त एव विदुरितिदिक्. **अवागुरद्** गुरी उद्यमनेऽवागुरणं ताडनोद्योगो, "यो ब्राह्मणायावगुरेदि"त्यत्र सायणीये तथाव्याख्यानादिति. एवं द्वाभ्यां वशीकरणोद्यमो व्याख्यात: ॥११॥

लेखः

अग्रिमवाक्येषु निरुपधिभाव उक्त इत्याशङ्क्य समाहितम् **अनिष्टेति**– **अनिष्टानां** मारयिष्यामीत्यादिवाक्याना**मागूरणानि** कथनानीत्यर्थ:॥११॥

त्यक्त्वा यष्टिमित्यत्र **अनेने**ति. पूर्वमात्तयष्टिकथनेनात्र यष्टित्यागकथनेन चानयनमपि लक्षितमेवेत्यर्थ:. **भगवद्धर्मानपी**ति भयादीनित्यर्थ्:, अनुपदोक्तस्यैव विवरणमिदम् ॥१२॥

---

१. एतयो:.

निष्टेपि प्रवर्तमाना असाध्ये न प्रवर्तन्त इति तत्राह**ातद्वीर्यकोविदे**ति– तस्य भगवतो वीर्यं न जानातीति; पूतनातृणावर्तादयो मारिताः, कोस्या मारणे प्रयास इति ॥१२॥

योजना

दाम्नातद्वीर्यकोविदेत्यस्य विवृतौ **पूतनातृणावर्तादयो मारिताः कोस्या मारणे प्रयास इती**ति. इदमत्र हार्दं– न ह्यत्र श्रीयशोदाया अपराधवशात् मारणयोग्यता निरूप्यते अपि तु भगवतो वीर्यस्वरूपमुच्यते **पूतनातृणावर्तादयो मारिता** इति. **कोस्या मारणे प्रयास** इति तु वीर्यकोविदानां शुकादीनां ज्ञानम्. इह तु **अतद्वीर्यकोविदे**त्युक्त्या एतादृक् ज्ञानं श्रीयशोदाया नाभूदित्युक्तं, वीर्यज्ञाने तु भयं स्यात्– पूतनातृणावर्तादयो मारिता मामपि मारयेदिति. तथा सति बाललीलैव न स्यात्, भयस्य प्रतिबन्धकत्वात्. अत एव तादृगैश्वर्यख्यापिकां लीलां कृत्वापि माहात्म्यज्ञानं तिरोभावयति, "वैष्णवीं व्यतनोत् मायां प्रजास्नेहमयीं विभुरि"-तिवाक्यात्. प्रकृते**ष्यतद्वीर्यकोविदै**व प्रभुणा कृता, न तु माहात्म्यज्ञानमुत्पादितम्. तथा सति बन्धनमेव न कुर्यात्. **पूतनातृणावर्तादयो मारिताः कोस्या मारणे प्रयास** इति तु भयस्वरूपं विवृतं, यदि महिमज्ञानं स्यात् तदा वीर्यज्ञानेन एतादृशं भयं स्यादिति. **अतद्विर्यकोविदा**त्वोक्त्या तु भयं नाभूदित्युक्तं, तत् तु भगवतैव बाललीलाचिकीर्षुणा तथा कृतमिति अतद्वीर्यकोविदात्वं भूषणाय न तु दूषणायेति ज्ञेयम्.

अत्र प्रसङ्गे सुबोधिन्यां "यथा पामरा अनिष्टागूरणं कुर्वन्ती"त्यादिकथनं 'मनोदुष्टे'त्यादिकथनं "शुकोपि तां दूषयन्निवे"त्यादिकथनं आध्यात्मिकपक्षेण पुष्टिभक्तानां शिक्षार्थमिति ज्ञेयम्. तत्र मूलं तु 'दाम्नातद्वीर्यकोविदे'त्यादिशुकोक्ता निन्दा. यत्र श्रीयशोदायाः भगवत्यन्यथादृष्टौ एतादृशी निन्दा तत्रान्यस्य का वार्तेति कैमुत्यद्योतनार्थं एतावान् व्याख्याविस्तारः. एतावता भगवति अन्यथादृष्टिर्न कार्या अपि तु महिमज्ञानेन स्नेहपूर्वकं सेवैव कार्येत्युपदेशः फलितः. इदं त्ववधेयं– इह भगवत्स्वरूपमाहात्म्यविचारेण तदजानता मातृचरणानां निन्दा. स्वरूपज्ञानं तु मर्यादायां, श्रीयशोदायास्तु शुद्धपुष्टिमार्गीयत्वात् भगवद्बन्धनं परमोत्कर्षाधायकम्. अत एव "कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते" इति तत्त्वदीपे पुष्टिभक्तिलक्षणमुक्तं, "यथा दामोदरलीलायाम्" इति व्याख्यातं च. वेणुगीताध्याये च "दामोदराधरसुधामपि गोपिकानामि"त्यस्य विवृतौ "भगवतो गोपिकाधीनत्वं सूचितमि"त्यनेन च परमोत्कर्ष एव प्रतिपादितः. अत एवाग्रे शुकोपि "नेमं विरञ्चो

शुकोपि तां दूषयन्निव बन्धाभावे परमार्थतो युक्तिं प्रदर्शयति **न चान्तरि**ति.

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥१३॥

भगवति बन्धाभावो द्वेधापि भवति– भगवत्स्वरूपविचारेण बन्धनसाधन-स्वरूपविचारेण च. तत्रादौ स्वरूपं विचारयति. बन्धनं हि कार्यद्वयं सम्पादयति– बहिर्निरोधमन्तस्तापं च. तत् तस्यैव भवति यस्यान्तर्बहिर्भावो भवति. भगवांस्तु पूर्णः सर्वं व्याप्य तिष्ठतीति **न** कस्मादपि भगवा**नन्त**र्भवति निरवयवत्वाच्च न कोपि तस्य परिच्छेदकः. **चकारादन्तः**शब्दव्यवहार्य आकाशोतः स शब्दोपि भगवति न

प्रकाशः

न चान्तरित्यत्र **यस्यान्तर्नास्ती**त्यस्यार्थो यस्यान्तर्व्यवहारविषयत्वं नास्तीति. तदुपपादयन्ति **भगवांस्त्वि**त्यादि. ननु घट आकाशस्येवान्तर्भावो व्यापकत्वेपि सम्भवतीत्यत आहु**र्निरवयवत्वा**दित्यादि. "न वियदश्रुतेरि"त्यधिकरण आकाशस्यापि सावयवत्वं सिद्धमिति तस्य परिच्छेदको घटादिर्भवति यन्मते निरवयवस्तन्मतेपि घटादेस्तद्भिन्नत्वात् प्रदेशपरिच्छेदकत्वं घटादेः सम्भवति; न तथा भगवतीति तथेत्यर्थः. तर्हि स्वयमे**वान्तः**शब्दवाच्योस्त्विति कथं तदभाव इत्यत आहु**श्चकारा**दित्यादि. नन्वन्तर्यामिब्राह्मणे "यः पृथिव्यां तिष्ठन् यः पृथिवीमन्तर"

लेखः

न चान्तरित्यत्र **न कस्मादपी**ति, भगवतोन्तः कस्याप्यभावात् किञ्चिन्निरू-पितान्तस्त्वयुक्तो भगवान् नेत्यर्थः. मूले **अन्तरा**दिशब्दा भावप्रधाना ज्ञेयाः. ननु यथा गृहस्थितैर्भित्त्यादिभिर्गृहमर्धं परिच्छिद्यते तथा भगवत्स्थितैर्हस्तपादादिभिर्भगव-त्परिच्छेदे तन्निरूपितमन्तस्त्वं सिद्धमेवेत्यत आहुः **निरवयवत्वाच्चे**ति; हस्तादि-भावापन्नं स्वरूपमेव, न त्ववयवावयविभावस्तत्रेत्यर्थः. **आधारत्वे त्विति तु**रप्यर्थे,

योजना

न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया" इत्यादिना श्रीयशोदायाः परममहिमानं प्रदर्श्य पुष्टिभक्तिमार्गे प्रस्तोष्यति. तथा चाध्यात्मिकपक्षे निन्दामुक्त्वाधिदैविकपक्षे स्तुतिरेवेति शुकस्य तद्वाक्यव्याख्यातुर्भगवतः सुबोधिनीकारस्य निगूढ आशयो विद्वद्भिर्भावनीयः– आध्यात्मिकपक्षे वस्तुविचारो मर्यादया, आधिदैविकपक्षस्तु लीलाप्रधानो वस्त्वनुभवसाधकः पुष्टिमार्गेणेति विवेकः॥१२॥

न चान्तर्न बहिरित्यस्य विवृतौ **चकारा**दित्यादि, **चकारात् स शब्दोऽपि**

प्रवर्तत इत्युक्तम्. अन्तर्यामिब्राह्मणे सर्वान्तरो भगवानुक्तो न तु भगवतोन्तरं क्वचित् (कच्चित्!). सर्वान्तरः केनान्तर्भावमापद्येत? आधारत्वे तु नान्तरभावना, रूपादिषु तथोपलब्धेः. न हि फलस्यान्तः स्वरूपं तिष्ठति बीजवत्, तथा सत्यदृश्यः स्यात्.

प्रकाशः

इत्यादिभिर्भगवतोन्तस्त्वमुक्तमिति कथं निषिध्यत इत्यत आहु**रन्तरि**त्यादि. अन्तरं भेदः, तथा च यद्यपि तत्र सर्वान्तरत्वकथनेनान्तर्व्यवहारविषयत्वं सिध्यति तथापि भेदस्तु नोक्त इत्यन्तर्वर्तमानोपि तं तमन्तरयति तं स्वस्मिन् स्थापयतीति स तादृशः **केन** हेतु**नान्तर्भावमापद्येत** न केनापीति नान्तरित्यर्थः. ननु तत्र पृथिव्यादीनामाधारत्वमुक्तमित्याधेयस्य भगवतः कथं नान्तःस्थितत्वमित्यत आहु**राधारत्वे त्वि**त्यादि. **तु**रप्यर्थे, तथा चान्तरत्वेपि नान्तरत्वेन तत्र भावनोक्तेति नान्तरित्यर्थः. ननु भवतु तथा भावनाभावस्तथापि **नान्तरि**त्यत्र का युक्तिरित्यत आहू **रूपे**त्यादि. तथा च यद्यन्तः स्याद् रूपादिवद् बहिर्नोपलभ्येतोपलभ्यते तु सद्रूपेण बहिरपीत्यतो नान्तरित्यर्थः. तदेतदुपपादयन्ति **न ही**त्यादि. तर्हि बहिष्ट्वमस्त्विति तदपि निषेधति **नापी**त्यादि. तथा च यः सर्वान्तरः सर्वानन्तरयति

लेखः

तदाप्यन्तस्त्वं नास्तीत्यर्थः. नन्वाधेयनिरूपितमन्तस्त्वं आधारस्य जायत इत्याशङ्क्य नायं नियम इत्याशयेनाहुः **रूपादिष्वि**ति. फले बीजनिरूपितान्तस्त्ववद् रूपनिरूपि- तमन्तस्त्वं नास्ति किन्त्वन्तबर्हिर्व्याप्तिं रूपमस्ति. तन्निरूपितान्तस्त्वे बहीरूपाभावात्

योजना

भगवति न प्रवर्तत इत्युक्तमित्यन्वयः. **अन्तःशब्दव्यवहार्य आकाश** इति, अन्तस्त्वबहिष्ट्वव्यवहारस्याकाशाधीनत्वादन्तःशब्दव्यवहार्यत्वमाकाशे. **अतः स शब्दोपी**ति अन्तःशब्दोपीत्यर्थः. **न चान्तर्न बहिरि**त्यनेनान्तस्त्वनिषेधादन्तःशब्द- व्यवहार्यत्वमाकाशे, **अतः स** अन्तः **शब्दोपि न भगवति प्रवर्तत** इत्यर्थः. **आधारत्वे त्वि**त्यादि. "सेतुर्विधरण" इतिश्रुतेः सर्वाधारत्वं यद्यपि भगवतस्तथापि भगवति सर्वमस्तीति वक्तुं युक्तं, न तु भगवतः अन्तस्त्वमस्ति. तत्र दृष्टान्तः **रूपादिष्वि**त्यादि, घटादीनां रूपाधारत्वेपि न घटान्तर्वर्ति रूपम्. **तथा सत्यदृश्यः स्यादि**ति– रूपस्य घटान्तर्वर्तित्वे चक्षुरग्राह्यत्वे नीरूपद्रव्यस्य चाक्षुषत्वं न स्यात्. न हि फलान्तर्वर्तीनि बीजानि फलग्रहणे चक्षुर्ग्राह्याणि भवन्ति. एवं घटान्तर्वर्ति रूपमपि चक्षुरग्राह्यं स्यात्. अत आधारत्वेपि अन्तर्वर्तित्वं न वक्तुं शक्यमतो भगवतो जगदाधारत्वेपि

अतो न केनाप्यंशेन भगवतोन्तरमस्ति. **नापि बहिः,** व्यापकत्वात्, बहिःस्थित एवाकाशोन्तस्तिष्ठतीति नाकाशाद् बहिरस्ति किञ्चित्. अनेनान्तःकरणे खेदो बहिरावरणं वा नास्तीत्युक्तम्. किञ्च बन्धनं हि वेष्टनात्मकं, तद् दिग्विभागे सति भवति. निरवयवस्यानिरूप्यस्य स्वत एव भासमानस्य ज्ञातृज्ञेयभावतिरोधायकस्य केनाप्यंशेन **पूर्वभावोपरभावो** वा **न** सम्भवति. अनेनैव दक्षिणोत्तरभावा अपि परिहृताः. सर्वत्र स्थितः पूर्वापरभावमेव (न!) मन्यते. अतः स्वरूपकृता वा दिक्कृता वान्तरादिधर्मा भगवति न सन्तीति न बन्धसम्भावना. साधनस्वरूपविचारेणापि न भवतीत्याह **पूर्वापरमि**ति. रज्ज्वादिनां पूर्वभागे परभागे चायमेव वर्तते. तत्र यशोदैव प्रमाणं, भगवति सर्वं दृष्टवती यतः. सर्वस्यापि भगवान् **बहिर**पि भवति व्यापकत्वात्, **अन्तर**पि भवति सर्वान्तरत्वात्, **चकारा**त् स्वरूपमपि. किञ्च **जगतो**

प्रकाशः

सर्वत्रानुस्यूतश्च स कथं तथा स्यादित्यर्थः. यद्वा "यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानं वैश्वानरमुपास्त" इति जाबालोपनिषत्स्वपि प्रादेशमात्रस्य व्यापकत्वमुक्तमिति विरुद्धधर्माश्रयत्वेन वैश्वानराधिकरण उपपादितत्वादपि न विरोध इत्यर्थः. सिद्धमाहु**रनेने**त्यादि, **अनेने**त्यन्तस्त्वबहिष्ट्वाभावेन. पूर्वापरभावनिराकरणं व्याकुर्वन्ति **किञ्चे**त्यादि. अत्र **निरवयवस्ये**त्यादीनि चत्वार्यपि विशेषणानि प्रत्यक्षस्यैव भगवतो ज्ञेयानि– कृत्स्नस्यैव प्रज्ञानघनत्वात्, स्वेच्छयैव व्यवहार्यत्वेन वागादिनिवृत्त्यवधित्वात्, **स्वत एव भासमानस्य** "यदाश्रयं येन यतः प्रतीयत" इत्यत्र सिद्धत्वात्, "तत् केन कं पश्येदि"तिश्रुत्युक्त**ज्ञातृज्ञेयभावतिरोधायक**ताया अपि तत एव सिद्धत्वादिति. तेन यस्य पूर्वं न भगवत्स्वरूपज्ञानमस्ति पश्चाच्च जातं तत्र तद्भावापेक्षिकं पौर्वापर्यं यद्यप्यस्ति तदपि तदज्ञानाज्ञानकृतं न तु स्वरूपकृतमिति न दोषः. दक्षिणोत्तरा- दिभावाभावे हेतुमाहुः **सर्वत्र स्थित** इत्यादि. तत्तद्देशेषु यस्तिष्ठति तस्य पूर्वापरभावो भवति, भगवांस्तु सर्वरूपत्वात् न कुत्रापि तिष्ठतीति न तथात्वं वक्तुं शक्यमित्यर्थः. यद्वा **पूर्वापर**पदार्थ एवात्रोच्यते, **सर्वत्र** स्वरूपात्मके देशे स्वयमेव **स्थितः** सन् स्वस्यैव पूर्वापररूपत्वं **मन्यत** इत्यर्थः. तेन सिद्धमाहु**रत** इत्यादि. जगत एतावत्त्वं

लेखः

फलरूपः पदार्थो**ऽदृश्यः स्यादि**त्यर्थः. **अनिरूप्यस्ये**ति देशादिभिरितिशेषः. **सर्वत्रे**ति, पूर्वापरभावस्यैव विशेषतो व्यवहार्यत्वात् स एवोक्त इत्यर्थः. **स्वरूपमपी**ति

य एतावान्. यतो जायते गच्छति चेति **जगत्,** यदि भगवानेतावन्न स्यात् कथं जगद् भवेत्? पूर्वभावाभावे न भवेत्, परभावाभावे न गच्छेत्. जगतश्चेद् भगवान् बहिर्न भवेद् जगति गच्छति गच्छेद्. यदि सर्वान्तरो न भवेद् **जगद**ितिविशिष्टं सर्वप्रतीतिसिद्धं न भवेत्, अन्तःस्थितभगवद्धर्मैरेव जगतो विवक्षितधर्मवत्त्वात्. किञ्च **यो जगत्,** न हि स्वात्मना स्वयं बद्धो भवति, तथा सति बन्धकानां वैयर्थ्यापत्तेः. किञ्च [1]जगन्मयोयं सर्वमेव जगद् व्याप्य तिष्ठति, एतदाज्ञयैव जगत् कार्यं करोति. ततः कथमयं स्वबन्धने जगत् प्रेरयेत्? अतो न केनापि प्रकारेण

टिप्पणी

न चान्तर्न बहिरित्यत्र, **किञ्च जगन्मयोयमि**त्यादि **जगच्च य** इत्यत्र **च**कारार्थकथनमिति ज्ञेयम् ॥१३॥

प्रकाशः

भगवत्युपपादयन्ति **यदी**त्यादि. सर्वान्तरत्वमुपपादयन्ति **यदि सर्वान्तर** इत्यादि. **जगदितिविशिष्टमि**त्याद्युत्पत्तिसमये गमनस्य गमनसमये चोत्पत्तेरभावादेक-विशिष्टेपरवैशिष्ट्यं न भासेतेत्यर्थः. **अन्तःस्थितभगवद्धर्मैरेवे**ति "पुरुषविधोन्वयोत्र चरमोन्नमयादिषु य" इत्यत्र श्रुतिगीते तथोक्तत्वाद् भगवद्धर्माश्च नित्यत्वादयो ज्ञेयाः. **जगन्मय** इत्यस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**र्जगच्चे**त्यादि ॥१३॥

लेखः

बहिष्ट्वादिकं भगवानेवेत्यर्थः. **जगत्प**देन प्रमाणमप्युक्तमित्याहुः **किञ्चे**ति. **जायते गच्छति चे**ति. तथा च जायते इति जः, बाहुलकादनुपपदेपि डः, गच्छतीति गत् क्विबन्तं, जश्चासौ गच्चेतिविग्रहः. **न गच्छेदि**ति लीनं न भवेदित्यर्थः. **यदी**ति जगतः सत्ता न स्यादित्यर्थः. **विवक्षितधर्मवत्त्वादि**ति, अस्तिभातीत्यादयो भगवद्धर्मा एव जगति प्रतीयन्त इतिभावः ॥१३॥

योजना

न भगवदन्तर्जगदित्यर्थः. **पूर्वापरं बहिश्चान्तरि**त्यस्य विवृतौ **पूर्वभावाभावात् न भवेदि**ति– भगवतः पूर्वभावो यदि जगत् प्रति न स्यात् तदा भगवतः कारणत्वाभावात् जगत् न भवेदित्यर्थः. **परम्भावाभाव** इति; यदि भगवान् जगतः परो न स्यात् तदा जगत् **न गच्छेत्** कुत्र गच्छेदित्यर्थः. एवं सति **जायते गच्छती**तिव्युत्पत्त्यभावे जगत्त्वमेव न स्यादिति हार्दम् ॥१३॥

१. जगन्मय इत्यपि पाठः.

भगवतो बन्धनमस्तीति निश्चिन्ता भक्ताः॥१३॥

तादृशं योन्यथा विचारयति स निष्फलप्रयासो भवतीति तां दूषयन्निव तस्याप्यज्ञानमाह **तमि**ति.

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

तं पुराणपुरुषोत्तम**मात्मजं** स्वशरीराज्जातं **मत्वा दाम्ना बबन्धे**ति सम्बन्धः. देहस्तु प्राकृतस्तस्या इति तज्जातः सुतरां प्राकृतो भवति. ननु क्वचित् महान्तोपि पुत्रा जायन्ते देवादयोपि; ततो लोके कारणवैलक्षण्यस्यापि दृष्टत्वात् कथमात्मजत्वे तथा कर्तुं शक्यत इति चेत् तत्राह**ाव्यक्तमि**ति, न केनाप्यंशेन व्यक्तम्. ये हि महान्तो भवन्ति ते स्वधर्मान् प्रकटीकुर्वन्ति यथा भरतादयः. भगवांस्तु तथा न करोतीति प्राकृतबुद्धिस्तेषां दृढा. मध्यमावस्थानामेव तथाकरणं न तु परमकाष्ठां गतस्य. किञ्च यदि गुप्त एव संस्तूष्णीं तिष्ठेत् तथापि सन्देहः स्यादन्यवाक्येन वा माहात्म्यं जानीयुः प्रत्युत भगवान् विपरीतधर्मान् बोधयत्यतः कथं प्रतीतिरित्याह **मर्त्यलिङ्गमि**ति– मर्त्यस्यात्यन्तप्राकृतस्य लिङ्गानि यस्मिन्निति, तथैव स्वरूपं गुणांश्चेष्टां च प्रदर्शयतीत्यर्थः. ननु तथाप्यत्यान्ताभिज्ञा यथा नटं परिचिन्वन्ति तथा सर्वविलक्षणा-नन्तगुणवत्त्वादानन्दमयत्वाच्च कथं न ज्ञायत इत्याशङ्क्याह**ाधोक्षजमि**ति– अधोऽक्षजं ज्ञानं यस्मादिति, न हि भगवान् गुणा वा कस्यचिदपि चक्षुर्गोचरा भवन्ति. इच्छा तु नास्तीत्यवगम्यते विरुद्धप्रदर्शनात्. किञ्चेयं च यशोदा **गोपिका**तिप्राकृतरूपा, अतोनभिज्ञा कथं जानीयात्? **उलूखलो**परि पादं दत्वा भगवान् क्रीडति, अग्नेश्च

प्रकाशः

तमित्यत्र **देहस्तु प्राकृत** इति. प्रकृतस्य भगवत्स्वरूपस्य सम्बन्धी भगवत्स्वरूपसमान इत्यर्थो ज्ञेयः. "क्षौमं वास" इत्यत्र व्युत्पादितस्यार्थस्यानुरोधात् मायासम्बन्धस्य कृष्णोपनिषद्युक्तत्वाद् विरुद्धकृतिदर्शनाच्च मायोपदिग्ध इति पुरःस्फूर्तिको वार्थो ज्ञेयः. **तथा कर्तुमि**ति बन्धनं कर्तुम्. तर्हि किं सर्वेषां तथा बुद्धिं सम्पादयतीत्याशङ्क्य व्यवस्थामाहु**र्मध्यमे**त्यादि; निरोधस्याधिकारिभेदेनावस्थात्रय-सत्त्वात् तद्वत्तु तथा तथेत्यर्थः. **सन्देहः स्यादि**तीश्वरत्वे सन्देहः स्यात्. **इच्छे**ति माहात्म्यज्ञापनेच्छा. ननूलूखले बन्धनकरणस्य किं प्रयोजनमत आहु**रुलूखले**त्यादि.

लेखः

अधोक्षजमित्यत्र **अतिप्राकृते**ति विचाररहितेत्यर्थः. **स्वाश्रयत्वेने**ति–

नाभिर्भवति, अतो भगवान् गोकुलस्थितमुलूखलं स्वाश्रयत्वेन ज्ञापयितुमत्र बन्धनं कारितवान्, गोपिकायास्तु बुद्धिर्यथान्यत्र न गच्छतीति. दाम पशूनां बन्धकम्. ननूलूखलदामहस्ताधिष्ठितदेवानां कथं तूष्णीम्भावः? तत्राह **प्राकृतं यथे**ति, तेषामपि बुद्धिर्भगवता तथा सम्पादितेति ॥१४॥

अयं देहाकारेण भासमान एव भगवान् सच्चिदानन्दरूप इति गुणोपसंहार-न्यायेन "न चान्तर्न बहिर्यस्ये"त्यादिधर्मा अस्यैवेति ज्ञापयितुं बन्धनेप्युपायं वदन् भगवान् सामिबद्धो जात इत्याह. भगवता स्वस्मिन् दोषद्वयं प्रदर्शितं तत्पुत्रत्वमपराधश्च. तदा रज्जुरन्तर्बहिःस्थितं भगवन्तं तिरोहितं मत्वा वेष्टनं कृतवती स्वयं बहिःस्थितान्तःस्थितस्य भगवतः. तदाह **तद्दाम बध्यमानस्ये**ति.

टिप्पणी

तद्दाम बध्यमानस्येत्यत्र, **भगवता स्वस्मिन्दोषद्वयमि**त्यारभ्य **ज्ञापयितुमेव-माहे**त्यन्तम्. अत्रेदं प्रतिभाति – बहिः प्रकट एव प्रभौ पुत्रव्यवहार[1] इति तत्कृत-मन्तःस्थितस्याज्ञानम्. दोषारोपे बहिरनुभूयमानोप्यननुभूयमान इव भवति, दोष-ज्ञानपराभूतत्वाद् दृष्टेः. तदिदमुक्त**मन्तर्बहिःस्थितिमि**त्यादिना. मूलस्थविशेषणद्वय-तात्पर्यरूपं लीलापदार्थानां सच्चिदानन्दरूपत्वमभिप्रेत्य दाम्नि ज्ञानकरणे निरूपिते.

प्रकाशः

तिरश्चीनं पतितमुलूखलं पादेन चालयन् क्रीडति, इदं चोलूखलं पूर्वस्माद् भिन्नमेव. **उलूखले**त्यारभ्य **कारितवानि**त्यन्तः परोक्षवादो भगवदिच्छाज्ञापनार्थः ॥१४॥

तद्दामेत्यत्र. ननु यस्यैते धर्मा उक्तास्तस्य बन्धनमसम्भवि अयं च तथा जात इति नास्य ते धर्मा वक्तुं शक्या इत्याशङ्क्याभासमाहु**रयमि**त्यादि. तथा चोपाय-ज्ञापनेन तद्धर्मवानयमित्येव शुकः स्फुटीकरोति. **भगवता स्वस्मिन्नि**त्यादि तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**रत्रेदमि**त्यादि. **अज्ञानमि**ति, तथा चाज्ञानादन्तस्तिरोभावः. **पराभूत-त्वाद् दृष्टेरि**ति, तथा च शङ्खः पीत इत्यादिवद् बहिस्तिरोभाव इत्यर्थः. तथा च मातृचरणानामन्तर्बहिर्भगवत्तिरोभाव इति सिध्यति. तदाहु**स्तदिदमि**त्यादि. **मत्वे-**

लेखः

पादयोराश्रयः अग्निरूपत्वात् मुखस्य चाश्रय इति आद्यन्ताश्रयत्वात् तत्र बन्धनमित्यर्थः ॥१४॥

---

१. पुत्रत्वव्यवहार मू. पा.

तद् दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यङ्गुलोनमभूत् तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥

अन्यथा बहिरपि रज्जुर्न भवेद् वेष्टकमपि न भवेत्. तथापि परितो वेष्टनरूपा

टिप्पणी

ननु ज्ञानेन वस्त्वन्यथाभावाभावाद्वेष्टनमसम्भवि, दाम्नस्तथात्वे सुतरां तथेति चेत्, अत्र वयं वदामः. अत्र हि भगवान् भक्तप्राधान्येन लीलां करोति, अतो यथा मर्यादा-भक्तिमार्गे भगवद्विषयकापराधे भक्तानां दण्डः कालादिभिस्तदधिकारिभिः क्रियते तथा [1]पुष्टिमार्गे भक्तविषयकापराधे यथैव ते चिकीर्षन्ति तथैव प्रभुरङ्गीकरोतीति वस्तुस्थितिः. अत्र भजनविरोधिभावजननमेवापराधः. एवं सति पुत्रत्वेङ्गीकृते तद्धर्माङ्गीकारोपि जात इति मातृनियम्यत्वस्यापि स्वस्मिन्नङ्गीकारात्तत्स्वामिकदाम्नामपि तादृक् सामर्थ्यं दत्तमस्तीति तथा. इदमेवोक्त**मन्यथा बहिरपी**त्यादिना. एवं सति दामभिर्नियमने दण्डसम्पत्तिर्भवति. अत्र तथाभावेङ्गद्वयं प्रतिबन्धकं– निसर्गेश्वरत्व-निसर्गदासत्वलक्षणं भगवत्तद्दासगतम्. न हि दासनियम्यः प्रभुर्भवति. यद्यपि मातृनियम्यत्वमङ्गीकृतमिति तेनैव सर्वात्मना नियमनं सम्भवति, तथापि यथा भगवद्धर्मत्वेनाङ्गीकारो बलिष्ठस्तथैश्वर्यस्यापि तथात्वादबाध्यत्वाच्च न तथा सर्वात्मना भवितुमर्हति. उक्ताङ्गीकारात्परं तावद्वेष्टनमभूत्, भक्तेषु प्रभुनियम्यत्वस्यापि नित्यत्वात्. अतस्तथा न्यूनमभूत्. अत एव सर्वोपयोग्यङ्गमानेन न्यूनतोक्ता. अग्रे त्वीश्वरत्वेनान्यथा कर्तुं समर्थत्वात्तदेव स्वनियमने साधकं कृतवानिति वक्ष्यते **कृपयासीत्स्वबन्धन** इति पदेन. कृपाया ईश्वरधर्मत्वेनैश्वर्यमेव करणत्वेनावगम्यते, अन्यथैतत्कार्यं न स्यात्. न हीश्वरादन्यः स्वस्वरूपमर्यादातिक्रमणे[2] जीवस्वरूपमर्यादातिक्रमणे च समर्थो

प्रकाशः

त्यादिकं विवृण्वन्ति **लीले**त्यादि. **ज्ञानकरण** [3]इत्यन्तर्बहिस्तिरोहितत्वज्ञानं वेष्टनकरणं चेत्यर्थः. **तथात्व** इति ज्ञानेपि वेष्टनसम्भव इत्यर्थः. **इदमेवोक्तमि**ति भक्तनियम्य-त्वाङ्गीकरणमेवोक्तम्. **अन्यथे**ति यदि तं नाङ्गीकुर्यात्. तदेवोपपादय**न्त्येवं सती**त्यादि. **तथाभाव** इति नियम्यत्वे. **अङ्गीकार** इति नियम्यत्वाङ्गीकारः. **अत** इत्युक्तहेतोः. **अत एवे**त्युक्तधर्मस्य सर्वभक्तोपयोगित्वादेव. **नैतादृशत्वमि**ति न स्वस्वरूपमर्यादाति-क्रामकत्वम्. **एतदि**ति प्रभुनियमनम्. एवं च निरङ्कुशजगत्कर्तृत्वाद्यपेक्षयापि

---

१. पुष्टिपुष्टिमार्गे मू. पा. २. 'क्रामणे मू. पा. ३. इत्याद्य'.

न जाता, पूर्वापरयोर्भगवत एव सत्त्वात्. अतो द्व्यङ्गुलं न्यूना जाता. लोकपरिमाणे प्रथमपरिमाणमङ्गुलिः, तत्र प्रथमातिक्रमे कारणाभावादल्पवैलक्षण्ये महतो योजनायामाश्चर्यमपि भवतीति **द्व्यङ्गुलोनमेवाभूत्.** रज्वाद्यन्तयोर्यो भगवान् स एवायं क्रोडीकृतः, न तु ततः केनापि धर्मेण भिन्न इति ज्ञापयितुमेवमाह.

टिप्पणी

भवति, अस्वतन्त्रत्वात्. यथा जगत्कर्तृत्वादेरीश्वरधर्मत्वेपि नैतादृशत्वं तथा भक्तानामप्येतदतिपौरुषमिति ज्ञाप्यते. यद्वा. बन्धनन्यूनतोक्त्योर्मध्ये विशेषणद्वयकथनेन तयोरुभयत्र हेतुत्वमभिप्रेतमित्यवगम्यते. बन्धने तयोर्हेतुत्वपुक्तम्. तादृशन्यूनतायामपि तयोस्तथात्वमुच्यते. विशेषणाभ्यां हि तज्ज्ञानप्रकार उच्यते. भगवांस्तु निरुपधिस्नेहेन दोषारोपाभावयुक्तेन वशे भवति. तथा च पुत्रत्वेन स्नेहः सोपाधिरिति दोषारोपश्चास्तीति वशीकरणे प्रतिबन्धकमेतद्द्वयमिति ज्ञापनाय द्व्यङ्गुलन्यूनतोच्यते. अत एव **स्व**पदम्. यद्वा. **स्वार्भकस्य कृतागसः** इति मातृविशेषणम्. अतृप्तत्यागावगूरणबन्धनोद्यमैः कृत्वा कृतागस्त्वम्. प्रथमतोर्भकस्तत्रापि स्वस्यैव तादृशे तथा

प्रकाशः

स्वस्वरूपमर्यादातिक्रमस्यैव परममैश्वर्यत्वं सिध्यति. तेन षष्ठे श्लोक ऐश्वर्यस्यैव वशीकारत्वं सेत्स्यतीति बोध्यम्. विशेषणद्वयस्य तात्पर्यान्तरमाहुर्**यद्वे**त्यादि. **तयोरि**ति विशेषणयोः. **उच्यत** इतीदानीं व्युत्पाद्यते. **अत एवे**ति स्नेहे सोपाधिकत्वस्य ज्ञाप्यत्वादेव. एवं च विशेषणद्वयं बन्धने द्व्यङ्गुलन्यूनतायां च हेतुत्वेन सिद्धम्. **स्वार्भके**त्यादिविशेषणद्वयस्य शेषशेषिभावमङ्गीकृत्य पक्षान्तरमाहुर्**यद्वे**त्यादि. **वदि**ति मतुप्प्रयोगः. **तथा न्यूनमि**ति द्व्यङ्गुलं न्यूनम्. **वस्तुस्वाभाव्यादि**ति स्वापराधि-

लेखः

तद्दामेत्यत्र **पूर्वापरयोरि**ति, दोषद्वयस्यैव प्रदर्शितत्वादन्तर्बहिर्भाव एव प्रतीतो न तु पूर्वापरभाव इतिभावः. **केनापि धर्मेणे**ति– मानुषत्वेन धर्मेण व्यापकत्वाद् भिन्नेनेतिज्ञापनाय द्व्यङ्गुलन्यूनतां सम्पाद्य पश्चाद् बन्धनं सम्पादितवान्. क्रोडीकृतस्य व्यापकाद् भेदे पूर्वमेव बन्धनं जातं स्यादितिभावः. टिप्पण्यां **यथा जगत्कर्तृत्वादेरि**ति. ईश्वरस्य धर्मद्वयं जगत्कर्तृत्वादिकं कृपा च, पुष्टिभक्तानां धर्मद्वयं भगवन्नियामकत्वं दास्यं च. तथा च यथेश्वरस्य धर्मद्वयमध्ये जगत्कर्तृत्वादेर्न भक्तवश्यतापादकत्वं किन्तु भगवत्पौरुषरूपत्वं तथा भक्तानामपि धर्मद्वयमध्ये एतद् भगवन्नियामकत्वं न भगवन्नियम्यतापादकं किन्त्वतिपौरुषरूपमित्यर्थः॥१५॥

टिप्पणी

कृतिरत्यनुचितेति ज्ञापितम्. तथा चैतादृश्या**स्तद्दाम तथाभू**दिति सम्बन्धः. तथा च बाह्याभ्यन्तरापराधवत्सम्बन्धित्वात् तथा न्यूनमभूदिति भावः. दामसामर्थ्ये सत्यपि भगवदिच्छया तथात्वे **न्यूनं चकार** इत्युक्तं स्यात्. तथा चैवमुक्त्या वस्तुस्वाभाव्यादेव तथात्वमिति बोध्यते. **पूर्वापरयोर्भगवत एव सत्त्वादि**त्यादिग्रन्थस्यायं भावः – "एवं सन्दर्शिते"ति वाक्यात्तत्प्रदर्शनार्थमिमां लीलां कृतवानिति गम्यते. यद्यपि भक्तनिवेदितान्नवस्त्रभूषणाद्यङ्गीकारोपि भक्तेच्छयैवेति सोपि तथा भवति, तथापि तेषामिष्टत्वाल्लोके तदङ्गीकारो न तथा तद्बोधकः. बन्धनं तु दुःखहेतुत्वेनानिष्टं लोक इति तदङ्गीकारस्सुतरां[1] तथेत्यनेन प्रकारेण प्रदर्शितवानित्युच्यते. अतएव अनेवम्भावे तन्न दर्शितं भवति, किन्त्वेवम्भावेनैवेत्याशयेन मूल 'एवं सन्दर्शिते'त्युक्तम्. किञ्च. ईश्वरे दुःखाभावेन तथा भक्तेच्छापूरणे न कोपि विशेषः सिध्यति यद्यपि, तथापि मात्रतिरिक्तभक्तानां श्रवणेपि दुःखहेतुरिदमिति भक्तदुःखहेतुकरणं भक्तिमार्गविरुद्धमिति सर्वथा पुरुषोत्तमस्याकर्तव्यं भवतीति तस्यापि करणेनातिशयेन तथात्वं बोधितं भवति. एवं सत्युदरस्य व्यापकत्वाद्यत्र कुत्रचित्स्थितिवद्भगवत्पृष्ठभागे पार्श्वयोश्च दाम्नः स्थितिर्न विरुद्धा किन्तु दाम्नावच्छेद्यत्वं विरुद्धम्. तच्च तदाद्यन्तयोर्मेलने भवति. यद्यप्युक्तदेशे स्थितिवद्यथात्रापि स्थितिस्तथोक्तदेशे तन्मेलनवदत्रापि तत्सम्भवति, तथाप्यत्र स्वरूपप्राकट्यात् तद्धर्माणामपि व्यापकत्वादीनां प्रकटत्वेन स्वकार्योन्मुखत्वान्न तत् सम्भवति.

प्रकाशः

सम्बन्धिवस्तुस्वाभाव्यात्. ननु यद्येवं तदा **पूर्वापरयोरि**त्यादिसुबोधिन्युक्तवेष्टनाभावहेतूक्तिविरोध इत्यत आहुः **पूर्वे**त्यादि. **तथा भवती**ति वशीकारबोधको भवति, **अत एवे**त्येवं दर्शनार्थत्वादेव; एतस्य **मूल** इत्यनेन सम्बन्धः. **तथात्वमि**ति भक्तवश्यत्वम्. **न विरुद्धे**ति न व्यापकत्वविरुद्धा. दामस्थित्युपपत्तिं व्याख्याय द्व्यङ्गुलन्यूनतोपपत्तिं व्याकुर्वन्ति **तच्चे**त्याद्य**भू**दित्यन्तम्. **अत्रापि स्थितिरि**ति मेलनदेशे स्थितिः, सम्भवतीतिशेषः. **उक्तदेश** इति यत्रकुत्रचित्. **तदि**ति मेलनम्. परिच्छिन्नताप्रत्यायन इव स्वस्यैव स्वावच्छेदकत्व उभयसमाधानमितिशङ्कायामाहुः **स्वस्ये**त्यादि. **तत्साधनोच्छेदप्रसङ्ग** इति भक्तवश्यताज्ञापनसाधनस्योच्छेदप्रसङ्गः, रज्जुन्यूनीकरणा-

१. 'कारस्ततस्तरां मू. पा.

व्यापकत्वस्य दर्शनार्थमेव तिरोभावाद् रज्जुस्थूलतायामपि नोदरस्थौल्यं, प्रतिबिम्बादौ तथोपलब्धेः. अतो वैलक्षण्याज्ञानात् **तेनान्यद**पि दाम तावत्प्रमाणकं

टिप्पणी

स्वस्यैवावच्छेदकत्वे तत्साधनोच्छेदप्रसङ्गः. तथा च दामाद्यन्तयोः सतोदरेणैव न तथा सम्भवतीति न्यूनताया आवश्यकत्वेन **प्रथमातिक्रम** इति न्यायादल्पेत्यादिनोक्त-हेतुना च तथा न्यूनमभूत्. अग्रे 'कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धन' इति वाक्यात्स्वयमेव स्वरूपमर्यादामतिक्रम्य तथाभवदित्युक्तम्. "सर्वतः पाणिपादान्तमि"त्यत्र तत्स्वाभाविकधर्मरूपवसनभूषणविशिष्टानामेव देशापरिच्छेद उक्त इति न तैरवच्छेदः शङ्कनीयः. **व्यापकत्वस्ये**ति, स्वाभाविकव्यापकत्वस्यैवानवच्छेद्यत्वे हेतोः सत्त्वात् कृत्रिमतत्करणमप्रयोजनकमयुक्तं चेति भावः. अल्पपरिमाणत्वेन प्रतीय-मानस्यैव तदधिकपरिमाणवत्त्वम् अवच्छेदकाधिक्येपि सर्वत्र समानपरिमाणत्वेन प्रतीयमानत्वं च चन्द्रतत्प्रतिबिम्बयोरस्तीति तद्दृष्टान्तमाहुः **प्रतिबिम्बादावि**ति.

प्रकाशः

भावे स्वस्वरूपज्ञानाभावेन लोकतुल्यताया एव प्रतीतेरिति. एवं दामानवच्छेद्यत्व-मुपपाद्य **रज्ज्वाद्यन्तयोरि**त्यादेरर्थं वदन्तः सिद्धमाहु**स्तथा चे**त्यादि. लोकेङ्गुलेः प्रथमपरिमाणत्वं पुरुषसूक्ते सिद्ध"मत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलमि"तिश्रावणात्. तत्रोक्तं **प्रथमे**त्यादि. तर्हि तावदेव कुतो नोक्तमित्यतो द्वितीयो हेतुः. सुबोधिन्यां **रज्ज्वाद्यन्तयोरि**ति तु द्वित्वसङ्ख्यायां हेतुर्बोध्यः. एवं द्व्यङ्गुलन्यूनत्वं व्याख्यातम्. तर्ह्यग्रे कथमवच्छेद्यत्वमित्यत आहु**रग्र** इत्यादि **स्वरूपमर्यादामि**ति. किञ्चिदाशङ्क्य परिहरन्ति **सर्वत** इत्यादि. ननु भगवतो योगेश्वरत्वात् तेनैव रज्जुन्यूनता कुतो नाङ्गीक्रियत इत्याकाङ्क्षायां यदाचार्यैरुक्तं **व्यापकत्वस्ये**त्यादिना तत्तात्पर्यमाहुः **स्वाभाविके**त्यादि. प्रतिबिम्बदृष्टान्तमवतार**यन्त्यल्पे**त्यादि. तद्दृष्टान्तं व्याकुर्वन्ति **तथा सती**ति, परिमाणान्तरप्राकट्ये सति ॥१५॥

योजना

तद् दाम बध्यमानस्येत्यत्र. **रज्जुस्थूलतायामपि नोदरस्थौल्यमि**ति, भगवदुदरस्य तु न स्थौल्यम्. नन्वत्र किं प्रमाणं तत्राहुः **प्रतिबिम्बादौ तथोपलब्धेरि**ति. श्रीयशोदासदने वर्तमानानि यानि दर्पणमणिस्तम्भादीनि तत्र भगवत्प्रतिबिम्बोपलब्धावपि न भगवदुदरस्थौल्योपलब्धिरित्यर्थः॥१५॥

सन्दधे योजितवती, **च**काराद् विसदृशमपि ततोपि स्थूलम्. नन्वङ्गुलद्वये न्यूने किमित्येतावद् योजितवती? तत्राह **गोपिके**ति, मौढ्यं तस्या अनुवर्तत इति ॥१५॥

ततः किमभूदित्याशङ्कायामाह **यदासीदि**ति.

यदासीत् तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे ।
तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥

उभयोः सम्बन्धे पुनः सैकैव रज्जुर्जाता. तदाह **यदासीदि**ति, उभयोः सम्बन्धे यदेकमासीदित्यर्थः. **तदपि** पूर्वोक्तन्यायेनैव **न्यूनमासीद् द्व्यङ्गुलं तेनापि** विशिष्टेन पुन**रन्यत् सन्दधे** तृतीयं, **तदपि द्व्यङ्गुलमेव न्यूनम्.** "त्रिसत्या हि देवा" इति भगवतो जगदाद्यन्तःस्थितिर्वारत्रयं प्रदर्शिता. मानुषभावं ततोपि बहुवारं कृतवतीत्यनुवदति **यद्यदादत्त बन्धनमि**ति; यद्यदेव योजनार्थं गृहीतवती तत्तदेव द्व्यङ्गुलोनमभूत् ॥१६॥

एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि ।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ॥१७॥

सर्वा एव गोप्योङ्गणमध्ये तथा करणाद् द्रष्टुमागताः. अद्यापि तथा न निरुद्धा इति तदा **स्मयन्त्यो** जाता गर्विष्ठाः. सन्मुखा वा स्वस्यापि भुजबन्धनादिकं भावयिष्यन्त्यः **सुस्मयन्त्यो** जाताः. गृहस्थसर्वदामव्ययकरणेपि न बन्धनं निवृत्तमित्याह**ैवमि**ति. पूर्वोक्तन्यायेन सर्वाण्येव **दामानि** योजतवती, यतो **यशोदा**

टिप्पणी

यथा द्वादशसहस्रयोजनात्मकत्वेपि चन्द्रमण्डलस्येतो यावत्परिमाणकं तद् दृश्यते तावत्परिमाणकमेवोदश्वने सरस्सरित्प्रभृतिषु च, तथात्रापीत्यर्थः. तथा सति तु पूर्ववैलक्षण्यज्ञानादशक्यताज्ञानेन भूयो योजनासम्भवोपि. इदमेवोक्तं **वैलक्षण्या-ज्ञानादि**त्यनेन. यद्वा. तदैव निकटस्थमणिस्तम्भादिगतभगवत्प्रतिबिम्ब **आदि**पदात् तच्छायायां च पूर्ववदेवोपालम्भादित्यर्थः[1] ॥१५॥

प्रकाशः

यदासीदित्यत्र **"त्रिसत्या हि देवा"** इति तु श्रुतिर्ज्ञेया. **भगवत** इत्याद्यत्र पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदेन त्रिविधेपि जगति स्वप्राकट्यं कुर्वन्नपि न बध्यत इति व्यज्यते ॥१६॥

---

१. पूर्ववदेवोपलम्भा- मू. पा.

यशो ददाति द्यति वा. **सन्दधत्यपि** द्व्यङ्गुलन्यूनभावाद् **विस्मिताभवदि**तिसम्बन्धः. यशोदागृह एव भगवता पुत्रत्वमपराधश्च दर्शित इति **तद्गेहदामान्ये**वान्तर्बहिर्भगवत्तिरोभावात् सम्बद्धानि, न तु गेहान्तरस्थितानि. अन्यासां तु तदर्थप्रवृत्तिरेव नास्ति, अन्तर्बहिस्तिरोधानाभावात्. रज्जूनामानयनं यशोदाकर्तृकमेव, न हि तादृश्या अन्यः सहायं कर्तुमर्हति. पूर्वं तु वारद्वयं त्रययोजनायां (वारद्वययोजनायां!) रोषे गते **स्मयन्ती** जाता. ततोपि बहुवारयोजनायां **विस्मिता चाभवद्** आश्चर्यं प्राप्तवती. ततो रज्जूनामन्वेषणार्थं निर्बन्धेन यत्नं कृतवती ॥१७॥

ततः सामर्थ्याभावे गोपिकानां समक्षं परमलज्जां प्राप्य भग्नमानससङ्कल्पा मृतप्रायासीत्. तदा भगवान् परमकृपालुस्तादृशदुष्टेष्वपि सद्बुद्ध्याऽयुक्तमपि कृतवानित्याह **स्वमातुरि**ति.

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबन्धने ॥१८॥

ततो भगवान् **कृपया स्वबन्धन आसीदि**तिसम्बन्धः. तत्र कारणत्रयमाह **स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रज** इति. मातुर्हि परितोषः कर्तव्यः, "मातृदेवो भव" "एभ्यो माता गरीयसी"तिवाक्यात्. नापि तस्या अपत्यान्तरमस्ति यो ह्युपस्थितं दुःखं निवारयेद्. यत इयं **स्वस्यैव माता**तो मातृत्वं ख्यापयित्वा तस्या दुःखमसहमानेन तथा कृतम्. किञ्च गोकुलवासिनां खेददूरीकरणार्थमागतो भगवान्; स कथं **स्विन्नगात्रायाः** सर्वाङ्गे जातस्वेदाया न **परिश्रमं** दूरीकुर्यात्? किञ्च गोकुलवासिनां सर्वसौभाग्यदानार्थमागतः स कथं **विस्रस्ताः कबरात्** केशपाशात् **स्रजो** यस्यास्तादृशीं पश्येत्? अनेन सर्वाभरणानामेव तिरोभावः सूचितः. एवमेतादृश्याः **परिश्रमं दृष्ट्वे**तस्ततः पर्यटनं खेदः प्रस्वेदो मुखशोषो महती

प्रकाशः

एवमित्यत्र ददाति द्यति वेति– **ददाति** भगवते **द्यति** स्वस्येत्यर्थः ॥१७॥ **स्वमातुरि**त्यत्र. **"मातृदेवो भवे"**तिशीक्षोपनिषच्छ्रुतिर्ज्ञेया. तथा च स्वसेतुं

लेखः

सुबोधिन्याम् **एवमि**त्यत्र. **ततो रज्जूनामि**त्यादिना **आसीदि**त्यन्तेन **विस्मित**पदार्थो विवृतः; **विस्मिता** गतगर्वेत्यर्थः ॥१७॥

स्वमातुरित्यस्याभासे. **तादृशदुष्टेष्वि**ति दोषारोपयुक्तेष्वितिज्ञेयम्. **सद्बुद्ध्ये**ति सतां बुद्ध्या **अयुक्तं** सोपधिस्नेहवद्वश्यत्वमित्यर्थः. **स्वमातुरि**त्यत्र **कृष्ण-**

च ग्लानिरित्यादिः **परि**शब्दार्थः. तत्रापि भगवान् **कृष्णः** सदानन्दोऽननुभूतदुःखदुःखितानामसमक्षः परदुःखमपि न पश्यति. तदपूर्वं यशोदादुःखं **दृष्ट्वा कृपया** व्याप्तो मात्रर्थे स्विन्नगात्रार्थे स्रगभावार्थे च स्वस्यैव स्वयं बन्धकरूपगुणाङ्गुलत्रयभूतो जातः. द्वाभ्यां पूरितमङ्गुलमात्रं च बन्धनं जातम्. तदा **स्वस्यैव स्वयमेव बन्धने** जात **आसीत्.** प्रकरणाद् गृहीत इत्यवक्तव्यत्वान्नोक्तम् ॥१८॥

ननु किमर्थं भगवानेतावत् कृत्वा बन्धनरूपो जात इति चेत् तत्राह**एवमि**ति.

एवं सन्द(प्रद!)र्शिताह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥

एवमपकारिणि लोके स्वकीयत्वमात्र(त्रा!)भिमानेनाप्येतावतीमभूतपूर्वां कृपां करोतीति स्वस्य **भक्तवश्यता प्रदर्शिता.** प्रदर्शनस्यापि प्रयोजनमाह **हरिणे**ति, स हि सर्वदुःखहर्ता. तत्त्वसिद्ध्यर्थमसम्बन्धेन दुःखहर्तृत्वेतिप्रसङ्गात् संसारविलयः स्यादिति सम्बन्धार्थं कृपालुतां प्रदर्शयति. कृपा च सर्वधर्मधर्मिभ्यो बलिष्ठेति वक्तुं **भक्तवश्यता**शब्देनैवोक्ता. ननु भक्त्या चेद् धर्मधर्मिणामुपमर्दः क्रियते तदा स्वरूपस्य प्रच्युतत्वात् फलाभावात् प्रदर्शनमपि व्यर्थं स्यादित्याशङ्क्याह **स्ववशेनापी**ति, स

प्रकाशः

स्वयमेव पालयितुमेवं कृतवानित्यर्थः. **प्रकरणाद् गृहीत इती**त्यत्र**इति**शब्द[1] इदमर्थो बोध्यः. एवं गुणानां षट् श्लोका व्याख्याताः ॥१८॥

अथान्येषामविद्यानिवर्तकान् व्याख्यास्य**न्त्येवं सन्दर्शिते**त्यत्र. **स्वरूपस्ये**त्यादि. निरङ्कुशत्वरूपस्यैश्वर्य**स्वरूपस्य प्रच्युतत्वात्** तेन **फलाभावाद्** भक्तिफलमपि न स्यात्, तथा सति भक्तवश्यता**प्रदर्शनमपि व्यर्थं स्यादित्याशङ्क्य**

लेखः

पदार्थकथने धर्मरूपानन्दस्य विद्यमानत्वात् तदभावरूप**दुःखाननुभवः** आनन्दरूपत्वात् च **दुःखितानामसमक्षः.** एतस्यैव विवरणं **परदुःखमपी**ति– स्वस्यानन्दरूपत्वात् स्वसाक्षात्कारे दुःखमेव गच्छतीति स्वयं दुःखं न पश्यति सूर्यस्तम इवेत्यर्थः ॥१८॥

एवं सन्दर्शितेत्यत्र. **ननु भक्त्या चेदि**ति, **भक्तवश्यते**तिपदे अक्षरार्थोयम्. भक्तत्वे सति वश्यः; भक्तत्वं भक्तिरेवेति भक्त्या वश्यत्वकथनेन तया **धर्मधर्मिणामुपमर्द** उक्त इतिभावः ॥१९॥

---

१. 'ति त'.

हि स्ववश एव, न केनाप्युपमर्दः. अनेन फलसाधकत्वमुक्तं, फलरूपत्वमाह **कृष्णेनेति**. नन्वेवं कृतेऽन्यो महान् ब्रह्मादिर्न मंस्यते, ततो माहात्म्यस्य न्यूनभावान्न तथा फलत्वमित्याशङ्क्याह **यस्येदं सेश्वरं वश** इति. तत्तदधिष्ठातृदेवतासहितं सर्वं जगद् यस्य वशे, अतो नान्यथाभावनं केनचिदपि कर्तुं शक्यमितिभावः ॥१९॥

नन्वेतादृशो भावः पूर्वमपि सिद्धस्ततः शास्त्रप्रसिद्धत्वात् किं प्रदर्शनेनेत्याशङ्क्याह **नेमं विरञ्च्य** इति.

नेमं विरञ्च्यो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत् तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

इमं प्रसादं न कश्चित् पूर्वं प्राप्तवान्. भक्ता एव हि महान्तः प्राप्नुवन्ति. तत्र भक्तेषु भक्त्या स्वरूपतश्च महान्तस्त्रयः— पुत्रो ब्रह्मा भक्तः प्रवृत्तिमार्गसर्वधर्मप्रवर्तकः सर्वेषां हेतुभूतस्तथा महादेवोपि पौत्रः सर्वनिवृत्तिधर्मप्रवर्तकः प्रलयकर्ता गुणावतारश्च; भगवदर्थमेव सर्वपरित्यागेन तपस्तपति. ततोपि लक्ष्मीर्भार्या ब्रह्मानन्दभूतोरस्यपि लब्धपदा जगज्जननी निरन्तरं पादसेवनपरा. एवमेते त्रयोपि यदीमं प्रसादं न प्राप्तवन्तस्तदा कोन्यः प्राप्तुमर्हति? तदाह **इमं प्रसादं न** वा **विरञ्च्यो न** वा **भवो न** वा **श्रीः,** प्रत्येकसमुदायाभ्यां **प्रसादं न लेभिरे.** न च तेषां दोषोस्तीति शङ्कनीयं, यतस्त्रयोप्य**ङ्गमेव सम्यगाश्रयन्ति** – एका वक्षोन्यो नाभिमन्यः पादाविति.[1] तेषां त्रयाणामपि गुणावताराणां यद् दुर्लभं तदन्येषां दुर्लभमेव. स कः प्रसाद इत्याशङ्क्य तमनुवदति **गोपी यत् तत् प्रापेति**. जात्या स्वरूपतो हीना.

प्रकाशः

तत्समाधाना**याहे**त्यर्थः. **स ही**त्यादि. **हि** यतो हेतोः **स स्ववश एवा**तो **न केनापि भक्तिफलोपमर्द** इति न प्रदर्शनवैयर्थ्यमित्यर्थः. **अनेने**त्युपमर्दाभावकथनेन ॥१९॥

नेममित्यत्राभास, **एतादृशो भावः पूर्वमपि सिद्ध** इतिं भक्तवश्यत्वरूपो भावः कृष्णोपनिषदादिष्वपि सिद्धः. **भगवदर्थमि**त्यादीदं चाष्टमस्कन्धे "यं माममपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात् समासहस्रान्त उपारतं वा" इतिश्लोके तथा ब्रह्मवैवर्तेऽगस्त्यसंहितायां च प्रसिद्धम्. **त्रयाणामपि**[2] **गुणावताराणामि**त्यत्र श्रियो गुणावतारत्वं मायारूपाया बोध्यं, "तस्याज्ञयैव नियता परमापि रूपं चक्रे द्वितीयमिव यत् प्रवदन्ति मायामि"तिपञ्चरात्रवाक्याद् "यद्वाञ्छया श्रीर्ललने"त्यत्र सात्त्विकशक्तित्वेन श्रिया

१. अन्यो महादेवः पादसंश्रितः, स्वमस्तके विष्णुपादोदकधारणात्. (संपा.)
२. त्रयाणां गुणा॰.

प्रसादस्तत्रैव प्रसिद्धो, न तु केनचिन्निरूपितः. न हि सर्वमोचकः कश्चिदात्मानं बध्नाति. खेदस्तु ज्ञानमपि दत्वा विदेहकैवल्यं वा दत्वा मोचयितुं शक्यते, किं स्वयं बन्धनेन? अतः प्रसिद्धः प्रसादोयमेव नान्य इत्यर्थः ॥२०॥

ननु ते महान्तो मूढा चेयमिति मूढानुरोधेन कृतोर्थः कथं प्रसादः स्यात्? तत्राह **नायं सुखाप** इति.

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मपोतानां यथा भक्तिमतामिह ॥२१॥

न ह्यत्र बन्धनं निरूप्यते किन्तु वश्यता. सा न कस्यापि सिध्यति. यावन्तः कर्मिणो देहाभिमानिनो येपि ज्ञानिनो निरभिमाना मुक्ता, उभयेषाम**प्ययं भगवान् न सुखापः** सुखेन प्राप्तुं शक्यः. तत्र हेतु**र्देहिनामि**ति. एकत्र देहाभिमानो दोषोन्यत्र नैरपेक्ष्यम्. तदाह **ज्ञानिनां चात्मपोतानामि**ति, **आत्मा** स्वरूपं **पोतः** संसारसमुद्रतरणोपायो येषाम्. न हि समुद्रतरणमात्रेण पारस्थितो महाराजः प्राप्यते. **भक्तिमतां त्विहै**व सुलभः. तत्र हेतु**र्गोपिकासुत** इति– यतो गोपिकायाः सुतो जातः अतः सर्वे भक्ता भवन्त्वित्येवं भगवता कृतमितिभावः. **इहे**त्यस्मिन्नवतारे **भक्तिमतामि**ति भक्तेर्विशेषणत्वमुक्तं, न तु भक्तानाम् ॥२१॥

एवं स्वमनोरथे सिद्धे गोपिका बहिर्मुख्यो यथायथं गता. भगवांस्तु तथा न

टिप्पणी

कृष्णस्त्वित्यस्याभासे, **एवं स्वमनोरथ** इत्यादि. अधुना त्वितो मातुर्गमन-

प्रकाशः

निरूपणाच्च. **विमुक्तिदा**दितिशब्दार्थमाहु**र्न ही**त्यादि **शक्यत** इत्यन्तम् ॥२०॥

नायमित्यत्र **भक्तेर्विशेषणत्वं न तु भक्तानामि**ति– सुखापत्वे भक्तेरेव विशेषणत्वं न तु भक्तानां, भक्तत्वस्यान्यत्रापि सत्त्वादिति ॥२१॥

लेखः

नेमं विरञ्च्य इत्यत्र. **न तु केनचि**दिति पूर्वमितिशेषः. **खेदस्त्वि**त्यादि. अन्तःकरणधर्मस्य खेदस्य गात्रे कथनेनान्तर्बहिः खेदः पूर्वं निरूपितः. तत्र ज्ञानदानेनान्तःखेदनिवृत्तिः, विदेहकैवल्यदानेन देहाभावाद् बहिःखेदनिवृत्तिरितिद्वयं निरूपितम् ॥२०॥

नायं सुखाप इत्यत्र **न तु भक्तानामि**ति– कदाचिद् भक्तिं विनापि सेवामात्रेण भक्ता भवन्ति तेषां **न सुखाप** इत्यर्थः ॥२१॥

गतः किन्तु तस्यामेवावस्थायां महत् कार्यं कृतवानित्याह **कृष्णस्त्विति.**

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥२२॥

तुशब्दः पूर्वसम्बन्धं व्यावर्तयति– नायं बन्धनव्यग्रः कृष्णः. सा चेद् भगवन्तं वशीकृत्य तथैव तिष्ठेत् न किञ्चित् कुर्याद् भगवान्, निरोधस्य सिद्धत्वात्. सा पुनर्**गृहकृत्ये व्यग्रा** जाता. तथा जातायां **यमलार्जुनवृक्षावद्राक्षीत्,** तत्पातनेन च तस्याः प्रपञ्चविस्मरणं करिष्यामीति. ननु कोयमत्याग्रहः? तत्राह **मातरी**ति. तस्यामप्यवस्थायां पातने सामर्थ्यमस्तीति ज्ञापयति **प्रभुरि**ति. **अर्जुनौ** जातिविशेषवृक्षौ 'सखि'शब्दवाच्यौ. ननु गोपिकार्थं कथं तयोः पातनमपराधाभावादित्याशङ्क्याह **पूर्वं गुह्यकावि**ति– देवयोनिभूतौ वृक्षौ जातौ, अतस्तयोर्वृक्षत्वमनभिप्रेतम्. तथापि प्रयोजनाभावात् सम्बन्धाभावात् किमिति मोचनीयावित्याशङ्क्याह **धनदात्मजावि**ति, **धनदः** कुबेरो भक्तस्तस्य पुत्रौ ॥२२॥

टिप्पणी

मुच्यते. अग्रे "बाला उचुरि"त्यनेन तेषां तत्र स्थितिर्ज्ञाप्यते,नान्येषाम्. एवं सत्यर्थाद् गोपीनां गमनमुक्तं भवतीति तदिदमुक्तम्– एतास्तु तादृशं तं द्रष्टुमक्षमा इति तादृग्गेहेपि संमुखं मुखं न कृतवत्य इति तद्गेहाद् **बहिरे**व प्रसन्न**मुखा** जाता इति ज्ञापनाय विशेषणमुक्तम्. **एवं स्वमनोरथे सिद्ध** इति तु मातुर्वैयग्र्ये हेतुरुक्तः. अथवा, अधुनाप्यनाश्लिष्टप्रियास्तदभिलाषिण्यो दाम्ना बन्धनाभावं दृष्ट्वा स्वार्थे सन्दिहाना जाताः. सम्पन्ने तस्मिन्स्वमनोरथोपि सेत्स्यतीति निश्चयेनैतासामेव स सिद्ध इति तथोक्तम् ॥२२॥

। इति नवमोध्यायः ।

प्रकाशः

कृष्णस्त्वित्यत्राभास **एवं स्वमनोरथ** इत्याद्येतस्यार्थं टिप्पण्यामाहु**रधुना त्वि**त्यादिना ॥२२॥

इति श्रीमद्वल्लभचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते
दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशे नवमाध्यायविवरणम् ॥

ननु तौ महान्तौ कथमेवं जातौ? तत्राह **पुरे**ति.

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।
नलकूबरमणिग्रीवावितिख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥

पूर्वं **नारदशापेन वृक्षत्वं प्राप्तौ.** ननु नारदः किमिति शापं दत्तवान्? तत्राह **मदादि**ति– श्रीमदेन मत्तौ, अतो मदाद्धेतोर्नारदशापः शापेन च वृक्षत्वमिति. ननु तथाभावयोग्यावेव तौ किमिति मुच्येते इत्याशङ्क्याह **नलकूबरमणिग्रीवावितिख्यातावि**ति. **नलः कूबरो** यस्य नलोतिसुन्दरः, सोपि कुब्जतुल्यो, **मणियुक्ता ग्रीवा** यस्यैवन्नाम्ना **ख्यातौ;** तेषां नामख्यातिश्च न शान्तेति तदुद्धारो युक्तः. किञ्च **श्रिया चान्वितौ** अद्यापि तौ परित्यज्य श्रीर्न गता. अतः कीर्तिश्रियोर्विद्यमानत्वादुद्धारमर्हतः ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरणे ज्ञाननिरूपकपञ्चमाध्यायस्य स्कन्धादितो नवमाध्यायस्य विवरणम् ॥

लेखः

कृष्णस्त्वित्यत्र. **पूर्वसम्बन्धमि**ति पूर्वासां सम्बन्धं, गोपिकानां कासाञ्चिदपि गेहे गमनमित्यर्थः ॥२२॥

योजना

कृष्णस्तु गृहकृत्येष्वित्यत्र **सखिशब्दवाच्यत्वादि**ति, अर्जुनस्य सखित्वात् तद्वाचकार्जुनपदवाच्यौ यमलार्जुनावित्यर्थः. तथा च स्वभक्तसखार्जुननामस्मरणेन तयोरुपरि महती भगवत्कृपा जातेतिभावः ॥२२॥

नलोतिसुन्दरः सोपि कुब्जतुल्य इति– यस्य नलकूबरस्य परमसुन्दरस्याग्रे **नलोपि** सुन्दरत्वेन प्रसिद्धोपि कुब्जतुल्य इत्यर्थः ॥२३॥

॥ इति नवमोध्यायः ॥

॥ षष्ठः स्कन्धादितो दशमोध्यायः ॥

एवं तु नवमाध्याये भक्तिरुक्तातिदुर्लभा ।
कृष्णसेवकसख्यस्य हेतुर्दशम उच्यते ॥(१)॥
वैराग्यं भगवद्धर्मः षड्गुणोत्र निरूप्यते ।
गुणानां भगवत्त्वाय स एव हि यतोऽभवत् ॥(२)॥

प्रकाशः

दशमाध्यायतात्पर्यं वदन्तः पूर्वाध्यायसङ्गतिमाहु**रेवमि**त्यादि– शास्त्रार्थत्वेन ज्ञानपूर्वि**कातिदुर्लभा** भगवति **भक्ती** राजप्रश्नानुसारेण **नवमाध्याय उक्ता.** "तत्पुरुषे च सख्यमि"तिप्रश्नानुरोधात् **कृष्णसेवकसख्यस्य हेतु**र्वैराग्यम्. एवमवान्तरसङ्गतिमुक्त्वा स्कन्धार्थसङ्गतिमाहु**र्वैराग्यमि**त्यादि. यथा पूर्वाध्याये ज्ञानरूपो **भगवद्धर्मो**ऽविद्यानिवर्तनद्वारा भगवद्वशीकारक उक्त एव**मत्रा**ध्याये **वैराग्य**रूपो **भगवद्धर्मः षड्गुण**स्तथा **निरूप्यते.** षड्गुणत्वेन निरूपणस्य प्रयोजनमाहु**र्गुणानामि**त्यादि. उपलक्षणविधया सर्वेषां गुणानां भगवत्त्वबोधनार्थं तथा निरूप्यते. तस्यापि प्रयोजनमाहुः **स एवे**त्यादि– **यत** एभ्यो गुणेभ्यो **हि** निश्चयेन **स** प्रस्तुतो निरोध **एवाभवत्.** तथा च स्कन्धार्थहेतुतैव सङ्गतिरित्यर्थः (१-२).

लेखः

दशमाध्याये पूर्वानुवादे **भक्तिरुक्ते**ति, यच्छृण्वतो भक्तिर्भवति तादृशं चरित्रमुक्तमित्यर्थः. **कृष्णे**ति. **कृष्णसेवका** नारदादयो दर्शनमात्रेण मोचका इति तद्वाक्यात् मोचने तेषु स्वकृपाबोधनं त**त्सख्ये हेतुरि**त्यर्थः (१).

षड्गुण इति षट् गुणा यस्येत्यर्थः. तत्र हेतुः **गुणानामि**ति. तत्रापि हेतुः **स एव ही**ति, अहिकुण्डलादिन्यायत्रयेपि भगवत एव गुणरूपत्वादित्यर्थः (२).

योजना

दशमाध्यायार्थनिरूपणकारिकासु **वैराग्यं भगवद्धर्मः षड्गुण** इति– **अस्मिन्नध्याये वैराग्यं भगवद्धर्मो निरूप्यते** सोपि भगवदैश्वर्यादिषड्गुणवानित्यर्थः.

कारिकार्थः

दशमाध्याये **एवमि**ति. **भक्तिरुक्ते**ति, यत् शृण्वतो भक्तिर्भवति तादृशं चरित्रमुक्तमित्यर्थः. **कृष्णसेवकसख्यस्य हेतुरि**ति यच्छृण्वतः कृष्णसेवकसख्यं भवति तादृशं यमलार्जुनभङ्गचरित्रमित्यर्थः. नलकूबरमणिग्रीवयोर्भगवद्दर्शने कृष्णसेवकनारदकृपांहेतुकत्वश्रवणात् कृष्णसेवकसख्यं भवेदितिभावः (१).

वैराग्यमनिवर्त्यं तु भगवद्वाक्यतो भवेत् ।
विशेषतस्तु यद्वाक्यं न निवर्तेत केनचित् ॥(३)॥

प्रकाशः

ननु वैराग्यस्य दुःखेन दुःखिष्वपि जायमानत्वात् साङ्ख्येष्वपि नित्यानित्यवस्तुविवेकेनैहिकामुत्रिकफलवैराग्यसम्भवाच्च कथं तस्य भगवद्धर्मत्वमित्याकाङ्क्षायां तल्लक्षणं तद्धेतुं चाहु**र्वैराग्यमनिवर्त्यमि**त्यादि. **तुः** शङ्कानिरासे; उक्तवैराग्ये भगवद्धर्मत्वशङ्का न कार्या. तथा **चानिवर्त्यं वैराग्यं यद् भगवद्वाक्यतो भवेत्** स एव भगवद्धर्मः, दुःखिनां तु सुखनिवर्त्यम्. साङ्ख्यानामपि वैराग्यं "येन्येरविन्दाक्षे"तिवाक्येन नश्वरत्वावगमाद् विद्याया अपि स्वप्नबोधन्यायेनाविद्यानिवर्त्यत्वात् तन्मूलभूतमायाया अगतत्वेन निवर्त्यमेव. अतो अनिवर्त्यं भगवद्वाक्यजन्यं यद् वैराग्यं स एव भगवद्धर्म इत्यर्थः. ननु प्रकृते वैराग्यजनकं भगवद्वाक्यं न स्फुटमित्यतस्तल्लक्षणमाहु**र्विशेषत** इत्यादि. **तुः** शङ्कानिरासे; वक्ष्यमाणे वाक्ये भगवदीयमिदं न भवतीतिशङ्का न कार्या. **यद् वाक्यं विशेषतः केनचित् न निवर्तेत** तद् भगवद्वाक्यमित्यर्थः (३).

लेखः

वैराग्यमिति, यत एतयोरविनाशि वैराग्यं शापात् जातमित्यर्थः. वैराग्यदानेन नारदे वैराग्यसिद्धौ "सेवकास्तादृशा यदी"ति न्यायेन भगवत्यपि सिद्धमितिभावः (३).

योजना

तदेतत् स्पष्टयन्ति **गुणानां भगवत्त्वाये**त्यनेन. वैराग्ये कारणद्वयमाहुः **भगवद्वाक्यतो भवे**दित्यारभ्य **न निवर्तेत केनचि**दित्यन्तेन. **भगवद्वाक्यत** इति वरादिरूपादित्यर्थः. **यद्वाक्यं केनचि**दपि **विशेषतो न निवर्तेत** तद्वाक्यात् च वैराग्यं भवेत्, यथा

कारिकार्थः

वैराग्यमिति. **अत्र** वैराग्यात्मको **भगवद्धर्मः षड्गुणः** षड्गुणाः यस्य तादृशो **निरूप्यते, अत्रा**ध्याये "शापोद्यमस्तथा हेतुरि"ति वक्ष्यमाणकारिकोक्तषडर्थनिरूपणादितिभावः. तत्र हेतु**र्गुणानां भगवत्त्वाये**ति. तत्रापि हेतुः **स एव हीति– यतः** कारणात् **स** भगवा**नेव** गुणरूपे**णाभवत्** आविर्भूतः, अतो **गुणानाम**पि **भगवत्त्वबोधनाय अत्रा**ध्याये षड्भिः प्रकरणैः **षड्गुणो वैराग्य**रूपो **भगवद्धर्मो निरूप्यत** इत्यर्थः (२).

तादृशं शापरूपं स्याद् भक्तानामेव तादृशम् ।
अतो वैराग्यकथने शापो मोक्षावधिर्मतः ॥(४)॥
शापोद्यमस्तथा हेतुः शापश्चापि प्रसादभाक् ।
वाक्यस्यापि फलं शीघ्रं स्तुतिश्चानुग्रहस्तथा ॥(५)॥
षड्भिर्द्वादशभिश्चैव त्रिभिः षड्भिस्तथैव च ।
दशभिः पञ्चभिश्चेति षडर्थाः क्रमतो मताः ॥(६)॥
अपूर्वत्वाच्छ्रोतुमिच्छा तेन प्रश्नः परीक्षितः ।
स्वस्यापि तादृशत्वेन तद्वन्मोक्षाशया पुनः ॥(७)॥

प्रकाशः

तद् व्यक्तं कुर्वन्ति **तादृशमि**त्यादि, **तादृशं** वाक्यं **शापरूपं स्यात्.** तथा च शापरूपमेव भगवद्वाक्यमित्यर्थः. तर्हि येनकेनचिदपि दत्तः शापो भगवद्वाक्यं स्याद् वैराग्यं च जनयेदत आहु**र्भक्तानामेव तादृशमि**ति. "दूतानामिव वर्णितमि"तिजल-भेदोक्तिरत्रानुसन्धेया. तथा चास्य परम्परया भगवद्वाक्यत्वमित्यर्थः. तदेतत् निगमय**न्त्यत** इत्यादि. **वैराग्यकथन** इति निमित्तसप्तमी, वैराग्यस्य कथनं विद्यते-स्मिन्नित्यध्यायविशेषणं वा (४).

एवमध्यायतात्पर्यमुक्त्वा वैराग्यविशेषणभूतषड्गुणरूपानेतदध्यायप्रतिपा-

योजना

नारदवाक्यात् शापरूपात्. प्रकृते तदेतत् स्फुटयन्ति **तादृशं शापरूपमि**त्यनेन(२-४).

कारिकार्थः

वैराग्यमित्यादि. अत्र नलकूबरमणिग्रीवयो**रनिवर्त्य**वैराग्यजनकं शापरूपं नारदवाक्यं **भगवद्वाक्यमे**व ज्ञेयम्. तथा च भगवतो नारदद्वारा वैराग्यदातृत्वाद् भगवत्यपि वैराग्यगुणः सिद्ध इतिभावः. **यद्वाक्यं केनचिदपि न निवर्तते तादृशं शापरूपं भक्तानामे**व वाक्यं; तद्वाक्यं भक्तद्वारा भगवद्वाक्यमेव, **अतो मोक्षावधिः शाप** इत्यर्थः (३-४).

अत्र षट् प्रकरणानि विभजन्ते **शापोद्यम** इति. एवं द्विचत्वारिंशच्छ्लोकैः षट् प्रकरणानि, प्रथमश्लोकेन प्रश्नश्चेति त्रिचत्वारिंशद् (५-६).

अपूर्वत्वादिति शापेन मोक्षस्यापूर्वत्वात् **श्रोतुमिच्छा, तेन** हेतुना "कथ्यतां भगवन्नेतत् तयोः शापस्य कारणमि"ति **परीक्षितः प्रश्नः, स्वस्य** परीक्षितोऽपि **तादृशत्वेन** ब्राह्मणशप्तत्वेन **तद्वत् मोक्षाशयापि प्रश्न** इत्यर्थः (७).

पूर्वाध्यायान्ते शापेन यमलार्जुनौ जाताविति श्रुत्वा कथं वा तेषां भगवानुद्धारको जात इति पृच्छति **कथ्यतामि**ति.

॥ श्रीराजोवाच ॥

कथ्यतां भगवन्नेतत् तयोः शापस्य कारणम् ।
यत् तद् विगर्हितं कर्म येन देवर्षेस्तमः ॥१॥

भगवन्नितिसम्बोधनं कथनेन स्वदुःखदूरीकरणसामर्थ्यार्थम्. **एतदि**ति हृदये बाधकत्वेन स्थितं **तयो**र्नलकूबरमणिग्रीवयोरेकरूपस्य **शापस्य कारणम्.** चतुष्टयं तु तेनैव वक्तव्यं– शापविस्तारो विमोक्षणं स्तुतिर्भगवत्प्रसादश्चेति. अतोधिकं द्वयं पृच्छति **यत् तद् विगर्हितं कर्मे**ति. **यत्** प्रसिद्धं तादृशशापहेतुभूतं जातं **तद**वश्यं **विगर्हितं** निन्दितमेव भवति. देवानां तु पापं न सम्भवतीति प्रश्नः. किञ्च **येन** कृत्वा **देवर्षे**र्देवतानामपि मन्त्रद्रष्टु**स्तमः** क्रोधो भवति. अनेन शापे हेतुः स्पष्टः; विगर्हितेन शापोद्यमः. सर्वो हि विगर्हिते कृते शापं दातुमुद्युक्तो भवति, देवर्षिस्तु साधारणे न भवतीति विशेषतो हेतुर्वक्तव्यः ॥१॥

तत्र प्रथमं विगर्हितेन शापोद्यममाह षड्भी **रुद्रस्ये**ति.

उन्मादश्च प्रमादश्च निन्दिताचरणं तथा ।
महत्स्वपि तथा धाष्ट्र्यसिद्ध्यर्थं महतां दृशिः ॥(८)॥

प्रकाशः

द्यानर्थानाहुः **शापोद्यम** इत्यादि. ननु भवत्वेवं तथापि प्रश्नस्य किं प्रयोजनमत आहु**रपूर्व** इत्यादि. यद्यपि पूर्वं पृष्टं वदिष्यति तथापि देवानां पापं नारदस्य मन्युश्चेत्युभयमपूर्वमिति तच्छ्रवणेच्छया तथेत्यर्थः. प्रश्नतात्पर्यान्तरमाहुः **स्वस्ये**त्यादि. **तादृशत्वेने**ति महापुरुषशप्तत्वेन (५-७).

कथ्यतामित्यत्र **वक्तव्यमि**त्युपक्रान्तत्वात् प्रकृतोपयोगाच्च वक्तव्यम् ॥१॥

लेखः

अपूर्वत्वादिति शापेन मोक्षस्याश्रुतपूर्वत्वादित्यर्थः (७).

कारिकार्थः

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वेत्यादीनां षण्णां श्लोकानां प्रत्येकमर्थानाहु**रुन्मादश्चे**त्यादि. नलकूबरमणिग्रीवयो**रुन्मादप्रमादनिन्दिताचरणानि** त्रिभिः श्लोकैः क्रमेण निरूपितानि. **महत्स्वपि** नारदादिष्वपि **तथाविधधाष्ट्र्यसिद्ध्यर्थमि**ति पूर्वेणान्वयः. चतुर्थश्लोकार्थ-माहु**र्महतां दृशिरि**ति. **महतां** नारदानां **दृशि**र्दर्शनं, कर्तरि षष्ठी; नारदकर्तृकं

धार्ष्ट्यं तयोर्न सङ्घस्य ततश्चोद्यम ईर्यते ।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥२॥

प्रथमतो महतस्तथात्वमनुचितमित्याह. **रुद्रस्य** महादेवस्य; रुद् रोगाणि द्रावयतीति तादृशस्य सेवकयो रोगसम्बन्धोनुचितः. **अनुचर**पदेन पश्चादेव चलनस्योचितत्वादणुमात्रविभेदोपि दोषायेति. तादृशावपि **भूत्वा सुदृप्तौ** जातौ धनेनातिमत्तौ. तत्र हेतुर्**धनदात्मजाविति**, धनं सर्वेभ्यो ददातीति तदात्मजस्य धनित्वं सिद्धमेव. उभयोश्च सहक्रीडा निन्दिता, उभौ च दुष्टौ जातौ. तत्रापि महादेवस्य गृहरूपो यः पर्वतः **कैलासस्तस्योपवन** आरोपितफलपुष्पप्रधाने वने, तत्रापि **रम्ये** सर्वदोषविवर्जिते वने. स्वभावतो विरक्तो महादेवस्तस्य स्थाने विरक्ता एव तिष्ठन्ति, तत्राप्**युपवने** योगिनां भगवच्चिन्तनस्थाने, तत्रापि **रम्ये** भगवत्प्रसादस्थाने. ततोप्यधिकदोषमाह **मन्दाकिन्यामिति**. **मन्दाकिनी** भागीरथी प्रसिद्धा, मन्दाकिन्यां दोषाभावात्; तत्रापि **मद उत्कटो** ययोः. अयं मदो धनादिकृत एव, सुरादिकृतस्त्वग्रे वक्ष्यते ॥२॥

महतः स्वरूपदोषा उक्ताः, आगन्तुकदोषैः सदुष्टक्रियामाह **वारुणीमिति**.

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।

प्रकाशः

रुद्रस्येत्यत्र मन्दाकिन्यां दोषाभावादिति तत्र मनुष्यकृताघमार्जनस्याभावेन तथात्वात् ॥२॥

योजना

रुद्रस्यानुचरावित्यस्य विवृतौ **पश्चादेव चलनस्योचितत्वादिति**. **अनुचर**पदतात्पर्यमिदम्; अनु पश्चात् चरतीत्यनुचर इतिव्युत्पत्त्या रुद्रचलनानुचलनमुचितम्. तथा च "वेदः शिवः शिवो वेद" इतिश्रुतेः शिवस्य वेदरूपत्वात् तदनुचरैर्वेदानुकूलमेव व्यवहर्तव्यं; तथाकरणाभावादनुचितत्वं प्रदर्शितम्. **योगिनां भगवच्चिन्तनस्थान** इति "नारदाय प्रवोचन्तमि"तिवाक्यात् ॥२॥

कारिकार्थः

नलकूबरादिकर्मकं दर्शनमित्यर्थः. तदुक्तं "अपश्यन् नारदो देवावि"ति. "तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्य" इति श्लोकार्थमाहु**र्धार्ष्ट्यं तयोर्न सङ्घस्येति**. देवाङ्गनानां नारदे धार्ष्ट्यं नेत्यर्थः. **ततश्चोद्यम** इति "तौ दृष्ट्वे"त्यनेन शापोपक्रम इत्यर्थः ($८\frac{१}{२}$).

स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

द्वन्द्वजो हि दोषो दुर्निवार इति द्वयोः सम्बन्धः. **वारुणी** वरुणोद्भवा अमृतसङ्ग उत्पन्ना दैत्यभावबोधिका, तत्रापि **मदिरा** मादिकासुरभावादप्यधिकदोषजनिका. तां **वारुणीं मदिरां पीत्वा मदेनाघूर्णिते लोचने** ययोर्विरुद्धज्ञानवन्तौ. तत्राप्**यनु** पश्चाद् **गायद्भिः स्त्रीभिः सहितौ.** सङ्गदोषो मोहहेतुः सम्बन्धश्च. **पुष्पिते वने** रजोयुक्ते **चेरतु**र्भ्रममाणौ जातौ. **मन्दाकिन्यामिति** सामीप्यसप्तमी, **कैलासोपवने** सति, **मन्दाकिन्याम**पि सत्यां, **मदोत्कटाविति** वा. अतः **पुष्पिते वन** इति न दोषवचनेन विरोधः ॥३॥

दोषान्तरमाह**ान्तःप्रविश्येति**.

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥

जले क्रीडा गङ्गायां निषिद्धा, "गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेदि"त्यत्र क्रीडाया निषिद्धत्वात्. तत्रापि नोद्धृत्य **किन्त्वन्तःप्रविश्य. अम्भोजानां वनराजयो** वनपङ्क्तयो यत्र. अनेन भगवत्सान्निध्यमपि गङ्गाकृतपूजार्थं लक्षितम्: **गजाविव करेणुभिरिति** क्रीडायामनवधानतोक्ता ॥४॥

विषयं निरूप्य शापहेतोः समागममाह **यदृच्छयेति**.

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।

प्रकाशः

वारुणीमित्यत्र द्वयोरित्यासुरभावमादकत्वयोः. ननु [१]पूर्वं वनस्य दोष उच्यत इति विरुद्धमत आहु**रत** इत्यादि. मदोत्कटत्वात् **पुष्पिते वन** इत्यनेन रजोयुक्तदोषो य उक्त**स्तेन** सह **विरोधो न** भवति. तयोर्दोषस्योत्कटत्वाद् वनधर्मोपि तदुद्बोधक एव[२] भवति, न तु शामक, "एते मदा" इतिन्यायादितिभावः ॥३॥

लेखः

वारुणीमित्यस्याभासे सदुष्टेति. दुष्टं दोषः, भावे क्तः; दोषसहितां क्रियामित्यर्थः. व्याख्याने **सामीप्यसप्तमीति**. प्रक्रियायां सामीपिकमप्याधारमुक्त्वा आधारश्चतुर्धोक्तः, 'नद्यामास्ते' इत्युदाहरणं चोक्तम्. तत्पक्षे 'गङ्गायां घोष' इत्यत्रापि न लक्षणेति ज्ञेयम् ॥३॥

---

१. °र्वे. २. °वमेव.

अपश्यन्नारदो देवौ क्षीवाणौ समबुध्यत ॥५॥

देवर्षिरिति भाव्यर्थपरिज्ञानं देवयोनीनामुपकारकर्तृत्वं च ज्ञापितम्. **भगवानि**ति सर्वसामर्थ्यं, कार्यभगवत्त्वानि भगवत्कृपासाध्यानि. **तत्रे**ति तस्यां गङ्गायाम्. **कौरवे**तिसम्बोधनं महतोपि वंश उत्पन्नः प्रमाद्यतीति स्वदृष्टान्तेन ज्ञानार्थम्. आदौ **देवावपश्यत्** ततः **क्षीवाणौ समबुध्यत. क्षीब**शब्दोऽकारान्तो नकारान्तोपि. **क्षीबा** मत्तः, देवानां स्वर्षिसम्मानाभावयोगात् ॥५॥

ततो यज्जातं तदाह **तं दृष्ट्वे**ति.

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥

नारदं **दृष्ट्वा; देव्यो**प्सरसो **विवस्त्राः** सत्यः स्वस्मिन् नारदे चैकैकं धर्मं ज्ञातवत्यः— स्वस्मिन् लज्जा जाता, कामोद्बोधेनानिष्टजनकत्वे **शापशङ्का.** वस्त्रपरिधाने नाभयं भवतीति **शीघ्रं** यावदृषेः क्षोभो न भवति ततः पूर्वमेव **पर्यधुः. गुह्यकावपि विवस्त्रौ**; नग्नदर्शनमप्यमङ्गलं निषिद्धं स्त्रीसङ्गात् क्षोभकं च. तत्रापि

प्रकाशः

यदृच्छयेत्यत्र. ननु नारदस्य भगवत्त्वं कुत इत्यत आहुः **कार्यभगवत्त्वानी**ति. "युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैरि"तिवाक्याद् भगवद्भिन्नेषु भगवत्त्वं भगवद्दत्तत्वात् कार्यमेव. बहुवचनं त्वेकद्वित्रिदानाभिप्रायम्. तच्च विष्णुपुराण उक्त"मुत्पत्तिं च निवृत्तिं[१] च भूतानामागतिं गतिं वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति". अतो भगवत्कृपातो भगवत्त्वमित्यर्थः. दर्शनमात्रेणापि मत्तत्वज्ञापकं रूपमाहु**र्देवाना-मि**त्यादि ॥५॥

तं दृष्ट्वेत्यत्र **वस्त्रपरिधाने ने**त्यत्र **न**कारो भिन्नः. **गुह्यं कं ययोरि**ति वैषयिकं सुखं ययोरित्यर्थः ॥६॥

लेखः

यदृच्छयेत्यत्र **देवानामि**ति. **स्वर्षे**र्नारदस्य **सम्माननं** नमस्कारादिना, **तदभावो देवानां** न सम्भवत्यतो **मत्ता**विति ज्ञातवानित्यर्थः॥५॥

तं दृष्ट्वेत्यत्र **कामोद्बोधेने**ति अनिष्टजननप्रकारकथनं; धान्येन धनमितिवदभेदे तृतीया ॥६॥

---

१. विनाशम्.

गुह्यकौ, गुह्यं कं ययोः ॥६॥

तथा सति तयोः शापोपक्रममाह **तौ दृष्ट्वे**ति.

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥७॥

सुरात्मजौ भूत्वा **मदिरामत्ताव**सुरकार्यं कृतवन्तौ **श्रीमदेन चान्धौ** मनुष्यदोषं च प्राप्तवन्तौ. अत उभयोः फलं महापुरुषसान्निध्ये भवती"त्यत्यन्त-निन्दितैर्दोषैर्जन्तुः स्थावरतां व्रजेदि"त्येतयोः स्थावरत्वमेव युक्तमिति विचार्य कर्मणैवैतद् भविष्यतीति निश्चित्य कृपया परीत**स्तयोरनुग्रहार्थं शापं दास्यन्निदं** वक्ष्यमाणं हेतुभूतं **जगौ.** अन्यापराधे बालकेन कृते पित्रा शिक्षणं कर्मसाध्यमनिष्टमपि फलं नात्यन्तं दुःखदं भवतीति कर्माधिकारिफलभावनातः पूर्वमेव स्वयं शापं दत्तवान्. महापुरुषदृष्ट्योद्बुद्धं च जातं, अतो न वने वृक्षौ जातौ. वृक्षाणां मध्येर्जुनजातीयानां मुक्तिः प्रसिद्धा, "नर्मदातीरसञ्जाताः सरलार्जुनपादपा नर्मदातोयसंस्पर्शाद् यान्ति ते परमां गतिमि"तिवाक्यात्. तत्रापि गवां छायाजनकौ

प्रकाशः

तौ दृष्ट्वेत्यत्रात इत्यस्ये**ति विचार्ये**त्यनेन सम्बन्धः. **उभयोरि**त्याद्या-सुरभावमनुष्यदोषयोः **फलं,** महापुरुषेषु भगवतः सत्त्वात् सर्वफलदातृत्वं च तेषां **सान्निध्ये भवतीति**हेतोर्दयोत्पत्तौ हेतुमाहु**रन्यापराध** इत्यादि. अपराधस्योत्कटत्वेन बाल्याभावेन च पितुरपि त्यागार्हाविति दयोत्पादकौ जाताविति भावः. ननु स्थावरत्वं तु दुष्कर्मणैव भविष्यतीति किं शापेनेत्यत आहुः **कर्मसाध्य**मित्यादि. **कर्माधिकारि-फलभावनातः पूर्वमि**ति. कर्मण्यधिकरोति तच्छीलः **कर्माधिकारी,** तस्य या **फल-भावना** फलोत्पादनात् प्राप्तिरितियावत् **ततः पूर्वम्.** तथा च "नरकस्थोपि वै जन्तु-रि"तिवाक्यात् कर्मफलेपि नारकी निर्वृतिरिति ततः फलशेषो जन्मान्तरेनुवर्तते, दत्ते तु शापे दुःखभूयस्त्वेन कर्मणो निःशेषनाश इति तदर्थं शाप इत्यर्थः. हेत्वन्तर-माहु**र्महापुरुषे**त्यादि. कर्मफलात् शापफलस्योत्कर्षं स्फुटीकुर्व**न्नत्यतो ने**त्यादि ॥७॥

लेखः

तौ दृष्ट्वेत्यत्र **कर्माधिकारी**ति. **कर्मभि**र्निन्दितै**रधिकारिणो** जन्तोः **फलं** स्थावरता, **तस्य भावना** उत्पादना कर्मणा फलोत्पत्तेः **पूर्वमेवे**त्यर्थः. ननु विधिसम्बन्धाभावे फलासम्भव इत्याशङ्क्याहुः **महापुरुषे**ति, महापुरुषदृष्ट्यैव फलमुद्बुद्धं नातो विध्यपेक्षेतिभावः ॥७॥

महतो नन्दस्याभिज्ञापकौ च भविष्यतः. फलं तूत्कृष्टं भविष्यत्येवातः कर्मफलाच्छापः समीचीनः॥७॥

ननु शापेऽदत्ते कदाचिदुत्कृष्टकर्मापि सम्भवति, ततः पापक्षये मुक्तिरेव कदाचिद् भवेत्, सत्सङ्गे भक्तिर्वा, ततः किमिति शापं दत्तवानित्याशङ्क्य तयोः सत्कर्मसत्सङ्गौ दुर्लभाविति तदर्थं तयोर्विद्यमानदोषस्य तदुभयाजनकत्वं निरूपयति द्वादशभिर्न **ह्यन्य** इति.

॥ श्री नारद उवाच ॥

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥८॥

सन्मार्गः सत्सङ्गो वा सद्बुद्ध्या भवति, श्रीमदेन तु सद्बुद्धिः कदापि नोत्पद्यते. तदाह**ान्यो जोष्यान् जुषतः** प्राणिनो **बुद्धेर्भ्रंशहेतुर्न** भवति. बुद्धिरत्र

प्रकाशः

न ह्यन्य इत्यस्याभासे पूर्वं **मुक्ति**पदं संसारनिवृत्तिबोधकमपरं तु सायुज्यस्येति ज्ञातव्यं; द्वितीये **भक्तिरि**तिपाठे तु न कश्चित् सन्देहः. **श्रीमदादन्य** '**आभिजात्यादी रजोगुणो बुद्धिभ्रंशो** नेत्यत्र **रजोगुण** इति रजसो धर्म इत्यर्थक**माभिजात्यादि**विशेषणम्. तत्र **रजोगुण**शब्देन रजोधर्मोभिप्रेतः. ते च धर्मा एकादशस्कन्धे "काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखं मदोत्साहो यशः

लेखः

न ह्यन्य इत्यस्याभासे **दोषस्ये**ति श्रीमदस्येत्यर्थः. एतस्य **तदुभयाजनकत्वं** द्वादशानामित्यर्थः. तत्र बुद्धिभ्रंशद्वारा तदजनकत्वमेतच्छ्लोकार्थः, दोषान्तरद्वारा तदजनकत्वमग्रिमाणामर्थ —इतिविभागः. श्रीमदे एतदुभयाजनकत्वं शापहेतुतावच्छेदकमतः शापहेतुर्द्वादशभिरिति पूर्वोक्तेन न विरोधः.

सद्बुद्धिरिति बुद्धिपदेनान्तःकरणं; **बुद्धिः सती** ज्ञानजनिका **नोत्पद्यते** इत्यर्थः. **तदाहे**ति सत्या बुद्धेरनुत्पादनं **भ्रंश**पदेनाहेत्यर्थः. बुद्धेः सतीत्वे चित्ताश्रितज्ञानजननात् तस्याश्चित्तत्वभवनात् ऊर्ध्वभावः, असतीत्वे तु तस्या मनोरूपत्वभवनाद् **भ्रंशः** अधःपात एवेति भावः. **बुद्धिभ्रंशहेतुरिति**, तथा च मूले बुद्धिं भ्रंशयतीति **बुद्धिभ्रंश** इतिविग्रहः, कर्मण्युपपदे अण्. सत्या बुद्धेर्ज्ञानजनकत्वे

---

१. 'ज्ञा'.

सात्त्विकी "सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानमि"ति. तस्य बाधकं त्रिविधं— गुणा विरुद्धा, आश्रयनाशकमाश्रयविरोधी अन्तरजनकं च. तदत्र श्रीमदात् त्रयं भवति. यद्य"पीन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनश्चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्भस्तोयमिव ह्रदादि"ति विषयमात्रसेवनमेव बुद्धिभ्रंशहेतुस्तत्रापि यथा **श्रीमदाद्** बाह्याभ्यन्तर-दोषसंसर्गरूपा**दन्यः** प्रकारान्तरेणोत्पन्नो विषयानुभवः साधनस्य द्वन्द्वत्वाभावात् परिहार्यो भवति. अयं त्वपरिहार्यः, यतस्तेनान्तर्बहिर्दोषौ जन्येते इत्या**हाभिजा-त्यादिरि**ति— "विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मद एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमा" इति. तत्र धनमदो मध्यम उभयमदयोः साधको, यथा मध्यमं गृहं दग्धं सत् पार्श्वस्थितयोरपि दाहं सम्पादयति. **आभिजात्यस्यादिः श्रीमद-**स्ततोप्यनर्थसम्पादकः. तस्य मदान्तरापेक्षया दुष्टविषयजनकत्वं हेतुत्वेनाह **यत्र**

प्रकाशः

प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यम" इत्यनेनोक्ताः. ते सर्वे यथासम्भवमाभिजात्यादिनोत्पा-द्यन्त इति तस्य रजोगुणत्वमुक्तम्. एवं सति तस्य मादकत्वमत्राभिप्रेतं, तदाहु**र्गुणा**

लेखः

प्रमाणमाहुः "**सत्त्वात् सञ्जायते**" इति. तथा च सत्त्वकार्यस्य ज्ञानस्याभावादव्यभि-चरितकारणस्य सत्त्वस्याभावोनुमेय इतिभावः. **तस्ये**ति चित्ताश्रितस्य ज्ञानस्य **त्रिविधं बाधकं** जनने प्रतिबन्धकमतो बुद्धिभ्रंशकमित्यर्थः. **गुणा** इति ज्ञानस्य गुणा विषयाः. तथा च **विरुद्धा** निषिद्धा विषयाश्चित्ताश्रितज्ञानप्रतिबन्धका इत्यर्थः. विषयभोगे स्त्री मुख्येति मूले **स्त्री**ग्रहणम्. **आश्रयस्य** चित्तस्य **नाशकं द्यूतं**, द्यूतेनान्तःकरणाशुद्ध्या तस्य चित्तत्वं नश्यतीत्यर्थः. **आश्रये** चित्ते यथार्थज्ञान-**विरोध्यन्यत् ज्ञानं जनयत्यासवः**, मदे सत्यन्यदेव भासत इत्यर्थः. तथा च श्रीमदेन त्रिविधबाधकजननाद् बुद्धिः सती ज्ञानजनिका **नोत्पद्यते** बुद्धेर्ज्ञानजननरूपसतीत्वं न भवतीति चित्तत्वरूपोर्ध्वभावात् मनस्त्वरूपाधःपातलक्षणो **भ्रंशो** भवतीत्यर्थः. तथा च बुद्ध्यभावात् न सन्मार्गसत्सङ्गाविति भावः. मनोबुद्धिश्चित्तमितिक्रमः; अहङ्कारस्त्रिष्वप्यनुस्यूतः — एवमन्तःकरणचतुष्टयं ज्ञेयम्. **दोषसंसर्गरूपादि**ति भवति तथान्येन न भवतीतिशेषः. **आभिजात्यादेरि**त्यस्याभासमाहुः **अन्य** इति. **विद्यामद** आन्तरो दोषः, **आभिजनो मदो** बाह्यदोषः. **तेष्वप्याधिक्ये**ति— **तेषु**

कारिकार्थः

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यानित्यत्र विद्यामद इति.

स्त्रीद्यूतमासव इति. अन्यान्यपि दूषणानि वक्ष्यति, ततः प्रथमं दोषत्रयमाह यदपरिहार्यम्. प्राणिनः सर्वहेतवः कायवाङ्मनांसि; तत्र **स्त्री** कायनाशिका, **द्यूतमनृतं** वाङ्नाशकम्, **आसवो** बुद्धिनाशकः; **आसवो** मदिरा. "द्यूतं पानं स्त्रिय" इत्यधर्मपादा अप्येते. तत्रापि प्रथमं **स्त्री**निर्देशस्तेष्वप्याधिक्यख्यापकः– "न तथास्य भवेन् मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतो योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गत" इति. श्रीमदे त्वेते भवन्त्येव; धनमदकृतस्त्रियोऽसत्या एव भवन्ति ॥८॥

दोषान्तराण्याह **हन्यन्ते पशवो यत्रे**ति.

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ।
मन्यमानैरिदं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥९॥

यत्र श्रीमदेन प्रत्यहं भक्षणार्थं **पशवो हन्यन्ते. निर्दयैरि**ति बाला आमा अपि हन्यन्त इति सूचितं, कोमलमांसत्वात्. कि**ञ्चाजितात्मभिः** सर्वाण्येव पापानि क्रियन्ते, "नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आघृणोती"त्यत्र निरूपणात्. तेषां स्वेष्टसाधनताज्ञानवतां कथं स्वानिष्टे प्रवृत्तिरिति चेत् तत्राह **मन्यमानैरि**ति. पूर्वोक्तप्रकारेण विषयभोगः स्वभावतः सुखहेतुर्भवति, पर्यवसाने परलोके च दुःखहेतुर्भवति. स च परलोकोस्य देहस्य नाशे. ते हि धनमदेन वस्तुतत्त्वं न जानन्ति, अत **इदं** शरीरं **नश्वरमप्यजरामृत्यु** जानन्ति जरामृत्युरहितम् ॥९॥

प्रकाशः

विरुद्धा इत्यादि. अन्यद् द्वयमग्रे स्फुटीभविष्यति **तत्र स्त्री कायनाशिके**त्यादिना. ननु स्त्रियो दुष्टत्वे सद्भिः किमर्थं विवाहादि क्रियत इत्यत आहु**र्धनमदे**त्यादि. तथा च न धर्मार्थाः स्त्रियस्तथाविधा इतिदोषः ॥८॥

हन्यन्त इत्य**त्रेदं[1] देहमि**ति **देह**शब्दस्य नपुंसकत्वं "कायो देहः क्लीबपुंसोरि"-तिकोशात् ज्ञेयम् ॥९॥

लेखः

त्रिष्वपि मध्ये **आधिक्यख्यापकः,** स्त्रीणामितिशेषः ॥८॥

हन्यन्ते इत्यस्याभासे. **दोषान्तराण्याहे**ति, **अजितात्म**पदस्य सर्वपापकर्तृत्वेन व्याचिख्यासितत्वादत्र बहुवचनम्. **स्वेष्टसाधनते**ति इदमिष्टमिदमनिष्टमिति विवेकवतां, न तु मत्तानामित्यर्थः. **अत इदमि**ति. तथा च वस्तुतो **नश्वरम**पि शरीर**मजरामृत्यु**

---

१. 'त्र मूलस्थेदं.

ननु सत्यमेव, देवा अजरामरा इति, तत्राह **देवसंज्ञितमपी**ति.

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥१०॥

यथाजाशब्दोजायां न योगेन वर्तते किन्तु ब्रह्म कदाचित् तेन रूपेण सोमाहरणार्थं गतवदिति तथा "अमरानिर्जरा" इत्यपि; यथा मनुष्याणां यावता कालेन जरा मृत्युर्वा भवति तथा न भवतीति. यथा 'न स्वपिति'– पश्चाच्छायी प्रथमबोधी च तमाहुर्न स्वपितीत्यधिकारिणस्तथात्वाद् वा. वस्तुतस्तु देहत्वाद् **देवसंज्ञितमप्यन्त**वदेवभवति, अतो**ऽन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितमे**व भवति. देहस्य त्रिधा प्रतिपत्तिर्दह्यते भक्ष्यते विशीर्यते वा. विशीर्णपक्षे कृमयो भवन्ति, भक्षणेन ततो विड् भवति, दाहे भस्म. पूर्वं देवसंज्ञामपि प्राप्यान्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञाः प्राप्नोति. एवं सति यस्तादृशदेह**कृते भूतध्रुक्** स **किं स्वार्थं वेद** अपि तु न वेद? **यतो** भूतद्रोहान्नरकपातः. विशेषाकारेण हननमुक्तमिति श्रीमदस्य तदव्यभिचारात् प्रकृतेपि तदस्तीति हिंसानिन्दा. अनेन दृष्टान्तेन स्त्रीसेवका अपि स्वार्थं न विदुरित्युक्तम्, अतः स्वार्थापरिज्ञानाद् धर्मसत्सङ्गाभावात् शाप उचित एवेतिभावः. अनेन देहार्थं प्रयत्नो न कर्तव्य इत्यर्थादुक्तम् ॥१०॥

प्रकाशः

देवसंज्ञितमित्यत्र **किन्तु ब्रह्मे**त्यादि. यथा **चाजाशब्दः** सारूप्यनिबन्धनया गौण्या प्रवृत्तस्तथा **देवा**दिशब्दा अपि सारूप्यनिबन्धनया प्रशंसानिबन्धनया वा गौण्या प्रवृत्ताः. तत्र हेतु**र्यथा मनुष्ये**त्यादि **यथा न स्वपिती**त्यादि च. पक्षान्तर-माहु**रधिकारिण** इत्यादि. **अधिकारि**देवानां **तथात्वात्** तस्य समुदायपातित्वात् 'छत्रिणो यान्ती'तिवत् तथात्वमितिभावः. ननु श्रीमदे निन्द्ये हिंसानिन्दायाः किं प्रयोजनमत आहु**र्विशेषे**त्यादि. **अनेन दृष्टान्तेने**ति देहसेवकदृष्टान्तेनेत्यर्थः ॥१०॥

लेखः

एवं प्रकारेण **देहं मन्यमानैरि**ति मूलेऽन्वयः ॥९॥

देवसंज्ञितमित्यत्र **प्रकृतेपि तदस्ती**ति– अनुक्तमपि हिंसनं श्रीमदस्य हिंसाऽव्यभिचारादत्राप्यस्तीति ज्ञेयमित्यर्थः. **अनेने**ति यथा देहार्थकत्वाद् भूतद्रोहस्य तत्कर्तुः स्वार्थाज्ञानं तथा स्त्रीसेवाया अपि देहार्थकत्वात् तत्कर्तुरपि स्वार्थाज्ञानमिति इवादिपदाभावेपि बिम्बप्रतिबिम्बभावेन ज्ञापितमित्यर्थः॥१०॥

तत् शास्त्रान्तरे विरुध्यति, "आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपी" ति "तस्मादस्य वधो राजन् सर्वार्थवध उच्यत" इत्यादिवाक्यै रक्षाया अवश्यविधानात्, तत्राह **देहः किमन्नदातुः स्वमिति**.

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ।
मातुः पितुर्वा क्रेतुर्वा बलिनोऽग्नेः शुनोऽथ वा ॥११॥

अविचाराद् देहे रक्षार्थं प्रयत्नवचनानि, विचारे तु न रक्षणीयं स्यादिति सन्देहजनकान् पक्षानाह. **देहः** केन सम्बन्धेन सम्बन्धी भवतीति विचारणीयम्. तत्रात्मा न भवति, अल्पविवेकेनापि तद्भेददर्शनात्. आत्मीयत्वं तु भवति. सा चात्मीयता किन्निबन्धना? बहूनामेवैकस्मिन् शरीर आत्मीयत्वबुद्धिः. शरीरस्योत्पत्तिर्द्विविधा– आद्या प्रत्यहं च जायमाना. प्रत्यहं चेद् देहो**ऽन्नदातुर्**भवत्यन्नमयत्वाच्च देहस्य. आद्यश्चे**न्निषेक्तुः** पितुः. लोकप्रतीत्या चेदुत्पत्ति**र्मातुर्**भवति. परलोकसाधकत्वे **मातुःपितुर्**भवति, पुत्रिकापुत्रपक्षे तथैव शास्त्रार्थत्वात्. एषा स्वरूपस्थितिः. वैषयिकस्थितिमप्याह **क्रेतुर्वा बलिन** इति, यो वा विक्रीणीते यो वा बद्ध्वा गृह्णाति? अन्त्यविचारश्चे**दग्नेः शुनोथ वे**ति? कृमिपक्षे न स्वत्वं कस्यचित् ॥११॥

ततः किमत आह**एवमि**ति.

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।

प्रकाशः

देहः किमित्यत्र. ननु देहस्य सर्वथाऽरक्षणीयत्वे पूर्वोक्तवाक्यानां का गतिरित्याशङ्कायामाहु**रविचारादि**त्यादि. तथा च तानि वाक्यानि त्रिवर्गोपयोगायाविचारादेव प्रवृत्तानीति न तद्विरोधो दोषायेत्यर्थः. तत्राभेदसम्बन्धं निराकुर्वन्ति **तत्रात्मे**त्यादि. नन्वन्नेन देहस्य कः सम्बन्ध इत्यत आहु**रन्नमयत्वादि**ति, " स वा एष पुरुषोन्नरसमय" इतिश्रुतेः. **आद्य** इत्याद्यो[१] य उत्पत्तेः सम्बन्धीत्यर्थः. **पुत्रिकापुत्रपक्ष** इति स्वस्य पुत्राभावे स्वपुत्रिकापुत्रेणैव पित्रोरुद्धार इतिपक्ष इत्यर्थः. **कृमिपक्ष** इत्यन्त्यविचार[२] एवेति ज्ञातव्यम् ॥११॥

लेखः

देहः किमित्यत्र नित्यप्रलयपक्षमाश्रित्याहुः **प्रत्यहं चे**ति. **वैषयिके**ति, क्रेता बन्दीकर्ता वा तद्देहं स्वकीयं मत्वा तद्विषयानन्नवस्त्रादींस्तस्मै ददातीत्यर्थः॥११॥

---

१. 'द्याया उ'. २. 'त्यतो वि'.

को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तून् कृतेऽसतः ॥१२॥

एवं सर्वेषां **साधारणं देहमात्मसात्कृत्वा को** वा **जन्तून् हन्ती**तिसम्बन्धः. तत्रापि **विद्वान्.** यतोयं देहः **साधारणः.** वस्तुतस्त्वयं देहो न पूर्वोक्तानां मध्ये कस्यचिदपि भवितुमर्हति, यतो**ऽव्यक्तमेव प्रभव** उत्पत्तिस्थान**मप्यय**स्थानं च. नन्वेतादृशा घातका अपि बहवो दृश्यन्त इति चेत् तत्राहु**रसत** इति, ये सच्छब्दवाच्या देवाः सन्तोपि ते नैवंविधा इत्यर्थः ॥१२॥

तर्हि किं कर्तव्यमित्याकाङ्क्षायामा**हासत** इति.

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥

असतो लक्षणं **श्रीमदान्धस्ये**ति, श्रीमदेनान्धस्य. यथा भगवान् "यस्यानुग्रहमिच्छामि हरिष्ये तद्धनं शनैरि"ति तथा नारदोप्याह. यथा काचकामलादिनान्धस्याञ्जने दत्ते दृष्टिर्भवति, न तु स्वभावत एवान्धस्य. अयं च श्रीमदेनान्धः; श्रिया अभावो येनैव भवति तदेवाञ्जनं भवति. तद् दारिद्र्यमेव, **दारिद्र्यं** नाम दुरदृष्टसहितसम्पत्त्यभावः. सन्त्यञ्जनान्यन्यान्यपि व्याध्यादीनि, परं **दारिद्र्यं परममञ्जनम्.** न केवलं दारिद्र्यस्य दोषनिवर्तकत्वं किन्तु गुणजनकत्वमपीत्या**हात्मौपम्येने**ति. आत्मोपमानं यत्र तत् ज्ञानमात्मौपम्यं– यथात्मनि सुखदुःखानुभवस्तथा सर्वस्येत्यनुसन्धानं; यथात्मसुखार्थे यतते दुःखनिवृत्त्यर्थं च, न तु दुःखार्थं, तथा सर्वेषामपि सुखदुःखाभावार्थे यतत इत्यर्थः ॥१३॥

आत्मौपम्येन भूतानां दर्शनं दरिद्रस्यैव नान्यस्येत्यर्थे दृष्टान्तमाह **यथे**ति.

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।
जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥१४॥

दारिद्र्यं सर्वदुःखनिदानम्. दारिद्र्यंगतः सर्वाण्येव दुःखान्यनुभवति, न

प्रकाशः

एवमित्यत्रात्मसात्कृत्वेति देहव्यवस्थाज्ञानेनात्माधीनं कृत्वा. **एतादृशा** इति विद्वांसः. **नैवंविधा** इति नावैधहिंसनपराः ॥१२॥

लेखः

आत्मौपम्येनेत्यत्र **आत्मे**ति. इदमर्थकथनं, विग्रहस्तु आत्मनः औपम्यं यत्रेति. तादृशेन ज्ञानेनेक्षत इत्यत्र प्रकारता तृतीयार्थः, घटत्वेन जानातीतिवत्. औपम्यमिति स्वार्थे ष्यञ् ॥१३॥

त्वदरिद्रः, प्रतीकारबाहुल्यात्. स्वानुभवेनैव **कण्टकेन विद्धाङ्गः कण्टकव्यथामन्यस्मै न वाञ्छति;** जातामपि दूरीकरोति. **लिङ्गैः** स्वानुभवैः परदुःखज्ञापकैः कृत्वा **जीवसाम्यं गतः** सर्वेषु जीवेषु समत्वं प्राप्तः. **न तथाऽविद्धकण्टकः** समत्वं प्राप्नोति ॥१४॥

ननु तथापि दारिद्र्यस्य दुःखरूपत्वात् फलोत्तमत्वेपि स्वरूपतोनिष्टरूपत्वात् कथं स्तूयत इत्याशङ्क्याह **दरिद्रस्येति.**

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥१५॥

दारिद्र्यं मोक्षसाधकमतः स्वरूपतो दुःखरूपमपि तपोवदाशांस्यमेव. तस्य मोक्षसाधकत्वमाह **दरिद्रः** प्रथमतो **निरहंस्तम्भः** अहं-लक्षणः स्तम्भो निर्गतो यस्मात्. मोक्षेहङ्काराभावः करणम्. **अहमि**त्यस्यात्मपरत्वव्यावृत्त्यर्थं **स्तम्भ**पदं; अहङ्कारस्तम्भेनैवाज्ञानगृहं सुस्थिरं भवति. किञ्च **सर्वमदैर**पि मुक्तो भवति, **यदृच्छयैव** च **कृच्छ्रं** क्लेशाधिक्यं प्राप्नोति. ततः किमत आह **तद्धि तस्य परं तप** इति, यत् कष्टेन तपः कर्तव्यं तत् तस्य स्वभावत एव सम्पद्यते, विहितत्वं त्वप्रयोजकम् ॥१५॥

किञ्च मोक्ष इन्द्रियजयो योगशास्त्रसिद्धः साधनत्वेन यथा साङ्ख्येहङ्काराभावो. दारिद्र्ये इन्द्रियजयः स्वभावत एव भवति, तदाह **नित्यमिति.**

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रियाण्याशु शुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥१६॥

प्रकाशः

दरिद्र इत्यत्र **यत् कष्टेने**ति. **कष्टेने**न्द्रियनिग्रहपूर्वकं **यत् कर्तव्यं** "देवद्विजगुरुप्राज्ञे"त्यादिना भगवतोक्तं वा भगवच्चिन्तनं वा **तत् स्वभावत एव** प्रयत्नं विनैव भवतीत्यर्थः. ननु स्वभावकृतेस्तथात्वं कुतो, विहितत्वेनाक्रियमाणत्वादित्यत आहु**रप्रयोजकमि**त्यवैधेपि सत्फलस्य स्तम्भाभावादेर्दर्शनादनुकूलतर्करहितम्. तथा च "येन केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेदि"तिन्यायात् पदार्थसिद्धौ तात्पर्यं, न विहितत्वादावितिभावः ॥१५॥

लेखः

नित्यमित्यस्याभासमाहुः **किञ्च मोक्षे** इति. पूर्वश्लोके साङ्ख्यप्रकार उक्त इत्याशयेनाहुः **यथा साङ्ख्ये** इति. **अहङ्काराभावः** पूर्वश्लोके उक्त इतिशेषः.

सर्वदा **क्षुत्क्षामदेहस्यान्नकाङ्क्षिण इन्द्रियाण्याशु शुष्यन्ति,** "विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन" इतिवाक्याद्. **दरिद्रस्ये**तिहेतुः. इन्द्रियप्रागल्भ्याभावादेव **हिंसा निवर्तते,** ज्ञानेन्द्रियप्रागल्भ्याभावाच्च तद्धेतुभूता तृष्णापि, विषयाभावाच्च ॥१६॥

मनोरथरूपा तृष्णा त्ववशिष्यते, तस्या अपि निवृत्तिमाह **दरिद्रस्यैवेति.**

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति सन्तर्षं तत आराद् हि सिध्यति ॥१७॥

साधुसङ्गात् तृष्णापगमः. ते हि भगवत्प्रेरिता परिभ्रमन्ति लोकानामुद्धारार्थम्. तेनावृतत्वाद् **दरिद्रस्यैव** गृहे गच्छन्ति. तेषां काण्डद्वयनिष्णातत्वमाह **साधवः समदर्शिन** इति. तत्रापि विश्वासार्थं सदाचार एव मुख्यः, तदाह **सद्भिः क्षिणोति सन्तर्षमिति. सन्तर्षस्**तृष्णा समीचीनापि, धर्मार्थमपि यात्रार्थमपि वा धनाकाङ्क्षां, **ततः** शीघ्रमेव सिध्यति ॥१७॥

ननु सन्तोपि भक्ष्यादिरहिते दरिद्रगृहे कथं गच्छेयुः? तत्राह **साधूनामिति.**

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥

सतां धनिनां च परस्परविरुद्धा धर्माः– ते हि **साधवः** सदाचाराः, ते **ह्यसन्तो**ऽसदाचाराः. साधवस्तु **समचित्ताः,** ते **तूपेक्ष्या** एव विषमचित्ताः. **समचित्तानां** विषमचित्ता **उपेक्ष्या** एव भवन्ति. साधवस्तु **मुकुन्दचरणैषिणो** मोक्षदातुश्चरणान्वेषणपराः, अन्ये **त्वसदाश्रयाः;** असत्स्वेव हि धनं तिष्ठति, तदर्थम्.

प्रकाशः

दरिद्रस्यैवेत्यत्र. नन्वनावृतगृहत्वमन्यत्रापि सम्भवतीति कथं तादृशामेव गृहे साधूनां गमनमित्यत आहु**स्तत्रापी**त्यादि[१], दरिद्रेष्वपि **सद्विश्वासार्थं सदाचार एव मुख्यो** गमक इति तं दृष्ट्वा तत्रैव साधवो गच्छन्तीत्यर्थः. **समीचीने**ति **समु**पसर्गार्थः; शेष**स्तर्ष**पदार्थो ज्ञेयः ॥१७॥

लेखः

नित्यमित्यत्र **तद्धेतुभूता तृष्णे**ति भोगहेतुभूता बुभुक्षेत्यर्थः ॥१६॥

साधूनामित्यत्र मूले **विषमचित्त**पदाभावे**प्युपेक्ष्यैरि**तिपदेन तत्प्राप्तिरिति व्युत्पादयन्ति **समचित्तानामिति.** समचित्तोपेक्ष्यत्वकथनेन विषमचित्तत्वमुक्तमित्यर्थः.

---

१. 'रत्रा'.

तच्चरणान्वेषिणो यतस्तमेवाश्रित्य तिष्ठन्ति, अतो **धनस्तम्भैर्ध**नेन स्तम्भप्राया जाता गृहभारवाहकास्तैर्न किञ्चित् कृत्यमित्यर्थः ॥१८॥

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।
तमो मदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥

एकोप्यंशो नोभयोस्तुल्यः, अतः श्रीमदनिवृत्तिः कर्तव्या, दारिद्र्यं च सम्पादनीयं, निन्दितकर्मणा च स्थावरत्वम्. मददूरीकरणं तु सतामावश्यकं; सतां दृष्टिर्हि ब्रह्मज्ञानवत् सर्वदोषनिवर्तिका, अन्यथा त्रिदोषयुक्ता नाशमेव यास्यन्तीति. तयोर्दोषान् गणयति **माध्व्या मत्तयोः. माध्वी**पदेन रस्यत्वादनिवृत्तिः; फलं तु नाशकमेव. **वारुणी** दैत्यत्वसम्पादिका. **श्रीमदेन चान्धौ स्त्रैणौ** च. अतो दोषत्रयं दूरीकरिष्यामि— **तमो**ऽज्ञानं **मदो**ऽ**जितेन्द्रियत्वं** च ॥१९॥

एवं हेतुं निरूप्य शापमाह प्रसादान्तं त्रिभि**र्यदि**ति,
दोषानुवादः शापश्च प्रसादश्चेत्यनुक्रमात् ॥(९)॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

अनुवादमाह **यद्** यस्मात् कारणा**दिमौ लोकपालस्य** कुबेरस्य रक्षायां प्रतिष्ठितस्य **पुत्रौ भूत्वा** तत्पदाभिषेकयोग्यौ **तमसा प्लुतौ.** किञ्च **विवाससं** नग्न**मात्मानं** च **न विजानीतः.** किञ्च **सुदुर्मदौ** ॥२०॥

प्रकाशः

तदहमित्यस्याभास **एकोप्यंश** इत्यादि ॥१९॥
यदिमावित्यत्र त्रयाणां श्लोकानामर्थमाहु**र्दोषे**त्यादि ॥२०॥

लेखः

धनस्तम्भैरितिपदमेतत्त्रयकार्यत्वेनोक्तमित्याहुः **अत** इति ॥१८॥

तदहं मत्तयोरितिश्लोकस्यार्थमाहुः **अतः श्रीमदे**ति. **अतो दोषत्रयमिति**— स्त्रैणत्वमजितात्मत्वे हेतुः, मत्तत्वं श्रीमदान्धत्वं च तमसि मदे च हेतुः, अतो दोषत्रयमेव पर्यवसन्नमितिभावः ॥१९॥

कारिकार्थः

"यदिमौ लोकपालस्ये"त्यादीनां त्रयाणां श्लोकानां प्रत्येकं वाक्यार्थानाहुरर्धेन **दोषानुवाद** इति (९).

अतोर्हतः स्थावरतां स्यातां नैव यथा पुनः ।
स्मृतिः स्यात् मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥

अतो दोषत्रयेण **स्थावरतां** शुद्धतामसत्व**मर्हतः**, कर्मण एव तथाफलं भवतीति. ततः किमत आह **यथा पुनरेव नैवं स्याताम्**—

ज्ञाननाशः क्रियानाशो भोगनाशस्तथैव च ।
दुःखं शीघ्रं चानिवृत्तिर्वृक्षत्वे हि भवन्ति वै ॥(१०)॥

ननु कर्मणैवैतद् भविष्यति; तव कः प्रसाद इति चेत् तत्राह **स्मृतिः स्यात् मत्प्रसादेने**ति. पूर्वजन्मवृत्तान्तस्मरणं शापेन वृक्षभावस्मरणं च यद्यपि वृक्षयोर्नौ न भवति, सत्त्वांशाभावात्, तथाप्यहं भगवत्कृपया सर्वभावं प्राप्त इति मदंशो गुप्त एव तत्रापि वर्ततेग्निवदत्राहं चेत् प्रसन्न उद्रिक्तसत्त्वगुणस्तदा मदंशस्तत्रापि प्रकटो

प्रकाशः

अत इत्यत्र मूलस्थ**स्यातः**शब्दस्य तात्पर्यमाहु**र्ज्ञाननाश** इतिकारिकया.

लेखः

यदिमावित्यत्र **ज्ञाननाश** इति. "अत्यन्तनिन्दितैरि"त्यत्र बहुवचनस्य त्रित्वे पर्यवसानादत्र तमो मदः अजितेन्द्रियत्वं चेति दोषत्रयमुक्तं; तेषां भोगः क्रमेणोक्तः. इदं च कर्मफलं, **दुःखं शीघ्रमनिवृत्तिश्च** शापफलम्. दुःखाभावे सावशेषे कर्मणि वा तादृशजन्मनिवृत्तौ कर्मणां प्ररोहस्वभावत्वात् जन्मान्तरमेव भवेत्, न तु मोक्ष इत्यनुग्रहार्थं शापद्वयमुक्तवानितिभावः. इदं पञ्चकमपि वृक्षत्वे भवति इति तदुक्तमितिभावः. कर्मणा स्थावरत्वमात्रमुक्तमिति वने मालत्यादिवृक्षत्वमेव स्यादतः शापेन व्रजवृक्षत्वं सम्पाद्य गवां छायाजननेन दुःखसहनं नन्दाभिज्ञापकत्वेन चिरस्थायित्वं च सम्पादितवांस्तेन भोगावशिष्टदोषांशग्रहणरूपोनुग्रहस्तेन वासुदेव-सान्निध्यमिति भावः. **वृक्षत्वे** इति महावृक्षत्व इत्यर्थः. **ननु कर्मणैवे**ति. महावृक्षोपि स्थावर एवेति कर्मणापीदं सम्भवतीति कर्मणैवेदमपि साधनीयं, प्रसादेन किं? प्रसादो

कारिकार्थः

अतोर्हतः स्थावरतामित्यत्र **ज्ञाननाश** इति. "तदहं मत्तयोर्माध्व्ये"तिश्लोके तमो मदः अजितेन्द्रियत्वं चेतिदोषत्रयमुक्तम्. तत्र तमःकार्यं **ज्ञाननाशः** मदकार्यं **क्रियानाशः** अजितेन्द्रियत्वफलं **भोगाभावः** —एतत् त्रयं कर्मफलम्. **दुःखं शीघ्रं दुःखानिवृत्तिश्चे**ति द्वयं शापफलम्. वातवर्षातपहिमादिसहनेन दुःखं, महावृक्षत्वाद् बहुकालस्थित्या शीघ्रमनिवृत्तिश्चेति **वृक्षत्वे** पञ्च दोषा **भवन्ती**त्यर्थः (१०).

भविष्यतीति **स्मृतिः स्यात्. तत्रापि** तस्मिन्नपि जन्मनीदानीमपि. किञ्चाधिकोऽ**नुग्रहो**पि क्रियते. **प्रसाद**स्तु स्वधर्माविर्भावः, **अनुग्रह**स्तु परदोषाणां स्वीकारः. अतस्तदीयदोषोस्माभिर्गृहीत इति, कर्मफलस्यापि भोगात् ॥२१॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।
वृत्ते स्वलोकतां लब्ध्वा लब्धभक्ती भविष्यथः ॥२२॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं प्राप्स्यथः; पुरुषापराध इति पुरुषायुःपर्यन्तं भोगः, देवत्वाद् दिव्यम्. **दिव्यशरच्छते वृत्ते**ऽतीते **वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा** ततः **स्वलोकतां च लब्ध्वा** नलकूबरत्वं च प्राप्य पूर्वावस्थातो विशिष्टौ **लब्धभक्ती भविष्यथो** भक्तिस्तत्र प्राप्तव्या. अनेनाप्राप्तभक्तेरेव स्वसाधनरूपा भक्तिर्भवति गच्छति चानयोस्तु नैसर्गिकी रतिर्भविष्यतीतिभावः ॥२२॥

एवमुक्त्वा ब्रह्मवाक्यमन्यथा न भविष्यतीति तादृशवाक्यमुच्चार्य ततो गत इत्याह **स एवमि**ति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स एवमुक्तो देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।
नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥२३॥

स नारदो देवगुह्यकर्ता **एवमुक्तः,** कर्त्तरि क्तः, पश्चा**न्नारायणाश्रमं**

प्रकाशः

स्मृतिरिति पूर्वोक्ता भगवत्स्मरणरूपा च. **तत्रापीत्यपि**शब्दार्थमाहु**रिदानीमपी**ति; शप्स्यमानावस्थायामपि. **गृहीत** इति शापदानेन गृहीतः॥२१॥

तत्र प्राप्तव्येति तस्मिन् रूपे प्राप्तव्या. सिद्धमाहु**रनेने**-त्याद्य**नेनो**पाख्यानकथनेन **अप्राप्तभक्तेरेव** पुरुषस्य **स्वसाधनरूपा** जीवसंस्काररूपा **भक्ति**र्नश्वरा भव**त्यनयोस्तु** तद्विलक्षणा **भविष्यती**तिभावः सूचित इत्यर्थः ॥२२॥

स एवमित्यत्र **पश्चादि**ति त्वार्थिकम् ॥२३॥

लेखः

हि कर्मासाध्यसाधको वाच्य इत्यर्थः. **स्वधर्मे**ति उद्रिक्तसत्त्वस्य मदंशस्य धर्मः स्मृतिस्तदाविर्भाव इत्यर्थः. **परे**ति एतेषां स्वीकारोवगणनेत्यर्थः. तथा च दोषाननुलक्षीकृत्य तानवगणय्य ग्रहणमिति यौगिकार्थः सम्पन्न इतिभावः. **तदीयदोष** इति. कर्मणां प्ररोहस्वभावत्वाद् भोगे जातेपि यावानंशोवशिष्टस्तावा**नस्माभिर्गृहीतो**ऽवगणित इत्यर्थः ॥२१॥

गतस्तद्दोषपरिहारार्थम्. तज्ज्ञानार्थं **देवर्षिरि**ति. मिलितानां मध्ये नारदस्य गमनमुक्त्वा नलकूबरयोराह **नलकूबरमणिग्रीवावि**ति. **यमलावे**कत्रोत्पन्नौ मूले मिलितौ, **अर्जुनौ** जातिविशेषः ॥२३॥

एवं शापदातुः प्रायश्चित्तं शापग्रहीतुः शापफलप्राप्तिश्चेति निरूप्य स्मृतिरपि तत एव भविष्यतीति तामनुक्त्वानुग्रहफलं भगवत्सान्निध्यं तयोर्जातमित्याह**र्षेरि**ति.

ऋषेर्भगवतस्तस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥

स हि भाव्यर्थं जानात्येव, तद् ज्ञात्वैव तथोक्तवानिति. किञ्च भगवतापि स्वकृपया तस्मिन् भगवत्त्वं सम्पादितं, तदाह **भगवत** इति. **तस्यर्षित्वं भगवत्त्वं** वाक्य**सत्यत्वं** च **कर्तुम्.** स्वयं च सर्वदुःखहर्ता, **यत्र यमलार्जुनावास्तां तत्र शनकैर्जगामा**दावेव. आरावे पुनः स्त्रीणामनुसरणं भविष्यतीति भगवानेवम्प्रकारेण तत्र गतस्तौ ज्ञापयितुं-- यत्र स्त्रियो मामेवं कुर्वन्ति तत्र युवां कथं न करिष्यन्त्यतः स्त्रीसङ्गो न कर्तव्य इति तदानीमपि स्त्रीदर्शनाभावाय शनैर्गतः. तयोरागमनं न सम्भावितमिति यत्र तावेवास्तां तत्र स्वयं गतः ॥२४॥

एवं भगवत्सेवकेषु भगवत्कृपा अतो भगवत्सेवकानुवृत्तिः कर्तव्येति गत्वा भगवान् यमलार्जुनयोर्भङ्गं करिष्यतीति तत् कुतः? सान्निध्यं तु वरप्राप्तं, तथैव च भक्तिरपि भविष्यति; सान्निध्यादेवेदं शरीरं परित्यज्य नलकूबरत्वमेव प्राप्स्यतोतो भङ्गोनुचित इत्याशङ्क्य भगवतोभिप्रायमाह **देवर्षिरि**ति.

प्रकाशः

ऋषेरित्यत्राभासे **तत एवे**त्यृषिप्रसादादेव. तयोर्ज्ञाप्यं विषयमाहु**र्यत्रे**त्यादि. एतल्लीलाश्रवणफलं भगवद्भक्तसख्यमिति स्फुटीकुर्व**न्त्येवं भगवदि**त्यादि. एतेनैव वैराग्यस्य भगवद्वशीकारकतापि स्फुटीकृता भविष्यत्यग्रिमश्लोके च ॥२४॥

लेखः

स एवमुक्त इत्यत्र **तद्दोषे**ति– हितार्थं शापदानेपि मनसि क्रोधो जातस्तत्परिहारार्थमित्यर्थः. नारायणे क्रोधजयस्य "कामं दहन्ती"त्यनेन द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मणा व्युत्पादितत्वादितिभावः ॥२३॥

योजना

स एवमुक्त इत्यस्य विवृतौ **शापदातुः प्रायश्चित्तमि**ति. **शापदातुः** नारदस्य **प्रायश्चित्तं** नारायणाश्रमगमनमित्यर्थः॥२३॥

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत् तथा साधयिष्यामि यद् गीतं तन्महात्मना ॥२५॥

एकमत्र सन्दिग्धं– स्मृतिर्जाता न वेति. तदपि प्रकटीकर्तव्यममर्यादरूपं च. **देवर्षिराह** यत् सत्त्वगुणोद्रेकेपि दुर्लभं तददतितामसे भवत्विति. ननु तत् मिथ्यैव भवत्वविचारितवचनादित्याशङ्क्याह **मे देवर्षिः प्रियतम** इति; आर्षज्ञानमर्यादा भज्येत. नारदश्च मदीयः, यत् मत्सेवकैः कृतं तत् मयैव कृतमिति. तत्राप्यत्यन्तं प्रियः प्रीतिविषयः, अतः स्नेहात् सर्वमेव कर्तव्यम्, अन्यथा स्नेहमर्यादापि न स्यात्. **यद्** यस्मा**दिमौ** च **धनदात्मजौ.** कुबेरोऽतिभक्तः, अतो मूलभावश्च शुद्धः. अतस्तावन्तमर्थं त्याजयित्वा धनदांशे भक्त्युपयोग्यंशं योजयित्वा तत्रैव स्वयं प्रविश्य शुष्कौ कृत्वा स्वाधिदैविकभावेन तद् विदीर्णं विधाय तत उद्धृत्य दृढभक्तौ कर्तव्यौ. तदा नारदवाक्यं सत्यं भवति. तथैवाहं **साधयिष्यामि; यत्** तेन **गीतं तत् तथा.** ननु

प्रकाशः

देवर्षिरित्यत्राभासे **तथैवे**ति तदुक्तप्रकारेणैवेत्यर्थः. **स्मृतिरि**ति भगवत्स्मृतिः. **दुर्लभमि**ति भगवत्स्मरणमितिशेषः. फलितमाहु**रत** इति. यद्यपि नारदेनोक्तं "सान्निध्यात् सर्वं भविष्यती"ति तथापि भगवत्कृत्यविषयत्वे तावन्मात्रस्य कार्यसाधकत्वाभावादित्यर्थः. **तावन्तमर्थमि**ति भगवद्भावाभावरूपमित्यर्थः. **भक्त्युपयोग्यंशमि**ति भगवच्चरणस्मरणरूपम्. अग्रे तत्पदत्रयं वृक्षपरमिति. तथा च यो[१] नारदवाक्यसत्यत्वकरणार्थमनुक्तमपि भङ्गं सम्पादितवान् स तदुक्तं स्मरणं कथं न सम्पादयेदितिभावः ॥२५॥

लेखः

देवर्षिर्म इत्यत्र. भङ्गानन्तरस्तुत्या स्मृतिर्ज्ञापिता भविष्यति, अभङ्गे तु जन्मान्तरन्यायेन नलकूबरत्वं स्यात् न तु स्तुतिस्तदा स्मृतिर्ज्ञापिता न भवेदिति भावः. **अतस्तावन्तमि**ति दोषांशमित्यर्थः. **धनदांशे** इति धनदत्वाद् धनमदोपि सम्भवति तदंशे इत्यर्थः. **तत्रैवे**ति दोषांशं विहाय भक्त्यंश एवेत्यर्थः. **शुष्कावि**ति स्वप्रवेशेन दोषनिवर्तनात् तपसेव शुष्कतां **कृत्वे**त्यर्थः. **स्वाधिदैविके**ति दार्वाधिदैविकस्योलूखलस्य **भाव**स्तिर्यग्भवनं तेनेत्यर्थः. **तद्विदीर्णमि**ति मूलं विदीर्णं **विधाये**त्यर्थः. **तत** इति मूलादित्यर्थः ॥२५॥

---

१. लुप्तम्.

किं परार्थ एतावानुद्यमः? तत्राह **महात्मने**ति, महानेव तस्यात्मा. महत्त्वं भगवत्प्रवेशात् ॥२५॥

इति विचार्य भगवानुभयोरन्तः प्रविष्ट इत्याहे**त्यन्तरेणे**ति.

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्भूतमुलूखलम् ॥२६॥

यमयोरर्जुनयोरन्तरा कृष्णो ययौ. केवलं बहिरेव ययावितिपक्षं दूषयितुं तुशब्दः. सदानन्दरूपत्वाद् दोषो दुःखं च तयोस्तदानीमेव निवृत्तम्. भगवत्सम्पृक्तं तूलूखलं दारुमयं भवतीति स्वसजातीयोद्धारार्थ**मात्मनो** भगवतो वृक्षयो**र्निर्वेशमात्रेणोलूखलं तिर्यग्भूतं** जातम्. ऋजुत्वे तु तदपि मध्ये निर्गच्छेत्, तदा तु पुनर्भगवत्सम्बद्धं यदि सजातीयं न मोचयेत् तदा स्वस्याधिदैविकत्वं जातं व्यर्थं स्यात् ॥२६॥

एवमुलूखले तिर्यक्प्रकारेण पतिते भगवान् यत् कृतवांस्तदाह **बालेने**ति.

बालेन निष्कर्षतान्वगुलूखलं तद् दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥

उलूखलं निष्कर्षता बालेन तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ निष्पेततुः. भूमेर्भगवत्सम्बन्धादार्द्रता, सात्त्विकभावात्. अतः शिथिलसर्वभागावाकर्ष**णोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ** जातौ. **अन्वग**नुकूलतयाकृष्टं यथा भवति त**थोलूखलं नितरां कर्षते**ति. उलूखलाकर्षणेन तावप्याकृष्टौ. **अन्वगी**षदिति वा. **दामोदरे**त्यन्वर्थनाम. बालस्योदरेणाकर्षणमल्पमेव भवति, तत्राप्युलूखलस्य स्थूलस्य. रज्जुरपि सूक्ष्मात्याकर्षेण

प्रकाशः

इत्यन्तरेणेत्यत्राभास **इति विचार्ये**ति– मत्कृतिं विना तदुक्तिर्मृषा भवतीति-विचार्येत्यर्थः. अन्तःप्रवेशकार्यमाहुः **सदे**त्यादिना. पाद्मोत्तरखण्डे तु दामबन्धनादेर्दिनमप्युक्त[१] "मष्टाविंशतिमे मासि सहःशुक्लाद्यवासरे मात्रा चोलूखले बद्धो बभञ्ज यमलार्जुनावि"तिवाक्यात्; 'सहो'मासश्च मार्गशीर्षः ॥२६॥

लेखः

इत्यन्तरेणेत्यत्र **केवलमि**ति; कृष्णत्वेनानन्दमयत्वाद् विज्ञानमयादप्यन्तरपि ययावित्यर्थः. **सदानन्दे**ति सत्त्वाद् दोषस्य आनन्दत्वात् च दुःखस्य निवृत्तिरित्यर्थः ॥२६॥

---

१. र्नियमन°.

नश्येत्. अनेनापि साक्षाद्भगवानित्युक्तं, रज्जूलूखलयोरभङ्गेप्यर्जुनयोर्भङ्गात्. उपपत्तिस्तु रज्जुर्भगवद्रूपेति पुर्वमुक्तम्. उलूखलं त्वाधिदैविकं रूपं प्राप्तवत्, अतो युक्तमेव मूलतः पतनम्. क्रियाशक्तेरल्पीयस्या अप्युद्गताया महत् कार्यं जातमित्याह **परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपा**विति. परमं विक्रमं प्रापितौ **परमविक्रमितौ,** यथा भीमेन हनुमता वा बलाच्चाल्येत. **परमविक्रमितयो**रिव योय**मतिवेपः स्कन्धप्रवालविटपानां** ययोः. स्कन्धस्य चलनमतिकठिनं, ततोप्यल्पप्रवालानां पृथक्तया चलनमत्याश्चर्यं, ताभ्यां युक्तानां विटपानां चलनमिति. किञ्च **कृतश्चण्डः शब्दो** याभ्यां, पाते महान् शब्दः. आसुरभावस्य वा नाशदशायां तदभिमानिनः शब्दः. एवमसुरनाशिकाया भगवत्क्रियाशक्तेर्माहात्म्यमुक्तम् ॥२७॥

एवं तयोर्दोषपरिहारमुक्त्वा गुणमाह **तत्रे**ति.

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥

परमया श्रिया दश दिशः **स्फुरन्त्यो** जातास्तावपि **स्फुरन्तौ** सन्ता**वुपेत्ये**तिसम्बन्धः. अस्यैव **स्फुर**च्छब्दस्य विभक्तिलिङ्गविपरिणामेन **दिक्**शब्देनापि सम्बन्धः. प्रकाशमानया तत्सम्बन्धिन्या वा कृत्वा **तत्र** देशे तयोर्वृक्षयोर्वा **स्फुरन्तौ** निर्गच्छन्तौ

श्रिया विराजमानौ ततो निर्गतौ. **ककुभः** सम्बन्धि तेजो विद्युति दृष्टं, अत एव परमशोभात्वेन निर्दिष्टम्. यथा दामोदरेण मोचनमेवं नग्नेनापि पीताम्बरतुल्यतेजःसम्पादनमित्यद्भुतचरित्रमुक्तम्. निर्गमनात् पूर्वमेव यावदभीष्टं तावद् रूपं सम्पन्नमिति **सिद्धौ. कुजयो**र्वृक्षयोः सकाशादागत्य भगवन्निकटे. पूर्ववृत्तान्तज्ञानवतामपि भ्रममिवोत्पादयन्तौ ताविति दृष्टान्तेनाह **जातवेदा इवे**ति. दृष्टान्तेपि द्वित्वमत्यन्तदुर्लभम्. **कुजयोर**रणिद्वयरूपयोः सकाशाद् यथा श्रौतोग्निर्भवति. **जातो वेदो** यस्मात्; क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा वह्निरिवेत्यर्थः. ततो **भगवन्तं प्रणम्य,** पूर्वज्ञानस्य दार्ढ्यात् **शिरसे**ति; साष्टाङ्गनमस्कारं भूमौ कृत्वा देवानामितरनमस्कारशङ्कां भूमिसम्बन्धशङ्कां च व्युदस्य **बद्धाञ्जली** भूत्वा भगवन्तं वक्ष्यमाणप्रका**रेणोचतुः स्मे**तिसम्बन्धः. शापविमोक्षे जातेपि भगवन्तमपृष्ट्वाऽस्तुत्वा च न गन्तव्यं, यतो भगवा**नखिललोकनाथः** सर्वलोकाधिपतिः, स्वयमेकलोकाधिपतेः पुत्रौ; तदाज्ञाव्यतिरेकेण गते तस्मिँल्लोके स्थितिरपि न स्याद्, भक्तिस्तु दूरे. अञ्जलिबन्धो विज्ञापनार्थः. तादृशयोः कथं भगवत्स्तोत्रेधिकार इत्याशङ्क्याह **विरजसा**विति. अत्रासम्भावनाव्युदासाय **स्मे**तिप्रसिद्धिरुक्ता ॥२८॥

दशभिः प्राणभृच्छ्लोकैश्चक्रतुः स्तोत्रमुत्तमम् ।
ज्ञानवैराग्ययोरत्र निर्णयः समुदीरितः ॥(११)॥

प्रकाशः

तत्र श्रियेत्यत्र **ककुभ** इत्यस्य प्रथमाबहुवचनान्ताभिप्रायेणाहु**र्विभक्ती**त्यादि. **ककुभ** इति षष्ठ्यन्तमभिप्रेत्य प्रयोजनान्तरमाहुः **प्रकाशे**त्यादि. द्वितीयपक्षतात्पर्यमाहुः **ककुभः सम्बन्धी**त्यादि. तच्च तत्र भगवत्स्वरूपावच्छेदेन या ककुप् तस्याः सम्बन्धिनी श्रीः शोभा तद्रूपं ज्ञेयम्. तत्र गमकमाहु**रत एवे**त्यादि. तथा च तया विद्युत्तुल्यया **परमया श्रिया स्फुरन्ता**वित्यर्थः. **जातो वेदो यस्मा**दिति, **वेदो** ज्ञानम् ॥२८॥

स्तुतितात्पर्योक्तौ प्राणभृच्छ्लोकैरिति. प्राणान् बिभ्रतीति **प्राणभृतः,** कर्तरि क्विप्. तथा चेदानीन्तनप्राणानां भगवद्भक्त्या पोष्यत्वार्थं दशत्वसङ्ख्यया स्तुतिकृतिरित्यर्थः. सङ्ख्यातात्पर्यमुक्त्वा स्तुतितात्पर्यमाहु**र्ज्ञाने**त्यादिना. तथा च पूर्वेषामस्य [१]चाध्यायस्य सङ्गत्यर्थ**मत्र तयोर्निर्णय** इत्यर्थः (११).

लेखः

बालेनेत्यत्र **परमे**ति. एतादृशोतिवेपो ययोः स्कन्धादीनां वर्तते इत्यर्थकथनं, विग्रहस्तु– परमविक्रमितयोरिवातिवेपो येषां तादृशाः स्कन्धप्रवालविटपा ययोरिति ॥२७॥

तत्र श्रियेत्यत्र पूर्वं **स्फुर**च्छब्दस्यावृत्तिरुक्ता ततः पक्षान्तरमाहुः **प्रकाशमानये**ति– तादृश्या **ककुप्सम्बन्धिन्या श्रिया स्फुरन्तौ** तावित्यर्थः. अस्मिन् पक्षे **ककुभ** इति षष्ठ्यन्तं ज्ञेयम्. **भ्रममिवे**ति पूर्वं नलकूबरत्वेप्यग्निसदृशं तेजो न स्थितमतो भ्रम इत्यर्थः॥२८॥

स्तुतौ **दशभि**रित्यादि. वृक्षाणां निरिन्द्रियत्वमते शापेन वृक्षत्वेन प्राणा इन्द्रियाणि नष्टा इति पुनः प्राणसम्पादनमिति सङ्ख्यातात्पर्यम्. प्राणान् बिभ्रति धारयन्तीति **प्राणभृत**स्तादृशैः **श्लोकै**रित्यर्थः (११).

कारिकार्थः

स्तुतौ **कृष्ण कृष्ण महायोगिन्नि**त्यादिदशश्लोकार्थान् विचारयन्ति **दशभि**रिति. प्राणशब्द इन्द्रियवाची. वृक्षाणां निरिन्द्रियत्वमते शापेन वृक्षत्वे प्राणा नष्टा इति पुनः

१. वा°.

मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस्तथैव च ।
मध्यरूप इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपितः ॥(१२)॥
माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च वर्णितम् ।
सर्वरूपोपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर्न गृह्यते ॥(१३)॥
आध्यात्मिकस्ततो नायं भौतिकोपि ततो न हि ।
दैविकत्वेन सर्वः स्यात् द्वयं तस्माच्च जायते ॥(१४)॥

प्रकाशः

निर्णयस्वरूपं वक्तुं प्रतिश्लोकप्रतिपाद्यानर्थानाहुर्**मूले**त्यादि. **ज्ञानरूपो निरूपित** इति– यद्यपि **मूलरूपजगद्रूपमध्यरूप**निरूपणेन सद्रूप एव **त्रेधा निरूपित**स्तथापि ते ब्रह्मण इतिविशेषणात् ज्ञानमेकं प्राचीनैरितिन्यायात् सद्रूपनिरूपणेनैव चिद्रूपो निरूपित इत्यर्थः. एवं चाद्यश्लोके नित्यसच्चिदानन्दो भगवानित्युक्तं, द्वयोस्तु स्पष्टः –एवं श्लोकत्रयार्थ उक्तः (१२).

तन्निर्णयं वदन्तश्चतुर्थस्याहुर्**माहात्म्ये**त्यादि. एवमर्ध उत्तरार्धार्थ उक्तः, पूर्वार्धार्थमाहुः **सर्वरूप** इत्यादि. "विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनामि"तिवाक्याद् योगिग्रहणाभावाय. तेन सिद्धमाहु**राध्यात्मिक** इत्यादि. तर्हि कथं ग्राह्य इत्यपेक्षायां भक्त्या ग्रहणायाहु**र्दैविकत्वेने**त्यादि. "चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मन" इतिश्रुतेः "तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् स" इतिन्यायाच्च तथेत्यर्थः. समभिव्याहारसिद्धं क्रमसिद्धं चार्थं मनसिकृत्य पञ्चमस्याहु**स्तस्मादि**त्यादि. **तस्मात्**

कारिकार्थः

प्राणसम्पादनार्थमिति सङ्ख्यातात्पर्यम्. प्राणान् बिभ्रति धारयन्तीति **प्राणभृत**स्तादृशैः **श्लोकैरि**त्यर्थः. **ज्ञाने**ति, **अत्र** स्तुतौ द्वयोरपि **निर्णय** उक्तः. ज्ञाननिर्णयेनैव वैराग्यनिर्णय इत्यग्रिमकारिकायां वक्ष्यन्ति "अनेनैव तु वैराग्यमि"त्यादिना (११).

मूलरूप इति. मूलादिरूपाणि क्रमेण श्लोकत्रयप्रतिपाद्यानि– "कृष्ण कृष्णे"त्याद्यश्लोके **मूलरूपः, जगद्रूपो** देहेन्द्रियादिरूपः, **मध्यरूपो** महत्तत्त्वप्रकृत्यादिरूपः. "गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्य" इति चतुर्थश्लोकार्थमाहु**र्माहात्म्ये**ति. **आध्यात्मिक** इति. यस्मात् कारणात् **सर्वस्मिन् गृह्यमाणेपि** पुरुषोत्तमो **न गृह्यते ततो** हेतो**रयं** पुरुषोत्तमः आध्यात्मिकरूपः आधिभौतिकरूपश्च **न** भवति, किन्तु **दैविकत्वेन सर्वरूपः स्यात्. तस्मात्** पुरुषोत्तमाद् **द्वयमा**ध्यात्मिकमाधिभौतिकं **च जायते** इत्यर्थः (१२-१४).

अतः सर्वत्वकर्तृत्वे ज्ञानभक्ती फलिष्यतः ।
अतो ज्ञानं निरूप्यादौ भक्तिमाहतुरुत्तमाम् ॥(१५)॥

प्रकाशः

पूर्वोक्तरूपाद् भगवतः सकाशाद् यथा **सर्वं जायते** तथा ज्ञानं भक्तिश्चेति द्वयमपि **जायते; चो**प्यर्थे. यतो भगवत एव **सर्वत्वसर्वकर्तृत्वे** निरूपिते. तेन भगवतः सकाशादेव **ज्ञानभक्ती** जीवानां **फलिते भविष्यतोतः** क्रमेण ते निरूपिते इत्यर्थः. अत्रायमर्थः– सप्तमे जृम्भालीलायामष्टमे मृत्स्नाभक्षणलीलायां भगवता स्वस्य सर्वात्मकत्वं प्रदर्शितम्. ततस्तादृशत्वज्ञानं तदैव तिरोधापितम्. ततो नवमे दामबन्धनप्रस्तावे "न चान्तरि"त्यादिना यत् स्वरूपमुक्तं तज्ज्ञानमपि न केषाञ्चिद्

लेखः

आध्यात्मिक इति. आध्यात्मिकत्वे भौतिकत्वे वा **सर्वस्मिन् गृह्यमाणे गृह्येत,** गङ्गास्नाने भौतिकाध्यात्मिकस्पर्शवत्. आधिदैविकग्रहणं तु भक्त्यधीनमतो **नाध्यात्मिको न** वा **भौतिकः किन्त्वाधिदैविकत्वेन सर्वरूप**"स्त्वमेकः सर्वभूतानामि"ति श्लोकेनोक्तः. तेन ब्रह्मत्वेन सर्वत्र ज्ञानं फलिष्यति. "त्वं महानि"ति "गृह्यमाणैरि"तिश्लोकद्वयेनाध्यात्मिकाधिभौतिककर्तृत्वमुक्तं; तेन मुक्तिः फलिष्यतीत्यर्थः. इदं फलद्वयं "तस्मै तुभ्यमि"ति "यस्यावतारा" इति च श्लोकद्वयेनोक्तमितिज्ञेयम् (१४-१५).

योजना

स्तुतिश्लोकार्थनिरूपणे **द्वयं तस्मादि**ति. यतः अयं भगवानाधिदैविकः अतः **तस्माद्** आधिदैविकाद् **द्वयं** भौतिकाध्यात्मिकरूपं द्वयं **जायत** उत्पद्यते इत्यर्थः. **ज्ञानभक्ती फलिष्यत** इति– ब्रह्मत्वेन सर्वत्र ज्ञानं फलिष्यति, माहात्म्यज्ञानेन भक्तिः फलिष्यतीत्यर्थः (१४-१५).

कारिकार्थः

"त्वमेकः सर्वभूतानामि"ति द्वितीयश्लोके आधिदैविकत्वेन सर्वरूपत्वमुक्तं, "त्वं महानि"ति "गृह्यमाणैरि"ति श्लोकद्वयेन आध्यात्मिकाधिभौतिककर्तृत्वमुक्तम्. **अत** इति. "त्वमेक"इति श्लोकोक्तं सर्वरूपत्वं जीवानां ज्ञानं फलिष्यति, श्लोकद्वयोक्तमाध्यात्मिकाधिभौतिककर्तृत्वं च भक्तिं फलिष्यतीत्यर्थः. **अत** इति. **अतः** ज्ञानभक्तिफलनादेव "तस्मै तुभ्यमि"ति पञ्चमश्लोके **ज्ञानं** "यस्यावतारा" इति षष्ठश्लोके च **भक्तिमाहतुरि**त्यर्थः (१५).

अनेनैव च वैराग्यं ज्ञानाजनकता यदि ।
तदा सर्वं परित्याज्यमन्यथा स्याद् विनाशनम् ॥(१६)॥

प्रकाशः

वृत्तं किन्तु दामन्यूनतया तत्कार्यं साग्रं कथञ्चित् सर्वेषां ज्ञातमभूत्. तावता [1]चाश्चर्यद्वारा व्रजभक्तानां निरोध एव कथञ्चिद् वृत्तो, न तु विषयस्वरूप-याथात्म्यज्ञानेन ज्ञानस्वरूपं निर्णीतम्. तस्मादत्र तत् निर्णीयते. निर्णयाकारस्तु–भगवान् सर्वरूपोप्याध्यात्मिकाधिभौतिकोपदिग्धो न प्रकाशते. आध्यात्मिकाधि-भौतिकानि रूपाणि तु यद्यपि सद्रूपाणि तथापि ज्ञानरूपावरकाणि. भगवांश्च काल-रूपेणेश्वररूपेण वा प्रकृतिरूपेण वा कर्ता, अक्षररूपेण च सर्वरूपः. ज्ञानं भक्तिश्चेति-द्वयं तस्माद् जायते. ज्ञानं चात्र सङ्क्रामितं विद्यमानमेव निरोधं जनयति (१३-१५).

नन्वेवं सत्यस्याः स्तुतेरध्यायार्थे कथं सङ्गतिरित्यत आहु**रनेनैवे**त्यादि. **तु** पुनः **अनेनैवो**त्तमभक्तिनिरूपणेन भगवतो गुणच्छन्नमहिमत्वस्योक्तत्वाद् गुणानां चावरकत्वस्योक्तत्वाद् भगवद्द्योत्यत्वकथनेन च गुणा भगवद्द्योत्याः स्वतश्च जडा इति तत्कार्यं सर्वमेव तथेति गुणपर्यन्तेषु सर्वेष्वनेन प्रकारेण **वैराग्यं** निरूपितमित्यर्थः. तर्हि तन्निर्णयः कुत्रेत्यत आहु**र्ज्ञाने**त्यादि. **यदि** वैराग्यस्य **ज्ञानाजनकता तदा सर्वं परित्याज्यमन्यथा** यदि ज्ञानाजनकता न किन्तु ज्ञानजनकता तदा सर्वत्यागे **विनाशनं स्याद्** भक्तिमार्गाद्धीयेत. तथा चैतयोर्भक्त्या ज्ञानजननात् न गृहत्याग इत्यदोष इत्यर्थः (१६).

तर्हि शेषाणां किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां प्रथमतः षष्ठस्यार्थमाहु**र्भक्ती**त्यादि.

लेखः

वैराग्यनिर्णयमाहु**रनेनैवे**ति. इदमेव सर्वत्वं **ज्ञानं** चेत् न जनयेत् **तदा वैराग्यं** कर्तव्यं, ब्रह्मत्वेन ज्ञानाभावे सर्वं त्यक्तव्यमित्यर्थः. एतदेव विवृण्वन्ति **तदे**त्यनेन. ननु षष्ठे श्लोके तु "ज्ञायन्त" इत्यनेन ज्ञानमेव निरूप्यतेतो **भक्तिमाहतुरि**ति कथमुक्तमित्याशङ्क्याहु**र्भक्तिसिद्ध्यै** इति. **तु** पुनः **षष्ठे श्लोके यद् ज्ञानं** निरूपितं

कारिकार्थः

अध्यायार्थसङ्गतिं दर्शयन्तो वैराग्यनिर्णयमाहु**रनेनैवे**ति. **अनेन** ज्ञाननिरूप-णेनैव **वैराग्यं** निरूपितं भवतीत्यर्थः. तत्र प्रकारमाहु**र्ज्ञानाजनकता यदी**ति. ब्रह्म-त्वेन ज्ञानाभावे **सर्वं त्याज्यम्, अन्यथा** त्यागाभावे **विनाशः स्यादि**त्यर्थः. **भक्ति-**

१. °वा.

भक्तिसिद्ध्यै तु यत् ज्ञानं श्लोके षष्ठे निरूप्यते ।
अन्यथाभावशङ्काया व्यावृत्त्यर्थं भवान् परः ॥(१७)॥
भगवन्तं नमस्कृत्य गमनप्रार्थना कृता ।
तदयुक्तं भक्तिमतामिति भक्तिस्तु षड्गुणा ॥(१८)॥

प्रकाशः

उत्तमभक्तिसिद्ध्यर्थं **यद् ज्ञानं**[1] साधनं वैराग्यजनकं तत् **षष्ठे श्लोके विनिरूप्यते.** ननु षष्ठे श्लोके भगवति भक्तिसिद्ध्यर्थं वीर्यलिङ्गकानुमानं साधनत्वेनोक्तं; वीर्ये च सति न बन्धनं, भगवांस्तूलूखले बद्ध इत्यन्यथाभावशङ्कया भक्तिस्तत्र न भवेदित्याशङ्क्य सप्तमस्यार्थमाहु**रन्यथे**त्यादि. उक्ताशङ्काया निवृत्त्यर्थं तत्र **भगवान् पर** इत्युच्यतेतो न दोष इत्यर्थः (१७).

तन्निगमनार्थमष्टमनवमयोरर्थमाहु**र्भगवन्तमि**त्यादि. अत्र नमस्करणमष्ट-मार्थः, प्रार्थना नवमार्थः. तथा च पूर्वोक्तरीत्या भगवद्विषयके सर्वत्वसर्वकर्तृत्वज्ञाने जातेपि प्राप्तिः सोपानरूपेष्ववतारेषु यावद्भिर्न भवति[2] तावत् फलं दूर इति तदवतारज्ञानार्थं षष्ठ उपाय उक्तः. सप्तमे च भगवतोवतारत्वव्यावृत्त्यर्थं परत्वं निरूपितं, तेन सोपानप्राप्यत्वं बोधितम्. अष्टमे नमनं, नवमे च तद्दर्शनसाधनमुक्तमिति चत्वार एते श्लोका ज्ञाननिर्णयशेषभूता इत्यर्थः. ननु तयोर्भक्तत्वे ज्ञानस्वरूपं भगवन्तं परित्यज्य गमनमनुचितमिति कथं तथा प्रार्थनेत्याशङ्क्य तत्र दशमस्यार्थ-

लेखः

तत् **भक्तिसिद्ध्यै** इत्यर्थः. सप्तमार्थमाहु**रन्यथे**ति, **अन्यथाभावो** मानुषत्वं **तच्छङ्काव्यावृत्त्यर्थमि**त्यर्थः (१६-१७).

कारिकार्थः

सिद्ध्यै इति. **भक्तिसिद्ध्यै तु यद् ज्ञानं** तत् **षष्ठे** विनिरूपितं "यस्यावतारा" इति-श्लोके इत्यर्थः. "स भवान् सर्वलोकस्ये" ति सप्तमश्लोकार्थमाहु**रन्यथे**ति (१६-१७).

"नमः परमकल्याणे"त्यष्टमश्लोकार्थमाहु**र्भगवन्तं नमस्कृत्ये**ति. "अनुजा-नीही"ति नवमश्लोकार्थमाहु**र्गमनप्रार्थना कृते**ति. ननु तयोर्भक्तत्वेन भगवन्तं परित्यज्य गमनाय प्रार्थनं कथमित्याशङ्कापूर्वकं तत्परिहारमाहु**स्तदयुक्तं भक्ति-मतामि**त्यादिना. **तदयुक्तं भक्तिमतामि**त्याशङ्का, अग्रे **भक्तिस्तु षड्गुणे**त्यादिसमा-

१. ज्ञानसाधनम्. २. भविता.

भक्तैः सहैव सा कार्या परोक्षेणैव सिध्यति ।
गुप्तो रसस्तदोद्बुद्धो रसतां याति नान्यथा ॥(१९)॥
गुणप्रधानभावत्वमेकत्र हि विरुध्यते ।

प्रकाशः

माहुस्**तदयुक्तमि**त्यादि. **तदयुक्तं भक्तिमतामि**तिशङ्का **तु षड्गुणा भक्तिर्भक्तैः सहैव कार्ये**त्याद्यर्थकथनेनैव निरसनीयेत्येतदर्थं[१] दशमश्लोकषड्गुणत्वम्. **भक्तैः सह** करणमित्यादिकं विवरणे स्फुटीभविष्यति. तथा च मुख्यभजनाधिकारस्यासिद्धत्वात् तथा प्रार्थना. ननु परोक्षे कथं सिद्धिरित्यत आहु**र्गुप्त** इत्यादि. यदा भक्तैः सह तथा क्रियते तदा गुप्तरसरूपो **भगवानुद्बुद्धः** सन् **रसतां याती**त्येतदर्थं**गमनप्रार्थने**त्यर्थः (१८-१९).

ननु भक्ता अत्रापि सन्तीति तैः सह करणे गुप्तरसोद्बोधः स्यादेवेति किं [२]पारोक्ष्येणेति तथाभूतं त्यक्त्वा गमनमनुचितमित्यत आहु**र्गुणे**त्यादि. **एकस्यां** लीलायां भगवतो **गुणप्रधानभावत्वं हि** यतो हेतो**र्विरुध्यते.** [३]अत्र हि भगवता भक्तगुणभावेन लीलाः क्रियन्ते; यदि प्राधान्येन तादृशं रसमुत्पादयेत् तदा स भावो

लेखः

तदयुक्तमित्यारभ्य **नान्यथे**त्यन्तेन दशमश्लोकार्थ उक्तः. **भक्तिमतामि**त्यन्तेनाशङ्का, अग्रे समाधानमाहुः **भक्तिस्त्वि**ति. तथा च **इती**त्यस्यानन्तरं **चेदि**तिशेषो ज्ञेयः. अयं निर्णयो "वाणी गुणानुकथने" इतिश्लोकेन सम्पन्न इत्यर्थः(१८-१९).

प्रसङ्गादेकादशस्याप्यर्थमाहुः **गुणे**ति. **प्रधान**शब्दो भावल्युडन्तत्वपक्षे धर्मवाचकः. तथा च **गुणरूपः प्रधानरूपश्च भावो** गौणत्वं प्रधानत्वं तद् यस्य **तत्त्वमि**त्यर्थः. तदे**कत्र विरुध्यत** इति गौणत्वं स्वीकृत्य लीलां कृतवानितिभावः. इदं "दाम्ना चोलूखले बद्ध" इत्यस्य विवरणे स्फुटम् (२०).

कारिकार्थः

धानं, तथा च **तदयुक्तं भक्तिमतामिती**त्यस्यानन्तरं **चेदि**ति शेषग्रन्थो ज्ञेयः. एतेन "वाणी गुणानुकथने" इति दशमश्लोकार्थ उक्तः. भक्तेः षडङ्गान्येतच्छ्लोकोक्तानि कीर्तनश्रवणादीनि. तथा च तादृशभक्तिकरणाय गमनमितिभावः (१८-१९).

---

१. °थैत°. २. परोक्षे°. ३. °ध्येत.

अतोत्र भगवाँल्लीलां स्वयं कर्तुं समुद्यतः ॥(२०)॥
स्वस्यैव रसभोगार्थं परार्थं वेत्यनिर्णयः ।
ताभ्यां विमोचनं नैव शक्यं पक्षद्वयेपि हि ॥(२१)॥

प्रकाशः

विरुध्यते. **अत्र भगवान् स्वयं लीलां कर्तुं समुद्यत**स्तत् किमर्थमिति न निर्णेतुं शक्यतेत**स्ताभ्यां तदशक्यमि**ति तथा त्यक्त्वा गमनं नानुचितमित्यर्थः. न च भवत्वेवं, तथाप्यस्मिन् श्लोके भक्तिमात्रस्य प्रार्थनेन ज्ञानवैराग्यशेषत्वाभावादध्याये कथं सङ्गतिरिति शङ्क्यं, अत्र वाण्यादीनां भगवदेकपरत्वप्रार्थनयेतरवैराग्ये बोधिते तस्य भक्तिफलकताया अत्र निर्णीतत्वात् सुखेनाध्यायसङ्गतिरिति दिक् (२०-२१).

अथ यदत्र सिद्धं तत् प्रसङ्गादुच्यते. भगवतोद्धर्तुं विचारितस्यैव भगवदीय-सङ्गः. भगवदीया भगवद्विचारितमेव कुर्वन्ति. तत्र स्वदोषेणान्यथाभानेपि[१] पर्यवसानतः परमफलसाधकत्वम्. तत्र च भगवदीयानुग्रह एव व्यापारभूतं कारणं, तेनैव च स्वरूपसहकारियोग्यता सम्भवति. ततो भगवदीयदास्यद्वारा तदनुमितया-(मत्या!) भगवद्भजनम्. तेनाग्रे भगवद्भजनाधिकारवतो भगवद्विचारित-भक्तिफलयोः सिद्धिरिति. पुष्टिमर्यादायामेषैव व्यवस्थितिरिति. इदं च गुणोपसंहारे

कारिकार्थः

ननु व्रजेपि **भक्तैः सह** भक्तिसम्भवे किं परोक्षभजनेनेत्याशङ्क्याहु**र्गुणप्रधाने**-त्यादि. भगवान् गोकुले भक्तप्राधान्येन स्वगौणभावेन च लीलां करोति, इमौ तु तादृशलीलायामनधिकारिणौ. एकस्यामेव गोकुललीलायां व्रजस्थैः सह **गुणभाव** एताभ्यां सह **प्रधानभावश्च विरुध्यते. अतः** कारणाद् **गमनप्रार्थना कृते**ति पूर्वेणान्वयः. ननु बन्धमोचनं ताभ्यां कुतो न कृतमित्याशङ्क्याहु**रत्र भगवान् लीलामि**ति. **अत्र** गोकुले **भगवान् स्वस्यैव रसभोगार्थं** गौणभावेन **स्वयं लीलां कर्तुं समुद्यत**स्तेषु वा रसाधिक्यसिद्ध्यर्थं तदधीनो जात इति निर्णयो नलकूबरमणिग्री-वयोर्नासीत्. किञ्च **पक्षद्वये** स्वार्थलीलापक्षे परार्थपक्षे च **ताभ्यां** भगवत उलूखलबन्धन**विमोचनं नैव शक्यमि**ति तादृशलीलायां स्वानधिकारं मत्वा भक्तैः सह परोक्षभजनसिद्ध्यर्थं गतावितिभावः. इदं "दाम्ना चोलूखले बद्ध" इत्यस्य विवरणे स्फुटम् (२०-२१).

---

१. °भावेपि.

पूर्वस्मृतिः सन्दिग्धेति तन्निर्णयार्थं भगवानागत इत्युक्तम्. सा स्मृतिः सर्वलोकप्रसिद्धा भवत्विति कृष्णस्वरूपं ज्ञातं निरूपयतः, "ज्ञानी प्रियतमोतो म" इतिवाक्यात्, अन्यथा सर्वैव स्तुतिर्विरुध्यते. तत्र प्रथमं पुरुषोत्तमो भवानित्याहतुः **कृष्णकृष्णे**ति.

॥ नलकूबरमणिग्रीवावुचतुः ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः ॥२९॥

आदरे वीप्सा. **कृष्णः** सदानन्दः, स एव **कृष्ण**नामा च. उभयविधाज्ञाननिवृत्त्यर्थं वा तथोक्तम्. आकृत्या चेष्टया च नावयोर्भ्रम इत्याहतु**र्महायोगिन्नि**ति. लौकिका अपि नानायोगचर्यायां प्रवृत्ता हीनभावं न प्राप्नुवन्ति, कुतः पुनर्निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः? अतो नामरूपे वर्णनीयेऽर्थे न बाधके. **आद्य** इति, मूलभूतत्वमेव महत्त्वं, सर्वैर्हि स्वापेक्षया महत्त्वं ज्ञातव्यं, **आद्य**स्तु तथा. आद्यत्वं मतान्तरेऽचेतनस्यापि सम्भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **पुरुष** इति. साङ्ख्यतुल्यतामाशङ्क्याहतुः **पर** इति, पुरुषोत्तम इत्यर्थः. निराकारपक्षनिवृत्त्यर्थं **पुरुष**पदं; तस्मिन् पक्षेऽयं विकृतो भवे-

प्रकाशः

'कार्याख्याना'धिकरणस्थात् "सम्बन्धादेवमन्यत्रापी"तिसूत्रात् सिध्यति, तत्र "ह्ययोगोलके वह्नेरिव भक्तजीवे भगवत आवेशोस्ति स च भगवत्त्वेन व्यपदिश्यत इतिहेतुद्वयात् तत्फलदानार्थं तद्रूपो भगवांस्तत्राविशती"ति प्रतिपादनात्. "तं यथायथोपासते तथैव भवति तद्धैतान् भूत्वावती"ति "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरावि"तिश्रुते"गुर्वादौ जीवत्वबुद्धिनिषेधाच्च तत एव तस्य फलसिद्धिरि"ति प्रतिपादितं, तस्मान्न कोपि शङ्कालेशः.

कृष्ण कृष्णेत्यत्राभासे **पूर्वमिति देवर्षिर्मे प्रियतम** इत्यत्र. **अन्यथे**त्यादि, ज्ञानाभावे **सर्वैव स्तुतिर**पराधकारिणी स्याद्, "योन्यथा सन्तमात्मानमि"तिवाक्यादित्यर्थः. **उभयविधाज्ञाननिवृत्त्यर्थमि**त्युक्तरूपनामविषयकसदानन्दत्वज्ञानाभावनिवृत्त्यर्थम्. **महत्त्वमिति महायोगि**पदैकदेशोक्तम्. **तथे**ति सर्वापेक्षया महान्.

लेखः

कृष्ण कृष्ण इत्यस्याभासे **अन्यथे**ति स्वरूपज्ञानाभावे इत्यर्थः. व्याख्याने. वीप्सातः पक्षान्तरमाहुः **कृष्ण** इत्यारभ्य **तथोक्तमि**त्यन्तेन. **नामरूपे** इति– मानुषत्वेन प्रदर्शितं रूपं तद्बुद्ध्या व्यवहार्यमाणं नाम चेत्यर्थः. **तस्मिन् पक्षे** इति,

देव. **परः** कालादीनामपि नियन्ता. एवं भगवतो मूलरूपत्वं निरूप्य कार्यरूपाभावे मूलरूपत्वं नोपपद्यत इति कार्यस्य चान्यथात्वे तस्य गौणत्वमविकृतत्वमसङ्गित्वं च विरुध्यत इति कार्यरूपमपि **त्वमे**वेत्याहतु**र्व्यक्ताव्यक्तमिदमि**ति. **इदं** सर्वमेव **जगद्** द्विरूपमेव भवति; कालेनापरिगृहीत**मव्यक्तं** भवति, परिगृहीतं **व्यक्तं** भवति. आकाशपरमाण्वादीनामपि व्यक्ततेति केचित्. तदा सर्वमेव जगत् कालादितृणस्तम्बान्तं **व्यक्तमव्यक्तं** च भवति. अवयुत्यानुवादो वा. उभयथापीदं जगत् तवैव **रूप**म्. अत्र प्रमाणमाहतु**र्ब्रह्मणो विदुरि**ति. **ब्रह्मणो** वेदात्, ब्राह्मणा इति वा. **ते ब्रह्मण** इति वा. तदा सर्वा एव श्रुतयः प्रमाणमित्युक्तं भवति. **रूपमि**ति स्वरूपं निरूपकं वा ॥२९॥

एवं सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्याधिदैविकप्रकारेणापि सर्वरूपत्वमाहतु**स्त्वमेक** इति.

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥

तत्तदाधिदैविकानां भेदो भविष्यतीत्याशङ्क्याहतु**रेक** इति. देवादीनामुत्तमत्वात् तदाधिदैविकत्वमस्तु, कृमिकीटाधिदैविकत्वं तु न भविष्यतीत्याशङ्क्याहतुः

प्रकाशः

निराकारेत्यादि, एवं च **पुरुष**पदस्थप्रयोजनद्वयं ज्ञापितम्. **तस्मिन् पक्ष** इति निराकारपक्षे. **अन्यथात्व** इति मिथ्यात्वे विकृतत्वे भिन्नत्वे च **तस्ये**ति समवायिनः **गौणत्वमि**ति सगुणत्वम्. कालपरिगृहीतेऽव्यक्तत्वं व्यभिचरतीत्यत आहु**राकाशे**त्यादि. नन्वेवं सति मतान्तरस्य न सङ्ग्रह इत्यत आहु**रवयुत्ये**त्यादि; सर्वं जगदनूद्य तत्र व्यक्ताव्यक्तत्वं विधीयत इति मतान्तरस्यापि सङ्ग्रह इत्यर्थः. **उभयथे**ति मतद्वयप्रकारेण. **निरूपकमि**ति ज्ञापकम् ॥२९॥

लेखः

पुरुषत्वमात्रपक्षविकृतो भवेदतः परत्वमुक्तमित्यर्थः. **कार्यस्ये**ति, **अन्यथात्वे** अन्यनिमित्तकत्वे समवायिमात्रस्य मृदादेरिव निमित्तापेक्षया **गौणत्वं** स्यादितिशेषः. मूलस्थ**रूप**पदस्याग्रे निरूपकत्वार्थोपि व्याख्येयस्तमादायेदमुक्तम्. **निरूपकं** निमित्तत्वेन ज्ञापकमित्यर्थः. **अवयुत्ये**ति; सर्वमेव कदाचिद् व्यक्तं कदाचिदव्यक्तमिति प्रथमः पक्षः, किञ्चिद् व्यक्तं किञ्चिदव्यक्तमि**त्यवयुत्यानुवादः. अवयुत्या**मिश्रीकृत्यानुवाद इत्यर्थः ॥२९॥

सर्वभूतानामिति; आब्रह्मतृणस्तम्बान्तजातिभेदानां **देहा असवः** प्राणा **आत्मान्तः**-करण**मिन्द्रियाणीश्वरो** जीवः. **स्वात्मा** जीवो वा. **इन्द्रिय**पदेन प्राणाः इन्द्रियाण्यन्तःकरणं च. **ईश्वरो**न्तर्यामी. आधिभौतिकादीना**मीश्वरो** वा, देहद्वयसहित-जीवस्य वा. नियामकत्वपक्षे भिन्नतया कालादीनामपि तथात्वमिति कालादिरूपता-माहतु**स्त्वमेव काल** इति. कालो भगवच्चेष्टेति केचिद्, वस्तुतस्तु **त्वमेव कालः.** तत्र हेतुमाहतु**र्भगवानि**ति. ऐश्वर्यं सर्वस्यापि कालकृतमेवेति काल एवेश्वरः. तथा बलमपि; तारुण्य एव बलं, तपोयोगादिभिरपि कालपुष्टैरेव बलं सिध्यति. यशोपि काल एव, न हि सर्वदा कस्यचिद् यशो भवति. एवमन्येपि गुणाः; कालान्वय-व्यतिरेकात् काल एव षड्गुणहेतुरिति गम्यते. ननु कालस्तु विष्ण्वात्मकः; यो हि व्यापको भवति स कलयति न हि योयं व्याप्तुं न शक्नोति स कलयति, अतो विष्णुरेव कालो नान्य इत्याशङ्क्याहतु**र्विष्णुरि**ति. **त्वमेव विष्णुरा**धिदैविकः कालो, यज्ञरूपो वा, पालको वा सत्त्वात्मकः. तस्य भिन्नत्वे भगवतस्तदधीनत्वं स्यात्. **अव्ययो-**क्षरमपि **त्वमेव,** अन्यथा भगवतः समवायित्वं न स्यात्. अक्षरमेव हि समवायि-कारणं, प्रकृतिपुरुषोपादानत्वात्. "सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः" इति सर्वत्वमन्यथा-प्युपपद्यते. वस्तुनः परिच्छेदकत्वं न सर्ववादिसम्प्रतिपन्नम्. अतोक्षरो भगवाने-

---

टिप्पणी

दशमेध्याये **त्वमेव काल** इत्यत्र **वस्तुनः परिच्छेदकत्वमि**त्यादि. ननु

प्रकाशः

त्वमेक इत्यत्र **देहस्वात्मेन्द्रियेश्वर** इतिपाठेऽर्थान्तरमाहुः **स्वात्मे**त्यादि. **ईश्वर**पदव्याख्यान्तरं त्वग्रिम**ेश्वर**पदपुनरुक्तिभिया. **तथात्वमि**तीश्वरत्वम्. **वस्तुत-स्त्वि**ति तु चेष्टात्वेपि भेदाभावप्रतिपादनाय, अन्यथा "भगवत्कृतिः कालरूपे"-त्यादिसत्त्वशोधकाध्यायीयः पूर्वग्रन्थो विरुध्येत. **तस्ये**ति पूर्वोक्तरूपत्रयस्य. **अन्यथापी-**त्युक्तवाक्याद् व्याप्त्यापीत्यर्थः. **वस्तुन** इत्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहु**र्नन्वि**त्यादि**नेत्यर्थ**

लेखः

त्वमेक इत्यत्र **स्वात्म**पदेन जीवकथने **देहा** इति प्रथमाबहुवचनान्तं ज्ञेयम्. **देहस्वात्मे**तिपाठेऽर्थमाहुः **आधिभौतिकादीनामि**ति. **देहद्वये**ति– **देह**पदेन स्थूलशरीरं **इन्द्रिय**पदेन सूक्ष्मशरीरं, तयोः स्वात्मनश्चेश्वर इत्यर्थः. साहित्यमार्थिकं ज्ञेयम्. **अव्यय**पदव्याख्याने अक्षरत्वेन हेतुना समवायित्वं साधितम्. यद्यपि सर्वत्वेनापि हेतुना सम्भवति तथापि वाक्येन सर्वव्याप्त्यापि सर्वत्वसम्भवात् सर्वत्वं न समवायि-

वेश्वररूपमप्यन्तर्यामिरूपं भिन्नरूपं वाधिकारित्वेन निर्दिष्टं, यस्यासाधारणो धर्म ऐश्वर्यं भवति ॥३०॥

एवमाधिदैविककालादिरूपत्वं निरूप्याध्यात्मिकत्वमाधिभौतिकत्वं च निरूपयितुं मध्यमभावं निरूपयति **त्वं महानि**ति.

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।
त्वमेव पुरुषोध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥

सर्वस्यापि जगतोङ्कुरभूतो **महान्.** तस्यापि क्षेत्ररूपं **प्रकृतिः.** तस्या अपि कार्योत्पत्तिसाधारणरूपं योनिवद् या प्रकृतिः सा **सूक्ष्मा.** तस्या अपि मूलभूता गुणाः, **तन्मय्या**धिदैविकी प्रकृतिर्गुणाश्च त्वमेव – एवं पञ्चरूपत्वमुक्तम्. एवं योनिरूपत्वमुक्त्वा बीजरूपत्वमाहतु**स्त्वमेव पुरुष** इति. तस्याः प्रकृतेः **पुरुष**स्तस्यास्तावत्त्वसम्पादकः. **अध्यक्षः** साक्षी, साक्षिरूपं भिन्नमिति सिद्धान्तः. **क्षेत्र**ज्ञश्च तथा क्षेत्राभिमानी जीवः,

---

टिप्पणी

समवेतस्य वस्तुनो घटादेः परिच्छिन्नत्वेन तत्समवायिनो भगवतोपि परिच्छेदापात इत्यत आह **वस्तुन** इत्यादि. सर्वं ब्रह्मेति वादी सर्ववादी. तथा च तन्मते स्वस्यैव सर्वभवनसामर्थ्येन वस्तुरूपेणाप्याविर्भाव इति न तत्कृतपरिच्छेदशङ्का भगवतीत्यर्थः. अथवा समवेतस्य परिच्छिन्नत्वेपि न समवायिनस्तथात्वं सर्वेषां वादिनां सम्मतं,.

प्रकाशः

इत्यन्तेन. नन्वक्षरत्वेन निरूपिते सर्वरूपसङ्ग्रहात् पुन**रीश्वर**पदस्य किं प्रयोजनमत आहु**रीश्वररूपमि**त्यादि. त"च्चेश्वरः सर्वभूतानामि"ति गीतायां निरूपितम् ॥३०॥

त्वं महानित्यत्राध्यात्मिकत्वमित्यादि, पदार्थानां तथात्वं **निरूपयितुम्. भिन्नमि**ति प्रतिशरीरस्थान्तर्यामिरूपाद् भिन्नमित्यर्थः. तत् किं साक्षिरूपमत आहुः

लेखः

त्वव्याप्यमतोक्षरत्वमेव हेतुः. **वस्तुन** इति– समवेतस्य वस्तुनः स्वपरिच्छिन्नत्वधर्मेण समवायिपरिच्छेदबोधकत्वं नास्तीत्यर्थः. **परिच्छेदकत्वं** परिच्छेदबोधकत्वमित्यर्थः. **अत**इति भगवतः समवायित्वे दोषाभावादित्यर्थः. टिप्पण्यां **परिच्छेदापात** इति परिच्छेदशङ्केत्यर्थः, घटादेः समवायिनो मृदादेरपि परिच्छिन्नत्वादिति भावः. **सर्वभवने**ति– स्वस्यैव सामर्थ्येन तथाविर्भावो, न तु निमित्तान्तरापेक्षा, अतस्तादृशसामर्थ्यवति न सा शङ्केत्यर्थः. **तत्कृते**ति समवेतपरिच्छिन्नत्वकृतेत्यर्थः. सुबोधिन्यां **निर्दिष्टमि**ति आधिभौतिकादीनामीश्वरत्वेन पूर्वोक्तमित्यर्थः॥३०॥

सोपि क्षेत्रज्ञो भवति; क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्. एतावता यत्रैव प्रमाणप्रवृत्तिः केनापि प्रकारेण तदेव भवानित्युक्तं भवति ॥३१॥

तत् प्रमाणं श्रुतिरेव, न तु प्रत्यक्षमित्यलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति **गृह्यमाणैरि**ति.

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

गृह्यमाणैर्घटपटादिभिः कृत्वा **त्वमग्राह्यः** तद्रूपोपि तैर्गृहीतैर्न गृहीतो भवसि. न वा तैः सह, तेषां धर्माणां त्वदाश्रयाणां धर्म्याश्रयसहभाननियमात्. तत्रहेतु**र्विकारैरि**ति, विकारे हि प्रकृतिर्न प्रतीयते, यथा सन्निपाते. तत्र प्राकृतस्तिरोभवति.

टिप्पणी

शब्दस्य तथात्वेप्याकाशस्यातथात्वादित्यर्थः॥३०॥

गृह्यमाणैरित्यत्र, **तेषां धर्माणामि**त्यादि. भगवद्ग्रहणहेतौ सत्यप्यग्रह इति वक्तुं तद्धेतुमाहुः **तेषामि**त्यादि. **तेषां** घटादीनां **त्वदाश्रय**त्वादाश्रयस्य च **सहभाननियमा**त्तथा भवितुं युक्तमित्याद्यपक्षे **धर्माणां** घटादिधर्माणामपि तथात्वाद्धर्मिसहभाननियमात्तथेत्यर्थः. यद्यप्येवं **धर्मि**पदमनर्थकं तथापि प्रत्येकं भिन्नहेतुकथनार्थमिति ज्ञेयम्. एवं सत्यप्यग्रहे हेतुमाहेत्याहुः **तत्र हेतुरि**ति ॥३२॥

। इति दशमोध्यायः ।

प्रकाशः

–**क्षेत्रज्ञ** इत्यादि. **स मुख्य** इति "क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारते"ति-वाक्योक्तः. मूलस्थमग्रिमं विशेषणमेतेनैव व्याख्यातमिति न पुनर्निर्दिष्टं, तथाप्यत्र **विकारव**त्पदेन विकाराणामाध्यात्मिकत्वमुक्तं, वृत्तिरूपाणां पदार्थानां तथात्वादिति ज्ञेयम्. अग्रिमे भौतिकत्वं स्फुटमेव. **एतावते**ति तत्तद्रूपस्य[१] भगवत्त्वनिरूपणेनेत्यर्थः ॥३१॥

गृह्यमाणैरित्यत्र **तेषां धर्माणामि**त्यादि. **तेषां** घटादीनां समवायेन त्वद्धर्माणां संयोगेन त्वदाश्रयाणां तथा नियमादित्यर्थः. तदेतद् टिप्पण्यामाहु**र्भगवद्ग्रहणे**त्यादि. **तद्धेतुमि**ति ग्रहणहेतुम्. **तथात्वादि**त्याश्रितत्वात्. **तथे**ति भानमुक्तम्. [२]**भानहेतुकथनार्थमि**ति समवायेन संयोगेन च [२]भानहेतुकथनार्थम्. सुबोधिन्यां **तत्र हेतुरि**त्यग्रहणे

---

१. °पेस्य. २. भिन्न°.

स्वप्रकाशमेव हि जडैः सह भासते यथा ज्ञानं विषयैः, तथा भगवानपि विषयान् प्रकाशयन् विषयैः सह कुतो न भासत इति चेत् तत्राहतुः **प्राकृतैरि**ति. प्रकृतिर्हि जडा पुरुषाच्छादिका; प्रकृतौ प्रविष्टं पुरुषं न प्रकाशयति. तथा प्राकृतैरपि तत्र स्थितो भगवानाच्छाद्यत इति न भगवान् गृह्यते. ज्ञानं त्वन्यनिष्ठम्. ननु पुरुषो भगवान् प्रकृतिं स्त्रियमुपमर्द्य कथं न प्रकाशत इत्याशङ्क्याहतु**र्गुणैरि**ति, गुणा हि बन्धका रज्जकाश्च. अतः प्रकृतौ प्रविष्टस्तद्गुणानुरक्तस्तद्गुणैर्वशीक्रियत इति तैः सह न प्रकाशते. ननु गुणाः साम्प्रतमेव जाता, भगवांस्तु मूलभूत इति गुणक्षोभात् पूर्वमेव ज्ञात्वोत्तरत्रापि तदनुवृत्तिः कथं न क्रियत इत्याशङ्क्य तत् परिहरन्तौ भगवांस्तथैव

प्रकाशः

हेतुः. **सन्निपात** इति सन्निपाताख्ये रोगे. **प्राकृत** इति स्वभावः, तथा च तिरोभावात् न भासत इत्यर्थः. **न गृह्यत** इत्यस्मदादिभिर्न ज्ञायते. तर्हि ज्ञानिभिः कथं ज्ञायत इत्यत्राहु**र्ज्ञानं त्वन्यनिष्ठमि**ति. तथा च संयोगसमवाययोरभावेन तत् नाच्छाद्यत इति ज्ञानिभिर्ज्ञायत इत्यर्थः. ननु स कुतो न प्रकाशत इत्याकाङ्क्षायां तं पक्षमुपपाद्य दूषयन्ति **नन्वि**त्यादि **न प्रकाशत** इत्यन्तम्. **कथं न क्रियत** इति जीवैरितिशेषः. **तत् परिहरन्नि**ति गुणक्षोभात् पूर्वमपि ज्ञानाभावकथनेन स्वतोनुवृत्तिं परिहरन्.

लेखः

गृह्यमाणैरित्यत्र **तद्रूपोपी**ति, ते घटादयो रूपाणि धर्मा यस्य, घटादिधर्मक इत्यर्थः. **धर्माणामि**ति, धर्मत्वाद् धर्मिसहभानं, त्वदाश्रयत्वात् त्वद्रूपाश्रयसहभानमित्यर्थः. **प्रकृतिरि**ति स्वरूपमित्यर्थः. यथा निर्मले जले तलभूमिः सम्यक् प्रतीयते, न तु समले तथेति ज्ञेयम्. **तत्र प्राकृत** इति– विकारे सति प्रकृतिसिद्धः पदार्थ**स्तिरोभवती**त्यर्थः. एवमाश्रयसहभाननियमेपि तद्ग्रहणेन गृहीतो न भवतीत्यत्र हेतुरुक्तः. धर्मिसहभाननियमेपि तैः सहभानं नेतिपक्षे हेतुकथनार्थं **प्राकृतैरि**तिपदमित्याशयेन तदाभासमाहुः **स्वप्रकाशमेव ही**ति. ज्ञानस्य धर्मा विषयाः, यथा **जडैर्विषयैः सह** स्वेषां विषयाणां प्रकाशो येन तादृशं ज्ञानं भासते; विषयविषयकज्ञानवानहमिति प्रतीतिर्जायत एवेत्यर्थः. ननु यथा सूर्यादीनां घटादिप्रकाशकत्वात् न तैः सहभानं तथा भगवतोपि न भानमित्याशङ्क्य दृष्टान्ते **स्वप्रकाशमेवे**त्युक्तं; सूर्यादयस्तु सर्वमेव प्रकाशयन्ति, न तु तमेव विषयमित्यर्थः. **भगवानपीत्यपि**शब्दस्य **प्रकाशयन्नि**त्यनेनान्वयः. **प्रकृतिर्ही**ति– यथा प्रकृतिः **पुरुषाच्छादिका** तथा प्राकृता भगवदाच्छादका इत्यर्थः. ननु तदा तैर्ज्ञानं कुतो नाच्छाद्यते इत्यत आहुः **ज्ञानं**

करोतीत्यत्र हेतुं वदन्तौ तादृशस्य भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वमाहतुः **कोन्विहार्हतीति**. **इहास्मिन्** संसारे, **न्विति** वितर्के; पश्चादुद्भूतः **को** वा **प्राक् सिद्धं** गुणक्षोभात् पूर्वस्थितं **विज्ञातुमि**दमित्थतया द्रष्टु**मर्हति**? अपि तु न कोपि. नन्वयमप्यात्मत्वान्नेदानीं सिद्धः कुतो नार्हतीति चेत् तत्राहतु**र्गुणसंवृत** इति, गुणैर्वेष्टितः. गुणा हि पूर्वबुद्धिं दूरीकृत्य स्वरूपमप्यावृतवन्तः, अतो ज्ञातृज्ञेययोरावरणान्न ज्ञानं सम्भवति ॥३२॥

तर्हि कथं निस्तार इति चेत् तत्राहतु**स्तस्मै तुभ्यमि**ति.

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतैर्गुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

केवलं **तस्मै** सर्वदुर्ज्ञेयाय **तुभ्यं** नानाविनोदयुक्ताय **नमः**. ननु "तमेव विदित्वातिमृत्युमेती"तिश्रुतेः कथं भगवदज्ञाने निस्तार इति चेत् तत्राहतु**र्भगवत** इति, भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्. अज्ञातोपि प्रमेयबलेन निस्तारयतीति भक्तिस्तत्र प्रयोजिका. "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतामि"तिश्रुत्याऽज्ञात एव ज्ञातो भवति. अतो भगवानीश्वरः केन ज्ञातुं शक्यः? किञ्च प्रमाणबलेनाऽज्ञातोपि स्वतो ज्ञातुं शक्यः, यतोयं **वासुदेवः**, वसुदेवे शुद्धे सत्त्व आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः. नन्वेतदेव सर्वं कुतो भवेत्– साधनपरता साधनोत्पत्तिः सत्त्वशुद्धेराविर्भाव इति? तत्राहतु**र्वेधस** इति, स हि सर्वं विदधाति, अन्यथा तेन कृतस्तन्मार्गो व्यर्थः स्यात्. **नमो धीमहीति** वा, हृदये प्रत्यक्षे भगवति तत्पादयोः शिरः स्थापयित्वा मनसा यन्नमनं तत् सोपस्करं

प्रकाशः

तथैव करोतीति प्रकृतिं स्वाच्छादिकां भगवान् करोति. **तादृशस्ये**त्यादि, स्वतन्त्रस्य **भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वं** हेतुत्वेनाहेत्यर्थः. तथा च स्वस्य भक्त्येकलभ्यत्वं भवत्वित्येतदर्थं तथा कृतिरितिभावः ॥३२॥

लेखः

त्विति, पुरुष**निष्ठम**तो धर्मेभ्यः पृथक् स्थितत्वात् न तैस्तदाच्छादनमित्यर्थः. **हेतुं वदन्निति**, भक्तिप्रवर्तनं हेतुर्ज्ञेयः. **भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वमाहे**ति, स्वरूपस्य ज्ञानायोग्यकरणेन भगवता भक्तिमार्ग एव प्रवर्तित इतिभावः ॥३२॥

तस्मै तुभ्यमित्यत्र **केवलमिति नम** इत्यनेनान्वेति. तत्पदस्य परोक्षवाचकत्वात् **तस्मै** इत्यनेन **दुर्ज्ञेय**त्वमुक्तं, युष्मच्छब्दस्य प्रत्यक्षवाचकत्वात् **तुभ्यमि**त्यनेन **नानाविनोदयुक्त**त्वमुक्तं; विनोदार्थमेवेच्छया व्यवहार्यो जात इति भावः ॥३३॥

धीमहीत्यर्थः. अतोन्तःकरणप्रत्यक्ष एव भगवान् न बहिःप्रत्यक्षविषयः. तर्हि बहिर्नास्तीत्येव मन्तव्यं, तत्राहतु**रात्मद्योतैर्गुणैश्छन्नमहिम्न** इति, **आत्मनः** स्वेनैव **द्योतो** येषाम्. गुणा अपि भगवतैव प्रकाश्यन्ते यथा सूर्येण मेघाः. त एव तस्यावरका भवन्ति. न हि गाढान्धकारे निशायां मेघा दृश्यन्ते. एवं सर्वैरेव विषयैरात्मनैव प्रकाशितैश्छन्नो महिमा यस्य. अतो न प्रकाशते, वस्तुतस्तु वर्तत एव सर्वत्र. अन्तर्बहिःस्थितौ हेतुमाहतु**र्ब्रह्मण** इति. "बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म," अतः सर्वत्रैव वर्तसे; परमन्तरेव प्रकाशसे, न बहिरिति ॥३३॥

तर्हि कथमवताराद् बहिः प्रकाशरूपो भगवान् भवतीति? तत्राहतु**र्यस्यावतारा** इति.

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥३४॥

मत्स्यादिषु **शरीरेषु** क्वचिदेव मत्स्यविशेषेऽलौकिकभावो दृश्यते. स च न जीवधर्मो भवती**त्यशरीरिणस्तव तेष्ववतारा** इति **ज्ञायन्ते. अशरीरिण** इतिवचनाच्छरीराकृतिरेव तत्र प्रकाशते न तु तच्छरीरम्, अन्यथा वृद्धिर्नोपपद्यते. सामर्थ्यं परमधिकं भवेत्. तस्माच्छरीराकारेण भासमानं भगवद्रूपमेवेति. न तुल्यमतिशयो वा यस्य यस्मादन्यत्र तद**तुल्यातिशयम्.** कालापेक्षया नान्यस्य वीर्यमस्ति; काल-

---

प्रकाशः

तस्मा इत्यत्र **साधनोत्पत्तिरि**ति साधननिष्पत्तिः. पाठान्तरे योजनामाहु**र्नमो धीमहीति**ति– वासुदेवाय [१]नमस्तद् ध्यायेम. तदेतद् विवृण्वन्ति **हृदय** इत्यादि. निशायामपि चन्द्रादिसद्भावे मेघदर्शनमिति **गाढान्धकार** इति ॥३३॥

यस्यावतारा इत्यत्र **तर्हीति** यदि भगवान् बहिरप्रकाशः. **अतुल्यातिशय**पदे समासवृत्तौ तुल्यं चातिशयश्च तुल्यातिशयौ, न तुल्यातिशयौ यस्येत्यतुल्यातिशयम्. अत्र नञ्पदद्वयेपि सम्बध्यमानो यमर्थं ब्रूते तं स्फुटीकुर्वन्ति **न तुल्यमि**त्यादि. तथा च यस्यान्यत् तुल्यं नास्ति यस्मादतिशयोन्यत्र नास्ति तत् तथेत्यर्थः.[२] सिद्धमाहु-

लेखः

यस्यावतारा इत्यत्र **तेष्ववतारा** इति– **तेषु** मत्स्याद्याकारेषु सत्त्वेषु पुरुषोत्तमस्यावतरणानीत्यर्थः. तथा च सत्त्वस्यैव प्रत्यक्षं, आविष्टपुरुषोत्तमज्ञानं त्वानुमानिकमेवेत्यर्थः ॥३४॥

---

१. 'य नमस्ता°. २. °त्रेत्यर्थः.

मर्यादां चेदुल्लङ्घति तदा भगवद्वीर्यमतुल्यातिशयमिति ज्ञायते. सोपि नैकविधः पराक्रमः– क्षणेन विश्वरूपो भवति, क्षणेन वामनो, दृश्यश्चादृश्यश्च, बहिरन्तः परिच्छेदो व्यापकश्च. अतो ज्ञायते सर्वेष्वेव **देहिष्वसङ्गैः** कदाप्यसम्बद्धैर्भगवानेवायमिति, न तु प्रत्यक्षतया भगवानिति निश्चेतुं शक्यत इत्यर्थः. तत्रापि कदाचिच्चेदलौकिकं भवति कल्प्येतापि कथञ्चिज्ज्ञातमिति, सर्वदा चेदवाङ्मनोगोचरा अनुभावास्तदा कथं न ज्ञायेत? तदाहुस्**तैस्तैरि**ति. एवमवतारेषु भगवज्ज्ञानमानुमानिकं न प्रत्यक्षमित्युक्तम् ॥३४॥

प्रकृते तु शब्दादेव नारदकृपया वा भगवानेतदर्थमागत इति ज्ञायत इत्याहुः **स भवानि**ति.

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥३५॥

यः पूर्वोक्तः सर्वप्रमाणवेद्यो लौकिकैरवेद्योऽन्तःकरणप्रत्यक्षोऽवतारी चतूरूपो **भवान्.** अत एव **सर्वस्यैव लोकस्य भवायो**द्भवायैश्वर्याय **च अंशेन भागेन च साम्प्रतमवतीर्णः,** यतो **भवानाशिषां पतिः.** स्वरूपतो भवाँश्चतूरूपो विवृतः प्रकारेण. ततोप्यधिकास्त्वत्र गुणाः. सर्व एव लोका उत्पादनीयाः. ततस्तेभ्यः स्वसमानैश्वर्यादिकं च देयम्. भगवत्यंशतः समागते सर्वे भगवदीयाः शुद्धसत्त्वांशेनैवाविर्भवन्ति भगवत्सेवौपयिकदासरूपांशेन वा. सर्वे लोकाः स्वदासभावेनाविर्भवन्त्वितीच्छया भगवानेकदेशभावं प्रकाशितवान्, समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः; न हि प्रलयाग्निः सेवितुं शक्यते. किञ्च **भागाः** कलाः, कल**यावतीर्णः.** सर्वेषां सर्वकलाकौशलाय सर्वाः कलास्तदैव प्रादुर्भवन्ति यदि मूलभूतः कलारूपेणाविर्भवति, तदैव च सर्वाः कलाः पूर्णा भवन्ति. इदं स्वोपयोगायोक्तं, स्वस्यापि वैष्णवरूपेणोद्भवो भक्तिकलाश्च पूर्णा भविष्यन्तीति. एता ए**वाशिषः,** अग्रे प्रार्थ्यमानत्वात्. मानुषभावेन नानाविधाः क्रीडा भक्तानुत्पाद्य तेषु भक्तिस्थापनार्था इत्यर्थः ॥३५॥

किञ्चित् प्रार्थयितुं नमस्कारं कुरुतो **नम** इति,
आदिमध्यावसानेषु नमनं मनआदिभिः ॥(२१ १/२)॥

नमः परमकल्याण नमस्ते विश्वमङ्गल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥

आदौ कायिकं नमनं, तत्र फलं **परमकल्याणे**ति. कल्याणानां निधानरूपो भगवान्. कल्याणानि शुभफलानि पुत्रजन्मादीनि लोके प्रसिद्धानि. परमानन्दः **परमकल्याणः.** कायेन नमस्कृतः शरीरोपभोगाय **परमकल्याणः** प्रादुर्भवति. **नमस्त** इति वाचनिकं, **ते** तुभ्यमिति कीर्तनात्. तस्य फलं **विश्वमङ्गल** इति, वेदादिनिर्माणाद् विश्वस्मै तत्साध्यफलरूपो मङ्गलं भवति. अन्ते नमनं मानसं, तदर्थं मनस्याविर्भावाय **वासुदेवाये**ति. **शान्ताये**ति ज्ञानरूपाय; केवलमाविर्भूते नारदवदज्ञाते तथापुरुषार्थो न भवतीति शान्तं लयविक्षेपशून्यं रूपमाविर्भावो ज्ञानं चोक्तम्. फलमाह **यदूनां पतय** इति, भगवान् स्वामी फलं, यथा यदूनाम् ॥३६॥

प्रकाशः

रेवमित्यादि. तथा चावतारा वीर्यानुमेया, न[१] प्रत्यक्षा इति भगवतोन्तःप्रकाशत्वं न विरुध्यत इत्यर्थः ॥३४॥

स भवानित्यत्र **शब्दादि**ति "वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वे"तिरूपात् नारदवाक्यात्. **एतदर्थमि**ति सान्निध्यार्थम्. **ततोप्यधिकास्त्वत्र गुणा** इत्यवतारान्तरादप्यधिका अस्मिन् स्वरूपे गुणाः. पूर्वश्लोके "यस्ये"तिपदेन योवतारी परामृष्टः स एव "स भवानि"त्यनेन गृह्यते. तथा स**त्यंशभागेनावतीर्ण** इतिकथनं कथं सङ्गच्छत इत्याकाङ्क्षायां तदुपपादनाय तृतीयायाः सहार्थत्वमभिप्रेत्याहुः **भगवती**त्यादि. नन्वेवं भङ्ग्या कथनस्य किं प्रयोजनमत आहु**रिदमि**त्यादि, अंशभागाभ्यामवतरणमित्यर्थः ॥३५॥

नम इत्यत्राग्रिमे **तदर्थमि**ति[१] ॥३६॥

लेखः

स भवानित्यत्र **एकदेशभावमि**ति. तथा च "तत्रांशेनावतीर्णस्ये"त्यत्रोक्तः **अंश**पदस्यार्थो ज्ञेयः॥३५॥

योजना

यदूनां पतये नम इत्यस्य विवृतौ **भगवान् स्वामी फलमि**ति, यदा भगवान्

कारिकार्थः

नमः परमकल्याणेतिश्लोके वारत्रय**नमः**शब्दार्थमाहुः **आदी**ति. कायवाङ्मनोभिरिति स्फुटं विवरणे (२१ १/२).

---

१. इति न प्रत्यक्षा.

१. अत्र टीका त्रुटिता.

एवं नमस्कृत्य गमनार्थं प्रार्थयेते **अनुजानीही**ति.

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥३७॥

नावावाम**नुजानीहि** अनुज्ञां प्रयच्छ. **भूमन्नि**ति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुमयोग्यतार्थम्. तदेवाहतुः **तवानुचरकिङ्करावि**ति, **तवानुचरस्य** नारदस्य **किङ्करौ** दासौ. सेवकसेवकत्वमेवोचितं न तु त्वत्सेवकत्वमावयोः, यतस्त्वं **भूमा** महान्, न ह्यल्पेन महतः सेवा कर्तुं शक्यते. ननु दर्शनयोग्यता यदा तदा सेवायोग्यता सिद्धैव, ततः कथमयोग्याविति चेत् तत्राहतु**र्दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीद-नुग्रहादि**ति. महाराजसेवकः स्वभृत्यं कदाचित् महाराजस्थानं नयति नैतावता तस्य महाराजसेवायोग्यता भवति. अतो दर्शनान्यथानुपपत्त्या न सेवायोग्यता, **भगवतो दर्शनमृषेरनुग्रहादि**ति **ऋषेर्भगवत** इति गुरुदेवतयोरैक्यार्थं सहनिर्देशः ॥३७॥

एवं गमनं प्रार्थयित्वा तत्र गतयोर्भक्तिं प्रार्थयेते **वाणी**ति.

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३८॥

षडङ्गानि पुरुषे प्रधानानि—

वाक् श्रोत्रे च करौ चित्तं शिरश्चक्षुस्तथैव च ।
षडेते भगवत्कार्ये यदि सक्ताः कृतार्थता ॥(२२)॥

प्रकाशः

अनुजानीहीत्यत्र **तत्रे**ति[१] निकटे. तर्हि दर्शनमेव कथमत्राहु**र्भगवत** इत्यादि ॥३७॥

योजना

भक्तिमार्गरीत्या स्वामी भवति तदा फलरूपो भवतीत्यर्थः. तत्र दृष्टान्तः **यथे**ति, "यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशदि"ति वाक्यात् ॥३६॥

अनुजानीहीत्यस्य विवृतौ **भूमन्निति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुमयोग्या-र्थमि**ति. "यो वै भूमा तत्सुखमि"त्यादिभूमविद्यासिद्धस्वरूपनिर्देशेन सर्वत आधि-क्यसूचनात् परमकाष्ठापन्नस्य परब्रह्मणः अन्तरङ्गलीलास्थाने स्थातुमयोग्यत्व-मित्यर्थः. **अयोग्यार्थमि**ति भावप्रधानो निर्देशः, अयोग्यत्वार्थमिति फलति ॥३७॥

---

१. अ°.

कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके ।
स्वरूपस्मरणे नत्यामवतीर्णस्य दर्शने ॥(२३)॥

गुणानामुत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने **वाण्य**स्तु तत्रैव सा विनियुक्ता भवतु. यथा वराय दत्ता कन्या नान्यगामिनी भवति, नाप्यन्यः प्रार्थयते, नापि पतिभयात् सान्यसम्बन्धिनी कथञ्चिदपि भवति, तथा वाणी भवतु. एवमेव **श्रवणौ कथायां, हस्तावु**भावपि भगवतः सर्व**कर्मस्वा**ष्टयामिकेषु. **च**कारात् पादावपि मन्दिरगमना-दिषु; तद्व्यतिरेकेण हस्तसेवा नोपपद्यत इत्युभयमेकरूपम्. **तव पादयोः स्मृत्यां नो मनो**ऽस्तु. स्मरणे सर्वानेव भक्तानेकीकृत्याहतुः. **पादयोरि**तिद्विवचनं रूपान्तरे तथाभावाय. **शिर**स्तु **प्रणामे**. चतुरङ्ग्या भक्त्या भगवतः सर्वस्थितिः सर्वान्तरत्वं च स्फुरिष्यति. अतः सम्बोधनं, यतो हे **निवासजगदि**ति, निवासभूतं जगद् यस्येति. **दृष्टि**स्तु **सतां दर्शने**ऽस्तु. भगवद्दर्शनं तु धाष्ट्र्यान्न प्रार्थितम्. ननु तेषां दर्शने किं स्यात्? तत्राहतु**र्भगवत्तनूनामि**ति, भगवतस्तनूरूपास्ते. तत्र भवान् वर्तत इति तथा, अयोगोलके वह्निर्यथा वा गङ्गायां जलम् ॥३८॥

प्रकाशः

वाणीत्यत्र तत्तदासक्तिविषयान् क्रमेणाहुः **कीर्तन** इत्यादिना. द्वयोः स्वस्मिन् **न** इतिबहुवचनप्रयोगो न सङ्गत इति तत्तात्पर्यमाहुः **स्मरण** इत्यादि, सर्वेषां भक्तानां स्मरणावश्यकतायाः सर्वजनीनत्वादिति. **चतुरङ्ग्या भक्त्ये**ति श्रवणकीर्तनस्मरण-पादसेवनसहितया प्रणमनरूपया भक्त्या. **धाष्ट्र्यादि**ति ल्यब्लोपे पञ्चमी; तथा प्रार्थने धाष्ट्र्यं भविष्यतीत्यनुसन्धायेत्यर्थः. **गङ्गायां जलमि**ति प्रवाहरूपायां चरणसम्बन्धि जलम् ॥३८॥

लेखः

वाणी गुणानुकथन इत्यत्र **अवतीर्णस्ये**ति भक्तेष्वाविष्टस्येत्यर्थः(२३).

कारिकार्थः

वाणी गुणानुकथन इत्यत्र **वागि**ति. वागादिकार्याण्याहुः **कीर्तने** इति. **गुणानां** स्मरणे **रूपस्य दास्ये** इत्यर्थः. **अवतीर्णस्ये**ति भक्तेष्वाविष्टस्येत्यर्थः. **'दृष्टि सतां दर्शनेस्त्वि'**ति मूलानुरोधात्. **अवतीर्णस्ये**तिपदेन सतामप्यवतारतुल्यत्वं बोधितम् (२२-२३).

एवं गमनभक्त्योः प्रार्थनायां कृतायां सर्वथा भक्तौ शीघ्रमेव लयो भविष्यतीति किञ्चित् मोहयित्वा किञ्चिद् दत्तवानित्याह**इत्थमि**ति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्थं सङ्कीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥३९॥

एवङ्कारेण **सम्यक् कीर्तित**स्तोषपर्यन्तं स्तुतः **प्रहसन् गुह्यकावाह.** सर्वकरणदानयोः समर्थ इति ज्ञापयति **भगवानि**ति. शीघ्रं तयोर्मुक्तौ गोकुले स्वस्य क्रीडायामन्यप्रवेशो भविष्यतीति ज्ञापयति **गोकुलेश्वर** इति. गोकुलवासिनामेव साम्प्रतं तद् युक्तं न त्वन्येषां, अतो गोकुलक्रीडासमाप्तिपर्यन्तं तथामोहनमुचितमेव. किञ्च **दाम्नोलूखले च बद्धः** यस्तु गोकुलरसभोगार्थं तत्र गौणभावं प्राप्तस्तेषु वा रसाधिक्यसिद्ध्यर्थं तदधीनो जातः. देवयोर्गोकुले स्थितयोः पूजा कापि न जातेति शङ्कापि न कर्तव्या, यतो **गोकुलेश्वरो दाम्ना बद्धः.** वस्तुतस्त्वीश्वर एव, लोकदृष्ट्यापि नन्दस्यायमेव पुत्र इतीश्वर एव. स चेद् दाम्ना यन्त्रितस्तदा कस्य गोकुले सन्मानं स्यात्? उचितं चैतद्– देवयोरत्र वृक्षत्वम्. एवं गोकुलवासिनां वृत्तान्तं स्मृत्वा प्रहसन् वक्ष्यमाणमब्रवीत्– यद् युवाभ्यां प्रार्थ्यते तत् किमपि

प्रकाशः

इत्थमित्यत्रान्यप्रवेश इति विवक्षितलीलाव्यतिरिक्तलीलाप्रवेशः. **क्रीडासमाप्तिपर्यन्तमि**ति लोके क्रीडायाः प्रदर्शनसमाप्तिपर्यन्तमित्यर्थः. नन्वस्याः क्रीडायाः सार्वदिकत्वाद् यदाकदाचित् तथात्वे तद्दोषतादवस्थ्यमितीदानीं मोहनं व्यर्थमित्याशङ्क्य तत्र हेत्वन्तरभूतं[१] विशेषणं व्याकुर्वन्ति **किञ्चे**त्यादि. तथा च तदधीनत्वात् त एव चेदङ्गीकुर्वन्ति तदैव किञ्चिद् भवतीति स्वस्याशक्यत्वात् तदंशे स्वयं हास्यमेव कृतवानिति भावः. एतेन पुरुषोत्तमे सायुज्यमपि भक्तकृपयैव भवतीति सूचितम्. यद्वा **किञ्चे**त्यादेः पुरःस्फूर्तिक एवार्थो ग्राह्यः, "अह्न्यापृतमि"ति वाक्येन गोकुलस्य स्वतस्तामसत्वेपि भगवत्कृपयैवोत्कृष्टत्वात्. अत ए"वात्राङ्गीकृतजनजनितापराधकूटक्षमाविनोदोस्य अङ्गीकृतिश्च नित्या वदन्तु कोन्योस्य साम्यमियादि"तिप्रभुचरणोक्तमनुसन्धेयम्. **उचितं चैतदि**ति गोकुले भगवत्कृपाया [२]सर्वाधिकत्वादितिभावः ॥३९॥

---

१. °त°. २. सर्वसिद्धिक°.

नावशिष्टं, मदधिकारिणैव तत्सम्पादनात्. द्वयं हि पुरुषार्थो– मुक्तिर्मयि प्रेम च, निरोधस्योभयरूपत्वात् ॥३९॥

प्रपञ्चविस्मृतिर्मुक्तिः; सा पूर्वमेव जातेत्याह **ज्ञातमि**ति.

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोनुग्रहः कृतः ॥४०॥

ममैतत् पूर्वमेव **ज्ञात**मासीद् **यद् ऋषिणा करुणात्मना श्रीमदान्धयोर्विभ्रंशः कृतः.** सेवकाः कदाचित् स्वेच्छयापि कुर्वन्तीति तद्व्यावृत्त्यर्थं ज्ञानमुच्यते. न केवलं **ज्ञातं** किन्त्वभिमतमित्यृषिप्रशंसा. ततो मयैतावत् कृतमित्यर्थाद् ज्ञापितम्. अतो न प्रार्थनीयं किञ्चिदवशिष्यत इति भावः. शापो ह्यपकारे भवति. स शापदातुः समानाधिकरणो भवति. परदुःखमपि दृष्ट्वा कारुणिको दुःखितो भवति. तदाह **करुणात्मने**ति. करुणायुक्त **आत्मा**न्तःकरणं यस्येति. भाव्यर्थावश्यम्भावज्ञानाद् **ऋषि**त्वं, युवयोस्त्वतिक्लिष्टत्वमाह **श्रीमदान्धयोरि**ति. अन्धतमस उद्धारोवश्यं

प्रकाशः

ज्ञातमित्यत्र स इत्यादि. **सो**ऽपकारः शापदाने प्रयोजको भवतीत्यपेक्षितप्रार्थनं कथं नावशिष्टमित्यत आहुः **परदुःखे**ति. तथा च नायमपकारतः शापः किन्तु करुणयातो नात्र प्रार्थनीयमवशिष्टमित्यर्थः. एतेन "येन देवर्षेस्तम"इति राजप्रश्नस्योत्तरं जातं ज्ञेयम् ॥४०॥

लेखः

ज्ञातं ममेत्यत्र स शापदातुरिति, दुःखरूपः शापदातुरपकारः शापसमानाधिकरणो भवतीत्यर्थः. **ज्ञानरूप** इति तन्निरूपक इत्यर्थः॥४०॥

योजना

ज्ञातं मम पुरैवैतदित्यत्र **शापो ह्यपकारे भवतीति**. न हि भवद्भ्यां मुनिना शापो दत्तः किन्त्व**नुग्रहः कृतः.** तत्र हेतुः– **शापो ह्यपकारे भवती**ति. यद्यपकारः स्यात् तदा शापत्वेन गण्येत, इह तूपकारः कृत इति न शापत्विमिति भावः. **स शापदातुः समानाधिकरण** इति. **शापदातुः** शापदातृसम्बन्धी, शापदात्रा कृत इति यावत्. शापदात्रा कृतोऽपकारः शाप**समानाधिकरणो भवति** यत्र शापस्तत्रैवापकारो भवतीत्यर्थः. प्रकृते तु शापाधिकरणयोर्यमलार्जुनयोरपकारादर्शनात् प्रत्युत भगवत्सम्बन्धलक्षणोपकारदर्शनात् न शापत्वमपि **त्वनुग्रह एवे**ति हार्दम् ॥४०॥

कर्तव्यः. **वाग्भिरि**तिवचनमात्रं तेनोक्तं, ज्ञापनार्थं कृतिस्तु मयैव कृता. अत एव **वाग्भिर्यो विभ्रंशो** ज्ञानरूपः स **त्वनुग्रह** एव ॥४०॥

नन्ववश्यम्भावि चेत् तथात्वं किमिति नारदेनोक्तम्? वचनात् तूष्णीम्भाव एवोचित इति चेत् तत्राह **साधूनामि**ति.

साधूनां समचित्तानां नितरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥

ये हि साधवस्तेषां दर्शने पुनर्बन्धो न भवति. ते हि ज्ञानव्याप्ता वह्निनायःपिण्ड इव; यथा तत्सम्बन्धेऽग्नेरप्यधिको दाहो भवत्येवमेव ब्रह्मज्ञानापेक्षयापि सद्दर्शने बन्धनिवृत्तिर्भवति. **साधवः** सदाचाराः **समचित्ता** ज्ञानिनः, अतो ज्ञानकर्मणोः सद्भावादेते मुक्ता इति वैलक्षण्यज्ञानं न समदर्शित्वबाधकम्. नापि तैस्तथा सम्पाद्यते, किन्तु तेषां दर्शनमेव मुक्तिसाधकम्. किञ्च **नितराम्मत्कृतात्मनामि**ति, मयि कृत आत्मा यैः समर्पितात्मानः, मत्कृते वात्मा येषाम्. कर्मज्ञानभक्तीनां तेषु सिद्धत्वाद् बन्धः सर्वथा न भवति. तमो निवर्तितं कर्मणा, रजो ज्ञानेन, सत्त्वं भक्त्येत्यतो न केनाप्यंशेनावशिष्यते. अत एव पूर्णकर्माणो वस्वादिभावं प्राप्नुवन्ति, ततोपि ज्ञानिनो ब्रह्मविदः सनकादय इव भवन्ति, ततोपि भक्ता मद्भावं प्राप्नुवन्तीति. तदाह **दर्शनान्नो भवेद् बन्ध** इति. **पुंस** इति मर्यादाधिकारिणस्तु ततो बन्धो निवर्तते, अहं त्वनधिकारिणोपि निवर्तक इतिविशेषः. तथाप्यप्रार्थितं कथं

प्रकाशः

साधूनामित्यत्र **सद्भावादि**ति सत्त्वभवनात्. ननु समचित्तत्वे कथं मुक्तोऽमुक्त इतिभेददर्शनमुपपद्यत इत्याशङ्क्याहु**रेत** इत्यादि. यथार्थवस्तुग्रहणात् प्रत्युत साधकमितिभावः. ननु फलतो वैषम्याभावेपि स्वरूपतस्तु नापैतीत्यत आहु**र्नापी**त्यादि. तथा च सान्निध्यमात्रेण भवनात् न स्वरूपतस्तथेत्यर्थः. **अवशिष्यत** इति बन्ध इति शेषः. दोषनिवृत्तिमुक्त्वा फलप्राप्तिरपि ततो भवतीत्यत

लेखः

साधूनामित्यत्र **अत एवे**ति कर्मणा तमसो निवर्तितत्वादेवेत्यर्थः. **वस्वादीनां** सृष्टिकर्तृत्वात् **तद्भावो** राजस इतिभावः. **सनकादय इवे**ति, ज्ञानेन रजसो नाशनात् सात्त्विका भवन्तीत्यर्थः. "सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्" इतिवाक्यात् सनकादीनां सात्त्विकत्वम्. **मद्भावमि**ति, भक्त्या सत्त्वस्यापि नाशनात् निर्गुणभावं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः॥४१॥

दत्तवन्त इत्याशङ्क्य दृष्टान्तेन निराकरोत्य**क्ष्णोः सवितुर्यथे**ति. अक्ष्णोर्बन्धनमन्धकारः, स सवितृदर्शने निवर्तत एव ॥४१॥

न हि वस्तुशक्तिः प्रार्थनादिकमपेक्षते. तस्मान्मोक्षस्तु पूर्वमेव सिद्धो भक्तिरपि सिद्धेति वदन् प्रार्थितमाह **तद् गच्छतमि**ति.

तद् गच्छतं महाभागौ नलकूबरसादनम् ।
सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोभवः ॥४२॥

भक्तेः कारणमाह **महाभागावि**ति. अनन्तकोटिजन्मपुण्यपापयोरुपार्जितयोर्मध्ये दिव्यशतवर्षपर्यन्तं मत्प्रतीक्षाभावनात् सर्वमेव पापं नष्टं, पुण्यं त्ववशिष्यते, तदुक्तं **महाभागावि**ति. **नलकूबरे**त्येकस्यैव प्रसादः. **सादनं** गृहं, यत्रावसादं प्राप्तौ; अनेन तत्रासक्तिर्न भविष्यतीति सूचितम्. **मयि** तु मद्विषयको **भावः** प्रेमलक्षणकः **सञ्जात** एव. तेनैव श्रवणादिकं स्वत एव भविष्यति. अप्रार्थितत्वादनभिमतमित्याशङ्क्याह**ेप्सित** इति. तत्र हेतुः **परमोभव** इति, **भाव** एवान्तिमजन्मरूपो; न तस्मादप्यन्यत् जन्म भवतीति परमत्वम्. अतो जन्मभिः क्लिष्टानां सर्वेषामेव **मयि भावः** प्रार्थनीयो भवति. अतो **वां** युवयोरपीप्सितत्वात् सम्यग् जातः ॥४२॥

एवमुक्तौ तत्रोचितं कृत्वा गतवन्तावित्याह**ेत्युक्तौ.**

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्युक्तौ तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

तमिति बालकव्युदासः. बहुवारं प्रदक्षिणां कृत्वा प्रतिप्रदक्षिणं नमस्कृत्य **च**कारात् स्वदीनतां चाविष्कृत्य लीलाभावादिभिरप्यमोहितौ सन्तौ, **बद्धमुलूखलं**

प्रकाशः

आहु**रत एवे**ति, दर्शनादेव. **दत्तवन्त** इति साधव इति शेषः ॥४१॥

तद् गच्छतमित्यत्र ननु **नलकूबरे**त्यत्रैकशेषः कथं सङ्गच्छत इत्यत आहु**स्तत** इत्यादि. तथा च स्थूलदेहापेक्षया सूक्ष्मस्योत्कृष्टत्वात् तस्य च मनोरूपस्योभयोः समानत्वात् स्वरूपैकशेष इत्यर्थः. **अप्रार्थितत्वादनभिमतमि**ति– "वाणी"तिश्लोके भावस्याप्रार्थितत्वात् तद्दानमनभिमतम्. **सम्यग् जात** इति, तथा च तद्दानमप्यभिमतमेवेत्यर्थः ॥४२॥

लेखः

इत्युक्तौ तमित्यत्र **लीलाभावादिभिरि**ति, बद्धोलूखलस्यैव नमनादिति

यस्मिन्निति, **आमन्त्र्य** 'गच्छाव' इत्युक्त्वो**त्तरां दिशं** स्वस्थानं **जग्मतुः.** एवं गोकुलवासिनोर्वृक्षयोरपि निरोध उक्तः ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेवान्तरप्रमाणप्रकरणे वैराग्यनिरूपकषष्ठाध्यायस्य स्कन्धादितो दशमाध्यायस्य विवरणम् ॥

प्रकाशः

इत्युक्तातावित्यत्र लीलाभावादिभिर्मोहने हेतुरुक्तो **बद्धमि**त्यादिस्तथाप्य-मोहे हेतुः पूर्वमुक्तः. **एवमि**त्यादिना कैमुतिकः प्रदर्शितः. तथा च यो गोकुले **वृक्ष-योरपि निरोधं** करोति स मातुः कथं न कुर्यादिति "कृष्णस्तु गृहकृत्येष्वि"त्यत्रीया शङ्का निरस्ता. एतेनैवैतदध्यायलीला न गोकुलविनियुक्तेत्यपि निरस्तम् ॥४३॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशे दशमाध्यायविवरणम् ॥

लेखः

भावः. **लीला** दाम्ना बन्धनं, **भावो** मानुषभावः, **आदि**पदेन तत्कालोचित-सभयत्वादिकं तथा चेष्टया स्थितिश्च; कैरप्यमोहितावित्यर्थः ॥४३॥

॥ इति दशमोध्यायः ॥

॥ सप्तमः स्कन्धादित एकादशोध्यायः ॥

निरोधः सर्वभावेन वर्णनीयो हि गोकुले ।
स्त्रीणां स चोक्तः पुंसां च नन्दप्राधान्यभावतः ॥(१)॥
एकादशे ततोध्याये पूर्वावस्थामशेषतः ।
त्याजयित्वा तु नन्दस्य कृष्णभावो निरूप्यते ॥(२)॥

प्रकाशः

एकादशाध्यायतात्पर्यं निरूपयन्तोऽवान्तरप्रश्नोत्तराणां जातत्वात् स्कन्धारम्भे "व्रजे वसन् किमरोदि"तिसामान्यप्रश्नाद् व्रजस्यैव लीला वक्तव्यायं च निरोधस्कन्ध इति प्रथमं च तत्र गोकुलस्यैव निरोध उपक्रान्त इति स च फलपर्यन्तो वक्तव्य इति तदर्थं यत् पूर्वं वृत्तं तत् सङ्गत्यर्थमनुवदन्तः प्रस्तुताध्यायार्थमाहु**र्निरोध** इत्यादि द्वाभ्याम्. **हि** यतो हेतोः **सर्वभावेन** सर्वप्रकारेण **गोकुले निरोधः** प्रकरणानुरोधाद् **वर्णनीयः. स** निरोधः **स्त्रीणामुक्तश्च**काराद् वृक्षयोः, **श्रीनन्दप्राधान्येन पुंसां चोक्तश्चो**प्यर्थे, **ततो** हेतो**रेकादशेध्यायेऽशेषतः पूर्वावस्थां त्याजयित्वा निरूप्यते.** पूर्वश्लोकोक्तं **स** इति पदमत्रापि सम्बन्ध्यते. **तु** पुनः पूर्वकथा-शेषत्वात् **श्रीनन्दस्य कृष्णभावो निरूप्यते,** पूर्वमित्यर्थात्. तथा चात्र कथाशेषांशेऽ-वसरोध्यायार्थे तु विशेषगर्भप्रसङ्गः सामान्यविशेषभावो वा सङ्गतिरित्यर्थः (१-२).

एतदध्यायप्रतिपाद्यानर्थान् श्लोकसङ्ख्यानिरूपणपूर्वकं द्वाभ्यामाहु**र्मोचन-**मित्यादि (३-४).

लेखः

एकादशेध्याये **सर्वभावेने**ति, सर्वेषां करणानां भगवद्विषयकत्वजनको **निरोध** इत्यर्थः, निबन्धे तथा लक्षणात्. **पुंसां चे**ति **उक्त** इति पूर्वेणान्वयः. **कृष्णभाव** इति भगवता कृत इति शेषः. तेन **त्याजयित्वे**त्यस्य समानकर्तृत्वम्. तथा च **हि** यतो **निरोधः सर्वभावेन वर्णनीयस्ततो** हेतोः सामान्यत उक्तो**प्यशेषतः पूर्वावस्थां** प्रपञ्चनिष्ठारूपां **त्याजयित्वा** भगवता कृतो **नन्दस्य कृष्णे भाव** आसक्तिरूपो विशेषत **एकादशे निरूप्यत** इति श्लोकद्वयस्यैकान्वयः (१-२).

कारिकार्थः

एकादशाध्याये **निरोधः सर्वभावेने**त्यादि. पूर्वं सामान्यत उक्तोपि **नन्दस्य निरोधो**ऽस्मिन्नध्याये **पूर्वावस्थां** प्रपञ्चासक्तिं **त्याजयित्वा** विशेषतो **निरूप्यत** इत्यर्थः (१-२).

मोचनं मुग्धलीला च स्थानान्तरपरिग्रहः ।
तत्र लीला वत्सबकौ ज्ञानं चेति निरूप्यते ॥(३)॥
षड्भिस्त्रिभिः षोडशभिश्चतुर्भिः षड्भिरेव च ।
नवभिः पञ्चभिश्चेति सप्तार्थाः सगुणो हरिः ॥(४)॥

योजना

एकादशाध्यायविवरणारम्भे कारिके **मोचनं मुग्धलीला चे**त्यारभ्य **सगुणो हरिरि**त्यन्तम्. "गोपा नन्दादय" इत्यारभ्य "विमुमोच हे"त्यन्तं **षड्भिर्मोचनं**, "गोपीभिः स्तोभित" इत्यारभ्य "बालचेष्टितैरि"त्यन्तं **त्रिभिर्मुग्धलीला**, "गोपवृद्धा" इत्यारभ्य "राममाधवयोर्नृपे"त्यन्तं **षोडशभिः स्थानान्तरपरिग्रहः**, "एवं व्रजौकसामि"त्यारभ्य "चेरतुः प्राकृतौ यथे"त्यन्तं **चतुर्भिः तत्र लीला** वृन्दावने लीला, "कदाचिद् यमुनातीर" इत्यारभ्य "चारयन्तौ विचेरतुरि"त्यन्तं **षड्भिर्वत्स**वधलीला. इह सार्धपञ्चश्लोका एव अन्यत्र उपलभ्यन्ते तथापि "वत्सासुरं हतं श्रुत्वा व्रजे गोप्यश्च विस्मिता" इत्यर्धश्लोकेन षट् श्लोका भवन्ति. "स्वं स्वं वत्सकुलमि"त्यारभ्य "ऐक्षन्त तृषितेक्षणा" इत्यन्तं **नवभिर्बक**वधलीला, "अहो बतास्य बालस्ये"त्यारभ्य "मर्कटोत्प्लवनादिभिरि"त्यन्तं **पञ्चभिर्ज्ञान**लीला –एवं **सप्त पदार्था** अस्मिन्नध्याये निरूपिता **इति** ऐश्वर्यादिषड्गुणयुक्तो धर्म्यत्राध्यायार्थ इति सङ्ख्यातात्पर्यम् (३-४).

कारिकार्थः

एतदध्यायप्रतिपाद्यानर्थान् श्लोकसङ्ख्यानिरूपणपूर्वकमाहु**र्मोचनमि**त्यादि. "गोपा नन्दादय" इत्यारभ्य "विमुमोच हे"त्यन्तैः **षड्भिर्मोचनं**, "गोपीभिः स्तोभित" इत्यारभ्य "बालचेष्टितैरि"त्यन्तै**स्त्रिभिर्मुग्धलीला**, "गोपवृद्धा" इत्यारभ्य "राममाधवयोर्नृपे"त्यन्तैः **षोडशभिः स्थानान्तरपरिग्रहः**, "एवं व्रजौकसामि"त्यारभ्य "चेरतुः प्राकृतौ यथे"त्यन्तै**श्चतुर्भिस्तत्र** वृन्दावने **लीले**त्यर्थः. "कदाचिद्यमुनातीर" इत्यारभ्य "चारयन्तौ विचेरतुरि"त्यन्तैः **षड्भिर्वत्स**-वधलीला. इह लीलायां सार्धपञ्चश्लोका एव अन्यत्र पुस्तकेषूपलभ्यन्ते तथापि "वत्सासुरं हतं श्रुत्वा व्रजे गोपाः सुविस्मिता" इत्येवं श्लोकार्धं श्रीभागवत-पीयूषसमुद्रमथनक्षमैर्व्यासहार्दज्ञैः श्रीमदाचार्यवर्यैः पूरितमिति षट् श्लोका भवन्त्येव. "स्वं स्वं वत्सकुलमि"त्यारभ्य "ऐक्षन्त तृषितेक्षणा" इत्यन्तै**र्नवभिर्बक**वधलीला,

स्वार्थं तु भगवान् कार्यस्तथात्वं ज्ञाप्यते पुनः ।

प्रकाशः

एवमध्यायप्रतिपाद्यानर्थानुक्त्वा तत्प्रयोजनं वदन्तोस्य रूपाध्यायत्वात् पूर्वेषु गुणैरिवात्र रूपेण निरोद्धव्या, निरोधस्य दृढत्वाय तेषां स्वस्मिन्निव स्वस्यापि तेषु निरोधो वक्तव्य इति स्वस्यापि तदधीनताबोधनं कार्यम्. तदत्र प्रथमं न स्फुटीभवति, पूर्वशेषकथायां श्रीनन्दाद्यागमनगोपबालकसंवादादेरेव तत्र दर्शनादित्या-शङ्कायामाहुः [1]**स्वार्थमि**त्यादि. **तुः** शङ्कानिरासे, उक्ताशङ्का न कर्तव्या. भक्तैः **स्वार्थ** स्वमनोभिलषितसेवाकरणार्थं **भगवान्** वशी**कार्य** इत्येतद् मोचनलीलया बोध्यते, भगवतो वश्यत्वं मुग्धलीलाभि**र्ज्ञाप्यते**, तेन च पूर्वोक्तरीत्या सुदृढो निरोधः सिद्धो भवति. तथा चैवं भक्तवश्यताप्रदर्शनेऽन्येपि[2] तथा फलेच्छया सेवां[3] करिष्यन्ति सर्वथेति तदर्थं तत्प्रदर्शनमित्यर्थः. नन्वेतद् दामोदरलीलयैव सिद्धमिति पुनस्तत्प्रदर्शनं किमर्थमत्राहुः **पुनरि**ति. यद्यप्युक्तं तथापि "नेमं विरञ्च्य" इत्यादिनान्येषां तत्प्रसादप्राप्त्यभावकथनात् न सन्देहो निवर्तत इति तथेत्यर्थः. यद्वा यथा भगवान् दामोदरो जातस्तथान्येषां न वशं भविष्यतीति शङ्कानिरासाय

लेखः

सगुण इति गुणसहितो धर्मी निरूप्यत इत्यध्यायार्थ उक्तः. **स्वार्थं त्विति**. परार्थाः पञ्चनिरोधाः पूर्वमुक्ताः. "यच्छृण्वतोपैत्यरतिरि"तिवाक्याच्छ्रोतॄणामरत्या-दिनिवृत्त्यर्थमेव ते निरोधा इति परार्थत्वम्. **स्वार्थं कार्यो** यो निरोधो लीलारूपः स **भगवानेवा**तः सप्तधा उक्त इति शेषः. **तथात्वमि**ति कार्यस्य लीलारूपस्य भगवत्त्वं

कारिकार्थः

"अहो बतास्य बालस्ये"त्यारभ्य "मर्कटोत्प्लवनादिभिरि"त्यन्तैः **पञ्चभिर्ज्ञान**-लीला. यद्यपि नन्दादीनां भगवज्ज्ञानं त्रिभिः श्लोकैरेवोक्तं, तथापि द्वाभ्यामुपसंहार इति पञ्च. एवं **सप्तपदार्था** अस्मिन्नध्याये निरूपिता इति ऐश्वर्यादिषड्गुणयुक्तो **हरि**र्धर्मी अध्यायार्थ इति सङ्ख्यातात्पर्यम् (३-४).

स्वार्थं त्विति. परार्थाः पञ्चनिरोधाः पूर्वमुक्ताः. "यच्छृण्वतोपैत्यरतिरि"ति-वाक्यात् श्रोतॄणामरत्यादिनिवृत्त्यर्थमेव ते निरोधा इति परार्थत्वम्. **स्वार्थं कार्यो** यो निरोधो लीलारूपः स **भगवानेवा**तः सप्तधा उक्त इति शेषः. **तथात्वमि**ति कार्यस्य लीलारूपस्य भगवत्त्वं व्यवस्थापितमपि **पुनः** सङ्ख्यातात्पर्येण **ज्ञाप्यत** इत्यर्थः.

---

१. °र्थं त्विः. २. °तादर्श°. ३. लुप्तम्.

सर्वस्वं हरिरेवेति तदर्थं त्याग ईर्यते ॥(५)॥
वृन्दावने स्थितौ हेतुर्भगवत्तोषतः परम् ।
नास्तीति ज्ञापनायोक्ता प्रीतिर्लीलोपयोगिषु ॥(६)॥
वत्सचारणदोषस्य निवृत्तिर्वत्समारणम् ।

टिप्पणी

एकादशेऽध्याये प्रकरणतात्पर्यनिरूपणे **वत्सचारणदोषस्य निवृत्तिर्वत्स-**

प्रकाशः

तथेत्यर्थः. तृतीयस्याहुः **सर्वस्वमि**त्यादि (५).

चतुर्थस्याहु**र्वृन्दावने**त्यादि. पञ्चमषष्ठयोराहु**र्वत्से**त्यादि. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यां स्पष्टमिति नानूच्यते (६-७).

लेखः

व्यवस्थापितमपि **पुनः** सङ्ख्यातात्पर्येण **ज्ञाप्यते** इत्यर्थः. **सर्वस्वमि**ति; यथा मार्गान्तरे आत्मनः सर्वस्वत्वात् तदर्थमन्यत्याग उक्तः "आत्मार्थे सकलं त्यजेदि"ति, तथात्र भगवतः सर्वस्वत्वात् **तदर्थं** स्थान**त्याग** इत्यर्थः (४-५).

वत्सेति. दोषस्य वत्समात्रसम्बन्धित्वात् तदाकृतित्वं, स च तावद्रूप एव न तु बक इव दैत्योपि कश्चिदतस्त**न्मारणमे**व **तन्निवृत्ति**रूपमित्यर्थः. तथा न दम्भस्य गोपालमात्रदोषत्वं, तथा सति तदाकृतित्वं स्यात्, किन्तु सामान्यतो दोषरूपत्वमतः प्रसिद्धिबलाद् बकाकृतिः. स च यमुनाजलपानेनैतेभ्यो निर्गतः आकृतिसाम्याद् बके दैत्यो निविष्टोऽतस्तन्निवारणेन गोपालदोषो व्यावर्त्यत इति विभेदः (७).

योजना

सर्वस्वं हरिरेवेतीति— गोकुलस्थानां सर्वस्वं हरिरेवास्ति यतोतः भगवदर्थं चिरकालस्थितिस्थानबृहद्वनत्यागो निरूप्यत इत्यर्थः. **वृन्दावने स्थिताव**वित्यादि; वृन्दावनगमने **भगवत्तोष** एव प्रयोजनं **न** तु प्रयोजनान्तरं गोकुलस्थाना**मस्तीति ज्ञापनाय** "वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृपे"त्यनेन **लीलोपयोगि**पदार्थेषु भगव**त्प्रीतिरुक्ते**त्यर्थः (५-६).

कारिकार्थः

स्थानत्यागे हेतुमाहुः **सर्वस्वमिति** (५).

वृन्दावन इत्यादि. "वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृपे"त्यादिना **लीलोपयोगि**पदार्थेषु या **प्रीतिरुक्ता** सा पूर्वोक्त-**ज्ञापनाये**त्यर्थः (६).

गोपालदोषव्यावृत्त्यै बकस्यापि विनाशनम् ॥(७)॥
स्थानत्यागे हरीच्छैव कारणं न तु दुष्टता ।

टिप्पणी

मारणमिति, तन्निवृत्तिरूपं तदित्यर्थः. अनीश्वरस्यैव कर्म वत्सचारणमितीश्वरस्य तत्करणमनुचितमिति दोषबुद्धिस्तन्मारणकथया निवार्यते. न ह्यनीश्वर एवम्भूतं ज्ञातुमेवं हन्तुं वा शक्तो भवत्यस्तन्निवृत्तिः. किञ्च तस्यासुरत्वेपि वत्ससारूप्यत-यूथगतत्वाभ्यां तत्सम्बन्धित्वं लक्ष्यत इति पशुत्वेन कण्टकशर्कराक्षेत्रप्रवेशहेतुभूतभाव एव निवर्तित इति ज्ञाप्यते, तथा सत्यपराधः स्यादिति. एवं सति वत्सास्तच्चारणं च तयोः सम्बन्धिदोषस्येत्यर्थः सम्पद्यते. भगवदीयेषु प्रवेशस्य फलं करकमलसम्बन्धः, दोषबुद्धेः फलं स्वरूपनाशः. तेन निर्दोषबुद्ध्या भक्तसङ्गः कार्यो, न त्वन्यथेति ज्ञापितं भवति, मूले[१] भक्तानिष्टनिवर्तने लोकवेदयोरगणना च. **गोपालदोषे**ति— दम्भस्यैव लोभानृताभ्यां कृतान्तःकरणे भगवत्तिरोधायकत्वमिति सेवकानां सोनुचित इति तद्रूपं बकं मारितवानित्यर्थः (७).

योजना

स्थानत्यागे हरीच्छैवेति— बृहद्वनस्य त्यागे हरेर्वृन्दावनाधिकरणकरमणेच्छैव कारणमित्यर्थः. **न तु दुष्टे**ति— बृहद्वनस्य पूतनादिसमागमनजन्यदुष्टता बृहद्वन-

कारिकार्थः

वत्सचारणेत्यादि— वत्सचारणदोषस्य निवृत्तिरूपं वत्सासुरमारणमित्यर्थः. अनीश्वरस्यैव कार्यं वत्सचारणमितीश्वरस्य तत्करणमनुचितमिति दोषबुद्धिस्त-न्मारणकथया निवार्यते. न ह्यनीश्वर एवम्भूतं ज्ञातुमेवं हन्तुं वा शक्तो भवत्यतस्तन्निवृत्तिः. किञ्च वत्साश्च तच्चारणं च तयोः सम्बन्धिदोषस्येत्यप्यर्थः. वत्सानां पशुत्वेन कण्टकशर्कराक्षेत्रप्रवेशहेतुभूतभाव एव दोषः. कण्टकादौ चारणजनितोऽपराधश्चारणदोषः. स दोषस्तदाधिदैविकवत्सासुरमारणेन निवारित इति टिप्पण्यनुसारेणार्थः. दैत्यानां सामान्यतो दोषरूपत्वे प्रमाणं तु "लोभक्रोधादयो दैत्या" इति कृष्णोपनिषद्वाक्यम्. तत्तद्दैत्यानां तत्तद्दोषविशेषरूपत्वं तु कार्यसाम्याद् बोध्यं, यथात्रैव. **गोपाले**ति, बकस्य दम्भात्मकत्वं कार्यसाम्यादवगन्तव्यम् (७).

स्थानत्याग इत्यादि. गोकुले पूतनाद्युत्पातागमदर्शनेन **तत्त्यागे स्थानदुष्टता न कारणं** किन्तु **हरीच्छैवे**ति **ज्ञापयितुमत्रापि** वृन्दावनेपि **बकवत्सौ विनाशिता-**

१. भवति मूले मू. पा.

तद् ज्ञापयितुमत्रापि बकवत्सौ विनाशितौ ॥(८)॥
अतो विमर्शो गोपानामानन्दश्च निरूपितः ।
तदर्थमेव च हरेर्बालभावो न चान्यथा ॥(९)॥
सम्पन्ने तु ततस्तस्य परित्यागोपि वर्ण्यते ।

तत्र प्रथमं प्रपञ्चविस्मरणपूर्वकं भगवदासक्तिं वक्तुं भयविमोकावाह **गोपा नन्दादय** इतिषड्भिः.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥१॥

प्रकाशः

नन्वत्र वत्सबकवधनिरूपणस्य किं प्रयोजनमित्यत आहुः **स्थाने**त्यादि. **दुष्टते**ति स्थानस्येति शेषः. सप्तमस्य तात्पर्यमाहु**रत** इत्यादि, स्थानादुष्टताज्ञान-भगवदिच्छाकारणत्वज्ञानतस्तथा. **तदर्थमि**ति आनन्दार्थम् (८-९$\frac{1}{2}$).

लेखः

अत इति हरीच्छात इत्यर्थः. **तदर्थमेवे**ति सर्वभावेन निरोधार्थमेवेत्यर्थः (९).

योजना

त्यागे न कारणमित्यर्थः. तत्र हेतुः **अत्रापि बकवत्सौ विनाशिताविति**; वृन्दावनेपि बकवत्सयोर्नाशनादिदं सूचितं– दैत्यागमनं तूभयत्र दैत्यानां नाशोप्युभयत्र, अतो न बृहद्वनं दुष्टं न वा वृन्दावनं दुष्टमिति.[१] तर्हि बृहद्वनत्यागे को हेतुरिति चेत् **हरीच्छैवे**ति पूर्वमुक्तमेव (८).

कारिकार्थः

वित्यर्थः (८).

अत इत्यादि. **अतो** हरीच्छातः "अहो बतास्य बालस्ये"त्यादिश्लोकोक्तो **गोपानां विमर्शः** "रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनामि"त्यत्रोक्त **आनन्दश्च निरूपित** इत्यर्थः. **तदर्थमेव** नन्दादिनिरोधार्थमेव **हरेर्बालभावः. सम्पन्ने त्विति**– नन्दादीनां निरोधरूपे फले सम्पन्ने सति **ततस्तस्य** बालभावस्य "कौमारं जहतुर्व्रजे" इत्यादिना **परित्यागो वर्ण्यत** इत्यर्थः (९$\frac{1}{2}$).

---

१. अदुष्टमिति स्यात्.

नन्दार्थमेवैतदिति ज्ञापयितुं **नन्दादय** इति. **गोपा** इति स्वतःसामर्थ्याभावः. भगवतोऽद्भुतलीलामाह **श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवमि**ति– पततोर्द्रुमयोरिदानीं रवः श्रुतो यदा तौ स्तुत्वा निर्गतौ, इदं नान्यशक्यम्. तत**स्तत्राजग्मुः. कुरुश्रेष्ठे**ति विश्वासार्थम्. सर्वेषां तत्रागमने हेतु**र्निर्घातभयशङ्किता** इति, **निर्घातो** निरभ्रविद्युत्पातस्तत्कृतं **भयं** कस्यचिदुपद्रवो भाव्यनिष्टसूचनम् ॥१॥

आगतानां ज्ञानमाह **भूम्यामि**ति.

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥२॥

भूमौ **निपतितावर्जुनौ** दृष्टवन्तः. ततोन्यत्र तौ चेत् पतितौ भवतस्तदा कालान्तरत्वं न दोषायेति तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **तत्रे**ति, यत्रैव स्थितौ तत्रैव पतितौ. आर्द्रता च तेषां दृष्टिगम्या न भवति, बहिर्मुखत्वात्. जातायामपि तत्राप्याकर्षण-स्यापेक्षितत्वात् **तस्य पतनस्य कारणमविज्ञाय बभ्रमुः.** ननु प्रत्यक्षस्याभावेप्य-नुमानेन कथं न कल्प्यते? तत्राह **लक्ष्यमि**ति, **लक्ष्यमप्यविज्ञाय.** ते ह्यतिनैयायिका युक्तिबाधितं प्रमाणं न किमपि मन्यन्ते, अतो व्याप्तस्याभावान्नानुमानेन पतनकारण-ज्ञानम् ॥२॥

प्रकाशः

गोपा इत्यत्र **स्वतः सामर्थ्याभाव** इति; गोरक्षणमात्रनियुक्तत्वाद् ग्रामस्थपदार्थनिर्णयं कर्तुमसमर्था इति नन्दसहभाव इत्यर्थः. तेषामत्र निरोधः कर्तव्य इति नन्देन सह गमनम् ॥१॥

भूम्यामित्यत्र **कालान्तरत्वमि**ति कालान्तरीयपातत्वेन प्रतीयमानत्वमित्यर्थः. **बहिर्मुखत्वादि**ति भगवत्प्रवणचित्तत्वाभावात् ॥२॥

लेखः

भूम्यामित्यत्र **पतनस्य कारणमि**ति; निमित्तकारणं प्रयोजककर्तारमन्यम-प्रत्यक्षीकृत्येत्यर्थः. **लक्ष्यमि**ति. लक्ष्यं पातनं, केनचित् पातिताविन्त्यनुमानानन्तरं तत्कर्त्रनुमित्सा भवति. एते त्वेवमपि न ज्ञातवन्तः किन्तु स्वत एव पतिताविति ज्ञातवन्त इत्यर्थः. तत्र हेतुमाहुः **ते हीति**; एतादृशयोर्महतोः केनचित् पातनं न सम्भवत्यतः स्वत एव पात इत्यर्थः. **अत** इति, पातनाज्ञानेन प्रयोजककर्त्रनुमित्साभावाद् व्याप्तिविशिष्टस्य हेतोरभावः अनिश्चय इत्यर्थः ॥२॥

ननु भगवानस्त्येव प्रत्यक्षसिद्धः, कोत्र सन्देह इति चेत् तत्राहोलूखलमिति.

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।
कस्येदं कर्म[1] आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥३॥

उलूखलाकर्षणं कुर्वन्तं तदानीमपि ततोप्यग्रे गच्छन्तं वृक्षयोर्मध्ये स्थितम्. अन्यत्र गमनाभावे हेतु**र्दाम्ना बद्धमिति**. **च**कारादुलूखलेन सह. वृक्षयोः पातं **बालकं चे**ति वा, बालकत्वादेव न स्वतो मोचनम्. भगवन्तं हेतुत्वेन प्रत्यक्षसिद्धमप्यन्यथासिद्धं कृतवन्त इत्याह **कस्येदमिति**– **इदं** बन्धनलक्षणं **कस्य कर्म? कर्मे**तिवचनं व्याकुलत्वज्ञापकम्. किञ्च **कुतो** वा हेतोरेतद् बन्धनमिति **आश्चर्यमिति**. बालकस्य बन्धनं तेन पातनं त्वसम्भवितमेवात आश्चर्यमेवैतदुभयमपि. पातनमेव वा. नन्वकारणकार्योत्पत्तिः कथम्? तत्राह **उत्पात** इति. अयमुत्पातो देवदैत्यादिकृतो भाव्यनिष्टसूचको, न तु सर्वथा युक्तिबाधितो भगवता कृत इति. कार्यकारणभावे प्रत्यक्षसिद्धेपि न तथात्वमङ्गीकर्तुं शक्यते. अत एव भ्रान्तो नैयायिकस्तर्कविरुद्धं न मन्यते, "अलौकिकास्तु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेदि" तिवाक्याच्च. तर्हि किं जातं तादृशज्ञानस्य फलमित्याकाङ्क्षायामाहो**त्पात इति कातराः**– पातस्तूत्पातरूपः, अग्रे च भयं भविष्यतीति **कातरा** भयव्याकुला जाता इत्यर्थः ॥३॥

प्रकाशः

उलूखलमित्यत्राग्रिमे**ऽन्यथासिद्धमि**त्युलूखलाकर्षणे गृहीतकारणताकं शङ्क्येतेत्यतः[2] काकुः कार्या, तर्कविरुद्धत्वादितिभावः ॥३॥

लेखः

नन्विति, उलूखलमाकर्षतो भगवतः प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तत्र कर्तृत्वं प्रत्यक्षेणैव गृह्यतां, सन्देहः को येनान्यगवेषणेत्यर्थः. **तत्राहे**ति तस्यापि कर्तृत्वेनाज्ञानमाहेत्यर्थः. **उलूखलमि**त्यत्र **अविज्ञाये**ति पूर्वस्यैवानुवृत्तिः; एतादृशं **बालकं च** कर्तृत्वेन **अविज्ञाय बध्नमुरि**त्यन्वयः. **उलूखलेन सहे**ति **दाम्ना बद्धमि**ति पूर्वेणान्वयः. प्रत्यक्षसिद्धस्यापि तथा अस्वीकारे हेतुरुत्तरार्धेनोक्त इत्याशयेन तदाभासमाहुः **भगवन्तमि**ति. उत्पातत्वेन दैत्यादिकृतत्वकथनाद् भगवतोऽन्यथासिद्धत्वकरणम्. **नन्वकारणके**ति दृष्टकारणरहितेत्यर्थः. **अयमि**ति पात इत्यर्थः. **कार्ये**ति काकुस्वरेण योज्यम्. **अत एवेति**– यत**स्तर्कविरुद्धं न मन्यतेऽत एवाग्रिमवाक्यात् च भ्रान्तो** ज्ञेय इत्यन्वयः. **तादृशज्ञानस्ये**ति भ्रमात्मकस्येत्यर्थः ॥३॥

---

१. कुत इत्यपि पाठः. २. 'त्र.

अत एव बालकैरुच्यमानमपि वाक्यं नाङ्गीकृतवन्त इत्याह **बालाः प्रोचुरि**ति द्वाभ्याम्.

बालाः प्रोचुरनेनेति तिरश्चीनमुलूखलम् ।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥४॥

सर्व एव **बाला** यथादृष्टार्थवादिनः कल्पनाऽसमर्थाः कारणं **प्रोचुः**. तेषां वाक्यमाहा**नेनेति**– **अनेन** वृक्षौ पातितौ. प्रकाराकाङ्क्षायामाहु**स्तिरश्चीनमुलूखलं विकर्षते**ति, तिर्यक् पतितमुलूखलं तं विशेषेण कर्षता. कर्षणेपि प्रयोजनमाहु**र्मध्यगेनेति**, मध्ये स्थितः किं कुर्यात्? नचैतद् ज्ञानं भ्रान्तमित्याशङ्कायामाहुः **पुरुषावप्यचक्ष्महीति**– वृक्षाद् द्वौ पुरुषौ निर्गतौ तावप्यस्माभिर्दृष्टाविति. अतः स्वदृष्टं लौकिकमलौकिकं चोक्तवन्तः ॥४॥

तदुभयमपि तैर्नाङ्गीकृतमित्याह **न ते तदुक्तं जगृहुरि**ति.

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् सन्दिग्धचेतसः ॥५॥

ते गोपा **बालकोक्तं न** सत्यमिति गृहीतवन्तस्तत्र हेतु**र्न घटेते**ति, **तस्य बालकस्य तर्वोरुत्पाटनं** सर्वथा युक्तिबाधितम्. **केचन** पुनरार्द्रनैयायिकाः **सन्दिग्धचेतसो** जाताः, शकटतृणावर्तयोर्भङ्गदर्शनात्. न तु तेषामपि कश्चन निर्धारः॥५॥

नन्दस्तु सन्दिग्धोपि तं विचारं दूरीकृत्य मोचितवानित्याहो**लूखलमि**ति.

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥

तदानीमपि **विकर्षन्तमि**ति शीघ्रमोचने हेतुः. **दाम्ना बद्धमि**ति मोचने निमित्तम्. **स्वमात्मजमि**ति स्वस्यैवावश्यकत्वं, **स्वमि**ति व्याकुलतापरिज्ञानार्थम्. **स्व**पदप्रयोगात् भगवद्भावं प्राप्त इतियुक्तिरपि, तेषामज्ञानं न तेषां बुद्धिदोषेण किन्तु भगवतैव कार्यत इति. **प्रहसद्वदन** इति धौर्त्यस्मरणात्, तस्यापि ज्ञानाभावस्त्वनेनोक्तः. विशेषेण मोचनं सर्वासामेव रज्जूनां पृथक्करणम्. **हे**त्याश्चर्यं,

---

प्रकाशः

प्रहसद्वदन इत्यत्र **ज्ञानाभाव** इति यशोदापराधभगवत्स्वरूपज्ञानयोरभावः. किमाश्चर्यमित्यत आहुः **स्वबन्धनमि**ति. **स्वपदस्यात्मज**पदविशेषणत्वे भगवांस्तदभावे नन्दश्चार्थः. तत्र नन्दपक्षे **भगवल्लक्षणो बन्ध** इति भगवतो लक्षणानि

स्वबन्धनं तेन मोचितमिति. भगवल्लक्षणो बन्धो भगवतैव मोचयितुं शक्यते नान्येनेत्यत इदमाश्चर्यमेव[१] ॥६॥

प्रकाशः

चिह्नानि यस्मिंस्तादृशो मायारूपी बन्धो, "मामेवे"त्यादिवाक्यात्. स तु **भगवतैव मोचयितुं शक्यते** न तु स्वयमित्याश्चर्यमित्यर्थः. भगवत्पक्षे **भगवल्लक्षणो बन्ध** इति भगवद्रूप इत्यर्थः. अतस्तद्रूपं तिरोधाय तन्मोचनरूपेणाविर्भूतवानिति भावः. स्वस्य स्वमोचने हेतुमप्याहुः **स्वपदे**त्यादि. "स्वमपीतो भवती"त्यादिश्रुतौ 'स्व'शब्दस्य भगवद्वाचकत्वेन सिद्धतयात्र तत्प्रयोगात् तथेति[२]. तथा चास्मिन् पक्षे प्राप्त इत्यस्याध्याहारो बोध्यः. स च "यो नन्दः परमानन्द" इतिश्रुत्युक्ताधिदैविकरूपप्राप्त्या युज्यते. तदेतद् मनसिकृत्य **गोपीभिरि**त्यादेरवतारणमाहु**स्तेषामि**त्यादि.

लेखः

उलूखलमित्यत्र **भगवल्लक्षण** इति भावे ल्युट् ज्ञेयः, भगवतो लक्षणं पूर्णत्वेन ज्ञानं येनेति विग्रहः. भक्तवश्यत्वासाधारणधर्मज्ञापको भगवत्कर्मक इत्यर्थः. "मामेव ये प्रपद्यन्त" इत्यत्र 'एव'कारादन्यकर्मको भगवत्कर्तृकोपि मायाकरणको बन्धो नान्येन मोच्यः किमुत भगवत्कर्मक इत्यवधारणार्थ**मेव**कारः॥६॥

योजना

प्रहसद्वदनो विमुमोच हेत्यस्य विवृतौ **हेत्याश्चर्यं, स्वबन्धनं तेन मोचितमि**ति. "कृपयासीत् स्वबन्धन" इति शुकवाक्ये 'स्व'पदाद् भगवान् स्वस्वरूपात्मकेन बन्धनेन बद्ध इति निरूपितं, ततश्च स्वरूपात्मकबन्धनात् मोचनम् आश्चर्यजनकमेवातो हेतुक्तमित्यर्थः. तदेवाहु**र्भगवल्लक्षणः** इत्यारभ्य **इदमाश्चर्यमेवे**त्यन्तेन. **स्वपदप्रयोगादि**ति. **"दाम्ना बद्धं स्वमात्मजमि"**ति **स्व**पदप्रयोगात् स्वशब्दस्यात्मात्मीयोभयवाचकत्वेन प्रकृते उभयोरप्यर्थयोरुपयोगात् 'स्वस्वरूपमात्मजमि'त्यर्थे सिद्धे नन्दस्य भगवदभेदसिद्धौ भगवता भगवतो मोचनं युक्तमेवेत्यर्थः. तदेवाहुः **भगवद्भावं प्राप्त इति युक्तिरपी**ति. नन्वा**त्मज**पदं शुकेन कथं भगवत्युक्तं, आत्मजपदस्य पुत्रवाचकत्वे देहजन्यत्वस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वात् प्रकृते तदभावादित्याशङ्क्याहुः **तेषामज्ञानं न तेषां बुद्धिदोषेणे**त्यादि. **तेषां** नन्दादीनां हरौ यदात्मजत्वज्ञानजन्यं पुरुषोत्तम**त्वाज्ञानं** तत् तु **न तेषां बुद्धिदोषेण**

१. प्रकाशयोजनाकारोपलब्धः पाङ्क्तक्रमस्तु भिन्नमेव इति तयोः व्याख्यानात् प्रतिभाति.
२. °ति तथा.

गोपीनां वशभावं प्राप्तस्य भगवतो लीलामाह **गोपीभिरि**ति त्रिभिः.

विद्योपजीविनां सेवा येनैव च सुखं भवेत् ।
राजसीं तामसीं लीलां सात्त्विकीं च चकार ह ॥(१०½)॥

प्रकाशः

तथा च यदि तद् भगवत्कार्यं न स्यात् तदा लीलासक्तचित्तः शुको न वदेदतो लीलास्थेषु तादृशाज्ञानतत्कार्यादिदर्शनेन लोकसाधारणबुद्धिर्न कार्येति भावः. एतावता मूलाविद्यानिवृत्तिः सूचिता ॥६॥

गोपीभिरित्यत्र **विद्योपजीविनां सेवामि**ति– तत्तद्विद्योपजीविनां[१]सम्बन्धिनी या **सेवा** नृत्यगीतादिरूपा तामेव **लीलां** लीलात्वेन **चकारे**ति रूपकम्.

लेखः

गोपीभिः स्तोभित इत्यत्र **विद्योपजीविनामि**ति. भगवदीयनृत्यगानविद्यां उपजीवन्ति तदाशया तद्भावनया वा जीवन्ति ते **विद्योपजीविन**स्तेषां **सेवा येन** चरित्रेण **भवेत्** सिध्येत् तत् **चकार. स्वस्वगृहं नीत्वे**तिकथनात् तेषां तादृश एव समये सेवावसरात्, अतस्तच्चरित्रं प्रथमश्लोकार्थ इत्यर्थात्. **येन सुखं भवेत्** तत्

योजना

किन्तु लीलार्थं **भगवतैव कार्यत** इति भगवल्लीलारूपत्वात् तेषां व्रजवासिनां बुद्धिमादा**यात्मज**पदं शुकेनोक्तमतो न दोष इति भावः ॥६॥

गोपीभिः स्तोभित इत्यत्र **विद्योपजीविनामि**त्यादि. परोक्षवादेन ये केचन व्रजभक्ता भगवन्नृत्यगीतादिरूपविद्योपजीविनस्तत्रासक्ता इति यावत्, ते विद्योपजीविनस्तेषां **सेवा** तत्कर्तृका सेवेत्यर्थः. सा सेवा **येनो**पायेन **भवेत्** तादृगुपायरूपां **राजस्यादिलीलां चकारे**त्यर्थः (१०½).

कारिकार्थः

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यन्नित्यत्र **विद्योपजीविनामि**त्यादि. भगवदीयनृत्यगानविद्यामुपजीवन्ति तदाशया तद्भावनया वा जीवन्ति ते **विद्योपजीविनस्तेषां सेवा येन** चरित्रेण **भवेत्** तत् चरित्रं **चकारे**ति प्रथमश्लोकार्थः. **येन सुखं भवेत्** तत् **चकारे**ति द्वितीयश्लोकार्थः. **च**कारादयमेव तृतीयश्लोकार्थः. **राजसीमि**ति. श्लोकत्रयोक्तानां लीलानां क्रमेण राजसतामससात्त्विकत्वं विवक्षाभेदेन बोध्यं– गानं राजसं पीठकादिधारणं तामसम् अन्यत् सात्त्विकम् (१०½).

१. तत्तत्स°.

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालकः क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥७॥

तत्र प्रथमं राजसीं लीलामाह. गोपिकाः प्रत्येकं स्वस्वगृहं नीत्वा "नृत्यं कुरु भगवँल्लड्डुकानि दास्यामी"त्युक्तो नृत्यति. तत्रापि **स्तोभितः** "कृष्ण एव सम्यङ् नृत्यं जानाति कर्तुं न राम" इत्युक्तः. **स्तोभा** शून्यप्रशंसा, यथा स्तोभाक्षराणि भभभेति. तथा **गोपीभिर्**यथाकथञ्चित् स्तुतोऽ**नृत्यत्** नृत्यं करोति, लडर्थे लङ्. तत्रापि नृत्ये न प्राकृतवत् नृत्यति किन्तु यथा तण्डुर्यथा वा पार्वती ततोपि सहस्रगुणमत्यन्तं नृत्यति. तदनुचितं, किं पामराणां स्थाने तथा नृत्येनेति? तदाह **भगवानि**ति, षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो न ह्यन्यथा नृत्यं कर्तुमर्हति. तर्हि तासामप्यग्रे नार्हत्येवेति चेत् तत्राह **बालकः क्वचिदि**ति, **क्वचिद्** वा गोकुले स्वस्य बालभावं प्रदर्शितवानिति. **बालवदि**तिपाठे **क्वचिद् भगवान्** शास्त्रानुसारेण नृत्यति, **क्वचिद् बालवत्** केवलं देहपादचालनमात्रं करोति मुग्धभावख्यापनाय. ततोपि कयाचित् "कृष्ण गाये" त्युक्त **उद्गायति** उच्चैस्तूष्णीं गानं करोति यथा सर्वासां हास्यं भवति. अथवा **क्वचिदूर्ध्वं गायति** यथाशास्त्रं **क्वचिन्मुग्धो**ऽशास्त्रमपि **बालवत्.** किञ्च नृत्यगानयोर"प्येवमुत्थायैवमुपविष्ट एवं सुप्तो गानं कुर्वि"त्युक्तस्तथैव गायतीत्याह **तद्वशो दारुयन्त्रवदि**ति– गोपिकावशो भूत्वा दारुपुत्रिकावत् नृत्यति गायति च ॥७॥

प्रकाशः

तथा करणे हेतु**र्येने**ति, भक्तानामितिशेषः. **तण्डुरि**ति ताण्डवनृत्यप्रवर्तयिता. **अन्यथे**त्यशास्त्रीयम् ॥७॥

लेखः

चकार, अतस्तत् चरित्रं द्वितीयश्लोकार्थः. **च**कारादयमेव तृतीयस्याप्यर्थः. **स्तोभाक्षराणी**ति निरर्थकाक्षराणीत्यर्थः. यद्यपि छान्दोग्ये हाऊकारादयस्त्रयोदश स्तोभा उक्तास्तत्र लोकादिदृष्टिरुक्ता तथापि तद्दृष्ट्योपासनमात्रं, न तु स शब्दार्थ इति ज्ञेयम्. अलौकिकलङ्प्रयोगेण नृत्येप्यलौकिकत्वं ज्ञाप्यते इत्याशयेनाहुः **तत्रापी**ति. **तदनुचितमि**ति. अलौकिकनृत्यस्य फलं स्वरूपानन्दः, यथा रासे. तावदधिकाररहितानां स्थाने तेन नृत्येन किं फलं सिध्यत्यतोनुचितमित्यर्थः. **षड्गुणैश्वर्ये**ति, यदा गुणपुरस्कारेण लीलां चिकीर्षति तदा तादृशः **अन्यथा** लौकिकप्रकारेण **नृत्यं कर्तुं नार्हत्य**तो गुणस्वभावादेव तथेत्यर्थः. **तर्ही**ति; गुणपुरस्कारे तु विचार्यैव कार्यं करोतीति सुतरामनधिकारिस्थाने तत् नार्हतीत्यर्थः. **बालभावमि**ति; बालो ह्यविचार्य करोति, तद्भावस्यापि स्वीकारात् तावदंशे तथेति भावः ॥७॥

लीलान्तरमाह **विभर्तीति**.

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमुद्वहन् ॥८॥

सर्वत्र **क्वचिदि**ति पदेन क्वचित् करोति क्वचिन्न करोतीति ज्ञातव्यम्, अन्यथा तथास्वभाव आश्चर्यं न स्याद् बहुधा प्रार्थनं च. **क्वचिदाज्ञप्तः "पीठमानयोन्मानं** तण्डुलादिमानपात्रमानय **पादुके** दारुमये आनये"त्युक्तः केवलं **बिभर्ति** न तूत्थापायितुं शक्नोति; अशक्तिभावनां च करोति यथा प्राकृता बालाः कुर्वन्ति. एकवद्भावः स्थूले सूक्ष्मे प्रशस्ते निन्दिते तुल्यत्वज्ञापनार्थः. किञ्च **बाहुक्षेपं च कुरुते** "मया सह मल्लयुद्धं कुर्वि"त्युक्तो बाहुविस्फोटनं करोति. **च**कारादुपर्यपि पतति, बलाविर्भावेन तं चालयतीव. ननु किमित्येवं करोति? तत्राह **स्वानामि**ति, येन कारणेन तेषु स्वत्वं सम्पादितं तेनैव **प्रीतिमुद्वहन्** यावतैव तेषां प्रीतिर्भवति, न त्वधिकं करोतीत्यर्थः ॥८॥

लीलाद्वयं विशेषतो निर्दिश्य सामान्यतः सर्वामेव लीलां सङ्क्षेपेणाह **दर्शयन्नि**ति.

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥९॥

बालचेष्टितैर्भगवान् व्रजं हर्षयामास. व्रजे यावद्विधा प्राणिनस्तेषामपि

टिप्पणी

दर्शयंस्तद्विदामित्यत्र, **व्रजे यावद्विधा** इत्यारभ्य **भगवानुवाहे**त्यन्तम्. इदमत्राकूतम्– प्रभुपुत्रत्वेन सर्वेषां यथेच्छं भगवति व्यवहर्तुमशक्यत्वे सति यदि

प्रकाशः

बिभर्तीत्यत्र **बले**त्यादि, महान्तमपि तं तथावक्तारं स्वबाल्यानुरूपबलाविर्भावेन[१] हस्तद्वयेन धृत्वा चालयतीवेत्यर्थः ॥८॥

दर्शयन्नित्यत्र. **व्रजे यावद्विधा** इत्यादेरर्थं टिप्पण्यामाहु**स्तथात्वमि**ति करण-

लेखः

दर्शयन्नित्यत्र मूले **हर्षमुवाह** सम्पादयामासेत्यर्थ इत्याशयेनाहुः **हर्षयामासे**ति, हर्षं सम्पादयामासेत्यर्थः. इदमेव विवृण्वन्ति **व्रज** इत्यारभ्**योवाहे**त्यन्तेन.

१. °न तम्.

यथायथा हर्षो भवति. स च हर्षस्तेष्वेव तिष्ठति. सोपि स्थितः पुष्टो भाररूपो भवति तदा तेषां वहनाशक्तौ तेषां **हर्षं भगवानुवाह.** तदपि न विषयत्वेन किन्तु करणत्वेनेत्याह **बालचेष्टितैरि**ति. ननु बालचेष्टा फलपर्यवसायिन्यो न भवन्ति स्वरूपत एव परं मोहे सुखजनिकास्तत् कथं तादृशे हर्षे करणता? तत्राह **भगवानि**ति. यावतानुपपत्तिः परिहृता भवति तावान् धर्मो **भगव**च्छब्दाद् ग्राह्यः.

टिप्पणी

भगवांस्तत्तद्भावानुरूपं तेषु स्वयं न व्यवहरेत्तदा रूपचेष्टादिभिर्भगवदाश्लेषादिविषयक उत्कट उत्पन्नो भावः स्वविषयमप्राप्य को वेद किं कुर्यादतस्तथाकरणमावश्यकम्. इमे एवं[१] वहनाशक्तिवहने उक्ते. भगवता यत्रकुत्रचित्तथाकरणे तेषां च सर्वसमक्षं करणे बालत्वेनैव लोकाविगानमपि, इदमेव **बालचेष्टितैरि**त्यनेनोक्तम्. किञ्च परम्पराहर्षजनन एवेयं व्यवस्था यत्र, तत्र साक्षात्स्वरूपेण येषु तज्जननं तेषां रीतिः कथं वक्तुं शक्येत्याशयेन **बालचेष्टितैरि**त्यस्याभासमाहुः **तदपी**त्यादि. करणस्य व्यापारत्वेन बालचेष्टितानामेवात्र तथात्वम्; यत्र स्वरूपमेवासक्तिहेतुस्तत्र साक्षात्तज्जननमिति ज्ञेयम् ॥९॥

लेखः

हर्षो भवतीति. आश्लेषादिविषयको भावो हर्षस्तत्रासक्तिरिति यावत्, भवति तथा इष्टरूपं चेष्टाश्च कटाक्षादिरूपाः करोतीति शेषः. **वहनाशक्तावि**ति विषयसम्पादनाशक्त्या तादृशहर्षसम्पादनाशक्तावित्यर्थः. **हर्षमि**ति, तं **हर्षमुवाह** सम्पादयामास विषयसम्पादनेनेति शेषः. आश्लेषादिना तत्प्रकारयुक्तस्वरूपविषयिणीमासक्तिं सम्पादितवानित्यर्थः. **तदपी**ति, आसक्तिसम्पादनमपि स्वरूपस्य **विषयत्व**सम्पादनेन **न, किन्तु** बालचेष्टितरूपव्यापारपुरस्कारात् **करणत्व**सम्पादनेनेत्यर्थः. **बालचेष्टितैरि**ति व्यापारे तृतीयेति ज्ञेयम्. चेष्टितानां व्यापारत्वात् यत्र चेष्टितानपेक्षा तत्र स्वरूपस्य हेतुत्वमात्रं न तु करणत्वं, व्यापारवत्त्वाभावादिति भावः. **फलपर्यवसायिन्य** इति शृङ्गाररसानुभाविका इत्यर्थः. **तत् कथमि**ति, **तत्** तस्मात् फलपर्यवसानाभावे तज्जन्यजनकत्वाभावेन बालचेष्टितानां व्यापारत्वाभावात् तद्वत्त्वेन स्वरूपस्योक्ता **तादृशहर्षे करणता कथं** सम्भवतीत्यर्थः. **यावते**ति, भगवत्त्वाद् बालचेष्टितानामपि फलपर्यवसायित्वमित्यर्थः. **प्राकृतानामि**ति अनिवृत्ताध्यात्मिकाविद्यानामित्यर्थः. **अत्रे**ति सर्वसमक्ष इत्यर्थः. **वैकुण्ठमि**ति

१. एव मू. पा.

ननु किमेवं प्राकृतानामत्र स्थितानां वैकुण्ठमनीत्वा स्वयमागत्य विपरीतभावेन तथाकरणे प्रयोजनमित्याशङ्क्याह **तद्विदां** भगवत्स्वरूपविदा**मात्मनो भृत्यवश्यतां दर्शयन्नि**ति. यतस्ते **भृत्या** भरणीयाः स्वेनैव. न केवलं प्रदर्शनमात्रपरत्वं, तथा सति कापट्येनापि स्यादित्याह **वै** निश्चयेनेति. **आत्मन** इत्यनेन वश्यतादोषः परिहृतः. ये त्वज्ञास्ते व्यामोहिता एव. ये जानन्ति तेषां ज्ञानस्य भक्त्युपयोगः. तत्तदनुसारिणोपि तत्त्वेनैव ग्राह्या इति न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥९॥

एवं बृहद्वनक्रीडामुक्त्वा सर्वदेवाधिष्ठितवृन्दावने क्रीडां वक्तुं भगवत्प्रेरितानां तेषां निर्गमनार्थं मन्त्रमाह.

टिप्पणी

गोपवृद्धा इत्यस्याभासे, **सर्वदेवाधिष्ठिते**ति. आधिदैविका इन्द्रादयोऽन्तरङ्गसेवका भूत्वा तत्तल्लीलोपयोगिस्थानं सज्जीकृत्य प्रभुं प्रतीक्षन्त इति तथात्वम् ॥१०॥

प्रकाशः

त्वम्. **तज्जननमि**ति हर्षजननम्. सुबोधिन्यां **विपरीतभावेने**तीश्वरभावत्यागेन. समाधिं व्याकुर्वते **यत** इत्यादि. तथा च "भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ती"ति श्रुतेर्भरणमेव प्रयोजनं, एतावदकरणे सम्यगत्र तदनिष्पत्तेरित्यर्थः. नन्वीश्वरस्यान्यवश्यता "सर्वस्य वशी सर्वस्येशान" इतिश्रुतिं विरुणद्धीत्यत आहु**रात्मन** इत्यादि. तथा च वश्यत्वेपि साहजिकस्वातन्त्र्यानपायात् "यो लोकत्रयमाविश्ये"तिवाक्याच्च स **दोषः परिहृत** इति न श्रुतिविरोध इत्यर्थः. ननु लोकानां तथा न भासत इति कथं **परिहृत** इत्युच्यते तत्राहु**र्ये त्वज्ञा** इत्यादि. **अज्ञा** इत्यासुराः. **ज्ञानस्ये**ति भक्तिवश्यताज्ञानस्य. आधुनिकानां सतामसतां च सङ्ग्रहायाहु**स्तत्त**दित्यादि. तथा च ये यन्मार्गानुसरणं करिष्यन्ति तथैव तेऽनुग्राह्यास्त्याज्याश्चेत्यर्थः. **किञ्चिदि**ति भक्तीयं[१] शास्त्रीयं लौकिकं च दर्शनम्. अग्रिमप्रकरणतात्पर्योक्तावेतत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**राधिदैविक** इत्यादि ॥९॥

लेखः

अन्तरङ्गलीलायोग्यं रहःस्थलमित्यर्थः. वश्यताबोधनं प्रयोजनं ज्ञेयं, तद्वशस्तावत्प्रतीक्षया स्थातुमशक्त इति भावः ॥९॥

१. 'क्तिशास्त्रीयं लौ'.

उद्यमो मुख्यसम्पत्तिर्मन्त्रो हेतुस्त्रिभिस्ततः ॥(११)॥
निर्धारितपरित्यागः स्थानान्तरगुणास्ततः ।
कृष्णाज्ञयेति कालस्य नापेक्षातोनिवारणम् ॥(१२)॥
पञ्चभिर्गमनं चैव रतिस्तत्र हरेः परा ।

प्रकाशः

गोपवृद्धा इत्यत्र सुबोधिन्यां **निर्धारितपरित्याग** इति निर्धारितश्चासौ परित्यागश्चेति कर्मधारयः. नपुंसकलिङ्गपाठे तु वाक्यमितिशेषः. सप्तम्यर्थे बहुव्रीहिश्च. **कृष्णाज्ञये**त्याद्यन्तर्यामिप्रेरणरूपया[1] कृष्णाज्ञया **इत्ये**तत् सर्व**मतः कालस्य** मुहूर्तादिरूपस्य **नापेक्षा. अनिवारणं** मन्त्रमध्यस्थैः कैरपि तस्य मन्त्रस्य न निवारणम्. यद्वा यत् इदमुक्तहेतो**रतोपेक्षातो** सौकर्याद्यपेक्ष्य **कालस्यानिवारणं** कालं[2] नातिक्रान्तवन्त इत्यर्थः (१२).

लेखः

कारिकासु **निवारणमिति**, 'अद्ये'तिपदेन सुमुहूर्ताद्यपेक्षाभावज्ञापनेन कालापेक्षाया निवारणं नवमश्लोकार्थ इत्यर्थः. **रतिस्तत्रे**ति सर्वेषामितिशेषः. **हरेः परा रति**रन्तिमश्लोकार्थः (१२$\frac{१}{२}$).

कारिकार्थः

गोपवृद्धा इत्यादीनां षोडशश्लोकानां क्रमेण वाक्यार्थानाहु**रुद्यम** इत्यादि. आद्येन गम**नोद्यमः.** "तत्रोपनन्दनामाहे"त्यत्र **मुख्यमन्त्राङ्गसम्पत्तिः.** मन्त्रस्य मुख्यमङ्गं मन्त्री स चोपनन्दः. "उत्थातव्यमितोस्माभिरि"त्यनेन **मन्त्रः. ततस्त्रिभिर्हेतुः.** "यावदौत्पातिकोरिष्ट" इत्यनेन निर्धारितश्चासौ परित्यागश्चेति **निर्धारितपरित्यागः.** "वनं वृन्दावनं नाम पशव्यमि"त्यनेन **स्थानान्तरगुणाः.** "तत् तत्राद्यैव यास्याम" इति नवमश्लोकार्थमाहुः **कृष्णाज्ञये**त्यादि. कृष्णाज्ञयैव वृन्दावनगमनमि'त्यद्ये'ति पदेन सुमुहूर्ताद्यपेक्षाभावज्ञापकेन कालापेक्षाया निवारणमित्यर्थः (११-१२).

पञ्चभिरिति, "तच्छ्रुत्वैकधिय" इत्यादिभिः **पञ्चभिर्गमनं,** ततः "वृन्दावनं सम्प्रविश्ये"त्येकेन तत्र वासः. स च **गमनं चैवे**ति **च**कारेण सूचित इति प्रतिभाति. "वृन्दावनं गोवर्धनमि"ति षोडशश्लोकेन **तत्र** वृन्दावने **हरेः परा रतिः. एवमिति**– एवं षोडश**कलाभिः पूर्णो भगवान् वृदावने बभावि**ति सङ्ख्यातात्पर्यम् (१३).

---

१. °णा°. २. लुप्तम्.

एवं कलाभिर्भगवान् पूर्णो वृन्दावने बभौ ॥(१३)॥

प्रथमं मन्त्रार्थमुद्यममाह **गोपवृद्धा** इति.

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥१०॥

गोपेषु ये वृद्धाः पूर्वापरानुसन्धानसहिताः. **बृहद्वनम**न्वर्थनाम; पूर्वं कदाचिदपि तत्रोत्पत्त्यभाव उत्पातानामिदानीं तु **महोत्पाताः** पूतनामरणादयः. **नन्दो**पि वृद्धप्रायः; प्रधानव्यतिरेकेण विचारो न निर्वहतीति **समागम्य** सम्यगेकत्रोपविश्य व्रजसम्बन्ध्यवश्यकर्तव्य**ममन्त्रयन्** ॥१०॥

सर्वेषां वक्तृत्वं न सम्भवतीति प्रधानं व्यपदिशति **तत्रे**ति.

तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिक ।
देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ॥११॥

उपनन्दनामा नन्दसम्बन्धी, **गोप** इति धर्मप्रधानः, **ज्ञानवयोभ्यां** च परिणतः, **देशकालार्थानामपि** कस्मिन् देशे कस्मिन् काले कोर्थः कर्तव्य इति-**तत्त्वज्ञः.** तादृशोप्यभक्तश्चेत् सर्वं व्यर्थं स्यादिति **रामकृष्णयोः प्रियकृ**दाहेति सम्बन्धः. नाम्ना नन्दस्य स एव मन्त्रद इति ज्ञापितं, **गोप** इति तन्मध्यपाती तुल्येष्टा-निष्टः. तादृश एव मन्त्रार्हः. ज्ञानं तु वयसा प्रतिष्ठितं भवतीत्युभयाधिक्यम्, इदं मन्त्रे मुख्यमङ्गम्. लोकानभिज्ञो न शास्त्रार्थज्ञानमात्रात् मन्त्री भवतीति देशादिज्ञान-मुक्तम्. इदं गमनं स्वार्थं चेत् निरोधेन विरुध्यत इति भगवत्प्रीतिरुक्ता प्राधान्य-

---

प्रकाशः

तत्रेत्यत्र **प्राधान्यप्रतिपत्त्यर्थमि**ति गोपानां निरोधे रामस्यापि

लेखः

गोपवृद्धा इत्यत्र **पूर्वमि**ति. बृहद् ब्रह्मरूपं वनमतस्तत्र नोत्पात इत्यर्थः ॥१०॥

योजना

"गोपवृद्धा" इत्यारभ्य "राममाधवयोर्नृपे"त्यन्तं षोडशश्लोकानां सङ्ख्यातात्पर्यमाहुः **एवं कलाभिर्भगवान् पूर्णो वृन्दावने बभावि**त्यनेन. षोडशकलायुक्तो **भगवान् पूर्णः श्रीवृन्दावने बभौ** श्रीवृन्दावनचन्द्रनामा सर्वोत्कर्षेण शोभते इति फलितम् (१३).

प्रियकृद्रामकृष्णयोरित्यस्य विवृतौ **प्राधान्यप्रतिपत्त्यर्थमि**त्यादि–

प्रतिपत्त्यर्थम्. द्वयोर्निर्देशः साधारणनिरोधत्वात्, असाधारणनिरोधो भगवतैव क्रियते साधारणस्तूभाभ्यामिति ॥११॥

मन्त्रमाहो**त्थातव्यमि**ति.

उत्थातव्यमितोस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।
आयान्त्यत्र महोत्पाता प्रजानां नाशहेतवः ॥१२॥

इदं स्थानं परित्यक्तव्यम्. परितो यद्यपि व्रजाः सन्ति ते तिष्ठन्तु मा वा, **अस्माभिस्तूत्थातव्यम्.** ननु कर्माधीनत्वाद् जगतः सर्वत्रैव यद् भाव्यं तद् भविष्यतीति किं गमनेनेति चेत् तत्राह **गोकुलस्य हितैषिभिरि**ति. गोकुलस्य ये हितं वाञ्छन्ति कालकर्मपक्षौ परित्यज्य लौकिकन्यायेन ये हितचिन्तकास्तैरवश्यमेतत् कर्तव्यम्. यत् साधनानि भगवता दत्तानि ज्ञानकरणादीनि तान्यन्यथा व्यर्थानि स्युः. अतो विरोध एव तयोर्भिन्नं प्रामाण्यं, यावन्न विरोधस्तावत् करणानामेव मुख्यं

प्रकाशः

प्राधान्यज्ञापनार्थम्. तत्र हेतुः **साधारणनिरोधत्वादि**ति— गोपानां यो निरोधस्तस्य साधारणनिरोधत्वादित्यर्थः. तस्य लक्षणमाहुः **साधारणस्त्वि**ति ॥११॥

उत्थातव्यमित्यत्र कालकर्मपक्षपरित्यागे हेतुमाहु**र्यदि**त्यादि. तर्हि पक्षद्वये कथं व्यवस्थेत्यत आहु**रत** इत्यादि— **तयो**र्यद् भविष्यपक्षप्रतिकरणपक्षयो**र्विरोध एवा**धिकारिभेदकालभेद**भिन्नं प्रामाण्यं,** विरोधाभावे तूक्तैव व्यवस्थेत्यर्थः.

लेखः

तत्रेत्यत्र **असाधारणनिरोध** इति नन्दगोपसुतमात्रविषयकः सर्वात्मभाववतीष्वन्तरङ्गलीलाजनित इत्यर्थः. **साधारण** इति सर्वभक्तसाधारण इत्यर्थः ॥११॥

उत्थातव्यमित्यत्र **विरोधे एवे**ति, **प्रामाण्यमा**दरणीयमित्यर्थः ॥१२॥

योजना

मन्त्रोपदेष्टुरुपनन्दस्य **प्राधान्यप्रतिपत्त्यर्थं** मुख्यत्वसिद्ध्यर्थमित्यर्थः. **द्वयोरि**ति रामकृष्णयोरित्यर्थः. यद्यपि श्रीकृष्ण एव नन्दपुत्रस्तथापि वृद्धाः स्वसम्बन्धिनं स्वसुहृत्सम्बन्धिनं च तुल्यतया गणयन्तीति वसुदेवपुत्रो रामो नन्दपुत्रः श्रीकृष्णश्च साम्येन व्यवह्रियत इति **रामकृष्णयोः प्रियकृदि**त्युक्तम्. तथा च उपनन्दे प्राधान्यं वृद्धत्वं सिद्धमित्यर्थः ॥११॥

गोकुलस्य हितैषिभिरित्यत्र **अतो विरोध एव तयोरि**ति. यत्र साधने कृतेपि विरुद्धं फलमुत्पद्यते तत्रैव **तयोः** कालकर्मणो**र्भिन्नं प्रामाण्यं,** कालेनान्यथाकृतं

प्रामाण्यम्. उत्थाने हेतुमा**हायान्त्यत्र महोत्पाता** इति—

अलौकिकोनिष्टहेतुरुत्पातः सर्वनाशकः।
महोत्पातो बुधैर्ज्ञेयो यत्र तत्त्यागमर्हति ॥(१४)॥

महोत्पाताः पूतनादयः. तेषां सोढव्यतां निराकरोति **प्रजानां नाशहेतव** इति, हेतौ कार्यमावश्यकम्. महतां देवाद्युपासकानामनिष्टाभावेपि प्रजोपद्रवोपि वारणीयस्तैः. "प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्ये"तिन्यायेन प्रतीकारापेक्षया त्यागः श्रेष्ठः ॥१२॥

मुक्तः कथञ्चिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥१३॥

उत्पातानेव गणयन्ति तामसराजससात्त्विकान्. उत्पाताः प्रतीकारसहिता उच्यन्ते, अन्यथा तन्निवृत्तिरेव न स्यादुत्पातत्वं वा. अत एव **राक्षस्या** पूतन**यासावेव**

टिप्पणी

मुक्तः कथञ्चिदित्यस्याभासे. **उत्पातत्वं चे**ति न स्यादिति शेषः; प्रतिकारवत एवोत्पातशब्दवाच्यत्वादिति भावः॥१३॥

प्रकाशः

तत्त्यागमर्हतीति, तत् स्थानं त्याज्यमित्यर्थः. **तैरि**ति महद्भिः ॥१२॥

मुक्त इत्यत्राभासे. प्रतीकारसहितोत्पातकथनप्रयोजनमाहु**रन्यथे**त्यादि; यदि प्रतीकारो न स्यात् तदा तन्निवृत्तिरेव न स्यात्. **उत्पातत्वं चे**ति तट्टिप्पण्यां व्याकुर्वन्ति **न स्यादितिशेष** इत्यनेन. तथा च तस्य नियतत्वे प्रलयत्वमेव स्यात्,

लेखः

मुक्तः कथञ्चिदित्यत्र **अत एवे**ति उत्पातत्वेन प्रतीकारसहितत्वादेवेत्यर्थः ॥१३॥

योजना

कर्मणान्यथाकृतमित्युद्घोषदर्शनात्. अत्र तु साधनानामेव मुख्यत्वमिति गोकुलस्य हितैषिभिः कालकर्मविचारमकृत्वा लौकिकन्यायेनैवोपायकरणे बृहद्वनादुत्थातव्यमिति मन्त्रदातुर्हार्दम् ॥१२॥

कारिकार्थः

आयान्त्यत्र महोत्पाता इत्यत्र महोत्पातलक्षणमाहु**रलौकिक** इति. **यत्र** यस्मिन् महोत्पाते सति **तत्** महोत्पाताधिकरणीभूतं स्थानं त्यागयोग्यं भवतीत्यर्थः (१४).

बालको मुक्तः. दृष्टहेतुपरिज्ञानाभावात् **कथञ्चिदि**त्यदृष्टं साधनं कल्पितं, कार्यस्य कारणावश्यकत्वात्. **राक्षस्या बालघ्न्ये**ति जातिक्रियादोषौ. मुक्तत्वं निःसन्दिग्धमि-**त्यसावि**ति प्रदर्शितः. अलौकिकमुपायमाह **हरेरनुग्रहादि**ति. एतदेव हेतुद्वयं शकटभङ्गेप्याकर्षय**त्यनश्चोपरि नापतदि**ति **च**कारेण. **नूनमि**ति स्वदर्शनात् ॥१३॥

तृणावर्ते लौकिकानि बहूनि साधनान्याह **चक्रवातेने**ति.

चक्रवातेन नीतोयं दैत्येन विपदं वियत् ।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥१४॥

चक्रवातः प्रसिद्धस्तृणावर्तः कंसभृत्य इति, अतो **दैत्य** इत्युक्तम्. **वियदा**-काशं **नीतः.** तदपि नाल्पदूरं किन्तु **विपदं** यावद्दूरे श्येनादयः परिभ्रमन्ति; **वयः** पक्षिणस्तेषां **पदमि**ति. यद् **वियत् नीतवां**स्तद् **विपदमे**व नीतवानिति वा. सरस्वती तु तस्यायमेव विपद्रूपः; **विपद्** व्ययं प्राप्नुवद् यथा भवति तथा प्रतिक्षणं क्षीयमाणेन **नीतः. तत्रो**भयोर्गतयोर्मध्य एकः **शिलायां पतितस्तत्रै**व प्रदेशेऽपर उपर्येव **सुरेश्वरैः परित्रातः.** न देवमात्रकृत्यं तादृशं, रुद्रास्तु घातुकाः, तदुपमर्दस्तु सुरेश्वरैरेव कर्तुं शक्यः, रुद्राधिपतिः पुनस्तेषामनुकूल इति. बहवोत्र पुनस्तादृशा रक्षका उक्ता, "बहूनामनुग्रहो न्याय्य" इति. परितस्त्राणं न केनाप्यंशेन बाधाभावार्थम् ॥१४॥

प्रस्तुतमाह **यन्ने**ति.

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ।
असावन्यतमो वापि तच्चाप्यच्युतरक्षणम् ॥१५॥

अनयो**र्द्रुमयोरन्तरं प्राप्य** बहवो बाला अत्र स्थिताः कोपि नोपद्रुतः, **असौ** भगवानन्यतमः. **अन्यो वा** कश्चिद् भगवान् देवैः सर्वदा रक्षित इत्यन्यस्य नामग्रहणम्. **तमप्**प्रत्ययेन हीनोपि कश्चिन्नोपद्रुत इत्यमङ्गलशब्दोच्चारणं स्नेहात्. प्राकृतानां सहजं प्राकृतत्वमन्यथा न परिज्ञायेत. येषां वाङ्मनसोरव्यवस्था तेऽत्यन्तं प्राकृता, येषां मनसोपि नाव्यवस्था तेत्यन्तं सन्तः. **अत्राच्युतो** भगवानेव रक्षकः. स हि सर्वत्र च्युतिरहितोऽन्तर्यामी ततो बालकानुत्पातस्थानादन्यत्र नीतवान् ॥१५॥

अतो भगवतो वारत्रयं देवानां च रक्षणं जातमित्यतः परं य उत्पातः समायास्यति तस्य न प्रतीकार इति ततः पूर्वमेव गमनमुचितमित्याह **यावदि**ति.

यावदौत्पातिकोरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ।
तावद् बालानुपादाय यास्यामोन्यत्र सानुगाः ॥१६॥

उत्पातेन जातोऽरिष्टो मरणादिरूप इति **यावद् व्रजं नाभिभवेत् तावदितो बालानादाय सानुगाः** सपरिकरा **अन्यत्रैव यास्यामः.** निर्धारितमेतद् वचनम्. बालानां कर्मता, उत्पातास्तत्सम्बन्धिन एव दृष्टा इति. स्थलान्तरमन्विष्यास्य परित्याग उचित इति ॥१६॥

स्थलान्तरं सगुणं निर्दिशति **वनं वृन्दावनमि**ति.

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपीगोपगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरूधम् ॥१७॥

वृन्दा मधोः पुत्री, तन्नाम्ना नूतनं **वनं वृन्दावनम्.** स्त्रीप्राधान्यात् तत्र न दैत्यसम्बन्धः. भगवता पुनर्जालन्धरवधार्थं सा परिगृहीता. अतो देवताधिष्ठानाद् देवदैत्यानामनुरोध्यं तत् स्थानं, अतस्तत्रोत्पातशङ्काभावः. तदाह **वृन्दावनं, नामे**ति

प्रकाशः

–नोत्पातत्वमित्यर्थः ॥१३॥

चक्रवातेनेत्यत्रायमेव विपद्रूप इत्यत्र **अ**मित्यनुस्वारोऽव्याख्यातस्तिष्ठति. स च **अं** परं ब्रह्मेत्येकाक्षरकोशादकारोकारमकारलुप्तमकारबिन्दुनादेति षोढा प्रणवमात्राविभागे बिन्द्वर्थोक्तत्वाच्च परब्रह्मवाचको ज्ञेयः. **सुरेश्वर**पदतात्पर्यमाहु**र्न देवे**त्यादि. तथा च **सुरेश्वर**पदेन भगवद्भक्तास्ते[1] बोध्याः. **अनुकूल** इति नीललोहितत्वेन भक्तत्वात् ॥१४॥

लेखः

चक्रवातेनेत्यत्र **सरस्वती**ति पक्षे **विपदमि**त्यत्र व्यत्ययेन प्रथमार्थे द्वितीया, **वियदि**त्यत्र तृतीयाया लुक् ॥१४॥

---

१. लुप्तम्.

लेखः

यत् नेत्यत्र प्राकृतानामिति मूढानामित्यर्थः ॥१५॥

भगवत इति– एकवारमच्युतस्य **भगवतो, वारत्रयं देवानामे**वं वारचतुष्टय-मित्यर्थः ॥१६॥

वनं वृन्दावनमित्यत्र **स्त्रीप्राधान्यादि**ति, दैत्यानां स्त्रीरक्षाया मुख्यत्वात् तत्स्थाने ते नायान्तीत्यर्थः. तर्हि शत्रुस्त्रीस्थानत्वाद् देवा एव उपद्रवं कुर्युरित्याशङ्क्य

योजना

यावदौत्पातिकोरिष्ट इत्यत्र **बालानां कर्मते**ति– "तावद् बालानुपादाये"त्युपादानकर्मता बालानामित्यर्थः. यद्यपि सर्वपदार्थानामुपादानकर्मता तथापि बालानां मुख्यत्वमिति तथा ॥१६॥

प्रसिद्धं, तथा तं **नवकाननमि**ति. न शीर्णवृक्षास्तत्र सन्ति नापि शृगालसर्पादीनां तत्र स्थितिः, अतः सर्वे गुणाः सर्वदोषाभावश्चोक्ताः. किञ्चालौकिकोपि तत्रत्यो गुणः समीचीन इति ज्ञायते यतः **पशव्यो** भवति पशूनां हितः. ते ह्यरण्योपजीविनोरण्य-पात्रास्तेषां यद्धितमलौकिकप्रकारेणापि समीचीनमिति. किञ्च तस्मिन् वने त्रिविधा भूमिरस्ति— अतिगुप्तातिप्रकटा तृणादिगह्वरा च. तदाह **गोपीनां गोपानां गवां** च **सेव्यमि**ति. अन्येषामपि नन्दपुरोहितप्रामाणिकानां तत् सेव्यमित्याह **पुण्याद्रितृणवीरूधमि**ति. **पुण्यो**द्रिर्गोवर्धनः, **तृणानि** बर्हिः, **वीरूधः** सोमः करीराणि वा. अतस्तामसानां राजसानां सात्त्विकानां च हितकारि तत् स्थानमित्युक्तम् ॥१७॥

एवं स्थानप्रशंसायां सर्वे गोपाला आहु**स्तत्तत्राद्यैव यास्याम** इति.

तत् तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥१८॥

तस्मात् कारणाद्, यदि वृन्दावनं तादृशं, ततोऽ**द्यैव तत्र यास्यामः**. एवं सर्वेषां सङ्कल्पे प्रधानभूता उपनन्दादय आहुः **शकटान् युङ्क्त मा चिरमि**ति. शकटानां बलीवर्दैः सह योजनं साधनम्. विलम्बनिषेध उत्पातभयशङ्कया ॥१८॥

प्रकाशः

वनमित्यत्रारण्यपात्रा इति— "पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् अरण्यपात्रे चाधुक्ष्यन्नि"ति चतुर्थस्कन्धवाक्यात् ते तथेत्यर्थः॥१७॥

लेखः

देवानामप्यनुरोधमाहुः **भगवते**ति. **यतः पशव्य** इति देश इत्यर्थः. **अरण्यपात्रा** इति, पृथुसम्पादितदोहे पशूनामरण्यं पात्रमुक्तम्. **गोपीगोपे**त्यस्याभासे **अतिगुप्ते**ति. अन्तरङ्गलीलाज्ञानाभावेपि स्त्रीणां निःसङ्कोचेन यथासुखं स्थितिरतिगुप्त एव सम्भवतीत्येवमुक्तम्. मन्त्रे स्त्रीरक्षाया मुख्यत्वेन गोपीनामभ्यर्हितत्वात् पूर्वनिपातः. **अत** इति— पशव्यत्वात् **तामसानां,** गोप्यादिसेव्यत्वाद् **राजसानां,** पुण्याद्र्यादियुक्तत्वात् **सात्त्विकानां हितकारी**त्यर्थः ॥१७॥

योजना

वनं वृन्दावनं नामेत्यत्र **अरण्यपात्रा** इति. चतुर्थस्कन्धे पृथुकर्तृकपृथ्वीदोहप्रसङ्गे पशूनामरण्यपात्रता निरूपिता. **त्रिविधा भूमिरि**त्यादि. **तत्रातिगुप्ता** निकुञ्जादिरूपा **गोपीनां सेव्या,** भगवता सह लीलानामभिलषितत्वात्; **अतिप्रकटा गोपानां, तृणादिगह्वरा गवां सेव्ये**ति सर्वेषां व्रजस्थानां हितं वृन्दावनमित्यर्थः ॥१७॥

एवं भयसाधनयोर्निर्देशे यत् कृतवन्तस्तदाह **श्रुत्वे**ति.

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधुसाध्विति वादिनः ।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥१९॥

मध्ये तेषां न वैमत्यं यतो **गोपा**स्तुल्याः. तादृशोर्थः स्वस्यात्यन्तमभीष्ट इति मन्त्रवाक्यप्रशंसा. गच्छन्त एव वद**न्तीतिवादिनः.** ते सर्वेऽवान्तरभिन्नभिन्न-व्रजाधिपतयः स्वस्य यत्र यत्र भिन्नतया गावः स्थितास्तान् समुदायेनैव वत्सगोविभागमकृत्वा **सम्यगायुज्य** योजयित्वाग्रे प्रस्थाय शकटेष्वारोपितोपकरणाः सर्व एव ततो **ययुः** ॥१९॥

गताश्चतुर्विधा इति ज्ञापयितुं तमोरजःसत्त्वनिर्गुणरूपान् पृथक् पृथक् चतुर्भिः श्लोकैराह. तत्र प्रथममाह **वृद्धान् बालान् स्त्रिय** इति.

वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥२०॥

अत्यन्तं प्राकृता **वृद्धा बालाः स्त्रियश्च. राजन्नि**ति सम्बोधनं कदाचित् तीर्थयात्राद्यर्थं सकुटुम्बस्य प्रस्थाने त्वदीयानामपि तथाप्रस्थितिस्तवानुभवसिद्धेति-ज्ञापनाय. देशान्तरनिवासार्थमाज्ञप्तानां त्वदीयानां यथा तथेति वा. **सर्वोपकरणानि च** शकटे**ष्वारोप्य गोपाः** सर्वे पदातय आ**यत्ता** बद्धकवचा **आत्तशरासना** गृहीतधनुषस्तामसत्वाद् राजसेष्वेव सम्बन्धः ॥२०॥

गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ।
तूर्यघोषेण महता ययुः सह पुरोहिताः ॥२१॥

गोधनानीति. **गोधनानि** गावः **पुरस्कृत्या**ग्रे नीत्वा निर्भया **शृङ्गाण्यापूर्य;** ते तु शृङ्गवादित्रा एव. **सर्वत** इति सकृदेव महान् घोषः. प्रभूणां निर्गमनमाह

टिप्पणी

वृद्धान्बालानित्यादिषु. तदा केवलं स्वोपकरणमात्रपरत्वे तामसत्वं, प्रभुत्वेन कर्ममार्गीयद्विजसहितत्वेन च राजसत्वम्, प्रमाणप्रकरणे यशोदानन्दनिरोधो मुख्य इत्येतत्प्रकरणार्थभूतनिरोधतारतम्यज्ञापनाय सात्त्विकत्वकथनम् ॥२०॥

प्रकाशः

वृद्धान् बालानित्यत्राभासे ये चतुर्विधा उक्तास्तत्स्वरूपं टिप्पण्यामाहु-**र्वृद्धानि**त्यादि **कथनमि**त्यन्तम्. तथा च कालभेदेन भावभेदात् सर्वेषां चातुर्विध्यं – यथा सर्गलीलायां चतुर्मुखस्येति बोध्यम् ॥२०॥

तूर्यघोषेणेति. **पुरोहिता** ब्राह्मणा वैश्ययाजकाः ॥२१॥

गोपिकास्तु भगवद्भोग्याः सात्त्विक्यो भिन्नतयैव निर्गता **गोप्य** इति.

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ।

कृष्णलीलां जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥२२॥

रथास्तूत्तमा अश्वयोजिता वृषभयोजिता वा. **नूतनाः कुचकुङ्कुमकान्तयो** यासां –वयःसाधनशोभाभोग्या उक्ता. भगवत एवेति ज्ञापयितुं तद्गुणानेव गायन्त्यो निर्गता इत्याह **कृष्णलीलामि**ति; एकवचनेन स्वोपयोगिन्येव लीला निरूपिता, **कृष्ण**पदेन च न केवलं निरोधपरा किन्त्वानन्दमयीति. **प्रीता** इति मनस्तोषः. **निष्ककण्ठ्य** इति साभरणाः, **सुवासस**श्चेति देहपरिष्कार उक्तः. गुणगानादेव वाक्परिष्कारोपि. एतासामेव रथो, भगवांस्तु तास्वेव प्रतिष्ठितो गच्छति ॥२२॥

प्रकाशः

गोप्यइत्यस्याभासे पूर्वं स्त्रीनिर्देशेप्यत्र न पुनर्निर्देश[१] इति तत्तात्पर्यमाहु**र्गोपिकास्त्वि**त्यादि. अस्मिन्नर्थे विनिगमकमाहु**र्गोप्य इती**ति. एतत्पदवाच्यत्वमेतासामेवेति तु "गोप्यः कृष्णे वनं याते"इत्यत्र युगलगीते विवृतमाचार्यैः॥२२॥

लेखः

गोप्य इत्यत्र **वयःसाधने**ति, भगवद्भोग्या वयआदय उक्ता इत्यर्थः. **गोपी**पदेन पुंयोगयोग्यत्वात् तारुण्यं निरूपितम्. तस्यान्यभोग्यत्वमाशङ्क्याहु **भगवत एवे**ति. **केवलं निरोधपरे**ति पूतनामारणादिलीलेत्यर्थः. **एतासामेवे**ति; यशोदारोहिण्योस्तु शकटो वक्ष्यते **इत्येव**कारः. एतासां तथाधिक्ये हेतुमाहु**र्भगवांस्त्वि**ति– एतासामेव हृदयेषु **प्रतिष्ठितः** स्थिरः सन् **गच्छति.** यशोदाक्रोडादिषु गच्छत्यागच्छति च, न तु स्थिर इति **तु**शब्दः. अत **एतासामेव रथ** उक्त इतिभावः ॥२२॥

योजना

गोप्यो रूढरथा इत्यस्याभासे **भिन्नतयैव निर्गता** इति– शृङ्गाररसोपयोगिसम्पत्त्या निर्गता इत्यर्थः. अत एव न शकटारोहणं किन्तु रथारोहणम्. **वयःसाधनशोभाभोग्या उक्ता** इति– वयःसाधनशोभा भगवदेकभोग्या उक्ता इतिज्ञेयम्. इह **कुचकुङ्कुमकान्तय** इतिपदत्रयेण क्रमेण **वयःसाधनशोभा** भगवदेक**भोग्या उक्ता** इति ज्ञेयम्. **कृष्णपदेने**ति. "स्त्रीभावो गूढः पुष्टिमार्गे तत्त्वमिति कृष्णपदार्थः" इत्यग्रे

---

१. लुप्तम्.

यशोदारोहिण्योर्भगवत्सम्बन्धाद् गुणातीतयोः पृथग्गमनमाह **तथे**ति.

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।

रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥२३॥

शकटो मध्यस्थितः; अनो निकृष्टं रथस्तूत्तमः. **तथे**तिसौन्दर्यं गुणगानं च. निर्दिष्टं स्थानं यशोदायाः, भगवांश्च प्रधानभूत इति. सार्धद्वयवार्षिको भगवान्, अतो यशोदाक्रोडे स्थितस्तथा रामोपि. **कृष्णरामाभ्यां** सहिते ताभ्यां कृत्वा वा **रेजतुः.** गोपिकानां निकटे तयोर्गमनमाह **तत्कथाश्रवणोत्सुके** इति, नामलीलानुरक्तिस्तयोः सूचिता ॥२३॥

न केवलं तत्र गताः किन्तु तत्र प्रतिष्ठिता इत्याह **वृन्दावनमि**ति.

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।

प्रकाशः

तथेत्यत्रातिदिष्टमिति[१] **तथेतिपदेना**[१]**तिदिष्टं,** [२]**अनिर्दिष्टमि**तिपाठे त्वतिदिश्यत इति शेषः. सौन्दर्यगुणगानयोरतिदेशे हेतुमाहुः **स्थानमि**त्यादि. तथा च यत्र यशोदात्री तिष्ठति तत्र सौन्दर्यं यशश्च भवत्येव, यत्र भगवांस्तिष्ठति तत्रापि तथेत्यर्थः. इदं चाग्रे'श्रवणोत्सुक'पदात् ज्ञानाभावं 'शकट'पदात् सौन्दर्याभावं चाशङ्क्य तन्निवृत्तय उक्तं, 'तथा'पदसार्थक्याय चेति ज्ञेयम्. **सार्धद्वयवार्षिक** इत्यष्टाविंशतिमे मासि यमलार्जुनभङ्गलीलाया पाद्म उक्तत्वात् तथेत्यर्थः ॥२३॥

योजना

वक्ष्यमाणत्वात् स्त्रीभावयुक्तो भगवान् **कृष्णपद**वाच्यः. स च रसाधिक्यवत्त्वादानन्दमय इति एतल्लीलाया अप्यानन्दमयत्वमिति भावः. निरोधपरायां लीलायां तु माहात्म्यांशोप्यस्तीति तदपेक्षयेयं लीलोत्कृष्टेत्यर्थः. **भगवांस्तु तास्वेवे**ति. वयःसाधनशोभानां **कुचकुङ्कुमकान्तय** इतिपदेनोक्तत्वात् तत्सार्थक्याय भगवान् तासां निकटे एव तिष्ठतीति ज्ञेयम्, अन्यथा वयआदीनामुक्तिर्व्यर्था स्यात्. बाल्यभावे हि सर्वेषां निर्दोषबुद्धिरिति न किञ्चिद् बाधकम् ॥२२॥

तथा यशोदारोहिण्यावित्यस्य विवृतौ **यशोदाक्रोडे स्थित** इति. बालकृष्णो हि बालस्वभावात् कदाचिद् यशोदाक्रोडे कदाचिद् गोपिकानिकटे तद्ग्रथेषु तिष्ठति. तत्रापि गोपिकानिकटेऽधिकं तिष्ठतीति बोध्यम् ॥२३॥

१, १. °त्र निर्दिष्ट°. २. अतिदिष्ट°.

तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥२४॥

वृन्दावनभूमिस्तस्मिन् कल्पे यमुनोत्तरभागे, गोवर्धनश्चाक्रूरस्थाने. तदुत्तरणमल्पप्रवाहा च यमुना, ह्रदाः परं तत्रागाधा. नन्दस्थानं च तत्रैव. अस्मिन् कल्पे तु प्रदेशास्तत्तदधिष्ठातृदेवताधिष्ठिता विशकलिततया पतिता इति न काप्यनुपपत्तिः. उत्तरणपक्षेऽप्यल्पप्रवाहेति नोत्तरणं निरूपितं, वर्षाकाल एव यमुनाया महत्त्वमिति. एते बृहद्वनं परित्यज्य **वृन्दावनं सम्यक् प्रविश्य शकटैरर्धचन्द्रवद् व्रजावासं चक्रुः.** वेष्टनस्थानीया गृहाः, मध्ये गवां स्थानम्. प्रथममेवैतत्, पश्चाद् यथासुखमेव स्थितिः. अर्धचन्द्राकारे बहिर्द्वारं सर्वग्राह्यं भवति. गृहाणां निर्माणं तत्र नापेक्ष्यते, यतो वनमेव **सर्वकालं सुखमावहति. शकटैरि**ति; रथानां क्रीडार्थं स्थापनं, अनांसि काष्ठाद्यानयनार्थानि. महादेवो हि पशुपतिस्तच्चिह्नमर्धचन्द्रः, अतः प्रतिष्ठितो भवतीति ॥२४॥

तत्र भगवतश्चरित्रमाह सामान्यतो **वृन्दावनमि**ति.

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।

प्रकाशः

वृन्दावनं सम्प्रविश्येत्यत्र. मध्येमार्गं यमुनोत्तरणस्यानुक्तत्वाद् वृन्दावनस्य च मथुरानिकटस्थत्वादुत्तरणं विना तत्र कथं गमनमित्याकाङ्क्षायां कल्पभेदेन व्यवस्थामाहु**र्वृन्दावने**त्यादि. यद्यपीदानीं गोवर्धनः पश्चिमे वृन्दावनं च वायव्ये तथापि **तस्मिन् कल्पे** श्रीयमुनाप्रवाहस्यात्र पूर्वगामित्वाद् वृन्दावनश्रीगोवर्धनगोकुलानामुत्तरतटस्थत्वात् नोत्तरणोक्तिरित्यर्थः. पक्षान्तरमाहु**रक्रूरे**त्यादि. **तत्रैवे**ति ह्रदनिकट एवोत्तरणस्थाननिकटे वा. एतत्कल्पीयव्यवस्थामाहु**रस्मिन्नि**त्यादि. **यथासुखमेव स्थितिरि**ति नूतनगृहादिकरणेन स्थितिः. तदेतद् ब्रह्मवैवर्ते स्फुटं, पाद्मोत्तरखण्डे तु गमनदिनमप्युक्तं–"मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुत्पातभयशङ्किताः गोपा गोकुलमानिन्युः सर्वे वृन्दावनं शुभं नन्दग्रामं ततो गोपा ह्रदमेव वदन्ति ही"ति-

लेखः

वृन्दावनमित्यत्र **नन्दस्थानं चे**ति, नन्दग्रामोपि गोवर्धनसमीप एवेत्यर्थः. तदा वरसान्वादयोपि तत्रैवेति ज्ञेयम्. **तत्तदधिष्ठातृदेवते**ति व्यापिवैकुण्ठरूपस्वस्वाधिदैविकस्थानसहिता इत्यर्थः. **वेष्टने**ति, शकटा एव गृहरूपा इत्यर्थः. **गृहाणामि**ति, अन्तरङ्गलीलार्थं तादृशनिकुञ्जेषु शीतादिनिवारकमन्दिरनिर्माणमित्यर्थः ॥२४॥

वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥२५॥

वृन्दावनं राजसं **गोवर्धनः** सात्त्विको **यमुनापुलिनानि च दृष्ट्वोत्तमा प्रीतिरासीत्.** अतः प्रीतः पूर्वोक्तप्रकारेण लीलां कृतवानित्युक्तं भवति. **नृपे**तिसम्बोधनं दर्शनेन प्रीती राजलीलेति ज्ञापयितुम् ॥२५॥

एवं सामान्यलीलामुक्त्वा स्त्रीनैरपेक्ष्येण विशेषतो बाललीलां वक्तुं वत्सचारणलीलामुपक्रमत **एवमि**ति यावदध्यायसमाप्तिम्.

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितौ ।
कलवाक्यौ स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥२६॥

पूर्वप्रकारेण **व्रजौकसां** व्रजमध्यस्थितानां **प्रीतिं यच्छन्तावेव स्वकाले**नाधिदैविकेन सेवार्थमागतेन कृत्वा वत्सपालयोग्यौ वर्षत्रयाधिकौ जातौ. देशकालाद्युपद्रवाभावाय **बालचेष्टितौ कलवाक्यावि**ति पदद्वयम्. मनसा तु प्रीतिं भावयत्येव, कायेन वाचा च भावयतीति **बालयोरिव चेष्टितानि** ययोः, **कलम**व्यक्तमधुरं **वाक्यं**

प्रकाशः

वाक्यात्. यद्यप्यत्र पञ्चम्यां शुक्लकृष्णविभागो नोक्तस्तथापि पूर्वोक्तमुग्धलीलानां तत्र तत्र[1] करणानुरोधात् शुक्ल इति प्रतिभाति. तथा सति सा लीला चतुर्दशदिनावधि भवत्यन्यथा चतुर्दिनमात्रैवेति. अत एव वृक्षभङ्गदिन एव न ततो निष्क्रमणमिति बोध्यम्. अर्धचन्द्राकारकरणतात्पर्यमाहु**रर्धे**त्यादि. **सर्वग्राह्यमि**ति सर्वे ग्राह्या यस्मिन् प्रवेशनिर्गमयोरित्यर्थः. यद्वा गृहमध्ये यत्रकुत्रचित् स्थितानामपि दृष्टिगोचरं यद् भवति तत् तथेत्यर्थः. **नापेक्ष्यत**[2] इति शीघ्रं नापेक्ष्यते.[2] तत्करणस्यैव तात्पर्य[3]माहु**र्महादेव** इत्यादि. **प्रतिष्ठित** इति पशुपालनाय प्रतिष्ठित इत्यर्थः. **वृन्दावनगोवर्धनमि**ति षोडशः श्लोकः. एतावत्पर्यन्तैः स्थानान्तरपरिग्रह उक्तः॥२४॥

एवं व्रजौकसामित्यत्रेत आरभ्य पूर्वं चतुर्भिः श्लोकैर्वृन्दावनलीला[4] वक्तव्या. **पूर्वप्रकारेणे**ति "गोपीभिः स्तोभित" इतिवाक्यात् तदधीनतयेत्यर्थः. **मध्यस्थित**पदेन पुष्टिभक्ता उच्यन्ते सर्व एव वा. **देशकालाद्युपद्रवे**त्यादि. भक्तानां स्वाभिलषितदेशकालयोर्भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धसद्भाव **उपद्रव**स्तत्र बालचेष्टया सर्वसमक्षमपि तथाकरणे लोक[5]विगानाभावेन तत्रागमनाद् देशप्रतिबन्धाभावश्च. एतदेव **बालयोरिवे**त्यादिरूपे व्याख्याने स्फुटीभविष्यति. ननु वत्सपालनयोग्यता-

---

१. लुप्तम्. २. °क्षते. ३. °र्यान्तर°. ४. °ने. ५. °का°.

ययोः. व्रजौकसां प्रीतेरनुवृत्तिः पूर्वकृतनिरोधनिवृत्त्यभावाय. भगवति योग्यताफलयोः पृथङ्निरूपणाभावाद् **वत्सपालकावेव** सञ्जातावित्युक्तम् ॥२६॥

तयोर्वत्सपालने क्रीडामाह त्रिभि**रविदूर** इति.

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥२७॥

अत्रापि क्रीडा त्रिरूपा. तत्र प्रथमं **व्रजभुवोऽविदूरे** यत्र स्थितैर्व्रजो दृश्यते व्रजस्थाश्च पश्यन्ति. व्रजभूम्यपेक्षया सा तृणयुक्ता विलक्षणेति ज्ञापयितुं **व्रजभुव** इत्युक्तम्. **गोपालानां दारकाः** समानवयसस्तान् कृतार्थीकर्तुं बहुभिः सह क्रीडोत्तमा भवतीति क्रीडासाधनसहितावेव **वत्सांश्चारयामासतुः.** भ्रमरचक्रसूक्ष्मदण्डकाष्ठ-खण्डकृत्रिमरथवादित्राकर्षणादीनि **क्रीडापरिच्छदानि,** तानि गृहीत्वैवायान्ति गच्छन्ति च. अनेन सामान्यतः क्रीडा निरूपिता, वत्सपालनं तु मुख्यं, सूक्ष्मगोपालानां सहभावश्च ॥२७॥

उभयोरत्र निरोधो वक्तव्यः नन्दसहचरितानां निरोधनिरूपणाय. साधनैश्च क्रीडां प्रथमत आह.

क्वचिद् वादयतो वेणून् क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः ॥२८॥

प्रथमं **क्वचिद् वेणून् वादयतो**र्वेणुर्बहुच्छिद्रवंशस्तेषामवान्तरभेदा बहव इति

प्रकाशः

मात्रनिरूपणेपि न वत्सपालनं निरूपितं भवतीत्यत आहु**र्भगवती**त्यादि. **योग्यता** वत्सपालनयोग्यता, **फलं** वत्सपालनं, तयोस्तथात्वात् सामर्थ्येनैवोभयप्राप्तेस्तथेत्यर्थः ॥२६॥

अविदूर इत्य**त्रात्रापी**त्यादि, वृन्दावनेपि. **त्रिरूपे**ति साधारणासाधारण-निरोधदैत्यनाशनैरित्यर्थः ॥२७॥

क्वचिद् वादयत इत्य**त्रोभयो**रिति वत्सगोपालयोरित्यर्थः ॥२८॥

लेखः

अविदूर इत्यत्र **अत्रापी**ति. बृहद्वनेपि "गोपीभिः स्तोभित" इत्यादिना त्रिविधा क्रीडोक्ते**त्यपि**शब्दः. **सूक्ष्मगोपालाना**मिति बालकानामित्यर्थः ॥२७॥

उभयोरिति वत्सगोपालयोरित्यर्थः. अतस्तयोरेव दोषनिवृत्तिरुक्तेति भावः ॥२८॥

बहुवचनं, शिरोव्यापारा अनेनोपलक्षिताः. **क्षेपणा** रज्ज्वादिनिर्मिता मध्ये लोष्टादि स्थापयित्वा भ्रामयित्वा लोष्टादिकं दूरे क्षिपन्ति, तज्जातीया अपि बहुविधाः. एवमुभावपि **क्षिपतो** लोष्टादीनि दूरे प्रक्षिपतो मत्प्रक्षिप्तमेतावद्दूरे गच्छतीति ज्ञापनार्थम्. **क्वचिदि**ति यत्रान्योपद्रवशङ्का न भवति. हस्तयोः क्रीडा निरूपिता. **क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः** सहितैर्नृत्यतः क्षिपतो वा लोष्टादीनि. **कदाचिद्** मृदादिनिर्मिता ये **गोवृषा** उभयतश्चक्रयुक्ता तानारुह्य व्रजतः. गोपाला वा कृत्रिमवृषा भवन्ति. तैः सह युद्धादिकं वा कुरुतः. तैर्वान्यान् क्षिपन्ति तमारोपयित्वा क्वचित् पातयन्ति ॥२८॥

एवं शिरोबाहुपादयुद्धस्थानैश्चतुर्विधा लीला निरूपिता. सम्पूर्णेन लीलामाह **वृषायमाणावि**ति.

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥२९॥

स्वयमेव वृषरूपौ भवतः कृत्रिमप्रकारेण. तथैव च **नर्दन्तौ** शब्दं कुरुतः. **परस्परम**न्योन्यं च **युयुधाते.** कायवाङ्मनोलीलाः प्रदर्शिताः. युद्धं कायिकमपि मनो-धर्मप्राधान्यात् मानसम्. एवं स्वतो लीलां निरूप्यानुकारेणापि स्वतो लीलामाह**ानु-कृत्ये**ति. **जन्तून्** मण्डूकादीन् मयूरादींश्च**ानुकृत्य** तत्सरूपौ भूत्वा तैस्तैः सहानुकारेण तेषामपि भ्रममुत्पाद्य सर्वा एव लीलाः कृतवन्तौ. तत्र स्वैश्वर्यभावनया तथा कृतव-न्ताविति शङ्कां वारयति **प्राकृतौ यथे**ति. यथा प्राकृतौ लौकिकसाधनैरेव तत्तदनुकरणं कुरुतस्तथा भगवान् सर्वविधबालकानां मनोरञ्जनार्थं तेषां दोषदूरीकरणार्थं निरोधार्थं च तथालीलां कृतवान्. जीवास्तु द्विविधा इत्युभयोस्तथाकरणम् ॥२९॥

टिप्पणी

अनुकृत्य रुतैर्जन्तूनित्यत्र, **तेषां दोषदूरीकरणार्थमि**ति. लीलाविरोधिभाव-प्रकटनं दोषः, अलौकिकत्वज्ञानं च तथा. प्राकृताननुकरणं च तद्धेतुः. तथा च तदजननार्थं तदनुकरणमित्यर्थः॥२९॥

प्रकाशः

वृषायमाणावित्यत्रानुकृत्येत्यत्र **तेषां दोषदूरीकरणार्थमि**ति. सूक्ष्मगोपालानां तेषां को दोष इति शङ्कायां तं[1] टिप्पण्यामाहु**र्लीले**त्यादि. सुबोधिन्यां **द्विविधा** इति साधारणा असाधारणाश्च. **उभयो**रिति भगवतो बलस्य च ॥२९॥

---

१. लुप्तम्.

एवं भगवतो लीलामुक्त्वा पाल्यानां वत्सानां दोषरूपं वत्सासुरं मारितवानित्युपाख्यानमारभते **कदाचिदिति** षड्भिः.

कदाचिद् यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।
वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥३०॥

यदा– वत्सानां निरोधो भगवता विचारितः स एव कालः. **यमुनातीरे वत्सांश्चारयतो**स्तयोः सतोर्**दैत्य आगम**दिति सम्बन्धः. प्राकृता एव हि सदोषांश्चारयन्ति, निरोधार्थं प्रवृत्तस्तु निर्दोषानेव पालयतीति ज्ञापनार्थं तेषां वत्सानां मिलितानां योयमासुरो भावः स एकीभूतो वत्सासुर इति तद्वधो निरूप्यते. **यमुनातीर** इति– तेषां शुद्धत्वे जलं हेतुः, दैत्यागमने तु यमभगिनीत्वं हेतुरिति. **स्वकैर्वयस्यैः** सहेति. येऽन्तःस्थिता बालास्ते निष्कासिता अत एव भगवद्भावमापन्नास्ते हि सर्वथा समानवयसो भवन्ति. अतो भक्तकालक्रोडीकृताः सख्ययोग्या भवन्तीति **कृष्णबलयोश्चारयतोः** सतोरिति पूर्वमिव सम्बन्धः. **जिघांसु**र्घातकः क्रूरो **दैत्यः** पाल्यमानदोषरूपत्वादनामा **आगमत्** क्रीडास्थाने समागतः ॥३०॥

तस्य ग्रहणमाह **तं वत्सरूपिणमिति**.

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ।
दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥३१॥

स प्रसिद्धो दोषात्मा, वत्सस्येव रूपमस्यास्तीति **वत्सरूपी.** तादृशोपि यदि पृथक् तिष्ठेत् तदा केनचिद् ज्ञायेतापि, परं **वत्सयूथगते** वत्ससमूहे वत्ससमानाकृतिरूपो भूत्वा प्रविष्टः. मारणं तु तेषामुद्धारार्थं यतोयं सर्वदुःखहर्ता. बलभद्रादेरप्यन्यधर्मसम्बन्धाद् वाच्यतानिराकरणाय **बलदेवाय** प्रदर्शितवानयमसुरो वत्स इति. प्रदर्शितत्वादेव दैत्यस्वरूपमाविश्चकार. नो चेदवाच्यतां वा सम्पादयेत्. तथाभावे बलभद्रेणाङ्गीकृते **शनै**र्यथा भगवत्कृत्या दैत्यत्वोद्बोधो न भवति तथा **मुग्ध इवा**जानन्निव वत्सान्तरं गृह्णन् क्रीडार्थमयमपि गृहीतः. तदाह **मुग्ध इवासद**दिति, अवसादं प्रापितवानित्यर्थः. ग्रहणमात्रेणैव निष्पीडित एवावसन्नो जातो विशीर्णो वा गतिसाम्याद् धृतो वा. सम्यग्ग्रहणपर्यन्तमज्ञानाय मुग्धभावः ॥३१॥

ततो गृहीत्वा मारितवानित्याह **गृहीत्वेति**.

प्रकाशः

कदाचिदित्यत्र स्वकैरित्यस्य तात्पर्यमाहु**र्येन्तरि**त्यादि, अन्यथा **वयस्यैरि**तिपदेन चारितार्थ्यात् **स्वकैरि**ति विशेषणस्य वैयर्थ्यापत्तेः. एतेषां च लीलायामेव प्राकट्यं, तत्तिरोधाने तु भगवदन्तरेव स्थितिरन्तर्गृहगतानामिवेति प्रतिभाति. यद्यपि "जघास हैयङ्गवमन्तरङ्गत" इत्यत्रैषां पृथक्करणमुक्तं तथापि तत्रार्थान्तरस्यापि शक्यवचनत्वात् सन्दिग्धमित्यतः पुनरत्रोक्तम् ॥३०॥

तं वत्सरूपिणमित्यत्रान्यधर्मसम्बन्धादित्यादि– प्राकृतधर्मसम्बन्धात् निन्द्यतानिराकरणाय. **आविश्चकारे**त्यन्तर्भावितण्यर्थं, तथा चाविर्भूतं कारितवानित्यर्थः. **नो चेदि**ति प्रदर्शितत्वाभावे. **अवाच्यतां वे**त्याद्यन्यत् किञ्चित् कर्तुमसामर्थ्येपि तावन्मात्रं तु सम्पादयेदेवेत्यर्थः. शक्लृधातोस्त्रीनप्यर्थानत्र स्फुटीकुर्वन्ति **ग्रहणमात्रेणे**त्यादि. द्वितीयमर्थमाहु**र्गतिसाम्याद् धृतो वे**ति– यावद्धावनेनान्ये धृतास्तावद्धावनेनैवायमपि धृत इत्यर्थः॥३१॥

गृहीत्वेत्यत्र **गतजीवितमि**ति क्रियाविशेषणम्. एतस्य पश्चात्कथनेन कपित्थाग्रात् पातदशायां मध्येऽन्तरिक्षे तस्य प्राणा गता इति ज्ञातव्यम्. पाद्मोत्तर-

लेखः

अनुकृत्येत्यत्र **जीवास्त्वि**ति, प्रमाणनिष्ठाः स्वरूपमात्रनिष्ठाश्चेति द्वैविध्यम् ॥२९॥

तं वत्सरूपिणमित्यत्र प्रदर्शितत्वादेवेति– भगवद्भावनायाः सतीत्वात् सोपि स्वस्य दैत्यत्वं भावयामास. **आविश्चकारे**ति मनस्येवेति ज्ञेयम्. **अवाच्यतामि**ति अदृश्यत्वमित्यर्थः. **भगवत्कृत्ये**ति, भावनया मनस्येव दैत्यत्वं भावितवान्, कृत्या तु बहिरपि दैत्यत्वं प्रकटयेदित्यर्थः ॥३१॥

योजना

दर्शयन् बलदेवायेत्यस्य विवृतौ **'वाच्यतानिराकरणाये**ति– बलदेवाय वत्सासुरनिष्ठमासुरत्वं प्रदर्शितमित्यासुरत्वज्ञानात् न निन्दा भवेदिति हार्दम्. बलदेवाय प्रदर्शनं तु बलदेवस्य वेदरूपत्वात् तत्सम्मतिग्रहणार्थम्. वत्सासुरस्य वत्सदोषरूपत्वं यदुक्तं तत् तु कृष्णोपनिषत्सु "लोभक्रोधादयो दैत्या" इत्यत्र श्रुतौ आदिपदोपादानाद् भगवद्वध्यानां दैत्यानां दोषरूपत्वं यथासम्भवं ग्राह्यमिति वत्सदोषरूपता निरूपिता वत्सासुरस्य ॥३१॥

---

१. वत्सरूपदर्शनाद् वत्सो भगवता हत इति निन्दाकरणमित्यर्थः, तन्निराकरणाय.

गृहीत्वापरपादाभ्यां सह लाङ्गूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ॥३२॥

महाबलत्वेन पुच्छभ्रामणादिनापराधकरणाभावाय **लाङ्गूलेन सहापरपादाभ्याम**परपादौ गृहीत्वा. स्वस्य मारणादिशङ्का तु नास्त्येव, यतोय**मच्युतः. कपित्थाग्रे भ्रामयित्वा** कपित्थफलपातनार्थं **प्राहिणोत्,** एका क्रिया भगवतोऽनेकक्रियां सम्पादयतीति. कपित्थपातनार्थं वृक्षोपरि पातनममुत्तयर्थं च. न प्राणापगमो भगवद्धस्तसम्बन्धे नापि भूमौ नापि वृक्षेऽन्तरिक्ष एव प्राणापगमः. अत एव **गतजीवितम**न्तरिक्ष एव गतप्राणं **प्राहिणोत्** ॥३२॥

बालकैस्तु भ्रामणे प्रहरणे च तच्छरीरं न दृष्टमेव, पश्चात् सफलं दृष्टमित्याह **स कपित्थैरि**ति.

स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ।
तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधुसाध्विति ॥३३॥

कपित्थैः फलैः सह तेनैव **पात्यमानैः स महाकायः पपात ह.** बालैर्ज्ञातं स्थूलं कपित्थफलं शाखा वा पततीति तस्य पातः स्थूलता चात्याश्चर्यमिति **ह**ेत्याह. पतितं **तं वीक्ष्य बालाश्च विस्मिता** जाताः— कुतोऽयं दैत्यः कथं पतित इति. भगवत्पातितं ज्ञात्वा **साधुसाध्विति शशंसुः.** ज्ञानं धारणं प्रक्षेपो मारणं चेति प्रत्येकं प्रशंसेति ज्ञापयितुं वीप्साश्चर्यभावज्ञापकं वा. अनेन लोकेऽवाच्यता परिहृता ॥३३॥

लोकान्तरेप्यवाच्यपरिहाराय देवानामभिनन्दनमाह **देवाश्चे**ति.

देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ।
वत्सासुरं हतं श्रुत्वा व्रजे गोप्यश्च विस्मिताः ॥३४॥

देवाश्च साधुसाध्विति शशंसुः परिसन्तुष्टाः परितः सन्तुष्टाश्च जाताः दैत्यवधाद्. वत्सेषु देवानां दैत्यानां च भोगः, इदानीं देवानामेवेति परितस्तोषः. **पुष्पवर्षिणश्च बभूवुः**, तेषां वाङ्मनःकायव्यापारा निरूपिताः. अर्धमत्र पतितं, **वत्सासुरं हतं श्रुत्वा व्रजे गोप्यश्च विस्मिता** इत्येवमर्थम् ॥३४॥

प्रकाशः

खण्डे तु भगवतो वत्सासुरहनने त्रिवार्षिकत्वं "कृष्णस्त्रिवार्षिको वत्सपालो विव्याध वत्सकमि"त्युक्तं, दिनं तु नोक्तम् ॥३२॥

लेखः

देवाश्चेत्यत्र **वत्सेष्वि**ति. "द्वया ह प्राजापत्या" इतिन्यायेनोभयविधत्वं स्थितमिदानीमासुरभावस्य निवर्तितत्वात् केवलदेवत्वं सम्पन्नमित्यर्थः ॥३४॥

एवं वत्सासुरे हते पुनर्वत्सान्तरशङ्कया वत्सचारणं बाला भगवान् वा न कृतवन्त इत्याशङ्कापरिहारार्थमाह **वत्सपालकौ भूत्वे**ति.

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥३५॥

सर्वलोकैकपालकावपि **वत्सपालकौ भूत्वा विचेरतुरि**ति सम्बन्धः. कदाचिन्न वत्सचारणं किन्तु तद्वृत्तिमानिव निरन्तरं पालयति, अतो **वत्सपालका** इत्येव लोके प्रसिद्धिः, **सर्वलोकेकपालकावि**ति च. **एक**पदमप्राधान्यपालकव्यावृत्त्यर्थम्. **भूत्वे**ति मध्ये निवेश उभयप्रसिद्धिख्यापकः. वेदाल्लोकप्रसिद्धिर्दुर्बलेति वत्सपालकत्वं नोक्तं भविष्यतीत्याशङ्क्य प्रथमं निर्दिष्टम्. सन्ध्यापर्यन्तं वत्सचारणं कर्तव्यम्, अतो वत्सानां स्तनपानसमय एव प्रातरशनं कृत्वा **सप्रातराशौ गवां वत्सान्** धर्मोपयोगिन**श्चारयन्तौ** स्वयमपि **विचेरतुः** ॥३५॥

एवं वत्सानां दोषं परिहृत्य पालानामपि दोषं परिहर्तुं दम्भात्मकं बकं मारितवानित्युपाख्यानमारभते **स्वं स्वमि**ति नवभिः —

यमुनाजलपानेन दोषः सर्वो विनिर्गतः ।
एकीभूतो बकः प्रोक्तो जलपानात् स दृश्यते ॥(१५)॥
अतः पानं दर्शनं च तेनोपद्रव एव च ।
ततः सर्वापराधश्च तद्वधोपाय एव च ॥(१६)॥
तद्वधश्च स्तुतिर्देवैर्गोपानां तोष एव च ।

प्रकाशः

तावित्यस्याभासे **वत्सान्तरशङ्कये**ति वत्सेष्वसुरान्तरशङ्कया ॥३५॥ **स्वं स्वमि**त्यत्राग्रिमप्रकरणतात्पर्योक्तौ **दोषः सर्वो विनिर्गत** इति— **दोषो**

कारिकार्थः

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्व इत्यत्र नवानां श्लोकानां वाक्यार्थानाहु**र्यमुनाजले**त्यादि. प्रथमश्लोके जल**पानं**, द्वितीये दैत्य**दर्शनं,** तदेवाहु**रत** इति. भगवता सह स्थितानां **गोपानां तोषो** "मुक्तं बकास्यादि"तिश्लोकार्थः, **गोकुलस्थानां तोषः** "श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा" इति नवमश्लोकार्थः; **तोष** इतिपदमुभयत्र सम्बध्यते. नवश्लोकसङ्ख्यातात्पर्यं **नव प्राणा हि शोधिता** इति. **गोकुलस्थानामि**ति च पदमुभयत्रान्वेति (१५-१७).

तथैव गोकुलस्थानां नव प्राणा हि शोधिताः ॥(१७)॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्यासं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥३६॥

प्रथमं बकदर्शनार्थं यमुनायां चारितान् वत्सान् जलं पाययित्वा स्वयमपि जलं पीतवन्त इत्याह **स्वं स्वमिति**. **वत्सकुलं** वत्ससमूहं; सर्वेषामेव बहवो वत्सा इति सर्वेषां गमनम्, अन्यथा सर्वेषां दर्शनं न स्यात्. तुल्योयं बकः सर्वेषामिति सर्वेषां समानक्रिया. **एकदेति** यदा बालका दोषात् मोचनीया इति भगवदिच्छा तदा. जलसमीपं **गत्वा वत्सकुलं जलं पाययित्वा** स्वयं **जलं पपुः** ॥३६॥

ततो दोषात्मकं बकं दृष्टवन्त इत्याह **ते तत्रेति**.

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥३७॥

ते सर्व एव **तत्र** जलनिकटे **बाला** भीरवो **महासत्त्वं** भयानक**मवस्थितं** निकटे मारकत्वेन स्थितं प्रथमतो **ददृशुः** पश्चात् **तत्रसुः**. तथापि भगवत्कृपया ते तं हतमेव ज्ञातवन्तः, अन्यथा महाभयेन प्राणवियोगो भवेत्. तदाह **वज्रेण निर्भिन्नस्य गिरेः शृङ्गं च्युतमिव** तं **ददृशुः**. कंसो हि जगदुपद्रवकर्ता भगवता वज्रेण हत एव, तस्यायं शृङ्गस्थानीयः, सोप्यत्र च्युतः. नास्य व्याधुट्यगमनशङ्केत्यतः क्रीडार्थमेव विनियोगो न तु पीडार्थं, केवलं बालानां दर्शनमात्रेणैव भयमिति ॥३७॥

ते सर्वे बाला भगवता निष्प्रपञ्चीकृता इति तेषां दोषोयं भगवन्तमपकृतवानित्याह **स वै बक** इति.

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृत् ।
आगत्य तरसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोग्रसद् बली ॥३८॥

नामप्रसिद्ध्यैव तस्य दोषः स्पष्टः. **महानसुर** इति वत्सापेक्षयापि महान्, भगवदीयानां दोषत्वात्. **बकरूपमेव** च **बिभर्ति**, तस्योपास्या देवता सैवेति स्वरूपतः प्रसिद्धा च. देवानुग्रहाच्च **महान्.** अत एव **तरसा** शीघ्र**मागत्य कृष्णं** सदानन्दं

प्रकाशः

दम्भरूपो **विनिर्गत**स्तेभ्यः पृथग् जात इत्यर्थः. स च बहिःष्ठानामेव, न तु ये स्वतो निष्कासितास्तेषामिति ज्ञातव्यम्. **नव प्राणा** इति. दशमः स्वयमेवेति न तत्र किञ्चिदपेक्ष्यत इतिभावः. **यमुनायामिति** सामीप्यसप्तमी ॥३६॥

ते तत्रेत्यत्र **वज्रेणे**त्याकाशवाणीरूपवाग्वज्रेण ॥३७॥

लोभानृतरूपौ **तुण्डौ** यस्य तादृशो **बली** क्रियाशक्तिप्रधानो ग्रासं कृतवान्. आनन्दो हि लोभेन सत् चानृतेन ग्रस्यत एव, "तं यथायथोपासत" इति श्रुतेः. भगवतैव भगवान् वशीकृतः, गोपानां भगवत्प्रेमज्ञापनार्थमेव तथा कृत इति ॥३८॥

ततस्तेषां प्रेमाणमाह **कृष्णमिति**.

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोर्भकाः ।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणैर्विचेतसः ॥३९॥

महाबक उपास्यस्तेन कवलीकृतं **दृष्ट्वा रामादयोपि विचेतसो** जाताः, तत्प्राणत्वात्. तेषां क्रियायां ज्ञाने वा सर्वथा सामर्थ्यं गतमिति ज्ञापनार्थं दृष्टान्तमाह **विना प्राणैरिन्द्रियाणीवेति**. एकस्तु न लोके दृष्टान्त इति ज्ञापयितुं **प्राणैरिति** बहुवचनम् ॥३९॥

लोभानृताभ्यामेव सदानन्दतिरोभाव इति तुण्डदेशादधोगतः सरस्वतीस्थाने वेदानां प्रामाण्यार्थं तालुमूलं ज्वालितवान्. तीक्ष्णद्रव्याणामपि मरिचादीनां दाहकत्वमस्तीति तद्व्यावृत्त्यर्थमग्निवद् ज्वालनमुक्तम्. तथा दहन्तं त्यक्तवानित्याह **तमिति**.

प्रकाशः

कृष्ण इत्यस्याभासे **गोपानामि**त्यादि. रूपान्तरेण मूलरूपाभिभवोपि न युक्त इति शङ्कानेन परिहृता ज्ञेया. **एक** इति मुख्यः प्राणः, प्रसिद्ध्यभावादिति भावः॥३९॥

तं तालुमूल इत्यत्र कण्ठे गमनस्य प्रयोजनमाहु**र्वेदानां प्रामाण्यार्थमिति**. परापश्यन्तीमध्यमावैखरीति चातुर्विध्यपक्षे शब्दस्य मध्यमाख्यावस्थायास्तत्

लेखः

स वै बक इत्यत्र **सैवेतीति**, असुरोपास्यो मायारूपो भगवाननेन बकाकृतिरुपास्यत इत्यर्थः. लोभो दुःखधर्मद्वेषोद्भेदरूप इतिनिबन्धे[1] विवृतं, दुःखं चानन्दाभावः, अतो लोभरूपाभावसामग्र्या बलिष्ठायाः प्रतियोगितिरोधायकत्वं युक्तमिति भावेनाहुः **आनन्दो हीति** ॥३८॥

योजना

तं तालुमूलं प्रदहन्तमित्यस्याभासे **सरस्वतीस्थान** इति कण्ठदेश इत्यर्थः; कण्ठदेशस्य सरस्वतीस्थानत्वात् **वेदानां प्रामाण्यार्थमिति**. **पितरं जगद्गुरोरि**त्यस्य

---

१. लोभस्तु सुखदुःखयोरुभयधर्मयोरपि किञ्चिदुद्भेदः (सर्वनि. २९०).

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद् गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।
चच्छर्द सद्योतिरुषाक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥४०॥

तालुमूलं कण्ठस्थानम्. **प्रकर्षो** गिलनासामर्थ्यसम्पादकः. नन्वपहतपाप्मा कथं तालुमूलसम्बद्धो जात इत्याह **गोपालसूनुमिति**, तथाभावं सम्पादयन्नेतदपि कृतवानित्यर्थः. ननूभयमपि किमिति प्रदर्शितवानित्याशङ्क्याह **पितरं जगद्गुरोरिति**– ब्रह्मणोपि पिता. स हि सर्वानुपदिशति "तत्त्वमसी"ति, तत्रासम्भावनया न कोपि तथात्वं मन्यते. तस्यैतन्निदर्शनार्थं भगवता कृतम्. अनेनैव महत्त्वमपि सूचितं, कथं मारयिष्यतीति शङ्का च परिहृता. किञ्च साधारणोपि ब्राह्मणो गरुडेन भक्ष्यमाणो गरुडस्यापि तालुं ददाह, किं पुनर्ब्रह्मणोपि पिता परब्रह्म? अतश्च**च्छर्द**

टिप्पणी

पितरं जगद्गुरोरित्यत्र तस्यैतन्निदर्शनार्थमिति. यथा गोपालसूनुरपि तत्पितृत्वेन परब्रह्मरूप एव, तथा प्राकृतसंघातेषु प्रतीयमानोपि जीवोक्षररूप इति ज्ञापनार्थमित्यर्थः॥४०॥

प्रकाशः

स्थानम्. आधिदैविकश्चार्थः शब्देन सह वर्तते पुरुषश्च पुरं दहति तद् वेदैरुच्यत इति तत्प्रामाण्यार्थं तत् तथेत्यर्थः. **उभयमि**त्यपहतपाप्मत्वं तालुमूलसम्बन्धं च. **तस्यैतन्निदर्शनार्थमि**ति. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यामाहु**र्यथे**त्यादि. ज्ञापनप्रयोजनं तु "ये च प्रलम्बबकदर्दुरे"ति द्वितीयस्कन्धवाक्योक्तमुक्तियोग्यतेति प्रतिभाति. दर्शनस्य हेत्वन्तरमाहुः **किञ्चे**त्यादि ॥४०॥

योजना

विवृतौ **तत्रासम्भावनये**ति. "तत्त्वमसी"त्यत्र जीवस्य भगवदभेदः प्रतिपादितः. स च सर्वज्ञेन सहाल्पज्ञस्य न सम्भवतीत्यसम्भावनया लोको न मन्यते. तस्या असम्भावनायाः निवृत्त्यर्थं विरुद्धधर्माश्रयत्वं भगवता लोके प्रदर्शितं गोपालसूनुत्वजगद्गुरुपितृत्वप्रदर्शनेन. तदेतदाहुः **तस्ये**ति– "तत्त्वमसी"त्यत्र सर्वज्ञाल्पज्ञयोरभेदो निरूपितस्तस्याभेदस्येत्यर्थः. **तदेतन्निदर्शनार्थं भगवता कृतमिति– निदर्शनार्थं भगवता एतत् कृतमि**त्यन्वयः. विरुद्धधर्माश्रयत्वबोधनार्थं गोपालसूनुत्वजगद्गुरुपितृत्वरूपधर्मनिदर्शनं कृतमित्यर्थः. एवं सति सर्वज्ञाज्ञयोरभेदे गोपालसूनुत्वजगद्गुरुपितृत्वरूपधर्मस्य निदर्शनत्वमिति बोध्यं– यथा गोपालसूनुत्वेपि जगद्गुरुपितृत्वं तथा जीवत्वेपि ब्रह्मत्वमिति निदर्शनं ज्ञेयम् ॥४०॥

बहिर्निष्कासितवान्, अन्यथा ज्वालित एव स्यात्. यदि तावदेव कृत्वा गच्छेत् तदा जीवेद् वा; **पुनरिति**. **रुषा** केनाप्यंशे**नाक्षतं** भगवन्तं **तुण्डेन** सम्पुटितेन पीडयितु**मभ्यपद्यत.** अतिरोषाद् देवता तिरोहिता ॥४०॥

स्वसामर्थ्येन चेत् मारयितुं प्रवृत्तस्तदा दूरादेव भगवान् मारितवानित्याह **तमापतन्तमि**ति.

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां गतिः ।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ॥४१॥

तं बकमासमन्तात् पतन्तं स कृष्णो दुःखदूरीकर्ता **निगृह्य** धृत्वा निग्रहं कृत्वा तुण्डद्वयं पृथग् धृत्वा **ददार** विपाटितवान्. ननु मारणे को हेतुः? तत्राह **कंससखमि**ति, अन्यथा कंसो न मारितः स्यादिति. कंसोपि किमिति मारणीय इति चेत् तत्राह **सतां गतिरि**ति, सतां स एव रक्षकः, अन्यथा सद्रक्षा न स्यादिति. बालानामेव दोष इति **पश्यत्सु बालेषु ददार.** केचित् पुनर्बकहन्ता बकादनिर्गतो न भवतीति महादेवादिवरसत्यकरणार्थं तुण्डं प्रविष्ट इत्याहुः, तत् सत्यं चेत् कल्पान्तराभिप्रायम्. तस्य विदारणे हस्तयोः प्रयासमाशङ्क्याह **लीलये**ति. ननूपासकवध उपास्यदेवानां दुःखं स्यादित्याशङ्क्याह **दिवौकसां मुदावह** इति. देवानां तेन सन्तोष एवात एव समागतानां **दिवौकसां** स्वर्गेऽत्युत्तमे स्थितियुक्तानां तच्छकलद्वयमधोमुखतया स्थापितमतिकोमलमासनमिव जातमित्याह **वीरणवदि**ति. **वीरणं** तृणविशेषस्तेनासनं निर्मीयते, अतस्तद्वधे देवानां हितमेव– लोभानृताभ्यां सह दम्भे गते भूमौ देवा हविर्भाजो भवन्तीति ॥४१॥

लेखः

तमापतन्तमित्यत्र **दुःखदूरीकर्ते**ति. दुःखधर्मस्य द्वेषस्योद्भेदात् लोभेन ग्रासेपि स्वयं तन्मूलस्य दुःखस्यैव दूरीकर्तृत्वेन ततोपि समर्थः, प्रतियोगिनोऽभावाद् बलिष्ठत्वादित्यर्थः. **ननु मारणे** इति. दम्भो निवर्तनीयः, यत्राकृतिसाम्याद् दम्भो निविष्टस्तस्य दैत्यस्यापि निवारणे इत्यर्थः. **केचिदि**ति. वरस्यैव विवरणं **बकहन्ते**ति, पूर्वं विधेयं पश्चादुद्देश्यमुक्तम्. तत्पक्षे उदरपर्यन्तं प्रवेशः स्यात्, अत्र तु तालुपर्यन्तमेव प्रवेश उक्तः, अतो न भागवतकल्पीयं तदित्यर्थः ॥४१॥

योजना

पश्यत्सु बालेषु ददारेत्यस्य विवृतौ **बालानामेव दोष** इति. "लोभक्रोधादयो दैत्या" इति कृष्णोपनिषद्भ्यो ये ये कृष्णावतारे दैत्या हतास्ते सर्वे लोभक्रोधादिरूपास्तत्र बकासुरो बालानां दम्भात्मकदोषरूप इति ज्ञेयम् ॥४१॥

एवं तदधिष्ठातृदेवानां सन्तोषमुक्त्वा स्वर्गवासिनां सर्वेषामेव तद्वधे सन्तोषमाह **तदे**ति.

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवैस्तद् वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥४२॥

बकारिं बकहन्तारं सर्ववेदब्राह्मणपक्षपातिनं **सुरलोकवासिनः** सर्व एव **नन्दन**वनोद्भव**मल्लिका**दिपुष्पैः **समाकिरन्** पुष्पवृष्टिं कृतवन्तः. गोपानां महत्त्वज्ञापनार्थमेतद् वर्ण्यते. केवलपुष्पवृष्टिर्बालानां ज्ञापिका न भवतीति स्तोत्रवादित्राणि चाह **समीडिर** इति— **आनकशङ्खाभ्यां** सहितैः **संस्तवैः सम्यगीडिरे** सम्यक् स्तुतवन्तः. वाद्यद्वयं राजसतामसयोरपि स्तोत्राशक्तयोः सङ्ग्रहार्थम्. एतत् सर्वं दृष्ट्वा **गोपालसुता** अतिमुग्धाः कृष्णं स्वसमानं ज्ञातवन्तो **विसिस्मिरे** परमं विस्मयं प्राप्तवन्तः ॥४२॥

पूर्वं महत्त्वमात्रं ज्ञातमधुना त्वाश्चर्यं जातम्. ततो भगवता सह व्रजमागत्य तन्माहात्म्यमुक्तवन्त इत्याह **मुक्त**मिति.

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः ।
प्रत्यागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तद् जगुः ॥४३॥

वचनं हि हृदये प्ररूढं भवति. भगवत्प्राप्तिरत्यभीप्सितेति ज्ञापयितुं दुर्निमित्तापगमे तथा भवतीति **बकास्यान्मुक्तमुपलभ्ये**त्युक्तम्. स्नेह एव तेषां

प्रकाशः

तदेत्यत्र सुरलोकवासिनां सन्तोषहेतुभूत**बकारि**पदतात्पर्यमाहुः **सर्ववेदे**त्यादि. दाहकत्वेन तथेति. तन्मारकत्वेनेति वा ज्ञेयम् ॥४२॥

मुक्तमित्यत्र. ननु भगवदागमनात् पूर्वं तेषां रामादित्वमेव न स्थितमिति कथं विस्मयो जात इति चेत्, निरोधार्थं तावच्चैतन्यस्य भगवता स्थापितत्वादिति बुध्यस्व, अन्यथा'पश्यत्सु बालेष्वि'त्यादिपूर्वग्रन्थोपि विरुध्येत. पाद्मोत्तरखण्डे तु बकवधस्य दिनमुक्तं— "पञ्चाब्दकल्पो भगवान् कृष्णाषाढाष्टमी दिने बकं चिच्छेद चिच्छक्तिः पश्यतां सुहृदां सतामि"ति ॥४३॥

लेखः

मुक्तमित्यत्र **दुर्निमित्तापगम** इति— दुष्टं प्रतिबन्धनिमित्तं प्रतिबन्धकं तदपगमे इत्यर्थः. प्रतिबन्धं निवर्त्य स्वयमेव मुक्तत्वकथनेन साधनासाध्यत्वं प्रतिबन्धकाभावमात्रसाध्यत्वं च सूचितम्. तादृशे दुर्लभत्वज्ञाने**नात्यभीप्सित**त्व-

स्फुरितो, न तु माहात्म्याद् भयमिति ज्ञापयितुमाह **बालका** इति. रामस्यापि तदा गौणभावाद् बालकतुल्यतेत्याह **रामादय** इति. भगवदागमनात् पूर्वं न ते रामादयः किन्तु नामान्तरमेव प्राप्ताः, यथा **प्राणं** वि**नैन्द्रियो गणो** गोलकमात्रपर्यवसितः. **प्रत्यागतं** पुनरागतं **तं** भगवन्तं **परिरभ्य निर्वृताः** सुखिनो जाताः. बकमारणानन्तरमपि न बालका भगवत्समीपं गता, मूर्छिता इवातिखेदेन पतिताः पुनरुद्गताः, भगवानेव परं **प्रत्यागतः.** स[१] चेत् सदानन्द आलिङ्गितः सर्वतः सम्बन्धोभूत् तदा **निर्वृताः.** तदा **वत्सान् प्रणीये**तस्ततो गतान् समानीय **व्रजमेत्य तद्** बकवधादिकं **जगु**रुक्तवन्तः ॥४३॥

ततो यत् जातं तदाह **श्रुत्वे**ति.

श्रुत्वा तद् विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।
प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥४४॥

तद् बकवधं **श्रुत्वा गोपा गोप्यश्च विस्मिताः.** गोपीनां विशेषमाह**ातिप्रियादृता** इति— **अतिप्रियेण** भगव**तादृताः** प्राप्तादराश्च जाताः. ततः परमानन्देन दृष्टवत्य इत्याह**ौत्सुक्यात्** प्रेमाधिक्यादवितृप्तेक्षणा अतृप्तनयना **ऐक्षन्ते**ति. पामराणां बुद्धिमनुसृत्याश्लीलमप्याह शुकः. सा हि प्रीतौ परमा काष्ठा. **औत्सुक्यं** प्रेमातिभरतयाऽमर्यादं भवति. तेन सर्वपरित्यागेन भर्त्रादिशङ्कामपि परित्यज्य दृष्टवत्यः. इयं बुद्धिस्तेषां नारोपिता किन्तु सहजेति ज्ञापयितुं नेत्रयोरतृप्तिमाह ॥४४॥

तत् श्रुत्वा विमर्शकाणां नन्दादीनां यत् जातं तदग्रे वक्तुं तेषां विचारमाह त्रिभि**रहो** इति. तामसा आहु**रहो** इति.

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोभवन् ।
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतपूर्वं यतो भयम् ॥४५॥

लेखः

मनुभवसिद्धम्. **न ते रामादय** इति. तथा च तादृशमुपलभ्य **रामादयो** जाताः, पूर्वं तु **यथा प्राणं विनैन्द्रियो गण**स्तादृशास्ते इत्यन्वयः ॥४३॥

श्रुत्वेत्यत्र **इयं बुद्धिरि**ति अमर्यादबुद्धिरित्यर्थः. तस्या आरोपितत्वे तन्निवृत्तौ नेत्रयोस्तृप्तिः स्यादित्यर्थः ॥४४॥

---

१. सर्वैः सदानन्द इत्यपि पाठः.

अहो इत्याश्चर्ये, एकस्यैव **बहव** उपद्रवा इति. **बतेति** खेदे, स्वस्य तादृशं दुरदृष्टमिति. **अस्यैव बालस्य.** किमपि तत्र हेतुं कल्पयन्ति **कृतपूर्वं यतो भयमिति**. 'यो हन्ति स हन्यत' इतिन्यायाद् **भयं** तु **कृतपूर्वं** भवति. स्वयं चेदन्यस्मै करोति तदा प्राप्नोति. भगवांस्तु न करोति ते तु कुर्वन्तीति **तेषामेव भयमु**चितम् ॥४५॥

राजसास्तु तेषामपकारो न तत्कर्मणा केवलेन किन्तु भगवन्माहात्म्यादित्याहु**रथापी**ति.

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥४६॥

यद्यपि कृतपूर्वं भयं भवति तथाप्ययुक्ते कृते प्रयत्ना नश्यन्ति, अन्यथा पूर्वमेव ते कथं न नष्टा भवेयुः? तस्माद**प्येनं** भगवन्तं **नैवाभिभवन्ति** अभिभवार्थमप्यागता नाभिभवं कर्तुं शक्नुवन्ति. न चाप्रयोजकाः, यत**स्ते** पूतनादयः प्रसिद्धाः. अस्तु **तेषां** बलं दूरे, **घोरमेव दर्शनं** येषां; दृष्टा एव भयजनका भवन्तीत्यर्थः. तत्र दृष्टान्तमाह **जिघांसयैनमासाद्य** स्वयमेव **नश्यन्ति** अभिप्रायप्रयत्नविरुद्धं फलं प्राप्नुवन्ति. तदसम्भावितं मत्वा दृष्टान्त उच्यते **पतङ्गवदि**ति. ते हि पक्षवन्तः सूक्ष्माः कीटा आत्मानं महान्तं मन्यमाना नरा मूढा अग्निं तेजस्विनं मत्वा किमित्युपासते वयं त्वग्निं दूरीकरिष्याम इति महतोऽवमाननां कृत्वा निर्वाणार्थं प्रवृत्ताः स्वयमेव **नश्यन्ति** दग्धा भवन्ति, न त्वग्नेः काचित् क्षतिः. एवमयं भगवानतितेजस्वी तान् मारयतीति युक्तम् ॥४६॥

अन्ये पुनर्नन्दादय प्रमाणबलसिद्धमिममर्थं मन्यमाना नात्यद्भुतमिति प्रमाणमेव स्तुतवन्त इत्या**हाहो** इति.

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।

लेखः

अहो इत्यत्र **कृतपूर्वमि**ति पूर्वं कृतं कृतपूर्वमिति समासः ॥४५॥

अथापीत्यत्र **अन्यथे**ति— यत्र कुत्रचिदपि भयाकर्तरि प्रयत्नकरणेन नाशे इत्यर्थः. **तस्मादि**ति, यद्यपि न शक्नुवन्ति तथापि प्रयत्नमात्रात् नश्यन्तीति पूर्वानुसन्धानेनान्वयः. **अभिभवार्थमपी**ति, उत्तरार्धार्थं विचार्यैतावद् व्याख्यानम्. **तत्रे**ति— साधारणधर्मसहितो दृष्टान्तो द्वितीयार्धार्थः. **अभिप्राये**ति, हननमभिप्रायविषयः, आसादनं **प्रयत्नस्तद्विरुद्धं फलं** स्वनाश इत्यर्थः. दृष्टान्ताभिप्रायं विवृण्वन्ति **ते हीति** ॥४६॥

गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥४७॥

अहो इत्याश्चर्ये, कथं वा ब्रह्मविदोऽग्रिमवृत्तान्तं जानन्तीति. तत्रोपपत्ति**र्ब्रह्मविदामि**ति, "यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितं भवती"ति. अत एव तेषां वाचः कदाचिद**प्यसत्या न** भवन्ति. तादृशी वाङ् नोत्पद्यत एवेति वक्तुं **सन्ती**त्युक्तम्. ननु का ब्रह्मविदां वाच इत्याकाङ्क्षायामाह **गर्गो यदाहे**ति. तत्र हेतु**र्भगवानि**ति. ब्रह्मविदो हि ब्रह्मैव भवन्तीत्यतस्तेषां वाक्यप्रामाण्यात् **तथैव तदन्वभावि.** वेदवादिनो हि शब्दस्य नानुवादकत्वं मन्यन्ते किन्तु विधायकत्वमत ईश्वरो वेद एव. तद्वाक्यादेव फलसिद्धिर्न तु फलसाधकत्वेनेश्वरापेक्षेति— "अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथे"ति, "नारायणसमो गुणैरि"ति. अतस्तद्वाक्यादस्य बालस्य तादृग्गुणा जायन्त इति भावः ॥४७॥

एवं नन्दादीनां त्रिविधं ज्ञानं निरूप्य फलितं वदन् भगवत्कृतं नन्दनिरोधमनूद्योपसंहर**तीती**ति.

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ॥४८॥

इतिभावेन **नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां** स्वतन्त्रतया फलत्वेन कुर्वन्तस्तयैव कथया जातया परमनिर्वृत्या **रममाणाः, च**कारात् विस्मृतदेहा जातब्रह्मात्मानुभवा वा **भववेदनां** संसारतापं **नाविन्दन्** न ज्ञातवन्तः. प्रपञ्च-

---

प्रकाशः

अहो ब्रह्मविदामित्यत्र **वेदवादिन** इति मीमांसकाः. तथा चेदं श्रीनन्दादिभिस्तन्मतानुसारेणोक्तं ज्ञेयमित्यर्थः ॥४७॥

लेखः

अहो इत्यत्र **असत्या न भवन्ती**ति फलाजनिका न भवन्तीत्यर्थः. **तत्र हेतुरि**ति, विधायकवाक्यत्वे हेतुर्भगवत्त्वमित्यर्थः. **यत् तदि**ति पञ्चम्यन्तमव्ययत्वेन व्याख्यातम्. तत्र हेतु**र्वेदवादिन** इति, जैमिनीया इत्यर्थः, व्यासस्य तु "फलमत उपपत्तेरि"त्यत्रोक्त एव सिद्धान्त इति ज्ञेयम्. नन्दस्य प्रामाणिकत्वात् सात्त्विकज्ञानस्य वाक्यार्थत्वात् प्रकरणस्य प्रमाणत्वाच्च प्रमाणरीत्यैव व्याख्यानं, प्रमेयमार्गे भगवानेव सर्वसाधक इति ज्ञेयम् ॥४७॥

इतीत्यस्याभासे उपसंहरतीति, इतिशब्देनोपसंहारोप्युक्त इति ज्ञेयम्. व्याख्याने **जातब्रह्मात्मानुभवा** इति— "ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनमि"-

विस्मृतिः सर्वा तदासक्तिश्च निरोध इति भगवत्कृतं कार्यं नन्दादिषु फलितम् ॥४८॥

एवं बाल्यभावेन कृते नन्दनिरोधे प्रतिष्ठिते सति येन भक्तेन कालेन क्रोडीकृतास्ते निरुद्धास्तं कालमपि सिद्धे प्रयोजने त्यक्तवानित्याह**एवंविहारैरि**ति.

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥४९॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारै**र्वैः** कालस्य **हारै**र्लीलारूपैः करणैः सह वा **कौमारं जहतुः.** ननु विजातीयानां कथं कौमारनिवर्तकत्वं? तत्राह **कौमारैरि**ति, कुमारावस्थोद्भ-

प्रकाशः

एवं विहारैरित्यत्र **क्रोडीकृता** इति वयस्या इत्यर्थः. **हारैरि**ति हारकैः. व्रजे

लेखः

तिप्रकारो जात इति भावः. **तदासक्तिश्चे**ति. मूले **रममाणा** इत्यस्य रतियुक्ता इत्यर्थमभिप्रेत्येदमुक्तम् ॥४८॥

एवमित्यस्याभासे **क्रोडीकृता** इति भगवत्सङ्गताः कृता इत्यर्थः. तादृशं कौमारं वयो दृष्ट्वा कौतुकेन तत्र सङ्गता इति भावः. **प्रयोजने** इति कौमारकर्तव्ये निरोधे इत्यर्थः. **एवमि**त्यत्र **विजातीयानामि**ति, कालमात्रसम्बन्धिलीलाकथने

योजना

एवंविहारैः कौमारैरित्यस्याभासे. **येन भक्तेन कालेने**ति कौमारलीलासाधकेन आधिदैविककालेनेत्यर्थः. **क्रोडीकृता** इति कौमारलीलामात्रासक्ता इत्यर्थः. **तं कालमि**ति आधिदैविकं कौमारलीलाकालमित्यर्थः. **सिद्धे प्रयोजने** इति [1]निरोधात्मकप्रयोजने सिद्धे इत्यर्थः. अत एव कृष्णरामकथां कुर्वाणानां भववेदनाज्ञानाभावः पूर्वश्लोके निरूपितः. **त्यक्तवानि**ति स्थापितवानित्यर्थः, "स्वसैन्यं स बहिस्त्यक्त्वा जगाम गहनं वनमि"त्यादौ बहिःस्थापनस्य त्यागपदार्थत्वात्. तथा च कौमारलीलातत्परिकरसहितं कालं स्थापितवानिति फलितं, कौमारस्य लीलायाः तत्परिकरस्य तदधिकरणस्य कालस्य च नित्यत्वात्. उपलब्ध्यनुपलब्धी तु आविर्भावतिरोभावसाध्ये इति बोद्धव्यम्. **कौमारैरि**त्यस्याभासे **ननु विजातीयानां कथं कौमारनिवर्तकत्वम्** इति. नन्वियं शङ्कैव नोदेति, सर्वत्र पार्थिवानां काष्ठपटादीनां तेजोरूपेणाग्निना नाशदर्शनात् विजातीयेषु नाशकत्वस्य दृष्टत्वात्. सत्यम्, अन्यत्र विजातीयानां नाशकत्वेपि पलनिमेषघटिकादिरूपे काले तत्परिच्छेद्ये

१. कौमारलीलामात्रासक्तभक्तानां निरोधरूपे प्रयोजने.

वैररणेरुत्पन्नेनैव वह्निनारणिः शाम्यतीति. तानि चरितानि त्रिविधानीति गणयति **निलायनैरि**ति. सर्वैरेव **विहारैर्व्रज** एव **कौमारं जहतुः,** अतो व्रज एव कुमारो जातः कुमारी च. अतोग्रे वक्तव्याः 'कुमार्यः कृष्णचेतस' इति. करिष्यन्ति च लीलां

प्रकाशः

कौमारत्यागे हेतुमाहु**र्यत** इत्यादि. श्वेताश्वतरे "त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी"तिश्रावणाद् रुद्रदैवत्ये व्रजे कुमारः कुमारी च जात इति तत्रैव **कौमारं जहतुः.** ननु कुमारलीलास्तु उक्ता कुमारीलीलास्तु नोक्ता इत्यतस्तद्गमकं हेतुमाहु-

लेखः

कौमारविजातीयानां पौगण्डादिलीलानामित्यर्थः. **अरणेरि**ति. कार्यस्य कारणनिवर्तकत्वं कथमित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन बोधनार्थमिदमुक्तम्. **कौमारं जहतुरि**ति. व्रजे कौमारवयःस्थापनकथनेन भगवतः पौगण्डादिभावेपि तासां तादृग्वयस्कत्वमिव सूक्ष्ममेव रूपं सर्वजनीनं "परिधाय स्ववासांसी"ति वक्ष्यमाणप्रकारकरसाकरत्वा-

योजना

वयसि च विजातीयस्य नाशकस्य अदृष्टत्वात् शङ्कया अवकाश इति ध्येयम्. **निलायनैरि**त्यस्य व्याख्याने **सर्वैरेव विहारैर्व्रज एव कौमारं जहतुरि**ति. इह प्रभोर्व्रजस्थिततत्वेन **व्रज**पदोपादानं विना व्रजस्य कौमारत्यागाधिकरणत्वे सिद्धेपि **व्रज**पदोपादानेन व्रज एव कौमारत्यागो न त्वन्यत्र इति ज्ञाप्यते. त्यागस्त्वत्र स्थापनं, न तु स्वसत्तानिवृत्तिः. "स्वसैन्यं स बहिर्हित्वा जगाम गहनं वनमि"त्यादौ 'हित्वे'त्यनेन स्थापनमेवोच्यते, अतोत्रापि स्थापनं ग्राह्यं **कौमारं जहतुरि**त्यनेन. तथा च व्रजे कौमारं स्थापितमिति फलति.

कौमारशब्देन कुमारस्य भावः कुमार्याश्च भावोः ग्राह्यः, तद्धितप्रत्ययेन उभयथापि **कौमार**शब्दसिद्धेः. एवं पुम्भावस्त्रीभावविशिष्टं उभयमपि कौमारं व्रजे स्थापितमित्याशयेनाचार्यचरणा आहुः **अतो व्रज एव कुमारो जातः कुमारी चे**ति. भगवान् **व्रज एव कुमारो जातः कुमारी च जात** इत्यन्वयः. कुमाररूपेण कुमारीरूपेण च व्रजे प्रकट इत्यर्थः. "स आत्मानं द्वेधाऽपातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवतामि"ति श्रुतेः भगवत एवोभयभावेनाविर्भावात् प्रभोः कुमारीरूपत्वमप्यविरुद्धम्. तथा चाधिदैविककुमारीरूपो भगवान् जात इति यावत्यो व्रजे कुमार्यस्ता सर्वा अपि कुमारीरूपस्य भगवत एव स्वरूपभूता इत्याहुः **अतोग्रे वक्तव्याः कुमार्यः कृष्णचेतस इती**ति. "एवं मासव्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतस" इत्येकोनविंशाध्याये

लतागृहादिषु लीना भगवद्वशीकरणप्रयत्ना गृहस्वमर्यादोल्लङ्घनकर्त्र्यश्च. भगवान् कुमारावस्थायां निलायनक्रीडां करोति. स हि परमानन्दो भूत्वा स्वाज्ञानार्थं मायया

प्रकाशः

रतोग्र इत्यादि. **गृहस्थमर्यादोल्लङ्घनकर्त्र्य** इत्यनेन "त्वं स्त्री"ति श्रुत्यर्थः सङ्गृहीतः. नन्वेवं स्फुटतया न प्रतीयत इत्याशङ्क्य तन्निवृत्त्यर्थं **निलायन**क्रीडातात्पर्यमाहु-

लेखः

नन्तरमपीति ज्ञेयम्. मूलरूपलीलां विवृण्वन्ति **भगवानिति**. **परमानन्दो भूत्वे**ति

योजना

वक्तव्याः कुमार्योप्याधिदैविककुमारीरूपस्य भगवतः स्वरूपभूता इत्यर्थः. एवं सति **कौमार**शब्दस्य कुमारीभाववाचकत्वपक्षः **निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कटोत्प्लवनादिभिरि**त्यनेन ([1]**कौमारैरि**त्यस्याभासे **ननु विजातीयानां कथं कौमारनिवर्तकत्वमि**ति. नन्वियं शङ्कैव नोदेति, सर्वत्र पार्थिवानां काष्ठवस्त्रादीनां तेजोरूपेण वह्निना नाशदर्शनादिति चेत् न, अन्यत्र विजातीयानां नाशकत्वेपि बाल्यकौमाराद्यवस्थानां स्वसजातीयावस्थान्तरैकनाशत्वेन शङ्कायाः सम्भवात्. पदकुमारीभाववाचकत्वपक्षे **निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिरि**त्यनेन) उक्तानां निलायनादिक्रीडानां कुमारीरूपेपि अवश्यवाच्यत्वेन तासां क्रीडानां तत्र योजने प्रकारमाहुः **करिष्यन्ति च लीलां लतागृहादिषु लीना** इत्यादिना. अयमर्थः. ताः कुमार्यः भगवता सह रमणे रसविशेषोत्पत्त्यर्थं वियोगे च तदात्मकतया कुञ्जेषु निलीय क्रीडां करिष्यन्ति. अतो **निलायनं** तास्वपि सिद्धम्. **भगवद्वशीकरणप्रयत्ना** इति. रसमर्यादया भगवद्वशीकरणार्थं भगवदनुकूलभूषणवसनचेष्टादिकं ता रचयन्तीदमेव **सेतुबन्धनं** ज्ञेयम्. **गृहस्थमर्यादोल्लङ्घनकर्त्र्यश्चे**ति, **मर्कटोत्प्लुवनमे**तत्. मर्कटवदुत्प्लवनं लोकवेदोल्लङ्घनं, तदपि प्रभुकृते ताभिः कृतमिति लीलात्रयं तास्वपि सिध्यति. एवं निलायनादिविहारैः सह व्रजे उभयविधकुमारस्थापनोक्तेस्तादृग्विहारविशिष्टकुमाररूपेण स्वभोग्यकुमारीरूपेण च भगवान् व्रजे सर्वदा विजयतेऽतो नित्यत्वं लीलातत्परिकरविशिष्टस्वरूपस्येति मञ्जुलमखिलम्.

निलायनक्रीडाया आशयं निरूपयन्ति **स हि परमानन्द** इत्यादिना. अनवतीर्णं मूलरूपं ब्रह्म मायाजवनिकया यथा छन्नं भूत्वा अन्यस्य स्वविषयकं ज्ञानं

१. एकस्मिन्नादर्शे एवं वर्तते.

ज्ञानशक्तिं रुणद्धि. तथात्रापि गोपादीनां चक्षूंषि पिधत्ते पश्चान्निलीय तिष्ठति तथान्ये गोपालाः. किञ्च जले प्रवहति **सेतुबन्धान्** कुर्वन्ति. रामावतारे ह्येक एव बन्धः कृतः, एकैव सीतेति. अत्र यमुनादिषु बहूनेव बन्धान् करोति यतः पुलिनादिषु गत्वा रमणं सिध्यति. किञ्च **मर्कटोत्प्लुवनादि**कमपि करोति. वृक्षाद् वृक्षान्तरे गच्छति सर्वशाखाफलभोगार्थं, एकस्यामप्यारूढः सर्वफलं भुङ्क्ते; न तु तस्य भिन्नः प्रक्रमोपेक्ष्यते. **आदि**शब्देन मण्डूकप्लुत्यादिकमपि– ब्राह्मणोपि भवति क्षत्रियोपि

प्रकाशः

भगवानित्यादि. अग्रे लीलाद्वयतात्पर्यं स्फुटम्. तृतीयलीलायाः शेषभूताः श्लोका विज्ञप्तौ दृश्यन्ते– स्वारोहणाक्षमां शाखां किञ्चिदास्वाद्य लीलया। आरुरोह यथेच्छं तामन्यां स्वारोहणक्षमाम्।। कदाचित् निकटस्थामप्युल्लङ्घ्य स्वमनोगताम्। शाखामारुह्य तत्रत्यं फलं भुङ्क्ते मनोगतम्।। कदाचित् सकलाः शाखाः स्पृष्ट्वा स्पृष्टवा यथारुचि। गच्छन् शाखाविशेषस्य फलभोगार्थमेव हि।। यस्या जातेर्यथा धर्मस्तथालीलाकृतिर्यतः। अतस्तज्जातिनामापि प्रभौ सम्यग् विराजते।। तद्वदत्रापि यज्जातिधर्मसाम्येन या कृतिस्तेनास्या अपि तत्साम्यमिति सर्वं सुनिश्चितमि"त्या-

लेखः

सृष्ट्यारम्भे सच्चिदंशौ पृथक्कृत्येत्यर्थः. **वृक्षादि**त्यादि. स्थितिदेशो वृक्षः शाखास्ताः, फलं तत्स्थो रसः; प्रतिवृक्षं गत्वा तत्तच्छाखाफलं भुङ्क्ते. एकस्मिन् वृक्षे एकस्यामेव शाखायां स्थित्वा शाखान्तरावयवरसमपि भुङ्क्ते –इदं द्वयं **मर्कटोत्प्लुवनम्.** एकस्यां शाखायां स्थित्वा तन्निष्ठमेव फलं तत्तदवयवभेदेन बहुविधं भुङ्क्ते तत् मण्डूकप्लुवनं ज्ञेयम्, एकस्मिन्नेव वृक्षे स्थित्वा तत्रत्यासु सर्वशाखासूत्प्लुत्योत्प्लुत्य तत् तत् फलं भुङ्क्ते इति वा. मण्डूको हि दूरोत्प्लवनासमर्थ एकस्मिन्नेव देशे तत्तदंशभेदेनोत्प्लवति ।।४९।।

योजना

रुणद्धि "न चक्षुषा गृह्यत" इति श्रुतेः, तथा अवतीर्णं मूलरूपं श्रीकृष्णाख्यं ब्रह्मापि निलीय तिष्ठतीति चक्षुरग्राह्यं भवति. **सर्वशाखाफलभोगार्थं एकस्यामप्यारूढः सर्वफलं भुङ्क्ते** इति. अयं च **मर्कटोत्प्लुवनादिकं** यदुक्तं तस्याभिप्रायः. **आदि**शब्देन शाखान्तरस्थितिसामायिकशाखान्तरफलभोग उक्तः. मर्कटो यथा शाखायामेकस्यामारूढः अन्यासां बह्वीनां शाखानां फलं बलात्कारेण गृहीत्वा भुङ्क्ते तथा भगवानपीत्यर्थः. इह परोक्षवादेन शाखाशब्देन व्रजवरनितम्बिन्य उक्ताः. तथा च

प्रकाशः

चार्याणाम्. **आदि**पदसङ्गृहीतमाहु**र्ब्राह्मणोपी**त्यादि. तत्तात्पर्यं टिप्पण्यां कारिकाभिराहुः **सूक्ष्मरूपेणे**त्यादि[१] ॥४९॥

योजना

एकस्या घोषसीमन्तिन्या गृहादिषु स्थित्वा बह्वीभिर्व्रजमृगदृग्भिः सह रमते इति सूचितम्. **आदिशब्देन मण्डूकप्लुत्यादिकमपीति**. अत्रापि परोक्षवादः. तथा च मण्डूको यथा मध्ये द्विपत्प्रदेशं त्यक्त्वा कुत्रचिदुत्प्लवनं करोत्येवं प्रभुरपि कस्याश्चिद्गृहे रमणं विधाय काञ्चित् मध्ये त्यक्त्वा कस्याश्चिद्गृहे रमते इति सूचितम्. तथा सति मध्ये यां त्यक्त्वा गतः सा अन्यस्मिन् दिवसे खण्डिताभावं प्राप्नोतीति रसे चमत्कारविशेषः सिध्यति. एतावता शृङ्गाररससम्बन्धिनीरनेकविधा लीलाः प्रभुः कुर्वन् शुद्धपुष्टिभक्तानां लोचनयुगलं शिशिरयतीति निरूपितम्. तामसानां प्रमाणप्रकरणस्य समाप्तौ "रसौ वै स" इति श्रुतिप्रमाणसिद्धं रसात्मकं ब्रह्म श्रीशुकेन गूढतया वर्णितम्. तदेव शुकहार्दविदा भगवता सुबोधिनीकारेण परोक्षवादरीत्या प्रदर्शितमिति रसिकवैष्णवा विदां कुर्वन्तु. ([२]**आदिशब्देन मण्डूकप्लुत्यादिकमपी**ति. मण्डूको यथा कुत्रचित् स्थितः कश्चित् प्रदेशं त्यक्त्वा कुत्रचित् प्रदेशं प्लवति, एवं कृष्णोपि कस्याश्चिद् गृहे स्थितः काञ्चिद् वञ्चयित्वा कयाचिद् रमते. तथा च यस्या वर्जनं सा प्रातः खण्डिता भवतीति मण्डूकप्लुतिः. एवं बहुधा रमणं शुकेन गुप्तरीत्या प्रदर्शितमिति रसिकवैष्णवा विदां कुर्वन्तु.) **ब्राह्मणोपि भवति क्षत्रियोपि भवती**ति. **ब्राह्मण**शब्दो वामनावतारपरः, "जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिमि"त्यादिषु विप्रत्वोक्तेः. स वामनो यथा स्वरूपनिलायनं कृत्वा सूक्ष्मरूपं प्रदर्शयित्वा स्वकार्यं बलिराजात् साधयित्वा पश्चात् बृहद्रूपं प्रकटीचकार एवमिहापि गूढदुर्लभव्रजवधूप्राप्त्यर्थं स्वस्वरूपनिलायनं विधाय रमणाभिलाषं साधयित्वा पुनः पूर्वभावं सम्पादयतीति **ब्राह्मणोपि भवती**त्यनेन **निलायनैरि**त्यस्य हार्दं स्फुटीकृतम्. **क्षत्रिय**शब्देन श्रीरामचन्द्रः. स यथा सेतुबन्धेनोपायेन जानकीं प्राप्तवान् तथेहापि रसशास्त्रोक्तचातुर्यरूपसेतुबन्धेन व्रजसुन्दरीः प्राप्नोतीति **सेतुबन्धैरि**त्यस्याशयः. किञ्च सेतुबन्धशब्देन नानाप्रकारयुक्ता राजनीतिरुच्यते. श्रीरामो यथा राजनीत्यानेकराज्यसम्बन्धिफलानि बुभुजे तथा भगवानपि रसशास्त्रोक्तचातुर्यरूपनीत्या विविधगोपवधूटीविलासफलानि भुङ्क्ते इति **सेतुबन्धै-**

१. °दिभिः. २. एकस्मिन्नादर्शे एवं वर्तत.

टिप्पणी

निलायनैरित्यत्र, **ब्राह्मणोपी**ति[१].

सूक्ष्मरूपेण विश्वासमुत्पाद्य प्रतिबन्धके।
तेनैवापगते स्वेष्टरूपमाविष्करोति हि ॥१॥
भक्तार्तिर्हृतिरिष्टाप्तिः फलं तदितरेष्वपि।
निरोध्येषु प्रभौ दोषारोपाभावः फलं त्विह॥२॥
कदाचिन्निजभक्तानां पित्रादीनामनुज्ञया।
तत्संगतस्तत्र लीलाः कुर्वन् कृष्णो विराजते॥३॥
क्वचित्परस्परं गुप्तानुरागवशतो वने।
कथञ्चिद् भक्तसंगे सत्यनिशं रमते प्रभुः॥४॥
कदाचिद् भक्तपित्रादिनिषेधेपि निजाग्रहात्।
नयति स्वेष्टदेशांस्तं चातुर्येण प्रतापवान् ॥५॥
कदाचित् कौतुकावेशं ज्ञापयन् स्वस्य नृष्वसौ।
अन्यसंगनिवृत्त्यर्थं वानरैः सहितः प्रभुः॥६॥
पुलिनस्थितभक्ताप्त्यै बहुधोपायकार्यभूत्।
तत्स्थितप्रतिबन्धं च नाशयत्येव सर्वतः॥७॥
अन्यश्चेदभिमानेन भक्तनैकट्यमाप्नुयात्।
बालभावाग्रहेणैव तमपास्य तदा स्वयम्॥८॥
स्थित्वानेकविधा लीलाः करोति व्रजवल्लभः।
[२]स्थापयित्वान्यगमनप्रतिबन्धकमात्मनः॥९॥
केवलस्य गतौ तत्र साधनं विदधाति च ।
भक्ता हि विविधैर्भावैर्युक्ता हरिरपि क्वचित्॥१०॥
एकत्रैवाखिलान् भावान् क्रमेणोत्पाद्य तान् रसान्।
भुङ्क्ते कदाचित् प्रत्येकं तत्र तत्र स्थितस्तथा॥११॥
अथवैकत्र पुलिने वेणुवादनलीलया।
संगतेष्वखिलान् भावरसान् भुङ्क्तेत्युदारधीः॥१२॥
एतदेव **ब्राह्मणोपी**त्यादिनोक्तं सुगोपितम्।

१. ब्राह्मणोपीत्यादि मू. पा. २. स्थापयित्वैवान्य- मू. पा.

भवति, सर्वमेव रसमेकत्र स्थित एव गृह्णाति, न तु तस्य मर्यादा प्रतिबन्धिकेति. एवं यावद्भिर्भावैर्यावन्तो गोकुलवासिनो ग्रहीतुं शक्यास्तान् सर्वानेव विहारान् कृतवान्; मूलरूपलीला जगद्रूपलीला वेदरूपलीलेति लीलात्रयं परिचायकत्वेनोक्तम्. अतः परं कौमारकार्यं नास्तीति ताभिर्लीलाभिः सह कौमारावस्थां जहतुः ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे द्वितीये तामसप्रकरणेऽवान्तरप्रमाणप्रकरणे धर्मिनिरूपकसप्तमाध्यायस्य स्कन्धादित एकादशाध्यायस्य विवरणम् ॥

॥ समाप्तमवान्तरं तामसप्रमाणप्रकरणम् ॥

टिप्पणी

एतदग्रे **मूलरूपलीले**त्यादि निरूपितम्॥१३॥
तद्भावः प्रोच्यते सम्यक् तदनुग्रहतः स्फुटः।
प्रमाणाख्यप्रकरणोपसंहारेपि शुद्धता॥१४॥
ब्रह्मता नोच्यते चेत् तत्सिद्धं नो भवति द्वयम्[१]।
अत एव त्रयं प्रोक्तं **ब्रह्मतापरिचायकम्**॥१५॥
सर्वाज्ञातस्वरूपं हि ब्रह्म पूर्वं रिरंसया।
ततोऽखिलजगद्रूपं भूत्वा तत्रातिदुस्तराः॥१६॥
मर्यादाः कुरुते लीलासिद्ध्यै यद्वा प्रपञ्चतः।
अतीतस्याप्तये भक्तिमार्गानप्यकरोद् दृढान् ॥१७॥
अशेषवेदशाखोक्तफलभोगाय वेदताम् ।
आत्मनः प्रकटीकृत्य क्रीडतीत्यपि सूच्यते॥१८॥
भक्ताः सर्वं परित्यज्य प्रभुप्राप्त्यै यथा रहः।

योजना

रित्यस्य तात्पर्यम्. इह **ब्राह्मणोपि भवति क्षत्रियोपि भवती**त्यस्य आधिदैविकपक्षसिद्धा रसिकभगवदीयमनोहरा निगूढा अर्थास्तु सुबोधिनीहार्दविदा भगवता श्रीविट्ठलेश्वरेण टिप्पण्यां स्फुटीकृता इति भाग्यवद्भिस्तत एवावधार्याः ॥४९॥

"जानीत परमं तत्त्वमि"तिश्लोकेन वर्णितः।
परब्रह्मस्वरूपः श्रीबालकृष्णो मुदेस्तु मे ॥१॥

१. 'द्वयमि'त्यत्र मूले टिप्पणमेवम्– 'प्रकरणस्य प्रमाणत्वं शुद्धब्रह्मत्वं च तल्लक्षणायोगात् प्रमाणाभावात्.'

टिप्पणी

स्थितास्तथा चेत् कुरुते स्वयमेव[१] तदा परः ॥१९॥
यतो नान्यप्रतिज्ञेयं "ये यथे"त्यादिनोदिता।
साक्षात्स्वरूपदानेन परा लीलेयमित्यपि॥२०॥
लीलासम्बन्धि वस्त्वत्र सर्वं भगवदात्मकम्।
प्रवर्तकत्वतो वेणुनादो वेदात्मकोत्र हि॥२१॥
एतत्सर्वं ज्ञापयितुमेतल्लीलात्रयं शुकैः।
उक्तमित्युक्तमाचार्यैर्गोप्यत्वं चापि सूचितम्॥२२॥

प्रकाशः

एतस्याः सप्ताध्याय्याः प्रमाणप्रकरणत्वं निबन्धे व्युत्पादितं – "भगवच्चरिते यस्मात् प्रमाणमिह मृग्यते अज्ञानमन्यथाज्ञानं प्रमाणं भक्तिहेतुकमि"ति, तथा"ऽमेये मेयबुद्धिर्हि प्रमाणमिति केचन". प्रमातारोपि तत्रैव बोधिताः – "प्रथमो वसुदेवो हि द्वितीयो नन्द उच्यते। बालाः स्त्रियस्तृतीया हि चतुर्थो गर्ग उच्यते॥ यशोदा पञ्चमी प्रोक्ता षष्ठरूपाविहार्जुनौ। उपनन्दस्तु निर्दिष्टः सप्तमो धर्मिबोधक॥" इति. अत्रैवं बोध्यं – प्रथमे श्रीवसुदेवो नन्दस्य स्वागमनाज्ञानं भगवति स्वात्मजत्वेनान्यथाज्ञानं च भक्तिजन्य"महो ते देवकीपुत्रा" इत्यादिभिः श्रीनन्दवाक्यैर्विचारितवानतस्तदेव प्रमेयमत्रान्विष्यते. एवं द्वितीये श्रीनन्दः पूतनादेहदर्शनेन श्रीवसुदेवभक्त्या तस्मिन्नृषित्वं योगेशत्वं च विचारितवान्, विस्मयहेतुभूतं तन्निधनादिकारणाज्ञानं च विचारितवानतस्तदेव [२]प्रमेयमत्रान्विष्यते. तृतीये बालकाः प्रमातारो भक्तिजन्यं स्वप्रत्यक्षेण गोपानां स्ववाक्याश्रद्धारूपमन्यथाज्ञानं बालकबलाज्ञानं च प्रमितवन्तस्तदेव चरित्रद्वयं प्रमेयमत्रान्विष्यते. एवं तृणावर्तवधे च स्त्रियः प्रमात्र्यो भक्तिहेतुकेन स्वप्रत्यक्षेण प्रमाणे"नाहो बतात्यद्भुतमि"तिश्लोकोक्तं बालागमनकारणाज्ञानरूपं चरित्रं विचारितवत्यस्तदेव प्रमेयमत्रान्विष्यते. चतुर्थे गर्गः प्रमाता भक्तिजन्ये"नालक्षितोस्मिन्नि"त्यादिना श्रीनन्दवाक्येन श्रीनन्दस्य भगवति स्वपुत्रत्वेन यदन्यथाज्ञानं वसुदेवपुत्रत्वाज्ञानं च विचारितवानिति तदेव प्रमेयमत्रान्विष्यते. पञ्चमे श्रीयशोदा प्रमात्री भक्तिजन्येन दामद्व्यङ्गुलन्यूनतादर्शनेन विस्मयजनकं

१. स्वयमेष मू. पा. २. चरित्रं प्र°.

टिप्पणी

अग्रेऽध्यायत्रयं प्रक्षिप्तमित्युक्तम्. तत्र "कौमारं जहतुः" "ततश्च पौगण्डवयः श्रितावि"ति युक्तः सन्दर्भ इति मध्येऽन्यकथा 'त्वेवं विहारैरि'त्यस्य 'ततश्च पौगण्डवय' इत्यस्य च वक्त्रा नोक्तेति ज्ञायते; अन्यथैतदध्यायत्रयानन्तरमेव कौमारत्यागं वदेत्. किञ्च, "पौगण्डे परिकीर्तितमि"ति वाक्यात् पूर्वाध्याय एव तत्प्राप्ते"स्ततश्च पौगण्डवयःश्रितावि"तिवाक्यं विरुद्धं स्यात्, तदनर्थकं च. तृतीयाध्यायान्तेऽ"प्येवं विहारैरि"ति श्लोकोऽधुना कैश्चित्पुस्तकेषु लिख्यते, तदप्रामाणिकमितीतोपि तथात्वं तेषां ज्ञेयम्. भगवत्प्रियाकृतलीलानुकृतिष्वेतदनुकृत्यभावात् तृतीयस्कन्धे श्रीमदुद्धवैर्द्वादशे स्कन्धे सूतेन चैतत्कथाया अकथनाच्च. "न भारती मेङ्ग मृषोपलक्ष्यते, न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः, न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथ" इति ब्रह्मवाक्यविरोधश्च, ईश्वरे तत्त्वेन ज्ञानवतस्तत्परीक्षाकृतेर्महानर्थरूपत्वाद्. "भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचिदि"ति भगवद्वाक्यविरोधश्च. तोकेन जीवहरणमित्यादिनिरूपकस्य सदेश्वरत्वेन ज्ञानवतस्तादृग्धार्ष्ट्यस्यासम्भवाच्च. आचार्यैः प्रसिद्धिमात्रेण विवृतमित्यस्माभिरुपेक्षितम्.

। इति श्रीप्रमाणप्रकरणम् ।

प्रकाशः

तद्धेत्वज्ञानं स्वस्मिन् प्रमितवती तदेव प्रमेयमत्रान्विष्यते. अर्जुनौ षष्ठस्य प्रमातुर्निरूपकौ गोपाः प्रमातारो भक्तिजन्येन पतितार्जुनदर्शनेन प्रमाणेन पतनकारणाज्ञानं कारणसंशयं च प्रमितवन्तस्तदेव प्रमेयमत्रान्विष्यते. सप्तम उपनन्दः प्रमाता भक्तिजन्येनोत्पातानुभवेन प्रमाणेन तत्कारणाज्ञानं कारणविषयकान्यथाज्ञानं च विचारितवान्, प्रीतिकर्तृत्वेन धर्मिणं च बोधितवानिति तदेव [1]प्रमेयमत्रान्विष्यत इति. किञ्च तत्रैव "प्रपञ्चविस्मृतिः सर्वा तदासक्तिः स्फुटैव हि प्रमाणबलमासाद्य सर्वेषां गोकुले ह्यभूदि"त्यनेन प्रमाणबलादेवासक्तिदार्ढ्यमुक्तमित्यतोपि प्रकरणस्य तथात्वम्. किञ्च "प्रमेये बालरूपे हि प्रमाणादखिलं स्थितमि"ति प्रमाणादेव बालरूपे सर्वं निर्णीतमित्यतः [2]प्रमाणप्रकरणत्वं त्रिधा ज्ञेयम्.

॥ इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकतानश्रीयदुपतितनुजपीताम्बरविरचिते दशमस्कन्धसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाश एकादशाध्यायविवरणम् ॥

॥ इति एकादशोध्यायः ॥

१. चरित्र°. २. °णत्वं प्र°.

॥ परिशिष्टम् ॥

॥ कौतुकलीलानिरूपकप्रक्षिप्ताध्यायत्रयात्मकम् ॥

॥ तत्रादौ प्रथमोध्यायः ॥

कथामात्रं हरेर्वाच्यं सर्वत्रेत्यत्र केचन।
कथां वक्तुं भागवतीं क्वचित् सिद्धामलौकिकीम्॥(१)॥
योजयित्वा त्वाधुनिका अध्यायत्रितयं जगुः।
शब्दार्थसङ्गतीनां हि स्पष्टा तत्र विरुद्धता॥(२)॥
लोकप्रसिद्धेस्तच्चापि कथञ्चिद् रूप्यते स्फुटम्।

पूर्वाध्यायान्ते "कौमारं जहतुर्व्रज" इत्युक्तं, "ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतावि"त्येव सन्दर्भस्तथापि भगवच्चरितमिव वत्सापहरणं पद्मपुराणे प्रसिद्धमिति तां कथामाश्रित्याघासुरवधं ब्रह्मस्तुतिं च पूर्वापरयोर्निवेश्य कौतुकलीला भगवतः प्रदर्शिता. लोका हि लौकिके कौतुकिनो भवन्ति.

प्रकाशः

अथ प्रक्षिप्ताध्यायान् विवरिषवो मतान्तरमाहुः **कथामात्रमि**त्यादिसार्धेन. प्रक्षिप्तत्वं समर्थयितुमाहुः **शब्दार्थे**त्यर्धम्. व्याख्याने हेतुमाहु**र्लोके**त्यर्धेन. प्रक्षिप्तत्वं समर्थयन्ति **पूर्वाध्याये**त्यादि. एतेषां मूलमाहु**स्तथापी**त्यादि. एतदेवोक्तं पाद्मोत्तरखण्डे–

"तत्पक्षभूतकृष्णेनाहिरूपोघासुरो हतः।

कारिकार्थः

प्रक्षिप्ताध्यायेषु प्रथमाध्याये प्रक्षिप्तत्वं समर्थयितुं मतान्तरमाहुः **कथामात्रमि**त्यादि. **क्वचित्** पद्मपुराणादौ प्रसिद्धाम्. एवं मतान्तरमनूद्य दूषयन्ति **शब्दार्थे**ति. सङ्गतिविरोधस्तु सुबोधिन्यां टिप्पण्यां विशेषतः श्रीगोपेश्वरैश्च उपपादितः. विजयध्वजनाम्ना माध्वेनापि [1]स्वीकृतः श्रीभागवतविवरणे; एतदध्यायत्रयं न व्याख्यातम्. एवं प्रक्षिप्तत्वे सत्यप्येतद्व्याख्याने प्रयोजनमाहुः **लोके**ति. तत्र प्रथमा-

१. स्वकृतश्रीभागवतविवरणे इत्यपि पाठः.

प्रकाशः

भगिनीभ्रातृनिर्वेशी तस्य ब्रह्मगतिः कृता॥१॥
मोचिता वत्सतत्पालास्तद्वक्त्रादन्तकालयात्।
तस्मिन्नहनि मध्याह्ने सवत्सान् वत्सपालकान्॥२॥
विधिर्जहार सम्पश्यन् प्रभावं गोपरूपिणम्।
पश्चाद्व्यापूरिते वर्षे वत्सान् पालान् प्रजापतिः॥३॥
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं तुष्टाव नवमीदिने।
कृष्णमायाहताः सर्वे क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः॥४॥
तैर्ज्ञातश्चाद्य निहतोघासुरः सखिना हि नः।
गत्वा व्रजं ततो बाला इति सर्वं व्रजे जगुः॥५॥" इति.

अत्राचार्यैः सन्दर्भविरोधरूपमेकमेव दूषणमुक्तं, टिप्पण्यां त्वन्यान्यपि दूषणानि प्रक्षिप्तत्वसाधकान्युक्तानि तानि ततोवगन्तव्यानि. किञ्चात्रैव प्रथमाध्याये भगवतोघासुरमुखप्रवेशतद्दर्शनेन "तदा घनच्छदादेव भयाद्धाहेति चुक्रुशुः जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवा" इत्यनेन कंसादीनां हर्ष उक्तस्तदुत्तरं च तदैव तन्नाशेन तद्दर्शनमप्यर्थादेव सिद्धम्. एवं सति यदग्रेरिष्टवधोत्तरं नारदेन कंसायोक्तं "याभ्यां ते पुरुषा हता" इति तद् विरुध्यते, अघस्य बकीबकानुजस्य यो वधस्तस्य स्वयमेव दर्शनात्. किञ्च द्वितीयाध्याये "स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन्नि"त्युक्तं तदप्यग्रिमया रसलीलया विरुध्यते. किञ्च तदानीं वयस्यानां पञ्चवार्षिकत्वेन तत्तुल्ये भगवद्रूपेपि स्तनपानासङ्गतिश्च.

श्रीगोपेश्वरास्तु– न चाशेषदेशेष्वप्यध्यायत्रयस्य भागवतीयत्वप्रसिद्धेरस्य प्रक्षिप्तत्वमसम्भवीति शङ्कायां तदुक्तं विकल्प्य दूषयन्ति. 'तथा हि सा प्रसिद्धिः किं पामराणां पण्डितानां वा सर्वेषां वा? नाद्यः, तत्प्रसिद्धिमात्रेणेष्टसिद्धेरभावात्, अन्यथा देहात्मबुद्धेरपि प्रामाण्यापत्तेः. न च यावद्व्यवहारं तस्या अपि प्रामाण्ये दोषाभाव इति वाच्यं, किं तावता? शास्त्रेण देहात्मना भेदेऽवधारिते तस्या असङ्गतत्ववदेतेषामपि [1]पूर्वोक्तदूषणेनाभागवतीयत्वेऽवधारिते प्रसिद्धेरप्रयोजकत्वस्यैव निश्चयात्. न द्वितीयः, सर्वेषां पण्डितानां तथा प्रसिद्धौ मानाभावात्, अन्यथा तद्विषयकविवादोपशमप्रसङ्गात्. सर्वलोकप्रसिद्धस्यार्थस्य विवादकवलितत्वादर्शनात् कतिपयेषां तथा प्रसिद्ध्या भागवतीयत्वाङ्गीकारेऽन्येषां तदभावेन तद्वैपरीत्यस्यापि

१. 'दूषणैर'.

प्रकाशः

वक्तुं शक्यत्वात्. न च बहूनां प्रसिद्ध्या तथात्वाङ्गीकार एव युक्त इति वाच्यं, "शतमप्यन्धानां न पश्यती"तिन्यायेन तेषां सर्वेषामप्यनभिज्ञत्वात्. दूषणाभाव एव 'बहूनामनुग्रह'स्य [1]न्याय्यत्वादन्यथा देहात्मवादन्यायापत्तिः. एतेनैव तृतीयोपि निरस्तो ज्ञेयः. न च पाद्मप्रसिद्ध्या तेषां भागवतीयत्वं शक्यशङ्कं, तत्र लीलामात्रकथनदर्शनात्. यदि हि "गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तरोत्तरं कृष्णो यमर्जुनायाह"त्यग्निपुराणे गीतासारस्य भगवदुक्तत्वं लिङ्गमुक्तं तथा चेदत्र किञ्चिद्भागवतीयत्वलिङ्गदर्शनं स्यात् तदाङ्गीकर्तुं शक्येतापि. अतो भागवतीयत्वबोधकस्य लिङ्गवाक्यादेरभावात् तथात्वाङ्गीकारो न युक्त एव. न च दूषणोद्धारे सति कथमयुक्तो, न च तेषामनुद्धार्यत्वं, तथा हि कौमारत्यागोत्तरं पुनः कौमारलीलाकथनस्य चमत्कारविशेषाधानार्थत्वेन सन्दर्भविरोधस्य परिहारात् लीलानुकरणस्य च भावानुरोधित्वेनैतद्भावाभावेनैतदनुकरणाभावस्यापि शक्यवचनत्वादेवमन्येषामपि परिहृतप्रायत्वाच्चेति वाच्यं, तथा सति कौमारलीलाकथनस्य चमत्कारविशेषाधानार्थत्वे हरिवंशविष्णुपुराणब्रह्मवैवर्तेषूक्तानां लीलानां तथात्वस्य तौल्येन तासामपि कथनप्रसङ्गात् तासु न तथात्वमत्रैव तथात्वमित्यत्र विनिगमकाभावादनुकरणाभावहेतुभूततादृग्भावाभावस्य यो हेतुस्तस्याप्यशक्यवचनत्वेन तत्रापि समाध्यभावात्, भावाभावरूपेण हेतुना तत्कल्प एतल्लीलाभावस्यैव निश्चयाच्च. न च श्रीधरेणैतद्व्याख्यानादेतेषां भागवतीयत्वेनाङ्गीकार उचित इति वाच्यं, प्रथमस्कन्धे "द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखा" इति कथयतैतेषां बहिर्भावस्य सूचितत्वाद्, एवं 'मज्जतःफेनावलम्बने' त्युद्धवोक्तिसूतोक्त्योरेतदभावसमाधानस्य कर्तुमशक्यत्वाच्च. तस्मात् श्रद्धाजाड्येनैवैतदङ्गीकरणम्. यत् तु बोपदेवो "वधश्च वत्सबकयोस्तथाघासुरभोगिनः वत्सचोरो ब्रह्ममोहो ब्रह्मणः स्तवनं हरेरि"त्युक्तवां[2]स्तत्रापि पादत्रयमनवधानविजृम्भितमेवोपदर्शितानां दोषाणामनपायादि'**त्याहुः.**

अत आधुनिकानां वृन्दावनीयप्रभृतीनां यस्तत्र भागवतीयाग्रहः स श्रद्धाजाड्यमूलक एवेति सुधीभिरवधेयम् ॥१॥

॥ इति प्रक्षिप्ताध्यायेषु प्रथमाध्यायः॥

१. 'य'. २. 'वान'.

तत्र तु प्रथमेध्याये लीलामाह सुविस्तराम्।।(३)।।
अघासुरस्य च वधं मुक्तिश्चापि स्वयुक्तितः।
प्रथमं भगवतो दशभिः श्लोकैर्लीलामाह.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।

योजना

। श्रीगोवर्धनधारी करोतु कुशलानि ।

अतः परमग्रेऽघासुरवधवत्सहरणब्रह्मस्तुतिनिरूपकास्त्रयोऽध्यायाः केनचित् प्रक्षिप्ता सन्ति, न तु वेदव्यासविरचिताः, अतः श्रीभागवतबहिर्भूता –इति सुबोधिन्यां साधितम्. अध्यायत्रयस्य प्रक्षिप्तत्वे प्रमाणानि बहून्येव टिप्पण्यामुपन्यस्तानि. तानि पुनर्न लिख्यन्ते किन्त्वेतेऽध्यायाः प्रक्षिप्ता इतिश्रीधरस्वामिभिरप्युक्तं तदुपपाद्यते. तथा हि "द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखा" इति गणना श्रीधर्यां कृता, ततश्च द्वात्रिंशदधिकत्रिशतमध्यायाः श्रीभागवतस्येत्येतदध्यायत्रयस्य प्रक्षिप्तत्वमेवाभिप्रेतं स्वामिनामपि. त्रयाणां शतानां समाहारस्त्रिशतं, "पात्राद्यन्तस्य ने"तिनिषेधात् न स्त्रीत्वं, पात्रादिराकृतिगण इतितत्त्वबोधिन्यामुक्तम्. द्वात्रिंशच्च त्रिशतं च द्वात्रिंशत्त्रिशतं; "सङ्ख्याया अल्पीयस्या" इत्यनुशासनेन द्वात्रिंशत्शब्दस्य पूर्वनिपातः. केचित् तु द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि चेतिविगृह्य शतानि चेति बहुवचनेन शतत्रयमेव ग्राह्यं प्रसिद्धत्वादित्याहुः. तन्न, प्रसिद्धिवशाच्छतत्रयलाभे तु प्रसिद्धेरेव पञ्चत्रिंशल्लाभसिद्धौ सङ्ख्याकरणस्यैव वैयर्थ्यापातात्. सङ्ख्याकरणं हि शिष्यबोधाय, तत्र शिष्याणां शतत्रयसङ्ख्याज्ञाने प्रसिद्धिपरतन्त्रत्वं चेत् तदा गणना मुधैव स्यात्. द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि चेतिविग्रहे "सङ्ख्याया अल्पीयस्या" इतिवाक्यात् त्रिद्वात्रिंशत्शतमितिरूपं स्यात्. अपरं च गणनाकृतिर्हि बोधसौकर्याय, तत् तु द्वात्रिंशच्च त्रिशतं चेति विग्रहे भवति, द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि चेतिविग्रहे त्वत्यन्तं दौर्लभ्यं बोधस्येत्येतादृशी क्लिष्टगणना श्रीधरैः कथं क्रियेत? तस्माद् द्वात्रिंशत् त्रिशतं चेत्येव विग्रहः. ततश्चैतेध्यायाः श्रीधरमतेपि प्रक्षिप्ता इति दिक्. माध्वैस्त्वेतेऽध्यायाः श्रीभागवतपुस्तकेपि प्रायो न लिख्यन्त इत्यलं विस्तरेण.

कारिकार्थः

ध्यायार्थमाहुः **तत्रेति**. **स्वयुक्तित** इति "पीनाहिभोगोत्थितमि"ति श्लोकोक्ताघासुरस्य मुक्ति"र्नैतद्विचित्रमि"त्यादिश्लोकद्वयेन युक्त्या समर्थितेत्यर्थः(१ - ३½).

प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥

क्वचित् कदाचित् **वनाशाया**शनमाशो वनेशनं कर्तुं **मनो दधद्** बिभ्रत् **प्रातः**काले **व्रजादुत्थाय विनिर्गत** इति सम्बन्धः. **वयस्याश्च** ते **वत्सपाश्च**. **शृङ्गरवेणै**व तेषामुत्थापनम्. कृष्णस्यैवायं रव इतिज्ञापनार्थं **चारुणे**ति. दोहानन्तरं वत्सान् गृहीत्वा निर्गतः।।१।।

तदा सर्वेपि निर्गता इत्याह **तेनैवे**ति.

तेनैव सार्धं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरि सङ्ख्ययान्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥२॥

तेनैव भगवता **सार्धं पृथुका** बालाः **सहस्रशो** निर्गताः. **स्निग्धाः** प्रेमला भगवति. **शोभना शिक्** शिक्यमोदनसहितं **वेत्रं** वत्सचारणार्थं **विषाणं** वादनार्थं **वेणुश्च;** ते येषां सन्ति. स्वकीयान् **वत्सान् पुरस्कृत्य** तेपि **मुदा** गृहेभ्य **ययुः**. एकैकस्य **सहस्रसङ्ख्यात उपरि** सङ्ख्याऽयुतमित्यादि; तया **सङ्ख्ययान्वितान्** ।।२।।

तान् सर्वानेव स्ववत्सकान् कृष्णवत्सेषु योजितवन्त इत्याह **कृष्णवत्सैरि**ति.

कृष्णवत्सैरसङ्ख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥३॥

भगवद्वत्सैः सह **स्ववत्सान् यूथीकृत्य**, अन्यथा स्वच्छन्दलीला न भवति. ततोपि पृथग्भूतान् कदाचिन्निर्गच्छन्तोऽ**र्भलीलाभि**रेव तांश्च**ारयन्तो विजह्रुस्तत्रतत्र** क्रीडितवन्तः।।३।।

फलादिभिश्च स्वशरीरं भूषितवन्त इत्याह **फले**ति.

फलप्रवालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥४॥

पूर्वं **काचादिभिर्भूषिता** अपि पुनर्वन्यैर**भूषयन्**. **स्तबकाः** पुष्पगुच्छानि, **सुमनसः** केवलपुष्पाणि, **पिच्छानि** मयूरपिच्छानि, गैरिकादि**धातवः**. गुञ्जाफलानि वन्यान्यपि नित्यं तिष्ठन्तीति काचादिषु गणितानि ।।४।।

बालकानामन्योन्यं क्रीडामाह **मुष्णन्त** इति.

मुष्णन्तोन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च ततो दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥५॥

अन्योन्यस्य शिक्यादीन् मुष्णन्ति. ततोनेन मदीयं नीतमिति **ज्ञात आराद्** दूरादेव **चिक्षिपुः** प्रक्षिप्तवन्तः. **ततो**पि येषु ते शिक्यादयः पतितास्तेपि तान् शिक्यानन्यांश्च **दूराच्चिक्षिपुः. ततो हसन्तश्च पुनर्ददु**स्तेभ्य एव ।।५।।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।
अहम्पूर्वमहम्पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥

यदि दूरं गतः कृष्णो भवति तदा तस्मिन् दूरं गते **वनशोभाया** दर्शनार्थ**महं पूर्वं** स्प्रक्ष्यामीत्यहमिकया भगवन्तं **संस्पृश्य रेमिरे** ॥६॥

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।
केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥

तत्र **केचिद्** बाला **वेणून् वादयन्तो** जाताः, **केचन शृङ्गाणि ध्मान्तो** वादयन्तो जाताः, **केचित्** पुनर्**भृङ्गैः** सह तथैव **गायन्त**स्तथैव **कोकिलैः** सह **कूजन्तः** ॥७॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥८॥

केचित् पुनरुपरि गच्छतां वयसां **छायाभि**र्मण्डलाकृतिभिः **प्रकर्षेण धावन्तो** जाता. **हंसैः** सह **साधु गच्छन्तश्च बकैः** सह तथै**वोपविशन्तः कलापिभि**र्मयूरैः सह **नृत्यन्तश्च** जाताः॥८॥

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥९॥

कीशा लम्बपुच्छा वानरास्तेषां **बालान्** पुच्छानि **विशेषेण कर्षन्तो** बालानेव च धृत्वा **तैः** सह **द्रुमानारोहन्तो** मुखविकारांश्च **कुर्वन्तो** मर्कटवदेव **पलाशिषु** वृक्षेषु **प्लवन्त** उत्प्लुत्य गच्छन्तो भूमौ **च** ॥९॥

साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

भेकैर्मण्डूकैः सह, **सरितो** नद्यः **प्रस्रवा** झरणाः, **सम्प्लुता**स्तैरेव, गर्ता वा. स्त्रीलिङ्गपाठश्चिन्त्यः. **प्रतिच्छाया** दर्पणादिप्रतिबिम्बानि. **प्रतिस्वनां**स्तटादिषु निर्गतान् शब्दान् स्वशब्दानुरूपान् **शपन्तश्च** भवन्ति ॥१०॥

तेषां भाग्यमभिनन्द**तीत्थ**मिति द्वाभ्याम्.

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरबालकेन सार्धं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

लोका त्रिविधा– ज्ञानिनो भक्ताः प्राकृताश्च. तत्र भगवान् सर्वेषां तत्तद्बुद्ध्यनुसारेण स्फुरति, "तं यथायथोपासते तथैव भवती"तिश्रुतेः. तत्र **सतां** ज्ञानिनां **ब्रह्म**रूपः सद्रूपः **सुख**रूप आनन्दरूपो**ऽनुभुति**रूपो ज्ञानरूपस्तादृशेन सह ते **विजह्रुरिति**

बालकानां भाग्यम्. **दास्यं गतानां** भक्तानां **परो** नियन्ता स्वामी **दैवत**माराध्यो. **मायाश्रितानां** प्राकृतानां केवलं **नरबालकः**. एवं सर्वैः सर्वप्रकारेणापि विभाव्येन **सार्धं कृतः पुण्यपुञ्जो** यैस्ते **विजह्रुः** ॥११॥

महच्च तेषां भाग्यं यत् तेषां दृष्ट्यग्रे भगवांस्तिष्ठतीत्याह **यत्पादपांसु**रिति.

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥१२॥

बहुजन्मतपसा जितेन्द्रियै**र्योगिभिरपि** शरीरेन्द्रियान्तःकरणशुद्धियुक्तैरपि **यत्पादपांसुरलभ्यः स एवै**ष कृष्णो येषां बालकानां सर्वेषामेव व्रजस्थितानां वा **स्वयमेव स्थितो,** न तु तैः प्रार्थितोपि. **अतो व्रजौकसां** भाग्यमवाङ्मनोगोचरं **किं वर्ण्यते** ? ॥१२॥

एवं क्रीडायां मध्येऽघासुरः समागत इत्या**हाथे**त्येकविंशतिभिस्तस्य मुक्त्यन्ता कथा निरूप्यते.

अथाघनामाभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

अघोन्वर्थ**नामा; तेषां** बालकानां **सुखक्रीडनस्य वीक्षणेप्यक्षमा** यस्य. **नित्यं** सर्वदा **यदन्तर**घासुरनाशो**ऽमरैः प्रतीक्ष्यते.** तत्रहेतु**र्निजजीवितेप्सुभि**रिति. यद्यपि ते **पीतामृताः.** अतोऽयमत्यन्तं दुष्टोऽमृतादीनामपि वस्तुसामर्थ्यनाशकः ॥१३॥

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।
अयं तु मे सोदरनाशकृत् तयोर्द्वयोरथैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

अर्भकान् बालकान्, **कृष्ण** एव **प्रमुखो** येषाम्. **कंसेन** प्रेषितः **स** प्रसिद्धो. **बकी** पूतना **बक**श्च, तयो**रनुजः.** तस्य सङ्कल्पमाहा**यं त्विति. त्विति** पक्षान्तराणि व्यावर्तयति. **अयं तु** भगवान् **मे सोदरयो**र्भ्रात्रो**र्नाशकर्ता,** न कर्मकालादि. अत**स्तयोर्द्वयो**रर्थ उपद्रवं करिष्यामीति ॥१४॥

ततो बालकानामप्युपद्रवो भविष्यतीत्या**हैत** इति.

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु कानुचिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥१५॥

मत्सुहृदोर्मद्भ्रात्रो**स्तिलापः कृता**स्तिलोदकप्राया मृतानां तृप्तिहेतवः. **तदा व्रजौकसो** गावः स्त्रीपुरुषाश्च **नष्टसमा** नष्टप्रायाः. यथा **प्राणे गते वर्ष्मसु** देहेषु गमनार्थं **का चिन्ता?** बालकाश्च व्रजवासिनां प्राणरूपाः, यतः **प्राणभृतः प्रजासवः**

प्रजैवासवः प्राणा येषाम् ॥१५॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद् वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशयः खलः ॥१६॥

इत्यध्यवसायं कृत्वा**जगरम**जगरवत् स्थूलं **वपुर्धृत्वा पथि व्यशेत. योजन**मात्र**मायामो** विस्तारो यस्य वपुषः. **महाद्रिवत्** पर्वतवत् स्थूलं भ्रमार्थम**त्यद्भुतं व्यात्तं गुहावदाननं** यत्र. **ग्रसनार्थ**मेव शयनं कृतवान्. दया तु नास्ति यतः **खलः** ॥१६॥

तस्य रूपमनुवर्णयति **धरेति.**

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ।
ध्वान्तान्तरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥१७॥

धरायां भूमावधरो**ष्ठं** यस्य. जलदेषु मेघेषू**त्तरोष्ठं** यस्य. **दरीवत्** कन्दरवद**दाननान्तो** मुखमध्यं यस्य. **गिरेः शृङ्गवद् दंष्ट्रा** यस्य. **ध्वान्तयुक्त-मन्तरास्यं, वितताध्ववत्** मार्गवत् **जिह्वा** यस्य. **परुषः** स्पर्शदुःसहो यो**ऽनिल**स्तद्वत् **श्वासः, दववद्** दवानलव**दीक्षणयोरुष्णः** स्पर्शो यस्य. **श्वासेन** सहित **ईक्षण उष्णो** वा. तादृशमपि दृष्ट्वा बालका न भीताः किन्तु स्वेष्टत्वेनैव कल्पितवन्तः॥१७॥

अत एव तेषां न भयं जातमसद्भावाभावादित्याशयेनाह **तं दृष्ट्वेति.**

तं दृष्ट्वा तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।
व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

तं तादृशं दृष्ट्वा वृन्दावनश्रीरेवैषेति **मत्वा** क्षणं ध्यात्वा भवति न वेत्य**जगरतुण्ड**तुल्यत्वेन श्रियमे**वोत्प्रेक्षितवन्तः**– श्रीरेषा परमजगरतुण्डवद् दृश्यत इति. **स्मे**तिप्रसिद्धिः; स्वस्य भयाभावा**ल्लीलया** यत्किञ्चित् कल्पयन्ति **स्म** ॥१८॥

कल्पनामेवाह पञ्चभिः.

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम् ।
अस्मत्सङ्ग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥१९॥

अहो इत्याश्चर्यम्. **मित्राणि** सर्वाणि **गदत** इति, सम्बोधनं वा. **सत्त्वकूटं** कपटसत्त्वं **पुरःस्थितमग्रे** वर्तमान**मस्मत्सङ्ग्रसनार्थमेव व्यात्तं** प्रसारितं **व्यालतुण्डमिवाचरति न वेति** निर्णयो वक्तव्य इत्यर्थः॥१९॥

तत्र न वा पक्षं दूरीकृत्योत्प्रेक्षार्थं व्यालतुण्डत्वमेव सम्पादयन्ति **सत्यमिति.**

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद् घनम् ।
अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥२०॥

अर्ककरैरारक्तमुत्तराहनुवद् घनं पश्यत, **अधराहनुवद् रोध**श्च. **तस्यै**वारक्तमेघस्य **प्रतिच्छाययारुण**वर्णम् ॥२०॥

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।
तुङ्गशृङ्गालयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥२१॥

सृक्किणीभ्यां कृत्वा **सव्यासव्ये** पर्वतकन्दरे **प्रतिस्पर्धेते.** वस्तुतः कन्दरैव सृक्किणीव दृश्यते. **तुङ्गानां शृङ्गाणामालयः** पङ्क्तयो**पि तद्दंष्ट्राभिः** प्रतिस्पर्धन्ते. नात्र सन्देहः, **पश्यत** ॥२१॥

आस्तृतायाममार्गोयं रसनां प्रति गर्जति ।
येषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥

आस्तृत आसमन्ता**दायाममार्गो** योजनपरिमितो **रसनां प्रति गर्जति** रसनावद् भासते. गर्जनादिकं तुल्यत्वाय. **येषां** शृङ्गाणां दंष्ट्राणा**मन्तर्गतमपि ध्वान्तमन्तराननं प्रति गर्जति** ॥२२॥

दावोष्णखरवातोयं श्वासवद् भाति पश्यत ।
तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥

दाववद् दावानलव**दुष्णः खरश्च वातोयं, दावानलेन वोष्णः. श्वासवद् भाति पश्यत** विचारयत. **तत्र** दावानले **दग्धानां सत्त्वानां दुर्गन्धोन्तरो**दरे यद**मिषम**पक्वमांसं यत् तेन भक्षितं तस्य **गन्धवद् भाति** ॥२३॥

तर्ह्येवं सति किं कर्तव्यमित्याशङ्क्य गन्तव्यमेवेति निर्धार्य बाधकं दूरीकुर्व**न्त्यस्मानि**ति.

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥२४॥

अत्र प्रविष्टानस्मान् किमयं ग्रसिष्यति ? **तथा चेद् बकवदेव क्षणादेव** नाशं यास्य**त्यनेनै**व कृष्णेनैवैषोऽघ **इति** निश्चित्य **बकारे**र्भगवत **उशत्** कमनीयं **मुखं वीक्ष्योर्ध्वं हसन्तः करताडनैः** सहिताः प्रवेष्टुं **ययुः** ॥२४॥

इत्थं मिथो तथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निषेद्धुं भगवान् मनो दधे ॥२५॥
तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न जीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

भगवान् पुनर्मा प्रविशन्तु सर्पोयं भक्षणार्थं स्थित इति यावद् वदति तदर्थं च यावद् मनसि विचारयति **तावदेव प्रविष्टा** इति श्लोकद्वयसम्बन्धः. **इत्थं** पूर्वोक्तप्रकारेण **मिथो** बालकै**स्तथ्यमेवातथ्यवद् भाषितम्.** तेषां वाक्यं **श्रुत्वा विचिन्त्य** सत्यमयमजगर **एवे**ति निश्चि**त्यामृ**षेव राक्षसो **मृषायते**ऽजगरवत् तिष्ठति, श्रीरिव वा बुद्धिमुत्पादयति, अतोयं **राक्षस** एवेति **विदित्वा स्वानां** निषेधार्थं स्वान् **निषेद्धुं सर्वज्ञो भगवान् मनो दधे** विचारितवांस्तावदेव **बालका असुरोदरान्तरं प्रविष्टाः सवत्सा** गतप्राणा अपि तदुदराग्निना **न जीर्णाः.** जरणे तेषामुपमर्दोऽपेक्ष्यते, स तु न जात इत्याह. **बकारिप्रवेशं प्रतीक्षमाणेन हतयोर्ब**कीबकयो**रन्तस्मरणं** मृत्युस्मरणं यस्य तेन **रक्षसा** दृढवैरानुबन्धेन जातिदुष्टेनापि भगवत्प्रतीक्षया न जीर्णाः ॥२५-२६॥

भगवतो विचारमाह **तान् वीक्ष्ये**ति.

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान् घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

कृष्णः सर्वेषामभयदाता तेषां गोकुलवासिनां च. सर्व **एवानन्यनाथाः, न** विद्यते**ऽन्यो नाथो** येषां, इदानीं च **स्वकरादवच्युता** अकस्मात् तन्मुखे पतिताः. नाप्युपेक्षणीया; **दीनाः. मृत्यो**रघस्यैव **जठराग्नेर्घासाः** कवलरूपाः. **दिष्टकृतेन** तथाभूतांस्तान् दृष्ट्वा भगवान् **विस्मितो** जातः॥२७॥

विचारयति **कृत्यं किमत्रे**ति.

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवितं न वा अमीषां च सतां विनाशनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तद् ज्ञात्वाविशत् तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥

यद्ययं मार्यते, बालका अपि गमिष्यन्ति. अन्यान् कृत्वा गृहनयने कृतेप्येते नष्टा एव. अतो बालका रक्षणीया अयं च मारणीयः. एतदुभयं मत्प्रवेशेनैव भवतीति **तुण्डमविशत्,** यतोय**मशेषदृग् हरि**श्च सर्वदुःखहर्ता. **अस्य खलस्य जीवितं** यथा **न** स्या**दमीषां वा सतां विनाशनं** यथा न स्यादेतद् **द्वयं कथं स्यादिति**फलद्वयमेकं साधनं च **सञ्चिन्त्य** तादृशमुपायं **ज्ञात्वा** प्रविष्टः॥२८॥

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥२९॥

तदा देवाः कंसादयश्चाकाशमार्गेण द्रष्टुमागताः. तत्र **देवा घनच्छदा** मेघान्तरिताः पश्यन्ति ते **हाहेति चुक्रुशुः. कंसाद्या जहृषु**र्हर्षं प्राप्तवन्तः. कंसाद्याः सर्व एव **ये** केच**नाघस्य बान्धवाः कौणपा** राक्षसाः॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

उभयेषां हर्षविषादौ **श्रुत्वा भगवान् कृष्णोऽव्ययः** स्वतो भयरहितः **सार्भवत्सकं** बालकवत्ससहित**मात्मानं चूर्णीचिकीर्षो**रस्य **गले ववृधे** स्थूलो जातः॥३०॥

ततोतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।
पूर्णोन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन् विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥३१॥

ततोतिकायस्य स्थूलस्य सर्पस्य **निरुद्ध**मुख**मार्गवत उद्गीर्णे** निर्गते **दृष्टी** चक्षुषी यस्य. **इतस्ततश्च भ्रमतो** देहं विक्षिपतो**ऽन्तरङ्गे** शरीरमध्ये **पूर्णः पवनो निरुद्धः** सन् **मूर्धानं विनिष्पाट्य बहि**र्निर्गतो मुख्यप्राणो ब्रह्मरन्ध्रेण **विनिर्गतः** ॥३१॥

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ।
दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्राद् मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ॥३२॥

तेनैव च मार्गेण **सर्व** एव **प्राणा** इन्द्रियाण्यात्मा च **बहिर्निर्गता**स्तदा **परेतान् वत्सान् सुहृदो** बालकान् **स्वयामृतदृष्ट्योत्थाप्य** सजीवान् कृत्वा तैः सह **मुकुन्दो भगवान् वक्त्राद् विनिर्ययौ** मुखमार्गेणैव निर्गतः. प्राणगमनानन्तरं सूक्ष्मो भूत्वा तथा कृतवान् ॥३२॥

भगवति बहिर्निर्गतेऽघस्य सायुज्यमाह –

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्नोज्ज्वलयद् दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

पीनो योय**महिः** सर्पस्तस्य **भोगात्** शरीरादु**त्थितमद्भुतं महस्**तेजोरूपं **ज्योतिः** प्रकाशमानं **स्वधाम्ना** स्वतेजसा **दश दिश उज्ज्वलयद्** बहिः स्थितं सद् भगवन्निर्गमनं **प्रतीक्ष्य** निर्गते **तस्मिन् विवेश,** पश्यतां **दिवौकसां** सताम्. तेजोरूपं लिङ्गशरीरं प्रविष्टमिति मायावादिनः॥३३॥

ततो देवानां सुखं जातमित्याह **ततोतिहृष्टा** इति.

ततोतिहृष्टाः स्वकृतोकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यघनाश्च वाद्यकैः स्तवैस्तु विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥३४॥

स्वार्थं देवार्थमेव करोतीति **स्वकृत्** तस्य भगवतो**ऽर्हणं** पूजाम**कृत** कृतवन्तः **पुष्पैः, अप्सर(स!)श्च नर्तनैः;** पूजामकृतेति सर्वत्र सम्बन्धः. सुष्ठु गायन्तीति **सुगा**स्ते **गीतै**र्वाद्यं घनो येषां ते **वाद्यघना; विप्रा**स्तु **स्तवै**र्वैष्णव**गणा जयनिःस्वनैरर्हणमकृत** ॥३४॥

तदा ब्रह्मणोप्याश्चर्यं जातमित्याह **तदद्भुतेति.**

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतकजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।

श्रुत्वा स्वधाम्नोन्त्यज आगतोचिराद् दृष्ट्वा महेशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

तेषामद्भुतस्तोत्रादिकं **श्रुत्वा स्वधाम्नोन्ति** स्वगृहसमीपेऽ**जो** ब्रह्मा तत **आगतोऽचिरा**च्छीघ्रमेव **दृष्ट्वा** भगवन्तं **महेशस्य** भगवतः सामर्थ्यं च **दृष्ट्वा विस्मयं जगाम. स्तोत्रं सुवाद्यं गीतं जयशब्दाश्च** तैर्योय**मनेकोत्सव**स्तत्सहितान् **मङ्गलस्वनान्.** ते शब्दा ब्रह्मलोकपर्यन्तं गताः, तत् श्रुत्वा ब्रह्मा समागतो विस्मयमाप ॥३५॥

मुक्तस्य देहो भगवद्भक्तानां क्रीडार्थं जात इत्याह **राजन्निति.**

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेद्भुतम् ।

व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥३६॥

वृन्दावने शुष्कं गन्धरहितं **व्रजौकसां बहुकालमाक्रीडार्थं गह्वरं** गुप्तस्थानं **बभूव** ॥३६॥

आश्चर्यान्तरमा**हैतदिति.**

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।

मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥३७॥

भगवतः **कौमारावस्थायां जातमेतत् कर्मात्मनोऽहेः** सकाशात् **मोक्षण**रूपं **मृत्यो**रेव **मोक्षण**रूपं **हरेः** पौगण्डावस्थायां जातस्य शरीरं शुष्कं **दृष्ट्वा विस्मिताः** सन्तो **व्रजे** समागत्**योचुः** "अद्यानेन महाव्याल" इति वक्ष्यति ॥३७॥

अघासुरस्य मुक्तिं युक्त्या समर्थयति **नैतद् विचित्रमिति** द्वाभ्याम्.

नैतद् विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ।

अघोपि यत्स्पर्शनधूतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

मनुजार्भो मनुष्यबालः स एव **माया**तद्वतो भगवत **एतद्** बालमोक्षणमघासुरमोक्षो वा **न विचित्रम्.** वस्तुतोयं **परावराणां परमो** ब्रह्मादीनामस्मदादीनां च नियन्ता कर्ता च. **अघोपि** पापरूपो **यत्स्पर्शनेन धूतपातकः** प्रक्षालितपाप **आत्मसाम्यं** भगवत्समता**मसतां** दुष्टानां **सुदुर्लभं प्रापेति यत्** तत्र हेतुः ॥३८॥

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।

स एव नित्यात्मसुखानुभूतिः व्युदस्तमायः[1] परमोङ्ग किं पुनः ॥३९॥

१. °भूत्यभिव्युदस्तमाय इतिच्छन्दोनुरुद्धः पाठः.

सकृद् यस्य भगवतोऽ**ङ्गप्रतिमा** शरीरसमाना मानसी मूर्ति**रन्तराहिता** हृदये स्थापितापि **भागवतीं गतिं ददौ** ददाति तत्र **स एव नित्यात्मसुखानुभूतिः** सच्चिदानन्दरूप आत्मा **व्युदस्तमायः** पूर्णज्ञानेनैव गतमायः **परमकाष्ठां** प्राप्तोन्तराहितः सन् मुक्तिं ददातीति **किं पुनर्वक्तव्यम्** ॥३९॥

॥ सूत उवाच ॥

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।

पप्रच्छ भूयोपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥४०॥

एतावदुक्त्वा शुकः परमनिर्वृतः तूष्णीमास तदा राजा पृच्छतीत्याह सूतः– हे **द्विजाः** शौनकादयः, **यादवदेवेन** कृष्णेन **दत्तो** विष्णुरातः **स्वरातुः** स्वरक्षितु**श्चरितं श्रुत्वा भूयोपि तदेव पप्रच्छ,** यतो **विचित्रं पुण्यं** च, **वैयासकिं** शुकं, **येन** चरित्रेण **निगृहीतं चेतो** यस्य ॥४०॥

॥ राजो उवाच ॥

ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।

यत् कौमारे हरिकृतं विदुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥

प्रश्नमेवाह त्रिभिर्ब्रह्मन्निति सम्बोधनं ज्ञानार्थम्. यदुक्तं "कौमारे हरिकृतं पौगण्डे कीर्तितमि"ति तत्र शङ्का– **कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेदिति.** तदेवाह **यत् कौमारे हरिकृतं** बालकाः **पौगण्डके विदुरिति** ॥४१॥

यद्यपि भविष्यति किञ्चित् कारणं तथापि **तत् मे मह्यं ब्रूहि.**

तद् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो ।

नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥४२॥

अज्ञानं तु तव नास्तीत्याह हे **महायोगिन्निति.** किञ्चैतत् **परं कौतूहलम्.** एतावद् ज्ञायते– **नूनमेतद्धरेरेव माया भवति, अन्यथा** तेषां भ्रमो **न** स्यात्. अतो भगवच्चरित्रमिति वक्तव्यम् ॥४२॥

कथनार्थं स्वश्लाघां करोति **वयं धन्यतमा** इति.

वयं धन्यतमा लोके गुरोपि क्षत्रबन्धवः ।

यत् पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥४३॥

क्षत्रियाधमा **अपि वयं धन्यतमा** यतो भवान् **गुरुः.** किञ्च **त्वत्तः कृष्णकथामृतं** यतो **मुहुः पिबामः** ॥४३॥

एवं पृष्टो जातसमाधिरपि शुकः पुनराहेत्याह सूतः.

॥ सूत उवाच ॥

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिः संस्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।

कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥४४॥

इत्थं पृष्टो बादरायणिः सम्यक् स्मारितो योयम**नन्त**स्तेन **हृतान्यखिलेन्द्रियाणि** यस्य. तादृशोपि **कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृष्टिः शनैः प्रत्याह**, समाधेर्विरतस्योच्चैर्भाषणं न सम्भवतीति. **भागवतोत्तमानां मध्य उत्तमं** प्रतीतिकथने हेतुः ॥४४॥

॥ इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे प्रक्षिप्ताध्यायत्रये प्रथमाध्यायविवरणम् ॥

॥ इति प्रक्षिप्तेषु प्रथमोध्यायः ॥

॥ प्रक्षिप्तेषु द्वितीयोध्यायः ॥

द्वितीये वत्सहरणं बालैर्ब्रह्मभ्रमस्ततः।
स्तोत्रस्योपक्रमश्चैव भोजनादि निरूप्यते ॥(१)॥

अभिनन्दति द्वाभ्यां **साधु पृष्टमि**ति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।

यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥१॥

भगवच्चरित्र एव स्थिरा बुद्धिरिति **महाभागत्वं, भागवतोत्तमे**ति सहजोत्तमता, सर्वदैवेशकथां **शृण्वन्नपि यन् नूतनमिव करोषी**ति ॥१॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।

प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ॥२॥

किञ्चोचितमेव तव यतः **सतां सारभृतां** भक्तिमतां **निसर्गः** स्वभावोऽ-**यम्.** तमेव स्वभावमाहा**र्थवाणीश्रुतिचेतसामपि** यस्मादयं स्वभावः. **अर्थो** धनं **वाणी** वाक् **श्रुतिः** श्रोत्रं **चेतो**न्तःकरणं –एतान्यपि स्वभावत एव भगवत्प्रवणानि. तदाह **प्रतिक्षणं नव्यवत्** नूतनवद**च्युतस्य** वार्तेति **यद्**, रस आविष्टे स्वभाव एव तथा भवतीति. दृष्टान्तमाह **यथा स्त्रिया** वार्ता **विटानां** श्रुता कीर्तिता भाविता वा सुखदा. परम् असाधुवार्ता सा भवति, इयं तु **साधुवार्ते**ति विशेषः॥२॥

महदद्भुतमस्ति, सावधानतया श्रोतव्यमित्याह **शृणुष्वे**ति.

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।

ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥

अवहितः सावधानः. **गुह्यमप्ये**तत् तुभ्यं **वदामि** यतः **स्निग्धस्य** प्रेमवतः **शिष्यस्य गुरवो गुह्यमपि** वदन्ति ॥३॥

वत्सापाहरणार्थमघमुखाद् मोचितानां बालकानामुत्तरवृत्तान्तमाह **तथे**त्येकादशभिः.

तथाघवदनान् मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।

सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥

कारिकार्थः

द्वितीयाध्याये **द्वितीय** इति. **बालैः** सह **वत्सहरणम्** (१).

अघस्य वदनाद् मृत्योरेव रक्षित्वा वत्सपालकान् सरित्पुलिनं यमुनातीर**मानीय भगवानिदं** वक्ष्यमाण**मब्रवीत्** ॥४॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥५॥

अहोऽतिरम्यमिदं पुलिनमतोऽत्रास्माभिर्भोक्तव्यमिति. **वयस्या** इति स्नेहेन सम्बोधनम्. **स्वस्य केलिः** क्रीडा तत्र या **सम्पत् मृदुलाच्छवालुकारूपता** सा वर्तते यत्र, तस्मादत्र क्रीडापि कर्तुं शक्यते भोक्तुं च. अन्येप्यस्मिन् पुलिने गुणाः सन्तीत्याह. स्फुटन्ति यानि सरोरुहाण्यत्यन्तं निबिडतया स्थितानि **सरः**शब्देनैवोच्यन्ते. अतः **स्फुटद्** यत् **सरस्तस्य गन्धेन हृता** वशीकृता **अलयो** भ्रमराः **पत्रिणः** पक्षिणश्च तेषां **ध्वनिस्तस्य** यत् **प्रतिध्वानं** प्रतिशब्दस्तेन **लसन्तो** ये **द्रुमास्तैराकुलं** व्याप्तं, तत्रत्यानि पुष्पाणि फलानि च पुलिने पतन्तीति ॥५॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥६॥

अत्रैव भोजने हेतु**र्दिवारूढमिति**– महद् दिनं जातं **क्षुधा** च सर्वे पीडिताः. अत एव **वत्साः समीपेऽपः पीत्वा शनकैस्तृणं चरन्तु** ॥६॥

एवं भगवतोक्ता बालास्तथैव कृतवन्त इत्याह **तथेति**.

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुह्य शाड्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

अर्भा वत्सान् पाययित्वा शाड्वल उत्तमतृणवति देश **आरुह्या**रोहं कारयित्वा स्वयं **शिक्यानि मुक्त्वा भगवता समं बुभुजुः** ॥७॥

तेषां भोजनार्थमुपविष्टानां प्रकारमाह **कृष्णस्येति**.

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलै रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥८॥

विष्वक् परित आवरणवत् स्थिताः **पुरूणि** पङ्क्ति**मण्डलानि.** मण्डलत्वाकारेण पौर्वापर्येणोपविष्टाः सर्व एव भगवत्सम्मुखा अत एव **फुल्लदृशो व्रजबालकाः सहैकदैवोपविष्टा विपिने**ऽरण्ये, तत्रान्यो लौकिको न पश्यतीति. **विशेषेण रेजुर्यथा छदाः** पत्राण्य**म्भोरुहकर्णिकायाः** परितो राजन्ते ॥८॥

तेषां भोजनपात्राण्याह **केचिदिति**.

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥

पुष्पादीनि प्रसार्य तैरेव **कृतभाजनाः** सन्तस्तदुपर्योदनं स्थापयित्वा **बुभुजुः** ॥९॥

बालकानां लौकिकत्वाद् भोजने प्रकारमाह **सर्व** इति.

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥१०॥

स्वस्वभोज्यस्यौदनादे **रुचिमन्यस्मै प्रदर्शयन्तः, पृथगि**ति भोज्यप्रकार-विशेषाणां लड्डुकादीनाम्. ततः स्तोत्रनिन्दाभ्यां **हसन्तो हासयन्तश्चेश्वरसहिता अभ्यवजह्रु**र्भोजनं कृतवन्तः. एवमानन्दभोजन ईश्वरसाहित्यमेव हेतुः. सर्वैरानीतान्यन्नान्येकीकृत्याग्रभागं भगवतो दत्वा भगवत्कृपयाक्षय्यान्ना बुभुजुः ॥१०॥

भगवानपि भुक्तवानिति वदन् ध्यानार्थं तादृशं रूपमनुवर्णयति **बिभ्रद् वेणुमिति**.

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे ।
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ॥
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः ।
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥११॥

मल्लवत् कटितटे पीताम्बरमस्ति. तत्र हस्ते स्थितानां वेण्वादीनां मध्ये **वेणुं जठरपटयो**र्मध्ये स्थापितवान् **शृङ्गं वेत्रं** च **कक्षयोः, वामे पाणौ मसृणं** चिक्कणं घृतदध्यादिवेष्टितं **कवलमोदनं**, सर्वत्र **बिभ्रदि**तिसम्बन्धः. तत्र दध्योदन उचितानि **फलानि** जम्बीरकादीन्य**ङ्गुलीषु** सन्धिषु वा. बालकानां **मध्ये तिष्ठन् स्वस्य परितो** वर्तमानान् **सुहृदो** बालकान् **स्वैर**साधारणै**र्नर्मभिः स्वर्गे लोके** तत्रस्थितदेवेषु

प्रकाशः

द्वितीयाध्याये **केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः शिग्भिस्त्वग्भि-र्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजना** इत्यत्र **पुष्पाणि** महान्ति कमलादेर्ज्ञेयानि. **पल्लवानां** पृथङ् निर्देशाद**ङ्कुराश्च** कदल्यादेर्ज्ञातव्या, अङ्कुराणां विदारणे ततोन्तःस्थं निष्कास्य तस्य विस्तारेण पत्रवदेव निःसरणात्. **फलानि** च पक्वबिल्वकपित्थनारिकेलादीनां ज्ञातव्यानि. **शिचः** शिक्यानि; तेषां रोटिकादिधरणार्थं भाजनत्वं ज्ञेयम्. **त्वचश्च** कदलीभूर्जादीनां ज्ञेयाः ॥९॥

मिषत्सु सत्सु सर्व**यज्ञभोक्ता बुभुजे. बालस्येव केलिर्विनोदो** यस्य ॥११॥

एवं सर्वेषां भोजने जायमाने किञ्चिदद्भुतमिव जातं तदाह **भारतेति**.

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥

वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु विस्मृतदेहेषु सत्सु **वत्साः** स्वयमे**वान्तर्वने** वनमध्ये **तृणेन लोभिता दूरं** गताः ॥१२॥

तान् दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तानूचे कृष्णोस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान् मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥१३॥

ततो बालका **भयसन्त्रस्ता** जातास्तांस्तथाविधान् **दृष्ट्वा कृष्णो** भगवा**नूचे,** यतोयं निर्भयः. तत्रहेतु**रस्य भीभयमिति– अस्य** जगतो या **भी**र्मृत्युस्तस्यापि **भय**रूपो, "भीषास्माद् वातः पवत" इतिश्रुतेः. भगवतो वाक्यमाह **मित्राणी**ति, हे **मित्राण्याशाद्** भोजनात् **मा विरमताह**मिहैव **वत्सकानानेष्ये** ॥१३॥

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन् भगवान् कृष्णः स पाणिकवलो ययौ ॥१४॥

इत्युक्त्वा भगवांस्ततो गत आदौ **स्ववत्सकान् विचिन्वन् स पाणिकवल**सहित एवा**द्रिदरीकुञ्जगह्वरेषु ययौ.** आदौ कियद् दूरे गतस्तत्र वत्सानदृष्ट्वाऽ**द्रेः** पर्वतस्य गोवर्धनादे**र्दरीषु** कन्दरासु **कुञ्जेषु** द्रोणीषु **गह्वरेषु** भयानकस्थानेषु सर्वत्रैव गतः ॥१४॥

ननु निकट एव वत्साः सम्भवन्ति, कथं दूरे गत इत्याशङ्क्य मध्ये ब्रह्मणा वत्सा हृता इत्याहा**म्भोजन्मजनिरि**ति.

॥ शुक उवाच ॥

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जुमहित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात् खेवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

अम्भोजन्म कमलं तत्र **जनिर्ज**न्म यस्य, नाभिकमल एवोत्पन्न**स्तदन्त**स्तन्मध्य **एवागतः** सन् **मायार्भकस्य** मायाबालक**स्येशितु**र्भगवतो **मञ्जुमहित्वं दृष्ट्वा**ऽघसायुज्यलक्षण**मन्यदपि द्रष्टु**मरण्याद् **वत्सान्** पुलिनाद् **वत्सपां**श्च **नीत्वान्यत्र** स्थापयित्वा, हे **कुरूद्वहे**ति विश्वासार्थं, स्वयमन्तर्धानं कृतवान्. **नीत्वे**त्युभयत्र सम्बन्धः. ननु किमित्येवं कृतवानित्याशङ्क्याह **यः पुरा ख** आकाशेऽ**वस्थितः** सन्न**घासुरमोक्षणं दृष्ट्वा परं विस्मयं प्राप्तः.** ननु किमाश्चर्यं, भगवतः सकाशाद् मुच्यत एवेति तत्राह **प्रभवत** इति. प्रकर्षेण भवत्यस्माद् जगदिति **प्रभवो** भगवान्, **तत**स्तस्मादुत्पत्तिरेवोचिता स्वदृष्टान्तेन, न तु मुक्तिरिति**विस्मयः;** अन्यथा स्वस्यापि मुक्तिः स्यात् ॥१५॥

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

ततो भगवान् वनादद**दृष्ट्वैवैत्य पुलिनेपि वत्सपानदृष्ट्वा** प्रायेणैते वत्सपाः स्वयमपि वत्सानन्वेष्टुं गता इत्यु**भावप्यु**भयविधानपि **वने** भगवान् **समन्ततो विचिकाय** ॥१६॥

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥१७॥

ततोऽ**न्तर्विपिने क्वापि वत्सान् वत्सपांश्चादृष्ट्वा** विचारे क्रियमाणे **विश्ववित्** सर्वज्ञो **विधिकृतं सर्वमिति सहसा** शीघ्रमे**वावजगाम** ज्ञातवान्. **ह**त्याश्चर्यम् ॥१७॥

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥

ततो भगवान् ब्रह्मणो **मुदं कर्तुं** बालकान् नानीतवान्; तथा सति तस्य स्वप्रयासवैयर्थ्यात् खेद एव भवेत्. तूष्णीं गृहगमने तु **तन्मातॄणां** खेदो भवेत्. अत उभयेषां **मुदं कर्तुमात्मानमुभयायितं चक्रे**, यतोयं **विश्वकृत्,** कोयं प्रयासः? ननु तज्जनकानां कालकर्मस्वभावानामभावात् कथं कृतवानित्याशङ्क्या**हेश्वर** इति ॥१८॥

इयं सृष्टिरात्मसृष्टिरेव जातेत्याह **यावदिति**.

यावद्वत्सकवत्सपाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥१९॥

यावन्तो वत्सा वत्सपाश्च, सङ्ख्या तावान् भगवानेव जातोऽ**ल्पकानि वपूंषि** जातः. **यावदिति** पदार्थानतिवृत्तौ. **वत्सकवत्सपाल्पकवपुर्यावत्** तावद्रूपो जात इत्यवधारणे वा. **कराङ्घ्र्यादिकं यावत्** तावदपि जातो. **यष्टिविषाणवेणुदलशिग्**

यावद् विभूषाम्बरं च **यावत्** तावदपि जातः. **शीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्, विहारादिकं** च **यावत्,** तावद्रूपः सन् **बभाविति** सम्बन्धः. ननु कथमेवं जात इत्याशङ्क्याह **सर्वस्वरूप** इति. नन्वेकस्य कथं सर्वभावस्तत्राह "सर्वं विष्णुमयं जगदि"त्यत्र वाक्ये **सर्वं विष्णुमयमि**तिप्रतीकग्रहणम्. "सर्वं विष्णुमयमि"त्येवंरूपा या गीस्तस्या **अङ्गवदर्थ**वत्– 'सर्वं विष्णुमयं जगदि'तिवाक्यार्थो यथाश्रुतो यथोपपद्यत आत्मसृष्ट्याधिदैविकसृष्ट्या वा यथैवोपपद्यते तथैवैतदपि जातमिति ज्ञातव्यम् ॥१९॥

एवं सर्वरूपो भूत्वा रूपाणां विनियोगमाह **स्वयमिति**.

स्वयमात्मात्मगोवत्सान् परिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ॥२०॥

स्वयमेव भगवा**नात्मना** स्वेनै**वात्मरूपान् गोवत्सान् परिवार्यात्मरूपैरेव वत्सपै**स्तत्तद्वत्सान् परिवार्य सह **वात्मरूपैरेव विहारैः क्रीडन् स्वयमेव** धर्मिधर्मभावं प्राप्तः **सर्वात्मा व्रजं प्राविशत्** ॥२०॥

तत्तद्वत्सान् पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माऽभवद् राजंस्तत्तत् सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

तत**स्तत्तद्वत्सान्** पूर्ववदेव यावता मार्गेण यत्र गम्यते तावद् दूर एव ततस्ततः **पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य** स्थापयित्वा **स** एव भगवान् **तत्तदात्माऽभवत्** तत्र स्थित्यर्थं तत्तद्भावं प्राप्तवान् बन्धनादिभावम्. ततो वत्स(प!)रूपेण **तत्तत् सद्म** गृहं तेन तेन प्रकारेण **प्रविष्टवान्** ॥२१॥

एवं तेषां कार्यमुक्त्वा गोपिकानां पूर्ववदेव तेषु वृत्तिमाह **तन्मातर** इति द्वाभ्याम्.

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्वृताः ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥२२॥

वेणुरवे श्रुते **त्वरयोत्थिता** जाताः. उपविष्टानपि बालकान् **दोर्भिरुत्थाप्य परिरभ्य निर्वृता** जाता. देहस्वभावोपि तदधिष्ठातृकृतस्तथैव जात इत्यत्यन्त**स्नेहेन स्नुतं** तनूद्भवं यत् **पयस्तदेव सुधारूपमासवं** मादकं च जातं, तादृशं **पयः परं ब्रह्म सुतान् मत्वापाययन्.** वस्तुतस्त्वेते मुक्तस्तना भवन्ति ॥२२॥

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन् सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥

ततो बहिरपि सेवां कृतवत्य इत्याह हे **नृप.** प्रथम**मुन्मर्दनं** तैलपिष्टेनोद्वर्तनं,

ततो **मज्जो** मज्जनं, स्नानमिति यावत्. ततो **लेपनं** गन्धादिना, ततो**ऽलङ्काराः,** ततो **रक्षा,** तत**स्तिलकादि,** ततो**ऽशनं** भोजनं, ततो वार्तासुखशयनादि. तैः सर्वैरेव **संलालितः** सन् **स्वाचरितै**र्यथापूर्वं बालका आचरन्ति तादृशचरित्रैः **प्रकर्षेण हर्षयन्** जातः. नन्वेतावता भूयान् कालो लगति, तत् संसारव्यापृतानां प्रत्यहं कथं सम्भवतीत्याशङ्क्याह **सायं गत** इति– सायङ्कालेपि गतस्तावद्भावं प्राप्नोति. तत्रहेतु**र्यामयमेने**ति– **यामस्य** कालस्य प्रहरात्मकस्य **यमेन** नियमेन. यावतैतावान् कालो भवति तावत् सूर्यगतिः कुण्ठिता भवतीत्यर्थः. कथमेवमत आह **माधव** इति– लक्ष्मीपतिरयमतः सर्वसम्पत्तिः, कालस्य च नियन्तातो न कालकृतानुपपत्तिरिति ॥२३॥

एवं मातृणां बालेषु वृत्तिमुक्त्वा गवां वत्सेषु वृत्तिमाह **गाव** इति.

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान् ।
स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन् मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥२४॥

ततो वत्सप्रीत्यनन्तरं **गावोपि गोष्ठमुपेत्य सत्वरं** त्वरया **हुङ्कारघोषैः** स्वकृतैर्हुङ्कारशब्दैः **परिहूता** आहूताश्च ते **सङ्गताश्च.** ततस्तादृशान् **स्वकान् स्वकान् वत्सतरान्** स्थूलवत्सान**पाययन्** स्नेहाद् **मुहुर्लिहन्त्यः.** न चाग्रे दोहः कथं भविष्यतीत्याशङ्कनीयं, यतः **स्रवदेवौधसमोध**ःसम्बन्धि **पयो,** न त्वन्तःस्थितम् ॥२४॥

एवमुभयविधानां पूर्ववत् स्थितिमुक्त्वा विशेषमाह **गोगोपीनामिति**.

गोगोपीनां मातृतास्मिन् सर्वः स्नेहर्द्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥२५॥

गवां गोपीनां च **मातृता** मातृभावः सेवादिरूपः **सर्वोप्यस्मिन्** नूतनपुत्रेपि **पूर्ववदेवा**सीत्, परं **स्नेहर्द्धिकां विना** स्नेहर्द्धिस्त्वधिका जाता. **आस्वपि** गोगोपीषु **हरेस्तोकता पूर्ववदेवा**सीत्. स्तोकेषु यादृशो भावः सा **स्तोकता;** मातृविषयिणी स्तोकनिष्ठा हरेरप्यासीद् यथापूर्वम्. स्तोकानां परमिदानीं भगवति स धर्मो मायया जातः, अतो **मायया विना** मायां परित्यज्य स्वरूपतः पूर्ववदेवासीदित्यर्थः ॥२५॥

एवमारम्भ एव स्नेहाधिक्यमुक्त्वा तस्य वृद्धिमाह **व्रजौकसामिति**.

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥२६॥

स्वतोकेषु स्वस्वबालकेषु **स्नेहवल्ली** शीघ्रमेव वर्धमाना**न्वहं ववृधे. शनैरि**ति वैलक्षण्याज्ञानार्थम्. ततो **निःसीम ववृधे, यथा कृष्णे तु पूर्ववत्. कृष्णे त्वपूर्ववदेव; कृष्ण**शब्दः सप्तम्यन्तो वारद्वयमावर्तते ॥२६॥

एवं भगवच्चरित्रं नूतनमुक्त्वोपसंहरतीत्थमिति.

इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ।
पालयन् वत्सपो वत्सं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥

आत्मा कृष्ण **आत्मना** वत्सपरूपेणा**त्मानं** वत्सरूपं; वस्तुतः स्वयमेव **वत्सः, पाल** इति**मिष**मात्रं व्याजमात्रम्. तेन **स** एव **वत्सपो** भूत्वात्मानं **पालयन् वनगोष्ठयोर्**वने गोष्ठे च **चिक्रीडे** क्रीडां कृतवान् ॥२७॥

इदानीं गोकुलवासिनां सर्वेषां मध्ये बलभद्रस्य भगवत एवंलीलया ज्ञानं जातमिति वक्तुमुपाख्यानमारभत **एकदे**ति.

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥

यदा भगवत इच्छा. **वत्सान् पालयन्** बलभद्रसहितो **वनमाविशत्** यत्र गह्वरे वने गावश्चरन्ति तत्र गतः. **पञ्चषासु** रात्रिषु **हायनापूरणीषु** सत्सु; वत्सापहरणे वर्षमात्रं जातं, पञ्च वा षड् वा रात्रयो न्यूनाः. **त्रियामा** इत्यल्पत्वम्. **अज** इति वत्सपालरूपेण तन्मातृभ्यो न जातः, केवलं स्वयमेव तथा वर्तत इति ज्ञापनार्थमुक्तम् ॥२८॥

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥

ततो यदासीत् तदाह. **विशेषेण दूराद्** दूरे **चरतो वत्सानुपव्रजं** व्रजसमीप एव स्थितान्, व्रजसमीपारण्ये स्थितानित्यर्थः; **गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो गावो ददृशुः** ॥२९॥

यद्यपि गवां तृणमत्यभीष्टं तथापि तत् परित्यज्य वत्सस्नेहाद् वत्ससमीपमागता इत्याह **दृष्ट्वे**ति.

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोस्मृतात्मा स गोव्रजोत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन ॥३०॥

पूर्वमपि पश्यन्ति कदाचित् तद्व्यावृत्त्यर्थं भिन्नप्रक्रममाह**आथे**ति. तत्स्नेहेन वत्सस्नेहेन वशीकृत**स्तत्स्नेहवशो**त एव**ास्मृत आत्मा** देहो येन **स** प्रसिद्धोपि **गोव्रजः** सर्वा एव गावो**ऽत्यात्मपदुर्गमार्गो** जातः— **अति**क्रान्ता **आत्मपा** गोपाला **दुर्गश्च मार्गो** येन, रक्षकानतिक्रम्य कण्टकादिभूयिष्ठमपि प्रदेशं मार्गव्यतिरेकेणैवाति-क्रम्यागत इत्यर्थः. किञ्च **द्विपाद्** जातो— योजितपादद्वयेनैवोत्प्लवनेनैव धावति.

ककुदि ग्रीवा यस्य, **उदूर्ध्वमास्ये पुच्छं** यस्यैतादृशः स**न्नगाद्** वत्ससमीपे समागतो **हुङ्कृतैः** सह. आसमन्तात् स्रुवतीत्यास्रु, आस्रु पयो यस्य स **आस्रुपया जवेना**गतः ॥३०॥

समेत्य गावोऽधोवत्सान् वत्सवत्योप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

तत **समेत्य वत्सवत्योप्यधोवत्सां**स्त्यक्तवत्सान**प्यपाययन्.** तत्राप्य**ङ्गानि गिलन्त्य इव लिहन्त्यः** स्नेहमुद्गिरन्त्यस्तथा कुर्वन्ति. नात्र तासां कश्चन दोषो यतः **स्वौधसं** स्वस्यैवौधसि स्थितं **पयः** ॥३१॥

एवं गवां स्नेहाधिक्यमुक्त्वा गोपानां स्नेहाधिक्यमाह **गोपा** इति त्रिभिः.

गोपास्तद्रोधनायासमौढ्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥३२॥

प्रथमत तस्य गोव्रजस्य **रोधनार्थं** योय**मायास**स्तस्मिन् विफले जाते यद् **मौढ्यमि**तिकर्तव्यताज्ञानाभावो जातस्तस्मिन् जाते पश्चा**ल्लज्जा** जाता. एवं दोष-त्रये**णोरुमन्यु**र्जातः. तेन मन्युनाविचारितक्लेशा एव **दुर्गाध्वनि** यः **कृच्छ्रः** क्लेशस्त-तोपि **समेत्य** क्लेशं प्राप्यापि मिलित्वा **गोवत्सैः** सह मिलितान् **सुतान् ददृशुः** ॥३२॥

क्लेशः कोपो लज्जा मौढ्यमायासश्चेति पञ्चदोषयुता अपि वस्तुनाशमपि दृष्ट्वा पश्चात् पुत्रदर्शने सर्वं विस्मृतवन्त इत्याह **तद्वीक्षणे**ति.

तद्वीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदूह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्ध्नि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

तेषां पुत्राणां **वीक्षणेन** यत् **प्रेम** जातं तस्य **रसेनाप्लुताशया** व्याप्तान्तःकरणाः; प्रथमतोपि **जातानुरागा** अतो **गतमन्यवो** जाताः. ततो**ऽर्भकान्** बालकानुदूह्योर्ध्वमुत्थाप्य **दोर्भिः परिरभ्य,** बहुवचनं समुदायाभिप्रायं, **मूर्ध्नि घ्राणैरा**घ्राणनैः कृत्वा **ते परमां मुदमवापुः** ॥३३॥

ततो निर्गमनेप्यशक्ता जाता इत्याह **तत** इति.

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥

प्रवयसो वृद्धा अपि **गोपा स्तोकानां** बालाना**माश्लेषेण सुष्ठु निर्वृता** जाताः, **कृच्छ्रा**देव **शनैस्ततोपगतास्तेषां** बालकाना**मनुस्मृत्योदश्रवो**पि जाताः ॥३४॥

एवं दृष्ट्वा रामस्य शङ्का जातेत्याह **व्रजस्ये**ति.

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धिं वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥

व्रजस्य प्रेमर्द्धिं दृष्ट्वा **मुक्तस्तनेष्वप्यपत्येष्वौत्कण्ठ्यमनुक्षणं** लालसतां दृष्ट्वाऽ**हेतुवित्** सन् हेतुमज्ञात्वाऽ**चिन्तयत्** ॥३५॥

चिन्तामाह **किमेतदिति**.

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥३६॥

एतद् गवां गोपानां च स्वतोकेषु भावलक्षणं **किमेतद्** यल्लोकयुक्तिप्रमाणैर्विरुध्यते? अत **एवाद्भुतं** भवितुमर्हति. तदपि न भवति. **वासुदेवेखिलात्मनि** सति किं भगवत्सान्निध्यादेवाहोस्विद् निमित्तान्तरमस्तीति सन्देहः. **व्रजस्य सात्मन** इति, स्वसहितस्य सर्वस्यैव **व्रजस्य स्तोकेषु** बालकेष्व**पूर्वम**भूतपूर्वं **प्रेम वर्धत** इति यदे**तदद्भुतमिवे**ति सम्बन्धः ॥३६॥

तर्हि काचित् माया भविष्यतीत्याशङ्क्याह **केयं वेति**.

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेपि विमोहिनी ॥३७॥

इयं वेति, **इयं का वा** माया? **कुतो वायाता?** तत्र स्वरूपे सम्बन्धिभेदेन भेदान् निर्दिशति– **दैवी** देवसम्बन्धिनी **नारी** नरसम्बन्धिन्**यासुर्य**सुरसम्बधिनी **वा**? एते पूर्वपक्षाः. **प्रायेण मम भर्तुरिव मायास्तु** –सिद्धान्तोयं भविष्यति. तत्र हेतुर्यतो **मे ममापि विमोहिनी,** अतो **नान्या** ॥३७॥

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान् सवयसानपि ।
सर्वानचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

एवं **सञ्चिन्त्य दाशार्हो** बलभद्रो निदिध्यासनेन **वत्सान् वयस्यसहितान् सर्वानपि** स्वव्यतिरिक्तान् **वैकुण्ठमचष्ट,** अयं सर्वोपि गणः केवलं भगवानिति. तत्र प्रमाणं **वयुनेन चक्षुषा** ॥३८॥

एवं दृष्ट्वा सन्दिहानो भगवन्तं पृच्छति **नैते सुरेशा** इति.

नैते सुरेशा ऋषयो न वैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोवैत् ॥३९॥

हे भगवन्, पूर्वमस्माभिर्ज्ञायत **एते** वत्सपाः **सुरेशा** इन्द्रादय **एते** च वत्सा **ऋषय** इति वेदार्थद्रष्टारः स्तन्यपातारः. इदानीं तु पुन**र्नैते सुरेशा न वैत ऋषयः**

किन्तु **त्वमेव** तत्तद्रूपेण **भासि**. ननु सत्यमेव, ब्रह्मवादस्तथैवेति चेत् तत्राह **भिदाश्रयेपी**ति– अभेदाश्रये सर्वं भगवानेव नात्र सन्देहः, भेदाश्रयेपि स एवेत्याश्चर्यम्. अतोत्र वेदानामभावात् **सर्वं पृथक्त्वं कथं** तद् **निगमाद् वद** वेदवाक्याद् बोधय, भेदपक्षे श्रुतिः कथं सर्वब्रह्मतां वदतीति. तदा भगवतोक्तोर्थात् पूर्ववृत्तान्तं **बलो** बलभद्रोऽ**वैत्** ॥३९॥

एवं बलभद्रं ज्ञापयित्वा ब्रह्माणमपि ज्ञापितवानिति च ब्रह्मणः समागमनमाह **तावदेत्ये**ति.

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ।
पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

आत्मभूरयं ब्रह्मा, अन्यथा सापराधो नष्टो भवेदेव. **तावदेव** शीघ्रमे**वैत्या**गत्य **पुरोवदेवाब्दम**ब्दपर्यन्तं **क्रीडन्तं सकलं** पालकवत्ससहितं **हरिं ददृशे.** ननु ब्रह्मा कथमेतावद्विलम्बं कृतवान्? तत्रा**हात्ममानेन त्रुट्यनेहसे**ति– **अनेहा** काल **आत्मनो** ब्रह्मणो **मानेन. त्रुटि**रत्राङ्गुलिस्फोटनमात्रं विवक्षितं, न तु तृतीयस्कन्धगणितत्रुटिकालः. अतः शीघ्रमेवागतोपि स्वकालवशाद् वर्षानन्तरमागतः ॥४०॥

आगतस्य दृष्टवतो विचारमाह **यावन्त** इति द्वाभ्याम्.

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायामये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥

गोकुले यावन्तो बाला वत्साश्च ते सर्वे इतो मया नीता **मायामये** लोके मया स्थापिताः **शयाना** एव तिष्ठन्त्**यद्यापि पुनर्नोत्थिताः** ॥४१॥

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥४२॥

एते चात्र पुनर्दृश्यन्त. **इत एवैते** उत्पन्ना उद्भूता वा भवितुमर्हन्ति, न तु तत आगन्तुं; अन्य**थात्र कुत्रत्याः**? वैलक्षण्यं च दृश्यत इत्याह **मन्मायामोहितेभ्य इतर एते**. आश्चर्यं च– **तावन्त एव तत्रै**व स्थाने तद्रूपा एव. **विष्णुना सममब्दं क्रीडन्त एते कुत्रत्या** इति सम्बन्धः॥४२॥

अत्र ब्रह्मण उभयथाबुद्धिः– किं भगवन्मायया तदानीमेव निर्मिता बाला मया नीता आहोस्वित् सत्या एवेत्येते वा सत्या निर्मिता वेति युक्तिभिरनुचिन्तने क्रियमाणे निर्धारो न जात इत्याहैत्रमिति.

एवमेतेषु सुचिरं ध्यात्वा सर्वात्मनात्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥

एतेषु बालेषूभयविधेषु **चिरं ध्यात्वाप्यात्मभूरपि केसत्याः कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे** न समर्थो जातः **कथञ्चन** युक्त्यापि ॥४३॥

तर्हि किं जातमित्याकाङ्क्षायामाहै**वमिति**.

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव माययाजोपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

विष्णुं विमोहयन् विष्णुविमोहार्थं प्रवृत्तः **स्वयमेव विमोहितो** जातः. तत्र हेतु**र्विमोहं विश्वमोहनमिति**— भगवान् स्वयं मोहरहितोन्यांश्च विमोहयति. अतो भगवताऽमोहितोपि **स्वयैव माययाजोपि** सन् **स्वयमेव विमोहितः** ॥४४॥

तद् युक्तमेवेत्याह **तम्यामिति**.

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

तमिस्रा रात्रि**स्तमी**, तस्यां **नैहारतमोवद्** लोकस्य व्योमोहार्थं नीहारादप्यन्धकारो जायते. स चेद् रात्रौ भवेत्, सोपि न दृश्येत. लोकानामदर्शनं त्वन्यथैव सिद्धमतो महामायायुक्ते भगवत्यन्या माया स्वपदमेव न प्राप्नोति, किं पुनः कार्यं प्राप्स्यति? एवं मोहकसाधर्म्येण ब्रह्ममायाया अप्रयोजकत्वमुक्त्वा भगवदग्रे ब्रह्मणोप्यप्रयोजकत्वमाह **खद्योतार्चिरिवाहनीति**. **अहनि खद्योतार्चिः** स्वयमपि न प्रकाशते; कुतो घटादीन् प्रकाशयिष्यति? दूरे सूर्यप्रकाशनाशा. अत एव **महतीतरस्य माया** वा **ऐश्यमी**शत्वं वा **युञ्जतः** पुरुषस्य महतो **मायैश्यं प्रयुञ्जतो** मायामैश्यं च **निहन्तीत्**यर्थः ॥४५॥

एवं चिन्ताकुलिते ब्रह्मणि भगवान् स्वरूपं प्रदर्शितवानित्याह **तावदिति**.

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥

यावदयं विचारयति **तावत् पश्यत एवाजस्य** सतस्तत्क्षणादेव **सर्वे वत्सा पालाश्च घनश्यामा व्यदृश्यन्त** नीलमेघश्यामा भाता, ब्रह्मणा वा दृष्टाः. सर्वे च पीतपट्टाम्बरधारिणः ॥४६॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥

चतुर्भुजाः— यस्य यस्य धर्मस्य प्राकट्यार्थं यादृशो वैकुण्ठमूर्तिस्तादृशा एत इति भुजादयो निरूप्यन्ते— चत्वारो भुजाः प्रत्येकं येषां, **शङ्खचक्रगदाराजीवानि** प्रत्येकं **पाणिषु** येषाम्. **राजीवं** कमलम्. सर्वे **किरीटिनः** किरीटाभरणयुक्ताः **कुण्डलाभरणयुक्ता मुक्ताहारयुक्ता वनमालायुक्ताश्च** ॥४७॥

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥४८॥

सारूप्यं गतानामप्येतद् भवतीत्यसाधारणान् श्रीवत्सादिधर्मानाह. **श्रीवत्सो** दक्षिणावर्तरोमरेखा, **अङ्गदं** बाहुवलयं, **दोरत्नानि** दोषां बाहूनां रत्नानि; बाहव एव वा रत्नानि, **कम्बुसदृशानि कङ्कणानि** —एतत्सहिताः प्रत्येकं **पाणयो** येषाम्. **नुपूरै**श्चरणाभरणैः **कटकै**र्हस्ताभरणैश्च **भाताः, कटिसूत्रेणाङ्गुलीयकैश्च भाताः** ॥४८॥

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥

तुलसीनूतनमालाभि**राङ्घ्रिमस्तकं** नखशिखाग्रपर्यन्त**मासमन्तात् पूर्णा**स्तानि च **दामानि कोमल**तुलसीनिर्मितानि **सर्वगात्रेषु** च पृथक्पृथक् समर्पितानि. समर्पकाश्च **भूरिपुण्यवन्तः** ॥४९॥

असाधारणं भगवद्भावं तत्र वर्णयति **चन्द्रिकेति**.

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥

चन्द्रिकावद् विशदाः स्मेरा मन्दहासा, **अरुणान्यपाङ्गवीक्षितानि; स्मेरैर्वीक्षितैश्च स्वकार्थानां** भक्तपुरुषार्थानां **स्रष्टृपालका** जाताः. **वीक्षितैः** पुरुषार्थानामुत्पत्तिः **स्मेरैः** पालनम्. तत्रोपपत्तिं वदन् दृष्टान्तमाह **रजःसत्त्वाभ्यामिवेति**. अरुणवर्णत्वाद् वीक्षितं रजस्तुल्यं, शुभ्रत्वात् स्मेरं सत्त्वतुल्यं, रजसोत्पाद्यते सत्त्वेन परिपाल्यते ॥५०॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥५१॥

किञ्चा**त्मा** ब्रह्मा, **स्तम्ब**स्तृणस्तम्बो; **ब्रह्मादितृणस्तम्बपर्यन्तै**राधिदैविकै**र्मूर्तिमद्भि**र्विग्रहवद्भि**श्चराचरैः** स्थावरैर्जङ्गमैश्च **पृथक्पृथगुपासिता** इति सम्बन्धः. पृथगुपासने हेतु**र्नृत्यगीताद्यनेकार्हैः**— यथाधिकारं स्वस्य धर्मा भगवत्सेवोपयिकाः पृथक् पृथक् सन्तीति सर्वेषां पृथगुपासनम् ॥५१॥

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमाद्यष्टैश्वर्यैरपि सेविताः. अणिमादीनां **महित्वं** माहात्म्यरूपत्वं, **अजाद्या विभूतयः.** उत्पत्तिव्यतिरेकेणैव स्वस्योत्पत्तिभावमन्येषां चोत्पत्तिं सम्पादयति या शक्तिः **साजा, सादि**र्यासां लक्ष्म्यादीनां, ताभिरपि प्रत्येकमुपासिताः. **चतुर्विंशति**तत्त्वाभिमानिन्यो देवताः ॥५२॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

कालादयोप्यभिमानिदेवाः. **गुणाः** सत्त्वरजस्तमांसि; **आदिशब्देन** नामसृष्टिवर्गः सर्वोप्यासन्यादयश्च. तेषां माहात्म्यमाह **स्वमहिध्वस्तमहिभिरिति**– स्वमहिम्नैव ध्वस्तो महिमान्येषां यैः, भगवन्महिम्ना वा ध्वस्तमहिमानः. ते च सर्वे **मूर्तिमन्तः**, तैरपि **पृथक्पृथगुपासिताः** ॥५३॥

धर्मानुक्त्वा स्वरूपमाह **सत्येति**.

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥५४॥

सत्यंज्ञानमनन्तशब्देन दोषाभावः इतरान्यत्वमानन्दश्च. स्वरूपे दोषाभावोप्यवश्यं वक्तव्यः. **तन्मात्रा एकरसा मूर्तयो** येषां; रसभेदस्तु विजातीयसंश्लेषाद् भवति. उत्कर्षमा**हास्पृष्टभूरी**ति– **उपनिषद्दृग्भिरपि न स्पृष्टं भूरि माहात्म्यं** येषाम् ॥५४॥

एवं सकृद् ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

एवं सर्वमेव भगवत्स्वरूपं वर्णयित्वोपसंहरंस्तस्य दर्शनमाह. **अजो** ब्रह्मा**प्येवं सकृ**देव **ददर्श** सर्वानेव **परब्रह्मात्मनः** परब्रह्मरूपान्; एकं हि परब्रह्म प्रसिद्धं, दृश्यते त्वनन्तरूपमिति. नन्वेकेन ब्रह्मणा कथमेतावन्तो दृष्टास्तत्राह **यस्येति**. **यस्य** भगवतो **भासेदं सर्वमेव सचराचरं विभाति.** अतो भगवदिच्छयैव भगवद्भासा सर्वज्ञो जातः ॥५५॥

ततोतिकुतुकोद्वृत्य स्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥५६॥

ततोतिकुतुकेनातिसन्तोषे**णोद्वृत्य** दृष्टीः परावृत्य **स्तिमितान्येकादशे-न्द्रियाणि** यस्य तादृशो जातः. तेन हर्षादपि स्तोत्रे न समर्थो जातः. अशक्यं च स्तोत्रं, प्रदर्शितस्य मनसाप्याकलयितुमशक्यत्वात्. हेत्वन्तरमप्याह **तद्धाम्नाभूदिति**. भगवत्तेजसा निष्प्रतिभो ब्रह्मा **तूर्ष्णीमा**सीत्. तत्र दृष्टान्तो लौकिकः **पूर्देव्यन्ती पुत्रिकेव**– पूर्देवी सर्वैरेव पुरवासिभिः पूज्यते, न तु तन्निकटस्था पुत्रिका; न हि समानदेशस्थितिमात्रेण पूजार्हता भवति. अतस्तदानीं दृष्टैः सर्वैरेवायमुपेक्षित इति निष्प्रतिभत्वमुचितमेव ॥५६॥

एवमप्रयोजके ब्रह्मणि जाते भगवांस्तद्रूपमुपसंहृतवानित्या**हेतीरेश** इति.

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोजाजवनिकाम् ॥५७॥

इत्यमुना प्रकारे**णेरेशे** वाक्पतौ ब्रह्मणि **द्रष्टुमप्यनीशे मुह्यति** च **सति** तस्य मोहादिक्लेशं **ज्ञात्वाजाजवनिकां** मायारूपतिरस्करिणीं **चच्छादा**च्छादितवान्, तदुपरि प्रसारितवान्, यथा ब्रह्मणो दर्शनं न भवति. उद्घाटितमाययैव तेषां दर्शनं, न तु निर्माणमत आच्छादनेऽदर्शनं युक्तमेव. ननु ब्रह्मणो मोहे दर्शने च को हेतुस्तत्राह **निजमहिम्न्यतर्क्ये** इति– भगवतोऽसाधारणमहिमान्येषां तर्कविषयोपि न भवति, अतः कथं द्रष्टुं शक्यते ज्ञातुं वा? तदेव कुतस्तत्राह **स्वप्रमितिक** इति– स्वस्यैव भगवत एव प्रमितिर्यस्य; केवलं स्वसंवेद्यमेव तद् न त्वन्यसंवेद्यम्. तत्रापि हेतु**रजातः परत्रेति**– प्रकृतेः परः सः, प्रकृतौ चान्ये, अतो यत्र भगवांस्तत्रान्यो नास्तीति भगवत्संवेद्यमेव भगवन्माहात्म्यम्. ननु श्रुत्वा कथं न ज्ञायते? तत्रा**हातन्निरसनमुखब्रह्मकमिताविति**. ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य निरसनद्वारैवोपनिषदो ब्रह्मस्वरूपं बोधयन्ति न तु साक्षादाहत्य, सङ्केतग्रहाभावात्. वैदिकव्यवहारेपि यावदयं बहिर्मुखस्तत्र प्रविशति तावद्बहिर्निरसनेनैव प्रवेशनीयः, प्रविष्टस्तु तद्भाव-

---

प्रकाशः

इतीरेश इत्यत्रैवं योजना – **अतर्क्ये स्वप्रमितिके जातः परत्रातन्निरसन-मुखब्रह्मकमितावेवं** चतुर्विशेषणविशिष्टे **निजमहिमनि** विषय **इत्यमुना** प्रकारे**णेरेशे** वाक्पतौ ब्रह्मणि **किमिदमिति वा मुह्यति सति द्रष्टुमप्यनीशे सति परमोजाजवनिकां** मायातिरस्करिणीं **चच्छादेति** बोध्या. स्फुटमन्यत् ॥५७॥

॥ इति प्रक्षिप्ताध्यायेषु द्वितीयाध्यायः ॥

मेव प्राप्स्यतीति स्वसंवेद्य एव भविष्यति. अतः प्रथमाधिकारे श्रुतिस्तथैवा"ह्याथात आदेशो नेति नेती"ति. अतः श्रुतयोप्याहृत्य न वदन्तीति युक्तमेव तस्य द्रष्टुमशक्तिर्मोहश्च ततो दुःखं चेति ॥५७॥

ततोर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥

भगवतैवं कृते मूर्छित एव **ब्रह्मा** पतितस्**ततः** कियत्कालानन्तर**मुत्थितः**, **अर्वागेव प्रतिलब्धमक्षं** ज्ञानं येन. लोकदर्शनार्थमेवोत्थितो न तु भगवद्दर्शनार्थमिति व्यर्थमस्योत्थानमिति दृष्टान्तमाह **परेतवदि**ति. यथा मृत उत्तिष्ठति केनचिन्निमित्तेन तथायमप्युत्थितः. पूर्वं मृतो मूर्छितः पश्चादुत्थित इति वा. **कृच्छ्रा**दतिकष्टेनैव **दृष्टीरुन्मील्येदं** जगदेव दृष्टवान् ॥५८॥

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोपश्यत् पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यं द्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥

ततः **सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोपश्यत्.** ततः **पुरःस्थितं वृन्दावनं चापश्यत्.** ततस्तस्मिन् वने जीवनार्थमागताँल्लोकानप्यपश्यत्, तदाह **जनाजीव्यमि**ति. **द्रुमाकीर्णमि**ति, द्रुमैर्व्याप्तं; न तु शून्यारण्यम्. **समं** च तद**समन्तात् प्रियं** च ॥५९॥

ततस्तत्रत्यान् मृगानपि दृष्टवानित्याह **तत्र नैसर्गदुर्वैरा** इति.

तत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासगतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥

स्वभावत एव दुष्टवैरा अप्यश्वमहिषादयः **सहैवासन्, नरा मृगाश्च**. किञ्च **मित्राणीव.** तत्र हेतु**रजितस्य** भगवत. **आवासेन गता रुट् तर्षा** तृष्णान्येपि कामादयो दोषाः. **गतरुट्तर्षादिकं** यथा भवति तथा **सहासन्नि**ति सम्बन्धः॥६०॥

तस्मिन् वने भगवन्तमपि पूर्ववद् दृष्टवानित्याह **तत्रोद्वहदि**ति.

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥६१॥

तत्र वृन्दावन **उद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं** येन; वस्तुतस्त्व**द्वैतं ब्रह्मै**व. **परं** कालादिनियन्तृ, **अनन्तम**त एवापरिच्छिन्नम्, **अगाधो बोधो** यस्य. **उद्वहदि**ति भिन्नपदं वा **विचिन्वदि**त्यनेन सम्बध्यते. **सखीन् वत्सांश्च परितो विचिन्वन्तं;** विचिन्वन् यो वर्तते तमिति योजना. **एकमे**व वर्षात् पूर्वमेव गृहीतं **कवलं** हस्ते यस्य; **पाणौ कवलं** तेन **सहितमचष्ट** दृष्टवान् ॥६१॥

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवानिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥६२॥

ततो भगवन्तं **दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतो** विमाना**दवतीर्य** विमानं परित्यज्य भूमौ समागत्य **पृथिव्यां** स्वस्य **वपुः कनकदण्डमिवासमन्तात् पातयित्वा** परिवर्तनेन **चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुगं स्पृष्ट्वा** पुनर्वाचापि **नत्वाश्रुजलैः** प्रेमाश्रुभिः पादयुग्मस्यै**वाभिषेकमकृत** ॥६२॥

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥६३॥

ततोपि पुनःपुन**रुत्थाय कृष्णस्य पादयोः पतन्** स्तब्ध इ**वास्ते.** तत्र हेतुः **प्राग्दृष्टं महित्वं पुनः पुनः स्मृत्वा** ॥६३॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैडतेलया ॥६४॥

ततः पुनर्मूर्छां परित्यज्य **शनैरुत्थाय** नेत्रे **विमृज्य** ततो निर्मलचक्षुषा **मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विशेषेण नम्रा कन्धरा** यस्य तादृशो जातः. ततः **कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्** विनयसहितः **समाहितः** सावधानः **सवेपथुः** कम्पमानो **गद्गदयेलया** सरस्वत्यै**डत** स्तोत्रं कृतवान् ॥६४॥

॥ इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणे प्रक्षिप्ताध्यायेषु द्वितीयाध्यायविवरणम् ॥

॥ इति प्रक्षिप्तेषु द्वितीयोध्यायः ॥

॥ प्रक्षिप्तेषु तृतीयोध्यायः ॥

स्तुतिर्ब्रह्मप्रसादश्च वत्सानां पुनरागतिः ।
स्नेहोपपत्तिः श्रवणे फलं चेति निरूप्यते ॥(१)॥

प्रथमं व्याकुलो ब्रह्मा दृष्टं रूपं वर्णयन् नमस्यति **नौमी**ति.

॥ ब्रह्मोवाच ॥

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥

"णु स्तुतौ"; स्तौमि भगवन्तम्. तत्र हेतुं सम्बोधनेनाह हे **ईड्य**ेति, सर्वैरेव स्तूयतेऽतो मयापीति. प्रयोजनमनुद्दिश्य कोपि न प्रवर्तत इति किमर्थं स्तोत्रमित्याशङ्क्याह **त** इति– **ते** तुभ्यमेव त्वमेव फलं न त्वहम्. ब्रह्मप्राप्तिश्च तपोज्ञानादिभिः; किंस्तोत्रेणेति चेत् तत्राह**ाभ्रवपुष** इति. नास्माकं फलं शब्दविषयकं ब्रह्म किन्त्वेतदेव प्रत्यक्षतो दृश्यं; तदपि प्राकृतचक्षुषैव, तत्रापि सर्वाभरणभूषितं, तत्रापि प्राकृतालङ्कारसहितं, तत्राप्येतदवस्थापन्नमिति वक्तुं तथाविशेषणान्याह**ाभ्रवत्** मेघवद् **वपु**र्यस्य नीलमेघश्यामाय. **तडिद्वत्** पीत**मम्बरं** यस्य. **गुञ्जाफलानामवतंसः परितो मयूरपिच्छानि** तैर्**लसन् मुखं** यस्य. **वनोद्भवानां** पुष्पाणां **स्रग्** यस्य. **कवलं** दध्योदनो हस्ते. **वेत्रविषाणे** कक्षयोः. **वेणु**र्जठरपटयोः. एतान्येव यानि **लक्ष्माणि** चिह्नानि तैः **श्रीः** शोभा यस्य. **मृदू पादौ** यस्य. **पशुपस्य** नन्द**स्याङ्गाञ्च जातो** नन्दसूनुः. अनेन यथैव व्यवहारो लौकिकस्तद्विषय एव भगवानस्माकं फलरूपोस्त्वित्यर्थः ॥१॥

प्रकाशः

तृतीयाध्याये **नौमी**त्यत्र **व्याकुल** इति. वत्सहरणसमये यादृशं **रूपं दृष्टं** स्थितं तादृशमेवेदानीं पुनर्दृष्टवांस्ततस्तन्महिमानं च दृष्ट्वा तदपराधकरणाद् **व्याकुलः.**

कारिकार्थः

तृतीयेऽध्याये **स्तुतिरि**ति. **स्नेहोपपत्तिरि**ति– "ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्ण इयान् प्रेमा कथं भवेदि"त्यादिना राजप्रश्ने "सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभ" इत्युत्तरेण भगवति व्रजस्थानां स्नेहोपपत्तिरित्यर्थः. "एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरि"-त्यनेन **श्रवणस्य फलं च** (१).

लौकिके प्राकृते भावे यस्य भावः स भक्तिमान् ।
हीनभावं तं विदित्वा योऽन्यथा वेद सोऽधमः ॥(२)॥
यद् गृह्णाति यथैवायं बोधयत्यत्र लौकिके ।
तत् प्रमाणमिहास्माकं नान्यद् भिन्नाधिकारतः ॥(३)॥

नन्वेतदेव फलत्वेन किमिति प्रार्थ्यते? प्रदर्शनार्थमेवैतदतः श्रुतिसिद्धमेव फलत्वेन प्रार्थ्यतामित्याशङ्क्याह**ास्यैवे**ति.

अस्यैव देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य तनुभूतमयस्य कोपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण साक्षात् तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥

प्रकाशः

सिद्धमाहु**रनेने**त्यादि. तदेतत् कारिकाभ्यां सङ्गृह्णन्ति **लौकिक** इत्यादि. कारिकायां **तमि**ति प्राकृतं प्रकारम्. **अन्यथा वेदे**ति तादृशभाववन्तं हीनं वेद. **इहे**ति भक्तिमार्गे. **भिन्नाधिकारत** इति भावप्रधानो निर्देशो; भक्तिभिन्नाधिकारत्वात् ॥१॥

कारिकार्थः

नौमीड्य ते इत्यत्र **लौकिके**इति. ननु "गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाये"-त्याद्युक्तप्रकारेण लौकिकव्यवहारविषय एव भगवान् किमर्थं प्रार्थ्यते; श्रुतिसिद्धमेव रूपं कुतो न प्रार्थ्यत इत्याशङ्क्याहु**र्लौकिके** इति. **लौकिके** लोकप्रसिद्धे **प्राकृते** 'गुञ्जावतंसे'त्याद्युक्तप्रकारेण प्राकृतसदृशे **भावे यस्य भावः स** एव **भक्तिमान्, तं** प्राकृतभावं **हीनं विदित्वा योन्यथा वेद स अधम** इत्यर्थः (२).

किञ्च **यद् गृह्णाती**ति. **अयं** भगवान् लोके **यत्** यादृशं रूपं **गृह्णाति यथैव बोधयति** येन प्रकारेणानुभावयति **तदेवास्माकंप्रमाणम्, इहे**ति भक्तिमार्गे इत्यर्थः. **नान्यदिति**– जगत्कर्तृत्वव्यापकत्वादिविशिष्टं वेदप्रसिद्धं रूपं नास्माकं फलत्वेन प्रार्थनीयमित्यर्थः. तत्र हेतु**र्भिन्नाधिकारत** इति. भक्तभिन्नाधिकारत्वादित्यर्थः. तादृशे वेदप्रसिद्धे रूपे ज्ञानमार्गीयाणामेवाधिकारो, न तु भक्तानामित्यर्थः. एतदेवोक्तमेतद्व्याख्याने सुबोधिन्यां– "नास्माकं फलं शब्दविषयं ब्रह्म किन्त्वेतदेव प्रत्यक्षतो दृश्यं, तदपि प्राकृतचक्षुषैव, तत्रापि सर्वाभरणभूषितं, तत्रापि प्राकृतालङ्कारसहितं, तत्राप्येतदवस्थापन्नमि"ति (३).

एतदप्यस्माकं महत् फलम्. यस्य हि स्वरूपानुभावौ ज्ञायेते तत् फलमिष्टं भवति, अस्माकं त्वेतस्यापि स्वरूपानुभावौ न बुद्धिगोचरावत इदमेव फलत्वेन धाष्ट्यादेव प्रार्थ्यते. **देवे**ति सम्बोधनमुपास्यत्वाय. **अस्यापि वपुषो महि** महिमान**मन्तरेणापि मनसा**न्तर्मुखेन विचारयुक्तेनापि मनसाहं ब्रह्मापि **नेशे** "कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरि"ति पक्षं व्यावर्तयति. यद्यपीदं वपु**र्मदनुग्रहं** मय्यनुग्रहो यस्य– ब्रह्मकृपयैवावतारो, ब्रह्मवचनाच्च गोकुले समागमनं, ब्रह्मणि कृपयैवेदानीं प्रादुर्भाव इति. अत इदं रूपं ब्रह्मार्थमेव. तर्हि कथं न माहात्म्यं ज्ञायत इत्याशङ्क्याह **स्वेच्छामयस्ये**ति– स्वस्य येच्छा तन्मयोऽयम्. इच्छा त्वपराधेऽन्यथा भवतीति न नियमो; मय्यनुग्रहमेव करिष्यतीति. न च कालकर्मस्वभावानां नियामकत्वं, तथा सति ब्रह्मणस्तेऽनुकूला इत्यनुग्रहमेव करिष्यतीति कल्पयितुं शक्यते. अतः कालाद्यधीनत्वाभावे हेतुमाह **तनुभूतमयस्ये**ति. **कोप्य**हमपि. यत्रास्य रूपस्यैव महिमा न ज्ञायते तत्र **साक्षात् तवैव** श्रुत्यैकसमधिगम्य**स्यात्मसुखानुभूतेः** स्वत एव बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य सच्चिदानन्दरूपस्य वा. यद्यप्येतदेव तत् तथाप्यप्रतीयमानमपि फलत्वेन भिन्नतया निर्दिष्टम् ॥२॥

नन्वेवं सति कथं ज्ञानार्थं यतन्ते? तत्राह **ज्ञाने प्रयास**मिति.

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।

प्रकाशः

अग्रिम **एतदपी**ति शुद्धसत्त्वात्मकं; इदमग्रे स्फुटीभविष्यति. **न बुद्धिगोचरावि**ति– दृष्टावपि नेदमित्थतया बुद्धिगोचरौ. **मही**त्यत्र मूले मो लुक् छान्दसः. **इति पक्ष**मिति प्रत्यग्दर्शनपक्षम्. एवमेतन्महिम्नो दुर्ज्ञेयत्वमुक्त्वा कैमुतिकेन भगवन्महिम्नो दुर्ज्ञेयत्वं[1] साधयतीत्याहु**र्यत्रे**त्यादि. तथा च तस्य दुर्ज्ञेयत्वात्[1] तत् फलत्वेन न प्रार्थ्यत इत्यर्थः. ननु यदि मत्स्वरूपं ज्ञायते तदा त्वेतत्स्वरूपं श्रौतमेव; यदि न ज्ञायते किमितीदं फलत्वेन निर्दिश्यत इत्याकाङ्क्षायां सिद्धमाहु**र्यद्यपी**त्यादि. तथा च यद्यपि ज्ञायते तदेवेदमिति तथापि पराकृचक्षुषा ग्रहणात् प्रतीचाप्रतीयमानमप्यतो विरुद्धधर्मदर्शनात् तस्य च भवत्परोक्षत्वात् त्वद्भिन्नतया फलत्वेन निर्दिष्टमित्यर्थः ॥२॥

१. 'र्ज्ञे'.

स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोजित जितोप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥

ज्ञानं द्विविधं– भगवतः स्वस्य च. तत्र स्वज्ञानमपि भक्त्यैव भवतीति वक्तव्यम्. भगवज्ज्ञानं तु न कस्यापि भवति; न ह्यापाततो दृष्टो भगवान् ज्ञातो भवति नापि श्रुतः. भक्त्यापि तत्त्वं ततो ज्ञानमिति प्रवेशोपयोग्येव, तावदेवापेक्ष्यत इति. अतो **ज्ञाने प्रयासमुदूर्ध्वमेवापास्य** दूरीकृत्य तव द्वारकादि**स्थानेषु स्थिता** देशदोषाभावाय, यत्र क्वाप्युपविष्टा वा, **सद्भिर्मुखरितां भगवदीयवार्तां** स्वस्य **श्रुतिगतां** कर्णगतां **तनुवाङ्मनोभिर्नमन्तो ये जीवन्ति** ते प्रथमतः प्रसिद्धा भवन्ति. किं बहुना? **तैरजितोपि** भवान् **जितः.** अयमेको मार्गः सर्वेषां पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं प्रसिद्धः सुगमः. आदौ स्थानस्थितानां जीविकोपद्रवाभावादिः स्वतःसिद्धः. सन्तश्च सर्वत्र भगवदाज्ञया परिभ्रमन्ति. तेषां चैतदेव कृत्यं, भगवद्गुणगाने ते मुखरा एव भवन्ति. तत्रापि कथायां ज्ञात्वा वक्तव्यमिति न नियमः; केवलं भगवदीया भगवत्सम्बन्धिनी वार्ता भवतु, न तूपपन्नानुपपन्ना वेति. तत्राप्यनायासेन स्वकर्णे समागता भवति. परं कायवाङ्मनोभिर्नमस्या सा. तदनुगुणतया कायवाङ्मनांसि स्थापनीयानि, न तु तत्र विरोध आचरणीयः. एतावदेव कृत्यम्. अत्र साधनं जीवनमेव, न तु कर्मकरणादिकमपि. **प्रायश** इति– ते चेद् भावान्तरं न कुर्युः, कालादयः प्रतिबन्धकत्वाद्वा. अतोनेनैव प्रकारेणाग्रिमतनानां निस्तारो मम त्वनेनैव स्वरूपेणेति स्वतन्त्रः पक्षो निरूपितः ॥३॥

ये तु पुनः स्वज्ञानार्थं यतन्ते तेन च पुरुषार्थं साधयितुं, ते भ्रान्ता एवेत्याह **श्रेयःस्रुति**मिति.

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

श्रेयसः स्रुतिः प्रस्रवः, **स्रुति**र्गतिर्वा; यया **भक्ति**र्हि चिन्तामणिरूपा, प्रार्थ्यते चेदन्यदिवात्मज्ञानमपि प्रयच्छति, तादृशीमपि परित्यज्य **केवलं** स्वरूपज्ञानमेवास्त्विति **ये** यतन्ते **तेषामसौ** यत्नः **क्लेशल एव शिष्यते.** क्लेशयुक्तः **क्लेशलो,** न तु फलयुक्तोपि. तेन प्रयत्नेन गौणमपि फलं साधितं भविष्यतीति शङ्कां वारयति **नान्यदि**ति– **अन्यत्** फलं प्रासङ्गिकमपि **न** भवतीत्यर्थः. ननु तपस्यादिना यत्ने कथं नान्यफलसिद्धिरन्तःकरणशुद्धिर्वा भवेदित्याशङ्क्य दृष्टान्तमाह **स्थूलतुषावघातिनामि**ति. महता कष्टेनाप्युत्पादिताः स्थूलतुषा अवहता अपि स्वरूपत एव परं

नश्यन्ति, न तु कश्चन तेषु सारांशोस्ति. अतः सत्त्वमूर्तेरस्वीकारे सत्त्वाभावात् शुद्धिज्ञानादिकं न भवत्येव, मौढ्यात् प्रवृत्ताः क्लिष्टा एव भवन्तीत्यविवादम् ॥४॥

अस्मिंश्च मार्गे फलसिद्धिर्बहूनां जातेत्याह **पुरे**ति.

पुरेह भूमन् बहवोपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

हे **भूमन्** व्यापक, **पूर्वमपि** विद्यमान **इहा**स्मिन् **बहवोपि** सङ्घशो **योगिनो** योगेनावधृतभक्तिसामर्थ्याः, अत एव **त्वय्यर्पितेहा** चेष्टा यैस्तेनैव समर्पणलक्षणेन **कर्मणा** त्वत्सेवालक्षण**कर्मणा** वा **लब्धया भक्त्यैव विबुध्य** स्वरूपं ज्ञात्वा, **हेऽच्युत** केनापि प्रकारेण च्युतिरहित, **ते गतिं** मार्गं, येन प्रकारेण त्वं गच्छसि, तां **प्रपेदिरे.** पश्चात् त्वदनुगानां न कापि चिन्ता, **अञ्जो**ऽनायासेनैव **परां** लोकातीतां **प्रपेदिरे** प्राप्तवन्तः. अत आत्मज्ञानापेक्षायामप्ययमेव मार्ग उचितः ॥५॥

एवं लौकिकप्रकारं समर्थयित्वा वैदिकं च व्यवस्थया निरूप्य पौराणिकप्रकारेणापीदमेवोपास्यं, न त्वन्तर्यामिरूपमिति वक्तुं तदपेक्षयास्य माहात्म्यं वदिष्यन्नन्तर्यामिरूपं सुकरत्वेन निरूपय**त्यथापी**ति.

अथापि भूमन् महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

हे **भूमन्, अगुणस्य** गुणातीतस्य **ते महिमामलान्तःकरणैर्बोद्धुं** बोधगोचरीभवितु**मर्हति** योग्यो भवति. हेतौ तृतीया– बोधविषयो महिमा भवति. यथा बोधे कर्ता योग्यो भवत्येवं कर्मापि, "ग्रामो गन्तुमर्हती"तिवत्. अन्तःकरणनैर्मल्ये गुणस्य महिमा चित्ते प्रकाशते, दर्पणे मुखवत्, प्रयासाभावात्; चित्तं हि सत्त्वाकारं तद् गृह्णाति, अग्रहणे हेत्वभावात्. तत्र विकारं हेतुत्वेनाशङ्क्य परिहर**त्यविक्रियादि**ति– न विक्रिया यस्मिन्; विकारे हि सति शुद्धचित्तेन न गृह्यते. किञ्च शुद्धं चित्तमात्मगाम्यात्मस्थितमेव पदार्थं गृह्णाति. महिमा पुनरात्मनिष्ठ एव, अतोपि ग्रहणयोग्यो भवतीत्याह **स्वानुभवादि**ति– स्वस्यानुभव एवानुभवो यस्य. आत्मग्रहणेनैव गृह्यत इति **स्व**शब्देनात्मा. महिम्न एव **स्व**शब्दवाच्यत्वे महिम्न **एवानु** पश्चाद् **भव** उद्भवो यस्मात्. महिमसम्बन्ध्यनुभवोन्तःकरणे भवति. गुणातीतस्य चेत् तथा महिमा न भवति तदान्तःकरणे ज्ञानं न भवेदेव. अत एवात्मानमपि गृह्णन् स्वजनकं ज्ञापयत्येव. **स्वस्यायं** महि**मानुभवरूप** एव वा. **स्वयमेवानुभव**स्तथा सति स्वप्रकाश एव. किञ्च शुद्धे ह्यन्तःकरणे ब्रह्माकारेण परिणते **रूपवत्पदार्था** एव **न** गृह्यन्ते. महिमा तु ब्रह्मभूत एवेति भिन्नरूपत्वाभावाद् बोद्धुमर्हति. तदा**ह्यनन्यबोध्यात्मतये**ति– अन्येन बोध्य आत्मा स्वरूपं यस्य तादृशभिन्नोऽयमात्मत्वेनैव भासमानत्वात्. अन्तःकरणधर्मा वा एते निर्दिष्टाः– सर्वविकारं परित्यज्य ज्ञानरूपेण परिणतं सप्रापञ्चिकविषयग्रहणहेतुभूतवासनारहितं

प्रकाशः

अथापि भूमन्नित्यत्राभासे **सुकरत्वेने**त्येतन्महिमरूपतया सुबोधत्वेन. **विबोद्धुमर्हतीति** क्रियायां **महिमैव** कर्ता प्रतीयते; तस्य च तथात्वं स्वतो न सम्भवतीत्यत उपपादयन्ति **यथे**त्यादि. ननु भवत्वेवं तथापि प्रयोगः कथं सङ्गच्छत इत्यतो दृष्टान्तमाहु**र्ग्राम** इत्यादि. तथा च तत्र ग्रामस्य गमनायोग्यतायामपि गमनविषयत्वयोग्यतामादाय क्रिया योज्यते तथात्रापि बोधविषयत्वयोग्यतामादाय क्रिया योज्येत्यर्थः. ननु तथापि साधनाभावे कथं बोधयोग्यो भवतीत्यत आहु**रन्तःकरणे**त्यादि. **तद् गृह्णाती**ति महिमानं गृह्णाति; **तदि**ति सामान्ये नपुंसकम्. **तत्रे**त्यग्रहणे. मूले **विक्रियात् स्वानुभवादरूपत** इतिपदत्रयं भावप्रधानं बोध्यम्. एते च महिमनिष्ठाग्रहणहेतवो भवन्तीत्यपि पक्षान्तरमाहु**र्महिम्न एवे**त्यादि. **भव उद्भव** इति यस्येति शेषः; महिम्नः सकाशादेवानुभवस्योद्भव इत्यर्थः. तत्र गमकमाहु**र्यस्मादि**त्यादि. अस्मिन् पक्षे **स्वानुभव**पदस्य न भावप्रधानत्व**मविक्रिय**पदस्याप्येतद्विशेषणत्वे तथा. **गृह्णन्नि**त्यनुभव इति शेषः. पुनः प्रकारान्तरेण पक्षद्वयमाहुः **स्वस्यायमि**त्यादि. एतयोः प्रथमे पक्षे स्वशब्दः स्वीयार्थको द्वितीयपक्षे परमात्मार्थको बोध्यः. तत्तात्पर्यमाहु**स्तथा सती**त्यादि. एवं पक्षचतुष्टयेपि गुणातीतस्य महिमा स्वसामर्थ्येनैव बोधविषयो भवतीत्यर्थः सिध्यति. **अरूपत** इतिपदं विवृण्वन्ति **शुद्धे ही**त्यादि. **रूपवत्पदार्था** इत्येकं पदं; तथा च महिमत्वैरूपत्वाद् गृह्यन्त इत्यर्थः. तर्हि केन रूपेणेत्याकाङ्क्षायामाहु**र्महिमा त्वि**त्यादि. एवं महिमग्रहणेऽन्तर्यामितया स्वत एव तस्य ग्रहणमुक्तम्. **न चान्यथे**ति तु न[1] व्याख्यातं, बोधप्रकारे निर्दिष्टे प्रकारान्तरनिषेधस्य स्वत एव सिद्धत्वादिति. अत्रोत्तरार्धं उक्तानां पञ्चम्यन्तानां पदानामन्तःकरणधर्मत्वमभिप्रेत्य पक्षान्तरमाहु**रन्तःकरणधर्मा वे**त्यादि. अस्मिन्नपि पक्षे महिम्नोऽन्तर्यामिरूपत्वमेव, **अनन्यबोध्यात्मतये**त्यनेन तस्यैव रूपस्यापि सङ्ग्रहात्[2] ॥६॥

---

१. लुप्तम्. २. °दिति.

सत् स्वत एव स्फुरज्ज्ञानरूपमन्तःकरणं भगवन्महिमानं गृह्णातीति ॥६॥ गुणात्मनस्तु महिमा ज्ञातुं न शक्यत इत्याह **गुणात्मनस्त** इति.

गुणात्मनस्तेपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

सर्वगुणरूपो भगवानेव जातस्ते च **गुणा** अनन्तास्तेषां विमानेपि कश्चिन्न शक्तः. यतः सर्वजग**द्धितार्थमवतीर्णः.** बहवोपि मिलित्वा **नेशिरे.** महतापि **कालेन सुकल्पै**रतिसमर्थै**र्भूपांसवो विमिता** भवन्ति. पञ्चाशत्कोटिघनस्य गणनायां घनान्तरवत् तदपि गणयितुं शक्येत. **ख** आकाशे **मिहिका** हिमकणाः, **द्युभासो** ज्योतिश्चक्रतेजोंशाः –एते तामसा राजसाः सात्त्विकाः सर्वहितार्थं प्रवृत्ताः परिमितत्वात् गणितुं शक्याः. अपरिमितास्तु भगवद्गुणा गणितुं न शक्याः ॥७॥

अतो ये सगुणोपासकास्ते गुणज्ञानाग्रहं परित्यज्यास्मदुक्तानुसारेण चेत् प्रवृत्तास्तदा कृतार्था भवन्तीत्याशयेनाह–

तत् तेनुकम्पां प्रसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

तत् तस्मात् कारणात् **तेऽनुकम्पां** कृपामेव **प्रकर्षेण समीक्षमाणः,** कदा कृपां करिष्यतीति, तावत्पर्यन्त**मात्मकृतमेव विपाकं** कर्मविपाकं **भुञ्जानो, हृदय**मेव मनो; **वाङ्मनोवपुर्भिस्ते नमो विदधद् यो जीवेत स मुक्तिपदे दायभाग्** भवति, यथा पितृद्रव्ये जीवन् पुत्र एव भागी ॥८॥

एवंरूपस्यैव भगवतः सर्वोपास्यत्वमुक्त्वा स्वापराधं क्षमापयितुमनुवदति **पश्येति.**

पश्येश मेनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥

हे **ईश, मेऽनार्यं** दुष्टत्वं **पश्य.** अनार्यमेवाह**ानन्त** उत्तरावधिरहित **आद्ये** पूर्वावधिरहिते **परमात्मनि** नियामकात्मरूपेऽन्तर्बहिःस्थित एतादृशे **त्वय्यपि**

मायिनामपि मायिनि मोहके, प्रकृतोपयोगि विशेषणमेतत्. तादृशे **मायां वितत्यात्मवैभवमीक्षितुमैच्छं,** अनेन प्रदर्शनार्थमेवैतदित्यपराधाभावोपि सूचितः. परमेतदप्यनुचितं, तत्र हेतुमाह **कियानहमिति**– को वाहं वराकः? तत्र दृष्टान्तो**ऽग्नावर्चिरिवेति;** न ह्यग्नेर्ज्वालाविशेषोग्निमेवं कर्तुमर्हति ॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोन्धचक्षुष एषोनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

अतोऽनुचितं यद्यपि तथापि **क्षमस्व,** यतस्त्व**मच्युत**स्तव न काचित् क्षतिः. **मम** चायं सहजो दोषो, यतोहं **रजोभूः,** तत्रा**प्यजानतः,** अर्थात् तव माहात्म्यम्. तत्र हेतु**स्त्वत्तः पृथगे**वाह**मीश इत्यभिमानयुक्तः.** हेत्वन्तरमप्याह**ाजो**हं न कस्मादप्युत्पन्न इति योय**मवलेपो** गर्वो; वस्तुतस्त्वज एव, तेनावलेपे**नान्धं चक्षु**र्यस्य. क्षमायां हेतुमाह**ैषोनुकम्प्यो मयि नाथवानिति. एष** ब्रह्मानुकम्प्यः, कुतः? **मय्येव** सत्ययं **नाथवान्,** अन्यथा त्वनाथ एव स्यात्. अतो ब्रह्मण एतावत्त्वं मत्त एवेति क्षमोचिता ॥१०॥

एवमाधिभौतिकब्रह्माणमात्मानं तिरस्कृत्याधिदैविकमपि तिरस्करोति **क्वाह**मिति.

क्वाहं तमोमहदहङ्खचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या वाताध्वरोमविवरस्य च ते महत्त्वम् ॥११॥

तमः प्रकृति**र्महत्** महत्तत्त्व**महम**हङ्कारः **खमा**काश**श्चरो** वायु**रग्निर्वा**र्जलं **भू**मिश्चेत्यष्टावरणानि. तैः **सम्यग् वेष्टितो** योय**मण्डरूपो घट**स्तस्मिन् घटे **सप्तवितस्ति**परिमितः **कायो** देहो यस्य. वितस्तिमात्रं शिरः परित्यज्य कायः सप्तवितस्तिर्भवति. **ईदृग्विधानामविगणितानामण्डपरमाणूनां** गतिर्यत्र तादृशो **वाताध्वो** गवाक्षः; गवाक्षे हि सूर्यकिरणेषु त्रसरेणूनां गतिर्दृश्यत इति. गवाक्षवद् **रोमविवराणि** यस्य. तादृशस्य **ते महत्त्वं क्वाहं च क्वे**ति सर्वथा परीक्षायामयोग्यता ॥११॥

प्रकाशः

गुणात्मन इत्यत्र **बहवोपि मिलित्वा नेशिर** इति. **क ईशिर** इत्यस्य व्याख्यानमिदम् ॥७॥

तदित्यत्र मूले **जीवेते**ति पदव्यत्ययः ॥८॥

पश्येत्यत्राभास **उक्त्वे**ति "ज्ञाने प्रयासमि"त्यादिभिः षड्भिरुक्त्वा. **आत्म-**

प्रकाशः

वैभवमित्यत्रात्मशब्देन भगवान् बोध्यो, न तु चतुर्मुखात्मा, तथा सत्यपराधप्रसक्तेर्दुर्वारत्वादिति ॥९॥

अतः क्षमस्वेत्यत्र **वस्तुतस्त्वज एवे**ति. रजोजन्यत्वाद् बर्करः पशुरेवेत्यर्थः ॥१०॥

क्वाहमित्यस्याभास **आधिभौतिकब्रह्माण**मिति रजःशरीरं ब्रह्माणम् ॥११॥

आध्यात्मिकस्यापि ब्रह्मण: स्वरूपमाश्रित्यापराधक्षमापनामा**होत्क्षेपणमिति**.

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।

किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

गर्भगतस्य पादयोरुत्क्षेपणं मातुरागसे किं भवति? अपराधाय न **कल्पते.** ननु विषमो दृष्टान्त इति चे**दस्तिनास्तिव्यपदेशाभ्यां** भावाभावशब्दाभ्यां **भूषितम**लङ्कृतं जगत् **तव कुक्षेरनन्त**र्बहिः **किम्** ? सर्वं हि तव कुक्षौ, अतो ममापि सर्वमध्ये पातात् नापराध इत्यर्थ:. अनेनापि प्रकारेणापराधक्षमापनं, अयं साधारण: पक्ष इति ॥१२॥

विशेषप्रकारेण स्वस्य पुत्रत्वं भगवत: पितृत्वं चाह **जगत्त्रयेति**.

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ।

विनिर्गतोजस्त्वितिवाङ् न वै मृषा किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोस्मि ॥१३॥

जगत्त्रयस्यान्ते प्रलये य **उदधिसम्प्लव** उदधीनां संश्लेषस्तस्मिन् प्रल**योदके नारायणस्योदरनाभिनालात्** कमलादजो **विनिर्गत इतिवाङ् न मृषा,** उपाख्यानानामपि सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्. अत एव हे **ईश्वर,** किं **त्वत्तो**हं **न निर्गतः**? अपि तु निर्गत ए**वास्मि** ॥१३॥

ननु नाहं नारायण इति चेत् तत्राह **नारायणस्त्वमिति**.

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशोखिललोकसाक्षी ।

नारायणोङ्गं नरभूजलायनात् तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

त्वं किं **नारायणो न हि** ? यतो नारायणत्वसाधका हेतव: सन्ति. तानाह **सर्वदेहिनामात्मे**ति– नारं जीवसमूहस्तदयनं यस्येति. आत्मा हि सर्वभूतेषु तिष्ठति, "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित" इतिवाक्यात्. किञ्च नारमयते प्रेरयतीति नारायण:. अस्मिन्नपि पक्षे**ऽधीश्वर**त्वाद् भवान् नारायणो, "नराद् जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधास्तेषामधीश्वर: साक्षाद् नारायण इति स्मृत" इति-

---

प्रकाशः

जगत्त्रयेत्यत्राभासेऽयं साधारणः पक्ष इति श्लोकत्रयोक्त: पक्ष:. गुणावतारत्वमहमात्मकत्वप्राकृतत्वसाधारण: किमित्यत्र काकु:. **तुशब्दस्य** व्याख्यान**मपि त्वि**त्यादि ॥१३॥

नारा[illegible]रस्त्वमित्यत्र **न ही**त्यत्र काकु:. चतुर्थे पक्षे नराणामयनत्वं 'तृतीयं

वाक्यात्. नारं जीवसमूहमयते जानातीति चेत्, तथापि भवान् नारायणो, यतो**ऽखिललोकसाक्षी.** ननु नैवं **नारायण**शब्दो व्युत्पन्न: किन्तु "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव: अयनं तस्य ता: पूर्वं तेन नारायण: स्मृत" इतिवाक्याद् नरोत्पन्नजलायनाद् नारायण इति चेत्, तत्राह **नारायणोङ्गमिति**. **नरभूजलायनाद्** यो **नारायणः** स त**वाङ्गं,** पुरुषत्वात्, "पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयते" ति श्रुतेः. "विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदु: प्रथमं महत: स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितं तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यत" इति वाक्याद् नारायणस्त**वाङ्गम**वतार:. किञ्च **नारायण**शब्दो वस्तुतस्तथा न व्युत्पन्न एव, यतो जलवासस्य प्रदर्शनमात्रपरत्वात्. न ह्यवस्तुना शब्दो व्युत्पद्यते, अन्यथा रजतदाने शुक्तिकामपि दद्यात्. अतो जलस्थिते: प्रदर्शनमात्रपरत्वात् तेन न नारायणयोगार्थ: सिध्यति. तदाह **तच्चापि सत्यं ने**ति– जलाधिकरणत्वं **न सत्यं** किन्तु **तव मायैव** ॥१४॥

तस्य मायिकत्वार्थे तर्कमाह **तत् चेद् जलस्थमिति**.

तत् चेद् जलस्थं तव सत् जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।

किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

तद् वपुश्चेत् सद् जलोपरि च वर्तते तदा **मे** मया **किं तदैव न दृष्टं** ? यो हि स्थूलपदार्थ: परिच्छिन्नो योग्ये(ग्यो!) वर्तते स दृश्यते, यथा घट:. अतस्तदा मया न दृष्टमिति न तद् जले तिष्ठति. नन्वयोग्यत्वान्न दृश्यते, न त्वविद्यमानत्वादित्याशङ्क्याह **किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैवे**ति? न हि हृदये जलमस्ति, अतो जलस्थितिर्न **नारायण**शब्दप्रवृत्तिप्रयोजिका. किञ्च **सपद्येव पुनः किं नो व्यदर्शि?** अस्मभ्यं कथं

प्रकाशः

सर्वभूतस्थमि'त्यनेन विवृतं, भुवोऽयनत्वं 'द्वितीयं त्वण्डसंस्थितमि'त्यनेन, जलानामयनत्वं 'प्रथमं महत: स्रष्ट्रि'त्यनेनेति ज्ञेयम्. नन्वेवं **नारायण**शब्दव्युत्पादनेन जलस्थनारायणस्याङ्गत्वकथनेन च सर्वस्य सत्यत्वे सिद्धे **तच्चापि सत्यं नेति** तुरीयपादेन कस्य मायात्वमुच्यत इत्याकाङ्क्षायां तद् व्यवसितुमवतारयन्ति **किञ्च नारायणशब्द** इत्यादि ॥१४॥

तच्चेदित्यत्र **वपुरिति जगद्वपुरि**त्यस्य विवरणं; जगदाश्रयं वपुरित्यर्थ:. **किं मे न दृष्टमि**ति कुतो मया न दृष्टमित्यर्थ:. अन्वयस्तु– **तत् चेत् तव जगद्वपुः** जगदाश्रयं शरीरं **सत्** सत्यं **जलस्थं** जलोपरि वर्तमानं, तदा हे **भगवन्, तदैव किं**

न दर्शितवान्? यद्यहं तस्य नारायणस्यैव पुत्रः. लोके हि पितापुत्रावन्योन्यं प्रत्यक्षसिद्धौ भवतः, न हि तयोरन्यतरोऽयोग्यो भवितुमर्हति. वस्तुतो भवानेव नारायणो न तु सः. नारं सर्वमेवायते प्रविशति यमिति नारायणः सर्वजगदाधारः. स भवानेव, न तु सः॥१५॥

तस्योदर एवाहं स्थितो जगत् कृतवान्. यदि जगत् तत्र सहजं तिष्ठेत्, मम कृतिर्व्यर्था स्यादत्र तु तिष्ठतीत्याहात्रैवेति.

अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्याः मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

हे **मायाधमन** मायानिवारक; अनेन मायासम्बन्धो भगवति निराकृतः. **अस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य कृत्स्नस्याप्यन्तर्जठरे ते जनन्याः मायात्वमेव प्रकटीकृतं,** "अथो अमुष्ये" तिवाक्यात्. अतः सत्यप्रपञ्चाधारत्वाद् भवानेव नारायणः ॥१६॥

ननु विश्वाधारो नारायण एव पुरुषस्तस्मिन् विश्वप्रतीतेरतोहं प्रपञ्चमध्ये स्थितः सूक्ष्मो नारायणो न भवामीति चेत्, तत्राह **यस्ये**ति.

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत् त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥

यस्य नारायणस्य **कुक्षाविदं सर्वं सात्ममा**त्मसहितं **भाति तथा त्वय्यपीह भाति.** अतो विशेषाभावाद् भवानपि नारायणः. यस्तु भेदः परिच्छेदोऽन्यथाप्रतीतिरेतत् **सर्वं किं मायया विना?** अपि तु तव व्यामोहिकया शक्त्या माययैवं भासते— भवान् परिच्छिन्न आधेयो नारायणाद् भिन्न इति. अतः पुरुषस्य नारायणपक्षेपि भवान् नारायणः ॥१७॥

अद्यैव त्वदृतेस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-

प्रकाशः

मे न दृष्टं तस्मिन्नेव काले जलमध्ये कुतो मया न दृष्टं? तथा च यतो न दृष्टं ततो जलस्थत्वं न सत्यमित्यर्थः. **न दर्शितवानिति**— तथा च तदानीं हृदि दर्शनादिदानीं च जले दर्शितत्वाद् जलस्थत्वं न सत्यमित्यर्थः. अत्रापि **किं नो व्यदर्शी**ति काकुः. अयोग्यत्वं निराकुर्वन्ति **लोके ही**त्यादि. जलस्थस्य जगदाश्रयत्वमपि निराकुर्वन्ति **किञ्चे**त्यादि ॥१५॥

यस्य कुक्षावित्यत्र **किमिदं मायया विने**ति काकुः. **किमिदं मायया विनेतीदं**शब्दस्यार्थमाहु**र्यस्तु भेद** इत्यादि ॥१७॥

मेकोसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोपि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येवजगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अद्यैव ते त्वया **त्वदृतेऽस्य** प्रपञ्चस्य भिन्नतया सत्त्वं नास्तीति ज्ञापयितुं **मायात्वमादर्शितम्.** ये हि भिन्नतया जगद् भगवद्व्यतिरिक्तमस्तीत्याहुस्ते**ऽद्यैव** भ्रान्ताः कृता, यतः सर्वं त्वमेवेति. तदुपपादय**त्येकोसि प्रथमं,** यदा मया वत्सा अपहृता बालाश्च. **ततो व्रजस्य** सम्बन्धिः **सुहृदो** बाला **वत्सा**श्च. **ततः समस्ता अपि** सर्वब्रह्माण्डरूप**स्ततः** क्षणानन्तरं **तावन्तोपि** भगवत्स्वरूपा**श्चतुर्भुजा** दृष्टास्तत्रा**प्यखिलै**र्ब्रह्माण्डैस्तत्रत्यैर्वा **मया चोपासितास्तावन्त्येव जगन्ति** त्वमेवा**भूः.** अतः कारणाद् **ब्रह्माद्वयमेव शिष्यते,** न त्वन्यः पदार्थो विचार्यमाणः सिध्यति. तस्माद् भवानेव नारायण इति समर्थितम् ॥१८॥

अतः परं भवान् स्वाम्यहं सेवक इति सकृदपराधः सेवकस्य भर्त्रा सोढव्य इति वक्तुं सर्ववस्तूनां तत्त्वमा**हाजानतामि**त्यादि दशभिः.

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भाति वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

त्वत्पदवीमजानतामेतदग्रे वक्ष्यमाणं सर्वं तत्त्वं, न तु त्वत्पदवीं जानते. एवमपि तेन तत्त्वेन न तेषां निस्तारो भ्रमतत्त्वभावात्, किन्तु तेषामपि तव पादाम्बुजानुग्रहलेशादेव मुख्यतत्त्वप्राप्तिर्न तु भावित्वेन; भ्रान्ते निरीश्वर-साङ्ख्यादिपरिकल्पिते न काचित् सिद्धिरिति. तत्र तेषां प्रथमं भ्रममा**हानात्मनी**ति.

प्रकाशः

अद्यैवेत्यत्र मायावादभ्रमो भवतीति तन्निराकरणार्थं तात्पर्यमाहु**र्ये ही**त्यादि. तत्र हेतुं स्फुटीकुर्वन्ति **यत** इत्यादि. तथा च यद्यत्र मायावादोऽभिप्रेतः स्यात् तदा **त्वदृत** इतिपदं न वदेत्, **एकोसी**त्यादिना भगवद्रूपतां च न व्युत्पादयेदखिलस्य ब्रह्मात्मत्वं च न निगमयेत्. **अमितमि**तिपाठेऽपरिमितं सर्वमित्यर्थो ज्ञेयः. तथा चैवं व्युत्पादनादिभिर्न जगतो मायात्वं किं तु भगवद्रूपत्वमेवेत्युक्तं भवति. तेन भवानेव नारायण इत्येव समर्थितम्. एवं तस्य जगदाश्रयत्वं निराकृत्य भगवतस्तथात्वं समर्थयतीत्याशयेनाग्रिममवतारय**न्त्यत्र त्वि**त्यादि ॥१८॥

अजानतामित्यत्र दशश्लोकानां सामान्यतस्तात्पर्यमाहु**स्त्वत्पदवीमि**त्यारभ्य **न काचित् सिद्धिरि**त्यन्तम्. प्रथमश्लोकं विवृण्वन्ति **तत्र तेषामि**त्यादि. **ज्ञायत इत्येष**

अनात्मनि देहादा**वात्मात्मना** देह आत्मेन्द्रियेणात्मना कृत्वा **भाति.** नन्वनात्मनि कथं कर्तृत्वं करणत्वं चेत्याशङ्क्याह **वितत्य मायामिति– मायां वितत्य** विस्तारयित्वानात्मन्येवात्मबुद्धिं सम्पादयति. तत्र दृष्टान्तो **यथा सृष्टावहं** ब्रह्मा. ब्रह्मा हि देहो, न हि स कर्ता भवति; जगत्कर्तृत्वं भगवत एवेति. **जगतो विधाने** स्थापने **त्वमिव**– यथा गुणावतारो विष्णुः, पालकत्वं च भगवत एवेति. विष्णुरपि चतुर्भुजादिरूप इति **त्वमिवे**त्युक्तम्. **एष त्रिनेत्रः,** अत एवेदानीं महादेवोप्यागत इति ज्ञायते. नाप्यमन्तकर्ता. "जन्माद्यस्ये"तिन्याय उत्पत्तिस्थितिलया भगवतः सकाशादेवेत्युक्तम्. अतो यथोत्पत्तिस्थितिप्रलयकर्तारो वयं कल्पिता एवं देहोप्यात्मा, इन्द्रियाणि च करणान्यात्मा, अहमन्यथा पश्यामीति सामानाधिकरण्यप्रतीतिर्नोपपद्येत ॥१९॥

नन्वेवं भ्रमे सति कथं निस्तार इति चेत्, तत्राह **सुरेष्विति.**

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

भ्रान्तानां स्वरूपस्वतत्त्वपरिज्ञापनाय **सुरेषु** देवेषु वामनरूपेण, **ऋषिषु** परशुरामरूपेण, **तथा नृषु** रामरूपेण, **तिर्यक्षु** वराहरूपेण, **यादःसु** मत्स्यकूर्मरूपे**णाजनोपि** जन्म कृतवान्; अन्यथा तत्त्वं को वा जानीयात् को वोपदिशेत्? अतस्तव **जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय सदनुग्रहाय च.** दुष्टनिग्रहे तदुपद्रवस्तदावेशेन बुद्धिनाशश्च निराकृतो भवति ॥२०॥

ननु तद्व्यतिरेकेणापि वेदादिना कथं न तत्त्वपरिज्ञानं ? तत्राह **को वेत्ती**ति.

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
काहो कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

तत्त्वं भवान् भवल्लीला च; तत् **को** वा जानाति? वेदस्तु व्याख्यात्रभावाद् मूकवद् नार्थं समर्पयति. **भूमन्नि**ति व्यापकत्वादेकदेशे स्थितो न जानातीत्युक्तम्. **भगवन्नि**ति षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नत्वादनीशत्वादिगुणयुक्तः कथं जानीयात्? न हि पामरा विदुषस्तत्त्वं जानन्त्यनीशो वेश्वरस्याविरक्तो वा विरक्तस्य. **परात्मन्नि**ति

प्रकाशः

इतिपदाद् ज्ञायते. अनेन श्लोकेन देहादिष्वात्माध्यासो भवन्माययैवेत्युक्तं, तथा सति देहाद्यध्यासेन कृतं भजनादिकमपि न फलायेत्याशङ्क्य तत्समाधिं **सुरेष्वृषिष्वीश** इतिश्लोकेन वक्तुमाहेत्याहु**र्नन्वेवं भ्रमे सती**त्यादि. तथा च त्वत्कृतोपदेशादेव निस्तारो, न त्वाभिमानिक्या स्वकृत्येत्यस्मिन् श्लोक उक्तं भवति ॥१९॥

परमात्मनस्तत्त्वं न हि जीवो जानाति. **योगेश्वरे**ति, न हि स्वच्छन्दगतेर्बद्धो जानाति. किञ्च सापि लीला **क्व वा** जायते? **अहो** आश्चर्ये, न हि मत्स्यादिरूपे ज्ञानप्रकाश उचितः. **कथं वा** जायते? न हि भगवतो लीलासमुद्रे प्रस्तरणादिरूपा कस्यचिद् बुद्धिगम्या भवति. **कति वा** लीलाप्रकारा भवन्ति **कदा वा** भवन्तीति न कोपि वेद. तत्र हेतु**र्विस्तारयन् क्रीडसि योगमायामि**ति– यदि मायामविस्तारयन् क्रीडेत् तदा लोको जानीयादपि. अतस्त्वत्स्वरूपं त्वमेव जानासीति तत्त्वोपदेशार्थं तवावतारः ॥२१॥

एवं देहाद्यात्मभावं भवान् दूरीकरोतीत्युक्त्वा प्रपञ्चेपि योऽयं भ्रमः, प्रपञ्चमिथ्यात्वं भिन्नतयापि सत्यत्वं, सोपि निवर्तत इत्यतिदिशति **तस्मादि**ति.

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधलनावनन्ते मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥

इदं जगदशेषमसत्स्वरूपमसतां बहिर्मुखानामिव स्वरूपं यस्य सन्मार्गप्रतिबन्धकम्. अत्र ममतायां भगवद्वैमुख्यं भवतीति स्वरूपतोप्यनित्यमुदयास्तमितप्रायं, तदाह **स्वप्नाभमि**ति– स्वप्नस्येवाभा यस्य. किञ्च ज्ञानप्रतिबन्धकं चैतत्, यतो**ऽस्ता** गता **धिषणा** यस्मात्. किञ्च क्लेशरूपं च– **पुरुदुःखादपि दुःखं** यस्मात्. एतादृशमपि **त्वय्येव सदिवावभाति** त्वन्निमित्तं यथा सत् नारदादिस्तथा घटादिरपि भाति, भगवत्सेवासाधकत्वात्. तत्र हेतु**र्नित्यसुखबोधतनावनन्त** इति. उदयास्तमितत्वं नित्यस्य भगवतः सम्बन्धाद् **नित्यमिवा**भाति. पुरुदुःखदुःखमपि **सुखात्म**कमाभाति. अस्तधिषणमपि **बोधात्म**कमाभाति. अनित्यम**प्यनन्त** आभातं नित्यमिव भासते. भ्रमाद**प्युद्गतं** देहात्मज्ञानं सेवौपयिकत्वात् **सदिवावभाति.** अतः सर्वमेव जगत् त्वत्सम्बन्धे सति समीचीनं, अन्यथा विपरीतमिति जगतस्तत्त्वम् ॥२२॥

भगवतस्तत्त्वमा**हैकस्त्वमात्मे**ति.

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयञ्ज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योक्षरोजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोद्वयो मुक्त उपाधितो ऋतः ॥२३॥

प्रकाशः

को वेत्तीत्यत्रात इत्यादि. तथा च त्वत्कृतोपदेशं विना वेदेनापि न निस्तार इत्युक्तं भवति ॥२१॥

तस्मादित्यत्रातिदिशतीति– तस्मादितिपदेन मायावितानं हेतूकृत्यातिदिशतीत्यर्थः ॥२२॥

त्वमादावेक एव सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यः. तत **आत्मा** त्रिविधो जीवरूपोन्तर्यामिरूपो विभूतिरूपश्च जातः. ततः **पुराणः पुरुषः** पुरुषोत्तमः. अथ**वैको** ब्रह्मवादे, **आत्मा** योगे, **पुरुषः** साङ्ख्ये, **पुराणो** वैष्णवे, **सत्यः** पाशुपते, **सत् त्यदि**तिभेदे **सत्यो** जगद्रूपो वा. एवं पञ्चविधोपि **स्वयञ्ज्योतिः** स्वप्रकाशो, न तु जडः, **अनन्तो**ऽन्तशून्य उत्तरावधिरहितः **आद्यः** पूर्वावधिरहितः **नित्यः** सदैकरूपः, न तु वृद्धिक्षयवान् यथा समुद्रश्चन्द्रो वा. एवं प्रपञ्चरूपत्वे दोषचतुष्टयं निवार्य भगवतो रूपान्तराण्या**हाक्षर** इति. शब्दब्रह्माक्षररूपः प्रकृतिपुरुषकारणरूपो वा. तेन ज्ञानविषय उक्तः, तत्साध्यमोक्षरूपत्वमा**हाजस्रसुख** इति– नित्यसुखरूपः. तस्मिन्नपि सुखे प्राप्तदोषान् निवारयति. निरन्तरसुखरूपमप्यज्ञानयुक्तं भवति, यथा सुषुप्तिः, तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **निरञ्जन** इति– अञ्जनमविद्या तद्रहितः. परिच्छेदोपि भवति; तद्व्यावृत्त्यर्थमाह **पूर्ण** इति. तरतमराहित्यार्थमा**हाद्वय** इति. केनचिदुपाधिनैव भोक्तव्यमिति शङ्कां वारयति **मुक्त उपाधित** इति– यथा स्त्रीसुखं पुरुषेणैव भोक्तव्यं, पुरुषसुखं स्त्रियैव, तथा ब्रह्मानन्दानुभवे न कोप्युपाधिरपेक्षितः. किञ्च स्वरूपतोपि स **ऋतो**ऽलौकिकः श्रुत्यैकसमधिगम्यो, न तु लौकिकप्रमाणवेद्यः; अन्यथा पूर्वोक्तरूपो न स्यात्. एभिरेव षोडशविशेषणैर्देहाद् वैलक्षण्यमपि ज्ञातव्यं– "षोडशकलोयं पुरुषः," देहस्तु बाल्यकौमारादिभेदेनानेको, नापि व्यापको नाप्यात्मेत्यादि स्वयमूह्यम्. एकादशेन्द्रियपञ्चमहाभूतेभ्यो वा वैलक्षण्यं ज्ञातव्यम्. षोडशकलो वा नारायण एभिरुक्तः ॥२३॥

प्रकाशः

एकस्त्वमात्मेत्यत्र प्रथमपक्ष **एक आत्मा पुराणः पुरुष** इति चतुर्भिः पदैस्त्रिरूप एव सिद्ध इति तस्मिन्नपि पक्षे रूपद्वयं वक्तुमाहुः **सत्य** इत्यादि. तथा च जगद्रूपस्य द्वैविध्यात् तस्मिन्नपि पक्षे पञ्चरूप इत्यर्थः. पक्षद्वयं निगमयन्त आहु**रेवमि**त्यादि. एवं प्रपञ्चरूपे दोषचतुष्टयनिवृत्तिर्बोध्या. तदेतदाहु**रेवमि**त्यादि. **देहस्त्वि**त्यादिनैकशब्दोक्ताद् वैलक्षण्यं बोधितम्, एवमग्रेपि ज्ञातव्यम्. इन्द्रियेभ्यो भूतेभ्यश्च वैलक्षण्यमाहु**रेकादशे**त्यादि. एतस्यैव नारायणत्वमाहुः **षोडशकल** इत्यादि. तस्य ध्यानान्तःस्थस्य "यन्नःस्तोममुच्यते तस्मिन् पुरुषाश्चतुर्दशाजायन्तैका कन्या दशेन्द्रियाणि मन एकादशं तेजो द्वादशमहङ्कारस्त्रयोदशः प्राणाश्चतुर्दश आत्मा पञ्चदशी बुद्धिरि"ति. अत्र 'स्तोममि'ति नासिकायाः प्राणानां यः स्तोमः समूह 'उच्यत' इति वेदेषूच्यते. पुरुषान् कन्यां च विवृणोति 'दशेन्द्रियाणी'त्यादि. 'तेज'

एवं भगवत्स्वरूपमुक्त्वैवंविधं ये वक्ष्यमाणप्रकारेणोपासते ते भ्रान्ता इत्या**हैवंविधमि**ति पञ्चभिः.

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥

एवं षोडशकलं **त्वां सकलात्मनामपि** सर्वजीवाना**मात्मानं** देहरूपमात्मरूपं **चात्मन** एव स्वस्यै**वात्मतया**हमेव भगवानिति **ये विचक्षते** पश्यन्ति. तत्र विषयप्रबोधको **गुरुरर्को** ज्ञानकरण**मुपनिषदेव चक्षुः.** य एवमहमेव परं ब्रह्मेति जानन्ति **ते भवानृताम्बुधिं तरन्तीव.** सर्वं ब्रह्मेति ज्ञाने सर्वतरणं, केवलमात्मन एव ब्रह्मत्वेन ज्ञाने यः संसारोऽनृतरूपः केवलं स्वमोहात् कल्पितोऽहम्ममात्मा स ए**वाम्बुधि**स्तरणे शक्यः. तादृशमपि **तरन्तीव,** दोषाधारस्यानिवृत्तत्वात्– अन्तर्दोष एव निवृत्तो, न तु देहेन्द्रियविषयाणाम्. अतोऽनृताम्बुधिस्तीर्णोप्यतीर्णप्राय इत्यर्थः ॥२४॥

ननु सर्वस्यैव तेन ज्ञानेन कथं न विलयः? तत्रा**हात्मानमेवे**ति.

प्रकाशः

इति महत्तत्वम्. अत्रात्मा यदुक्तः स पञ्चदशेभ्यो जडेभ्यो वैलक्षण्यात् षोडशो ज्ञातव्यः. एवं षोडशकलो नारायणो ज्ञातव्यः.

एवमत्र पञ्चसु श्लोकेषु प्रथमेन देहाध्यासादि माययेत्युक्तम्. ततो द्वितीयेन त्वदवतारादेव निस्तारः, तृतीयेन त्वदवतारं विना वेदादपि न निस्तारः, चतुर्थेन त्वत्सम्बन्धे सति देहाध्यासकृतेन भगवद्भजनेनापि निस्तारः, पञ्चमेन भगवत्स्वरूपं चोक्तम्. अतः परं पञ्चभिः खण्डब्रह्मवादेन य उपासते ते भ्रान्ता इत्याशयेन षष्ठं श्लोकमवतारय**न्त्येवमि**त्यादि. एवं चतुर्भिः श्लोकैः खण्डब्रह्मवादं दूषयित्वान्तर्याम्युपासकाः खण्डब्रह्मोपासकेभ्य उत्तमा इति वदतीत्याशये**नान्तर्भव** इतिश्लोकमवतारय**न्त्येवं खण्डे**त्यादि. एवं पञ्चभिः खण्डब्रह्मोपासकानामज्ञत्वमन्तर्याम्युपासकानां च[1] तेभ्य उत्तमत्वं साधितम्[1] ॥२३॥

एवंविधमित्यत्रै**वंविधमि**तिपदेन षोडशकलस्य सर्वजीवानामात्मत्वं परामृश्यते. तादृशं त्वा**मात्मतयात्मा** प्रत्यक्रूपस्तदात्मतया तेन रूपेण **स्वात्मानमेवंविधं त्वां विचक्षत** इत्यन्वयः. तदेतदाहु**रात्मन एवे**त्यादिना ॥२४॥

१-१. लुप्तम्.

आत्मानमेवात्मतया विजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥

ते **ह्यात्मानमेवात्मतया** जानन्ति, अत**स्तेनैव** भ्रमाद् यावद् **जातं निखिलम**पि **प्रपञ्चितं** प्रपञ्चाकारेणात्मीयतया परिकल्पितं, **ज्ञानेन भूयोपि तदेव** तावन्मात्रमेव **लीयते,** न तु कृतिसाध्यम्. तत्र दृष्टान्तो **रज्ज्वामहेः** कल्पितस्यैव सर्वस्य **भोगस्य** कायस्य **भवाभवावु**त्पत्तिनाशौ, "सर्पोयं" "नायं सर्प" इति स्वबुद्धिकल्पितस्यैव नाशो, नान्यस्य जगतो भगवत्कृतस्य नापि स्वकृतस्य. भ्रमात् सर्पदेहे रज्जुर्न पुनरावर्तते, "नायं सर्प" इति ज्ञातेपि. अतोऽज्ञानकृतमेव निवर्तते, नान्यदित्यहम्ममाभिमान एव गच्छति, नान्यत् ॥२५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥

किञ्च वस्तुतोऽस्य तदपि न निवर्तते. "मुक्तोऽहमिति- ब्रह्माहमि"त्येतद**ज्ञान**कृतमेव. आत्माज्ञानादेवैवमपि जानाति. **बन्धस्य** तज्जनितत्वेन कार्यत्वाविशेषाद् ज्ञान**मोक्षाव**प्यज्ञानकार्यमेव. न हि शयानः स्वप्न उत्थाय भोजनादिकमपि कुर्वन् वस्तुत उत्थितो भवति, स्वप्नस्यानिवृत्तेः. तथा भगवच्छक्तेरज्ञानस्याप्यनिवृत्तेर्न तेषां परमार्थतो मोक्षोपि सम्भवति. तत्र हेतुमाह **ऋतज्ञभावादि**ति– मोक्षस्त्वृतज्ञानरूपः, न त्वज्ञानजनितज्ञानरूपः. भगवज्ज्ञानशक्त्यैव मोक्ष इत्येकादशे वक्ष्यति. किञ्च मोक्षो हि भगवति सायुज्यं, स **चाजस्रचिदात्मा** नित्यचिदानन्दरूपः. तत्राज्ञानकृतप्रपञ्चज्ञानयोरभावाद् जीवस्याज्ञानकृतज्ञानेन कथं प्रवेशः स्यात्? तदाह **केवल** इति. किञ्च स तु **परो** नियामकः, न हि नियम्यैर्भगवदाज्ञाव्यतिरेकेण निकटे गन्तुं शक्यते. अतो जीवब्रह्मज्ञानिनो न मोक्षः. तत्रोपपत्तिं वदन् दृष्टान्तमाह **विचार्यमाणे तरणाविवाहनी** इति– **सूर्ये विचार्यमाण** एव **अहनी** भवतो न तु स्वबुद्ध्या, अन्यथा निमीलिताक्षः स्वयमेव रात्रिं कुर्यात् प्रसारिताक्षश्च दिनम्. अतः सूर्य एवागते दिनमपगते रात्रिरिति केवलं खण्डाद्वैतवादिनो भ्रान्ता एव ॥२६॥

प्रकाशः

अज्ञानसंज्ञावित्यत्रर्तज्ञभावादिति– जानातीति ज्ञस्तस्य भावो ज्ञभाव, **ऋतात्** सूनृतवाणीरूपाद् वेदाद् यो **ज्ञ**भावो ज्ञानित्वं तस्मादित्यर्थः. तदेतद् विवृण्वन्ति **मोक्षस्त्वि**त्यादि. अत्र मानमाहु**र्भगवदि**त्यादि. **अजस्रचित्यात्मनी**ति **चिति**शब्दश्चिद्वाचको ज्ञेयः ॥२६॥

किञ्च ये स्वात्मब्रह्मविचारकाः, सर्वसङ्गं परित्यज्य देशान्तरे गत आत्मा प्राप्तव्य इति परित्यागं कुर्वन्ति, तेऽतिभ्रान्ता इत्याह **त्वामात्मानमि**ति.

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥२७॥

त्वं कृष्णः सर्वात्मा सर्वरूपस्तादृशं **त्वां** भिन्नं **मत्वा** नाहं सर्वः किन्तु विलक्षण इति, **परं** च भगवद्रूपमेव ज्ञानप्रकाश्य **आत्मा** भगवद्विभूतिरूपो भावनया स्फुरितो व्यापकत्वादिधर्मः साङ्ख्यादिस्मृतिसिद्धस्त**मात्मानं मत्वा.** स तु न जीवरूपः कदाचिदपि; न हि घटः पर्वतो भवति. अतः पर**मात्मा पुनर्बहि**र्गत्वा सन्यासं गृहीत्वा **मृग्य इत्यहो अज्ञानां** भ्रान्तजनानां भ्रमपरम्परा ! कथमेते प्रमाणमप्यविचार्य भ्रान्ता भवन्तीत्याश्चर्यम् ॥२७॥

एवं खण्डभावयुक्तानां "यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवती"ति श्रुत्युक्तं तेषां भयं निरूप्य ये पुनरिहैवान्तःकरणे भगवच्चिन्तका अन्तर्यामिणमितरपरित्यागेन भावयन्ति ते कृतार्थाः एकत्र लब्धपदं चित्तमन्यदपि प्राप्स्यतीत्या**हान्तर्भव** इति.

अन्तर्भवेनन्त भवन्तमेव ह्यतत् त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमयन्ति सन्तः ॥२८॥

अन्तर्भवती**त्यन्तर्भवो** हृदयाकाशस्तस्मिन्. हे **अनन्त** देशकालवस्तु-परिच्छेदरहित, तत्रापि विद्यमानं **भवन्तमेव** ये **मृगयन्ति** ते **सन्तो** भवन्ति. अन्वेषणे प्रकारमा**हातत् त्यजन्त** इति. न तद् यत्र येषु साधनेषु भगवच्चिन्तनं सम्यङ् न भवति **तदतत् त्यजन्तो** विरुद्धसाधनपरित्यागेन निरन्तरं भगवच्चिन्तकाः **सन्त** इत्युक्तं भवति. किञ्च भ्रमबुद्धिमपि त्यक्त्वा भगवच्चिन्तनं कर्तव्यमिति दृष्टान्तेना-**हासन्तमपी**ति. अविद्यमानम**प्यहिं** सर्प**मन्तरेण** तद्व्यतिरेके**णान्ति** निकटे **सन्तं गुणं** रज्जुं **किमयन्ति** जानन्ति? **अन्तर**शब्दो नानार्थः, सोत्रापरित्यागवाची. भ्रमप्रतिपन्नं विषयमपरित्यज्य वस्तुस्वरूपचिन्तनं न सम्भवति. अतो मूलभ्रमप्रतिपन्नं देहात्मभावं व्यामोहकशास्त्रप्रतिपन्नं च भावं परित्यज्य हृदये विद्यमानो भगवान् भावनीयः. पुनः **सन्त** इति पदं ते तथैव भावयन्तीति प्रमाणकथनार्थम् ॥२८॥

यद्यप्येवम्भावनान्तःकरण उचिता तथापि भजनमार्गव्यतिरेकेण तच्छास्त्र-

---

प्रकाशः

त्वामात्मानमित्यत्र भिन्नं मत्वेत्यत्र हेतुर्नेत्यादि ॥२७॥

व्यतिरेकेण च भगवन्माहात्म्यं न परिज्ञातं भवतीति केवलचिन्तनं तथा नोपयोगाय भगवदाविर्भावं सम्पादयति नापि प्रपञ्चनिवृत्तिमित्याह**ाथापी**ति.

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

हे **देव, ते पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशेनैवानुगृहीतो भगवन्महिम्नस्तत्त्वं जानाति.** बहूनां मध्य **एकोपि चिरमपि विचिन्वन्, अन्यो न जानाति** ॥२९॥

तस्मादावश्यकत्वाद् लाघवाच्च भगवन्मार्गेणैव भगवान् सेव्यो नान्य इतिशास्त्रार्थाद् मम भगवद्भक्तेषु जन्मास्त्विति प्रार्थयते **तदस्तु मे नाथे**ति.

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवोत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

हे **नाथ**, भक्तिमार्गानुसारेण सम्बोधनं, **स भूरिभागो भवो मेऽस्तु, अत्र** गोकुलेऽ**न्यत्र वा**. किं बहुना? **तिरश्चाम**पि मध्ये. **येन** भवेन जन्म**नाहमपि भवज्जनानां** मध्य **एको भूत्वा तव पादपल्लवं निषेवे,** अन्यथा विजातीयैः सह भक्ता भजनं न कुर्वन्ति ॥३०॥

एवं स्वप्रार्थनामुक्त्वा गोकुलवासिनां भाग्यमभिनन्दत्य**हो** इति.

अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

व्रजे स्थिता **गावो रमण्यश्च धन्याः**, यतस्ते त्वया **स्तन्यामृतं पीतमत्यर्थं** सन्तोषपूर्वकं च. तत्र प्रकारमाह– **यासां** गोरमणीनां **वत्सतरात्मनात्मजात्मना च. विभो** सर्वभवनसमर्थ. कथमेतावता भाग्यमित्याशङ्क्याह **यत्तृप्तय** इति– यस्य भगवत**स्तृप्तयेऽद्यापि अध्वरा** यागा **नालं** न समर्थाः ॥३१॥

किञ्च न केवलमेतावन्मात्रमेव किन्त्वन्यदपि करोतीत्याह**ाहोभाग्यमि**ति.

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

प्रकाशः

अन्तरित्यत्रा[१]न्तर्भावुकानां किञ्चिदुत्तमत्वं चोक्त्वा तेषामपि भगवच्चरणानुग्रहोपेक्षित इति वदतीत्याशये**नाथापि ते देवे**तिश्लोकमवतारयन्ति **यद्यपी**त्यादि ॥२९॥

---

१. लुप्तम्.

पूर्वकाण्डस्याप्रयोजकता स्वतः स्तनपानेनैव कृता, उत्तरकाण्डस्याप्यप्रयोजकतां कृतवानित्युच्यते **यद् ब्रह्म मित्रमि**ति. ब्रह्म हि सर्वसमं; मित्रं हि विषमं, हिताचरणादहितादिदूरीकरणाच्च. भगवांस्तु **ब्रह्मा**पि संस्तेषां **मित्रं** जातस्तत्प्रतिपक्षान् हन्ति तांश्च सर्वतः परिपालयतीति. **अहोभाग्यमहोभाग्यमि**ति वीप्सया पुनः पुनर्भाग्यस्मरणं ज्ञापयति, **नन्दगोपस्य व्रजे** ये तिष्ठन्ति तेषां सर्वेषामेव. अथवादौ **नन्दस्य** भाग्याभिनन्दनं, ततो **गोपानां,** ततो **व्रजौकसामि**ति; क्रमोपपत्तिः स्पष्टैव. किञ्च नोपकारेणैव तेषां कृतार्थता किन्तु स्वयमानन्दरूपः फलात्मा स्वरूपानुभवं कारयति, तदाह **परमानन्दं पूर्णं सनातनमि**ति अनित्य(त्व!)परिच्छेदरहितो ह्यानन्दः फलमिति ॥३२॥

एवमाधिभौतिकस्य जन्मप्रार्थनेन तेषां भाग्याभिनन्दनेन च भगवान् स्तुतः. इदानीमाध्यात्मिकरूपस्य स्वस्यैवाभिनन्दनेन स्तौ**त्येषामि**ति.

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥

तुशब्दः पूर्वापेक्षयाप्याधिक्यकथनार्थः. **एषां भाग्यस्य महिमा तावदास्तां** ततः पूर्वमेतदेव निरूपयिष्यामः. एतन्निरूपणे तु ततस्त्रयोदशगुणमेषां भाग्यमर्था- देवोक्तं भविष्यति. **वयमे**तेषां गोकुलवासिनामिन्द्रियाधिष्ठातृदेवा **एकादश** "दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रका"श्चन्द्रश्चेति. केचिदन्तःकरणचतुष्टयस्य भिन्नं भिन्नमाहुस्तदा चतुर्दश त्रयोदश वा भवन्ति. सर्वानात्मतया गृहीत्वा वदति **वयमि**ति. **बते**ति हर्षे– **भूरि भाग्यमे**षां, यद्येते गोकुलवासिनो नोत्पन्ना भवेयुस्तदास्माकमधिष्ठातृता विफलैव स्यात्. भाग्ये निदानमा**हैतद्धृषीकचषकैरि-** न्द्रियपानपात्रै**रसकृद्** वारंवार**मङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं शर्वादयो** महादेवसहिता **वयं पिबामः. अङ्घ्रिरेवोदजं** कमलं, तत्र **मध्वेव** मकरन्द **एवामृतासवं** मिष्टं देहा- दिविस्मारकं च. रोमाञ्चः स्वेदश्च दशमकार्यं, अन्येषामुपयोगः स्पष्ट एव. पुंसामपि बालककन्योत्पादनादिद्वारा. मित्रकौ परित्यज्य शर्वादय एकादशैव वा ॥३३॥

एवं गोकुलवासिनां भाग्यमभिनन्द्य वृन्दावनबृहद्वनादिष्वपि ये वृक्षादयोपि जाता, लतागुल्मादयश्च कीटादयो वा, तेषामपि भाग्यमभिनन्दति **तद् भूरिभाग्यमि**ति.

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवानानन्तस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥३४॥

तदेव जन्म भूरिभाग्यमधिकभाग्ययुक्तम् **इह** वृन्दावने **गोकुले** वा. **किमप्य**प्रयोजकमपि **जन्म.** तत्र हेतुः **कतमस्य** परब्रह्मणोऽ**ङ्घ्रिरजसामभिषेको** यत्र, **कतमस्य** गोकुलवासिनो वा यस्यकस्यचित्. येषामुत्पन्नानां गोकुलवासिनां वा **निखिलमपि जीवितं** स्वार्थं परार्थमैहिकपारलौकिकार्थं च सर्वमेव **भगवाननन्तः. अनन्त**पदेन ब्रह्मवादप्रकारो व्यावर्तितः. किन्तु विशेषप्रकारेण रजसां माहात्म्यमा**हाद्यापि यस्य** भगवतः **पदरजः श्रुतिमृग्यमेव.** श्रुतयो हि भगवत्पदान्वेषणपरा ब्रह्म भगवत्पदं ज्ञात्वा "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" "तद् विष्णोः परमं पदमि"त्यादिभिर्ब्रह्म प्रशंसन्ति. रजःप्राप्तौ तु कृतार्थाः सत्यो न पुनर्बोधयेयुः, प्रयोजनाभावात् ॥३४॥

तेषां फलमेतदेव न भवति, सेवायाः क्रियमाणत्वात्. अतस्तत्फलं कथं नाभिनन्द्यत इत्याशङ्क्य तत् फलं न ज्ञायत एवेत्या**हैषामि**ति.

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
ये धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥३५॥

एतेभ्यो घोषनिवासिभ्य एतत्सेवासाध्यमेतत्सम्बन्धि, हे **देव,** त्वं **किं राता** किंदास्य**सीति. नो**स्माकं**चित्तं त्व**त्तोन्यत् **फलं कुत्रापि** ब्रह्माण्डे सकलेऽ**प्ययद्** गच्छन् **विमुह्यति,** यतस्त्वमेव **विश्वस्यैव फलं** परमानन्दस्त्वत्तोन्यत् कथं फलं भविष्यति? तर्ह्यात्मानमेव दास्यामीति चेत्, तत्राह **सद्वेषादिवे**ति. **सतो** यशोदाया **वेषाद्** वेषं प्राप्य, **वेषाद्धेतोर्वा, पूतना सकुला** भ्रातृसहिता**पि त्वामेवापिता** प्रापिता, अर्थात् त्वयैव. **देवे**तिसम्बोधनं पूज्यार्थम्. **ये** पुनस्त्वदर्थमेव **धाम** गृह**मर्थो** धनं **सुहृदो** मित्राणि **प्रियाः** प्रीतिविषयाः पदार्था **आत्मा** देह**स्तनयाः** पुत्रा **प्राणा** इन्द्रियाणि **चाशयो**ऽन्तःकरणमेतत् सर्वं केवलं **त्वत्कृते** त्वदर्थम् ॥३५॥

प्रकाशः

एषां तु भाग्यमहिमेत्यत्र दशमकार्यमिति पाय्वधिष्ठातुर्मित्राख्यस्य निर्ऋतेः कार्यमित्यर्थः. ननु पुंसामुपस्थोपि सेवानुपयोगीत्याशङ्क्य द्वारेणोपयोगमाहुः **पुंसामि**त्यादि ॥३३॥

॥ इति प्रक्षिप्तेषु तृतीयाध्यायः समाप्तिमगमत् ॥
॥ समाप्तः प्रक्षिप्ताध्यायत्रयीयुतप्रमाणप्रकरणसुबोधिनीटिप्पण्योः प्रकाशः ॥

नन्वेतेषां संस्कारो जीवतामेव निव(र्व?)र्तनीयः, पूतना तु मारितेति संसारनिवृत्तिं दास्यामीति चेत्, तत्राह **तावदि**ति.

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

गृहादिषु **रागादयस्तावदेव स्तेना** विवेकधैर्यापहारका**स्तावदेव गृह**मपि **कारागृहं** बन्धनस्थानं, **तावदेव** पुत्रादिषु **मोहोऽङ्घ्रिनिगडः** पादशृङ्खला **यावत् कृष्ण न ते जना**स्त्वत्सेवका न भवन्ति. त्वत्सेवकानां त्वेतानि त्रीण्यपि सात्त्विकादीनि सेवौपयिकानीति शास्त्रतोप्यभिलषितान्येव ॥३६॥

नन्वेतत् सर्वं साक्षात्स्वरूपे युक्तं, न तु कृत्रिम इत्याशङ्क्याह **प्रपञ्चमि**ति.

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

निष्प्रपञ्चोपि त्वं **प्रपञ्चं विडम्बयसि** प्रापञ्चिकेपि चेष्टां करोषि. तत्र हेतुः **प्रपन्ना** या **जनता** तस्या **आनन्दसन्दोहमा**नन्दसमूहं **प्रथितुं** स्थूलं कर्तुम्. ननु विपरीतरूपेण कथं तदधिकं भविष्यतीत्याशङ्क्याह **प्रभो** इति– सर्वप्रकारेणापि सर्वसमर्थः ॥३७॥

ननु ज्ञानेनाप्यानन्दप्रथनसम्भवात् किमिति प्रपञ्चं विडम्बयतीत्याशङ्क्याह **जानन्त** इति.

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

ये **जानन्तो** भवन्ति त **एव जानन्तु.** वस्तुतो ज्ञानं स्वप्नप्रबोधरूपं, अतो भ्रान्ता एव ते. ननु तथा सति तन्मतं दूषणीयमिति चेत्, तत्राह **किं बहूक्त्ये**ति, **बहूक्त्या किं** प्रयोजनम्? अल्पेनैव तु दूष्यते. न हि मत्तः कश्चिद् महानस्ति; वेदगर्भोऽहम्. मम तु **मनसो वपुषो वाचोपि वैभवं न गोचरो**– न ज्ञातुं शक्यं, न देहकृत्या परिच्छेत्तुं शक्यं; स हि सर्वं करोति तथा भगवद्वैभवमपि कृत्वा प्रदर्शयिष्यतीति शङ्कयोक्तम्. वचसां विषयो न भवत्येव, तथा चेतसोपि ॥३८॥

एवं स्तुत्वा गमनं प्रार्थयति बालकानामानयनार्थ**मनुजानीही**ति.

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्ववित् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम् ॥३९॥

गन्तुमनुज्ञां प्रयच्छ. **कृष्णे**ति सम्बोधनं स्वस्य प्रेमख्यापनार्थं, प्रेषणेऽपराधा-

भावे वा. न किञ्चिद् मया वक्तव्यं यत**स्त्वमेव सर्वं वेत्सि,** यतः **सर्ववित्.** तत्र गतस्य स्वातन्त्र्यशङ्का न कर्तव्या, यत**स्त्वमेव जगतां नाथः,** अतोधिकारस्थित्यर्थं प्रेषय. **एतद् जगत् तवैव** त्वयैव **चार्पितं** मयि स्थापितं, अतः प्रेषणमुचितमेव ॥३९॥

गच्छन् नमस्यति **हे कृष्णेति.**

हे कृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

वृष्णयो यादवास्तेषां **कुलमेव पुष्करं,** तस्य **जोषो** विकासस्तस्य **दायिन्निति** सूर्यरूपतोक्ता. **क्ष्मा** पृथिवी **निर्जरा** देवा **द्विजा** ब्राह्मणाः **पशवश्च,** त ए**वोदधिस्तस्य वृद्धिकारिन्निति** चन्द्ररूपता. **उद्धर्मः** पाषण्डधर्मस्तदेव **शार्वरं,** तस्य निवारके-त्यग्निरूपता. **क्षितिराक्षसध्रुगिति**— **क्षिता**वुत्पन्ना ये **राक्षसा**स्तान् **द्रोग्धी**त्यवतार-प्रयोजनम्. **आकल्पं नमस्त** इति, **आर्कमर्हन्निति**— अर्कमभिव्याप्य सर्वपूज्येति स्वस्यापि नमस्कारे हेतुः ॥४०॥

एवं स्तुत्वा गत इत्याह**ेती**ति.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिःपरिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

भूमानं पूर्वमनन्तकोटिब्रह्माण्डरूपेण प्रदर्शितात्मानं **त्रिःपरिक्रम्य** पुनः **पादयोर्नत्वाभित इष्टं** भगवन्तं स्वाभिलषितं, स्वस्य धाम वा, **प्रत्यपद्यत** प्रस्थितः, गत इति यावत् ॥४१॥

ततो भगवत्कृत्यमाह **तत** इति.

ततोनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।
वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥४२॥

यावद् गत्वा ब्रह्मा स्वगृहं बालकान् वत्सांश्चानयति तावद् **भगवानेव** ब्रह्मा-ण**मनुज्ञाप्य प्रागवस्थितान् वत्सान् पुलिनमानिन्ये.** पुलिनमपि **स्वकमेव,** यत्र पूर्वं बालकाः स्थितास्तत्रापि **यथापूर्वसखं** पुलिनं; यथापूर्वं सखायो यत्र. पूर्वं पुलिने बाल-कान् पूर्ववदुपवेश्य पश्चाद् वत्सानयनार्थं गत इव **वत्सान् पुलिनमानिन्ये** ॥४२॥

तदा बालकाः समागतं भगवन्तं कथं ज्ञातवन्त इत्याकाङ्क्षायामाह**ैकस्मिन्नपी**ति.

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ।
कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥४३॥

एकस्मिन्नप्यब्दे वर्षे **याते** गत **आत्मनः प्राणेशमन्तरा** भगवन्तं विनाल्पोपि कालो यत्र विरहाद् भूयान् भवितुमर्हति तत्र तावन्तमपि कालं **कृष्णमायया आहता** व्याप्ता, न तु ब्रह्ममायया, **क्षणार्धमेवार्भका मेनिरे** ॥४३॥

ननु कथमेतावतः कालस्य विस्मरणम्? तत्राह **किं किमिति.**

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।
यन्मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४॥

मायामोहितचेतसः किं किं न विस्मरन्ति? यद् यस्मात् **सर्वमेव जगत् मोहितं** सद**भीक्ष्णं** सर्वदैव **विस्मृतात्मकं** विस्मृत आत्मा येन तादृशम् ॥४४॥

ऊचुस्स्वसुहृदं कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।
नैकोप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

अत एव **स्वसुहृदं कृष्णमूचुस्ते** त्वया**तिरंहसा स्वागतमि**ति. तत्र हेतुत्वेनाहु**र्नैकोप्यभोजि कवल** इति— तव गमनानन्तर**मेकोपि कवलो नाभोजि** न भुक्तः. अनेन भगवति प्रेमापि सूचितम्. अत ए**वैहि** मध्ये पूर्ववत् तिष्ठ, **साधु भुज्यता**मिति ॥४५॥

ततो भगवता तथैव कृतमित्याह **तत** इति.

ततो हसन् हृषीकेशोभ्यवहृत्य सहार्भकैः ।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद् व्रजम् ॥४६॥

अर्भकैः सहाभ्यवहृत्य भुक्त्वाघासुरस्य च **चर्म प्रदर्शयन् वनाद् व्रजं** प्रति **न्यवर्तत** ॥४६॥

समागच्छन्तं भगवन्तं वर्णयति **बर्हे**ति.

बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

प्रोद्दाम गोबन्धनरज्जुर्दोहसम्बन्धि, अधिको वा. **वत्सान् गृणन्नु**च्चारयन्. **अनुगै**र्बालकै**र्गीता पवित्रा कीर्ति**र्यस्य. **गोपीदृशामुत्सवरूपा दृष्टि**र्यस्य ॥४७॥

ततो बालका अघासुरवधं व्रज आहु**रद्यानेने**ति.

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥

केचिद् **यशोदासूनुने**त्यन्ये **नन्दसूनुने**ति. **वयं चास्माद्** व्याला**दविताः**॥४८॥

एवं भ्रान्तमोहनिवृत्त्यर्थं सर्वसिद्धान्तमुपपाद्य स्नेहाश्रयविवेचनार्थं प्रक्रियान्तरमारभते.

स्नेहः स्वात्मनिष्ठः; स चात्मा भगवान् जीवो वा. सहजस्नेहो भगवति जीवे तत्सम्बन्धात् तदंशत्वादाहोस्विद् जीव एव? तथा सति भगवति स्नेहः कथमित्याक्षिपते **ब्रह्मन्निति**.

॥ राजोवाच ॥

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वः स्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥

जीवस्य देहेन सम्बन्धस्ततः पुत्रादिषु ततो.नन्दे ततो नन्दपुत्र इति क्रमः. **परोद्भवे** स्वप्राणापेक्षयापि योऽधिकः **प्रेमा** स **कथं भवेत्, स्वोद्भवेष्वपि स्तोकेषु योऽभूतपूर्वः**? अतोत्र सिद्धान्तः **कथ्यताम्** ॥४९॥

तत्र भगवति स्नेहमुपपादयति **सर्वेषामिति**.

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥५०॥

लोके तावत् **सर्वेषां** प्रेमविषय **आत्मा** देहः, **इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तस्य** देहस्य **वल्लभतया** प्रियतया. **हि** युक्तश्चायमर्थः, अन्यथा परबालके परदेहे वा स्नेहः स्यात् ॥५०॥

तत्रापि तारतम्यमित्याह **तद् राजेन्द्रेति**.

तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥

देहाभिमानवतां **यथा स्वस्वकात्मनि** देहे **स्नेहो**ऽहमभिमानविषयत्वान्न **तथा पुत्रवित्तादिषु, ममता**विषयत्वात् ॥५१॥

नन्वत्र देहो वात्मा वा कः प्रियत्वेन सहजोऽभिनिर्दिष्टः? आत्मा चेत्, स न देहातिरिक्तः प्रतीतः केनापि पामरेणातः प्रेम कथम्? तत्र देहश्चेत्, को हेतुरित्याकाङ्क्षायामाह **देहात्मवादिनामिति**.

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥५२॥

अस्ति देहव्यतिरिक्त आत्मा पामराणामपि मते. तथाप्यङ्गीकृत्याप्युच्यते **देह एव आत्मा** येषामपि **वादिनाम्. राजन्यसत्तमे**तिसम्बोधनं स्नेहार्थम्. **यथा देहः प्रियतमो न तथा** पुत्रादयः ॥५२॥

देहोपि ममताभाक् चेत् तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ।
यद् जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥५३॥

पश्चादल्पविवेकेन **देहोपि ममताभाक् चेत् तर्ह्यसा**वेव देह **आत्मवत्** पूर्वानुभूतदेहवदहमभिमानयुक्तदेहवत् **प्रियो न** भवति. किञ्च प्राणश्चेदात्मा तदापि प्राणवन्न देहः प्रियः, **यद् जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन्नपि** देहे **बलीयसी** तस्य **जीविताशा** ॥५३॥

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतत् चराचरम् ॥५४॥

तस्मादात्मा प्रिय इत्यविवादं, तदर्थं चान्यत् ॥५४॥

स चात्मा कृष्ण एवेत्याह **कृष्णमेनमिति**.

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

अखिलात्मनामयमात्मा. अस्यैव स्नेहः सहजो धर्मः; एतद्विषयकस्तदंशः पश्चादन्यत्र गच्छति तदंशेषु. एतन्मैत्रेयीब्राह्मणे वाक्यान्वयादित्यधिकरणे स्पष्टमस्माभिर्व्युत्पादितं– भगवद्धर्मा एवान्यत्र कार्येंशे च भासन्त इति. ननु कृष्णः कथमात्मा? तत्राह **जगद्धितायेति**– केवलं जगद्रक्षार्थं **मायया देहीवाभाति,** वस्तुतस्तु ब्रह्मैव ॥५५॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमपरं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ॥५६॥

किञ्च **कृष्णं जानतां** सर्वमेव स्थावरजङ्गमात्मकं **भगवद्रूपं** भाति, **यदन्यद् नास्त्येव किञ्चन**. ननु भगवतः कथमेवंरूपम्? तत्राह**परमिति**, परं कृष्णरूप**मपरं** जगत्. अतो महापुरुषप्रतीत्यापि कृष्णो भगवान्. "यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितं भवती"ति तदैव सङ्गच्छते ॥५६॥

किञ्च न केवलं सर्वस्य भगवत्त्वे महतां दृष्टिरेव प्रमाणमपि तु युक्तिरप्यत आह **सर्वेषामिति**.

सर्वेषामेव भावानां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

सर्वपदार्थानामबाधितोर्थो **भवति** कारणे **स्थितः**, कारणातिरिक्तं कार्यं नास्तीति. **तस्य** कारण**स्यापि** कारणं तत्त्वं **भगवानेव. अतद्** भगवद्व्यतिरिक्तं **वस्तु**

किं **निरूप्यताम्** ? ॥५७॥

स्नेहोपि धर्मो जगद्वत् पूर्वमुत्पन्नोतो भगवत्येव युज्यत इति प्रसङ्गात् तस्य कारणत्वमुक्तं; सर्वपुरुषार्थरूपत्वाच्च तस्मिन् स्नेह इत्याह **समाश्रिता** इति.

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत् पदं पुण्ययशो मुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥५८॥

ये मुरारेः पदं समाश्रिताः. पुण्यं यशो यस्य. **पदपल्लव एव प्लव**स्तत् स्वभावतोपि **महत् पदं; तेषां भवाम्बुधिर्वत्सपदं, परं पदं** तु **विपदां यत् पदं** न तत् **तेषां पदम्** ॥५८॥

उपसंहरत्येतत् **त** इति.

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोहमिह त्वया ।
यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

कौमारे यद् हरिणा कृतं तत् **पौगण्डे परिकीर्तित**मित्यत्र, तत्रानुपपत्तिः परिहृतेत्यर्थः ॥५९॥

अध्यायत्रयश्रवणकीर्तनयोः फलमाह**ैतदि**ति.

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाड्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरंरूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोखिलार्थान् ॥६०॥

आदौ **मुरारेः सुहृदां** बालकानां **चरितं** क्रीडा, ततोऽ**घार्दनं**, ततः **शाड्वले जेमनं** भोजनं, **च**कारा‌द् वत्सापहरणं, **व्यक्तादितरम**व्यक्तमलौकिकंभगव**द्रूपमज- स्योर्वभिष्टवं** स्तोत्रं – एतत् सर्वं **शृण्वन् गृणन्नपि** पुरुषार्थान् प्राप्नोति ॥६०॥

॥ इति श्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां
दशमस्कन्धविवरणे प्रक्षिप्ताध्यायेषु तृतीयाध्यायविवरणम् ॥

॥ कौतुकलीला समाप्ता ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ इति प्रक्षिप्तेषु तृतीयोध्यायः ॥

❀ ❀ ❀

॥ श्रीमद्वल्लभाचार्यग्रन्थरत्नमालायां ग्रन्थरत्नाङ्को नवमः ॥

श्रीमदखण्डभूमण्डलाचार्यवर्यश्रीकृष्णवदनविरहवैश्वानरावतार–

श्रीश्रीमद्वल्लभाचार्यप्रादुर्भावितायां

श्रीमच्चतुर्थप्रस्थानश्रीमद्भागवतशास्त्रनिरोधलीलाप्रतिपादक–

श्रीदशमस्कन्धसुबोधिन्यां

द्वितीयतामसप्रकरणावान्तरप्रथमप्रमाणाप्रकरणं

पञ्चमाध्यायादारभ्यैकादशपर्यन्तं प्रक्षिप्ताध्यायत्रयीयुतं च

श्रीमद्वैष्णवपरिषत्तन्त्रिभगवद्धर्मपरायणश्रेष्ठिछगनभाईवालजीभाई इत्येतेषामर्थसहायेन
श्रीभृगुकच्छस्थगणपतितनुजनुषा 'एम्. ए.' इत्यादिपदभाजा

शास्त्रिमग्नलालशर्मणा

निश्शुल्कं संशोध्य

पाटणस्थशाहोपनामनगीनदासात्मजेन 'बी. ए. एल् एल्. बी.' इतिपदभाग्वाडीलालेन

मुम्बापुर्यां
'गुजराती न्यूस्' मुद्रालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतम् ।

श्रीमद्वल्लभाब्दः ४५०। **वैक्रमसंवत् १९८४ ।**

मूल्यं मुद्रा ।

Published by Vadilal Nagindas Shah B. A. LL. B. 68, 3rd Bhoivada, Bombay. Printed by Manilal Itebaram Desai at The News Printing Press Bake-House Lane, Meadows Street, Fort, BOMBAY.

द्वितीय आवृत्तिनी प्रस्तावना

થોડાક વખત થયાં આ ગ્રંથ દુષ્પ્રાપ્ય થવાથી દ્વિતીય આવૃત્તિ છપાવવાનો વિચાર મને થયો. છાપખાનાના ભાવ બહુ વધી જવાથી કાંઈક વિલંબ થયો. અન્ય છાપખાનાની ગોઠવણ કરવી પડી. મારી આંખો બહુ નબળી પડી ગએલી હોવાથી શાસ્ત્રી શ્રી. કેશવરામ કાશીરામને પ્રુફ શોધવાનું કામ સોંપ્યું અને તેમને સહાય કરવાનું પરમ ભગવદીયભાઈ નાનુલાલ ગાંધીએ માથે લીધું.

પ્રથમ આવૃત્તિમાં કેટલાક શ્લોકોના નંબર આપવામાં ભૂલ થયેલી અને પ્રેસની ભૂલો રહેલી, તે મારી પ્રતમાં વાંચતાં મેં સુધારેલી, તે સુધારા આ આવૃત્તિમાં કર્યા છે. પ્રથમ આવૃત્તિનું શુદ્ધિપત્રક રાખવાની જરૂર રહી નહિ, કેમકે શાસ્ત્રીજી કેશવરામે પાઠફેર જ્યાં હોય ત્યાં મૂક્યા છે. આ આવૃત્તિમાં જે ભૂલો રહી છે, તેનું શુદ્ધિપત્રક ભાઈ નાનુલાલ ગાંધીએ તૈયાર કરી આપ્યું છે.

આ ગ્રંથ તથા રાસપંચાધ્યાયી પ્રકાશ છપાવવાને નીચેના વૈષ્ણવ સદ્‌ગૃહસ્થો તથા વૈષ્ણવ બહેનોએ પ્રસન્નતાથી દ્રવ્યની સહાય કરી છે, તેમનો મારા પર તથા સંપ્રદાય પર ઉપકાર થયો છે.

૧૦૦૦) શેઠ નારાયણદાસ તથા જેઠાનંદ આસનમલ ટ્રસ્ટ ફંડના ટ્રસ્ટીઓ.
૫૦૧) શ્રી. હીરાલાલ હરગોવનદાસ સીસવાવાળા.
ઠા. સિક્કાનગર, B. ૧૨ મુંબઈ ૪.
૨૫૧) શ્રી. ભાઈદાસ મગનલાલ દલાલ.
ઠા. હ્યુજીસરોડ, ગિરિકુંજ, મુંબઈ.
૨૫૦) શ્રી. જમનાદાસ છગનલાલ સોનાવાળા.
ઠા. ફણસવાડી, ઝાલીમસિંહ બિલ્ડીંગ, મુંબઈ ૨.
૨૫૦) એક વૈષ્ણવ બાઈ. ઠા. ગિરગામ બેક રોડ, મુંબઈ.
૨૦૦) કસ્તુરમા, હસ્તે સૌ. કળાવંતી નટવરલાલ
૧૦૦) બાઈ નવનીતબહેન ભાઈદાસ.
૨૫) બાઈ પ્રભાવતી ઈશ્વરલાલ.
૨૫) ગં. સ્વ. તનમનબહેન છોટાલાલ.
૨૫) બાઈ મણિબાઈ.
૧૦૧) શ્રી. મગનલાલ જેઠાલાલ રંગવાળા, સ્વ. પુત્રી અનસૂયાના સ્મરણાર્થે.
૫૧) શ્રી પ્રાણજીવનદાસ વસનજી મનજી.

આ પ્રમાણે શ્રીમદ્ પ્રભુચરણની કૃપાથી અને મિત્રો અને વૈષ્ણવોની સહાયથી પ્રકટ થયેલી આ દ્વિતીય આવૃત્તિ પરમ આનંદથી શ્રીકૃષ્ણચંદ્રના ચરણકમળમાં સમર્પણ કરું છું.

ચૈત્ર વદ ૧,
સં. ૨૦૦૭
શ્રીમહાપ્રભુ-
પ્રાકટ્યોત્સવ

ધીરજલાલ વ્રજદાસ સાંકળિયા

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

प्रथम आवृतिनी प्रस्तावना

जयन्ति श्रीमदाचार्या दीनवत्सदयालवः ।
येषां कृपाकटाक्षेण साफल्यं जन्मनोऽभवत् ॥ १ ॥

द्रव्यादिसाहाय्य

શ્રીમદ્‌વિઠ્ઠલેશ્વરચરણપ્રણીત શ્રીમતી ટિપ્પણીજીનું મુદ્રણ કયા સંયોગોમાં થયું તે અત્ર જણાવવું આવશ્યક છે. સંવત ૧૯૭૫ના વૈશાખ માસમાં કાંકરોલીમાં અસ્મદ્‌ગુરુચરણ શ્રીબાલકૃષ્ણલાલજીના લાલજી શ્રીવ્રજભૂષણજીનો યજ્ઞોપવીત મહોત્સવ હતો. તે સમયે ઘણા બાળકો ત્યાં પધાર્યા હતા. સુરતવાળા શ્રીમદ્‌ગોસ્વામિશ્રીવ્રજરત્નજી પણ તે પ્રસંગે પધાર્યા હતા. તે સમયે હું (મૂલચંદ્ર) પણ અન્ય મિત્રો સહિત ત્યાં ગયો હતો. ત્યાં એક દિવસ પ્રભુની ઇચ્છાથી અમે શ્રીવ્રજરત્નજીનાં દર્શનાર્થે ગયા તે સમયે રાજનગરસ્થ હરિવલ્લભદાસ મૂલચંદવાલા શેઠ અચાભાઈ પણ મહારાજશ્રીના દર્શનાર્થે આવેલા. તે સમયે મહારાજશ્રીએ મને પૂછ્યું કે કોઈ સાંપ્રદાયિક સંસ્કૃત ગ્રંથ છાપવા લાયક તૈયાર છે? મેં કહ્યું કે હા, શ્રીગુસાંઈજીના શ્રીટિપ્પણીજી છાપવાલાયક છે અને તેની પ્રેસકોપી પણ તૈયાર છે. માત્ર અપેક્ષિત દ્રવ્ય નથી એટલે મુદ્રણ થયું નથી. આ ઉપરથી મહારાજશ્રીએ અચાભાઈ શેઠને અપેક્ષિત દ્રવ્ય આ શ્રીટિપ્પણીજીના મુદ્રણને માટે આપવા સૂચના કરી. જેવી મહારાજશ્રીએ સૂચના કરી કે તરત જ અચાભાઈ શેઠે તે આજ્ઞાનો સહર્ષ સ્વીકાર કર્યો, અને એ શેઠે આ ગ્રંથનું સર્વ અપેક્ષિત દ્રવ્ય આપ્યું છે. ઉક્ત શેઠ **અચાભાઈ હરિવલ્લભદાસ મૂલચંદવાલા**નો આ નામસેવાને માટે ઉપકાર માનીએ છીએ.

लिखनसाहाय्य

શ્રીટિપ્પણીજીના મુદ્રણ માટે તદ્યોગ્ય પ્રતિ તૈયાર કરવામાં નીચે જણાવેલા વૈષ્ણવ સન્મિત્રોનો ઉપકાર ઘણો થયો છે. સ્તંભતીર્થસ્થ શાસ્ત્રી ભદ્રશંકરે શ્રીટિપ્પણીજીનું સાધન પ્રકરણ લખ્યું હતું, અને ચંદુલાલ ચુનીલાલ શાહે પ્રમાણ, પ્રમેય તથા ફલ પ્રકરણ લખ્યાં હતાં. સંસ્કૃતથી અપરિચિત હોવા છતાં કેવળ જો સેવાની જ શુદ્ધ અભિલાષા હોય તો પ્રભુ કેટલું સાહાય્ય કરે છે તે ચંદુલાલે ઉત્તમ રીતે લિખિત પ્રતિથી સૂચવાય છે. રા. ઉત્સવલાલ રામકૃષ્ણ પંડ્યાના ગૃહમાં તથા ભગવદીય મોતીભાઈ અને તેમનાં પરલોકવાસી ધર્મપત્ની રાધાબહેનના સૌજન્યથી ૧૯૧૭ના મે માસની રજામાં આ સર્વ કાર્ય આનંદથી થયું, તેને માટે તેમનો ઉપકાર પણ વિસ્મરણીય નથી.

पुस्तकसंग्रह

શ્રીટિપ્પણીજીનું શોધન નીચે જણાવેલાં પુસ્તકોના આધારે થયું છે:—

૧. આ પુસ્તક શ્રીગોપીનાથ દીક્ષિતજીના વંશમાં થયેલા શ્રીમદ્‌ગોસ્વામી શ્રીવ્રજાભરણ દીક્ષિતજીનું છે. આ પુસ્તક નિત્યલીલાસ્થ શ્રીમદ્‌ગોસ્વામી શ્રીજીવણલાલજીએ પોરબંદરના મંદિરમાંથી કૃપા કરી અમને મંગાવી આપેલું. આ પુસ્તક બહુ પ્રાચીન, બહુ સારા અક્ષરે લખેલું તથા શુદ્ધ છે. શ્રીટિપ્પણીજીની મૂળ પ્રેસકોપી આ જ પુસ્તકને આધારે થઈ છે. આ પુસ્તકમાં જન્મ અને તામસ પ્રકરણનાં શ્રીટિપ્પણીજી છે. આ પ્રાચીન પુસ્તક શ્રીવ્રજાભરણજીએ કાશીના કોઈ એક બ્રાહ્મણ વૈષ્ણવ પાસેથી ખરીદેલું છે.

૨. દ્વિતીય પુસ્તકમાં પણ જન્મ અને તામસ પ્રકરણનાં શ્રીટિપ્પણીજી છે. આ પુસ્તક મૂલ શ્રીમદ્‌ગોસ્વામી શ્રીગોપીનાથ પ્રભુ મહાશયના વાચનાર્થે લખાયેલું છે. આ પુસ્તક કોટામાં શ્રીમન્મથુરેશજીના મંદિરના પુસ્તકસંગ્રહમાં વિરાજતું હતું. સંવત ૧૭૯૫ના

ચૈત્ર કૃષ્ણ ચતુર્દશી ને મંગળવારે પૂર્ણ લખાયું છે, આ પુસ્તકનો લેખક કોઈ મિશ્ર સુખરામ હતો. આ પુસ્તકના અસ્તિત્વનું જ્ઞાન જ્યારે અમે કોટા શ્રીમન્મથુરેશજીના પુસ્તક-સંગ્રહનું નિરીક્ષણાદિ કરવા સને ૧૯૧૯ના મે માસમાં ગયા હતા ત્યારે થયું હતું. આ પુસ્તક બહુ સારી રીતે લખાયેલું તથા શોધપત્રાદિથી પૂર્ણ તથા પ્રાયઃશુદ્ધ છે. શ્રીટિપ્પણીજીના મુદ્રણ સમયે શોધનમાં આ જ પુસ્તકનો ઘણો આધાર લીધો છે. આ પુસ્તક અમને શ્રીમન્મથુરેશજીના મુખ્યાજી પંડિત ગોકુલદાસજીદ્વારા પ્રાપ્ત થયું છે.

૩. તૃતીય પુસ્તક ભાણ્ડારકર રિસર્ચ ઈન્સ્ટીટયુટના મૂળ ડેક્કન કોલેજવાળા સરકારી સંગ્રહમાંનું છે. આ પુસ્તક કોઈક ભાગ્યવાન વૈષ્ણવ હરિદાસસુત ગોવિંદદાસના પઠનાર્થ સંવત ૧૬૭૬ ભાદ્રપદ શુક્લ સપ્તમીને દિવસે લખાયેલું છે. આ પુસ્તકમાં ખડી માત્રાનું પણ દર્શન વારંવાર થાય છે. બહુ જ સુંદર તથા સ્વચ્છ અક્ષરે લખાયેલું છે. જન્મ અને તામસ પ્રકરણના શ્રીટિપ્પણીજી આ પુસ્તકમાં છે શ્રીટિપ્પણીજીનાં જન્મ અને તામસ પ્રકરણ આ પુસ્તક સાથે સરખાવેલાં છે. આ પુસ્તકના માલીક કોઇ વ્યાસ ભાઈજીવ્યાસના પુત્ર હરિનારાયણ હતા, જેની પાસેથી સરકારે ખરીદી ડેક્કન કોલેજના સંગ્રહમાં રાખેલું.

૪. ચતુર્થ પુસ્તક અમને ભગવદ્ધર્મપરાયણ પંડિત ભટ્ટ બલભદ્રશર્માએ આપેલું. આ પુસ્તકમાં જન્મ પ્રકરણ, તથા તામસ પ્રકરણનાં પ્રમાણ પ્રમેય અને સાધન પ્રકરણ પૂર્ણ છે, જ્યારે ફલપ્રકરણનો માત્ર પ્રથમાધ્યાય છે. આ પુસ્તક શુદ્ધ તથા પ્રાચીન છે. કોઈ વિદ્વાને આ પુસ્તકમાં કોઈ કોઈ સ્થળે ટિપ્પણ પણ યોજ્યું છે. જ્યાં ઉચિત લાગ્યું ત્યાં આ ટિપ્પણ અમે તે તે સ્થળે ટિપ્પણ તરીકે મુદ્રિત કર્યું છે.

૫. પંચમ પુસ્તક સ્તંભતીર્થના શાસ્ત્રી ભાઈનારાયણનું છે. આ પુસ્તકમાં માત્ર ફલપ્રકરણ છે. આ પુસ્તક પણ પ્રાચીન છે. ફલપ્રકરણની પ્રેસકોપી શોધવામાં આનો ઉપયોગ કર્યો છે.

૬. ષષ્ઠ પુસ્તક સુરતવાલા શ્રીમદ્ગોસ્વામી શ્રીવ્રજરત્નજીનું છે. આમાં માત્ર ફલપ્રકરણ છે.

૭. સપ્તમ પુસ્તક શ્રીમદ્ગોસ્વામી શ્રીવ્રજરત્નજીનું છે. આ પુસ્તકમાં જન્મ તથા તામસ પ્રકરણ પૂર્ણ છે. આ પુસ્તક નૂતન છે. કોઇનું વાંચેલું જણાતું નથી, પરંતુ આમાંથી અન્યત્ર સર્વત્ર અવિદ્યમાન એવું એક શોધપત્ર પ્રાપ્ત થયું છે.

૮. અષ્ટમ પુસ્તક ભા. મા. વે. ભ. પંડિત ગટ્ટુલાલજીનું છે. આ પુસ્તકમાં માત્ર ફલપ્રકરણ છે. આ પુસ્તક પ્રાચીન તથા પ્રાયઃ શુદ્ધ છે.

૯. નવમ પુસ્તક પણ પં. ગટ્ટુલાલજીનું છે. આ પુસ્તક પ્રાચીન, શુદ્ધ તથા શોધનમાં બહુ ઉપયોગી નીવડેલું. આમાં જન્મ તથા તામસ પ્રકરણ છે.

૧૦. ભ્રમરગીતનાં શ્રીટિપ્પણીજીનાં ત્રણ પુસ્તક પં. ગટ્ટુલાલજીનાં છે. ત્રણે પુસ્તક પ્રાચીન તથા પ્રાયઃશુદ્ધ છે. ચતુર્થ પુસ્તક શ્રીમદ્વૈષ્ણવ પરિષદનું હતું. મુદ્રણમાં આ નૂતન પુસ્તકનો ઉપયોગ કરવાનો પ્રસંગ જ પ્રાપ્ત ન થયો.

मूल श्रीहस्ताक्षरपुस्तकनो शोध.

ઉપર જણાવેલા સર્વ ગોસ્વામિબાલકો તથા વૈષ્ણવ વિદ્વાનોનો ઉપકાર અમે અન્તઃકરણથી માનીએ છીએ. નવ પુસ્તકના આધારે શ્રીટિપ્પણીજીનું શોધન કરી અમે મુદ્રણકાર્યમાં ફલપ્રકરણના પ્રથમાધ્યાયના અન્તભાગપર્યન્ત આવ્યા. 'क्रिया सर्वापि सैवात्र' એ શ્રીસુબોધિની-

કારિકાનું વ્યાખ્યાન કાંઈક વિલક્ષણ લાગ્યું. આથી શ્રીપુરુષોત્તમજીકૃત તત્પ્રકાશ જોયો. આ પ્રકાશ પણ શ્રીપુરુષોત્તમજીનો નિજશ્રીહસ્તાક્ષરે લખેલો અમારે ત્યાં વિરાજે છે. તે જોતાં નીચેની પંક્તિ વાંચવામાં આવી:—अत्र कारिकाव्याख्यानं टिप्पणीपुस्तकेषु दृश्यते, तत् पाण्डुलिखने नास्तीति श्रीगोकुलनाथानां तत् प्रतिभाति, लेखरीत्यापि तथेति च। ' અહિં કારિકાવ્યાખ્યાનનું દર્શન ટિપ્પણીપુસ્તકોમાં થાય છે, તે પાંડુલિખનમાં નથી, તેથી શ્રીગોકુલનાથજીનું તે હોય એમ લાગે છે, લેખરીતિથી પણ તેમજ ભાસે છે. એ કારિકાવ્યાખ્યાન શ્રીગોકુલનાથજીનું છે એમ શ્રીપુરુષોત્તમજી કહે છે તે વાતને એ જ કારિકાવ્યાખ્યાનનું સ્વતંત્ર પુસ્તક જે અમારી પાસે વિદ્યમાન છે તે પુષ્ટિ આપે છે. તે પુસ્તકમાં આ પ્રકારે લખેલું છે:—'श्रीश्रीवल्लभो जयति। दशमना अध्याय २६ ने समाप्ते श्रीआचार्यजीनी कारिका ५ ॥ છે, તે મધ્યે પહેલી कारिका जे 'क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते। तासां कामस्य संपूर्तिर्निष्कामेनेति तास्तथा ॥१॥ श्रीजीकृत एहु लिखन'. આનો પછી મુદ્રિત શ્રીટિપ્પણીજીમાં વિદ્યમાન સંસ્કૃત વ્યાખ્યાન અક્ષરશઃ આદ્યન્ત લખેલું છે. શ્રીગોકુલેશના અન્તરંગ સેવકો એઓશ્રીને પુરુષોત્તમભાવથી શ્રીજીસંજ્ઞાથી વ્યવહારે છે. આથી શ્રીપુરુષોત્તમજીનું કથન કે આ વ્યાખ્યાન શ્રીગોકુલનાજીનું છે તે સુદૃઢ થાય છે. આ તો અપ્રસ્તુત પ્રસંગ થયો, પરન્તુ આ શ્રીપુરુષોત્તમજીની પંક્તિથી અન્ય વાર્તા સ્ફુરી. આ લેખથી એમ જણાયું કે શ્રીપુરુષોત્તમજી પાસે આ પાંડુલિખન શ્રીટિપ્પણીજીનું હોવું જોઇએ, અને શ્રીપુરુષોત્તમજી સુરતમાં થયેલા હોવાથી ઉક્ત પુસ્તક સુરતના શ્રીબાલકૃષ્ણજીના મંદિરમાં હોવું જોઇએ. આ અનુમાનોથી દોરાઇને અમે એક વિનતિપત્ર આ સંબંધમાં શ્રીવ્રજરત્નજીને લખ્યું, મહારાજશ્રીએ નિજ-મંદિરમાં વિદ્યમાન સંગ્રહમાં તપાસ કરી, પરન્તુ એ પાંડુલિખનનું પુસ્તક તેમાં મલ્યું નહિ. તેથી આપશ્રીએ અમને જણાવ્યું કે ઉક્ત શ્રીટિપ્પણીજીનું પુસ્તક અમારે ત્યાં સુરતના મંદિરમાં નથી. આ પ્રત્યુત્તરથી અમારા અન્તરાત્માને સંતોષ થયો નહિ, તેથી સ્વતઃ સુરત જઇ આનો નિશ્ચય કરવાનું સ્ફુર્યું. આથી દીવાળીની રજામાં ગત આશ્વિન શુક્લ ત્રયોદશીને દિવસે અમે સુરત ગયા. તે જ દિવસે મહારાજ શ્રીવ્રજરત્નજીને વિનતિ કરી કે આપશ્રી અમને આપશ્રીને ત્યાં સેવામાં વિરાજતાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોનું દર્શન કરાવવા કૃપા કરો. મહારાજશ્રીએ કૃપા કરી અમારી વિનતિ લક્ષમાં લઇ બીજે જ દિવસે–આશ્વિન શુક્લ પૂર્ણિમા–રાસોત્સવને દિવસે–પ્રાતઃકાલે ગ્વાલ અને રાજભોગના અનવસરમાં ઉક્ત પુસ્તકોનું દર્શન કરાવ્યું. હસ્તલિખિત પુસ્તકોનું દર્શન કરતાં અમને બહુ જ આનન્દ તથા સંતોષ થયો. અમને માલૂમ પડ્યું કે શ્રીમદ્વિઠ્ઠલેશ્વર પ્રભુચરણના નિજ શ્રીહસ્તાક્ષરે લખેલાં શ્રીટિપ્પણીજીના મૂલ પુસ્તકજી ત્યાં બિરાજે છે. અને આ જ પુસ્તકનો ઉપન્યાસ શ્રીપુરુષોત્તમજી પાંડુલિખન તરીકે કરે છે. આ ઉપરથી મહારાજશ્રીને વિનતિ પુનઃ કરી કે મુદ્રિત શ્રીટિપ્પણીજીના પુસ્તકને આ મુલ સાથે સરખાવવા દેવાની કૃપા કરો. આપશ્રીએ અમારી આ વિનતિ પણ સ્વીકારી. દીપોત્સવના અન્નકૂટાદિ ઉત્સવ પ્રસંગોમાં આ કાર્ય શાન્તિથી નહિ થાય એમ હોવાથી આપશ્રીએ અમને આ કાર્ય નાતાલની રજામાં કરી લેવાની અનુજ્ઞા આપી. તા. ૨૧ મી ડીસેમ્બરને મંગલવારે અમે સુરત પાછા ગયા. તે જ દિવસે સાયંકાલે મહારાજશ્રીના દર્શનાર્થે ગયા. ઉક્ત કાર્ય કઇ રીતે કરવું તેનો આપશ્રીએ સુનિપુણતાથી અને સરલતાથી પ્રબંધ કર્યો. બુધવારે પ્રાતઃકાલે મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરનાં શ્રીટિપ્પણીજી સાથે સરખાવવાનું કાર્ય આરંભ્યું. આ કાર્ય કરતાં અમારા આનન્દનો પાર ન રહ્યો. બુધ, ગુરુ,

શુક્ર, શનિ અને રવિ એમ પાંચ દિવસ પ્રાતઃકાલે ૯ થી ૧૨ અને બપોરના ૨ થી ૬ આ કાર્ય મહારાજશ્રીની કૃપાથી અમે નિર્વિઘ્ન શાન્તિથી તથા અત્યન્ત ઉલ્લાસથી કર્યું; અને જન્મપ્રકરણથી આરંભીને છેક ભ્રમરગીતનાં શ્રીટિપ્પણીજીના પર્યન્તનો સમગ્ર ગ્રન્થ મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરના પુસ્તક સાથે સંવાદી લીધો. ૧૨૮ પૃષ્ઠ તો શ્રીટિપ્પણીજીના મુદ્રિત હતાં, તેથી તેટલાં પૃષ્ઠ મૂલ સાથે શોધીને શોધપત્ર પણ તૈયાર કર્યું, અને અવશિષ્ટ ભાગ તો મૂલને જ અનુસરીને મુદ્રિત કર્યો છે. આથી આ મુદ્રિત શ્રીટિપ્પણીજીનું પુસ્તક અત્યન્ત પ્રામાણિક હોવાનો સંભવ છે. ૧૨૮ મુદ્રિત પૃષ્ઠોમાં અશુદ્ધ પાઠ માત્ર એક બે સ્થલે દૃષ્ટિગોચર થયા. હવે જો કોઇ દોષ મુદ્રિત પુસ્તકમાં હોય તો તે નેત્રદોષ અથવા મુદ્રણયંત્રદોષ વિના અન્ય હોવાનો સંભવ નથી. શ્રીટિપ્પણીજીના પ્રત્યેક વાચકને અમારી વિનતિ છે કે વાચવાનો આરંભ કરતા પહેલાં અન્તે મુદ્રિત શોધપત્રના આધારે મુદ્રિત પુસ્તકનાં ૧૨૮ પૃષ્ઠ શોધી લેવાં.

ઉક્ત મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરનાં શ્રીટિપ્પણીજીનાં દર્શનાદિ કરતાં કેટલાક વિચારો જે અમને સ્ફુરેલા તે પણ અત્ર વૈષ્ણવોને નિવેદન કરવાનું આવશ્યક લાગે છે. ઉક્ત મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરની પ્રતિ એવી રીતે લખેલી હતી, અને તેમાં એટલા બધા તો શોધપત્રો ભિન્ન પ્રમાણના પત્રો ઉપર અને સાહિથી લખેલા હતા કે હાલ શ્રીટિપ્પણીજીનાં પુસ્તકોમાં જે સ્વરૂપનું દર્શન થાય છે તે તે મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરની પ્રતિ ઉપરથી શોધિત અને ક્વચિત્ વર્ધિત રૂપનું લાગે છે. અન્તે મુદ્રિત શોધનપત્રના મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરપુસ્તકસ્થ પાઠો અત્ર મુદ્રિત પાઠો સાથે સરખાવતાં આ કથનને પુષ્ટિ[1] મળે છે. આ જ શોધિત વર્ધિત આવૃત્તિના મૂલ આધારરૂપ આ પાંડુલિખન છે, અને તે જ પુસ્તકનો ઉપન્યાસ શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી નિજવિરચિત રાસપંચાધ્યાયીપ્રકાશમાં કરે છે.

મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરની પ્રતિ પ્રથમથી જ ગ્રન્થરૂપે કલ્પાઇ હોય એમ લાગતું નથી. શ્રીમત્પ્રભુચરણે સેવાનવસરમાં શ્રીસુબોધિનીજી ઉપર ક્વચિત્ ક્વચિત્ ટિપ્પણ યોજેલું, પરન્તુ પુનઃ પુનઃ વિચાર કરવાથી આપશ્રીને અધિક અધિક લખવાની સ્ફૂર્તિ થઇ, અને તેથી પ્રથમ જે શ્રીટિપ્પણરૂપે હતું તે અન્તે ઇતિશ્રીમાં વિવૃતિપ્રકાશરૂપ થયું તથાપિ મૂલ પ્રસિદ્ધિ જે શ્રીટિપ્પણીજીથી થઇ હતી તે જ સંપ્રદાયમાં ચિરસ્થાયી થઈ. જેમ બાલકનું અન્ય ગૌરવયુક્ત નામ હોવા છતાં સ્નેહીઓ બાબુ, બચુ નામથી સ્નેહથી વ્યવહારે છે તેમ શ્રીસુબોધિનીજીના વાચકોએ આ ગ્રન્થને તેના વિવૃત્તિપ્રકાશ એ બૃહત્ નામથી ન વ્યવહાર્યું, પરન્તુ શ્રીટિપ્પણીજી એવા મૂલાશયસૂચક નામથી પૂર્ણ ભાવથી વ્યવહાર્યું. મૂલ આ ગ્રન્થ માત્ર પ્રકીર્ણરૂપ હતો તે વાત પણ આ મૂલ પુસ્તકમાં પાછળથી ઉપરનીચે ટિપ્પણરૂપે લખેલા મંગલાચરણના શ્લોકોથી તથા અન્તમાં ઇતિશ્રીના અભાવથી પણ સૂચવાય છે.

મૂલ શ્રીહસ્તાક્ષરની પ્રતિમાં પ્રાયઃ સર્વત્ર જ્યાં ભગવત્ શબ્દનો પ્રયોગ આવતો ત્યાં ભગવત્‌ને સ્થાને ભવત્‌શબ્દ જોવામાં આવ્યો. સાંપ્રદાયિક પરિભાષામાં પ્રભુને 'આપ' એમ સામાન્ય વ્યવહાર છે. શ્રીમત્પ્રભુચરણને પ્રભુસાંનિધ્ય અને પ્રભુતન્મયતા એટલી બધી પ્રકટ છે અને પ્રભુના સંયોગરસમાં એટલા બધા આપશ્રી મગ્ન છે કે અનવધાનતાથી ભગવત્‌શબ્દને સ્થલે પ્રાયઃ સર્વત્ર ભવત્‌શબ્દનો પ્રયોગ આપશ્રીથી થઇ ગયો છે. શ્રીટિપ્પણીજીના શોધિત લિખનમાં લેખકે ભગવત્‌શબ્દ યોજ્યો હોય એમ લાગે છે.

૧. જુઓ આ અધ્યાય ૨૫ ને અન્તે 'ननु आचार्यैः कुत एवं व्याख्यातम्'ને બદલે नन्वेवं व्याकृतौ को हेतुः'

શ્રીમત્પ્રભુચરણના શ્રીહસ્તાક્ષરમાં કેટલીક વિલક્ષણતા પણ દૃષ્ટિગોચર થઈ આપશ્રીને સામાન્ય રીતે બહુ લખવાની ટેવ ન હોવી જોઇએ, અને એ જ કારણથી અક્ષર ઠરેલા નથી, અક્ષર સર્વ સમાન નથી, પણ નાના મોટા એક પંક્તિમાં પણ દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

श्रीग्रन्थकृतः ।

શ્રીટિપ્પણીજીના પ્રણેતા શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી શ્રીમહાપ્રભુજીના દ્વિતીય કુમાર શ્રીમદ્વિઠ્ઠલેશ્વર છે. એઓશ્રી સંપ્રદાયમાં શ્રીગુસાંઇજી, શ્રીમત્પ્રભુચરણ ઇત્યાદિ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. શ્રીમદ્વિઠ્ઠલેશ્વરનું પ્રાકટ્ય સંવત્ ૧૫૭૨ ના માર્ગશીર્ષ કૃષ્ણ નવમીને વાર શુક્રને દિવસે થયું હતું. જે સમયે શ્રીમદાચાર્યચરણ નિત્યલીલામાં પધાર્યા તે સમયે આપશ્રીનું વય માત્ર પંદરેક વર્ષનું હતું, પરન્તુ શ્રીમદાચાર્યજીના અંતરંગ સેવકોમાં શ્રીમદ્દામોદરદાસ શ્રીપદ્મનાભદાસાદિ ભૂતલ ઉપર વિરાજતા હતા, તેઓને શ્રીમત્પ્રભુચરણ ક્વચિત્ સંશય થતાં પૂછતા એમ કેટલીક સાંપ્રદાયિક ગાથાઓમાં પ્રસિદ્ધ છે. શ્રીમત્પ્રભુચરણે શ્રીમદાચાર્યજીની પછી સંપ્રદાયનો બહુ સારો પ્રસાર કર્યો. સાંપ્રદાયિક અનેક મર્યાદાઓ બાંધી જે હજુ સુધી અવિચ્છિન્ન સચવાઈ રહી છે. અનેક રાજાઓ પણ એઓશ્રીના સેવક થયા. એઓશ્રીનું નામ 'अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्धासक्तपदाम्बुज' એ જ આશયને સ્પષ્ટ કરે છે. સમ્રાટ્ અકબરના દરબારના રાજા ટોડરમલ્લ, રાજા વીરવર (બીરબલ), રાય પુરુષોત્તમાદિ એઓશ્રીના કૃપાપાત્ર વૈષ્ણવ હતા. સ્વપિતૃચરણે પ્રકટ કરેલા બ્રહ્મવાદ અને ભક્તિમાર્ગનું સરસ મંડન આપશ્રીએ વિદ્વન્મંડન નામક સ્વતંત્ર ગ્રન્થમાં કર્યું છે. વ્યાસસૂત્રના અન્તિમ સાર્ધ અધ્યાયનું ભાષ્ય પણ આપશ્રીએ નિજપિતૃચરણના અન્તિમ દૃષ્ટિબિન્દુથી યોજ્યું છે. ભગવલ્લીલાનું ગાનકીર્તન કરવાને અને નિજ ગીતસંગીતસાગરત્વને શ્રીમદ્રસેશ પ્રભુમાં વિનિયોગદ્વારા સમર્પણ કરીને સફલ કરવાને આપશ્રીએ શૃંગારરસમંડનાદિનું પ્રાકટ્ય કર્યું છે. અને શ્રીગોવિન્દના વિહારરૂપ શ્રીસુબોધિનીજીનું ઉત્તમોત્તમ દૃષ્ટિથી દિગ્દર્શન કરાવવાને આપશ્રીએ આ શ્રીટિપ્પણીજી યોજ્યાં છે. આપશ્રીનું વિશેષ ચરિત્ર સાંપ્રદાયિક ગાથાઓમાં પ્રસિદ્ધ છે. આપશ્રી સંવત્ ૧૬૪૨ ના પૌષ કૃષ્ણ સપ્તમીને દિવસે નિત્યભગવલ્લીલામાં પધાર્યા. આપશ્રીનું સેવ્ય સ્વરૂપ શ્રીનવનીતપ્રિયજી હાલમાં શ્રીનાથદ્વારમાં વિરાજે છે. આપશ્રીની વિજ્ઞપ્તિઓ ખાસ કરીને ભગવદ્વિરહક્લેશાનંદનું શુદ્ધ પ્રતિબિંબ છે.

ग्रन्थपरिचयः ।

શ્રીટિપ્પણીજીનું મંગલાચરણ વાંચતાં એક બે વસ્તુ આપણું ધ્યાન ખેંચે છે. 'श्रीविट्ठलैः क्रियते' અને 'चिरविचारहृद्गततदीयतात्पर्यम्' શબ્દોથી આપશ્રીની પ્રૌઢ અવસ્થામાં આ ગ્રન્થ યોજાયલો છે એમ દિશે છે. તેમ જ 'रुचे यदरुणं शश्वन्मामकं हृदयाम्बुजम्' એ શબ્દોથી આપશ્રીના સૌભાગ્યમદનું અને પ્રભ્વેકચિત્તતાનું દર્શન થાય છે. આચાર્યશ્રી શ્રીસુબોધિનીજીમાં જે નિગૂઢ આજ્ઞાઓ કરી ગયા છે તે આજ્ઞાઓના તદ્ધૃદયગત અન્તિમ તાત્પર્યના દૃષ્ટિબિન્દુથી શ્રીમત્પ્રભુચરણે શ્રીટિપ્પણીજી યોજ્યાં છે. આચાર્યશ્રીના નિતાન્ત ગોપ્ય હૃદયતાત્પર્યના કાંઇક અવગાહનની અપૂર્વ અને અનુપમ કૂંચી શ્રીટિપ્પણીજી છે. આપશ્રીની માફક ભગવચ્ચરણારવિન્દના કુંકુમરાગથી અનારક્ત હૃદયને જે સમયે શ્રીમત્પ્રભુચરણ 'ખદ્યોત, ગાવઃ' ઈત્યાદિ શબ્દોનું તાત્પર્ય શ્રીસ્વામિનીજીઓમાં ઘટાવે તે સમયે કાંઇક અતિશયતાનો ભાસ થાય, તોપણ જ્યાં આપશ્રીનું દૃષ્ટિબિન્દુ લક્ષમાં આવે

કે તરત જ આ ભાસની અતિશયતા પણ પરમ હૃદયંગમ લાગે છે. કોઇ કોઈ સ્થલે આચાર્યશ્રીની સાંકેતિક વાણીમાં સ્થિત પરમ નિગૂઢ અવ્યક્ત માધુર્ય આપશ્રી અત્યન્ત ઔચિત્યાનુસાર પરમ ઓજસયુક્ત અલ્પ શબ્દોમાં દર્શાવી દે છે. જેમ બ્રહ્મસૂત્રોનું અન્ય ટીકાકારકૃત ધર્મપર વ્યાખ્યાન અસંમત નહિ હોવા છતાં પણ આપશ્રી તો સર્વસૂત્રોનું તાત્પર્ય ધર્મિમાં જ યોજે છે, કારણ કે આચાર્યશ્રીને તે જ અભીષ્ટ છે, અને વ્યાસને પણ તે જ હોવું જોઇએ, તેમ શ્રીસુબોધિનીજીમાં પણ ધર્મપર વ્યાખ્યાન નહિ કરતાં ધર્મિપર સર્વત્ર યોજે છે આચાર્યશ્રી રાસલીલૈકતાત્પર્ય છે, અને તે રાસસ્રીભાવપૂરિતવિગ્રહ છે, તેથી આપશ્રી શ્રીટિપ્પણીજીદ્વારા શ્રીસુબોધિનીજીનું તાત્પર્ય એવી રીતે ઘટાવે છે કે જ્યાં એઓશ્રીનું તાત્પર્ય દૃષ્ટિગોચર થાય કે તત્ક્ષણ જ રાસસ્રીનો પરમ નિગૂઢ ભાવ એ જ પરમ પ્રાપ્ય વસ્તુ છે એમ સ્ફુરે, અને તત્સ્ફૂર્તિ થતાં રસેશ પ્રભુના રાસોત્સવની પરમફલતાનો આસ્વાદ પ્રાપ્ત કરવાના પ્રચુર હૃદયંગમ મનોરથો તદ્ભાવથી આરક્ત હૃદયમાં સ્ફુરે, અને કવચિત્ કરુણામય પ્રભુના કૃપાતિશયથી હીનાધિકારીને પણ પરમફલની સિદ્ધિ થઈ જાય. વસ્તુતઃ શ્રીસુબોધિનીજીનુ યથાસ્થિત તાત્પર્ય શ્રીટિપ્પણીના દર્શન વિના સ્ફુરવું દુર્લભ છે, અને તેથી જો શ્રીસુબોધિનીજીના દર્શનાદિ કરનારાઓ શ્રીટિપ્પણીજીરૂપ ઉપનેત્ર ધારણ કરીને તદ્દર્શનાદિ કરશે તો અમને તો સંશય નથી કે તેમનું હૃદયકમલ પણ ભગવચ્ચરણારવિન્દના પરાગરાગથી સદૈવ અરુણ થયા વિના રહે.

मुद्रणसंबन्धी ।

વાચકોને શ્રીટિપ્પણીજીના સ્વરૂપનું યથાસ્થિત પરમ સુન્દર દર્શન થાય તેને માટે યાવચ્છક્ય પરિશ્રમ અમે લીધો છે. શ્રીટિપ્પણીજી સ્વરૂપથી જ શ્રીસુબોધિનીજીના પ્રકીર્ણ શ્લોકોના વ્યાખ્યાનરૂપ છે. તેથી અમે બાજુમાં પ્રત્યેક ટિપ્પણના અધ્યાય તથા શ્લોકની સંખ્યાનો નિર્દેશ કર્યો છે, અને પ્રત્યેક ભિન્ન વ્યાખ્યાનને માટે નૂતન વિભાગ કર્યો છે. શ્રીસુબોધિનીજીનાં પ્રતીકો મોટા ટાઇપમાં છાપ્યાં છે. શ્રીમદ્ભાગવતના શ્લોક જેના ઉપર ટિપ્પણ છે તે તથા અધ્યાયારંભ પણ મોટા ટાઈપમાં છાપ્યા છે પ્રકરણના તથા અધ્યાયના આરંભ અન્ત નિર્દેશ્યા છે. મુદ્રણસમયમાં જેટલા સ્વતંત્ર લેખ પ્રાપ્ત થયા તેટલા સર્વ શ્રીટિપ્પણીજીમાં તે તે સ્થલે બ્રેકેટ ( ) કરી છાપ્યા છે. પ્રાચીન પુસ્તકોમાં કવચિત્ વિદ્યમાન ટિપ્પણ પણ ઉપયોગી જણાયું ત્યાં ટિપ્પણરૂપે છાપ્યું છે. પાઠપાઠાન્તરો યોજવામાં યાવચ્છક્ય પ્રભુદત્ત વિવેક કર્યો છે. અર્થાત્ શ્રીટિપ્પણીજીનું સર્વાંગસુંદર સ્વરૂપદર્શન થઈ શકે તેને માટે યાવચ્છક્ય અમે પ્રભુકૃપાથી કર્યું છે

स्वतंत्र लेखो ।

શ્રીટિપ્પણીજીના અન્તે શ્રીગુસાંઇજી, શ્રીગોકુલનાથજી, શ્રીહરિરાયજી વગેરે મહાનુભાવોના યાવત્પ્રાપ્ય શ્રીભાગવતના શ્લોકોનાં સ્વતંત્ર વ્યાખ્યાનો તથા શ્રીસુબોધિનીજીનાં પ્રકીર્ણ ટિપ્પણો પરિશિષ્ટમાં છાપવાનો અમારો મનોરથ હતો, પરન્તુ આ સમય એ મનોરથ અમારો સફલ નથી થતો તેથી અમને કાંઇક ખેદ થાય છે. પરિશિષ્ટમાં છાપવાને માટે જેમ જેમ અમે સ્વતંત્ર લેખો તથા ટિપ્પણોનો શોધ કરતા ગયા તેમ તેમ તે સંગ્રહ વૃદ્ધિ પામતો ગયો, અને હાલ અમારી પાસે તે સંગ્રહ એટલો તો મહાન્ થઇ ગયો છે કે જો

તેનું અમે મુદ્રણ કરવા જઇએ તો એક બીજાં શ્રીમતી ટિપ્પણીજી જ થઇ જાય. કદાચિત્ તેથી પણ પરિશિષ્ટ મોટું થઇ જવાનો સંભવ લાગ્યો. આ કાર્ય પૂર્ણ કરતાં પ્રેસની હાડમારીમાં કદાચિત્ બે વર્ષ શ્રીટિપ્પણીજીની પ્રસિદ્ધિમાં વિશેષ થવાનો સંભવ લાગ્યો, તેમ જ તે કાર્યને સાંગોપાંગ પૂર્ણ કરવાને દ્રવ્યાદિસામગ્રીની પણ વિશેષ અપેક્ષા પડવા લાગી. આથી એ સર્વ સંગૃહીત સ્વતંત્ર લેખો સ્વતંત્રગ્રન્થરૂપે યથાવકાશ મુદ્રિત કરવાનો નિર્ણય અમારે અનિચ્છાથી કરવો પડ્યો છે. આ નિર્ણયથી શ્રીટિપ્પણીજીનાં શીઘ્ર દર્શનની અભિલાષાવાળા ભગવદીયોને કવચિત્ આનન્દ પણ થશે. સ્વતંત્ર લેખોનો આવો સુન્દર મહાન્ સંગ્રહ પ્રભુકૃપાથી અમને પ્રાપ્ત થયો તેથી અમને પણ આ વિલંબમાં પ્રભુની ઇચ્છા કારણભૂત લાગે છે. કદાચિત્ અન્ય લેખોનો પણ સમાવેશ હજુ પણ આ સંગ્રહમાં થવાનો હશે. પરન્તુ સંપૂર્ણ સાધનસામગ્રી પ્રાપ્ત થયે તેનું પણ મુદ્રણ અમને અતીવ ઉપયોગી જણાય છે. પ્રભુ તે કાર્ય કરવાનું પણ અપેક્ષિત સામર્થ્ય અમને દાન કરો એટલું જ તત્પ્રતિપ્રાર્થ્ય છે.

चित्र ।

શ્રીટિપ્પણીજીના આરંભમાં શ્રીમત્પ્રભુચરણનું લક્ષ્મીઆર્ટ્સમાં તૈયાર કરાવેલું રંગિત ચિત્ર ધર્યું છે, તે રા. હરખલાલ હરિદાસ ભગતે આપ્યું છે. તેથી તેમનો પણ ઉપકાર માનીએ છીએ.

श्रीव्रजरत्नजीनुं उपकारसंस्मरण ।

શ્રીટિપ્પણીનો મુદ્રણદ્વારા પ્રકાશ કરવામાં શ્રીમદ્વ્રજરત્નજીનો આદિથી અન્તપર્યન્ત પરમ ઉપકાર થયો છે. શ્રીટિપ્પણીજીના મુદ્રણાર્થે અપેક્ષિત દ્રવ્ય સંપાદન કરવામાં, શોધન માટે નિજ મંદિરના સંગ્રહમાંથી અપેક્ષિત પુસ્તકો આપવામાં, શ્રીકંકરપલ્લીના શ્રીદ્વારકાધીશજીના મંદિરના પુસ્તકસંગ્રહનાં દ્વાર પરમ પરિશ્રમ લઇને અમને ઉઘડાવી આપવામાં, અને નિજમંદિરમાં શ્રીબાલકૃષ્ણજીની નિકટ સેવામાં વિરાજતા શ્રીમત્પ્રભુચરણ શ્રીમદ્વિઠ્ઠલેશ્વરના નિજશ્રીહસ્તાક્ષરથી લિખિત મૂલ શ્રીટિપ્પણીજીના પુસ્તક સાથે મુદ્રિત શ્રં ટિપ્પણીજીના પુસ્તકને વિના પ્રતિબંધે અને વિના સંકોચે પરમ ઉદારતાથી અને સરલતાથી સરખાવવા અને શોધવા દેવામાં, ઉક્ત મહારાજશ્રીની સાંપ્રદાયિક ઉજ્જવલ ઉન્નતિ કરવાની પરમ અભિરુચિ સ્પષ્ટ થાય છે. આ પ્રકારે અપૂર્વ અને અનુપમ ઔદાર્ય દર્શાવીને મહારાજશ્રીએ નિખિલ સંપ્રદાયને આપશ્રીનો પરમ ઋણી બનાવ્યો છે. મહારાજશ્રીનો અમારા ઉપર જે પર અનુગ્રહ થયો છે તેનું કથન અસ્મત્પ્રોક્ત પ્રાકૃત શબ્દોથી થઇ શકે એમ નથી. મહાનુભાવો નિજ અનુભવથી યથાર્થ સમજી શકે છે. તેમને અસ્મત્કથનની આપેક્ષા નથી. શ્રીમદ્બાલકૃષ્ણપ્રભુ મહારાજશ્રીના સકલ સાંપ્રદાયિક ઉન્નતિપ્રસારના મનોરથો સફલ કરો એટલું પ્રાર્થી વિરમીશું.

ग्रन्थार्निवेदन ।

શ્રીસુબોધિનીજીના વરેણ્ય આશયો સ્ફુરાવવામાં આ પુસ્તક કોઇ પણ મહાનુભાવ ભગવદીયને સહાયક થશે જ એ વિચારથી અમારા પરિશ્રમનો કૃતકૃત્યતા માનીએ છીએ. અન્તમાં આ પરમ પ્રેમથી અને અભિરુચિથી સિદ્ધ થયલો ગ્રન્થ શ્રીમત્પ્રભુચરણકમલમાં સમર્પણ કરીએ છીએ.

વસન્ત પંચમી, }
૧૯૭૭ મુંબઇ, }

મૂલચન્દ્ર તુલસીદાસ તેલીવાલા
ધીરજલાલ વ્રજદાસ સાંકળિયા

|| श्रीमद्वल्लभाचार्यग्रन्थरत्नमालायां ग्रन्थरत्नाङ्को षोडशाष्टादशौ ||

श्रीमद्वखण्डभूमण्डलाचार्यवर्यश्रीकृष्णवदनविरहवैश्वानरावतार–

श्रीश्रीमद्वल्लभाचार्यप्रादुर्भावितश्रीमद्भागवतसुबोधिन्यां
श्रीमदग्निकुमारश्रीविट्ठलेश्वरप्रकटिततट्टिप्पण्यां

च

दशदिगन्तविजयिश्रीपुरुषोत्तमैः पितृनाम्ना प्रकटितो

दशमस्कन्धद्वैतीयीकतामसप्रकरणावान्तर-प्रमाणप्रमेयप्रकरणद्वयप्रकाशः

पञ्चमाध्यायादारभ्य सप्तदशाध्यायपर्यन्तः

कस्यचिद् वैष्णवाग्रगण्यस्यार्थसहायेन

श्रीभृगुकच्छस्थगणपतिशास्त्रितनुजेन 'एम्. ए.' इत्यादिपदभाजा

शास्त्रिमग्नलालशर्मणा

निश्शुल्कं संशोध्य

पत्तनस्थशाहोपाख्यनगीनदाससूनुना "वी. ए. एलएल्. वी." इतिपदभाजा वाडीलालेन
सुरतिग्रामेनाविलबन्धुमुद्रणालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

श्रीमद्वल्लभाब्दाः ४५४। मूल्यं मुद्रा । वैक्रमसंवत् १९८८ ।

Edited by Prof. M. G. Shastri M. A., Printed by Govindji Dahyabhai Naik at Shree Anavil Bandhu Printing Press Surat and published by Vadilal N. Shah B. A. LL B. Advocate, 68/3rd Bhoivada, Bombay 2.

आवश्यकनिवेदनम् ।

दशमस्कन्धपूर्वार्धे जन्मप्रकरण (अ० १–४) सुबोधिन्याः साहित्यं लेखयोजनाकारिकार्थात्मकमसन्मित्रप्राप्तभगवच्चरणश्रीमग्नलालशास्त्रिभिर्मुद्रापितमस्ति । तामसफलप्रकरण (अ० २६–३२) साहित्यं लेखयोजनारूपमसन्मित्रभगवच्चरणप्राप्तश्रीमूलचन्द्रतेलीवाला इत्येतैर्मम साहाय्येन मुद्रापितमेव। अतोऽवशिष्टास्तामसप्रमाणतामसप्रमेयतामससाधनप्रकरण-(अ० ५–२५) लेखयोजनाकारिकार्थास्तामसफलप्रकरण (अ० २६–३२) कारिकार्थश्चात्र मुद्रापयित्वा विद्वज्जनहस्तकमलेषु सहर्षं समर्प्यन्ते ।

अस्य ग्रन्थस्य शोधनकार्यं सम्प्रदायसेवेत्यङ्गीकृत्य मम सुहृद्भगवदीयमङ्गलदासेनासदध्यक्षतयासदर्शितपथा च प्रसन्नमनसात्यन्तस्वस्थचित्ततया च कृतं परिणामोऽप्यतीव सुन्दरो, यन्न क्वापि विशेषाशुद्धिर्मुद्रणे दृश्यते ।

विवरणकर्तॄणां परिचयोऽस्मन्मुद्रापितसेवाफलादिषोडशग्रन्थेषु जिज्ञासुभिर्द्रष्टव्यः ।

अस्माभिः श्रीवल्लभकृतलेखस्य त्रीण्यादर्शपुस्तकानि प्राप्तानि । एकं पण्डितश्रीगट्टूलालासङ्ग्रहस्थमशुद्धमसन्तोषप्रदम् । द्वितीयं श्रीवैष्णवपरिषत्सङ्ग्रहस्थमसन्मित्रपरमवैष्णवश्रीवाडीलालैर्दत्तं तदपि तादृशमेव । तृतीयं श्रीकङ्करपल्लीग्रन्थसङ्ग्रहस्थं गोस्वामिश्री१०८व्रजभूषणलालानामाज्ञया सौजन्यशीलविद्वद्वर्यशास्त्रिश्रीबालशास्त्रिसूनुश्रीकण्ठमणिशास्त्रिभिः सौहार्देन प्रेषितम् । तदत्यन्तशुद्धं पूर्णसन्तोषप्रदं ग्रन्थकर्तृश्रीवल्लभानामेव । तच्च तैः स्वयमेव शोधितमित्यस्माकं प्रतिभाति ।

श्रीलालूभट्टानां योजनाया द्वे आदर्शपुस्तके प्राप्ते। एकं श्रीवैष्णवपरिषत्सङ्ग्रहस्थं श्रीवाडीलालैर्दत्तं किञ्चिदशुद्धं किन्तु श्रीकङ्करपल्लीस्थमूलपुस्तकगताशुद्धिरहितं कुत्रचित्स्थले वर्धितं च । द्वितीयं श्रीकङ्करपल्लीस्थसङ्ग्रहस्थम् । तदपि कुत्रचित्स्थलेऽशुद्धम् ।

श्रीनिर्भयरामभट्टकृतकारिकार्थस्यापि द्वे आदर्शपुस्तके प्राप्ते। एकं भगवच्चरणप्राप्तश्रीमग्नलालशास्त्रिभिर्दत्तं, तदशुद्धम् । द्वितीयं श्रीकङ्करपल्लीसङ्ग्रहस्थं श्रीकण्ठमणिशास्त्रिभिः प्रेषितम् । एतदतीव शुद्धं ग्रन्थकारैः स्वयं निजहस्ताक्षरेण लिखितं शोधितं वर्धितं च ।

एषामादर्शपुस्तकदातॄणामुपकारं वारं वारं संस्मरामि।

एतेषामादर्शपुस्तकानां 'प्रेसकॉपी'करणकार्यमसदध्यक्षतयासन्मित्रभगवदीयमङ्गलदासेन स्वमित्रसाहाय्येन कृतं, 'प्रेसकॉपी'संशोधनकार्ये 'प्रुफ्'संशोधनकार्ये च वैष्णवमोहनलालजरीवाला इत्यनेन साहाय्यं दत्तम् ।

संशयस्थलशङ्कासमाधानं यदा यदाऽपेक्षितं तदा तदा साम्प्रदायिकवयोवृद्धज्ञानवृद्धशास्त्रिकल्याणजिद्भिः परमसौहार्देन कृतमित्येतेषामुपकारभारं सानन्दं वहामि ।

एवं वैष्णवानां साहाय्येन संसिद्धमिदं पुस्तकं श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरणकमलयोः परमहर्षेण निवेद्यते ।

धैर्यलाल व्रजदास सांकलीया.

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।

નિવેદન.

દશમસ્કન્ધના તામસસાધનપ્રકરણ (અ૦ ૧૯-૨૫) ના ગુજરાતી ભાષાન્તરમાં લેખ અને યોજનાતું ભાષાન્તર પણ છે, પણ તે માત્ર વૈષ્ણવપરિષદ્‌ની જ પ્રતિ ઉપરથી કરેલું હતું. ત્યાર-પછી શ્રીકાંકરોલીપુસ્તકભંડારમાંથી પ્રાચીન શુદ્ધ પ્રતિઓ મળવાથી મુખ્યત્વે તે પ્રતિઓને આધારે અમોએ અહીં લેખ અને યોજના અત્યંત શુદ્ધ છપાવેલાં હોવાથી અહીં છાપેલાં લેખ અને યોજના પ્રમાણે તે ભાષાન્તર સુધારીને વાંચવું.

લેખ ત્રણ પ્રત પરથી છાપ્યો છે, (૧) વૈષ્ણવપરિષદ્‌ની ભાઈ વાડીલાલ નગીનદાસ શાહ પાસેથી મળેલી, (૨) પંડિત ગટ્ટૂલાલાની સંસ્થામાંથી મળેલી, (૩) કાંકરોલીપુસ્તકભંડારમાંથી શાસ્ત્રી કંઠમણિજીએ મોકલેલી. પ્રથમની બન્ને પ્રત અશુદ્ધ અને અસંતોષકારક હતી, પણ કાંકરોલીની પ્રત અત્યન્ત શુદ્ધ અને લેખકાર શ્રીવલ્લભજીની પોતાની જ છે, એમ તેમાં મૂળમાં કરેલા કેટલાક નવા પાછળના સુધારા પરથી સ્પષ્ટ જણાય છે. યોજના બે પ્રત પરથી છાપી છે, (૧) વૈષ્ણવ-પરિષદ્‌ની, અને (૨) કાંકરોળીની. બન્ને પ્રતોમાં બહુ ફેર છે. અને બન્ને અશુદ્ધ છે. બન્નેની બની તેટલી એકવાક્યતા કરી અહીં યોજના છાપી છે. **કારિકાર્થ** બે પ્રત પરથી છાપ્યો છે, (૧) વૈષ્ણવપરિષદ્‌ની, (૨) કાંકરોલીની. કાંકરોલીગ્રન્થભંડારની પ્રત કારિકાર્થના કર્તાની પોતાની અને પોતાના હસ્તાક્ષરથી લખેલી છે, એમ તેમાં મૂલમાં કરેલા ફેરફારોથી સ્પષ્ટ જણાય છે. વૈષ્ણવપરિષદ્‌ની પ્રતમાં કંઈક ઉમેરા છે, તે પાછળથી કોઈક વાચકે કર્યા હોય, અથવા લેખકે પોતે જ પાછળથી સુધારેલા પુસ્તક પરથી તે પ્રત લખાઈ હોય, ગમે તેમ હો પણ કાંકરોલીથી પ્રત ન મળી હોત તો શુદ્ધ પુસ્તક વાચકોને આપી શકાત નહિ. માટે એ સર્વ પ્રતો આપનાર ભાઈ વાડીલાલ, પંડિત ગટ્ટૂલાલાની સંસ્થા, અને ગો૦ શ્રી વ્રજભૂષણલાલજી, તથા શાસ્ત્રી કંઠમણિજીનો અમારા ઉપર બહુ જ ઉપકાર થયો છે.

આ ત્રણે ગ્રન્થોની પ્રેસકૉપી ભગવદીય ભાઈ મંગલદાસ અને એમના મિત્રોએ કરી છે; અને તે પ્રેસકૉપી અસલ પ્રતો સાથે સરખાવી સુધારવાનું કામ અમારી સાથે ભાઇ મંગલદાસ તથા વૈષ્ણવ મોહનલાલ જરીવાળાએ કર્યું છે; પ્રુફ સુધારવાનું કામ મુખ્યત્વે ભાઈ મંગલદાસે જ ઘણી જ કાળજીપૂર્વક કર્યું છે, ભાઈ જરીવાળાએ પણ ઘણીવાર તેમાં સાહાય્ય કર્યું છે, અને અમને જણાવતાં ઘણો આનંદ થાય છે કે લગભગ ૨૬૦ પાનાનો ગ્રન્થ એટલો બધો શુદ્ધ છપાયો છે કે વાચકને ભૂલ ક્વચિત્‌જ જણાશે.

આ ગ્રન્થ છપાવવાનો સર્વ ખરચ ભરૂચના સદ્‌ગત વૈષ્ણવ શેઠ **જેકીસનદાસ કરસનદાસ પીયરા**ના ટ્રસ્ટફંડમાંથી તેના હાલના ટ્રસ્ટીઓ ભગવચ્ચરણપ્રાપ્ત શાસ્ત્રી મગ્નલાલ ગણપતિરામના જમાતા પ્રોફેસર ગોવિન્દલાલ હરગોવિન્દ ભટ્ટ એમ. એ., તથા રા. રા. શેઠ જસવંતલાલ નરોત્તમદાસ અને રા. રા. શેઠ મણિલાલ નરોત્તમદાસ એ ત્રણ સદ્‌ગૃહસ્થોએ આપ્યો છે; તેમનો અમે અન્તઃકરણ-પૂર્વક ઉપકાર માનીએ છીએ. અહીં આપેલું ચિત્ર શેઠ **નરોત્તમદાસ કરસનદાસ**નું છે. તેઓ શેઠ **જેકીસનદાસ**ના ભાઈ હતા અને શાસ્ત્રી મગ્નલાલ સાથે શેઠ જેકીસનદાસટ્રસ્ટફંડના મૂલ ટ્રસ્ટી હતા, અને હાલના ટ્રસ્ટીઓ શેઠ જસવંતલાલ અને શેઠ મણિલાલના પિતાશ્રી થાય છે.

પત્રવ્યવહાર વગેરે કરી પ્રેસ શોધવાનું, કાગળો ખરીદ કરી મોકલવાનું, વગેરે કાર્ય ભાઇ ચુનીલાલે કર્યું છે.

આ પ્રમાણે વૈષ્ણવોનાં સાહાય્યથી દશમસ્કન્ધના સુબોધિનીપરના સાહિત્યમાં જે ત્રુટિ હતી તે પ્રભુકૃપાથી અમે સંતોષકારક રીતે પૂર્ણ કરી શક્યા છીએ, અને અત્યન્ત કાળજીપૂર્વક કરેલી સેવાનું આ સુંદર ફલ પરમ પ્રેમથી શ્રીકૃષ્ણચન્દ્રના ચરણકમલમાં અમે સમર્પણ કરીએ છીએ.

શ્રીમદ્‌વલ્લભાચાર્યચરણપ્રાદુર્ભાવમહામહોત્સવ. } **ધીરજલાલ વ્રજદાસ સાંકલીયા.**